अक्तूबर १९५३
तुला २०१०

संख्या ७८
अंक १

वार्षिक मूल्य
चार रुपए

प्रति अंक
छः आने

स्वर्गीय प्रो० सालिगराम भार्गव, संस्थापक सदस्य तथा भूतपूर्व सभापति विज्ञान परिषद, प्रयाग।

[आपका निधन गत १६ सितम्बर १९५३ को प्रयाग में हो गया।

विज्ञान का अगला अंक आपका स्मृति अंक होगा।]

विज्ञान

विज्ञानं ब्रह्मेति व्याजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ० ।३।५

संख्या ७८ | तुला २०१०, अक्तूबर १९५३ | अंक १

धरातली-जलधारा

महाराज नारायण मेहरोत्रा, प्राध्यापक, भूशास्त्र विभाग का० वि० वि०

[प्रकृति के दूत निरंतर धरातल की रूप रेखा बदलने में संलग्न है। इस लेख में नदी और उसके भूतात्विक कार्य का वर्णन है। अगले लेखों में अन्य धरातली शक्तियों जैसे सागर, हिमानी, हिम, आभ्यन्तरिक जलधारा आदि का विवरण दिया जायेगा।]

वर्षा का पानी जब पहाड़ों पर गिरता है तो पहाड़ के ढाल के अनुसार बहने लगता है। इस प्रकार पहाड़ों में अगणित छोटे छोटे नाले बन जाते हैं। आगे चलकर कई नालों के मिलने से एक बड़ी जलधारा बनती है, जिसे नदी कहते हैं। किसी नदी में निरंतर पानी बहता रहता है, पर समयानुसार पानी की मात्रा घटती बढ़ती रहती है। अधिकतर नदियों का उगद्म या तो किसी हिमानी (Glacier) से होता है, या किसी प्राकृतिक सोते से, जहाँ से निरन्तर नदी को पानी मिलता रहता है।

कोई भी नदी अपना मार्ग स्वयं ही निर्धारित करती है। जलधारा सदैव ढालू भूमि की ओर बहती हुई आगे बढ़ती है, यदि उसके मार्ग में कोई रुकावट आती है तो शैशवावस्था में वह उसके साथ युद्ध नहीं करती, वरन उसको छोड़कर टेढ़ी मेढ़ी बहती हुई अपना मार्ग बना लेती है। कभी कभी थोड़ी सी दूरी को पार करने के लिये नदी को कई मील का चक्कर काटना पड़ता है। इस प्रकार पहाड़ों पर अपना रास्ता खोजती हुई, तथा मैदानों में समतल भूमि पर अपना मार्ग बनाती हुई, जलधारा किसी झील या सागर से जा मिलती है।

उगद्म से मुहाने तक नदी भूतात्विक कार्य में संलग्न रहती है। नदी के इस कार्य को तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है—विनाश कार्य, परिवाहन कार्य तथा रचनात्मक कार्य।

विनाश कार्यः—नदी का विनाश कार्य जलधारा के वेग, पानी की मात्रा तथा भूमि के ढाल पर निर्भर होता है। जलधारा का वेग जल की मात्रा तथा भूमि के ढाल पर अवलम्बित है। जलधारा के मार्ग की भूमि जितनी अधिक ढालू होगी, उसका वेग भी उतना ही अधिक होगा। पहाड़ों की भूमि बहुत ढालू होती है इसी से पर्वतों पर नदियाँ बड़ी वेगवती होती हैं। इनके वेग का अनुमान इस बात से लगाया

जा सकता है कि पर्वतों पर बड़े-बड़े विशाल शिलाखण्ड भी इनके प्रवाह में बह जाते हैं। शिलाओं से टूटे यह शिलाखण्ड पहले बहुत अधिक नुकीले होते हैं, पर जलधारा के साथ बहते बहते तलहटी व किनारों की रगड़ लगने से इनके नुकीले भाग गोल हो जाते हैं और यह आकार में छोटे व चिकने हो जाते हैं। ये शिलाखण्ड नदी की तलहटी को घिसकर तथा किनारों को खुरच कर नदी के मार्ग को गहरा और विस्तीर्ण बनाते जाते हैं। इस प्रकार पर्वतों में घाटियों का निर्माण होता है। हिमालय पर्वत में बहुत सी नदियाँ लम्बी और गहरी घाटियों में बहती है। इनमें सबसे महत्वपूर्ण घाटी गिलगिट के समीप सिन्धु नदी की है जिसकी गहराई १७००० फुट है। इसके अतिरिक्त सतलज, गंडक, कोसी, अलखनंदा आदि-नदियाँ भी ६००० फुट से १२००० फुट गहरी घाटियों में बहती हैं।

पर्वतीय प्रदेशों में जलधारा की घाटी V के आकार की होती है। नदी के दोनों ओर के किनारे बहुत ही ढालू होते हैं और अधिकांशतः चट्टानों के बने होते हैं। जब नदी पर्वतीय प्रदेश से उतर कर नीचे आती है तो उसके किनारों का ढाल भी कम होता जाता है और घाटी का विस्तार भी बढ़ता जाता है, यहाँ तक कि सागर के किनारे तक पहुँचते पहुँचते नदी की घाटी लगभग चादर के समान सपाट हो जाती है।

जलधारा जब पर्वतीय प्रदेश को छोड़कर मैदान में प्रवेश करती है तो उसका वेग कम हो जाता है। साथ साथ उसकी बोझा ढोने की शक्ति भी कम हो जाती है। बड़े बड़े शिलाखण्डों को बहाना नदी की शक्ति के बाहर होता है पर अब वह छोटे मोटे कंकड़, पत्थर आदि को लेकर आगे बढ़ती है, जो कि शिलाखण्डों के आपस में टकराने, रगड़ने तथा घिसने से प्राप्त होते हैं। यह कंकड़ पत्थर, किनारे को काटते हुए, नदी की घाटी को चौड़ा करते हुए आगे बढ़ते हैं। साथ रगड़ लगने से तलहटी भी घिसती रहती है। किसी भी नदी की तलहटी तब तक घिसती रहती है, जब तक कि उसकी गहराई सागर तल के समान नहीं हो जाती। तत्पश्चात् तलहटी का गहरा होना बन्द हो जाता है पर नदी अब भी अपने किनारों को काटकर अपने क्षेत्र को विस्तृत करती ही जाती है। गंगा नदी ने जो कि पर्वतीय प्रदेश में एक तंग घाटी में बहती है, मैदान में उतर कर अपनी घाटी को कई मील चौड़ा बना लिया है। अधिक से अधिक गहराई, जहाँ तक नदी अपनी तलहटी को गहरा कर सकती है—उसका 'आधार तल' कहलाता है। दक्षिणी भारत की नदियाँ महा नदी, गोदावरी, कावेरी, कृष्णा आदि सभी आधार तल तक अपनी घाटियों को गहरा कर चुकी हैं। इनकी घाटियाँ अति विस्तृत और उथली हैं।

नदी ऊंची भूमि से जब कभी एकाएक नीचे मैदान में गिरती है तो प्रपात बन जाता है। कावेरी नदी का सिवसमुद्रम प्रपात कावेरी नदी के एकाएक ३०० फुट नीचे गिरने से बना है। प्रपात अपने सर की ओर की चट्टानों को घिसता हुआ नदी के उद्गम की ओर बढ़ता जाता है। चट्टानों की कठोरता के अनुसार प्रपात या तो स्वयं ही जलधारा में विलीन हो जाता है, या घाटी बनाकर अपने स्वरूप को बनाये रखता है। यदि ऊपर की चट्टाने मुलायम होंगी तो वे शीघ्र ही घिसती जायेंगी और कुछ समय पश्चात नीचे मैदान के तल के समान आ जायेंगी जिससे प्रपात का स्वरूप नष्ट हो जायेगी। पर यदि चट्टाने कठोर होंगी तो वे आसानी से न घिसी जा सकेंगी और प्रपात का स्वरूप स्थिर रहेगा।

ऊपर ही कहा जा चुका है कि नदी मैदानों में अपनी घाटी को बहुत अधिक चौड़ा कर लेती है और साथ ही तलहटी की गहराई भी बढ़ाती जाती है। घाटी विस्तार में इतनी अधिक बढ़ जाती है कि एक किनारे से दूसरा किनारा कई मील दूर हो जाता है। इतनी बड़ी घाटी में नदी स्वेच्छा से कभी इधर, कभी उधर होती हुई बहती है और इस प्रकार अपने लिये एक घुमावदार मार्ग बनाती है। ये मार्ग

अर्ध चन्द्राकार या धनुषाकार हो जाते हैं। कभी कभी नदी फिर अपने घुमावदार मार्ग को छोड़कर सीधी बहने लगती है और अर्धचन्द्राकार जलराशि अलग हो जाती है। इसे धनुषाकार झील या छाड़न (Ox bow lake) कहते हैं।

नदी का विध्वंस कार्य वर्षा ऋतु में बाढ़ आने पर और बढ़ जाता है। जल की मात्रा अधिक होने के कारण जल का वेग भी अधिक बढ़ जाता है, तलहटी अधिक गहरी होती जाती है तथा किनारों की भी क्षति होती है। भूगर्भित कारणों से भी यदि नदी के प्रदेश का कोई भाग ऊंचा उठ जाता है तो भी नदी का कार्य, ढाल अधिक होने के कारण वेग से होने लगता है।

परिवाहन क्रिया :—जलधारा अपने साथ शिलाखण्ड, शिला चूर्ण, बालूकण आदि बहा कर एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाती है। जलधारा के इस कार्य को परिवाहन क्रिया कहते हैं। कोई नदी अपने साथ कितना बोझा ले जा सकती है यह उसके वेग पर निर्भर है। जलधारा के बोझा ढोने की शक्ति तथा जलधारा के वेग में छठी घात का अनुपात है। इसका आशय यह है कि यदि जल का वेग दूना हो जाये तो उसकी बोझा ढोने की शक्ति (२) ६=६४ गुनी हो जायेगी। और यदि जलधारा का वेग तिगुना हो जाये तो उसकी परिवाहन शक्ति ७२९ गुनी बढ़ जायेगी। यही कारण है कि पर्वतों पर धारा के वेग में बड़े बड़े शिलाखण्ड भी बहे चले आते हैं।

नदी का वेग सदैव समान नहीं रहता है। गर्मियों में नदी का पानी कम हो जाता है और उसका वेग मन्द पड़ जाता है। पर बरसात में अधिकतर नदियाँ उमड़ती हैं और किनारों को छोड़ कर आस-पास के प्रदेशों को भी जल से ढक लेती हैं। बरसात में नदियों का वेग कई गुना अधिक बढ़ जाता है इस कारण उनकी परिवाहन शक्ति भी बढ़ जाती है। भारतवर्ष की महानदी तो अपनी बाढ़ के लिये बदनाम है। चम्बल नदी की बाढ़ में तो पानी साधारण जल तल से १०० फुट ऊँचा पहुँच जाता है। गंगा नदी में भी भयंकर बाढ़ आती है जिससे कि किनारे के नगरों व गावों की बहुत हानि होती है। सन् १९४८ के अक्टूबर माह में बाढ़ के समय गंगा जी का जल इतना अधिक बढ़ गया था, कि पानी बनारस नगर में फैल गया था। पानी की गहराई का अनुमान इससे लगाया जा सकता है किन्हीं किन्हीं सड़कों पर रिक्शा ताँगों के स्थान पर यातायात का साधन एक मात्र नौकाएँ ही थीं।

मन्द वेग से बहती हुई नदी भी अपने साथ बालू तथा मिट्टी को लेकर आगे बढ़ती है और अपने मुहाने पर जाकर छोड़ देती है। नदियाँ अपने साथ जो कुछ भी पदार्थ ले जाती हैं उसमें कुछ तो ठोस कणों के रूप में होता है और कुछ जल में घुला रहता है।

नदियों द्वारा ले जाये गये बोझे का अनुमान इसी से किया जा सकता है कि एक अकेली मिसीसीपी नदी एक वर्ष में लगभग १० अरब घन फुट पदार्थ अपने साथ समुद्र को ले जाती है। भारतवर्ष की गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियाँ प्रति वर्ष लगभग ४० अरब घन फुट सामान ले जाकर बंगाल की खाड़ी में जमा करती हैं। दक्षिणी अमेरिका की अमेज़न नदी ने अपने साथ ले जाये गये अरबों घन फुट पदार्थ को जमा करके १२५ मील लम्बा तथा ६० फुट गहरा डेल्टा बनाया है। इंगलैंड की टेम्स नदी भी लगभग १½ करोड़ घन फुट सामान अपने साथ ले जाती है।

रचनात्मक कार्य :—उद्गम स्थल से पर्वतीय प्रदेशों में बहने तक नदी का विध्वंसक कार्य ही प्रधान होता है। परन्तु पहाड़ों से उतर कर जब नदी मैदान में प्रवेश करती है तो उसका रचनात्मक कार्य आरम्भ हो जाता है।

पहाड़ों के ढालों से मैदान में उतरते हुए नदी का वेग एकाएक बहुत कम हो जाता है। और जो पत्थर नदी के साथ बह आते हैं, पहाड़ की तलहटी में जमा हो जाते हैं। इन निक्षेपों का स्वरूप पंखे के

समान होता है इस कारण इन्हें पंख निक्षेप (fan deposits) कहते हैं। ज्यों ज्यों नदी आगे बढ़ती जाती है अपेक्षाकृत उसकी गति धीमी होती जाती है और छोटे छोटे कंकड़ पत्थर नदी की तलहटी में जमा होते रहते हैं पर इस समय भी नदी का वेग बालू और मिट्टी कण बहा ले जाने के लिये यथेष्ट होता है और यह नदी की धारा के साथ साथ आगे बढ़ते हैं।

मध्यवर्ती भाग को छोड़कर जब नदी अपने मुहाने के निकट आती है तो उसकी गति अति मंद हो जाती है और शिलाओं की चूरचार और बालू को भी छोड़ती चलती है। समुद्र के निकट नदी का जल बिलकुल शान्त हो जाता है। यहाँ पर नदी द्वारा लाई गई मिट्टी के जमा होने से डेल्टा बनता है। मिट्टी जमा होते रहने से डेल्टा दिन पर दिन बढ़ता ही रहता है।

गंगा नदी द्वारा लाई हुई मिट्टी के जमा होने से एक विशाल डेल्टा बन गया है इसका दक्षिणी भाग वायुशिफ (mangroves) तथा ताड़ (Palm) के घने जंगलों से घिरा पड़ा है—और 'सुन्दर बन' के नाम से विख्यात है। मैक्सिको की खाड़ी में एक बहुत बड़ा पंकीय भूखंड (Swampy ground) है जो कि मिसीसीपी नदी द्वारा लाये गये पदार्थ से बना है।

परन्तु जिन नदियों के मुहाने पर समुद्र की धारा वेगवती होती है नदियों द्वारा लाई गई मिट्टी समुद्र से बहुत दूर तक चली जाती है। ऐसी नदियों के मुहाने खुले रहते हैं और उन्हें 'एस्चुरी' कहते हैं।

कभी कभी नदी के मुहाने पर धारा के प्रवाह में अवरोध हो जाने पर उसके द्वारा लाई गई बालू और मिट्टी के जमा हो जाने से 'बाधा' (Bar) की रचना होती है। यदि यह 'बाधा' एक ओर से स्थल से जुड़ी होती है तो इसे जिह्वा (Spit) कहते हैं। कभी-कभी बालू और मिट्टी के समुद्र या नदी के किनारे पर जमा होने से द्वीप बन जाते हैं। रेत के बने छोटे २ द्वीप तो बहुत सी नदियों के नितल (bed) में दिखाई देते हैं।

बाढ़ के दिनों में नदी में जल की मात्रा अधिक हो जाती है। इससे नदी की अपरदन शक्ति भी बढ़ जाती है। नदी अपने मार्ग को गहरा करती जाती है और साथ ही साथ बहुत सा पानी नदी के किनारों को पार कर इधर-उधर फैलने लगता है। धारा के प्रवाह से अलग होकर यह जल स्थिर हो जाता है और इसमें लाई गई मिट्टी के जमा हो जाने से किनारे पर नये उपजाऊ मैदान बन जाते हैं। इन्हें ही 'बाढ़ के मैदान (Flood plains) कहते हैं।

इन मैदानों की मिट्टी जब सूखने लगती है तो इनमें सुकड़न के कारण बहुत सी दरारें पड़ जाती है—इन्हें पंक छिद्र (Mud cracks) कहते हैं। यह अधिकतर बहुभुजीय होते हैं। कभी २ इस मिट्टी में प्राचीन काल के प्राणियों के पदचिन्ह भी मिलते हैं।

बाढ़-भूमि (Flood plain) निर्माण करने के पश्चात् यदि किसी नदी में फिर नवजीवन का संचार होता है तो उसकी अपरदन क्रिया बढ़ जाती है और नदी अपने ही द्वारा निर्मित बाढ़-भूमि का अपरदन करने लगती है और अन्त में पहले बाढ़ के मैदान से नीचे दूसरा नया मैदान बनाती है। इस प्रकार कालांतर में एक के नीचे एक मैदान बनते जाते हैं। इन्हें नद उत्तल (River Terraces) कहते हैं। नद-उत्तल में प्राचीनकाल में प्रयोग में आने वाले अस्त्र तथा कहीं कहीं प्राणियों के अवशेष भी मिले हैं।

आधुनिक विज्ञान

अपेक्षावाद, अनिश्चयवाद और भारतीय दर्शन

नंदलाल जैन एम० एस-सी०

[१] प्रारम्भिक

अपने बुद्धि विकाश के प्रथम चरण से ही मानव जगत के तथ्यों और घटनाओं के विषय में "क्यों और कैसे" जानने के लिए प्रयत्न करता आ रहा है और आज भी उसकी यह साधना अनवरत रूप से चल रही है। मानव की ज्ञान पिपासा कभी शान्त नहीं हो सकती, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार दुनिया के अनन्त रहस्यों का कभी अन्त नहीं हो सकता। विज्ञान मानव की इस बौद्धिक प्रेरणा को प्रोत्साहन तो देता ही है; साथ ही उसे विज्ञान से बहुत से व्यावहारिक लाभ भी हैं जिनके कारण वह आज भी उसका पुजारी बना हुआ है। प्रारम्भ में मनुष्य ने घटित होने वाली घटनाओं का कारण उनका स्वभाव ही मान लिया था। यूनानियों में इस विषय में बड़ा उत्साह था। उन्होंने जगत की रचना को जानने के लिए विभिन्न प्रकार के गणितीय और दार्शनिक सिद्धान्तों का प्रणयन किया। गणितीय सिद्धान्तों की सत्यता के कारण भी पाइथागोरस ने तो "अंकों" को ही विश्व-तत्व मान लिया था। वे सभी भौतिक या अभौतिक गुणों को अंकों का परिणाम (Manife station) या विवर्त मानते थे। यदि जगत का पूर्णरूपेण गणितीय रूपों में वर्णन किया जा सके तो यह विज्ञान की सब से बड़ी विजय होगी। परन्तु उस समय यह सम्भव नहीं हो सका, जगत को एक महा यन्त्र मान कर यान्त्रिक रूप में ही उसका विश्लेषण किया जाने लगा; "प्रकृति के सारे कार्य विवस्थित और नियमानुसार होते हैं"।

कुछ समय बाद श्री कोपर्निसस, श्री गेलीलियो, श्री केपिलर और श्री न्यूटन ने इस व्यवस्थित प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण कर उसे गणितीय रूप देने का पुनः प्रयास किया। जगत के तत्वों, तथ्यों और घटनाओं के इस प्रकार व्याख्यान करने की परम्परा ने, वर्तमान काल में प्रायोगिक रूप को छोड़कर दार्शनिक रूप ले लिया है। श्री अलबर्ट आइन्स-टाइन, श्री एडिंग्टन और श्री बील आदि वैज्ञानिक इसी धारा के प्रवर्तक और समवर्द्धक हैं। इन्होंने स्थूल जगत के मूल तत्वों का सूक्ष्म अध्ययन कर उनमें प्राप्य एकता का गणितीय व्याख्यान करने का सफल यत्न किया है। इनका कहना है कि जब हम जगत की शक्तियों के तात्विक रूप का अध्ययन करते हैं तो हमें प्रतीत होता है कि जिस माध्यम से अभी तक हमने अपनी विज्ञान साधना की है वह हमें पूर्णतया सहयोग नहीं दे पाता। हमारे प्रायोगिक निरीक्षणों के मूल साधन हमारी इन्द्रियाँ हैं। उनकी शक्ति को बहुगुणित करने के लिए हमने यन्त्रों का भी आविष्कार किया। लेकिन जैसे-जैसे क्रमशः नये तथ्यों का ज्ञान होता जा रहा है, इन साधनों की सूक्ष्मग्राहिता की सीमा समाप्त होती जा रही है। हमारे चक्षु इन्द्रिय की न्यूनतम और अधिकतम ग्रहण सीमा .०००0४ और .०००0७ से० मी० तरङ्ग दैर्ध्य वाली किरणें हैं। अन्य किरणें उसे प्रभावित नहीं करतीं। सूर्य किरणें (λ='००००८—'०३२ से० मी०), पराकासनी किरणें (λ= '००००३—'००००१ से० मी०) हमारी आँखों की

सीमा से परे हैं इनसे छोटी रेडियो किरणें, एक्स किरणें, विद्युत चुम्बकीय या विश्वीय किरणों का ग्रहण तो वह कर ही कैसे सकती हैं ? अतएव प्रत्यक्ष ज्ञान के अतिरिक्त बौद्धिक अनुमानों—दर्शन—की सहायता से तो विश्व के इन रहस्यात्मक तत्वों और अन्य दृश्यमान घटनाओं का स्वरूप जानने का प्रयत्न करने की योजना हुई है।

[२] गति के नियम और समस्यायें

प्राचीन काल में दर्शनकारों की मान्यताओं में से कुछ का आधार तो साधारण अनुभव मात्र थे और शेष का बौद्धिक तान वितान। उन मान्यताओं में से वर्तमान में वैज्ञानिक एक तथ्य मानते हैं कि जगत के सारे क्रिया-कलाप एक नियमित व्यवस्था के अनुसार सम्पन्न होते हैं। इस व्यवस्था नियम को जानने के लिए लोगों ने सर्वप्रथम गति विषयक ज्ञान प्राप्त किया। श्री गेलीलियो ने अपने समय में गति सम्बन्धी इस भ्रान्त धारणा को—कि भारी वस्तुयें शीघ्र और हलकी वस्तुयें धीरे गिरती हैं और उनकी चाल में जो अन्तर होता है वह उनके भारों के अन्तर के अनुपात में होता है—प्रयोगों द्वारा गलत सिद्ध कर एक नया रूप दिया। सामान्य गति के इस व्याख्यान के साथ श्री केपिलर ने अपने तीन नियमों द्वारा नक्षत्रीय गति की व्यवस्था का समुचित व्याख्यान किया। इन सब की भिति पर ही श्री न्यूटन ने जगत को विश्व में अदृश्य रूपेण चतुर्दिक और सर्व काल व्यापी एक क्रियाशील शक्ति के स्थल का रूप दिया जिसे गुरुत्वाकर्षण कहते हैं और बताया कि यह वस्तुओं की मात्राओं और दूरियों के अनुपात में होती है। विश्व का प्रत्येक दृश्य या अदृश्य पदार्थ इस शक्ति से प्रभावित है। श्री न्यूटन ने इस शक्ति को निम्न गणितीय रूप

[गुरुत्वाकर्षण] $= G = \frac{Mm}{r^2}$ में व्यक्त किया

और इसके आधार पर श्री केपिलर के नियमों का भी प्रतिस्थापन किया और इस प्रकार सूर्य और पार्थिव प्रणाली में एक शक्ति-मूलकता स्थापित की। उसने गति के नियमों का भी प्रस्थापन किया। उसे तात्विक और आपेक्षिक गतियों का भान था पर वह उसकी समुचित व्याख्या नहीं दे सका। आकाश (space), काल, पदार्थ, शक्ति और उसके विभिन्न रूपों की स्वतंत्र सत्ता में वह विश्वास करता था। वह सोचता था, विश्व के मूल के विषय में ईश्वर की इच्छा ही प्रमाण है। पदार्थ के विभिन्न प्रकार के वैद्युत, चुम्बकीय और प्राकृतिक आकर्षण और विकर्षणों का प्रभाव—समीप या दूर—अनिवार्य रूप से पड़ता है। ये प्रभाव दूरवर्ती पदार्थों के मध्यवर्ती आकाश में से अवश्य संचालित होते होंगे। फलत: प्रश्न हुआ, आकाश शून्य है या इसमें कुछ भरा हुआ है जिसके माध्यम से ये प्रभाव परिचालित होते हैं ? प्रकाश की प्रकृति का विश्लेषण करते करते श्री रोमर को सबसे पहले प्रकाश के निश्चित वेग की कल्पना उठी और उसके प्रसारण माध्यम की भी। इसलिए अमूर्त और सर्वव्यापी ईथर की कल्पना करनी पड़ी जिसका तात्पर्य था कि विभिन्न प्राकृतिक शक्तियाँ तरङ्ग रूप हैं जो इस ईथर समुद्र में प्रसारित होती रहती हैं। परन्तु प्रकाश के प्रसार के इस माध्यम के स्वरूप का प्रश्न बहुत ही जटिल प्रतीत हुआ। यह ईथर के स्वरूप का विश्लेषण ही है जिसने अपने अस्तित्व समाप्त करने के साथ ही जगत को एक अभिनव दृष्टिकोण दिया जिसके आधार पर जगत के दृश्य और मूल तथ्यों का व्याख्यान, विभिन्न शक्तियों और पदार्थों की एकरूपता और जगत की समुचित व्यवस्था का सुन्दर विश्लेषण किया जाता है। यह दृष्टिकोण है श्री आइन्सटाइन का अपेक्षावादी दार्शनिक दृष्टि कोण जिसके विषय में हम थोड़ी चर्चा करेंगे।

(३) अपेक्षावाद और उसका विश्लेषण

आपेक्षावाद से सिद्धांत का अभ्युदय श्री माइकिलसन मोर्ले के उस ऐतिहासिक प्रयोग के परिणाम की व्याख्या के रूप में हुआ है जिसमें उन्होंने प्रकाश प्रसारण के निमित्त प्रस्तुत ईथर के सिद्धांत

की जाँच की थी कि क्या पृथ्वी गमन करते समय अपने साथ ईथर चालित करती है। उन्होंने देखा कि इस प्रयोग का परिणाम कुछ विश्वसनीय ज्यौतिषीय निरीक्षणों और कोपर्निसम के पृथ्वी-परिभ्रमण के सिद्धांत के विरुद्ध था। अतएव इस प्रयोग की व्याख्या कुछ समय के लिए वैज्ञानिक के लिए एक समस्या हो गई। श्री आइन्सटाइन ने अपने बौद्धिक विलास से इस प्रयोग का नया अर्थ निकाल कर वैज्ञानिक जगत को आश्चर्य-चकित कर दिया। उन्होंने कहा कि वैगिक या स्थैतिक—प्रत्येक-प्रणाली में प्रकाश की गति एक और अपरिवर्तित रहती है। यह हम अपने अनुभवों से भी सिद्ध कर सकते हैं। एक दर्शक एक ६० मील घंटा के वेग से जाने वाली मोटर देख रहा है, यदि यह मोटर इसी दिशा में जाने वाली दूसरी मोटर के, आगे निकल जाती है जो ४० मील प्रति घंटे के वेग से चल रही है, तो यह स्पष्ट है कि दर्शक को पहली मोटर का वेग २० मील प्रति घंटा ही प्रतीत होगा; यदि दूसरी मोटर उसी वेग से पहली मोटर के विरुद्ध दिशा में जाती है तो उसे पहली मोटर का वेग १०० मील फी घंटा प्रतीत होगा। परन्तु यदि यह और मोटरों में बैठे हुए दर्शक अपनी-अपनी स्थितियों में प्रकाश किरण का वेग ज्ञात करें तो वह एक ही होगा क्योंकि वेग= $\frac{\text{दूरी}}{\text{समय}}$। प्रत्येक दर्शक अपनी-अपनी अवस्थाओं में भिन्न-भिन्न निरीक्षण लेगा और अन्तिम परिणाम एक ही होगा; चाहे घड़ियाँ भिन्न-भिन्न समय बता रही हों या इसी नापने के भिन्न-भिन्न पैमाने हों। इससे आइन्सटाइन ने यह निष्कर्ष निकाला है कि समय और दूरी का मापदंड तात्विक न होकर आपेक्षिक है। न्यूटन के समान समय और स्थान वास्तविक नहीं हैं; ये तो सिर्फ व्यवस्था के लिए बौद्धिक कल्पनाएँ हैं। समय घटनाओं की व्यवस्था के लिए है। और स्थान वस्तुओं की व्यवस्था के लिए है। इन दोनों की सत्ता ठीक वैसी ही है जैसे कि मीठापन, कड़ुवापन, गर्मी, सर्दी और रोगों आदि की है जिसके विषय में २३०० वर्ष पूर्व ही डेमोक्रिटस ने कहा था।

...All these things exist but in opinion, not in reality.

इनको ऐसा मानने पर ही माइकिलसन मोर्ले-प्रयोग का उचित अंकन हो सकता है। स्थान के सद्भाव में ही काल की सत्ता बनती है यदि स्थान नही, तो क्या काल का अस्तित्व सम्भव है? इस लिए आकाश काल का परस्परापेक्षी अस्तित्व है। काल की गणना तो आपेक्षिक है ही; हमारे यहाँ दिन और वर्ष का मान पृथक्-पृथक् है, परन्तु मक्युरी नक्षत्र (बुध-नक्षत्र) में दिन और वर्ष का मान एक है क्योंकि यह सूर्य के चारों ओर ८८ दिनों में एक चक्कर लगाता है और इतने ही समय में अपने अक्ष पर घूमता है। समस्त घड़ियाँ सूर्य प्रणाली के आधार पर समय बताती हैं, तात्त्विक समय नहीं। समकालिकता भी तात्विक नहीं है। एक स्थिर दर्शक के लिए यह सम्भव हो भी सकती है, पर गतिशील दर्शक के लिए यह नितान्त असम्भव है। यही रूप-रेखा भूत, भविष्यत् वर्तमान के लिए भी मानना चाहिये। अतएव आइन्सटाइन का कहना है कि प्राकृतिक घटनाओं का सही निरूपण करने के लिए हमें आकाश और काल की आपेक्षिक (व्यवहार) सत्ता स्वीकार करनी पड़ेगी। इस मत को गणितीय रूप देने के लिए "लोरेन्ज परिवर्तन" समीकरण का उपयोग किया जाता है जिनमें भिन्न-भिन्न अपेक्षाओं से इष्ट समय और स्थिति निम्न समीकरणों द्वारा परस्पर परिवर्तित किये जा सकते हैं।

(१) $x = Y(x' + ut')$ $\quad y = y'$

(२) $t = Y\left(t' + \frac{ux'}{c^2}\right)$, $\quad z = z'$

इसी समीकरण से विभिन्न नये तथ्यों की व्याख्या की गई है। यह देखा जाता है कि यदि किसी गतिशील प्रक्रिया में घड़ी या पैमाना लगा दिया जाय तो वेग की दृष्टि के अनुरूप घड़ी की गति और पैमाने की गति-दिशक लम्बाई में संकुचन

होता है। गतिशील या प्रक्रिया में भाग लेने वाला दर्शक इस संकुचन को नहीं देख सकता (उपर्युक्त समीकरण के अनुसार यह संकुचन $L - Lo \sqrt{1-\frac{u^2}{c^2}}$ के अनुरूप होगा) पर स्थिर दर्शक के लिए यह नितांत सत्य है। यह देखा जाता है कि जितना ही वेग अधिक होगा संकुचन भीं उतना ही अधिक होगा। सामान्य अवस्था में यह संकुचन यद्यपि दृष्टिगोचर नहीं होता, फिर भी जैसे वेग प्रकाश वेग के समकक्ष होता जाता है यह प्रक्रिया स्पष्ट प्रतीत होती है। प्रकाश वेग के बराबर वेग होने पर वस्तु संकुचित होकर शून्य हो जावेगी और घड़ी अपना काम बन्द कर देगी। यदि $u=c$ तो $\sqrt{1-\frac{u^2}{c^2}} = 0$, इसलिए $L = 0$)। इस तथ्य का दूसरा आशय यह है कि प्रकाश का का वेग तो विश्व में सर्वाधिक और सर्वोच्च वेग है। इस संकुचन को प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया जा सकता है।

आकाश और काल के समस्त मात्रा भी पदार्थ का वास्तविक और स्थिर गुण नहीं हैं। मात्रा भी वेग की वृद्धि के साथ बढ़ती जाती है। हमारी इन्द्रियों के सीमित होने से साधारण वेगों में यह दृष्टिगोचर नहीं होती, पर प्रकाश के समकक्ष वेगों में यह निम्न समीकरण द्वारा व्यक्त की जा सकती है

$$m = \frac{m_o}{\sqrt{1-\frac{u^2}{c^2}}}$$

यह हम अनुमान लगा सकते है कि यदि पदार्थ का वेग प्रकाश वेग के बराबर हो जाय (अर्थात् wC= तो $\sqrt{1-\frac{u^2}{c^2}} = 0$) तो मात्रा $m = \frac{m_o}{0} = \infty$ (अनन्त) हो जायगा और यदि वेग अल्प है तो m और m_o के मान में कोई खास अन्तर नहीं रहेगा। अनन्त मात्रा का अर्थ है गति के लिए अनन्त रुकावट उत्पन्न करना ($P = mf$)। इतना प्रतिरोधी पदार्थ प्रकाश के बराबर वेग से कभी नहीं चल सकता। मात्रा वृद्धि का यह तत्व भी प्रयोगों द्वारा जाँच लिया गया है और यन्त्रों के निर्माण में अब पदार्थ कणों की मात्रा वृद्धि का खास ध्यान रक्खा जाता है। तात्पर्य यह है कि मात्रा एक स्थिर गुण नहीं है इस तथ्य से भी आइन्सटाइन ने एक और महत्वपूर्ण तथ्य का निष्कर्षण किया जिसमें कालान्तर में परमाणु में बम की भूमिका प्रस्तुत की। उसने देखा गति की वृद्धि के साथ पदार्थ की मात्रा बढ़ती है लेकिन गति तो एक प्रकार गतिज शक्ति है, इसलिए इसका अर्थ हुआ कि शक्ति की वृद्धि से पदार्थ की मात्रा बढ़ती है। अर्थात शक्ति और मात्रा परस्पर सम्बद्ध हैं जिनका सम्बन्ध निम्न समीकरण द्वारा व्यक्त किया गया है

$$m = \frac{E}{c^2} \text{ या } E = mc^2$$

मात्रा और शक्ति का यह सम्बन्ध बड़ा ही चकित करने वाला था पर अब यह सिद्ध हो चुका है और इसने बहुत सी गूढ़ समस्याओं का स्पष्टीकरण किया है। यूरेनियम और सूर्य के अनवरत विकिरणों के मूल में यही समीकरण है। अतएव पदार्थ शक्ति है और शक्ति ही पदार्थ है। अवस्था विशेष से एक दूसरे में परिणत हो जाते हैं। इस गतिज शक्ति का श्री आइन्सटाइन के अनुसार नया मान हो गया है

[जो गतिज शक्ति $\frac{1}{2} m_o v^2 + \frac{3}{8} m_o \frac{v^4}{c^2}$ है।]

यदि v—का मान c से बहुत कम है तो $\frac{v^4}{c^2}$ का मान उपेक्षणीय कहा जा सकता है और साधारण व्यवहार में गतिज शक्ति न्यूटन के अनुसार ($\frac{1}{2} mv^2$) होगी।

इसी प्रकार गति और वेग का निरूपण भी आपेक्षिक हो सकता है। इस जगत में वास्तविक गति तो कोई वस्तु ही नहीं है। परिकल्पित ईथर के माध्यम में गतिशीलता नहीं है यह सिद्ध हो चुका है अतएव न तो वास्तविक आकाश ही है और न गति ही। आइन्सटाइन ने सोचा कि यदि समस्त

विश्व में सिर्फ एक ही वस्तु—पृथ्वी—होती और यह कदाचित अनियमित रूप में हिलती डुलती, तो वास्तविक गति का अनुभव भी हो सकता था या फिर विश्व ही शून्य होता। पर ये दोनों ही बातें नहीं हैं; पृथ्वी अपने अक्ष पर भी चक्कर लगा रही है और सूर्य का भी परिभ्रमण कर रही है। यदि विश्व में से सब वस्तुएँ हटा ली जायँ और सिर्फ एक वस्तु रहने दी जावे तो, कोई नहीं कह सकता कि शून्य में वह स्थिर है या गतिशील है। न्यूटन के गति नियमों में जड़ता और आवेग सम्बन्धी जो नियम हैं वे नीचे गिरते हुए पदार्थों की समान गति का समुचित व्याख्यान नहीं करते, क्योंकि यदि क्षितिज में दो भिन्न मात्रिक पदार्थों को समान बल से संचालित किया जाय तो उनके वेगों में $P = mf$ के अनुसार अन्तर अवश्य होगा। परन्तु उर्ध्वगामी क्षेत्र में दोनों प्रकार की वस्तुएँ समान गतिक होती हैं। इस समस्या के समाधान के लिए ही सर्व व्यापी अमूर्त निष्प्रतिरुध्य और मात्रानुपाती गुरुत्वाकर्षण शक्ति का उद्गम हुआ जिससे वस्तु की जड़ता मात्र दूर होती है। छोटी वस्तु हो चाहे बड़ी हो, उसकी जड़ता दूर होने पर एक सी स्थिति हो जाती है। परन्तु आइन्सटाइन इस शक्ति को बल के रूप में नहीं मानता है। उसके अनुसार यह स्थिति तो गोलाकार विश्व में वस्तुओं के नियमित और स्वाभाविक गति मार्ग का ही सूचन करती है। उसके अनुसार जाड्य बलों और आकर्षण बलों द्वारा उत्पन्न क्रियाओं या गतिओं में कोई भेदक रेखा नहीं खींची जा सकती है। विषम (Non-uniform) क्रियाओं में भी जो गति भासित होती है वह इसी प्रकार का एक प्रभाव हैं। किसी भी क्रिया में भाग लेने वालों की स्थिति के अनुरूप ही शक्ति की मित्रता प्रतीत होती है। यह आनन्द चक्र (Merry-go-round) के दृष्टान्त से भी आइन्सटाइन ने सिद्ध किया है। गति की आपेक्षिकता के समान ही वेग को भी आपेक्षिक जानना चाहिये। गुरुत्वाकर्षण नाम की कोई शक्ति नहीं है। वस्तुयें परस्पर आकृष्ट होती है यह उनकी प्राकृतिक अवस्था है। उनका सहज गमन पथ है। यह जड़ता का एक अंग ही है। यह सहज पथ आकाश-काल के चतुः आभामात्र विश्व के अनुरूप स्वाभाविक है। इस आकाश-काल के शून्य विवर्त में जहाँ कहीं वस्तु होती है, वहाँ शून्य में स्थिति परिवर्तन होता है। जितनी ही अधिक वस्तुएँ होंगी यह परिवर्तन उतना ही अधिक होगा और वह वक्राकार रूप धारण करेगा। येही वस्तुयें विश्व वक्र को पृष्टगामी बनाती जा रही हैं। शून्य में इस परिवर्तन से विद्युत या चुम्बकीय क्षेत्र के समान आकर्षण क्षेत्र बनता है जिसकी रचना "क्षेत्र समीकरणों" से ज्ञात की जा सकती है। जैसे वैद्युत या चुम्बकीय क्षेत्र के अनुसार ही उनमें विद्यमान वस्तुओं की क्रिया का निर्णय होता है उसी प्रकार आकर्षण क्षेत्र में विद्यमान वस्तु की गति का निर्णय भी उस क्षेत्र की ज्यामिति से होता है। यह क्षेत्र-ज्यामिति न्यूटन के समय तक यूक्लिडीय मानी जाती थी पर अब ऐसा नहीं है। यह विश्व मिंकोव्स्कीय या रेनमानीय ज्यामितिक क्षेत्र है क्योंकि इसमें सबसे छोटी दूरी लम्बात्मक नहीं होती और न त्रिभुज के अन्तर कोणों का योग भी दो समकोणों के बराबर होता है। न्यूयार्क और लन्दन की न्यूनतम दूरी आज भी न्यूफाउन्ड लैन्ड और आइसलेंड होकर जाने वाला वृत्ताकार पथ है। इसी प्रकार भूमध्य रेखा के किन्हीं दो विन्दुओं से उत्तरी ध्रुव को मिलाने पर जो त्रिभुज बनेगा उसके अन्तर्कोणों का योग दो समकोणों से अधिक होता है। भूवृत्त के व्यास और परिधि का अनुपात भी पाई के बराबर नहीं होता। अतएव पृथ्वी की सतह पर यूक्लिडीय ज्यामिति सत्ता नहीं है क्योंकि पृथ्वी वक्र है। यह तथ्य कुछ दृष्टिगोचर घटनाओं के गणितीय व्याख्यान से ज्ञात किया जा सकता है। ज्योतिषीय तथ्यों को यह भी विदित होता कि यह विश्व न तो अनन्त है और न अनादि ही है, यद्यपि इनकी सीमा ज्ञात नहीं हैं। विश्व सीमित हैं और उसकी सीमा उसकी वक्रता के कारण दिनों

दिन बढ़ती जा रही है। जगत के गोलाकार और पूर्ण होने का गणितीय प्रमाण भी निकाला जा चुका है। श्री एडविंड हवल ने पता लगाया है कि आकाश के प्रत्येक घन सेन्टी मीटर आयतन में लगभग १०-३० ग्राम पदार्थ विद्यमान है। इसे यदि आइन्स्टाइन के क्षेत्र समीकरण में प्रयुक्त करने पर गणना की जाय तो विश्व का अर्द्धव्यास ३५×२० लाख प्रकाश-वर्ष मील बैठता है जिससे इसका क्षेत्रफल इतना काफी हो जाता है कि इसमें लाखों प्रकार की लाखों वस्तुयें, तारे और नक्षत्र आदि रह सकें। इस विश्व में एक सूर्य की किरण ४००० लाख वर्ष में एक पूर्ण चक्र लगा सकेगी। विश्व के इस प्रकार मानने से कई ऐसी समस्याओं का समाधान हुआ है जिनकी न्यूटन के अनुसार कोई व्याख्या नहीं हो सकी थी। सबसे छोटे और सूर्य के सर्वाधिक समीप में रहने वाले Mercury (बुध) गृह की विषम गति का कारण सूर्य के आकर्षण क्षेत्र की तीव्रता ही है जिससे उसके मार्ग का आकार विषम-सा होता जाता है। इसी प्रकार यूक्लिडीय ज्यामितिक क्षेत्र में प्रकाश सरल रेखा में गमन करता है पर अब इस गोलाकार जगत में प्रकाश का गमन पथ भी वक्र होता है। इसका प्रमाण तब मिला जब २९ मई १९ १९ को भूमध्य रेखीय क्षेत्रों में पड़े सूर्य ग्रहण के चित्र लिये गये और यह देखा गया कि सूर्य के आकर्षण-क्षेत्र में तारिकाओं के प्रकाश का पराभ्रमण १·६४ सेकिन्ड हुआ था जैसा कि श्री आइन्सटाइन ने अपने समीकरणों से पहले से ही व्यक्त (१·७४ सेकिन्ड) कर दिया था।

आकर्षण क्षेत्र में आकाश के गुणों के समान काल के समयान्तरों में भी भिन्नता पाई जाती है। सूर्य क्षेत्र में रखी हुई घड़ी की गति मन्द हो जाती है और वहाँ परमाणु के विकिरण से न्यून आवृति वाला प्रकाश उद्भूत होता है। इस प्रकार प्रत्येक स्थलों पर आपेक्षिक अन्तर पड़ जाने के कारण ही श्री आइन्सटाइन के विशेष और सामान्य अपेक्षा वाद के सिद्धान्त को वैज्ञानिकों ने उच्चतम कोटि क मौलिक अन्वेषण माना है और न्यूटन युगीन यान्त्रिक जगत को क्षेत्र समीकरणों के अनुसार पाया है जिसका विश्लेषण हमारी इन्द्रिय से प्राप्त अनुभव नहीं अपितु बौद्धिक कल्पना ही कर सकती हैं जिनका संस्थापन उन्हीं को गणितीय रूप मिल जाने भर स्वयं हो जाता है।

[४] अनिश्चयवाद का उत्थानिक

इस प्रकार भौतिक जगत की वास्तविकता को आपेक्षिक रूप देने पर प्रश्न उठता है कि जगत का मूल तत्व क्या है जिससे यह जगत अपना यह विशाल रूप धारण किये है? आपेक्षावाद ने भारतीय दार्शनिकों के मत की ही पुष्टि की है। भारतीय दार्शनिकों के समान भी आइन्सटाइन भी प्रयोग शाला से रह रह कर दैनन्दिन अनुभवों और प्रकट तथ्यों पर यह बौद्धिक तान वितान बुनते रहे। जैन दर्शन के अनेकानतवाद का आशय भर यही है कि वस्तु का वर्णन उसकी परिस्थिति की अपेक्षा से तो हो सकता है। एक ही वस्तु एक ही समय विभिन्न अपेक्षाओं से भिन्न गुण वाली हो सकती है। काशी, प्रयाग और मथुरा में से यदि हम काशी की स्थिति जानना चाहें और प्रयाग की अपेक्षा ले लें, तो काशी में सामीप्य और दूरी आ जाती है। जगत की सभी वस्तुओं के तात्विक स्वरूप को जानने के लिए आज जो वैज्ञानिक विचार धारा चल रही है, अनेकान्त वाद ने उसे बहुत सदियों पहले अवक्त तव्य शब्द से व्यक्त कर दिया है अर्थात वस्तु का तात्विक स्वरूप न तो कहा ही जा सकता है और न निर्धारित ही किया जा सकता है। वर्तमान अनिश्चयवाद का सिद्धान्त वस्तुतः यही तो है। वर्तमान वैज्ञानिक यह स्पष्ट देख रहे हैं कि सभी तरह की शक्तियों और पदार्थों में दो प्रकार के गुण पाये जाते हैं। वे कणिकामय भी है और तरङ्गरूप भी। पहले शक्तियों को तरङ्ग रूप माना जाता था पर श्री मैक्सप्लान्क ने ताप विकिरण की न्यूनाधिक

तीव्रता सम्बन्धी तरङ्ग दैर्घ्यों की गणना करते समय देखा कि विकिरित शक्ति एक रूप नहीं, अपितु स्फुट कणिकाओं के रूप में विकीर्ण होती है जिसे निम्न समीकरण; द्वारा व्यक्त किया जा सकता है। श्री आइ-

$$E = hn$$

न्सटाइन के द्वारा उद्घाटित प्रकाश वैद्युत तथ्य भी कणिका सिद्धांत की ही पुष्टि करता है। यह पहले बताया जा चुका है कि शक्ति और पदार्थ एक ही वस्तु के दो भिन्न पहलू हैं। इसी आधार पर भी लुईडी ब्रोग्ली ने सोचा कि यदि शक्ति कणिका या तरङ्ग रूप है तो पदार्थ को भी वैसा ही होना चाहिए। यह तो इस समय तक शांत हो चुका था कि पदार्थों का मूल एलेक्ट्रोन है और उसे अब तक कणिका मय माना जाता था। परन्तु प्रयोगों से इलेक्ट्रोन को तरङ्ग रूप भी सिद्ध कर दिया गया है। चित्रपट पर इलेक्ट्रानों के एक्स किरण के समान काले चमकीले समूह देखे जाते हैं जो उसका तरङ्ग रूप बताते हैं; साथ ही जिन्क सलफाइड से पुते पट्ट पर इलेक्ट्रानों की बौछार करने पर अनियमित ज्वालाएँ उत्पन्न होती हैं जो वर्धक काँच से देखी जा सकती है जिससे स्पष्ट है कि इलेक्ट्रोंन कणिका रूप भी हैं। इलैक्ट्रन तरङ्गों का आवर्तन अंक $(n = \sqrt{\frac{I + uV}{V_\circ}}$ जहाँ v और $v_\circ$ भिन्न माध्यमों के विभवान्तर हैं) और तरङ्ग दैर्घ्य ($\Lambda e = h\sqrt{\frac{Iso}{m_\circ \cdot ^{८} v}}\,(I + \frac{1}{2}P)^{-\frac{1}{2}}$, जहाँ १०० विभवान्तरीय इलैक्ट्रोन के लिए $\Lambda e = I.२२ \times Io^{-८}$ है) की गणना भी की जा चुकी है। इन इलेक्ट्रन-तरङ्गों का परावर्तन, व्याघात और विवर्तन (Diffraction) भी देखा गया है। इस तरह श्री डी० ब्रोग्ली के अपने अनुसंधानों और श्री श्रोडिन्जर के गणितीय रूपों से यह सिद्ध हो गया है कि प्रकाश, ताप आदि शक्तियों की तो बात ही क्या, अणुओं और परमाणुओं तक में तरङ्ग-यान्त्रिकता देखी जाती है। वे कणिकामय तो हैं ही। इस जटिल स्थिति में इलेक्ट्रोन की स्थिति और वेग आदि अन्य गुणों का निरूपण कठिन हो गया है। साधारणतया सभी गणनायें उसकी अनिश्चित स्थिति ही बताती हैं। इस स्थिति को ही हीसिनवर्ग ने निम्न प्रकार

$\Delta P \times x \geq h$ से व्यक्त किया है।

यही समीकरण अनिश्चयवाद के सिद्धान्त का स्थापक कहलाता है। साधारण व्यवहार में यह सिद्धांत लागू नहीं होता ऐसा हमें प्रतीत होता है, परन्तु कणिकाओं या इलेक्ट्रोनों सरीखे सूक्ष्म कणों के लिए जहाँ निरीक्षक की आँख के फड़कने और प्रकाश किरण का भी प्रभाव पड़ता है—पूर्णतया उपयुक्त सिद्ध हुआ है। $१०^{-८}$ से० मी० की दूरी पर स्थितियों का निरीक्षण मात्र करने पर इलेक्ट्रोन से कम से कम एक फोटोन निकल कर काम्पटन—टिक उत्पन्न कर उसकी स्थिति में परिवर्तन ला देता है। अतएव किसी भी समय हम ऐसे कणों की रूपरेखा प्रस्तुत नहीं कर सकते चाहे हमारे यन्त्र कितने ही सूक्ष्म ग्राहक हों। इन सूक्ष्म कणों का जगत दृश्यमान जगत की सीमा में नहीं हैं। इन्हें ऐसी स्थिति में किसी ने "तरङ्ग कण" (Wavicle) कह दिया है। यही मूल तत्व की, आधुनिक विज्ञान के अनुसार, आवक्ततव्यता है।

[५] भारतीय दर्शन और जगत् का स्वरूप

संक्षेप में विश्व के विराट रूप की तात्विकता को इस प्रकार समझा जा सकता है। अभी तक पदार्थ और शक्ति दो भिन्न-भिन्न वस्तुऐं थीं पर अब मूलतः दोनों एक ही वस्तु की अवस्था विशेष हैं—वह है इलेक्ट्रोन। वैज्ञानिक अभी तक बहुत सी मौलिक शक्तियाँ मानता था विद्युत, चुम्बकत्व, ताप, प्रकाश, आकर्षण इत्यादि। लेकिन आइन्सटाइन ने तथा अन्य अनुसंधानों ने अब केवल दो मान्यतायें ही

स्वीकृत की हैं—विद्युत चुम्बकीय और आकर्षण क्षेत्र इन दोनों में भी परस्पर सम्बन्ध अवश्य होना चाहिये क्योंकि प्रकृति के नियम समान रूप से प्रत्येक क्षेत्र में कार्यकारी होते हैं। पर अभी तक वैज्ञानिक इस सम्बन्ध का निश्चित ज्ञान नहीं कर सके हैं। श्री आइन्सटाइन ने इन दोनों क्षेत्रों को अपने स्वीकृत क्षेत्र सिद्धान्त के समीकरणों द्वारा सम्बद्ध करने का प्रयास किया है, जो अन्तिम रूप में उन्होंने सन् १९४८ में (पहले १९१९ में) प्रमाणित किया है। श्री एडिंग्टन भी इसी दिशा में काम कर रहे थे पर स्थिति लगभग अनिश्चित ही है और अभी जो निष्कर्ष है वह इलेक्ट्रोन मूलक जगत ही है। यह बात भारतीय दर्शनों की मान्यताओं को पुष्ट करती है।

परमाणु ही परम तत्व है अर्थात् एक मूल तत्व से विस्तृत विश्व का उदय हुआ है, जिसे हमारी आपेक्षिक धारणाओं ने रहस्यात्मक बना दिया है। जड़ और चेतन सभी में एक तत्व है, यह उपनिषदों में बताया गया है। छान्दोग्योपनिषद् में विश्व-तत्व के वाह्य-रूप के स्पष्टीकरण के लिए अरुणि और श्वेतकेतु का सम्वाद आया है जिसमें अरुणि कहता है "वट वृक्ष के फल के छोटे छोटे कणों में जो मौलिक तत्व व्याप्त है, जिसे भौतिक चक्षु नहीं देख सकती, उसी से संसार बना है। वह सूक्ष्म रूप है और वही तू है (तत्वमसिश्वेतकेतो)"। इस तत्व को उन्होंने ब्रह्म नाम दिया है। अन्तर रूप में जो आत्म तत्व है, वह भी ब्रह्म है (अयमात्मा ब्रह्म)। तैतिरीयोपनिषद् में भी अन्न, प्राण, भव, ज्ञान और आनन्द आदि सभी पदार्थों, शक्तियों और भावों को ब्रह्म कहा गया है। आशय यह है कि विश्व के बाह्य और अन्तर रूपों में एक ही व्याप्त तत्व है जिसे उस समय ब्रह्म कहा जाता था और अब परमाणु-ब्रह्म कहा जा सकता है। यही ब्रह्म-परमाणु ब्रह्म-सत्य है। इसी से मकड़ी के समान यह विस्तृत विश्व आविर्भूत हुआ है। इस ब्रह्म का स्वरूप भी दृष्टव्य है। सभी प्रकार से इसका वर्णन किया गया है। मुण्डकोपनिषद् और वृहदारण्यकोपनिषद् में इसके कार्यों का वर्णन है।

यस्मिन्द्यौः पृथ्वी चान्तरिक्षमोतं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः।

तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुञ्चथामृतस्यैष सेतुः ॥१॥

अतः समुद्राः गिरयश्च सर्वे ऽस्मात् स्यंदेते सिंधवः सर्वरूपाः

अतश्च सर्वा ओषधयो रसाश्च, येनैष भूतैस्तिष्ठत ह्यन्तसत्मा ॥२॥

यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अंतरो, यं पृथिवी न वेद, यस्य पृथिवी शरीरं, यः पृथिवीमन्तरो यमगति, एष त आत्मा अन्तर्याम्यमृतः।

यतश्चोदेति सूर्यो ऽस्तमय च गच्छति। इत्यादि

श्री आइन्सटाइन का कहना है कि विज्ञान वस्तु स्वरूप का वर्णन करने में असमर्थ है, वह तो मात्र उसके कार्यों और प्रभाव का व्याख्यान करता है। विद्युत या चुम्बकत्व क्या है, यह वैज्ञानिक ठीक से नहीं कह सकता पर इसका प्रभाव-क्रियाएँ क्या है यह बताते बताते शास्त्र के शास्त्र बन गये हैं, फिर भी अगणित बातें रह गई हैं।

ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप भी केनोपनिषद् में देखिये

"अन्यदेव तद्विदितादथो, अविदितादधि इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद्दिति ॥"

वृहदारण्यक में इसे रूप, रस, गंध, स्पर्श रहित, अणु, स्थूल; परिमाण रहित, ह्रस्वत्व, दीर्घत्व रहित, वायु आकाश तम से विरूप, असंग, पञ्चेन्द्रिय और मन से भी न जानने योग्य और अपरिमित बताया गया है। यह न अन्दर है, न बाहर है, यह कुछ नहीं खाता और इसे भी कोई नहीं खा सकता। स्पष्ट है कि उपनिषदीय प्रश्न में परस्पर विरोधी—पर आपेक्षिक गुण हैं इन गुण वाले पदार्थ का सत्-स्वरूप क्या प्रदर्शित

किया जा सकता है? वस्तुतः प्रश्न अनिर्वचनीय है यह उपनिषदीय एक तत्वीय विश्लेषण आधुनिक विज्ञान से कुछ न कुछ साम्य तो बताता ही है।

जैन दर्शन में एकतत्वी प्रतिपादन तो नहीं, द्वितत्वी प्रतिपादन है। जड़ और चेतन दो स्वतंत्र सत्तायें हैं। जड़ जगत का मूल परमाणु है जो सामान्यतः अमूर्त (Shapeless) है, क्योंकि वह भौतिक चक्षुओं से नहीं देखा जा सकता, पर अन्यतः उसमें रूप, रस, गंध और स्पर्श—सभी—पाये जाते हैं। मूलतः सभी परमाणु (शायद एलेक्ट्रोन्स) एक से ही हैं उनके विभिन्न प्रकार के पारस्परिक संयोग ही विभिन्न जागतिक पदार्थों में रूपान्तरित हुए हैं। इनका चेतन पदार्थ भी अमूर्त रूप है और परमाणु भी हो सकता है, एक ही मूल अमूर्त तत्व के दो रूप हैं। इन दोनों का स्वलक्षण तत्वतः अवक्तव्य माना गया है परन्तु अवस्थाओं और हेतुओं (Conditions) के आधार पर उसका कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। श्री आइन्सटाइन भी पदार्थों के गुणों को अवस्थाओं के अनुसार परिवर्तित रूप में देखते हैं। बिना अवस्थाओं वाला स्थान इस जगत में सम्भव नहीं। अतएव, जैनों का कथन है कि अपेक्षावाद से भी वस्तु का सही सही वर्णन नहींहो सकता फलतः वस्तु का स्वलक्षण अवक्तव्य है जो वर्तमान अनिश्चयवाद के निकटतम अर्थ का परिचायक है।

आधुनिक विज्ञान की मान्यताओं को स्पष्ट भाषा में प्रस्तुत करने वाला बौद्ध दर्शन है। पर प्रत्येक वस्तु को सर्वतः अर्थ—क्रियाकारी (in action) अतएव अस्थिर मानता है। ऐसी वस्तु का स्वरूप शून्यवादियों के लिए कहना सम्भव नहीं है। उनके अनुसार इस प्रतीत्य समुत्पन्न (हेतुओं से उत्पन्न होने वाले पदार्थ--) जगत में कारण बिना कार्य नहीं हो सकता। फलतः प्रत्येक वस्तु पर उसका गुण परतंत्र-आपेक्षित-है; उसका स्वयं का कोई स्वभाव नहीं है, सभी वस्तुयें सापेक्ष हैं और अपने में अनिर्वाच्य हैं। एक रूसी विद्वान ने तो शून्य का अनुवाद ही आपेक्षिक या अनित्य शब्द से किया है। वास्तव में शून्यवाद आपेक्षावाद के सिद्धान्त का प्राचीन दर्शनिक प्रतिबिंब ही प्रतीत होता है। सौत्रान्तिक और वैभाषिक यद्यपि सभी बाहरी, भीतरी, भौतिक और अभौतिक पदार्थों को यथार्थ मानते हैं। परन्तु उनका स्वरूप नितान्त वैज्ञानिक है। वे कहते हैं, "सर्वंस्वलक्षणं", और स्वलक्षणों का समुदाय ही (sum of qualities) जगत है। गुण, कर्म, नाम, द्रव्य सभी काल्पनिक हैं और वे मात्र बौद्धिक धारणायें हैं। विज्ञानवादी तो वस्तुओं की यथार्थता भी स्वीकार नहीं करता। उसके अनुसार "सर्वं बुद्धिमयं जगत।" मात्र विज्ञान परम्परा या चित्त ही सत्य है, बाह्य वस्तुयें हैं ही नहीं। विश्व केवल मन के अन्दर है, मन से बाहर कुछ नहीं है। विज्ञानों या अनुभवों का प्रभाव ही-मूल तत्व है। इस प्रवाह के मूल में भूत तथता या आलय-विज्ञान है जिसका स्वरूप अनिर्वचनीय ब्रह्म-परमाणु ब्रह्म-में ठीक मिलता जुलता है। शून्यवाद से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। अन्य आस्तिक दर्शनों में वस्तु और जगत के मूल तत्व की मीमांसा उनकी आस्तिकता के कारण इतनी सूक्ष्म रूप से नहीं हो पाती है, जितनी उपर्युक्त है।

शून्यवाद और अनेकांतवाद का मूल आशय अपेक्षावाद के सिद्धान्त की पुष्टि करता है। शून्यवादी सिर्फ जगत को आपेक्षिक कहकर ही रह गये परन्तु अनेकान्तवादी ने इस अपेक्षिकता के आगे उनके परम स्वरूप की व्याख्या अवक्तव्य कह कर कर दी। यह दार्शनिक विवेचन मात्र बुद्धिजन्य था और अब तक इसका महत्व आँका ही नहीं गया था। लोग प्रयोगात्मक वैज्ञानिकों के चमत्कारों से प्रभावित होकर दर्शन की बात ही भूल गये थे। परन्तु वैज्ञानिकों के समक्ष भी विश्व की पहेली—उसके मूल तत्व के अन्वेषण—की समस्या थी। इन्द्रियजन्य या अन्य प्रयोग इस पहेली को अभी तक निश्चित रूप में नहीं सुलझा सके थे। अतएव श्री आइन्सटाइन और अन्य वैज्ञानिकों ने दार्शनिकों—बौद्धिक कल्पनाओं-की कोटि में आकर इस

पहेली का समाधान वैज्ञानिक रीति से प्रस्तुत किया। और हम देखते हैं कि भारतीय दर्शनों और वर्तमान अनिश्चयवाद की मौलिकता में कितना साम्य प्रतीत होता है !

प्रयुक्त संकेतों का अर्थ

h	= श्री प्लांक का स्थिरांक	x, r	= दूरी
m, m_0	= विशेष और सामान्य मात्रा	p	= आवेग
v, v_0	= विशेष और सामान्य वेग	E	= शक्ति
c	= प्रकाश-वेग	n	= आवर्तनांक
V, V_0	= विशेष और स्टैंडर्ड विभवांतर	λ	= इलेक्ट्रान-तरंग-दैर्घ्य
		t, t'	= समय (सामान्य और विशेष)

(१६वें पृष्ठ का शेष मैटर)

146. Parallelopiped	समानान्तर षड्फलक (संक्षिप्त रूप-समानफलक)	Rectangular Solid	आयताकार ठोस
Cube	घन	147. Permanent	स्थायी
Cuboid	आयतज	Perpetual	चिरस्थायी
		148. Permanent	स्थायी
		Temporary	अस्थायी

[२०वें पृष्ठ का शेष भाग]

uarius) है जिसके तारे डोरी में बंधे हुए घड़े की आकृति बनाते हैं। छः तारे घड़े में और चार तारे डोरी में हैं। कुँभ की डोरी मगर के ऊपर तक फैली है। कुंभ राशि में एक नक्षत्र शतभिषा (२४) पूरा पड़ता है। इसमें सौ तारे होने से इसको यह नाम मिला है। कुंभ के दक्षिण में कुंभज या द्वितीय अगस्त्य (Fomalhaut) नाम का चमकीला तारा है। कुँभ के पूरब में मीन राशि और उत्तर पूरब में भाद्रपद मंडल है जिनका वर्णन पहले हो चुका है।

एक ही रात में संध्या तथा प्रातः काल दो बार के निरीक्षण से ग्यारह राशियां तथा चौबीस नक्षत्र देखे जा सकते हैं। केवल सूर्य की राशि व उसके अन्तर्गत नक्षत्र न दिखाई देंगे। इसके लिए एक महीने की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

आगामी लेख 'आकाश घड़ी की सुइयां-ग्रहों की पहचान' पर होगा।

गणितीय शब्दमालायें

(डा० ब्रज मोहन, काशी विश्वविद्यालय)

96. Examination — परीक्षा
    Test — परीक्षण
97. Example — उदाहरण
    Illustration — दृष्टान्त
98. Expansion — प्रसार
    Extension — विस्तार, वितान
99. Extremes — बाह्यपद
    Means — मध्यपद
100. Fact — तथ्य
    Event — घटना
    Incident — आपात
    Accident — उपपात
101. Finite — सान्त
    Infinite — अनन्त
    Infinity — अनन्ती
    Limited — सीमित, ससीम
    Unlimited — असीम
    Bounded — परिमित
    Unbounded — अपरिमित
    Ilimitable — असीम
102. Fixed end — बद्धसिरा
    Free end — मुक्त सिरा
103. Fixed point — अचल बिन्दु
    Moving point — गतिशील बिन्दु
104. Fluctuation — डोलन
    Oscillation — दोलन
    Vacillation — डोलन
105. Fluid — तरल
    Liquid — द्रव
106. Fundamental — आधारभूत, आधार
    Original — मौलिक
    Primitive — पूर्वज
107. General — व्यापक
    Particular — विशिष्ट
    Special — विशेष
108. General enunciation — साधारण प्रतिज्ञा
    Particular enunciation — विशिष्ट प्रतिज्ञा
109. Gradually — क्रमशः
    In due order — क्रमानुसार
    Respectively — यथाक्रम
110. Great — बड़ा, वृहत्
    Small — छोटा, लघु
111. Greater — बड़ा, अधिक
    Less — छोटा, कम, न्यून
112. Greatest — महत्तम, सबसे बड़ा
    Least — लघुतम, सबसे छोटा
    Maximum — भूयिष्ठ (र)
    Minimum — अल्पिष्ठ (र)
113. Heavy — भारी, गुरु
    Light — हल्का
114. Height — ऊँचाई
    Altitude — उच्चत्व
115. Heterogeneous — (१) विषम घात (२) विषमांग
    Homogeneous — (१) समघात, (२) सामांग
    Multiform — अनेक रूप
    Uniform — एक रूप
116. Horizontal — क्षैतिज
    Vectical — ऊर्ध्वाधर, ऊर्ध्व
117. Hydrostatics — द्रवस्थित विज्ञान,

	द्रवस्थैतिकी (र)
Hydro-dynamics	द्रवगति विज्ञान, द्रवप्रावैगिकी (र)
118. Hyphen (as in in-charge)	योजिका
Dash (in a parenthetical phrase)	वियोजिका
Dash (as in x′, y′)	प्रास (र)
119. Identical	अभिन्न, एकात्मक
Identically equal	सर्वांगसम
120. Image	प्रतिबिम्ब
Reflection	परावर्तन
Shadow	छाया
121. Implicit	अस्पष्ट
Explicit	स्पष्ट
122. Impossible	असम्भव
Improbable	असंभाव्य
123. Index Law	घातांक नियम
Exponential Theorem	घातांकीय प्रमेय
124. Initial	आदिम; आदि
Final	अन्त्य, सर्वान्त्य
Last	अन्तिम
Terminal	अन्तिम, आवसानिक
Former	अगला, पूर्व
Latter	पिछला, अपर
Ultimate	चरम
125. Insertion of brackets	कौष्ठीकरण
Removal of brackets	विकोष्ठीकरण
126. Interior	अन्तःकोण
Exterior angle	बहिष्कोण
127. Internal	आन्तरिक
External	बाह्य
128. Internally divided	अन्तर्विभक्त
Externally divided	वहिर्विभक्त
129. Intrados	अन्तरांश
Extrados	बहिरांश
130. Invention	उपज्ञा
Discovery	आविष्कार
131. Known quantity	ज्ञात राशि
Unknown quantity	अज्ञात राशि
132 Large	बड़ा
Small	छोटा
133. Latitude	अक्षांश
Longitude	देशान्तर
134. Law	निगम
Theory	सिद्धान्त
135. Less	न्यून, कम
More	अधिक
136. Little	अल्प, थोड़ा
Much	बहु, बहुत
137. Long	लम्बा
Short	छोटा
138. Low	नीचा, निम्न
High	ऊँचा, उच्च
139. Many	बहुत, बहु
Few	अल्प, थोड़े
140. Magnitude	परिमाण, महत्ता, विशालता
Quantity	राशि, मात्रा
141. Mass	मात्रा
Mass (Dynamical)	जाड्य
142. Mechanics	यन्त्रविज्ञान, यांत्रिकी (र)
Hydro-mechanics	द्रव यान्त्रिकी
143. Oblate spheroid	निम्नाक्ष, उपगोल लध्वक्ष उपगोल
Prolate spheroid	उच्चाक्ष, उपगोल
144. Oblique	तिर्यक्
Secant	छेदक
Transversal	भेदिका (र)
145. Parallelogram	समानान्तर चतुर्भुज (संक्षिप्तरूप-समानाभुज)
Phombus	चतुः समभुज
Square	वर्ग
Trapezium	समलम्ब

(शेष पृष्ठ १४ पर देखिये)

आकाश घड़ी के अंक

तारों, राशियों और नक्षत्रों की पहचान

(सोहनलाल गुप्त एम० एस-सी०, एम० ए०, एल-एल० बी०, एल० टी०, हरद्वार)

आकाश घड़ी के अंकों-राशियों और नक्षत्रों-को पहचानने की विधियां ताराचित्र तथा पंचांग द्वारा हैं। तारे आकाशीय गोल के अन्दर स्थित हैं। एक समय में केवल आधा आकाशीय गोल दिखलाई पड़ता है। अतः पृथ्वी की भाँति आकाश मण्डल भी दो गोलार्धों में प्रकट किया जाता है। पर दोनों की स्थिति में अंतर है। भूगोल बाहर से देखा जाता है पर खगोल भीतर से। अतः तारा चित्र में साधारणतः पूर्व-पश्चिम की दिशाएँ उलटी जान पड़ती है। ताराचित्र के उत्तर को उत्तर दिशा में कर उसे सिर के ऊपर उलट कर देखना चाहिये जिससे पूर्व-पश्चिम की दिशाएँ पश्चिम-पूर्व से उलट कर स्वयं ठीक हो जायेंगी।

सूर्य, चन्द्रमा और तारे पृथ्वी के अक्ष भ्रमण के कारण, जो पश्चिम से पूर्व की ओर है, प्रति दिन पूर्व से पश्चिम को चलते जान पड़ते हैं। इनकी यह दैनिक गति जिससे दिन रात में ये आकाश मण्डल का पूरा चक्कर कर लेते जान पड़ते हैं शीघ्र गति कही गई है। तारों की केवल एक यही गति है। किन्तु इस गति में उनकी परस्पर स्थितियों में कोई अन्तर नहीं पड़ता। अतः उन्हें संस्कृत में स्था (=ठहरना) धातु सेस्तारा, फारसी में सितारा और अंग्रेजी की समानार्थक क्रिया स्टे (Stay) से स्टार (Star) नाम मिला है।

सूर्य चन्द्रमा तथा तारों की भाँति दिखाई पड़ने वाले कुछ आकाशीय पिंडों की पूर्व से पश्चिम दैनिक गति के अतिरिक्त एक और गति है यह सब स्थिर तारों के बीच मन्द गति से पश्चिम से पूरब की ओर भी खिसकते जान पड़ते हैं। चन्द्रमा में यह गति सब से अधिक होने के कारण दूसरी रात को ही उसकी स्थिति में स्पष्ट अंतर देखा जाएगा। अन्य पिंडों में अंतर देखने में महीने से वर्ष तक लग जाते हैं। सूर्य की यह मन्द गति पृथ्वी की कक्षा भ्रमण के कारण है यद्यपि वह तारों की ही भाँति स्थिर है। चन्द्रमा तथा दूसरे पिंडों में पृथ्वी की भाँति अपनी गतियाँ हैं। इन की पश्चिम से पूर्व की ओर मन्दगति के कारण ही, जो तारों में नहीं है इन्हें ग्रह, सैय्यारह तथा Planet नाम मिले हैं। संभवतः ग्रह गम् धातु से निकला है जिसका अर्थ चलना है। फारसी का सय्यारह सय्याही शब्द से मेल रखता है जिसका अर्थ फिरना है। अंग्रेजी का प्लैनेट यूनानी Planaomai = wander (घूमना) से बना है।

सूर्य तथा चन्द्रमा के अतिरिक्त ग्रहों में मंगल बुध, वृहस्पति, शुक्र तथा शनि आते हैं, जिनसे सप्ताह के बारों को नाम मिले हैं। बिना दूरबीन की सहायता लिये नग्न आंख से केवल यही ग्रह देखे जा सकते हैं अतः प्राचीन काल से इन्हीं का उपयोग आकाश घड़ी की सुइयों के रूप में होता आया है।

पृथ्वी की कक्षा भ्रमण के कारण सूर्य तारों के बीच में चलता हुआ एक वर्ष में आकाश मण्डल का पूरा चक्कर कर लेता है जिसमें ३६० अंश होते हैं। सूर्य के इस मार्ग को क्रान्ति वृत्त कहते हैं। क्रांति वृत्त पर या उसके पास लगभग समान अन्तर पर बारह तारों के पुञ्ज पड़ते हैं जिन्हें राशि (= ढेर) कहा गया है। इन ताराओं से कुछ आकृतियाँ बनती

जान पड़ती हैं जिनसे उनका नामकरण हुआ है। प्रत्येक राशि की सीमा ३० अंश है। सूर्य प्रत्येक राशि में एक मास रहता है।

चंद्रमा पृथ्वी की परिक्रमा करता है। इसमें उसे २७⅓ दिन लगते हैं। चंद्रमा के मार्ग का तल पृथ्वी के मार्ग के तल से ५ अंश का कोण बनाता है जिससे चंद्रमा क्रान्ति वृत्त से ५ अंश उत्तर और ५ अंश दक्षिण के बीच की पट्टी में रहता है। २७⅓ दिन में चंद्रमा बारहों राशियों को पार कर लेता है। एक राशि में उसे लगभग २¼ दिन लगते हैं। चंद्रमा की एक दिन की गति १३⅓ अंश है। इस सीमा में पड़ने वाले तारों को नक्षत्र नाम मिला है। नक्षत्र का अर्थ है क्षत न होने वाला। एक नक्षत्र में चंद्रमा एक दिन रहता है। एक राशि में सवा दो नक्षत्र पड़ते हैं। नक्षत्रों के राशियों में बाँटने की सुविधा के कारण प्रत्येक नक्षत्र के चार भाग किए गए हैं जिनमें प्रत्येक को चरण कहते हैं। इस प्रकार बारह राशियों में सत्ताइस नक्षत्र पूर्णतः आ जाते हैं। चंद्रमा को पृथ्वी की परिक्रमा में सत्ताइस दिनों से कुछ अधिक लगने पर वेदों में अट्ठाइस नक्षत्र लिये गये। अठ्ठाइसवाँ नक्षत्र अभिजित उत्तराषाढ़ और श्रवण के बीच में पड़ता है। नक्षत्र अधिकांश में राशियों के तारों के अंग हैं। कुछ नक्षत्र राशियों में पड़ते हुए भी उनके तारों के उत्तर या दक्षिण में हैं। किसी नक्षत्र के उस चमकीले तारे को जो क्रान्ति वृत्त के निकटतम होता है, योग तारा कहते हैं।

उत्तर दिशा में स्थान के अक्षांश की ऊँचाई पर ध्रुवतारा (Polar star) सदैव अपने स्थान पर ही स्थिर जान पड़ता है क्योंकि पृथ्वी का अक्ष ध्रुवतारा की सीध में है। अन्य सभी तारे वृत्ताकार मार्गों पर ध्रुव का चक्कर लगाते जान पड़ते हैं। इस अचलता के ही कारण इसे ध्रुवनाम मिला है। ध्रुवतारा लघु सप्तर्षि मंडल (Little Bear) की डोरी के सिरे पर है जिसमें चार तारे पतङ्ग सा चौखटा और उसके एक कोने पर तीन तारे डोरी सी बनाते है। ध्रुव-तारे की भाँति चौखटे के दो तारे चमकीले हैं और शेष मंद ज्योति के हैं। चौखटा ध्रुव की परिक्रमा करने के कारण कभी उसे पूरब, कभी पश्चिम, कभी ऊपर और कभी नीचे होता है।

ध्रुवतारे की पहचान सात चमकीले तारों के दूसरे समूह से भी की जा सकती है जिसे बृहद् सप्तर्षि (Great Bear) कहते हैं। इसका आकार भी लघु सप्तर्षि की भाँति है अर्थात् चौखटा और डोरी-डोरी से परे चौखटे के दो तारों की सीध में ध्रुवतारा पड़ता है। यह सप्तर्षि भी ध्रुव की परि-क्रमा प्रति दिन करते हैं। जब सप्तर्षि ध्रुव के पूरब में होते हैं तो चौखटा ऊपर और डोरी नीचे होती है। जब सप्तर्षि ध्रुव के परिचय में होते हैं तो चौखटा नीचे और डोरी ऊपर होती है।

ध्रुवतारे के एक ओर जितनी दूरी पर सप्तर्षि हैं उतनी ही दूरी पर ठीक दूसरी ओर अंग्रेजी का अक्षर डबल्यू W बनाते पाँच चमकीले तारे कैसो-पिया के हैं। जिसकी भुजाएँ ध्रुव की ओर फैली हुई होती है! बृहद् सप्तर्षि और कैसोपिया में कम से कम एक रात्रि में किसी भी समय देखा जा सकता है।

कैसोपिया के दक्षिण में एन्ड्रोमिडा के चार तारों की डोरी है जो भाद्रपद मंडल (Pegasus) के चौखटे के उत्तरी और पूर्वी कोने से आरम्भ करती है। इसके दक्षिणी पश्चिमी कोने पर भी तीन तारों की मुड़ी डोरी है और इसके उत्तरी पश्चिमी कोने पर तीन तारे छोटा त्रिभुज बनाते हैं। भाद्रपद मंडल के चौखटे के पश्चिमी ऊपर नीचे के दो तारे पूर्वा भाद नक्षत्र बनाते हैं जिसकी नक्षत्र क्रमसंख्या पचो-सवीं है। और पूर्वी कोनों के दोनों तारे उत्तरा भाद्र-पद नक्षत्र (२६) के हैं। पश्चिम वाले तारे पूर्वा इसलिए कहे जाते हैं कि चंद्रमा और सूर्य आदि पहले उन पर पहुँचते हैं और फिर पूर्व वाले नक्षत्र पर पहुँचते हैं क्यों कि ग्रहों की मंद गति पश्चिम से पूर्व की ओर है अतः वे उत्तरा (=पिछले या बाद के) कहलाते हैं। भाद्रपद नक्षत्र मीन राशि (१२) (Pisces) में हैं जिसके तारे कम चमकीले इस

मंडल के दक्षिण और पूरब में मछली का आकार बनाते हैं जिसका पूर्वी भाग सत्ताइसवाँ नक्षत्र रेवती है।

एन्ड्रोमिडा के दक्षिण में तीन तारों का एक सम द्विबाहु त्रिभुज है। उसके शीर्ष के नीचे प्रथम नक्षत्र अश्विनी के दो (या तीन) तारे हैं। तीनों तारे पिस्तौल का आकार बनाते जान पड़ते हैं। उसके पूर्व त्रिभुज के आधार के नीचे दूसरे नक्षत्र भरणी के मंद ज्योति के तीन तारे छोटा त्रिभुज बनाते हैं। अश्विनी और भरणी के नक्षत्र प्रथम राशि मेष (Aries) बनाते हैं।

भरणी के दक्षिण पूरब में कृतिका (Pleiades) नक्षत्र (३) के मध्यम ज्योति के छः तारे पास पास हैं जो एक छोटा सा घेरा बनाते हैं। गाँव वाले इसे कचपचिया कहते हैं क्योंकि इसमें तारों की कच-पच है। कृत्तिका के उत्तर में पारसीक मंडल के पाँच तारों की डोरी है। दूसरे शब्दों में पारसीक मंडल के दक्षिणी सिरे पर कृत्तिका स्थित है।

कृत्तिका के दक्षिण-पूरब रोहिणी (Aldebaran) नक्षत्र (४) के पाँच तारे अंग्रेजी का अक्षर वी V बनाते हैं जिसका मुंह पूरब की ओर है। दक्षिणी भुजा के सिर पर का तारा चमकीला और लाल रंग का है। इस रंग के ही कारण इसे रोहिणी नाम मिला है। अरबी में इसे दरबान कहते हैं क्योंकि रोहिणी शकट का यह योगतारा उसके द्वार पर ड्योढ़ीवान की भाँति है। कृत्तिका और रोहिणी के तारे दूसरी राशि वृष (Taurus) बनाते हैं।

पारसिक के पूरब और रोहिणी के उत्तर-पूरब में प्रजापति (Aurigae) मंडल है जिसमें छः तारे पंचभुज सा बनाते हैं। इसमें प्रमुख तारे प्रजापति, ब्रह्महृदय (Capella) और अग्नि हैं।

रोहिणी के दक्षिण-पूरब में अग्रहायण मंडल या मृगशिरा मंडल (Orion) है। इन नामों से ही अगहन और मार्गशीर्ष मास के नामकरण हुए हैं। इसमें चार चमकीले तारे चौखटा बनाते हैं जिसके बीच में तीन तारे पास पास एक सीध में पूरब पश्चिम की दिशा में है। इन्हें गाँव वाले पहचानते और हिरणी कहते हैं।

अग्रहायण मंडल की कल्पना एक पुरुष के रूप में भी की जा सकती है जिसकी कमर में तीन तारों की पेटी है जिसके बीच से दो तारों की कटार लटकती है। अग्रहायण के पश्चिमी तारे मृगशिरा नक्षत्र (५) के हैं तथा उत्तरी पूर्वी कोने का चमकीला लाल रंग का तारा आर्द्रा नक्षत्र (६) है।

हिरणी के दक्षिण पूरब सीध में आकाश का सब से चमकीला तारा लुब्धक (Sirius) है। हिरणी के पीछे चमकते रहने के कारण ही इसको व्याध नाम मिला है और इसके साथ के तारे को श्वान। लुब्धक के नीचे अगस्त्य (Canopus) तारा है।

अग्रहायण के उत्तर पूरब मिथुन (Gemini) राशि (३) के तारे हैं जिनमें दो-दो तारों के दो खड़े जोड़े अधिक चमकते हैं। मिथुन का अर्थ है जोड़ा। पूरब की ओर के दोनों चमकीले तारे पुनर्वसु (Pollux, Castor) नक्षत्र (७) बनाते हैं जिनसे पांच तारों की झुकी डोरी नीचे को जाती है जिसके सिरे पर चमकीला तारा प्रश्वा (Procyon) है। मिथुन राशि का विस्तार आर्द्रा से पुनर्वसु तक है। मिथुन राशि में आकाश गंगा कैसोपिया से चलती आती है। ब्रह्म हृदय और आर्द्रा उस पर पड़ते हैं। आकाश गंगा दूरस्थित तारा समूह से बनी है जो प्रकाश की धारा के रूप में दिखाई पड़ते हैं।

पुनर्वसु के दक्षिण पूर्व पुष्प (८) नक्षत्र के तीन तारे हैं। यह कर्क (४) राशि (Cancer) में है जिसके पंच तारे प्रश्वा के पूरब में डोरी सी बनाते हैं। बीच के तारे के नीचे एक तारा है। कर्क राशि के अधि-कांश तारे अश्लेषा (९) नक्षत्र (Hydrae) के हैं।

कर्क राशि के पूरब में सिंह राशि (५, Leo) के नौ तारे हैं जो सिंह का आकार बनाते हैं। पश्चिमी छः तारे हँसिया की आकृति के मघा (१०) नक्षत्र के हैं और सिंह का सिर और गरदन बनाते हैं। सिंह का मुख पश्चिम की ओर है। हंसिया के हत्थे का निचला तारा अधिक चमकीला तथा मघा का योग

तारा (Regulus) है। अरबी में मघा को जव्ह कहते हैं जिसका अर्थ पेशानी है। मघा के पूरब के दो तारे जो ऊपर नीचे हैं पूर्वा फाल्गुनी (११) नक्षत्र बनाते हैं। सिंह की पूछ पर उत्तरा फाल्गुनी (१२) नक्षत्र का योग तारा (Denebola) है। सिंह राशि के उत्तर में सप्तर्षि का चौखटा है। दोनों के बीच में पश्चिम हटे हुए सर्प तारे हैं।

सिंह राशि के पूरब में कन्या (६) राशि (Virgo) के पांच तारे कुछ गोलाई के साथ समकोण सा बनाते हैं जिसकी एक भुजा उत्तर की ओर और एक पश्चिम की ओर है। कन्या राशि के तारों के दक्षिण हस्त (१३) नक्षत्र (Corvi) के पांच तारे हैं जिनमें चार एक चौखटा बनाते हैं और पांचवां उसके एक कोने के पास है। इस प्रकार पंजे की आकृति बनती है। कन्या राशि के दक्षिण पूरब में चित्रा (१४) नक्षत्र (Spica) का चमकीला तारा है। इस पर कन्या राशि का अंत और तुला राशि का आरंभ होता है। इसके दूसरी ओर सीध में मेरु का आदि विन्दु है।

तुला (७) राशि (Libra) में विशाखा (१६) नक्षत्र हैं। स्वाती (Arcturus) चित्रा से पूरब अधिक उत्तर में है। यह लाल रंग का चमकीला तारा है अतः सुगमता से पहचाना जा सकता है। चित्रा के और अधिक परब में विशाखा नक्षत्र के चार तारे हैं जिनमें तीन अधिक चमकीले अधिक कोण बनाते हैं और चौथे मंद ज्योति के तारे के साथ तराजू की आकृति बनती है।

विशाखा नक्षत्र के पूरब में वृश्चिक (Scorpio) राशि (८) है। वृश्चिक (बिच्छू) का सिर पश्चिमकी ओर है और डंक पूरब की ओर। बिच्छू तीन नक्षत्रों से बना है। सामने का भाग (मुख और कांटे) अनुराधा (१) नक्षत्र के तीन तारों से बना है जो ऊपर नीचे हैं। बिच्छू की पीठ ज्येष्ठा (१८) नक्षत्र के तीन तारों से बनी है। बीच का तारा लाल रंग का चमकीला ज्येष्ठा का योग तारा (Antares) है। बिच्छू की पूंछ में आठ चमकीले और तीन मन्द ज्योति के पास पास छोटा त्रिकोण बनाते कुल ग्यारह तारे हैं। पूँछ के सिरे का चमकीला तारा मूल (१६) नक्षत्र का योग तारा है। मूल नक्षत्र की गणना अगली राशि धनु (६) में होती है यद्यपि वह वृश्चिक के मूल में स्थित है जिससे उसका नामकरण हुआ है।

धनु राशि (Sagittarius) में कई चमकीले तारे बाण चढ़े धनुष का आकार बनाते हैं। इसमें पूर्वाषाढ़ (२०) और उत्तरा षाढ़ (२१) के नक्षत्र हैं। इनमें से प्रत्येक में दो से चार तक तारे माने गए हैं।

धनु के उत्तर में ध्रुव तारे से आधी दूर पर अभिजित नक्षत्र का योग तारा (Vega) है। वह काफी चमकीला है। इसके पास दक्षिण में दो और मंद ज्योति के तारे है जो अभिजित नक्षत्र (Lyrae) में आते हैं। अभिजित की ओर अजगर तारों का फन है।

अभिजित और स्वाती मंडल (Bootis) के बीच में मुकुट और हरकुलीज़ के तारे हैं। हरकुलीज़ के दक्षिण और वृश्चिक के उत्तर में अर्थात् दोनों में बीच में आफ्यूकस व सर्प तारे हैं।

धनु राशि के पूरब में मकर (१०) राशि (Capricornus) के मंद ज्योति के तारे हैं। मकर का अर्थ मगर या घड़ियाल है। मकर राशि में श्रवण (२२) और धनिष्ठा (२३) नक्षत्र पड़ते हैं। मगर के उत्तर पश्चिम में श्रवण नक्षत्र (Aquilae) के तीन तारे हैं। बीच का योगतारा (Altair) अधिक चमकीला है। श्रवण के पूर्व में धनिष्ठा (Dolphini) नक्षत्र के चार मंद ज्योति के तारे छोटा चौखटा बनाते हैं जिसके एक कोने पर कुछ अन्तर से एक तारा और है।

इस खगोलार्ध में भी अकाश गंगा कैसोपिया से चलती श्रवण को अपने पूर्वी तट पर लेती मूल नक्षत्र तक जाती है। कैसोपिया और श्रवण के बीच में आकाश गंगा में हंस मंडल (Cigni) पड़ता है जिसका प्रमुख तारा राज हंस (Deneb) है।

मकर राशि के पूरब में कुंभ (११) राशि (Aq-

(शेष —१४ वें पेज पर)

काकड़ापाड़ बांध योजना

[श्री गुलजारीलाल नंदा का भाषण]

सूरत से लगभग ५० मील दूर, ताप्ती नदी पर बनाये गये काकड़ापाड़-बांध (वेयर) का (जून १९५३ में) उद्घाटन करते हुए, भारत सरकार के आयोजन तथा सिंचन एवं विद्युत मंत्री श्री गुलजारी लाल नंदा ने कहा था—

यहां काकड़ापाड़-बांध के उद्घाटन समारोह में भाग लेते हुए मुझे बड़ी प्रसन्नता हो रही है। इस शुभ अवसर से ताप्ती नदी घाटी के इस भाग का व्यवस्थित विकास प्रारम्भ हो रहा है। जब मैं इस बांध और इन नहरों की ओर देखता हूँ, तो मैं उन्हें विशेष क्षेत्र में सीमित एक योजनामात्र नहीं मानता, बल्कि उन्हें भारत में समस्त छिड़े हुये कार्यों की उस विशाल योजना का एक अंग मानता हूँ, जो कुछ ही समय बाद गरीबी दूर करके, इस देश से अकाल के भय और उपयोगी वस्तुओं के अभाव को सदा के लिए हटा देगी। हमारे देश की समस्या एक वृहत जन-समूह के लिये भोजन और वस्त्र का समुचित प्रबंध करना है—वह समूह जिसकी जन-संख्या १९५१ में ३६ १ करोड़ थी, और जिसमें प्रतिवर्ष ४१ लाख जनों की वृद्धि होती जा रही है। इसके लिये हमें; अपनी सबसे बड़ी सम्पत्ति अर्थात् कृषि-योग्य भूमि की पैदावार पर निर्भर रहना होता है। पंच-वर्षीय योजना में हिसाब लगाया गया है कि १९५५-५६ में हमारी राष्ट्रीय आय १०,००० करोड़ रुपये के लगभग हो जायगी। और आपको आश्चर्य न होना चाहिये कि इस आय का प्रायः आधा भाग उन उद्यमों से प्राप्त होगा जिनका सम्बन्ध भूमि से है।

देश की कुल ४२२ करोड़ एकड़ कृषि भूमि में से, लगभग २६६ करोड़ भूमि ही प्रति वर्ष बोयी जाती है, और ५ करोड़ एकड़ यानी लगभग १२ प्रतिशत से अधिक के लिये सिंचाई की व्यवस्था नहीं है। आंका गया है कि हमारे देश की नदियों से होकर जो पानी बहता है, उसका केवल ५.६ प्र. श. ही सिंचाई के काम आ पाता है; और बाकी सारा का सारा समुद्र में बह जाता है। जमीन के भीतर के पानी का भी पूरा उपयोग अभी तक नहीं हो पाया है। टेक्निकल सहयोग व्यवस्था (टी० सी० ए०) कार्यक्रम के अन्तर्गत, हमने उत्तर भारत में २,६५० नल-कुएँ बनवाने का काम छेड़ा है। राज्यों की योजनाओं में सम्मिलित २५०० नल-कुओं के काम में भी हाथ लगाया जा चुका है। इनके अलावा, सारे देश में हम ३६० और आजमाइशी नल-कुएँ भी तैयार कराने जा रहे हैं, ताकि विभिन्न क्षेत्रों में जमीन के नीचे के पानी का अन्दाजा लगाया जा सके। इसके अतिरिक्त, बरसाती पानी को तालाबों में जमा रखने के लिये भी बहुत गुंजाइश है। इस प्रकार खेती-योग्य भूमि के एक बहुत बड़े हिस्से की सिंचाई हो सकती है। खेती की पैदावार बढ़ाने में जितनी सहायता सिंचाई से मिल सकती है, उतनी शायद ही किसी दूसरी अकेली चीज से प्राप्त हो सके। सिंचाई की व्यवस्था हो जाने से, उसी जमीन में दूनी फसल पैदा होने लगती है। साथ ही, सिंचाई व्यवस्था के विस्तार से हम नये क्षेत्रों में भी खेती शुरू कर सकते हैं।

सिंचाई से ही, बिजली पैदा करने का भी सम्बद्ध है। यह बिजली खेती से पैदा की गई चीजों की सफाई व तैयारी कच्चे माल के उपयोग के लिये उद्योग-धंधों की उन्नति में सहायता दे सकती है।

इन सारी बातों का खयाल करके ही प्रथम पंच-वर्षीय योजना में सिंचाई व बिजली को सबसे अधिक

प्राथमिकता दी गयी है और योजनाके लिये स्वीकृत २,०६६ करोड़ रुपये के कुल खर्च में से, ६७० करोड़ रु० अर्थात् कुल का लगभग एक-तिहाई, सिंचाई व बिजली के लिए रखा गया गया है। इसमें से ४३० करोड़ रु० सिंचाई तथा बहु-उद्देश्यीय बड़ी योजनाओं के लिये है (जिसमें चम्बल, कोसी, कोयना, रेंड और कृष्णा की ५ नयी योजनाओं का ४० करोड़ रु० भी सम्मिलित हैं) ; १२८ करोड़ और रुपया बिजली-योजनाओं के लिये है; और ११२ करोड़ रु० सिंचाई की छोटी-मोटी योजनाओं के लिये है; सिंचाई के विकास में महत्वपूर्ण स्थान है।

इस प्रकार पंच वर्षीय योजना में १४० सिंचाई वाली तथा बहु-उद्देशीय योजनायें सम्मिलित हैं। इनमें से ८ पूरी हो चुकी हैं और ९२ का काम छिड़ा हुआ है, जिनमें से ५५ इस योजना-अवधि में ही तैयार हो जायंगी। इनमें ९ ऐसी हैं, जो पूरी हो जाने पर, एक-एक लाख एकड़ से अधिक भूमि की सिंचाई कर सकेंगी। उनके नाम, उनका सिंचाई की सामर्थ्य के हिसाब के नीचे दे रहा हूँ :—

सिंचाई सम्बन्धी बड़ी योजनाएं

योजना का नाम	कुल लागत (लाख रु० में)	सिंचाई का लाभ (हजार एकड़ों में)		बिजली का लाभ (हजार किलोवाट में)	
		अंततोगत्वा	१९५५-५६	अंततोगत्वा	१९५५-५६
१—भाकरा-नांगल (पूर्वी पंजाब, पेप्सू तथा राजस्थान)	१६२·९०	३६०४	१३६१	१४४	९६
२—हीराकुड (उड़ीसा)	६२·५९	१७८५	२६१	१२६	४८
३—दामोदर-घाटी योजनायें (पश्चिमी बंगाल व बिहार)	७४·९८	११४१	५९५	२७४	१९४
४—तुंगभद्रा (मद्रास व हैदराबाद)	५१·१८	७००	२६५	६०	३०
५—काकड़ापाड़ (बम्बई)	१२·१६	६५२	३९१	—	—
६—मयूराक्षी (पश्चिमी बंगाल)	१५·५०	६००	६००	४	—
७—निचली भवानी (मद्रास)	९·६१	२०७	१५०	—	—
८—भद्रा योजना (मैसूर)	२०·००	१८०	—	१४	—
९—घटप्रभा-एल० बी० नहर (बम्बई)	५·४५	१००	४५	—	—

मार्च १९५३ तक बड़ी सिंचाई योजनाओं से १४, २०, ००० एकड़ अतिरिक्त भूमि के लिये सिंचाई की व्यवस्था हुई। इसके अतिरिक्त, उपलब्ध जानकारी से पता चलता है कि छोटी छोटी सिंचाई योजनाओं से और भी ४० लाख एकड़ जमीन को सिंचाई के लिये पानी मिलने लगा। इस प्रकार, योजना की कुल अवधि में लगभग २०० लाख एकड़ अतिरिक्त भूमि में सिंचाई की व्यवस्था करने का जो लक्ष्य निर्धारित किया गया है उसमें से लगभग ५५ लाख एकड़ जमीन में सिंचाई होने लगी है। इस समय बड़ी बड़ी योजनाओं का जो काम चल रहा है वह जब पूरा हो जायगा तो और भी ८० लाख एकड़ जमीन की सिंचाई के लिये पानी मिलने लग जायगा।

अब मैं संक्षेप में यह बता देना चाहता हूँ कि अन्न और बिजली पैदा करने और लोगों को काम दिलाने में इन सब का कितना महत्व है। जिस ५५ लाख एकड़ जमीन में अबतक सिंचाई की व्यवस्था हो चुकी है उससे १० लाख टन से भी अधिक अन्न की उपज की वृद्धि हुई है। केवल सिंचाई-व्यवस्था के कारण ही १९५५-५६ तक लगभग ४० लाख टन अतिरिक्त अनाज की उपज होने लगेगी। इस तरह पंच वर्षीय योजना में सिंचाई, भूमि-सुधार, सुधरे बीजों, खादों और रासायनिक खादों के उपयोग संबंधी विभिन्न योजनाओं के अतिरिक्त उत्पादन का जो लक्ष्य निर्धारित किया गया है उसके लगभग आधे की पूर्ति तो केवल सिंचाई योजनाओं से ही हो जायगी।

पंच वर्षीय योजना में बिजली पैदा करने की जो ९६ योजनायें सम्मिलित की गयी हैं उनमें ८५ का काम चल रहा है। १३ पूरी हो गयी हैं और १९५५-५६ तक १३ और पूरी जाएंगी। योजना में कुल १०, ८२,००० किलोवाट अतिरिक्त बिजली पैदा करने का लक्ष्य है। जिसमें से १९५१-५३ में ३,१५,-००० किलोवाट बिजली तैयार करने की व्यवस्था हो गयी।

देश में इस समय बढ़ती हुई बेरोजगारी को देखते हुए सिंचाई योजनाओं का बहुत महत्व है। अनुमान है कि योजना की अवधि में सिंचाई और बिजली योजनाओं के निर्माण-कार्य पर जो खर्च होगा उससे प्रतिवर्ष २½ लाख आदमियों को नौकरियां मिलेंगी। भारत में विशेषकर गांवों में, बेकारी की अपेक्षा काम की कमी की समस्या अधिक जटिल है। सिंचाई व्यवस्था के कारण खेती का काम बढ़ने के अतिरिक्त नौकरियों के अवसर निकल सकेंगे। अनुमान है कि योजना अवधि के अंत तक २०० लाख एकड़ अतिरिक्त भूमि में सिंचाई की व्यवस्था हो जाने पर प्रति वर्ष २० लाख से अधिक लोगों को काम मिल सकेगा।

अब तक मैंने पंच वर्षीय योजनाओं के अंतर्गत विभिन्न योजनाओं का ब्यौरा दिया है। कमीशन का कहना है कि राष्ट्र के सम्मुख लक्ष्य यह होना चाहिये कि १५ से २० साल की अवधि में सिंचाई की भूमि का क्षेत्रफल दुगना हो जाय। इस समय देश भर में सिंचाई और बिजली की जो नई योजनाएँ चल रही हैं अथवा जिनके संबंध में छान बीन हो रही है या जो विचाराधीन हैं, उनसे पता चलता है कि उन सबको पूरा करने पर लगभग २,००० करोड़ रु० खर्च होगा और उनसे ४०० से ४५० लाख एकड़ अतिरिक्त भूमि में सिंचाई व्यवस्था हो सकेगी। मुझे विश्वास हो गया है कि इतने बड़े पैमाने पर कार्यक्रम को क्रियान्वित करके ही हम देश में रहन सहन के स्तर को ऊँचा उठा सकते हैं। इसके लिये महान राष्ट्रीय प्रयत्न की आवश्यकता होगी, जो निश्चय ही हमारे लिये असाध्य नहीं है। आज जिस योजना का उद्घाटन हो रहा है उसके महत्व को हमें इसी दृष्टि कोण से आंकना है।

जिस ताप्ती नदी के किनारे हम खड़े हैं; उसके कांठे में सिंचाई के लिये बहुत गुञ्जाइश है। २६,००० वर्ग मील भूमि का पानी बहकर इस नदी में आता है और काकड़ापार में पानी का बहाव १३.५ लाख घन फुट प्रति सेकेंड है। इसके कांठे में वर्षा काफी

होती है मगर सब जगह पर समान नहीं। अतः नहर के पानी से आवश्यकता के समय सिंचाई करने से यहाँ बड़े क्षेत्र में बढ़िया किस्म का चावल उपजाया जा सकता है। चावल, ज्वार, कपास की उपज काफी बढ़ायी जा सकती है। वर्षा ऋतु के बाद यदि सिंचाई के लिए समय पर काफी पानी मिल जाय तो कपास की उपज भी दुगनी तिगनी बढ़ सकती है। किन्तु सिंचाई की इतनी गुंजाइश और उससे इतने लाभ की सम्भावना होते हुये भी ताप्ती के पानी को संचित करने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया सिवा गिरना में एक छोटा बांध और खान देश में कुछ छोटे-छोटे बंधेरे बनाने के इनमें नदी के जल का केवल १ प्र० श० संचित करके सिंचाई के काम में लिया जाता है। १९४६ में बम्बई सरकार ने केन्द्रीय जल एवं विद्युत कमीशन से नर्मदा और ताप्ती की बाढ़ों की रोक-थाम करने और उनसे सिंचाई की योजना बनाने के लिए कहा था। ताप्ती नदी के कांठे की व्योरे वार पड़ताल करने पर पता लगा कि योजना और विकास के लिए सारी घाटी को तीन भागों में बाँटा जा सकता है और इनके अलग अलग विकास से पूरी घाटी के विकास में कोई बाधा नहीं होगी। काकड़ापार बांध के लिये जो स्थान चुना गया है उसमें कुछ ऐसी अच्छाइयाँ हैं जो अन्यत्र दुर्लभ थीं। यह ऐसे स्थान पर है जहाँ नदी पहाड़ी और जंगली प्रदेश से निकल कर मैदान में आती है। दूसरे, सूरत से ५० मील ऊपर की ओर होने के कारण यहाँ से सारे जिले की सिंचाई हो सकती है। बाँध की नींव तो नदी की लायी मिट्टी की है।

बाँध से नदी के दोनों किनारों की नहरों में पानी जायगा। दोनों तरफ के कुल ८,००,००० एकड़ क्षेत्र में से हर साल ५,३०,००० एकड़ क्षेत्र की सिंचाई हो सकेगी। इस प्रकार धान की खेती का क्षेत्र तो बढ़ेगा ही साथ ही गेहूँ भी काफी क्षेत्र में बोया जायगा। सिंचाई की पूरी व्यवस्था हो जाने पर १,६०,००० टन अन्न और १६,००० गाँठ कपास पैदा होगी। सिंचाई होने पर इस जमीन में लम्बे रेशे वाली कपास भी पैदा होने लगेगी जिसके लिये भारत को मिस्र आदि विदेशों के सामने हाथ फैलाना पड़ता है।

इस योजना से होने वाले लाभ की पहली किस्त लोगों को उस दिन मिलेगी जिस दिन चलथान शाखा में पानी छोड़ा जायगा। अगले साल के मध्य तक मिंढोला और पूरना नदियों के बीच के विशाल क्षेत्र में भी सिंचाई की सुविधायें हो जायेंगी और १९५५ के जून तक इस योजना की बाकी नहरें भी पूरी हो जायेंगी। सब मुख्य नहरों, शाखाओं, राजबाहों और नालियों की कुल लम्बाई ८५० मील होगी।

काकड़ापाड़ बांध और नहरों के बन जाने पर ताप्ती के कांठे के निचले भाग के विकास का पहला अध्याय पूरा हो जायगा। अगले अध्याय में १७ मील ऊपरी की ओर उकाई में एक बांध और नहरें तथा बिजली बनाने की योजना है। इस कार्य की पड़ताल अभी जारी है और विशेषज्ञों की एक समिति पूरी योजना की जाँच करेगी। इस प्रकार जो जल भंडार तैयार होगा उससे ऐसे क्षेत्रों की सिंचाई हो सकती है जो काकड़ापाड़ से निकलने वाली नहरों से नहीं की जा सकती। ऐसा क्षेत्र लगभग ५०,००० एकड़ होगा। इसके अतिरिक्त एक विशाल नहर निकालने से ५, १६, ००० एकड़ जमीन को लाभ पहुँच सकता है जिसमें से हर साल ४, ७६, ००० एकड़ की सिंचाई की जा सकती है। इसके अतिरिक्त योजना के पूरे हो जाने पर २, २५, ००० किलोवाट बिजली पैदा होगी जिससे इस प्रदेश की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकता पूरी हो सकेगी और यहाँ का आर्थिक विकास होगा।

सिंचाई और बिजली की इन सुविधाओं के कारण गुजरात भारत का खलिहान और साथ ही एक विशाल उद्योग केन्द्र बन सकता है। गुजरात की भूमि उपजाऊ तथा किसान मेहनती और उद्योगी हैं और न यहाँ के लोगों में बुद्धि या पुरुषार्थ की ही कमी है। इन नये साधनों के उपलब्ध होने पर वे इस प्रदेश की

तथा सारे देश की समृद्धि में महान् योग दे सकेंगे।

मैं उन इंजीनियरों और अनेक हुनर जानने वाले बहुत से कार्यकर्त्ताओं की प्रशंसा में भी दो चार शब्द कहना चाहता हूँ जिन्होंने कागज़ी योजनाओं को व्यावहारिक रूप प्रदान किया है। हमारे बहुत से इंजीनियर निर्माण कार्य में रात दिन एक कर रहे हैं। उनके हाथ में इस समय बड़े भारी काम हैं और कठिनाइयाँ भी उनके सामने अनेक हैं। पर इससे वे ऐसा अनुभव प्राप्त कर रहे हैं जिससे आने वाले समय में देश को लाभ पहुँचेगा।

इंजीनियरों से मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध है और इस लिए मैं उन्हें कुछ सलाह भी दे सकता हूँ। समृद्ध भारत के निर्माण में इंजीनियरों को बहुत कुछ करना है और इस लिए उनका उत्तरदायित्व भी बहुत है। उनमें बुद्धि भी है और कार्यक्षमता भी। वे बहुत कुछ कर सकते हैं और यह करने के लिए उन्हें अपनी कार्य शक्ति बढ़ानी होगी। खास कर उन्हें कम से कम खर्च में अधिक से अधिक काम करने का प्रयत्न करना चाहिये। खर्च बचाने की ओर ध्यान देना देश की सच्ची सेवा होगी। इस गरीब देश के साधनों का एक बड़ा भाग इंजीनियरों को सौंप दिया गया है। अकुशलता, भ्रष्टाचार और बरबादी से देश की गरीब जनता पर और बोझ पड़ेगा और जो इस बरबादी को होने देते हैं वे जनता के प्रति वफ़ादार नहीं कहे जा सकते।

अनुमान लगाने और हिसाब-किताब करने में इंजीनियरों को अधिक सावधान रहना चाहिये और अनुशासन में रहना चाहिये। उनकी तरफ से यह कहा जाता है कि उन्हें लक्ष्य प्राप्ति के लिये तेजी से काम करने को कहा जाता है और प्रशासनिक विलम्ब के कारण सब तरफ से उनके काम में बाधा उपस्थित होती है। मैं उन्हें विश्वास दिला सकता हूँ कि ऐसे उपयुक्त तरीके बनाये और अपनाये जा रहे हैं जिनसे हिसाब-किताब ठीक रहेगा और साथ ही काम भी तेजी से चलेगा। हर स्थिति में, इंजीनियरों का यही प्रयत्न होना चाहिये कि जो लोग वित्तीय और हिसाब-किताब के मामलों के लिए उत्तरदायी हैं वे उनके हिसाब-किताब से पूरी तरह संतुष्ट हों।

हमारी बड़ी-बड़ी योजनाओं में तेजी से प्रगति करने के लिये उत्तरोत्तर मनुष्यों और मशीनों का सम्मिलित काम बढ़ रहा है। मशीनों पर भारी खर्च पड़ता है, इस लिये सिंचाई और बिजली के कार्य-क्रम की सफलता के लिए उन मशीनों की देखभाल और रख-रखाव का विशेष महत्व है। जिस सीमा तक इंजीनियरों को उन मशीनों की जानकारी होगी और जिस सीमा तक वे उनका उत्तमोत्तम उपयोग करना सिखा सकेंगे उसी सीमा तक उनके संचालन का खर्च कम पड़ेगा। इसके लिये शारीरिक परिश्रम के प्रति दृष्टिकोण में कुछ परिवर्तन करना होगा जो इंजीनियरों और कारीगरों दोनों के लिये आवश्यक है।

पहले सिंचाई और बिजली योजनाओं के निर्माण कार्य में लोगों का पर्याप्त सहयोग प्राप्त नहीं था। लेकिन देश भर में आजकल जो योजनायें चल रही हैं वे उस नव-भारत की प्रतीक हैं, जिसके निर्माण में हम संलग्न हैं। जिन इलाकों में इन योजनाओं से फायदा पहुँचेगा, यदि वहाँ के लोग अपना ध्यान और शक्ति इस ओर नहीं लगायेंगे तो हमारे प्रयत्नों के वास्तविक उद्देश्य की पूर्ति पूरी तरह से नहीं हो पायेगी। इसी कारण से और साथ ही बचत करने के उद्देश्य से पंच वर्षीय योजना के अंतर्गत नहरें बनाने और अन्य सम्बद्ध कार्य करने के लिये गाँवों में सहकारिता समितियाँ बनाने पर जोर दिया गया है। लेकिन इस दिशा में पर्याप्त काम नहीं हो रहा है। इसलिये, मैं इस बात पर जोर देकर कहना चाहता हूँ कि इंजीनियरों की अधिकाधिक सामूहिक प्रयत्नों की भावना का विकास करना चाहिये ताकि लोगों की दृष्टि में उनके काम का महत्व और भी बढ़ जाय।

किसी भी बड़ी योजना में भौतिक सफलता निस्सं-देह महत्वपूर्ण है, किन्तु इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि हमारे इंजीनियरों, कर्मचारियों तथा साधारण नागरिकों का इस कार्य के प्रति क्या दृष्टि-कोण है। यह दृष्टिकोण प्रेरक होना चाहिये। इसी से हमारा कार्यक्रम राष्ट्रीय विकास का कार्यक्रम बन सकता है और इसका महत्व भौतिक लाभ की अपेक्षा कहीं अधिक महत्वपूर्ण है।

वैज्ञानिक समाचार

केन्द्रीय भवन-निर्माणशाला

अन्य राष्ट्रीय 'शालाओं' की ही भांति, भवन-निर्माण गवेषणा-शाला का काम भी, उपयुक्त इमारत न होने के कारण रुका नहीं रहा, बल्कि पहले से ही (१९४७ से) चालू रहा है। नयी इमारत का उद्घाटन शिलान्यास, १९५१ में, प्राकृतिक साधन एवं वैज्ञानिक गवेषणा के तत्कालीन मंत्री श्री श्रीप्रकाश द्वारा किया गया था। उसका उद्घाटन इस वर्ष हुआ।

भवन-निर्माण शाला की इमारत; उत्तर प्रदेशीय सरकार तथा रुड़की विश्वविद्यालय से पट्टे पर प्राप्त १० एकड़ जमीन के एक टुकड़े पर बनायी गयी है, और 'शाला' के अधिक विस्तार के लिए ५७ एकड़ और भी जमीन प्राप्त की जा चुकी है।

निर्माण कला भारत की एक परम्परागत वस्तु है। पुराणों में भी हमें भव्य भवनों का वर्णन मिलता है। बढ़ई, राज, आदि की पुराने जमाने से कद्र होती आयी है। किन्तु जहाँ पुराने जमाने में, सुन्दर एवं विशाल भवन, राजा-महाराजाओं और रईसों के प्रेम की वस्तु थे, वहाँ आज भारत के विशाल जन-समूह के लिए समुचित वास-व्यवस्था की चिंता है।

भारत की जन-संख्या में लगभग ६६० लाख परिवार होंगे, किन्तु इनमें से अधिकतर परिवार ऐसे हैं जिनके लिए निवास की बहुत ही अपर्याप्त व्यवस्था है। यूरोप और अमेरिका में भी, विशेष कर महायुद्ध के बाद, निवास-स्थानों की समस्या कठिन हो गयी है। वहाँ इस समस्या को हल करने के लिए गवेषणा-कार्य भी हुआ है, पर उसके परिणाम, भारत के भिन्न जलवायु, रहन-सहन तथा अन्य स्थितियों के कारण इस देश में अधिक लागू नहीं हो सकते।

इसी लिए भारत में पाये जाने वाले इमारती सामान तथा यहाँ की निर्माण-प्रणालियों के संबंध में छान बीन कराने की आवश्यकता महसूस की गयी, और उपर्युक्त शाला इसी की पूर्ति करेगी। पंच-वर्षीय योजना में भी इस प्रकार की आवश्यकता स्वीकार की गयी है। 'शाला' जो प्रणालियां तथा सामान, जाँच-पड़ताल के बाद ठीक बतायेगी, उनका उपयोग विभिन्न सरकारी निमार्ण विभाग, म्युनिसिपल्टियाँ, रेलें, सैनिक इंजीनियरी सेवाएँ, आदि सुविधा पूर्वक कर सकेंगी।

चूंकि भारत प्रधानतः गाँवों का देश है, इसलिए औसत दर्जे के भारतीय का निवास किसी न किसी प्रकार का झोंपड़ा (गाँवों का मकान) ही समझना चाहिये। उक्त शाला पिछले कुछ समय से, इन गाँवों के मकानों के सुधार के लिए काफी छानबीन कर रही है। मिट्टी को पुख्ता बनाने, पानी का असर रोकने की शक्ति बढ़ाने, आदि के सिलसिले में कुछ उपयोगी बातें भी मालूम की गयी हैं।

देश भर में प्रायः ग्रामीण लोग मकान बनाने के लिए मिट्टी का उपयोग करते हैं। देखने में आया है कि स्थान-स्थान की भूमि की निर्माण सम्बन्धी उपयोगिता अलग अलग होती है। भूमि मज़बूत बनाने के लिये सीमेंट, राल, तार आदि रसायन मिलाये जाते हैं। इस तरह की भूमि पर किये गये बड़े बड़े निर्माण कार्यों में से कुछ ये हैं: २½ प्रतिशत सीमेंट डालकर पंजाब में ४ हज़ार मकान बनाये गये, लहरों के प्रवाह से किनारा कटने से बचाने के लिये पंजाब की एक नहर में मिट्टी और सीमेंट मिलाकर मज़बूत की गयी जमीन पर मकान बनाये गये। गाँवों में मकान बनाने के लिये इस तरह की मज़बूत ज़मीन के उपयोग का महत्व इस दृष्टि से है कि इसके कारण गाँव वालों के लिये अपने फालतू समय में अपने मकान बनाना संभव हो जाता है।

चिकनी मिट्टी, तिनके और अन्य कुछ चीज़ों को मिलाकर उनकी ईंटें पाथ ली जाती हैं और फिर उन्हें सुखाकर उनसे दीवारें बनाई जाती हैं। शाला में इस प्रकार की ईंट बनाने के विषय में व्यापक गवेषणा कार्य किया गया है और उसके परिणाम स्वरूप विभिन्न वस्तुएँ मिलाने का अनुपात निर्धारित कर दिया गया है।

भारत में मकान बनाने के लिये प्रायः पक्की ईंटों का सबसे अधिक उपयोग होता है। गंगा-सिंध के मैदान की मिट्टी ईंटें बनाने के लिये बहुत अच्छी साबित हुई है। शाला ने रेत, कीच और मिट्टी का अनुपात निर्धारित करके ईंटों को सिकुड़ने से बचाने की दिशा में बहुत महत्वपूर्ण काम किया है। इस तरीके से ईंटों की मज़बूती भी बढ़ जाती है।

विभिन्न उद्योगों में ऐसी बहुत सी बेकार चीज़ें बचती हैं जो किसी काम नहीं आती और जिनके परिवहन आदि पर ही काफ़ी खर्च बैठ जाता है। केन्द्रीय भवन-निर्माण गवेषणा शाला ने इस तरह की बेकार चीज़ों का उपयोग करने के लिये विशेष जांच की है। सिंदरी के बायलर की राख के विषय में किये गये परीक्षणों से ज्ञात हुआ है कि यह वस्तु उपयोगी हो सकती है। वहाँ जहाँ सीमेंट का कारखाना बन रहा है उसमें लगभग २५ प्रतिशत परिमाण में इस राख का उपयोग करके सीमेंट की बचत की जा सकती है। चीनी और चमड़ा रंगने के कारखानों से चूने की जो कीच निकलती है उसके विषय में किये गये परीक्षणों से ज्ञात हुआ है कि ज़मीन मज़बूत बनाने के लिये इसका उपयोग किया जा सकता है। इसी तरह अन्य कई बेकार चीज़ों के उपयोग की दिशा में भी प्रगति हुई है।

इसके अतिरिक्त यह शाला कंकरीट के मकानों के लिये इस्पात की दुतरफ़ी मुड़ी हुई सलाखें बनाने, 'प्री-स्ट्रेस्ड' और 'प्री-कास्ट' कंकरीट यूनिटों का एक कारखाना बनाने और छतों आदि के लिये कंकरीट की पनालीदार चादरें और अन्य सामग्री बनाने का कार्य कर रही है।

भारतीय तारपीन के तेल की उपयोगिता

भारत में हर साल लगभग ९,१९,००० गैलन तारपीन के तेल का उत्पादन होता है। दूसरे देशों के तारपीन के तेल के मुकाबले भारतीय तेल में 'पाइनीन' तत्व कम और 'केरीन' और 'लांगीफोलीन' तत्व अधिक होते हैं। तारपीन के तेल का औद्योगिक महत्व उसके 'पाइनीन' तत्व के कारण ही होता है, क्योंकि उससे कृत्रिम कपूर बनाया जाता है। अगर भारतीय तेल में से निकलने वाले 'केरीन' और 'लांगीफोलीन' तत्वों की उपयोगिता बढ़ाई जा सके तो इसका महत्व भी बढ़ सकता है।

'केरीन' के 'पैरा साइमीन' निकल सकता है जिसे शृङ्गार की वस्तुएं धातुओं की पालिश, रबड़, तेल और पिपरमेंट, रंग आदि बनाने के काम में लाया जा सकता है। 'केरीन' को अन्य रसायनों के के थोड़े बराबर-बराबर अंशों से मिलाकर रंग, रोगन लाख और प्लास्टिक उद्योगों की उपयोगी चीज़ें बन सकती हैं। पवीन और लांगीफोलीन' से कीटाणु नाशक औषधि भी बनती है।

बेकार चीज़ों से खाद्य; आम की गुठली का उपयोग

(लेखक : श्री एन० डी० केहर)

आज कल मनुष्यों और पशुओं, दोनों के लिए खाद्य की कमी को देखते हुए यह जरूरी है कि यथा सम्भव अन्य साधनों से खाद्य-पदार्थ उपलब्ध करने का प्रयत्न किया जाय। आइजट नगर की भारतीय पशु-चिकित्सा अनुसंधान शालाकी पशु-पोषण शाखा में इस दिशामें महत्वपूर्ण कार्य किया जा रहा है। अनुसंधान करके यह देखा गया है कि बेकार जाने वाली बहुत सी वस्तुएँ पशुओं के लिये पूरक खाद्य के रूप में काम में आ सकती हैं। आम की गुठली की गिरी भी एक ऐसी ही चीज़ है।

आम की गुठली आम तौर पर बेकार समझकर फेंक दी जाती है। विश्लेषण करने पर पता लगा है

कि इसकी गिरी में काफी मात्रा में प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट होते हैं। प्रोटीन में तो यह मक्का, जौ, जई, बाजरा और ज्वार जैसे अनाजों का मुकाबला करती है।

गुठली की गिरी को सुखा कर और पीसकर रख लेना चाहिये, पशुओं को खली या दाना दिया जाता है उसमें इस चूरे को भी पानी से गीला करके थोड़ी मात्रा में मिला देना चाहिये। धीरे धीरे जब यह पशुओं के मुंह लग जाय तो इसकी मिकदार २० से २५ प्रतिशत तक बढ़ाई जा सकती है।

प्रयोगों से ज्ञात हुआ है कि पशु इसके स्वाद को पसंद करते हैं और इससे उनका स्वास्थ्य और वज़न बढ़ता है। छोटे-बड़े और दुधारू पशुओं को भी इससे फायदा होता है। १०० मन सूखी गिरी में जितना प्रोटीन होता है उतना ही १२० मन बाजरे या ८४ मन जौ या ८४ मन ज्वार या १०५ मन मक्का अथवा ७९ मन जई में पाया जाता है।

चूहों पर प्रयोग—चूहों को गेहूँ या मकई के आटे की जगह आम की गुठली की गिरी का आटा खिला कर भी कुछ प्रयोग किये गये। कुटी हुई गिरी को १५ मिनट तक उबाल कर उसमें से टेनिक एसिड निकाल दिया गया और फिर ताज़े पानी से उसे दो बार धो लिया गया। जब आम की गिरी का आटा और गेहूँ का आटा बराबर बराबर मात्रा में चूहों को तीन पुश्तों से भी अधिक समय तक खिलाया गया तो यह देखा गया कि उनकी बढ़त और प्रजनन-शक्ति में कोई अंतर नहीं पड़ा। बल्कि, आम की गिरी खाने वाले चूहों में विटामिन ए के तत्व अधिक मात्रा में थे जिसके कारण उनमें रोग-निरोधन की शक्ति ज्यादा थी।

चूहों पर किये गये प्रयोगों की सफलता को देखते हुए यह भी कहा जा सकता है कि मनुष्यों की खुराक में भी आम की गिरी का उपयोग किया जा सकता है और गेहूँ या किसी दूसरे अनाज के आटे में गिरी का ५ प्रतिशत आटा मिला कर खाया जा सकता है। देखा गया है कि १० महीने तक आम की गुठली का संग्रह रखने पर भी उसमें कोई खराबी नहीं आती।

पशुओं पर प्रयोग—प्रयोगशाला के अनुसंधान का ज्ञान किसान तक पहुँचाने के लिये, प्रयोगशाला से लगभग दो मील दूर एक गाँव में जाकर भी प्रयोग किये गये। अलग अलग लोगों की दूध देने वाली भैंसों, बैलों और बछड़ों को तीन दलों में बाँट दिया गया। इन पशुओं को जो दाना-चारा दिया गया उसमें २५ प्रतिशत की गुठली की गिरी थी। चार महीने तक यही खुराक जारी रखने के बाद देखा गया कि सभी दलों के पशुओं का स्वास्थ्य ठीक रहा और बछड़ों की बढ़ती संतोषजनक हुई। अब इस गाँव के लोग पशुओं के खाद्य के रूप में आम की गुठली की गिरी की उपयोगिता को जान गये हैं और आम के मौसमों में उत्साह पूर्वक आम की गुठलियाँ जमा करने में लगे हुए हैं। इनकी गिरी वे अपने पशुओं को खिलाएंगे।

आज कल जो आम की गुठलियाँ बेकार जाती हैं, अगर उनको इकट्ठा किया जा सके तो लगभग १५ लाख मन गिरी सुलभ हो सकेगी। इस गिरी का खाद्य के रूप में उचित उपयोग करके प्रति वर्ष राष्ट्र के लगभग १५ करोड़ रु० बचाये जा सकते हैं।

(इंडियन फार्मिंग के सौजन्य से)

पोहली घास खेती का शत्रु है

पोहली नाम के छोटे, कंटीले तथा पीले फूलों वाले पौधे का पंजाब में विधान द्वारा बहिष्कार किया गया है। यह उन छः प्रकार की जंगली घासों में से एक है जिनको नष्ट करने के लिये भारतीय कृषि गवेषणा परिषद ने एक राष्ट्रीय योजना बनाई है।

पोहली बड़ी खतरनाक किस्म की जंगली घास है जो केवल पंजाब में ही नहीं वरन् उत्तर भारत के बहुत से क्षेत्रों में पाई जाती है। यह मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, बिहार तथा हैदराबाद में बोई जाने वाली कुसुम घास की किस्म की होती है। कुसुम से खाद्य तेल निकाला जाता है। कृषि गवेषणा शाला में प्रयोगों द्वारा सुधरी किस्म की तथा बिना कांटे की कुसुम

घास की खोज की गयी है, जो पशुओं को चारे के रूप में खिलाने के लिए उत्तम है। कुसुम के फूल से रंग भी निकलता है।

जंगली घास से फसलों, पशुओं तथा मनुष्यों को बहुत हानि पहुँचती है। कभी कभी इसके कारण बड़ी घटिया किस्म की फसल होती है और कभी उपज में कड़ुवाहट आ जाती है। ऐसा भी देखने में आया है कि जंगली घास चरने पर गउओं के दूध पर दुष्प्रभाव पड़ा है।

जंगली घास चरने वाली भेड़ बकरियों के शरीर से घास लग जाने के कारण उनकी ऊन भी घटिया हो जाती है। कुछ जंगली घासें विषैली होने के कारण पशुओं के लिए घातक भी हो जाती हैं। कई अवसरों पर मनुष्यों के स्वास्थ्य पर भी इसका दुष्प्रभाव पड़ा है। अमेरिका में शरद् काल में होने वाला 'हे फीवर' इसी प्रकार का रोग है।

अन्य देशों के समान भारत में भी जंगली घास से फसलों को काफी हानि पहुँचती है। यहाँ इसके कारण खेती का खर्च बढ़ जाता है और एक-तिहाई फसल की हानि होती है।

पंजाब में पोहली इतनी खतरनाक किस्म की जंगली घास मानी जाती है कि एक 'जंगली घास अधिनियम' (वीड एक्ट) के अनुसार कृषकों का यह कर्तव्य है कि वे अपने खेतों को इससे मुक्त रखें। यदि वे स्वयं ऐसा नहीं करते तो सरकारी रूप से उसे नष्ट कर दिया जाता है और खर्च कृषकों से वसूल कर लिया जाता है।

भारतीय कृषि गवेषणा शाला, पूसा ने १९ ग्रामों के पर्यवेक्षण से पता लगाया कि वहाँ पोहली घास बहुत बुरी तरह से फैली हुई है। अतएव, वहाँ एक पोहली नाशक आंदोलन आरम्भ किया गया जिसमें शाला की भूमि-सेना इकाइयों ने कार्य किया। दिल्ली के समीप नांगलोई तथा कुमरुद्दीन नगर में २५-२५ एकड़ भूमि में यह कार्य किया गया।

शाला की ओर से ग्रामीणों में हिन्दी के इश्तहार भी बांटे गये जिनके द्वारा ग्रामवासियों को पोहली घास की बुराइयों से परिचित कराया गया।

लोहे और इस्पात का शोधन भूरे रंग के कोयले का प्रयोग

नयी दिल्ली, २३ मई, १९५३

मद्रास सरकार की ओर से की गयी खोज से पता लगा है कि लोहा और इस्पात के शोधन में भूरे रंग का कोयला (लिगनाइट) काम आ सकता है।

आजकल बढ़िया किस्म का कोयला ही लोहा और इस्पात तैयार करने के काम आता है, जो भारत में बहुत कम परिमाण में और अधिकांश केवल बिहार में ही मिलता है। कच्चा लोहा तो भारत के बहुत से स्थानों में मिलता है मगर साथ ही वहाँ शोधन के लिए बढ़िया किस्म का कोयला नहीं मिलता। इस खोज से मद्रास राज्य को काफी लाभ हो सकता है क्योंकि वहाँ लोहा और भूरे रंग का यह कोयला पास पास ही मिलते हैं। खोज से इस बात का भी भी पता लगा है कि धातु शोधन में कोयले की उपयोगिता इस बात पर निर्भर है कि कोयले को पहले कैसे सुखाया गया है। भाप से सुखाया हुआ कोयला प्राकृत कोयले से अधिक उपयोगी रहता है। भट्टी में सुखाया हुआ कोयला भी भाप से सुखाये हुये के समान ही उपयोगी पाया गया है।

नेत्रहीनों द्वारा बिना नेत्र देखने का अभ्यास

देहरादून (उत्तरप्रदेश) के निकट नेत्रविहीन प्रौढ़ व्यक्तियों को व्यवसाय संबंधी प्रशिक्षण देने वाले केन्द्र में इस समय १३९ ऐसे व्यक्ति हैं जो पूरी तरह अथवा करीब-करीब अन्धे हैं। किन्तु अपनी इस असमर्थता के कारण वे न तो दुःखी हैं और न खिन्नता के अथाह सागर में डूब कर हिम्मत ही हार बैठे हैं। इन लोगों के पास

इतना अधिक काम है कि उन्हें अन्धेपन के कारण अपने भाग्य को कोसने तक का अवसर नहीं होता।

यदि कोई व्यक्ति इस संस्था को देखे तो उसे मालूम होगा कि अन्धे व्यक्ति असहाय नहीं हैं। वे अपनी देखभाल स्वयं कर सकते हैं। वे यह नहीं चाहते कि कोई व्यक्ति उन पर तरस खाये। उन्हें सिर्फ थोड़ा-सा प्रोत्साहन चाहिये—ठीक वैसे ही जैसे अन्य किसी भी व्यक्ति को उसकी आवश्यकता होती है।

यही चीज है जो उन्हें इस संख्या में प्राप्त होती है। यह संस्था इस देश में अपने ढंग की सर्वोत्तम संस्थाओं में से है और केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय इस पर प्रतिवर्ष २॥ लाख रुपया व्यय कर रहा है।

इस केन्द्र के निवासियों को--जो भारत के सभी २८ राज्यों से आये हैं और जो १८ से लेकर ५५ वर्ष तक की आयु के हैं--कपड़ा बुनने, बेंत बनने और बेंत की बस्तुएँ तैयार करने, कढ़ाई का काम करने, थैले बनाने और मुर्गी-पालन आदि का काम सिखाया जाता है। निःशुल्क प्रशिक्षण देने के अलावा, यह संस्था इन लोगों के लिए निवास, भोजन, वस्त्र तथा अन्य सुख-सुविधाओं की भी मुफ्त व्यवस्था करती है।

भारत सरकार ने १ जनवरी, १९५० को इस संस्था को अपने अधिकार में लिया था। तब से अब तक लगभग ८० व्यक्ति २-वर्षीय प्रशिक्षण पूरा कर चुके हैं।

भारत में नेत्रविहीन व्यक्तियों के कल्याण का संघटित प्रयत्न अपेक्षाकृत बाद में शुरू किया गया। भारत का सबसे पहला अन्धविद्यालय १८८७ में अमृतसर में स्थापित किया गया था। बाद में यही विद्यालय स्थानान्तरित होकर देहरादून आ गया। इस समय भारत में लगभग ५० ऐसी संस्थाएँ है जहाँ, लगभग १५००० नेत्रविहीन बच्चे तथा प्रौढ़ व्यक्ति शिक्षा तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं। १९५० से पूर्व देहरादून की संस्था का प्रबंध सेंट डन्स्टन नामक संघटन के साथ में था और तब यहाँ बाद में अन्धे हो जाने वाले व्यक्तियों को व्यावसायिक प्रशिक्षण दिया जाता था।

इस संस्था का मुख्यतम कार्य 'छात्रों' को यह बताना है कि नेत्रहीनता उन्हें अन्य लोगों के समान सामान्य जीवन बिताने में बाधक नहीं हो सकती। अब उन्हें छड़ी लेकर चलने की आवश्यकता नहीं है। छात्रों को आँखों का काम कानों से लेना सिखाया जाता है।

अन्धों के बारे में एक सबसे जटिल समस्या यह है कि उन्हें सामान्य उद्योग-धंधों में कैसे खपाया जाये। फलतः इस संस्था ने अपने यहाँ एक कारखाना खोल दिया है जहाँ अनेक अन्धों को नौकरी मिल गई है।

सभी छात्रों के लिये ब्रेल पद्धति द्वारा पढ़ना-लिखना सीखना अत्यन्त आवश्यक है। पहले इन्हें हाथ से ब्रेल लिपि में लिखना सिखाया जाता है और बाद में वे ब्रेल टाइपराइटर पर काम करना सीखते हैं।

ब्रेल लिपि में मुद्रित पुस्तकें पढ़ने से नेत्रविहीन व्यक्तियों के लिये भी साहित्य का अध्ययन करना सम्भव हो गया है। वे लोग ब्रेल लिपि में छपी रीडर्स 'डाइजेस्ट' नामक पत्रिका विशेष रुचि से पढ़ते हैं। आज इस केन्द्र के अनेक निवासी ब्रेल लिपि में छपी पुस्तकें उतनी ही तेजी से पढ़ सकते हैं, जितनी तेजी से आँखों वाला व्यक्ति अन्य सामान्य पुस्तक पढ़ता है।

संस्था के अधीक्षक कप्तान ए० एच० मोर्टिनर का विश्वास है कि ज्यो-ज्यों अधिकाधिक लोग यह जान जायेंगे कि नेत्रविहीन व्यक्ति क्या काम कर सकते हैं, त्यों-त्यों अन्धों को अधिकाधिक संख्या में उन काम पर लगाना संभव हो जायेगा, जहाँ वे आँखों वाले व्यक्तियों के साथ मिल कर सफलतापूर्वक काम कर सकते हैं।

ब्रेल प्रणाली का पहला छापाखाना

केन्द्र के पास ही भारत का 'सेंट्रल ब्रेल प्रिन्टिंग प्रेस' है। दक्षिण-पूर्वी एशिया में ब्रेल प्रणाली से छपाई का काम करने वाला यह पहला छापाखाना है।

इस छापेखाने की स्थापना अक्तूबर १९५० में हुई थी। तब से अबतक इस मुद्रणालय में 'भारती ब्रेल' में पाँच पुस्तकें छापी जा चुकी हैं। पुस्तकों के नाम हैं: 'बेसिक हिन्दी प्राइमर' (२६ पृष्ठ) 'रीडिंग कोर्स इन हिन्दी' (४७ पृष्ठ), 'बेसिक हिन्दी रीडर' २ (४३ पृष्ठ), 'भारत में ५० वर्षों में अंधों के लिये क्या क्या कार्य हुआ' (४६ पृष्ठ), हिन्दी पत्रिका 'दीपावली' (४४ पृष्ठ)।

इस छापेखाने का विस्तार किया जा रहा है। इस समय छापेखाने में ३ मशीनें हैं। प्रेस के अधीक्षक श्री भट्टाचार्य का कथन है कि अगले ३ महीनों में जब इस छापेखाने में इसी प्रकार की ७ और मशीनें लग जायेंगी तो १०-१५ दिन में ही ब्रेल प्रणाली की १०० पृष्ठों की पुस्तक छप कर तैयार हो जाया करेगी।

श्री भट्टाचार्य ने १९२९ में नई दिल्ली में 'लेडी नौइस डैफ एण्ड डम स्कूल' की स्थापना की थी। १९४९ में उन्होंने अमेरिका जाकर ब्रेल की मुद्रण-विद्या का विशेष रूप से अध्ययन किया था।

समालोचना

उद्योग-व्यापार पत्रिका—मासिक वार्षिक मूल्य ६) एक प्रति आठ आना पृष्ठ सं० ९४ *प्रकाशक व्यापार तथा उद्योग मंत्रालय।*

हर्ष का विषय है कि भारत सरकार के व्यापार तथा उद्योग मंत्रालय ने उद्योग-व्यापार पत्रिका का प्रकाशन हिन्दी में प्रारम्भ किया है जिसका पहला अंक हमारे सामने है। इसके द्वारा उद्योग व्यापार सम्बन्धी ज्ञान तथा आंकड़े जन साधारण तक अपनी राष्ट्र भाषा में पहुँच सकेंगे और जन साधारण के इस लाभ के साथ साथ हमारे देश के विकास तथा उन्नति में भी इससे बड़ी सहायता होगी इसके साथ-साथ इसमें सरकार की आर्थिक नीति की व्याख्या भी रहेगी।

इस अंक में 'खादी उद्योग' कपड़ा बनाने में आश्चर्यजनक प्रगति 'लोहा इस्पात उद्योग' आदि लेखों के साथ-साथ विशेष जानकारी एवं अनेक उपयोगी सूचनायें तथा आंकड़े हैं।

यह पत्रिका अपने ढंग की निराली है। यह स्थायी उपयोग की सिद्ध होगी हम इसका सहर्ष स्वागत करते हैं।

किशोर—श्रद्धांक—(जुलाई, अगस्त १९५३)

प्रकाशक—बालशिक्षा समिति, बाकीपुर, पटनदा वार्षिक मूल्य ४) इस विशेषांक का मूल्य १।)

"किशोर" का यह अंक बालशिक्षा समिति, ग्रंथमाला कार्यालय, हिन्दुस्तानी प्रेस आदि के अध्यक्ष तथा इस पत्र के संस्थापक और आद्य-संपादक स्वर्गीय पं० रामदहिन मिश्र की स्मृति में प्रकाशित हुआ है। श्रद्धांक के सम्पादक विहार राज्य के वयोवृद्ध, यशप्राप्त साहित्य-सेवी आचार्य शिवपूजन सहाय तथा श्री रघुवंश पाण्डेय एवं देव कुमार जी मिश्र हैं। किशोर सोलह वर्षों से प्रकाशित हो रहा है यह श्रद्धांक ४था, ५वाँ अंक है प्रस्तुत अंक के लेखकों तथा श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने वाले व्यक्तियों में अनेक विशेष परिचित् है। उनमें कुछ नामों के नाम निम्न हैं:—सर्वश्री छविनाथ पाण्डेय, हंस कुमार तिवारी, भुवनेश्वर नाथ मिश्र, 'माधव' प्रो० जगन्नाथ मिश्र, लल्ली प्रसाद पाण्डेय, गणेश

पाण्डेय, डा० विश्वनाथ प्रसाद, रामवृक्ष 'बेनीपुरी', शान्ति प्रिय द्विवेदी, गदाधर प्रसाद, व्यथित हृदय, शुकदेव दुबे किशोरी दास वाजपेयी, पारसनाथ सिंह, तथा जहूर बख्श, राहुल सांकृत्यायन आदि।

इस श्रद्धांक को पढ़कर हमें १९१३ ई० की ओर विशेष आकृष्ट होना पड़ता है। हिन्दी में प्रकाशन का कार्य जो उस समय तक होता था वह सन्तोषजनक न होने से ही पं० राम दहिन मिश्र ने उत्कृष्ट प्रकाशन का श्री गणेश किया। हिन्दी के उत्कृष्ट साहित्य के प्रकाशकों में उनकी गणना हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर बम्बई के साथ की जा सकती है। मिश्र जी को उत्कृष्ट साहित्य निकालने की इतनी लगन थी कि एक समय तो उनकी आर्थिक शक्ति समाप्तप्राय ही हो गई थी, परन्तु मिश्र जी एक व्यावहारिक व्यक्ति भी थे। उन्होंने सोचा कि कदाचित उनके प्रयत्नों का माप दंड हिन्दी के पाठकों के लिये उस समय तक ग्राह्य नहीं था। इसी कारण स्कूली पुस्तकों को लिख तथा छपा कर उन्होंने अपनी स्थिति सम्भाली। १९१३ में मिश्र जी का पहला प्रकाशन भी 'मेट्रिकुलेशन का इतिहास' इसी प्रकार का था परन्तु हमारे लिये तो यह समय विशेष रूप से इस कारण उल्लेखनीय है कि साहित्य के कुछ पत्रों का भार अपने ऊपर डाल कर मिश्र जी ने पटना में इस समय साहित्य-अभियान सा प्रारम्भ किया। इधर कुछ विज्ञान-प्रेमी विद्वानों तथा विज्ञान-सेवियों ने प्रयाग में विज्ञान पक्ष को बल प्रदान करने के लिये विज्ञान परिषद् की स्थापना की।

मिश्र जी की साहित्यिक सेवाओं में हमें विज्ञान की बात भूली नहीं मिलती। उनका कोई लेख अगस्त १९२० की सरस्वती में 'मेघदूत का विज्ञान' छपा था जिसे, खेद है, हमें कि देखने का अवसर नहीं मिला। घरेलू मुकदमों में फँसे रह कर उसके व्यय के लिये चिन्तित होकर मिश्रजी केवल पचास रुपये प्रति पुस्तक नकद पुरस्कार लेकर कुछ पुस्तकें प्रयाग के लाला रामनारायण लाल को दे दिया करते थे। वह बालमित्र मासिक ग्रंथमाला नाम से निकलती थी उसमें एक पुस्तक 'विज्ञान की सरल बातें' भी थी।

जिस व्यक्ति के परिवार में केवल संस्कृत के अध्ययन, ज्योतिष की परम्परा हो, प्रपितामह कुंवर सिंह के ज्योतिषी रहे हों, पिता डुमरांव के राज ज्योतिषी रहे हैं वह किसी काल में 'विज्ञान' की ओर बहके तो विस्मय पूर्ण है।

धरती के लाल—प्रकाशक—सचिव, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, मानसिंह रोड, नई दिल्ली। विस्तार योजना सम्पादक—देवेन्द्र आनंद, एक वर्ष का चन्दा इस समय केवल ।।) किन्तु पहली जनवरी १९५४ से ।।।) वार्षिक हो जायगा।

यह मासिक पत्र विज्ञान के पृष्ठ के दूने के आकार खुले पत्रों के रूप में आठ पृष्ठ का है। वर्ष १ अंक १ अक्टूबर १९५३का अंक हमारे सम्मुख है। विषय का वर्णन चित्रों के साथ जितने सरल रूप में है तथा चित्र बाहुल्य के साथ दोरङ्गी छपाई है, वह तो बड़ी ही स्पृहणीय वस्तु प्रतीत होती है।

"धरती के लाल" द्वारा कृषि अनुसंधान परिषद विज्ञान का संवाद कृषकों तक पहुँचाने में सफल हो भी इस में तो हमें सन्देह ही नहीं रह जाता किन्तु प्रश्न यह खड़ा हो जाता है कि अन्य विषयों को अन्य पाठकों तक पहुँचाने के लिये क्या किया जाय अपने उत्तम प्रकाशन से यह टेढ़ी समस्या हमारे सामने खड़ी करने के लिये "धरती के लाल" के कार्यकर्ता सचमुच बधाई के पात्र हैं।

—जगपति चतुर्वेदी

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

१—*विज्ञान प्रवेशिका, भाग १*—विज्ञान की प्रारम्भिक बातों की उत्तम पुस्तक—ले० श्रीरामदास गौड़ एम० ए० और प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी; ।=)

२—*चुम्बक*—हाई स्कूल में पढ़ाने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी; मू० ।।।=)

३—*मनोरंजन रसायन*—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम० एस-सी; २)

४—*सूर्य सिद्धान्त*—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान भाष्य'—प्राचीन गणित ज्योतिष सीखने का सब से सुलभ उपाय—ले० श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद; छः भाग मूल्य ८) । इस लेखक को १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है ।

५—*वैज्ञानिक परिमाण*—विज्ञान की विविध शाखाओं की इकाइयों की सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहालकरण सेठी डी० एस-सी०; १)

६—*समीकरण मीमांसा*—गणित के एम० ए० के विद्यार्थियों के पढ़ने योग्य—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १।।) द्वितीय भाग ।।=)

७—*निर्णायक (डिटमिनैंट्स*—गणित के एम० ए० के विद्यार्थियों के पढ़ने योग्य—ले० प्रो० गोपालकृष्ण गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री बी० एस-सी; ।।)

८—*बीज ज्योमिति या भुजयुग्म रेखागणित*—इंटरमीडियेट के गणित के विद्यार्थियों के लिये—ले०—डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी०, १।)

९—*वर्षा और वनस्पति*—लोकप्रिय विवेचन—ले० श्री शंकरराव जोशी; ।=)

१०—*सुवर्णकारी*—ले० श्री० गंगाशंकर पचौली; ।=)

११—*विज्ञान का रजतजयन्ती अंक*—विज्ञान परिषद के २५ वर्ष का इतिहास तथा विशेष लेखों का संग्रह १)

१२—*व्यंग-चित्रण*—(कार्टून बनाने की विद्या)—ले० एल० ए०; डाउस्ट; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी एम० ए०; १७५ पृ० सैकड़ों चित्र, सजिल्द २)

१३—*मिट्टी के बरतन*—चीनी मिट्टी के बरतन कैसे बनते हैं, लोकप्रिय—ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा; १७५ पृष्ठ ११ चित्र; सजिल्द २) (अप्राप्य)

१४—*वायुमंडल*—ऊपरी वायुमंडल का सरल वर्णन—ले०—डाक्टर के० बी० माथुर, सजिल्द, २)

१५—*लकड़ी पर पालिश*—पालिश करने के नवीन और पुराने सभी ढंगों का व्योरेवार वर्णन । ले०-डा० गोरखप्रसाद और श्री रामरतन-भटनागर, एम० ए०, २१८ पृष्ठ, ३ चित्र, सजिल्द; २) (अप्राप्य)

१६—*कलम पेवंद*—लेखक श्री शंकरराव जोशी; २०० पृष्ठ; २० चित्र; मालियों मालिकों और कृषकों के लिये उपयोगी, सजिल्द; २)

१७—*जिल्दसाजी*—इससे सभी जिल्दसाजी सीख सकते हैं, ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम ए० सजिल्द, २)

१८—*तैरना*—तैरना सीखने की रीति अच्छी तरह समझाई गई है । ले०—डा० गोरखप्रसाद, मूल्य १)

१९—*सरल विज्ञान-सागर प्रथम भाग*—सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद । बड़ी सरल और रोचक भाषा में जन्तुओं के विचित्र संसार, पेड़ों पौधों की अचरज-भरी दुनिया सूर्य, चन्द्र, और तारों की जीवन-कथा तथा भारतीय ज्योतिष के संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है । सजिल्द मूल्य ६) (अप्राप्य)

२०—*वायुमण्डल की सूक्ष्म हवाएँ*—ले०—डा० संतप्रसाद टंडन, डी० फिल० मूल्य ।।।)

२१—*खाद्य और स्वास्थ्य*—ले०—डा०—ओंकारनाथ परती, एम० एस-सी०, डी० फिल० मूल्य ।।।)

२२—*फोटोग्राफी*—लेखक श्री डा० गोरख प्रसाद डी० एस-सी० (एडिन), फोटोग्राफी सिद्धान्त और प्रयोग का संक्षिप्त संस्करण, सजिल्द मूल्य ४)

२३—*फल संरक्षण*—फलों की डिब्बाबन्दी, मुरब्बा, जैम, जेली, शरबत, अचार, चटनी, सिरका, आदि बनाने की अपूर्व पुस्तक—ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और श्री वीरेन्द्रनारायण सिंह एम० एस-सी० कृषि-विशारद, सजिल्द मूल्य २।।)

२४—*शिशु पालन*—लेखक श्री मुरलीधर बौड़ाई । गर्भवती स्त्री की प्रसवपूर्व व्यवस्था तथा शिशु की देखभाल, शिशु के स्वास्थ्य तथा माता के आहार-विहार आदि का वैज्ञानिक विवेचन । मूल्य ४)

Approved by the Directors of Education, Uttar Pradesh
and Madhya Pradesh for use in Schools,
Colleges and Libraries

विज्ञान के नियम

१—वार्षिक मूल्य ४) तथा प्रति अंक का ।=) है ।

२—प्रतिमास प्रथम सप्ताह में विज्ञान प्रकाशित होता है।

३—ग्राहक किसी भी मास से बनते हैं ।

४—वार्षिक मूल्य सदा दो एक मास पूर्व अग्रिम भेजने से ।।) वी० पी० व्यय की बचत हो सकती है ।

५—नमूने की प्रति माँगने पर या बिना माँगे भी ज्ञात पतों पर मुफ्त भेजी जाती है।

लेखकों से निवेदन

१—लेख किसी भी विषय के वैज्ञानिक पक्ष पर होना चाहिए ।

२—लेख मनोरञ्जक और सुबोध होना चाहिये ।

३—कागज पर एक ओर ही सुपाठ्य लिखना चहिये।

४—चित्र सदा काली स्याही से बने होने चाहिये। हल्के या अन्यरङ्ग में बने चित्रों का ब्लाक नहीं बन सकता ।

५—लेख भेजने के दो मास पश्चात् भी न छपने पर स्मरण-पत्र अवश्य भेजें ।

विषय-सूची

वार्षिक मूल्य ४) चार रुपया एक प्रति का ।=) छः आना ।

Reg. N0. 372

परिषद् के मुख्य नियम

परिषद् का उद्देश्य

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद् का संगठन

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार सभ्यगण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उप-सभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमन्त्री, दो मन्त्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्य को ६) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ १०० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिए वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशन में उपस्थित रहने का तथा अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित, परिषद् की सब पुस्तकों, पत्रों, तथा विवरणों इत्यादि को बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य वृन्द समझे जायेंगे।

प्रधान संपादक—*डा० हीरालाल निगम*
सहायक संपादक—*श्री जगपति चतुर्वेदी*

हिन्दी साहित्य प्रेस, इलाहाबाद

प्रकाशक—विज्ञान परिषद्, बैंक रोड, इलाहाबाद

प्रो॰ सालिगराम भार्गव स्मृति अंक
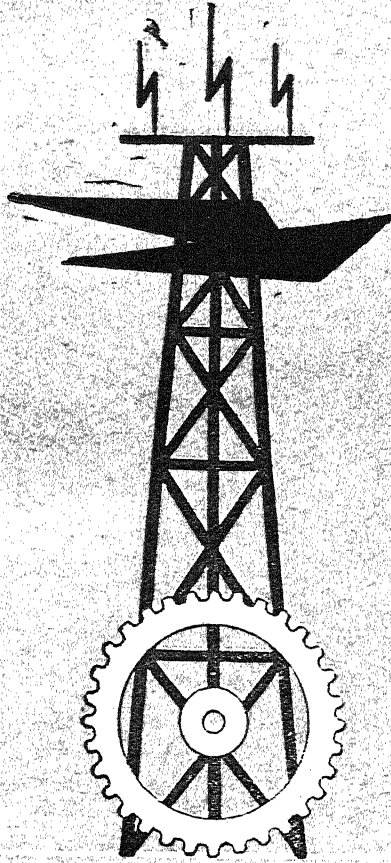
नवम्बर, दिसम्बर (१९५३)
तथा जनवरी १९५४
वृश्चिक, धनु, मकर २०१०

भाग ७८
सं॰ २, ३, ४

वार्षिक मूल्य
चार रुपए

प्रति अंक
छः आने
विशेषांक १)

विज्ञान परिषद् भवन

के लिए अपील

विज्ञान परिषद् एक अखिल भारतीय संस्था है। इसका कार्यालय इलाहाबाद में है। पूज्य पं० मदनमोहन मालवीय की प्रेरणा से इस संस्था की संस्थापना महामहोपाध्याय डा० गंगानाथ झा और उनके साथी अध्यापकों के परिश्रम से सन् १९१३ ई० में हुई। डा० सी० वाई० चिन्तामणि जी के शिक्षा मंत्रित्व काल में इस संस्था को सरकार से सहायता प्राप्त होनी आरम्भ हुई। सन् १९३८ ई० में माननीय श्री सम्पूर्णानन्द के सभापतित्व में इसकी रजत जयन्ती मनाई गई। डा० सुन्दरलाल, डा० सी० वाई० चिन्तामणि, श्रीमती डा० एनीबीसेंट, श्री शिवप्रसाद गुप्त, महामहोपाध्याय डा० गंगानाथ झा तथा डा० गणेश प्रसाद आदि ने इस संस्था के सभापति के आसन को सुशोभित किया है। अब तक भिन्न-भिन्न वैज्ञानिक विषयों पर इस संस्था की ओर से ६५ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इस संस्था की मासिक पत्र 'विज्ञान' सन् १९१५ ई० से प्रकाशित होना आरम्भ हुआ है। इसके बारह सहस्र से अधिक पृष्ठों में प्रचुर वैज्ञानिक सामग्री एकत्रित हो चुकी है।

अब तक परिषद् के पास इसका अपना कोई भवन न था। अतः कार्यसंचालन में बड़ी कठिनाई होती है। यह सूचित करते हुए हम लोगों को प्रसन्नता होती है कि प्रयाग विश्वविद्यालय ने विज्ञान परिषद् के लिए ३४०० गज़ के लगभग म्योर कालेज की भूमि पर बहुत सुन्दर जमीन दी है। इस भूमि पर हम लोग भवन बनाने की योजना कर रहे हैं। इस भवन के निर्माण के लिए दो लाख रुपये की आवश्यकता है। हमें विश्वास है कि जनता की सहायता से यह धन हमें शीघ्र ही प्राप्त हो जायगा।

हमारे पराधीन काल में विज्ञान जन-जीवन तक नहीं आने दिया गया, पर आजकल के जीवन में विज्ञान का स्थान राष्ट्र के प्रत्येक कार्यक्षेत्र में है। आज का जन-जीवन विज्ञान के सहारे के बिना आगे बढ़ ही नहीं सकता अतः विज्ञान परिषद् का उत्तरदायित्व जीवन के किसी भी गम्भीर विभाग की तरह जनता और सरकार दोनों के लिए परम आवश्यक हो गया है। आविष्कारों को तो प्रोत्साहन इसी लिए नहीं मिलता कि उनको समझने और उनकी ओर अधिक से अधिक ध्यान देने की क्षमता हमारे देशवासियों में बढ़ने नहीं दी गई। अतः विज्ञान परिषद् देशवासियों का ध्यान शिक्षण शास्त्र और क्रिया के इस मौलिक उत्तरदायित्व की ओर खींचना चाहती है। यह कम दुःख की बात नहीं है कि हमारे देश में व्यक्तिगत सन्तोष के निरुपयोगी भवन शतशत की संख्या में हों और जनोपयोगी विज्ञान परिषद् का कोई भवन न हो, जिन भवनों को कि कम से कम राज्य राज्य में स्थापित हो जाना चाहिए था। विज्ञान परिषद् इस कार्य को ४० वर्ष पहले प्रारम्भ कर चुकी और हमें आशा करनी चाहिए की कुछ ही मित्रों की कृपा से विज्ञान परिषद् का भवन अवश्य बन जायगा।

स्वर्गवासी महामना पूज्य मालवीय जी, डा० गंगानाथ झा, मौलवी हमीदुद्दीन, प्रो० सालिग राम भार्गव, श्रीराम दास जी गौड़ जैसे इस संस्था के संस्थापकों तथा उन्नायकों की आत्मा को परम शान्ति मिलेगी क्योंकि उनका वैज्ञानिक स्वप्न, इतने वर्षों बाद ही क्यों न हो, एक भवन में स्थापित हो सकेगा।

स्वर्गीय प्रो० सालिगराम भार्गव

[संस्थापक तथा सभापति, विज्ञान परिषद्, प्रयाग तथा भूतपूर्व अध्यक्ष, भौतिक विज्ञान विभाग, प्रयाग वि०वि०]

जन्म—११ नवम्बर १८८८ ई०   मृत्यु-१६ सितम्बर १९५३ ई० प्रातः ९-४५

विज्ञान

प्रोफेसर सालिगराम भार्गव स्मृति अंक

भाग ७८ अंक २, ३, ४

वृश्चिक, धनु तथा मकर २०१०

नवंबर, दिसंबर १९५३ तथा जनवरी (परिशिष्टांक) १९५४

प्रधान सम्पादक—डा० हीरा लाल निगम

सह० सम्पादक—जगपति चतुर्वेदी

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ४) **विज्ञान परिषद्** इस अंक का मूल्य १)

प्रयाग

विषय-सूची

पृष्ठ

(परिशिष्टांक)

विज्ञान परिषद्, प्रयाग

परिचय

महामना स्वर्गीय पं० मदन मोहन मालवीय ने जिस समय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की स्थापना की उसी समय उनसे प्रेरणा पाकर म्योर सेंट्रल कालेज के कतिपय अध्यापकों ने—जिनमें महामहोपाध्याय पं० गंगा नाथ झा, प्रो० सालिग्राम भार्गव, और प्रो० रामदास गौड़ प्रमुख थे—विज्ञान परिषद् की स्थापना करने का विचार किया। परिषद् की स्थापना १० मार्च १९१४ को म्योर सेंट्रल कालेज प्रयाग में हुई, और इसका उद्देश्य यह था कि मातृभाषा द्वारा वैज्ञानिक साहित्य जनता तक पहुँचाया जाय। विज्ञान परिषद् एक सार्वजनिक संस्था है जिस का नियंत्रण तथा स्वत्वाधिकार परिषद् के सदस्यों को है। कोई भी विज्ञान प्रेमी १००) एकबार देकर आजीवन सदस्य या ६) वार्षिक तथा ३) प्रवेश शुल्क देकर साधारण सदस्य बन सकता है।

अपने उद्देश्य के अनुसार सन् १९१५ में विज्ञान परिषद् ने मासिक पत्रिका 'विज्ञान' निकालना प्रारम्भ किया जिसे प्रकाशित होते हुए अब ३८ वर्ष हो चुके हैं। इस पत्रिका में विज्ञान से सम्बन्ध रखने वाले सभी विषयों पर लेख निकल चुके हैं। लगभग १५,००० पृष्ठों की यह वैज्ञानिक सामग्री हमारे लिए गौरव की बात है। भारत की किसी भी भाषा में वैज्ञानिक विषयों की इतनी सामग्री जनता के पास अब तक नहीं पहुँची।

विज्ञान मासिक पत्रिका के अतिरिक्त परिषद् प्रारम्भ से ही जनता के उपयोग की सरल और सुगम वैज्ञानिक पुस्तकों के प्रकाशन का कार्य करती आ रही है। कुल ६० से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

विज्ञान परिषद् की उत्कृष्टता का प्रमाण इस परिषद् के सभापतियों की नामावली से स्पष्ट हो जायगा—

परिषद् के सभापति

१–डा० सर सुन्दर लाल	१९१३-१९१७
२–माननीय सर राजा राम पाल सिंह	१९१७-१९२०
३–श्रीमती डा० एनी बीसेन्ट	१९२०-१९२१
४–डा० सी० वाइ० चिन्तामणि	१९२२-१९२५
५–श्रद्धेय बाबू शिव प्रसाद गुप्त	१९२५-१९२७
६–महामहोपाध्याय डा० गंगा नाथ झा	१९२७-१९३०
७–डा० नीलरत्न धर	१९३०-१९३३
८–डा० गणेश प्रसाद	१९३३-१९३५
९–डा० कर्म नारायण वाहल	१९३५-१९३८
१०–प्रो० फूल देव सहाय वर्मा	१९३८-१९४१
११–प्रो० सालिगराम जी भार्गव	१९४१-१९४५
१२–डा० श्री रंजन	१९४५-१९४८
१३–श्री हरिश्चन्द्र जी जज	१९४८-१९५१
१४–प्रिंसिपल हीरा लाल खन्ना	१९५१-

—

प्रो० सालिगराम भार्गव स्मृति अंक

विज्ञान

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ० ।३।५

संख्या ७८ | वृश्चिक, धनु २०१०, नवम्बर, दिसम्बर १९५३ | अंक २, ३

अमर जीवन

मनुष्य मृत होता है। ख्याति, वंश-मर्यादा, लोक-प्रियता, जीवन-संघर्ष में सफलता आदि की दृष्टि से उसके समर्थक, पोषक सजातीय एवं विजातीय जन उस मृत आत्मा के प्रति सम्मान प्रदर्शन के हेतु भाँति भाँति के आयोजन करते हैं। भाषण होते हैं, लेख छपते हैं, कुछ व्युत्पन्न एवं प्रभावशाली पुरुषों के सम्बंध में कुछ पत्र पत्रिकाओं के श्रद्धांक भी निकलते हैं। मृत व्यक्ति की यश-प्राप्ति के अनुरूप अनेक सभा समितियों, गण्यमान्य पुरुषों द्वारा शोक-संवाद प्राप्त होते हैं। यही नहीं, मौखिक श्रद्धाविज्ञप्ति के अतिरिक्त मूर्त स्मारक, समाधि मंदिर, सार्वजनिक भवन आदि भी निर्मित होते हैं। ये सब प्रमुख साधन व्यक्ति विशेष की पूजा कहे जा सकते हैं। किंतु युग-युगों से ऐसी परिपाटियाँ प्रचलित रहती आई हैं।

हमारे हृदय में प्रश्न उठता है, क्या विज्ञानवादी भी पुरानी परिपाटियों का ही अनुगामी होता है? क्या उसे भी व्यक्ति-पूजा में लिप्त होना समीचीन है? क्या जीवित जन-समूह की जटिल समस्याएँ इतनी अपरिहार्य नहीं हैं कि मृतात्माओं की स्मृति-रक्षा, स्मारक-स्थापना अथवा श्रद्धांजलि अर्पण करने में अपने जीवन के मूल्यवान अंश तथा शक्ति का अपव्यय करने से वंचित ही रहा जाय?

इन विकट प्रश्नों का उत्तर क्या दिया जाय! साधारण रूप से तो यही प्रतीत होता है कि जो कुछ पलों, कुछ ही घड़ियों या दिवसों पूर्व जीवित मानव-समाज के क्रियाशील ही अंग थे, जिनकी जीवन-समस्याओं की, हमारे सामूहिक उद्योगों में, निराकरण-प्रवृत्तियाँ उतनी ही थीं, जितनी आज के बच रहे पुरुषों या आगामी पीढ़ी के व्यक्तियों के लिए हो सकती हैं, अथवा जिनको हमने अभी सद्यः मृत होने के कारण ठीक से ही यह भी नहीं समझा कि वे सदा के लिए हमारे समाज के लुप्त अंग ही रह गए, उनके सम्बन्ध में हमारा समीक्षा करने का कुछ साहस सा भी नहीं हो सकता। अतएव विज्ञान-वादी भी यदि भावनाओं से सर्वथा मुक्त पुरुष न हो तो यह कह उठे कि मृत के प्रति श्रद्धार्पण से हम कुछ भी शक्ति का ह्रास नहीं करते, कोई भी भावावेश पूर्ण अव्यावहारिक कार्य नहीं करते, तो हम इस निर्णय को पूर्णतः स्वीकार करने के लिए तत्पर हैं।

परन्तु प्रश्न का एक और भी जीवंत पहलू है! यदि मृत व्यक्ति ऐसी समाज-उद्धारक या परिष्कारक अथवा नव-जीवन-संचारक प्रवृत्तियों का प्रवर्तक या जीवन-धारा का उत्थापक है जो हमारी वर्तमान एवं भावी पीढ़ियों के श्रेय एवं प्रेय के लिए फलवती साधना हैं, तब तो हमारा प्रश्न और भी सरल हो जाता है। उस दशा में हमारी श्रद्धांजलि मृत पुरुष की पूजा या अर्चना की अपेक्षा अपने सप्रयत्न अर्जित उस नवीन मनोकल्पना, विचारधारा एवं जीवन मार्ग की रक्षा, प्रचार एवं संवृद्धि कर अपने मानव समाज का जीवन तथा विचार-स्तर उच्च करने का प्रयास ही अधिक है। हमारे आदरणीय दिवंगत प्रोफेसर सालिगराम जी

भार्गव ऐसी ही नवीन धारा के संस्थापक थे जिसे रक्षित एवं पोषित करने के लिए ही हम श्रद्धेय भार्गव जी के सम्बन्ध में विज्ञान का यह "स्मृति अंक" निकाल रहे हैं।

श्रद्धेय सालिगराम जी भार्गव के उच्च व्यक्तित्व, औदार्य, एकनिष्ठ व्रत, सत्साहस, जीवन सारल्य एवं निर्भीकता के सम्बंध में हमारे "स्मृति अंक" के सभी विद्वान एवं अनुभवी लेखकों तथा विज्ञान-सेवियों ने बड़े ही सुन्दर एवं प्रभावोत्पादक किन्तु निष्कपट रूप में लिखा है। हम उन सब यश-गाथाओं की पुनरावृत्ति करने या उन्हीं पर इस स्थल पर बल प्रदान करने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं समझते। परन्तु स्वर्गीय भार्गव जी के जीवन का एक पहलू है जो हमारा ध्यान आकृष्ट किए बिना नहीं रहता।

स्वर्गीय प्रोफेसर सालिगराम जी भार्गव कोई विशेष अभावग्रस्त परिवार के सदस्य नहीं थे। वे अलवर तथा आगरे में अपने परिवार द्वारा प्रदत्त व्यय से भली भाँति अध्ययन कर विज्ञान की शिक्षा स्नातक कक्षा तक प्राप्त कर सके। कुछ दिनों आगरे में विज्ञानशाला में प्रयोग-कार्य के सहायक कर्मचारी भी उन्हें रहने का अवसर मिला। १९१० में विज्ञान की उच्च शिक्षा प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा से उन्होंने तत्कालीन म्योर सेन्ट्रल कालेज की ख्याति से आकृष्ट होकर प्रयाग में प्रयाण किया। यहाँ रह कर भौतिक विज्ञान की शिक्षा समाप्त की। इस विषय की आचार्य उपाधि प्राप्त भी की। विज्ञान के शिक्षक भी बन गए।

भौतिक विज्ञान की उच्चतम शिक्षा प्राप्त करने का जब स्वर्गीय भार्गव जी को अवसर मिला, उस समय उच्च शिक्षा का कार्य गौरांग विद्वानों के ही हाथ में था। धीरे-धीरे भारतीयों ने आधुनिक वैज्ञानिक शिक्षा के उच्च स्तर पर पहुँच कर उस उच्च पद को भी ग्रहण करना प्रारंभ किया जिस पद से वे अपने अन्य भारतीय विद्यार्थी बंधुओं को शिक्षा प्रदान कर सकते थे। स्वर्गीय भार्गव जी ने उस संधिकाल में उच्च कक्षाओं के विज्ञान शिक्षक का कार्य सँभाला। स्वयं सहायक रूप में ही रहे और बड़ी तत्परता से डा० मेघनानाद साहा के कार्यभार में हाथ बँटाते रहे। शिक्षण काल के अंतिम समय में तो वे स्वयं प्रयाग विश्व विद्यालय के भौतिक विज्ञान विभाग के अध्यक्ष हो गए थे, परन्तु उसके पूर्व डा० कृष्णन, डा० होमी जहांगीर भावा सरीखे भारतीय विद्वान ही अध्यक्ष पद पर रहे।

इन स्थितियों में यह कहा जा सकता है कि स्वर्गीय भार्गव जी अपने क्षेत्र में सफलतापूर्वक चल रहे थे। कोई भारी उल्लेखनीय अभाव कदाचित नहीं रहा हो, परन्तु जीवन क्षेत्र में प्रवेश करते ही उनके सम्मुख एक नवीन भावना बड़े प्रबल रूप से आ सकी थी। विज्ञान की शिक्षा भारतीयों के हाथ में अवश्य आने लगी थी, परन्तु जन-साधारण को भी यदि 'विज्ञान-प्रिय बनाना है, संसार की वर्तमान सिद्धियों की प्राप्ति के साधन रूप में विज्ञान की धाराओं से अपने देशवासियों को भी अवगत करना है तो मातृ भाषा या राष्ट्र भाषा हिन्दी के माध्यम से विज्ञान-सेवा करनी चाहिए। हिन्दी, उर्दू या कोई भी प्रादेशिक भाषा इस प्रकार का सुगम माध्यम हो सकती थी, परन्तु उत्तर प्रदेश में कार्य-क्षेत्र होने से उन्होंने उर्दू और हिन्दी भाषा को ही वैज्ञानिक साहित्य के प्रसार के लिए माध्यम बनाकर जनता में विज्ञान-प्रचार कार्य प्रारम्भ किया। यह १९१३ की घटना है जिसे आज चालीस वर्ष हो रहे हैं। तभी विज्ञान परिषद की स्थापना हुई।

विज्ञान परिषद के आदि-संस्थापकों में से डाक्टर गंगा नाथ झा, प्रो० रामदास जी गौड़ तथा प्रो० सालिगराम जी भार्गव, तीनों महापुरुषों में से आज हमारे सामने कोई भी विद्यमान नहीं है जिसके मुख से हम उस समय उनके अंतर्तम में उद्वेलित विज्ञान-सेवा की बलवती भावनाओं की चर्चा सुन सकें। इन तीनों पुरुष-पुंगवों में कौन महारथी था जिसके हृदय में पहले पहल विज्ञान परिषद की स्थापना का भाव उदित हुआ, इसे जानने का हमारे पास कोई प्रत्यक्ष साधन नहीं है, हम इस छोटे प्रसंग में पड़ना भी नहीं चाहते। इस गौण बात की ठीक जानकारी कर लेने से हमें कोई बात समझने में विशेष सहायता भी नहीं प्राप्त होती।

यथार्थ बात यह कही जा सकती है कि कोई भी बड़ा कार्य एकाकी नहीं होता, दो चार व्यक्तियों के सहयोग, सक्रिय सहायता-प्रदान की आवश्यकता होती है। केवल विचार नित्य अनेक पुरुषों के हृदय में पल पल उठा करते हैं जो कहीं उल्लिखित या अंकित नहीं हो पाते, कोई मूर्त

रूप पाने का अवसर नहीं पाते। शक्ति या साहस का भंडार भी अनेक व्यक्तियों में विद्यमान होता है। निर्देश, प्रोत्साहन या उत्प्रेरणा के बिना उसका कुछ भी उपयोग नहीं होता। अतएव विभिन्न व्यक्तियों एवं प्रवृत्तियों के अटूट सहयोग से ही बड़ी संस्थाएँ, जन-जागृति-आन्दोलन अथवा विकट अभियान सफलीभूत हो सकते हैं।

प्रो० राम दास जी गौड़ अधिक अभावग्रस्त थे। अपनी उग्रवादिता के कारण राजनीतिक आन्दोलन में सक्रिय भाग लेकर प्रथम असहयोग आन्दोलन में कारागार-वासी भी हुए थे। कालान्तर में भी उनका जीवन उथल-पुथल मय ही रहा। अतएव हमारा अनुमान हो सकता है कि उनके हृदय में ही विज्ञान परिषद् की स्थापना तथा हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य निर्माण की भावना उठी हो। परन्तु नग्न सत्य इस कल्पना के विरुद्ध ही ज्ञात होता है। स्वर्गीय भार्गव जी की डायरी १९१३ के जनवरी मास से लगातार कई वर्षों तक संक्षिप्त विवरणों युक्त उनके हाथ की लिखी उपलब्ध है। बाद में भी डायरी वे रखते अवश्य थे, परन्तु केवल हिसाब ही अंकित करते थे। डायरी के कुछ उद्धरण एक लेख रूप में नमूने की भाँति इस स्मृति अंक में दिए जा रहे हैं।

हिन्दी वैज्ञानिक साहित्य-निर्माण का आयोजन करने के लिए प्रयाग के विज्ञान-प्रेमियों की पहली बैठक १० मार्च १९१३ को हुई जो भार्गव जी की डायरी में भी दर्ज है। ३१ मार्च को विधिवत आमंत्रण देकर बड़ी बैठक कर विज्ञान परिषद् की स्थापना हुई, किन्तु इन सब के पूर्व विभिन्न तिथियों में स्वर्गीय भार्गव जी ने "ताप" विषयक कोई पुस्तक लिखने का उल्ल्लेख किया है। इस पुस्तक के लिखने का कार्य जनवरी, फरवरी की निम्न तिथियों को जारी रहने का उल्लेख है :—

जनवरी ५, ६, ७, १२, २६
फरवरी १, १४, १७

इन तिथियों में पुस्तक का बहुत अंश लिखा जा चुका होगा। १० मार्च को जो हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य निर्माण संबंधी बैठक हुई उसके एक दिन बाद ही १२ मार्च को भार्गव जी ने ताप पर हिन्दी में लिखी पुस्तक श्री रामदास जी गौड़ को दिखाई तथा १३, १४, मार्च को पढ़कर भी सुनाया। १३ मार्च को चित्र बनाया। इसके बाद की तिथियों में "ताप" लिखने का पुनः उल्लेख है। २१ अप्रैल को विज्ञान प्रवेशिका लिखे जाने का प्रस्ताव हुआ। गौड़ जी तथा भार्गव जी के संयुक्त नाम से यह पुस्तक प्रकाशित हुई। भार्गव जी ने बार बार इस पुस्तक के लिखते रहने का उल्लेख बाद की तिथियों में किया है। इसके अतिरिक्त १५ जनवरी को "प्रकाश" पर हिन्दी में लिखने का उल्लेख है। "विद्युत शास्त्र" भी उन्होंने विज्ञान में लेख रूप में प्रकाशित कराया। "चुम्बक" की भी रचना उन्होंने की जो स्वतंत्र रूप में छपी।

इन प्रमाणों से हम स्वर्गीय प्रोफेसर सालिगराम जी भार्गव को हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य निर्माण करने वाले अग्रणी लेखकों में उल्लेखनीय स्थान ग्रहण करते पाते हैं। "चुम्बक" और "विज्ञान प्रवेशिका" प्रथमभाग के अतिरिक्त कोई पुस्तक भार्गव जी के नाम से प्रकाशित नहीं है। २ मई को मि० सी० एल० के सहयोग से हिन्दी में वैज्ञानिक पुस्तकें लिखने का दृढ़ निश्चय करने का भी हमें उल्लेख मिलता है। ६ नवंबर को मेकाट लिखित किसी पुस्तक का अनुवाद करने के लिए रजिस्ट्रार के पास प्रार्थना पत्र भेजने का उल्लेख है। ये उदाहरण स्वर्गीय भार्गव जी की उत्कट विज्ञान-प्रचार भावना तथा वैज्ञानिक साहित्य-सृजन के हैं। इनकी पृष्ठभूमि में हम उनके हार्दिक उत्साह तथा ऐसे कार्य की उत्प्रेरक शक्ति का अनुभव भली भाँति कर सकते हैं। इन बातों के उल्लेख से हमारा अभीष्ट स्वर्गीय भार्गव जी की कुछ छोटी या बड़ी कृतियों का गुणगान नहीं है, प्रत्युत हम तो यह स्मरण करना चाहते हैं कि कैसी परिस्थितियों में स्वर्गीय भार्गव जी तथा उनके अन्य सहकर्मियों ने विज्ञान परिषद् की स्थापना का स्वप्न देखा जब उनके सामने किसी प्रादेशिक भाषा में ऐसा कोई प्रयास नहीं हो रहा था। देश की भाषाओं में विज्ञान की चर्चा कर जन-साधारण तक विज्ञान का संदेश पहुँचाने की उनकी महत्कामना कितनी अभिनंदनीय अनुभव की जा सकती है। महान् उद्देश्य के हेतु स्वर्गीय भार्गव जी तथा अन्य सहकर्मियों ने महान मार्ग भी रक्खा। वे याचना के लिए धनिकों के पास नहीं गए, सरकार की अभ्यर्थना के लिए नहीं दौड़े। जन-साधारण के ही विज्ञान-प्रेमी विद्वानों का एक समुदाय परिषद् के सदस्य रूप में ग्रथित किया तथा उनके सदस्य-शुल्क के दुर्बल संबल पर विज्ञान-प्रचार के कठोर अभियान पर अग्रसर हुए।

इन कार्यकर्त्ताओं में प्रो० सालिगराम जी भार्गव की विशेष चर्चा एक और बात के लिए भी करनी है। आय का एक आनुषंगिक मार्ग विज्ञान की स्कूली पुस्तकें स्वीकृत कराना था। अन्य प्रदेशों के विज्ञान-सेवी आज इस पथ का अनुसरण कर संस्था के लिए धन-संचय करते हैं। परन्तु स्वर्गीय भार्गव जी ने पाठ्य-निर्धारण समितियों में प्रभाव होते हुए भी परिषद् के कार्यकर्त्ताओं को ऐसे दुर्बल मार्ग से धन अर्जन करने की सलाह नहीं दी।

आज भी हम धन के लिए अत्यंत ही अभावग्रस्त हैं। हमारा कोई कार्यालय-भवन नहीं, कोई पूर्णवैतनिक कर्मचारी नहीं, लेखकों को पुरस्कार दे सकने के लिए सुविधा नहीं, परन्तु हम विज्ञानसेवी याचना के पथ के पथिक बनने के लिए अब भी उतारू नहीं। केन्द्रीय सरकार के कोष से अनेक संदिग्धात्मक उद्देश्यों, भाषा संबंधी पचड़ों, हिन्दू मुस्लिम संस्कृति के प्रचार के सस्ते आयोजनों, अन्य प्रचार कार्यों के लिए असीम धन बहाया जाता है, किन्तु विज्ञान या विज्ञान परिषद् के नाम पर एक धेला भी देने के लिए नहीं है। हमारी अन्य प्रादेशिक सरकारें भी विशेष उदार नहीं हैं। प्रायः प्रादेशिक सरकारों द्वारा हमें किसी प्रकार का प्रश्रय या साहाय्य नहीं मिलता। उत्तर प्रदेश की सरकार से जो वार्षिक अनुदान मिल जाता है वह हमारी बढ़ती आवश्यकता के लिए अत्यंत अल्प है, फिर भी हम स्वर्गीय भार्गव जी के अमर जीवन-पथ का अनुसरण कर याचना के लिए कहीं हाथ फैला की इच्छा नहीं रखते। अपने साहसिक प्रयत्न, आर्थिक सहायता तथा साहित्यिक अनुदान से स्वर्गीय भार्गव, गौड़ तथा झा सरीखी विभूतियों तथा प्रो० गोपाल स्वरूप भार्गव, श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, डा० सत्य प्रकाश, डा० गोरख प्रसाद आदि अन्य कार्यकर्त्ताओं ने हमें जो क्रियात्मक सहयोग तथा अद्भुत आंतरिक बल प्रदान किया, उसी के बल पर हम अपने विज्ञान-प्रचार की पताका उस समय तक वायु-कंपित रखते रहना चाहते हैं जब तक हमारी राष्ट्रीय सरकार अथवा विज्ञान-प्रेमी या वैज्ञानिक साहित्य-प्रश्रयदाता, समर्थ सज्जनों द्वारा अपने देश में भी राकफेलर फाउंडेशन, कारनेगी इंस्टिट्यूट, रायल इंस्टिट्यूशन आदि सरीखी शक्ति-सम्पन्न संस्थाएँ खड़ी होकर वैज्ञानिक प्रयोग तथा लोकप्रिय विज्ञान-प्रचार के कार्यों को वेग के साथ संचालित करने के लिए अग्रसर नहीं हो जातीं। तब तक के लिए हम अल्पशक्ति-सम्पन्न कर्मियों के द्वारा सहयोग प्राप्त कर भी यह वैज्ञानिक प्रचार अभियान अग्रगामी रखने की ललकार अपने उदीयमान वैज्ञानिकों, विज्ञान-सेवियों तथा पोषकों तक पहुँचाते ही रहने का इंगित करते रहेंगे जिससे हम अपनी परिषद् रूप वैज्ञानिक साहित्य-संवर्धन के अनुष्ठान को सतत् संचालित रखकर राष्ट्र में वैज्ञानिक जागृति उत्पन्न करने में संलग्न रहें जो यथार्थतः अमर जीवन का ही प्रतीक है। अपने दिवंगत विज्ञान-सेवियों के प्रति यथार्थ श्रद्धांजलि-अर्पण का एक मात्र वही मार्ग है।

आज इस श्रद्धांजलि अर्पण करने के अवसर पर हम अपना संकल्प प्रकट कर देना चाहते हैं कि अपनी "विज्ञान परिषद्" तथा "विज्ञान" पत्र को बराबर चलाते रह कर ही नहीं, बल्कि वैज्ञानिक प्रवृत्ति प्रवर्द्धन तथा प्रचार के लिए भी हम कोई प्रयास उठा न रखेंगे। स्वर्गीय भार्गव जी हमें प्रयाग विश्व विद्यालय द्वारा ३४०० वर्ग गज भूमि प्रदान किए जाने का संवाद सुनने के लिए आज विद्यमान नहीं हैं, परन्तु जहाँ हम सर्वथा अभावग्रस्त ही थे, वहाँ खड़े होने की इतनी भूमि पा कर यह अवश्य आशा करने के लिए अग्रसर हैं कि अपने प्रयत्नों द्वारा या विज्ञान-प्रेमी धनिक पुरुषों किंवा निर्धन पुरुषों की ही संचित की हुई थोड़ी थोड़ी धन-राशियों को अयाचित ही पाकर शीघ्र ही कोई विज्ञान-मंदिर अवश्य निर्मित कर सकेंगे जिसकी ईंटें तथा उनमें स्थापित कोई मूर्ति या तैल चित्र का केवल धारणशील मूर्त रूप ही स्वर्गीय भार्गव जी या अन्य कर्मियों की विज्ञान-सेवा वृत्ति का स्मारक नहीं होगा, प्रत्युत उसमें बैठे हुए विज्ञान-कर्मियों या बाहर से ही वैज्ञानिक साहित्य दान करने वाले उत्साही कर्मियों के जीवट पूर्ण संघ की होगी अमर वैज्ञानिक साहित्य-आत्मा और होगा हमारा विज्ञान-सेवा तथा प्रचार का अखंड व्रत तथा उत्कट अनुराग। तब हम कह सकेंगे "स्वर्गीय भार्गव जी, गौड़ जी, झा जी, सभी का अमर, अविनश्वर, जीवन यहाँ अब भी संचरणशील है।"

श्रद्धांजलि

लेखक—डा० अमरनाथ झा,
सभापति, लोक सेवा आयोग, विहार तथा
भूतपूर्व उपकुलपति प्रयाग तथा काशी वि० वि०

"योग्यपिता के योग्य पुत्र" की उक्ति सार्थक करने वाले डा० अमरनाथ झा के स्वर्गीय पिता डा० गंगानाथ झा और प्रो० रामदासजी गौड़ के सहयोग से ही प्रो० सालिगराम भार्गव ने विज्ञान परिषद की स्थापना की थी। आपका स्वर्गीय प्रोफेसर सालिगराम भार्गव से चालीस वर्षों का परिचय है जिसकी आपने इस संक्षिप्त लेख में चर्चा की है।

सन् १९१४ में मैं मेयोर कालिज के यूनियन का सेक्रेटरी था। यूनियन की एक सभा बुलानी थी। यह सभा फिजिक्स थियेटर में हुआ करती थी। जिस दिन यह सभा होनेवाली थी उसी दिन विज्ञान परिषद की भी एक बैठक का विज्ञापन प्रकाशित हुआ था। इस संबंध में मुझे प्रोफेसर शालिग्राम भार्गव से मिलना पड़ा। यही पहला अवसर था भार्गवजी से मिलने का। यह ४० वर्ष पहिले की बात है। तब से अंत तक भार्गवजी की कृपा मुझपर बनी रही। मेयोर कालिज में हम दोनों अध्यापक हुए, फिर यूनिवर्सिटी में।

भार्गवजी बड़े कर्मनिष्ठ व्यक्ति थे और उनकी कार्य-कुशलता प्रशंसनीय थी। उनका आचरण निष्कपट था। अपने विचारों को निर्भीकतापूर्वक प्रकट करते थे।

विज्ञान परिषद में स्वर्गीय रामदास गौड़ और भार्गव जी ने जितना परिश्रम किया, यह वही लोग जानते हैं जिन्होंने उस समय के वातावरण में थोड़ा बहुत काम किया था। विज्ञान परिषद के प्रारंभिक जीवन में हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं में व्याख्यान होते थे और पुस्तकें प्रकाशित होती थीं। आगे चलकर केवल राष्ट्रभाषा में ही इसका काम हुआ। जब परिषद की स्थापना हुई थी उस समय बहुत से प्रगतिशील व्यक्तियों की भी यह धारणा थी कि वैज्ञानिक विषयों पर न तो पुस्तकें लिखी जा सकती हैं और न विज्ञान की शिक्षा हिन्दी के माध्यम द्वारा हो सकती है। इन दोनों भ्रमों के निराकरण में भार्गवजी का महत्वपूर्ण भाग था।

उनकी असामयिक मृत्यु से मुझे बड़ा दुःख हुआ है। साधारणतः उनका स्वास्थ्य अच्छा रहता था और हम सब को आशा थी कि अभी कुछ और दिन वे देश और हिन्दी की सेवा कर सकेंगे।

प्रो० गोपाल स्वरूप भार्गव का ५० वर्षों पुराना परिचय प्रो० सालिगराम जी भार्गव के सम्बन्ध में हमें दुर्लभ पुरानी स्मृतियाँ सुनाने का अवसर दे सका है, आप अलवर के छात्र जीवन से लेकर प्रयाग तक ही निकट सम्पर्क में नहीं रहे, प्रत्युत विज्ञान परिषद् के भी प्राणाधार रहे हैं। यथेष्ट काल सम्पादक विज्ञान रूप में व्यतीत कर आपने विज्ञान-सेवा का अनुकरणीय मार्ग प्रदर्शित किया है।

संस्मरण

लेखक—प्रो० गोपाल स्वरूप भार्गव, एम० एस-सी०
भूतपूर्व अध्यक्ष, विज्ञान विभाग, चौधरी महादेव प्रसाद डिग्री कालेज, प्रयाग तथा सम्पादक 'विज्ञान'

आज से लगभग ५० वर्ष पहले भार्गव छात्रावास अलवर में सं० १९६० वि० की वसन्त पंचमी का उत्सव मनाया जा रहा था। नये विद्यार्थियों का उसी दिन उपनयन संस्कार भी हो रहा था। कुछ नगर के विद्यार्थियों को भी इस संस्कार के लिए बुलाया गया था। उनमें से एक विद्यार्थी के बारे में यह चर्चा हो रही थी कि वह द्रुत तीक्ष्ण बुद्धि से सम्पन्न है। वह वहां के स्थानीय स्कूल के गणित के अध्यापक पं० रामजीवन लाल के छोटे भाई श्री सालिग्राम जी थे। उस दिन हम दोनों ने एक ही गुरु से मंत्र लिया और हम लोग गुरु भाई हो गये। तब से हम लोगों का परिचय आरम्भ हुआ था। सालिग्राम जी बड़े कुशाग्र बुद्धि के थे, अतएव स्कूल में पूर्व माध्यमिक पढ़ाई जारी रखने के स्थान पर समय बचाने के लिए उन्होंने एंट्रैंस की प्राइवेट परीक्षा उत्तीर्ण की और काशी विश्व-विद्यालय में पढ़ने के लिए चले गये। वहाँ का जलवायु उनके अनुकूल न हुआ, अतएव वहाँ से लौट आये और आगरा कालिज में भरती हो गये। वहाँ से ही उन्होंने इण्टरमीडियेट और बी० एस-सी० परीक्षा दी और सफल हुए।

इनके पिता पं० लच्छी रामजी अलवर में फीलखाने में काम करते थे और निजी तौर पर कुछ लेन-देन भी करते थे। जिस मकान में यह रहते थे उसके पास से एक देन अलवर नरेश की सवारी निकली। इनको देखकर महाराज ने उसी समय अच्छा मकान बनाने के लिए एक प्लाट दिया और खेती करने के लिए कुछ जमीन भी दी। उसी प्लाट पर लच्छी रामजी ने एक विशाल भवन बनवाया।

लच्छी राम के तीन पुत्र हुए। सबसे बड़े द्वारिका प्रसाद जी, दूसरे रामजीवनलाल जी और सबसे छोटे सालिग्राम जी थे। द्वारिकाप्रसादजी का देहान्त युवा अवस्था में ही हो गया था। रामजीवनलालजी स्थानीय स्कूल में गणित के अध्यापक थे। वहाँ से पेंशन लेने के बाद वह कुछ दिन तो वहाँ रहे, तदनन्तर लखनऊ में डा० रामचन्द्र के पास, जो उनके बड़े पुत्र हैं, रहे। अब स्वास्थ्य बिगड़ जाने के कारण अपने पुत्र डाक्टर के पास ही अलीगढ़ में रहते हैं। रामजीवनलालजी थियोसोफिकेल सोसाइटी के सदस्य हैं और गीता का अनुशीलन सदा से करते रहे हैं। उनका चरित्र बहुत ही पवित्र और परोपकारमय रहा है। उनका स्वभाव बड़ा कोमल, दयावान और मिलनसार है। जितने विद्यार्थी उनके पास पढ़े हैं उन पर उनका गहरा प्रभाव पड़ा है। मैं भी उनके साथ १९०३ से १९०८ तक रहा जब अलवर में पढ़ता था। मुझे भी चरित्र-संगठन, परोप-कार आदि के सदुपदेश उन्होंने दिये और गीता आदि पढ़ने की रुचि दिलाई। उनका गहरा प्रभाव सालिग्राम जी पर पड़ना स्वाभाविक था। सालिग्रामजी के स्वभाव की मधुरता लोक-सेवा की अभिरुचि और कर्तव्यपरायणता

आदि सब गुण श्री रामजीवनलालजी से प्राप्त हुए।

छुट्टियों में जब सालिग्रामजी आते थे तो उनके साथ सायंकाल के समय घूमने जाने के लिए कई सज्जन आते थे और छात्रावास से मुझे भी साथ ले लेते थे। वह बड़ी विचित्र मंडली हो जाती थी। उनमें एक थे डा० शोभाराम के पुत्र श्री एम० वाइ० सनम जो मुसलमान होते हुए भी श्रीकृष्ण भगवान के उपासक थे और गहरी भक्ति के रंग में डूबे रहते थे। एक और क्षत्रिय रामप्रसाद जी डाक्टर भी प्रायः साथ रहते थे जो रास्ते भर भगवान कृष्ण के ध्यान में ही निमग्न रहते थे। रास्ते में कांग्रेस और देशोन्नति और देश-सेवा की चरचा हुआ करती थी। सालिग्राम जी आगरा कालिज में सायंस पढ़ते थे। वहाँ एक उनके रसायन शास्त्र के अध्यापक थे श्री नगेन्द्र चन्द्र नाग जिनसे रसायन शास्त्र पढ़ने का मुझे भी बाद में सौभाग्य प्राप्त हुआ। वह रसायनशास्त्र हिन्दी में या खिचड़ी भाषा में पढ़ाया करते थे, उनके व्याख्यान बड़े मनोरंजक होते थे और बड़े लोकप्रिय भी। उन्हीं की चरचा प्रायः हुआ करती थी और यह विवेचन होता था कि यदि हिन्दी में पठन-पाठन हो तो कैसा अच्छा हो। तभी से हम लोगों को यह विचार आता रहा कि वैज्ञानिक विषयों पर हिन्दी में ग्रन्थों की रचना होनी चाहिये।

सं० १९०८ में मेट्रिकुलेशन पास करके आगरा कालिज में मैं भरती हुआ और भार्गव छात्रावास में रहने लगा। वहाँ सालिग्रामजी पहले से ही रहते थे। उनका व्यवहार सभी छात्रों के साथ बड़ा प्रेम पूर्ण होता था। प्रत्येक विद्यार्थी की वह सदा सहायता और सेवा करने को उद्यत रहते थे। कोई बीमार पड़ता तो रात दिन उसकी सेवा सुश्रूषा में वह और उनके कुछ साथी लग जाते थे। छात्रावास के दो भाग थे, एक कालिज की ओर था और दूसरा खेल के मैदान की तरफ। कालिज की तरफ के भाग में रईस लोग बड़े ठाट बाट से रहते थे। दूसरे भाग में सीधे सादे विद्यार्थी रहते थे। कालिज व सभी कक्षाओं के पहले और दूसरे पारितोषिक इसी भाग के विद्यार्थियों को मिलते थे। प्रोफेसर सरकार इनके बड़े प्रशंसक थे। एक अजमेर के विद्यार्थी जो बाद में विलायत जाकर बैरिस्टर हो आये, जब गणित पढ़ने प्रो० सरकार के पास गये तो प्रो० ने उनसे कहा कि 'तुम ही एक भार्गवों में मूर्ख हो।' इससे प्रकट होगा कि सालिग्रामजी तथा उनके साथी कितनी आदर की दृष्टि से देखे जाते थे। एक बार स्वर्गीय पं० गोविंद जी बीमार हुए और बीमारी की हालत में ही मथुरा अपने घर चले गये। सालिग्राम जी अपने कई मित्रों, चिरञ्जीलाल माथुर बी० ए०, एल० टी० आदि के साथ मथुरा गये और वहाँ १०, १५ दिन रह कर बड़े परिश्रम से उनको स्वास्थ्यलाभ करा के आगरा लौटे।

१९०९ में सालिग्रामजी ने बी० एस-सी० परीक्षा पास की और उसी वर्ष आगरा कालिज में भौतिक विभाग में डिमांस्ट्रेटर हो गये। उसी वर्ष आगरा कालिज में विद्यार्थियों की संख्या बहुत बढ़ गई थी और पहले पहल इंटर में प्रयोगात्मक कार्य कराया जाने लगा। प्रयोगशाला में बहुत जर्जरित पुराने यंत्र थे। सालिग्रामजी ने बहुत से नये यन्त्र मंगाये और उनका सफलता पूर्वक प्रदर्शन भी किया। एक साल तक वहाँ की प्रयोगशाला में बड़ी उन्नति दिखाई और एम० एस-सी० की परीक्षा भी दी। जब परीक्षा में असफल रहे तो १९१० को जुलाई में सालिग्राम और मैं दोनों प्रयाग आये। हमारे एक मित्र पं० महेशप्रसाद जी, जो बाद में देहरादून में इम्पिरियल पेपर एक्सपर्ट हो गये, एक साल पहले प्रयाग आये थे। उनसे यह ज्ञात हुआ कि म्योर सेन्ट्रल कालिज की प्रयोगशालाएँ बड़ी सम्पन्न हैं और यहाँ विज्ञान के पठन-पाठन की बड़ी भारी सुविधायें हैं। इसी लिए हमलोग प्रयाग आ गये। मैं बी० एस-सी० में और सालिग्राम जी एम० एस-सी० में भरती हो गये। हम दोनों हिन्दू बोर्डिङ्ग हाउस के एक ही कमरे में रहते थे। हमारे पास के कमरे में एक मुन्शी जी बैजनाथ प्रसाद रहते थे, जिनके छोटे भाई भी उनके साथ थे। यही डा० बी० एन० प्रसाद अब बड़े विख्यात गणितज्ञ हो गये हैं और प्रयाग विश्वविद्यालय में अध्यापक हैं।

प्रयाग में भी सलिग्राम जी का स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहा। परन्तु हमलोगों को दो बातें यहाँ मालूम हुईं। एक तो यह कि चावल को नित्य के खाने में शामिल किये बगैर यहाँ निर्वाह होना कठिन है, दूसरे यह कि काफी लम्बी सैर नित्य करनी चाहिये। इन दो बातों से बड़ा लाभ हुआ। म्योर कालिज में श्री सालिग्राम टण्डन के एम०

एस-सी० पास करने के कई वर्षः शायद पांच या छः वर्ष के बाद श्री सालिग्राम जी ने भौतिक शास्त्र में नाम लिखाया था। उस समय वहाँ श्री जे० जे० ड्यूरेक् भौतिक शास्त्र के अध्यापक थे। वह आस्ट्रेलिया की किसी यूनिवर्सिटी के केवल बी०एस-सी० थे। वह एम० एस-सी० पढ़ाने की योग्यता नहीं रखते थे। बड़े कड़े स्वभाव के मनुष्य थे और किसी का विश्वास नहीं करते थे। अनेक यन्त्र बिना हाथ लगे गोदाम में भरे पड़े थे। सालभर में ३ या ४ प्रयोग ही एम०

प्रयाग में छात्रावस्था में (१९१० ई०)
बाईं ओर से (१) श्री गोपाल स्वरूप जी भार्गव, (चश्मा पहने हुए)
(२) श्री महेशप्रसाद जी भार्गव (बीच में खड़े)
(३) श्री सालिगराम जी भार्गव

एस-सी० में कराये जाते थे। सालिग्राम जी केसाथ थे प्रथम वी०एस० तम्मा जो पीछे से मेरठ कालिज के वाइस प्रिंसिपल हो गये थे और सात-आठ वर्ष हुये कि उनका देहान्त हो गया। द्वितीय भटंगे तो नागपुर में अध्यापक हो गये थे तृतीय देवरस जो नागपुर विद्यालय से अवसर प्राप्त कर के अब शेयर मार्केट में काम कर रहे हैं।

१९११ में सालिग्राम जी के स्वभाव और योग्यता से प्रभावित होकर प्रो० ड्यूरेक ने उन्हें डिमांस्ट्रेटर नियुक्त कर दिया। यही नहीं, गोदाम के यन्त्रों पर भी उन्हें काम करने की आज्ञा देदी। फलतः एम० एस-सी० की पढ़ाई में प्रयोगों की संख्या बढ़ने लगी, प्रदर्शन के लिये नये नये प्रयोग सजाये जाने लगे। ३७ वर्ष के कठिन परिश्रम से सालिग्राम जी ने म्योर कालिज और तदनन्तर प्रयाग विश्वविद्यालय की भौतिक प्रयोगशाला को वर्तमान रूप दिया। विद्यार्थियों द्वारा नये नये प्रयोग कराने में सालिग्रामजी बड़े सिद्धहस्त थे। उनके सभी विद्यार्थी उनके सरल स्वभाव प्रेम, पूर्ण तथा निष्कपट व्यवहार की प्रशंसा करते रहे हैं। थियोरी पढ़ाने में विद्युत् शास्त्र में वे निपुण थे। एक सूत्र को लेकर सारा विद्युत शास्त्र वह समाप्त कर देते थे। नये नये प्रयोगों के करने कराने में वह बड़े प्रवीण थे। वायरलेस का सेट (प्रेषक) भी उन का लगाया हुआ है जिसकी बाद में डा० तोशनीवाल तथा कोठारी आदि ने उन्नति की। डा० निहाल करन सेठी, जस्टिस वशिष्ठ आदि उनके अनेक विद्यार्थी उनका यशोगान करते हैं।

म्योर कालेज में एक हिन्दी के चतुर लेखक और अनन्यभक्त से भी उनको सहयोग प्राप्त हुआ। यह थे श्री रामदास गौड़ जिन्होंने कायस्थ पाठशाला में प्रोफेसरी करते हुये वैज्ञानिक विषयों पर सरस्वती आदि में लेख लिखने का कार्य प्रारम्भ किया था। उनको यह लगन थी कि हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य की रचना की जाय। इनका जब सालिग्राम से परिचय हुआ तो दोनों ने कई योजनाएँ बनायीं। मौलवी मोहम्मद अली नामी भी इनसे सहमत थे और जब डा० गङ्गा नाथ के सामने यह योजनाएँ रखी गईं तो उनके परिपक्व अनुभव और विस्तृत प्रभाव से योजनाओं का व्यक्त रूप प्रकट होने लगा।

जब हम लोग हिन्दूबोर्डिङ्ग हाउस के चौथे ब्लाक में रहते थे तो वहाँ पर भी हिन्दी और देश के प्रेमियों का जमाव था। बीच के रास्ते में एक खाट सदा पड़ी रहती थी और उस पर वाद विवाद करने वालों की गोष्ठी बैठी ही रहती थी। उनमें प्रिंसिपल हीरालाल खन्ना (हमारे वर्तमान वर्ष के सभापति) डा० निहालचन्द वैश्य, बी० एस-सी०, बार एटला, जगन्नाथ प्रसाद (अवसरप्राप्त रजिस्टर्ड सोसाइटीज़ के प्रधान), केशवचन्द सिंह (एम० एल० ए०), श्री लक्ष्मी नारायण गुप्त एडवोकेट, पं० अम्बिका प्रसाद पांडेय एडवोकेट, श्री हरदयालसिंह (केन्द्रीय कृषि विभाग दिल्ली से अवसरप्राप्त) आदि थे।

जब १९१३ में सालिग्राम-गौड़-झा योजनाओं पर विचार-विमर्श हो रहा था तो उनमें प्रायः हीरालाल खन्ना, श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव (सूर्य सिद्धान्त के विज्ञान भाष्य पर मंगला प्रसाद पारितोषिक प्राप्त) बी० एस-सी० विशारद भी मेरे साथ सम्मिलित हो जाते थे। हम लोग उस समय विद्यार्थी थे, परन्तु गुरुजनों की कृपा में योजनाओं के विवेचन में शामिल हो जाते थे। उसी समय विज्ञान परिषद का जन्म हुआ जिसका नाम Vernacular Scientific Literature Society अंजमन सनाए व फनून भी था। श्री गौड़जी तथा श्री सालिग्राम जी ने विज्ञान प्रवेशिका भाग १ लिखी और छपवाई। उसका उर्दू रूपान्तर भी मुफ़ताह उल फनून के नाम से छपा।

हिन्दी में वैज्ञानिक विषयों पर व्याख्यान देने की योजना भी तय्यार की गई। पहला व्याख्यान श्री सालिग्राम जी ने स्वनामधन्य स्वर्गीय पं० मदनमोहन मालवीय के सभापतित्व में भारती भवन के हाल में दिया। तदनन्तर कायस्थ पाठशाला, म्योर कालिज आदि में भी व्याख्यान होते रहे। उस समय विद्यार्थी समाज में भी काफी जोश था। व्याख्यानों में बहुत उपस्थिति होती थी।

सन् १९१४ में विज्ञान परिषद ने दूसरा कदम उठाया। डा० झा, गौड़ जी, सालिग्राम जी तथा नामी साहब जो परिषद के जन्मदाता थे, उनको कई कार्यकर्त्ता और मिल गये। कायस्थ पाठशाला डिग्री कालिज हो गया था। कई नये अध्यापक वहाँ नियुक्त हुए जिनमें स्वर्गीय प्रोफेसर ब्रजराज और मैं भी था। प्रोफेसर ब्रजराज बड़े उत्साही और तेज़ आदमी थे। वह म्योर कालिज के पुराने विद्यार्थी थे।

वह यहाँ से आगरा कालिज में डिमांस्ट्रेटर (भौतिक प्रयो०) होकर गये। मुझे भी एक गरमियों की छुट्टी में (जो यहाँ मार्च में ही प्रायः शुरू हो जाती थीं, दस पाँच दिन आगरे में प्रयोग करने का अवसर मिला था। वहाँ से उनसे परिचय प्राप्त हुआ। सं० १४ में तो वह विज्ञान विभाग में डिमांस्ट्रेटर होकर के० पी० में आये। उन्होंने सालिग्राम जी जोश में आकर इंगलैण्ड पर आक्रमण की योजना बताने लगते थे। सालिग्राम जी के घर पर ही विज्ञान परिषद् की योजनायें बना करती थी। दो और सज्जन महावीर प्रसाद श्रीवास्तव और हीरालाल खन्ना भी इसी समय विज्ञान के काम में पूर्णतया सहयोग देने लगे। विज्ञान का जन्म हुआ। परिषद् का दफ़तर चौक में रखा गया। के० पी० की छुट्टी
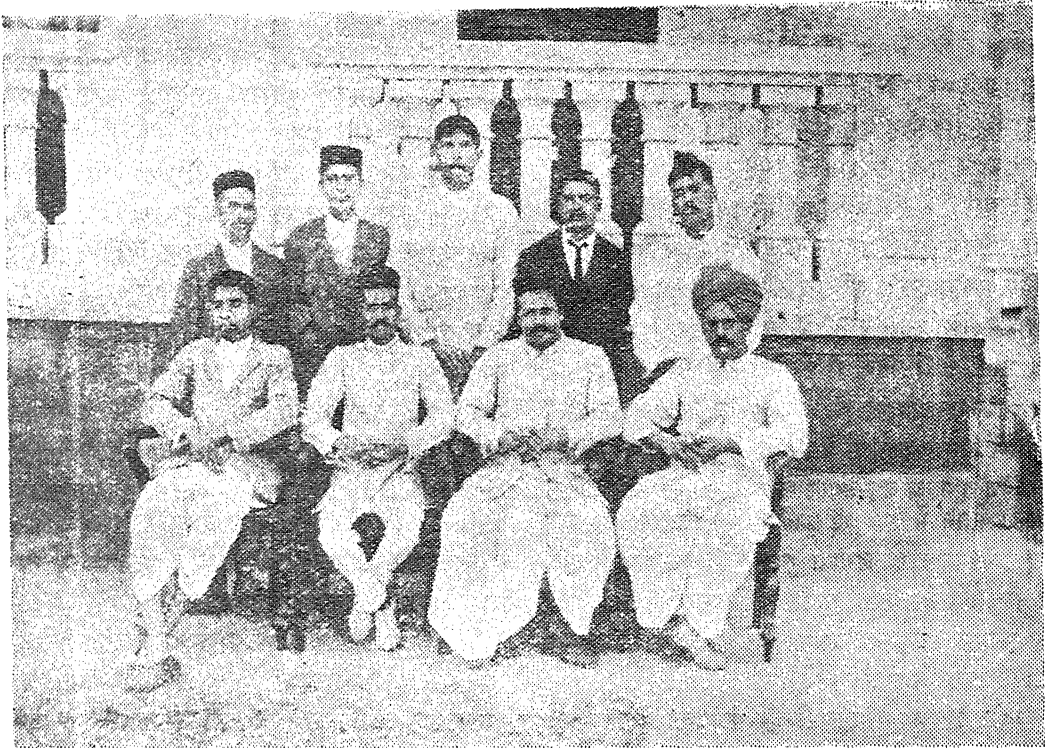
न्यू होस्टल (आज का अमरनाथ झा होस्टल) में (१९१२ ई०)

बाईं ओर से :—

प्रथम पंक्ति खड़े—(१) श्री चिन्तामणि बैजनाथ पंडित (इस समय सदस्य, लोक-सेवा आयोग, मध्य भारत)

(२) श्री भैरव दत्त तिवारी, (नैनीताल)

(३) श्री बी० एस० तम्मा (स्वर्गीय—वाइसप्रिंसिपल, मेरठ कालेज)।

(४) श्री हर प्रसाद वर्मा, रेलवे कंट्रैक्टर, मुकामा। (५) श्री धनेश्वर प्रसाद ठाकुर।

द्वितीय पंक्ति बैठे :—(१) श्री एन० के० सूर (२) श्री सालिगराम जी भार्गव (टोपी पहने हुए)

(३) श्री दादा शुक्ल (संदिग्ध नाम) (४) श्री गोपाल स्वरूप भार्गव

के सामने ही मकान लिया था। नित्य भेंट हुआ करती थी। शाम को जब जर्मन युद्ध की चर्चा चलती थी तो वह भी हो जाने पर मैं वहाँ कार्यालय में पहुँच जाता था। खन्ना जी भी सी० ए० वी० स्कूल से सीधे वहाँ आ जाते थे। उन्हीं

के सदुद्योग से के० सी० भल्ला ने विज्ञान का प्रकाशन आरम्भ किया। खन्ना जी मैनेजर का सब काम करते थे। सालिग्राम जी मंत्री थे। स्व० लाला सीताराम प्रधान मंत्री ही नहीं थे वरन् स्व० पं० श्रीधर पाठक के साथ सम्पादकद्वय में भी थे। विज्ञान का हिन्दी संसार ने बड़ा भारी स्वागत किया। यह गौड़ जी, और डा० झा तथा सम्पादकद्वय की ख्याति का ही परिणाम था।

बहुत दिनों से प्रयाग विश्व-विद्यालय में एक एम्प्रेस विक्टोरिया रीडरशिप का फंड चला आता था। वह कभी-कभी म्योर कालिज के अन्वेषण-कर्ताओं को मिल जाया करता है। पहले-पहल डा० झा के प्रयत्न से वह श्री सालिग्राम जी को हिन्दी में वैज्ञानिक ग्रन्थ लिखने के लिए मिला। पहले उनका विचार था कि "बिजली का प्रकाश" नामक ग्रन्थ का अनुवाद करें परन्तु प्रकाशकों ने आज्ञा न दी। इसीलिए "चुम्बक" नाम की पुस्तक विज्ञान में छपने लगी और उसका पुनः मुद्रण करा के पुस्ताकाकार बनती गई। लगभग एक साल तक यह काम चलता रहा। तदनन्तर सालिग्राम जी विद्युत्शास्त्र पर लेख लिखने लगे। विज्ञान के पुराने अंकों में ये लेख मौजूद हैं और पुस्तकाकार छापे जा सकते हैं।

सालिग्राम जी ने मंत्री, प्रधान मंत्री, सभापति और उपसभापति के रूप में परिषद् की सेवा सन् १९१३ से लेकर ५३ तक की। इस ४० वर्ष के समय में परिषद् तथा विज्ञान चलते रहे, यही बहुत बड़ा काम था। सन् १३ में तो बहुत से अध्यापकगण ही नहीं, प्रत्युत हिन्दी के प्रेमी और अन्य लेखक भी बड़े सन्देह से इस कार्य को देखते थे। उन्हें कदापि आशा न थी कि यह काम चल निकलेगा।

गौड़ जी के पुराने मित्र डा० गणेशप्रसाद भी उनकी तथा झा साहब की प्रेरणा से परिषद् के सदस्य बन गये थे। वह आजन्म ब्रह्मचारी ही रहे। विवाह और पुत्री का जन्म उनके ब्रह्मचर्य में बाधक नहीं थे। पत्नी के मर जाने के पश्चात् वह बड़ा त्यागमय जीवन व्यतीत करते रहे। कहा जाता है कि वह बड़े रूखे आदमी थे, परन्तु व्यवहार से सिद्ध हुआ कि वह बड़े सच्चे मित्र हैं। परिचय हो जाने के बाद जब वह प्रयाग आते थे तब अवश्य मिलकर जाते थे। यदि अनुपस्थिति में आते तो कार्ड अवश्य छोड़ जाते। विज्ञान परिषद् से उन्हें अगाध प्रेम था। उन्हीं के प्रयत्न से परिषद् को ६००) सालाना राजकोष से सहायता मिलने लगी। इस धन का उपयोग करने के लिए श्री महावीरप्रसाद जी ने पहले विज्ञान प्रवेशिका भाग २, और गुरुदेव के साथ यात्रा दो पुस्तकें लिखीं। तदनन्तर सूर्य सिद्धान्त का अध्ययन आरम्भ किया और उस पर विज्ञान भाष्य की रचना कर डाली। इसी समय स्वर्गीय डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा भी प्रो० ब्रजराज के पुराने सहपाठी और गौड़ जी के विद्यार्थी होने के नाते परिषद् में काम करने लगे। वह अपनी पुस्तक 'हमारे शरीर की रचना' पहले परिषद् को दे रहे थे परन्तु धनाभाव के कारण परिषद् के अस्वीकार करने पर स्वयं उन्होंने ही पुस्तक छपवा डाली। यह एक बड़ा मारके का काम था।

हमें खेद है कि सन १३ में परिषद् के संस्थापकों में से न डा० झा, न रामदास गौड़, न प्रोफेसर नामी हैं। बचे थे हमारे मित्र सहकारी और पुराने साथी श्री सालिग्राम जी। मरना तो एक न एक दिन सभी को है। परन्तु इतनी जल्दी मरने की आशंका न थी, इसीलिए दुख भी उतना ही अधिक है। साल भर से उनका स्वास्थ्य बिगड़ा हुआ था, तो भी वह सोच रहे थे कि भौतिक शास्त्र के इन्टर और बी० एस-सी० के पाठ्यग्रन्थ प्रकाशित किये जायँ। अफसोस है कि यह काम पूरा न हो सका।

सन् १८८८ के दिसम्बर मास में उनका जन्म हुआ था सन् १९४८ में ६० वर्ष पूरे होने पर उन्हें प्रयाग विश्वविद्यालय से अवकाश ग्रहण करना पड़ा। वह पूर्णतया तब तक स्वस्थ थे और पूरा परिश्रम किया करते थे। प्र० वि० वि० का भौतिक विभाग उन्हीं का बनाया हुआ है, परन्तु अभाग्य वश अपरिणामदर्शी कार्यकर्ताओं ने उनको आगे काम करने का अवसर नहीं दिया। १६ सितम्बर के प्रातः काल ५-४० पर उनका देहावसान हो गया। उस दिन सात बजे मैं बाजार गया था और पहले दिन का हाल सुनकर सोच रहा था कि उस दिन उनसे मिलूँ, परन्तु घर पहुँचते ही उनकी मृत्यु का समाचार मिला। ऐसे पवित्र और परोपकार-रत जीवन का इस प्रकार असमय निधन होते दुख होता है। कितने विद्यार्थियों की वह गुप्त रीति से सहायता करते थे। अपने धनहीन सेवकों और संबन्धियों को धन देते थे।

प्रयाग में एक धर्मशाला बनवाई है जो दारागंज में स्थित है। प्रयाग वि० वि० को भी उन्होंने २०००) दान दिया था। आगरे बोर्डिङ्ग हौस में सब छात्र उन्हें "भाई साहब" कहा करते थे। आज हमारे अभाग्यवश वह नहीं है, परमात्मा उनकी आत्मा को सुख दे और उनके कुटुम्बियों को शान्ति।

उर्दू विभाग

हिन्दी का वैज्ञानिक साहित्य तो बहुत कुछ सम्पन्न हो गया है। उर्दू के साहित्य की पुष्टि के लिए परिषद् के आरम्भ काल में बहुत प्रयत्न किया गया था। विज्ञान प्रवेशिका भाग १ और भाग २ के उर्दू रूपान्तर भी छपवाये गये थे। जब अजमेर निवासी पं० प्रेम वल्लभ जोशी ने "ताप" नाम की पुस्तक लिखी तो उसका भी रूपान्तर "हरारत" के नाम से छापा गया, "पशुपक्षियों का शृङ्गार" का उर्दू रूपान्तर "जीनत वहशवतयर" भी प्रकाशित हुआ परन्तु इन पुस्तकों की बिक्री न हुई और स्टाक में पड़ी ही रह गईं। विज्ञान के प्रकाशन होने पर बहुत प्रयत्न किया गया कि उर्दू में भी ऐसे माहवारी रिसाले का प्रकाशन किया जाय, परन्तु न तो प्रकाशक ही मिला और न उर्दू-प्रेमियों ने परिषद् से सहयोग किया। श्री सालिग्राम जी ने स्कूल में उर्दू और फारसी पढ़ी थी, उनको इन भाषाओं से भी उतना ही प्रेम था जैसा हिन्दी से। उर्दू प्रेमी समझते थे कि अलीगढ़ और हैदराबाद के मुकाबले में यहाँ कुछ काम न हो सकेगा।

विज्ञान परिषद ने ४० वर्ष में इतना साहित्य एकत्रित कर दिया है कि वह हिन्दी के लिए गर्व की बात कही जा सकती है। वर्तमान कार्यकर्ताओं को देखते हुए यह पूर्ण आशा है कि हिन्दी पिछड़ी न रहेगी। डा० गोरख प्रसाद, डा० सत्यप्रकाश आदि बड़े तगड़े लेखक हैं जिन से बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं। जगपति चतुर्वेदी, जिन्होंने विज्ञान परिषद में ही जीवन आरम्भ किया, अब अच्छे लेखक बन गये हैं। उनके ग्रन्थ सराहनीय हैं।

कुटुम्ब

सालिग्राम जी का विवाह छोटी अवस्था में ही सागर-निवासी पं० मूलचन्द जी की द्वितीय सुपुत्री श्रीमती अशर्फी देवी के साथ हो गया था। पहले उनके पुत्र १९१० में हुआ जो छोटी उम्र में जाता रहा तदनन्तर एक पुत्री ललिता देवी हुईं, जिनका विवाह मथुरा के रईस श्री रघुनाथदास के साथ हुआ है। पं० रघुनाथ दास अच्छे व्यापारी हैं। उनके दो पुत्र एम० एस-सी० हैं। सालिग्राम जी की धर्मपत्नी बड़ी धार्मिक वृत्ति की हैं। भजन-कीर्तन, दान पुण्य से आपको विशेष प्रेम है। आप एक सदावर्त चला रही हैं। अपने पुरोहित को आपने ४०००) का मकान मथुरा में दिया है। अपने नवासों नवासियों को यहाँ शिक्षा दिलवा रही हैं। प्रयाग का बंगला आपने अपनी पुत्री के नाम लिख दिया है। पं० द्वारिका प्रसाद जी के एक पुत्र मुन्ना लाल हैं जो अलवर में एकौंटेंट है। पं० रामजीवन लाल जी के दो पुत्र हैं। डा० रामचन्द्र जो आजकल अलीगढ़ में हैं। दूसरे पं० शत्रुघ्न एम० ए० जो किशोरी रमन कालिज मथुरा में हिन्दी के लेकचरर हैं।

औद्योगिक काम

सन् १४ में जब पहला जगत् युद्ध छिड़ चुका था तो ब्लीचिंग पौडर मिलना कठिन हो गया था। सालिग्राम जी ने ब्लीचलिकर बनाने का प्रयत्न किया। तदनन्तर लखनऊ पेपर मिल में स्वर्गीय गोपाल प्रसाद जी (रईस आगरा) के कहने से गये और १९१५ की छुट्टियों में काम किया। वह ब्लीच बनाने की वहाँ व्यवस्था कर आये।

सन् १९१४ में उन्होंने श्री भगवानदास वकील तथा पं० रामेश्वर प्रसाद भार्गव के साथ मिलकर नैनी में स्थित मि० कांगा का कांच का कारखाना चलाया, जो कुछ दिन से बन्द था। दो साल बाद उन्होंने उसमें काम करना बन्द कर दिया, परन्तु कारखाने ने पर्याप्त उन्नति कर ली थी और शेष हिस्सेदारों ने लाखों रुपया पैदा कर लिये! इस समय उसके एक मात्र मालिक है पं० कामेश्वर प्रसाद भार्गव।

आगरे के बरफखाने में भी अमोनिया की कमी हो गई। बाजार में मिलना प्रायः बन्द सा ही हो गया था। पं० गोपाल प्रसाद जी ने इनको बुलाकर अमोनिया बनवाने का प्रबन्ध कराया जो सफल रहा। जिन जिन उद्योगों में इन्होंने हाथ लगाया था, उनको सफल किया।

सन् १९१०-११ तक हम लोग हिन्दू बोर्डिङ्ग हौस में महेश जी के साथ रहे। सन् ११ में महेश जी तथा सालिग्राम

जी बी० एस-सी० और प्रीवियस एम० एस-सी० पास कर चुके थे। प्रिंसिपेल जेनिंग्स को बड़ा शौक था कि न्यूहोस्टेल में पोस्ट ग्रैजुएट ही रहें, अतएव इन दोनों को वहाँ जगह दी। तब भी हम दोनों सायंकाल को बड़ी लम्बी सैर करने जाते थे। सन् १२ में सालिग्राम जी ने एम० एस-सी० पास किया और रिसर्च करने लगे। महेश जी फाइनेल एम० एस-सी० में थे। मैं बी० एस-सी० पास कर चुका था, मुझे भी न्यू हौस्टेल में कमरा मिल गया। शाम की सैर का क्रम जारी रहा। सन् १३ की जौलाई में सालिग्राम जी ने कटरे में मकान ले लिया, तथापि शाम की सैर जारी रही। सैर में शामिल होने वाले लखनऊ के अवसरप्राप्त प्रोफेसर डी० बी० देवधर, आगराकालिज के अवसरप्राप्त देशपाण्डे, अवसरप्राप्त चुन्नीलाल साहनी (डैरैक्टर ओव पबलिक इंस्ट्रकशन) रहते थे। बाद में श्री निहाल करन सेठी, प्रिंसिपेल, आगरा कालिज, पं० श्यामा चरण,(अवसरप्राप्त प्रिंसिपेल, कान्यकुब्ज कालिज) प्रोफेसर एन० के० सूर एम० एस-सी०, स्व० बी० एस० तम्मा आदि भी सैर के साथी बन गये। न्यूहोस्टल का जीवन बड़ा ओजपूर्ण तथापि शान्त था। इस प्रकार यह कार्यक्रम भी सन् २०, २१ तक चलता रहा। सन् १९१४ में मैं कायस्थ पाठशाला में भौतिक विभाग का अध्यक्ष हो गया और कटरे में ही मकान लेकर रहने लगा। महेश जी भी एकौण्टेण्ट जेनेरल के दफ़तर में हो गये थे वह बाद में इङ्गलैंड चले गये और पेपर एक्स पर्ट हो गये।

१९१४ के कार्यकर्ताओं में से खेद है कि अब केवल दो ही बचे है—श्री हीरा लाल खन्ना और मैं। हम लोग चाहते हैं कि परिषद के काम का संघटन हो जाय और परिषद का भवन निर्माण हो जाय।

(१४वें पेज का शेषांश)

में उनका स्वास्थ्य सुधरने लगा था। वह ज्वरमुक्त हो गए थे और आशा की जाती थी कि वह धीरे धीरे पूरा स्वास्थ्य लाभ करेंगे। सोचा था कि जब उनके स्वास्थ्य में पर्याप्त सुधार हो जायगा तब मिलूँगा। पर ईश्वर की कुछ और ही इच्छा थी, अकस्मात वह इस संसार को छोड़कर चल दिए। उन जैसे साधु और सज्जन मनुष्य कभी कभी ही जन्मते हैं। मैं उनकी आत्मा की शान्ति के लिए प्रार्थना करते हुए तथा उनके कुटुम्बियों तथा मित्रों के साथ संवेदना प्रगट करते हुए पुनः अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ। ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

डा० नंदकुमार जी तिवारी भार्गवजी के पुराने साथी छात्रों में से हैं तथा विज्ञान परिषद् के पुराने सदस्य और वैज्ञानिक साहित्य के अनन्य सेवी हैं। आपकी संक्षिप्त श्रद्धांजलि महत्वपूर्ण है।

मेरी श्रद्धांजलि

डा० नन्दकुमार तिवारी, आजीवन सदस्य, विज्ञान परिषद
तथा भूतपूर्व प्राध्यापक, वनस्पति विभाग
काशी विश्व विद्यालय

स्वर्गीय श्री शालिग्राम जी भार्गव के प्रति संस्मरण के रूप में मैं अपनी श्रद्धांजलि सादर अर्पित करता हूँ।

स्वर्गीय भार्गव जी से मेरा प्रथम परिचय १९१० ई० में हुआ था जब मैं प्रयाग विश्वविद्यालय के म्योर सेन्ट्रल कालेज में बी० एस-सी० पढ़ने आया था। वह हिन्दू छात्रालय में जो आजकल 'मालवीय कालेज के नाम से प्रसिद्ध है, मेरे मित्र तथा सहपाठी श्री गोपाल स्वरूप जी भार्गव के साथ एक ही कमरे में रहते थे, इसी छात्रावास में मुझे भी निवासस्थान मिला था। मैं १९१३ सितंबर तक उक्त छात्रावास में रहा और १९१० से लेकर उस समय तक मेरा भार्गव जी के साथ संसर्ग रहा।

मेरे ऊपर उनकी प्रकृति व स्वभाव का बड़ा प्रभाव पड़ा। आपकी वेशभूषा, स्वभाव तथा प्रकृति और जीवन, सब एक ही साँचे में ढले—सभी बड़े ही सीधे-सादे तथा सात्विक प्रवृत्ति के थे, और सदा ही वैसे रहे। बन्द गले का लम्बा कोट, छपा हुआ जैपुरिया साफ़ा तथा धोती या चूड़ीदार पैजामा आप बराबर पहनते थे और अंत तक यही उनका पहनावा रहा।

जहाँ तक मुझे स्मरण है मैंने आपको कभी किसी खेल कूद में सम्मिलित होते नहीं देखा; न टहलने के सिवाय कभी कोई व्यायाम ही करते देखा। वाद-विवाद में भी विशेषकर राजनैतिक विषयों पर, जैसा कि और छात्रों का स्वभाव था, मैंने उनको कभी भाग लेते नहीं देखा, आप बड़े स्वाध्यायी स्वभावतः थे और आप तथा श्री गोपाल स्वरूप जी विद्यालय जाने के पहले, वहाँ से लौटने पर, पढ़ने में तत्पर तथा तल्लीन रहते थे।

आपका सदा ही बड़ा साधु स्वभाव रहा। कभी मैंने उनको क्रोधित नहीं देखा। क्रोधित होना उनकी प्रकृति के विरुद्ध था और वह सबसे मृदुभाव से मिलते तथा बातचीत करते थे। जीवन-पर्यन्त यही बात रही, मानों अपने माता के दूध के साथ उन्होंने उसे पान किया था।

विज्ञान परिषद के तो आप बड़े उत्साहपूर्ण मूल सूत्रधारों में से थे, और आजन्म, विविध रूप तथा विविध पदों पर आसीन होकर, अथक और अकथनीय तथा विलक्षण सेवा की। कई एक वैज्ञानिक पुस्तकें भी आपने लिखीं जो हिन्दी जगत में विज्ञान के प्रसार में बड़ी सहायक हुईं।

लगभग तीन वर्ष से जब काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से अवकाश ग्रहण करने के पश्चात मैं प्रयाग में रहने लगा हूँ मेरा सौभाग्य रहा है कि उनसे बराबर समय समय पर भेंट हुआ करती थी। अवकाश प्राप्त करने पर भी प्रयाग विश्वविद्यालय के अधिकारी तथा अध्यापक उनसे परामर्श किया करते थे। लगभग प्रतिदिन बराबर हाल ही में मैंने उनको विश्वविद्यालय के विज्ञान विभागों में आते और लोगों को सलाह देते देखा।

विज्ञान के ज्ञान कोश निकालने की योजना जब से बनी तब से उनसे कई बार मिलने व परामर्श करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, इस विषय पर उनके बड़े गंभीर तथा मौलिक और महत्वपूर्ण विचार थे। यदि ईश्वर ने कुछ वर्षों की आयु उन्हें और प्रदान की होती तो मुझे विश्वास है कि ज्ञान कोश बड़ी सफलता से सम्पन्न होता। पर दुर्भाग्यवश कुछ दिनों से उनका स्वास्थ्य बराबर गिरता ही गया। इस बीच मैं कई बार उनसे उनके निवास-स्थान पर मिला। अन्तिम बार उनसे जुलाई के अन्त के लगभग में मिला था। उस समय वह बड़े दुर्बल दिखाई पड़े, यहाँ तक कि मैं उनकी बोली भी ठीक तरह से न सुन सकता था। हाल

(शेष पेज १३ पर)

श्रद्धांजलि

लेखक—डा० निहाल करण सेठी, डी० एस-सी०,
प्रिंसिपल, आगरा कालेज, आगरा

डा० सेठी प्रो० सालिगराम जी भार्गव के अत्यन्त पुराने छात्रों में से हैं। आपने आदर पूर्वक लिखा है, "स्वर्गीय भार्गव जी के चरणों में बैठकर भौतिक विज्ञान के सम्बन्ध में जो कुछ पूँजी मैं संचय कर सका उसी के सहारे मेरा काम पिछले ४० वर्षों में चला है।"

जब अचानक यह दुखदायी समाचार प्राप्त हुआ कि श्रद्धेय प्रोफ़ेसर श्री सालिगरामजी अब इस असार संसार में नहीं रहे तब हार्दिक शोक का होना तो स्वाभाविक ही था। किन्तु उससे भी अधिक मन को एक दूसरे ही प्रश्न ने चिंतित कर दिया। जिस सौम्य मूर्ति के आशीर्वाद और प्रोत्साहन से मेरे ही नहीं, मेरे जैसे उनके अनेक विद्यार्थियों के जीवन की प्रगति होती थी उसके अभाव की पूर्ति अब कैसे होगी? क्या यह पूर्ति होना संभव है? यों तो प्रत्येक विद्यालय में अनेक अध्यापक होते हैं और इन अध्यापकों का उनके छात्रों के जीवन पर कुछ न कुछ प्रभाव पड़ता ही है। किन्तु कुछ, बहुत थोड़े, ऐसे भी होते हैं कि जिनका असर अधिक गहरा और अमिट होता है। स्वर्गीय प्रोफ़ेसर साहिब ऐसे ही व्यक्ति थे। अत्यन्त सादगी का जीवन, परोपकार की भावना से सदा ही ओतप्रोत, शिष्यों से पुत्रवत् स्नेह, मिष्ठ-भाषण, निश्छल प्रकृति, कर्तव्यनिष्ठा, स्वार्थ-त्याग आदि उनके व्यक्तित्व की कितनी ही बातें हैं जिनका असर उनके संसर्ग में आनेवालों पर पड़े बिना रह ही नहीं सकता था। उन्हें अपने उच्चपद का जरा भी अभिमान नहीं था। अपने विद्यार्थियों के साथ बर्ताव करने में वे बिलकुल भूल जाते थे कि वे गुरु हैं। उनका व्यवहार सबसे मित्रवत् ही होता था।

मेरा परिचय उनसे तब हुआ था जब सन् १९११ से १९१५ तक मैं म्योर सेन्ट्रल कालेज का विद्यार्थी था और विशेष कर अंतिम दो वर्षों में जब मैं भौतिक विज्ञान में एम० एस-सी० परीक्षा की तैयारी कर रहा था, तब हमारे प्रोफ़ेसर थे ड्यूरैक साहिब। हमारे सौभाग्य से ही कहिये, ड्यूरैक साहिब ने एक वर्ष की लम्बी छुट्टी ली, ठीक उसी समय जब मैं प्रीवियस में दाखिल हुआ। तब भार्गव साहिब नये नये थे और पूरी तरह लेकचरर भी नहीं हुए थे। तथापि एम० एस-सी० की पढ़ाई का सारा भार उन्हीं पर आ पड़ा। उस समय भौतिक विभाग में कोई दूसरा अध्यापक न था जो इस ज़िम्मेदारी को लेने के लिए तैयार होता। उस वर्ष जिस खूबी के साथ हम लोगों की पढ़ाई हुई वह भूलने की वस्तु नहीं है। तब ही हम विद्यार्थियों में भौतिक विज्ञान के लिये रुचि पैदा हुई। तब ही पुस्तकालय से पाठ्य पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य पुस्तकें पढ़ने का शौक लगा। और तब ही अनेक प्रकार के भौतिक यंत्रों का स्वच्छन्दता से प्रयोग करने का साहस पैदा हुआ।

स्वर्गीय प्रोफ़ेसर साहिब ने सदा परीक्षा को गौण समझा। उन्होंने कभी यह प्रयत्न नहीं किया कि नोट लिखाकर या संभावित प्रश्नों के उत्तर लिखाकर विद्यार्थियों को जिस तिस प्रकार पास करा दें। उनका ध्येय सदा यही रहा कि विद्यार्थी में स्वयं ऐसी शक्ति पैदा हो जाय कि वह अपने ही प्रयत्न से समस्याओं का हल निकालने में सफल हो सके। इसी लिये हमें अनेक पुस्तकों में ढूंढ खोज करना पड़ा और इसी लिये एक एक प्रयोग की सफलता के लिये कभी कभी तीन चार सप्ताह तक लगातार परिश्रम करना पड़ा। और अब मुझे यह कहने में ज़रा भी संकोच नहीं है कि उस समय स्वर्गीय भार्गव साहिब के चरणों में बैठकर भौतिक विज्ञान के सम्बंध में जो कुछ पूंजी मैं संचय कर सका था उसी के सहारे मेरा काम पिछले ४० वर्षों में चला है।

दूसरे वर्ष ड्यूरैक साहिब छुट्टी से लौट तो आये परन्तु हमारी पढ़ाई का कार्य भार्गव साहब ही के ज़िम्मे रहा।

जहाँ तक मुझे याद है ड्यूरैक साहब ने केवल एक ही व्याख्यान हमें दिया था और वह भी वर्ष के अन्त में जब हम लोगों ने उनसे विशेष प्रार्थना की थी। वह व्याख्यान भी १० मिनट से अधिक नहीं चला था। और फिर कभी वह पूर्ण भी नहीं हुआ। किन्तु इससे हमें कोई असुविधा नहीं हुई थी क्योंकि हमें तो भार्गव साहब का सहारा था ही। जहाँ अपैरेटस और यंत्रों के प्रयोग का प्रश्न होता था वहाँ तो बिना भार्गव साहब की सहायता के कुछ हो ही नहीं सकता था। जब कोई नया यंत्र आता तो भार्गव साहिब ही सबसे पहिले उसे हाथ लगाते। और लोगों का साहस ही नहीं होता था। जब कोई यंत्र बिगड़ जाता तब भार्गव साहिब ही उसे ठीक करते। डा० मेघनाद साहा और डा० कृष्णन भी जब प्रयाग में थे तब प्रोफ़ेसर भार्गव की इस क्षमता के प्रशंसक थे और इस तरह का प्रत्येक काम तथा प्रयोगशाला का प्रबंध उन्होंने इन्हीं के हाथों में छोड़ दिया था।

उस समय मेरे साथ ही प्रो० भार्गव के जो विद्यार्थी प्रयाग में थे उनमें से कुछ के नाम ये हैं :—

(१) डा० नलिनीकान्त सूर जो बाद में मेटीरियालाजिकल विभाग में उच्चपद पर चले गये थे और वहाँ से अब अवकाश ग्रहण कर चुके हैं और प्रयाग में ही निवास करते हैं।

(२) श्री वी० एस० तम्मा जो मेरठ कालेज में भौतिक के सर्वप्रिय मुख्याध्यापक थे। दुःख है कि उनका असमय में ही देहावसान हो गया।

(३) श्री चुन्नीलाल साहनी जो युक्त प्रदेश के शिक्षा संचालक के पद पर पहुँचकर अवकाश ग्रहण कर चुके हैं और अब अन्यत्र रेलवे पब्लिक सर्विस कमीशन का महत्व पूर्ण कार्य कर रहे हैं।

(४) श्री जगत बिहारी सेठ जो पीछे केम्ब्रिज चले गये थे और फिर पंजाब युनिवर्सिटी में भौतिक विज्ञान के अध्यक्ष रहे। और अब भी पंजाब में शिक्षा विभाग में उच्चपद पर कार्य कर रहे हैं।

ये तथा और भी अनेक विद्यार्थी सदा प्रो० भार्गव के प्रति अत्यन्त आदर तथा सम्मान का भाव रखते रहे हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि ये सब मुक्तकंठ से स्वीकार करेंगे कि उनके जीवन पर जितना प्रभाव प्रो० भार्गव का पड़ा शायद उतना किसी भी अन्य अध्यापक का नहीं पड़ा। इनके अतिरिक्त ४० वर्ष के दीर्घ अध्यापन काल में कितने विद्यार्थियों ने उनके जीवन और उदाहरण से लाभ उठाया है उसका अंदाज़ा लगाना कठिन है। युक्त प्रदेश ही नहीं उसमें संलग्न अन्य प्रदेशों में भी भौतिक के जितने अध्यापक हैं प्रायः वे सब ही या तो स्वयं भार्गव साहब के शिष्य हैं या वे उनके शिष्यों के शिष्य हैं।

हिन्दी भाषा से उन्हें बहुत ही प्रेम था और वे सदा यही स्वप्न देखा करते थे कि विज्ञान के ऊँचे से ऊँचे साहित्य की हिन्दी भाषा में रचना हो जाय। एम० एस-सी० पास करते ही उन्होंने इस कार्य का प्रारम्भ कर दिया था और सबसे पहले "विज्ञान प्रवेशिका" नामक पुस्तक स्वयं लिख कर प्रकाशित कराई थी। विज्ञान परिषद् के तो वे जन्मदाताओं में थे ही। "विज्ञान" मासिक पत्र भी आप ही के उत्साह और परिश्रम से प्रकाशित होने लगा था। उन्हीं की प्रेरणा से उनके अनेक विद्यार्थियों में हिन्दी भाषा में वैज्ञानिक साहित्य लिखने का शौक पैदा हुआ था। और यद्यपि कुछ समय के बाद ही हम लोगों में निराशाजन्य शिथिलता आ गई थी तथापि भार्गव साहब का उत्साह ज्यों का त्यों बना रहा। तब से अब तक अनेक कठिनाइयों और आर्थिक संकटों के रहते हुए भी आप ही की देख-रेख में "विज्ञान" और "विज्ञान परिषद्" हिन्दी भाषा की गौरव-पूर्ण सेवा करते रहे हैं। आपके न रहने से इन दोनों की जो हानि हुई है उसकी पूर्ति होना कठिन ही नहीं प्रायः असम्भव ही है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि स्वर्गीय प्रो० भार्गव का अनुकरणीय उदाहरण दीर्घकाल तक हमारे नवयुवकों और विशेष कर अध्यापकों के लिए मार्ग दर्शन करता रहेगा और उन्हें अत्यन्त सादे और सरल जीवन के साथ उच्च आदर्श रखकर देश और मातृ-भाषा की सच्ची सेवा करने की प्रेरणा करता रहेगा।

स्वर्गीय प्रो० सालिगराम भार्गव

विज्ञान परिषद् की नई पीढ़ी के कार्यकर्ताओं में अग्रसर रह कर डा० सत्य प्रकाश जी अब स्वयं वृद्ध हो चले हैं। आपने भार्गव जी के सम्पर्क में रह कर वैज्ञानिक साहित्य निर्माण का जो अनुभव लिखा है वह नई पीढ़ी के लेखकों के लिए प्रकाश-स्तम्भ ही कहा जा सकता है।

लेखक—डा० सत्य प्रकाश, डी० एस-सी०,
रीडर, रसायन विभाग, प्रयाग वि० वि०
तथा सम्पादक 'विज्ञान'

सायंटिफिक रिसर्च कमेटी, संयुक्तप्रान्त, की मीटिंग के संबंध में मैं देहरादून गया हुआ था। अपने मित्र श्री कुंज बिहारी मोहनलाल, डाइरेक्टर आव् फोरेस्ट एडुकेशन के घर ठहरा था। १८ ता० के प्रातःकाल का कोई दैनिक समाचार पत्र पढ़ने के अनन्तर कुंजबिहारी जी मेरे पास आए और उन्होंने कहा, कि "आपके सालिगराम जी की तो मृत्यु हो गयी।" मैंने पूछा, "कौन सालिगराम जी" उत्तर मिला कि वही जो प्रयाग विश्वविद्यालय के फिजिक्स विभाग के प्रोफेसर थे। यह समाचार मेरे लिए दुःखद संवाद ही नहीं, प्रत्युत् आशातीत संवाद था क्योंकि जब मैं प्रयाग से चला, तब तो प्रोफेसर भार्गव की इस प्रकार की चिन्तनीय अवस्था का किसी ने संकेत भी नहीं किया था। प्रोफेसर भार्गव कुछ दिनों से बीमार अवश्य थे। आँखों में मोतियाबिन्द का कष्ट था, इधर टायफॉयड ज्वर भी हुआ था, पर मुझे तो यही बताया गया कि क्लोरोमाइसेटिन के प्रयोग से उनका ज्वर उतर गया था। इधर कुछ दिनों कामों में इतना व्यस्त रहा, कि यूनिवर्सिटी ग्राण्ट्स कमेटी के दफ्तर में जो उनके पड़ोस में ही है; जाता भी था पर उनके दर्शन न हो सके। प्रोफेसर भार्गव बहुधा टेलीफोन करने इस दफ्तर में आया करते थे, और मेरी उनकी बराबर भेंट होती रहती थी। मेरे मन में यह ग्लानि बनी रही कि अन्तिम समय में प्रोफेसर भार्गव के दर्शन न कर पाया।

जिस समाचार पत्र में से मेरे मित्र कुंजबिहारीजी ने भार्गवजी की मृत्यु का संवाद सुनाया, उसमें यह नहीं लिखा था कि भार्गव जी को मृत्यु किस दिनांक को हुई। २० सितम्बर के सायंकाल को जब मैं प्रयाग स्टेशन उतरा और मैंने अपने पुत्र अरविन्द से पूछा कि भार्गव जी की मृत्यु किस दिन हुई, तो उसने मुझे बताया कि जिस दिन मैं प्रयाग से देहरादून के लिए चला था अर्थात् १६ सितम्बर को उसी दिन प्रातःकाल प्रोफेसर भार्गव की मृत्यु हुई थी। १६ ता० का दैनिक पत्र लीडर तो मैं घर से पढ़कर चला था। यह बात मेरी कल्पना में आ ही नहीं सकती थी, कि जिस समय मैं प्रयाग स्टेशन से ९ बजे के लगभग रेल में सवार आगे जा रहा था, इस स्टेशन से कुछ गजों की दूरी पर हो प्रोफेसर भार्गव की निष्प्राण पंचतात्त्विकी काया अन्तिम निद्रा में पड़ी हुई है। मेरा और प्रोफेसर भार्गव का ३३ वर्षों का संबंध था, और मैं उनके अन्तिम दर्शन भी न कर सका।

हिन्दी माध्यम से विज्ञान पढ़ाने वाले मेरे आदि-गुरु

सन् १९१९-२० की बात है, तेतीस वर्ष पुरानी। हिन्दी साहित्य सम्मेलन को स्थापित हुए ६-७ वर्ष हुए होंगे सम्मेलन का एक अधिवेशन घंटाघर के पास चौक में, जहाँ पहले विद्यामन्दिर स्कूल था, हुआ था। संभवतः श्रीधर पाठक जी अध्यक्ष थे, बाबू भगवानदास जी भी सम्मिलित हुए थे। उस अधिवेशन में मैं भी पहुँच गया था। कायस्थ पाठशाला की आठवीं-नवीं कक्षा का विद्यार्थी था। वहाँ मैंने सुना कि सम्मेलन की ओर से प्रथमा और मध्यमा परीक्षाओं की व्यवस्था है, और सम्मेलन ने इन परीक्षाओं की तैयारी के लिए एक "हिन्दी विद्यापीठ" संस्था खोल रक्खी है। बचपन में मुझे जितनी हिन्दी आती थी उसके अनुसार "विद्यापीठ" का "पीठ" शब्द आश्चर्यजनक ही

लगा, पर कुछ प्रवृत्ति यह हुई कि मैं भी क्यों न प्रथमा परीक्षा की तैयारी आरंभ कर दूँ। चौक के निकट जानसेन गंज की एक दूकान के ऊपर वाले कमरे में विद्यापीठ में प्रथमा और मध्यमा की पढ़ायी की व्यवस्था थी। हम लोग ६-७ विद्यार्थी रहे होंगे। यहीं वियोगी हरि जी से हम लोगों का प्रथम परिचय हुआ। उनकी ललित शुद्ध समासबद्ध भाषा और व्रज साहित्य का अनुराग मैंने उसी समय देखा। 'शुकदेव', 'प्रेम योगिनी' नाटक आदि की रचना इसी समय हुई, और उनकी 'तरंगिणी' से हम लोगों को कुछ वैसा ही स्नेह हो गया, जैसे किसी बंगाली को गीताञ्जली से होगा। साहित्य विषय का शिक्षण इस विद्यापीठ की प्रधानता थी। ऐच्छिक विषयों में से मैंने एक विषय "विज्ञान" भी लिया। देखता क्या हूँ कि एक दिन एक युवक साफा बांधे हुए विद्यापीठ में आया, और मुझे बताया गया कि इनका नाम सालिगराम भार्गव है और ये म्योर कालेज में प्रोफ़ेसर हैं। मेरे ऐसे स्कूल के विद्यार्थी के लिए "म्योर कॉलेज" और "प्रोफ़ेसर" ये दोनों ही शब्द आतङ्क के लिए काफी थे। फलतः प्रो० सालिगराम जी भार्गव ने हमारे ऐसे दो तीन विद्यार्थियों को हिन्दी में विज्ञान पढ़ाना आरंभ किया। पाठ्य पुस्तक इस विषय को थी, "विज्ञान प्रवेशिका" और उसके लेखक थे श्री रामदास गौड़ और प्रो० सालिगराम भार्गव। मैं अपने स्कूल में विज्ञान का विषय अंग्रेज़ी में पढ़ता था। कुछ दिन पूर्व मैंने अपने घर पर श्री महेशचरन सिंह की "हिन्दी केमिस्ट्री" और विद्युत् शास्त्र पर दो पुस्तकें देखी थीं जो मेरे पिताजी के पास थीं। मुझे स्मरण है कि बाराबंकी स्कूल में जब मेरे पिताजी थे, उन दिनों सरकार की ओर से विज्ञान विषयक पाठ्य पुस्तकों पर पारितोषिक देने की घोषणा हुई थी, और उसी स्कूल के विज्ञान विषय के एक अध्यापक के सहयोग से पिताजी ने हिन्दी और प्रारम्भिक वैज्ञानिक पुस्तकें तैयार की थीं, जो इस योग्य नहीं समझी गयीं, कि पारितोषिक मिल सकता।

अस्तु, मेरा ऐसा ख्याल है, कि विज्ञान के लेखकों में शायद मैं ही सबसे पुराना ऐसा व्यक्ति हूँगा, जिसने किसी परीक्षा के लिए हिन्दी माध्यम से विज्ञान विषय की शिक्षा किसी अध्यापक से पायी हो। मेरे ये अध्यापक प्रो० सालिगराम भार्गव थे, जो सप्ताह में एक दिन कटरा से पैदल चल कर चौक जाते थे, और पढ़ने के प्रति अति उदासीन विद्यार्थियों को पढ़ाने का प्रयास करते थे।

प्रो० भार्गव विद्यापीठ में पढ़ाने के लिए अधिक न आ सके। कारण यह था कि विद्यापीठ के विद्यार्थियों में दो-तीन ही तो विज्ञान विषय वाले विद्यार्थी थे, और वे भी ऐसे जो नियमित रूप से नहीं आते थे। कई बार प्रो० भार्गव तो कटरे से चौक पैदल चलकर आए, पर विद्यार्थियों का पता ही नहीं। थक कर अन्त में भार्गव जी ने भी आना बन्द कर दिया।

प्रयाग के एक भार्गव परिवार से मेरे पिताजी का संबंध पुराना था। स्नेह और घनिष्ठता के कारण किसी संस्कार आदि उत्सव के समय जब मैं उस परिवार में पहुँचता, तो वहाँ मुझे दो पगड़ीधारियों के दर्शन होते थे, जिन्हें मैंने बाद को जाना, कि एक तो गोपाल स्वरूप भार्गव जी हैं, जिनका साफ़ा सफ़ेद होता था, और दूसरे छींटदार साफे वाले प्रो० सालिगराम भार्गव थे।

प्रथमा परीक्षा के अध्ययन के लिए मैंने सालिगराम जी की विज्ञान प्रवेशिका पुस्तक पढ़ी और फिर दूसरे वर्ष मध्यमा परीक्षा में आपकी लिखी "चुम्बक" पुस्तक। यह पुस्तक लेखबद्ध रूप में "विज्ञान" मासिक पत्र में प्रकाशित हो चुकी थी। "विज्ञान प्रवेशिका" पुस्तक की समालोचनायें मैंने पढ़ीं, जिनसे स्पष्ट प्रतीत होता है, कि छोटी सी पुस्तक ने नये युग के अवतरण में कितनी सहायता दी। सभी दैनिक और मासिक पत्रों ने इसकी अच्छी समालोचना की थी। इस पुस्तक का दूसरा भाग मेरे मित्र स्वर्गीय श्री महावीर प्रसाद श्रीवास्तव ने लिखा था। इन दोनों विज्ञान प्रवेशिकाओं के लिखने वाले तीनों लेखक संसार से विदा हो चुके हैं—प्रो० रामदास गौड़ पहले गए, फिर श्रीवास्तव जी और अब प्रो० भार्गव जी। विज्ञान प्रवेशिकाओं के उर्दू संस्करण भी विज्ञान परिषद ने प्रकाशित किए थे।

विज्ञान परिषद् के संस्थापक

विज्ञान परिषद, प्रयाग की संस्थापना कैसे हुई, इसका उल्लेख महामहोपाध्याय डा० गंगानाथ झा ने स्वयं परिषद के रजतजयन्ती अंक में किया है। इसके संस्थापक थे म्योर कालेज के चार अध्यापक—स्वयं डा० गंगानाथ झा, श्री

रामदास गौड़, प्रो० हमीदुद्दीन और प्रो० सालिगराम जी भार्गव। इन चार विभूतियों में सालिगराम जी ही आयु में सबसे छोटे थे। उस समय २४ वर्ष के लगभग इनकी आयु थी। इनमें स्फूर्ति अधिक थी। चुपचाप काम करने वालों में से थे। विज्ञान परिषद् के प्राणदाता गौड़ जी थे, पर हृदय भार्गव जी थे। धीरे धीरे अन्य सभी का संबंध म्योर कालेज से छूट गया। गौड़ जी काशी विश्वविद्यालय चले गए, डा० झा पुरातत्व और प्राचीन साहित्य के विशेषज्ञ, पर दूरदर्शी व्यक्ति थे, और अन्त तक उन्होंने अपना वरदहस्त परिषद् पर रक्खा। परिषद् से प्रकाशित होने वाली लगभग सभी पुस्तकों के लिये उन्होंने आशीर्वचन लिखा। मेरी बीज-ज्यामिति अन्तिम पुस्तक थी, जिसके लिए उन्होंने दो शब्द लिखे थे।

म्योर कालेज से अन्य व्यक्तियों का जब संबन्ध अलग हो गया तो परिषद् के एक मात्र संरक्षक भार्गव जी इस कालेज में रह गये, वर्तमान युग से पूर्व सालिगराम जी, गोपाल स्वरूप जी और ब्रजराज जी इन तीन व्यक्तियों में परिषद् केन्द्रित हो गया। प्रो० सालिगराम जी में लेखक की प्रतिभा तो न थी। लिखने में संकोच भी करते थे, जहाँ तक हो सकता था लिखते न थे, पर व्यवस्था में सिद्धहस्त थे, और परिषद् के कार्य्य का नेतृत्व करते थे, भौतिक विभाग के अध्यक्ष चाहे डा० मेघनाद साहा रहे हों, चाहे डा० कृष्णन, पर प्रो० भार्गव के होने से भौतिक विभाग मात्र का सहयोग परिषद् को प्राप्त होता रहता था। इसीलिए यह परम्परा पड़ गयी थी कि परिषद् के वार्षिक अधिवेशन और व्याख्यान भौतिक विभाग के लेक्चर भवन में ही होते थे। कई वार्षिक अधिवेशनों पर प्रो० सालिगराम जी ने स्वयं व्याख्यान दिये, और ये व्याख्यान सरल सुगम शब्दों में होते थे। व्याख्यानों की भाषा आडम्बर-शून्य होती थी। "विज्ञान" में विद्युत् संबंधी कई धारावाही लेख भार्गव जी के छपे। हममें से अनेक ने भार्गव जी से कई बार आग्रह किया कि इन लेखों को शोध दीजिए जिससे ये पुस्तकाकार छप सकें। पर कई बार स्वीकृति देने पर भी भार्गव जी इस काम को पूरा न कर सके। भार्गव जी अनुभवशील अध्यापक थे, और विज्ञान का इन्हें व्यावहारिक ज्ञान बहुत था, और इनके विद्युत् विषयक लेख भी इस दृष्टि से बड़े काम के थे।

युवकों को प्रोत्साहन

प्रो० भार्गव स्वयं बहुत ही कम लिखते थे। विज्ञान के सम्पादन का कार्य्य सब के आरंभ में गौड़ जी, फिर गोपालस्वरूप जी, और फिर ब्रजराज जी करते रहे। यों तो "विज्ञान" पत्रिका के संपादकों में लाला सीताराम और पं० श्रीधर पाठक जी का नाम भी रहा है। प्रो० गोपालस्वरूप जी से मेरा परिचय १९२१ के लगभग हुआ। आप प्रभावशाली वक्ता, सु-अध्यापक और प्रतिभासम्पन्न लेखक थे। "मनोरञ्जक रसायन" रूप में आप के लेखों का संग्रह परिषद् से प्रकाशित हुआ। गोपालस्वरूप जी के कहने से ही मैंने दो तीन लेख यूनिवर्सिटी वाले अपने विद्यार्थी काल में दिए थे। यह बात १९२२-२३ की होगी। उन दिनों प्रो० सालिग्राम जी कटरा में म्योर कॉलेज के निकट की एक गली में रहते थे। यूनिवर्सिटी में हम लोग आपके छात्र अवश्य थे, पर आपके पास जाने में मुझे शरम सी लगती रहती थी। १९२४ के लगभग जब मेरे पिता जी ने अपना मकान ज़ीरोरोड के निकट लखपतराय लेन में बनाया, तो वहाँ मैंने अपने को प्रो० सालिग्राम जी का पड़ोसी पाया। मेरे मकान से कुछ मकान दूर पर ही आप ठीक ज़ीरोरोड पर किराये के एक मकान में रहते थे। इसमें आप तब तक रहे जब तक कि आपने अपना मकान चैथम लाइन में ख़रीद कर रहने योग्य नहीं बना लिया।

"विज्ञान" से मेरा सम्पर्क और तत्त्वों के नाम

सन् १९२७ में मैंने एम० एस-सी० परीक्षा उत्तीर्ण की और प्रयाग विश्व-विद्यालय में मैं रिसर्च का काम करने लगा। रसायन मेरा प्रिय विषय था, "विज्ञान" पत्रिका का प्रकाशन इन दिनों बहुत पिछड़ गया था—लगभग दो वर्ष पिछड़ा हुआ था, इस समय प्रो० ब्रजराज जी सम्पादक थे। वे प्रयत्नशील थे कि कई कई महीनों के संयुक्तांक निकाल कर "विज्ञान" "अप-टु-डेट" कर दिया जाय। "विज्ञान" का प्रत्येक अंक ६ फर्मे का (४८ पृष्ठ का) निकलता था, तीन रुपये वार्षिक चन्दा था। हिन्दी में मेरी रुचि देख कर प्रो० ब्रजराज और सालिग्राम जी दोनों ने मुझे फाँसना

चाहा, धीरे-धीरे मैं लेख देने लगा। इस समय अपने इन लेखों में मैं महेशचरण सिंह की शब्दावली का प्रयोग करता था। इरादा यह हुआ कि रसायन शास्त्र पर क्रमबद्ध लेख लिखे जायँ।

प्रो० सालिग्राम जी भार्गव के मस्तिष्क में रसायन-तत्त्वों की पारिभाषिकता के संबंध में कुछ विचार घूम रहे थे, उनके एक भतीजे मेडिकल कालेज में पढ़ते थे, और छुट्टियों में प्रयाग आ जाते थे। भार्गव जी के मार्ग-प्रदर्शन पर मैंने और इन डा० भार्गव ने मिलकर सब तत्त्वों का फिर से नामकरण किया। किस तत्त्व का क्या नाम क्यों रक्खा, कारण सहित सब ब्यौरा देकर 'विज्ञान' के एक अंक में प्रकाशित कराया। प्रत्येक परिभाषा के बनाने में प्रो० भार्गव ने आत्म-रुचि ली थी। क्लोरीन, ब्रोमीन, आयोडीन के लिए हरिन्, अरुणिन्, और नैलिन् और प्रत्येक धातु के अन्त में "म्" उपसर्ग लगाने का प्रस्ताव उन्हीं का था,—सैंधकम्, पांशुजम्, ताम्रम्, स्वर्णम्,—इस प्रकार के शब्द बनाए गए। "निकेल" क्योंकि "नक़ली चाँदी" समझी गयी, इसलिए इसका भार्गव जी ने ही "नक़लम्" नाम रक्खा। इस शब्दावली के बनाने में आप्टे का संस्कृत कोष सहायक था, ऑक्सिजन का नाम हम लोगों ने "ओषजन" रक्खा। यूरोपीय भाषा में तो oxy शब्द "अम्ल" वाचक था, पर आप्टे के कोष में "ओष" शब्द के जो अर्थ थे, उन्हें देखते हुए यह शब्द ऑक्सिजन के लिए अच्छा खप गया।

जब ऑक्सिजन तो ओषजन बन गया, तो प्रश्न नाइट्रोजन के नामकरण का उठा। शोरे से शब्द बनाना आवश्यक नहीं समझा गया। ओषजन की तीव्रता का विरोधी होने के कारण प्रो० भार्गव जी ने ही इसका नाम "नोषजन" अर्थात् "नहीं है जो ओषजन" ऐसा रक्खा। संस्कृत व्याकरण की दुरूहता के हम लोग उस समय क़ायल नहीं थे, और इसलिए यह परवाह भी नहीं थी कि वैयाकरण हमारे शब्दों को कैसा समझेंगे।

भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में भी प्रो० भार्गव अपनी सूझ से काम लेते थे। ion (आयन) शब्द के लिए उन्होंने ग्रीक आधार के अनुसार "यवन" शब्द दिया क्योंकि यवन और आयन दोनों ही घुमक्कड़ हैं, electrode, anode और cathode को विजलोद, धनोद, और ऋणोद ये शब्द भी भार्गव साहेब के दिए हुए थे।

तत्त्वों के हिन्दी नामों की जो सूची हम लोगों ने प्रकाशित की थी, उसका विरोध डा० निहाल करण जी सेठी ने किया। डा० सेठी के नाम से तो मैं परिचित था, पर उनके दर्शन तो भार्गव जी के घर पर ही मैंने किए। डा० सेठी का एक लेख "विज्ञान" में प्रकाशित होने आया जिसमें उन्होंने हमारे शब्दों का विरोध किया था। यह लेख ज्यों का त्यों "विज्ञान" में प्रकाशित हो गया। प्रो० भार्गव इस लेख के भावों से तो सहमत न थे, पर प्रत्येक दृष्टिकोण को जनता के समक्ष रख देने के पक्षपाती थे।

प्रो० भार्गव का विचार यह था कि हिन्दी में यदि "Table of Physical and Chemical Constants" प्रकाशित हो जाय, तो इस पुस्तक से दोहरा लाभ होगा। यह पुस्तक पारिभाषिक शब्दों का भी काम करेगी, और स्थिरांकों (Constants) का उपयोग भी इससे हो सकेगा। ऐसी पुस्तकें प्रयोगशाला में काम करने वालों के लिए अनिवार्य उपयोग की हैं। प्रो० भार्गव के आग्रह पर डा० सेठी ने इस पुस्तक को लिखना आरंभ किया। आरंभ के कुछ पृष्ठ उन्होंने लिखे थे, पर काम रुक गया। इस समय मैं प्रयाग विश्वविद्यालय में एम्प्रेस विक्टोरिया रिसर्चस्कालर था। इस स्कालरशिप पाने वाले अन्वेषणप्रिय छात्रों का यह भी कर्त्तव्य था कि वे हिन्दी में भी कुछ अनुवाद करें, जो छपे, और यूनिवर्सिटी उस छपे अंश की १०० प्रतियाँ ले। प्रो० सालिगराम जी भार्गव भी कुछ वर्ष एम्प्रेस विक्टोरिया स्कालर रहे थे, और जहाँ तक मुझे स्मरण है, उन्होंने अपनी "चुम्बक" पुस्तिका विज्ञान परिषद् द्वारा प्रकाशित कराके यूनिवर्सिटी की उस शर्त को पूरा किया था। अधिकांश स्कालर दो-चार लेख "विज्ञान" में मुद्रित करा दिया करते थे, और उनके सौ रीप्रिण्ट यूनिवर्सिटी को दे देते थे। मैंने अपने समय में इस छात्र वृत्ति से लाभ उठाया, और "कार्बनिक रसायन" और "साधारण रसायन" ये दो पुस्तकें यूनिवर्सिटी को दीं।

डा० सेठी Table of Constants का काम बहुत थोड़ा ही कर सके। प्रारम्भ के एक-दो फ़र्मे ही उन्होंने लिखे। प्रो० भार्गव ने यह काम भी मुझे सौंप दिया, और मैंने इसे

पूरा किया। यह पुस्तक डा० सेठी और मेरे नाम से परिषद् द्वारा प्रकाशित हुई। इस पुस्तक का नाम "वैज्ञानिक परिमाण" है। अब तक इस विषय की कोई दूसरी पुस्तक हिन्दी में नहीं छपी है। मुझे भौतिक विज्ञान का ज्ञान बहुत साधारण था। पर वैज्ञानिक परिमाण के लिखने में प्रो० भार्गव ने हर स्थल पर मेरी सहायता की। प्रतिमास "विज्ञान" में इसका कुछ अंश प्रकाशित होता था और अन्त में यह जब पूरी हो गयी, तो इसकी भी १०० प्रतियाँ मैंने यूनिवर्सिटी को भेंट दी, और यूनिवर्सिटी से रुपया वसूल कर लिया गया। इस प्रकार एम्प्रेस विक्टोरिया रीडरशिप काल में लिखी गयी पुस्तकें विज्ञान परिषद् को मुफ्त ही पड़ जाती थीं। कुछ खर्चा "विज्ञान" पत्रिका की छपाई के मत्थे पड़ता था, और कुछ यूनिवर्सिटी से वसूल हो जाता था। यह आश्चर्य की बात है कि "वैज्ञानिक परिमाण" पुस्तक में उसी शब्दावली का प्रयोग हुआ है, जिसकी प्रेरणा प्रो० भार्गव से मिली थी। डा० सेठी का नाम इस पुस्तक पर है, पर इसमें व्यवहृत तत्त्वों के वे ही नाम दिए गए हैं जिन पर सेठी जी को आपत्ति थी। हम लोगों ने सेठी जी के अनुग्रह का इस प्रकार लाभ उठाया। इतने वर्षों के अनुभव के बाद आज तो मैं भी समझ गया हूँ कि सेठी जी के दूरदर्शी विचार अधिक संयत और व्यवहार्य्य थे, और आज हम उन विचारों को ग्रहण कर रहे हैं।

प्रो० भार्गव के अनुग्रह से ही मैंने कार्बनिक रसायन और भौतिक रसायन के शब्दों की पारिभाषिक सूची तैयार की जो यथा समय "विज्ञान" में प्रकाशित हुई।

ज्यों ज्यों मैं "विज्ञान" में रुचि लेने लगा, प्रो० ब्रजराज जी इस पत्रिका के सम्पादन से अपना हाथ खींचते गए। वे कहा करते थे कि हम तो अंग्रेज़ी के अध्यापक हैं, भाषा तो हम देख सकते हैं, पर विज्ञान की वर्त्तमान प्रगति से हमारा परिचय ही नहीं है। मैं "विज्ञान" के सम्पादन का उत्तरदायित्व नहीं लेना चाहता था। अपने कमज़ोर कन्धों पर विश्वास न था, यह भी निश्चित नहीं था, कि मैं प्रयाग में ही जीविकार्जन करूँगा। इसलिए एक दो वर्ष तो मैं "विज्ञान" पत्रिका पर अपना नाम सम्पादकों की सूची में देने के लिए भी तैयार नहीं हुआ। केवल प्रो० ब्रजराज सम्पादक थे, चाहें काम मैं ही करूँ। बाद को मैं राज़ी इस बात पर हुआ कि प्रधान संपादक ब्रजराज जी रहें और सहकारी सम्पादक मैं। यूनिवर्सिटी में स्थायी होने के अनन्तर ही धीरे धीरे "विज्ञान" और "विज्ञान परिषद्" का मैं अंग बन गया।

विज्ञान परिषद् को मेरी कई पुस्तकें मिल चुकी थीं अतः प्रो० भार्गव की कृपा के फलस्वरूप मुझे विज्ञान परिषद् का आजीवन सदस्य बना लिया गया। महावीर प्रसाद जी श्रीवास्तव भी अपनी सेवाओं के फलस्वरूप निःशुल्क आजीवन सदस्य कुछ वर्ष पहले बना लिए गए थे। मुझे अपनी इस आजीवन सदस्यता का आज तक गर्व है। पैसे चुका कर तो अन्य संस्थाओं का भी आजीवन सदस्य बना, पर बिना पैसे दिए परिषद् की आजीवन सदस्यता मिली, इसके लिए मैं प्रो० भार्गव का विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ।

विज्ञान परिषद् की नीति के एकमात्र सूत्रधार

प्रो० भार्गव को गत २५ वर्षों में मैंने परिषद् की नीति का एकमात्र सूत्रधार पाया। परिषद् के जीवन के वे जीते-जागते इतिहास थे, सन् १९२७ से जब से मेरा उनका सम्पर्क बढ़ा, मैंने उन्हें विज्ञान परिषद् की सम्पत्ति का एकमात्र अधिकारी समझा। बहुत दिनों की बात है, क्रास्थवेट रोड पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन के निकट ही परिषद् को भी इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट की ओर से एक छोटी सी ज़मीन मिल गयी थी। इस ज़मीन पर पीछे की ओर परिषद् ने दो छोटे-छोटे कमरे भी बनवा लिए थे। इन कमरों में ही परिषद् की प्रकाशित पुस्तकें रक्खी रहती थीं। परिषद् के पास बड़ा मकान बनवाने के लिए कभी धन न रहा और परिषद् के प्रकाशन इन छोटे से कमरों में बड़ी दयनीय अवस्था में पड़े रहते थे। प्रो० भार्गव जी का ज़ीरो रोड वाला मकान इस स्थान से बहुत निकट था, और वे इस सम्पत्ति की देख-रेख करते थे। अनेक वर्षों तक प्रो० भार्गव परिषद् के प्रधान मंत्री रहे। परिषद् की व्यवस्था के लिए एक क्लर्क थे—श्री कृष्णानन्द। एक दो घंटे वे काम करते थे। पत्रों का उत्तर देते, हिसाब रखते, प्रति मास विज्ञान का डिस्पेच करते। ब्लाकों [को संभाल कर रखते। परिषद्

से १५)-२०) का इन्हें पारिश्रमिक मिलता । प्रो० भार्गव इनके काम का निरीक्षण करते । श्री कृष्णानन्द ईमानदार, सच्चे साहित्यप्रिय समाजसेवक व्यक्ति थे । मुट्ठीगंज में एक तंग कोठरी में रहते थे । एक दिन रात को उनका उसी कोठरी में देहान्त हो गया । प्रातःकाल मुझे सूचना मिली । स्वास्थ्य उनका अच्छा नहीं रहता था, सूचना मिलने पर उनके घर पहुँचा तो बदन जकड़ा हुआ पाया, और बड़ी कठिनता से बाहर निकाला गया, और उनका अन्तिम संस्कार हुआ । श्री कृष्णानन्द को न जाने प्रो० भार्गव ने विज्ञान परिषद् के कार्य के लिए कहाँ से खोज पाया था, इसका मुझे पता नहीं । कृष्णानन्द जी ने अपने जीवन का संक्षिप्त वृत्त मुझे लिखकर दिया था, जो बहुत दिनों तक मेरे पास रहा । प्रो० भार्गव के उन दिनों के संस्मरण लिखते समय मैं कृष्णानन्द जी की याद किए बिना नहीं रह सकता ।

जब भार्गव जी अपने चैथम लाइन के मकान में चले आए, डा० गोरख प्रसाद जी का घर पहले से ही नये कटरे में था मैंने भी नये कटरे में घर बनवा लिया, प्रो० ब्रजराज की मृत्यु हो गयी, तो विज्ञान परिषद् के मकान और भंडार की देख रेख करने का प्रश्न बराबर जटिल होता गया । दीमक और सीलन के कष्ट तो थे ही । अन्त में परिषद् की वह ज़मीन और कमरे हम लोगों ने बेच दिए । ऐसा विचार था, कि म्योर कालेज के पास ही कोई ज़मीन लेकर परिषद् का भवन बनवाया जायगा । पर आज तक इस कार्य में सफलता प्राप्त नहीं हो सकी है । स्व० महावीर प्रसाद जी श्रीवास्तव के घर में अब तक हमारा गोदाम रहा है और मंत्री गणों ने अपने घरों पर ही कार्यालय की व्यवस्था की है । यूनिवर्सिटी ने बड़ी उदारता पूर्वक म्योर कालेज की भूमि में से ही कुछ अंश हमें दे दिया है जहाँ हम एक भवन बनवा सकें । यूनिवर्सिटी ने जो कमेटी इस काम के लिए बनायी थी, उसके एक सदस्य प्रो० भार्गव भी थे । प्रो० भार्गव जी के जीवन काल में ही यदि यह भवन बन जाता तो उनको बहुत सन्तोष होता ।

परिषद् व्यवसाय में प्रतियोगी नहीं

प्रो० भार्गव की प्रेरणा से हमारे परिषद् की एक नीति निर्धारित हुई थी जिसका पालन आज तक परिषद् ने किया है । परिषद् की आर्थिक स्थिति कभी अच्छी नहीं रही है । डा० चिन्तामणि की प्रेरणा से कुछ तो सरकारी अनुदान (ग्राण्ट) मिलता है, ग्राहकों और सभ्यों से चन्दा और पुस्तकों की बिक्री से थोड़ा बहुत धन । परिषद् ने अपने लेखकों को बहुधा कोई पारिश्रमिक नहीं दिया, और न लेखकों ने पारिश्रमिक की अपेक्षा ही की । इधर बहुत दिनों से स्कूली परीक्षाओं की विज्ञान विषयक पाठ्य पुस्तकें हिन्दी में हो गयी हैं, जिनसे प्रकाशक और लेखक दोनों अच्छा आर्थिक लाभ उठा रहे हैं, कई बार यह प्रश्न आया कि परिषद् की ओर से कोई पाठ्य पुस्तक क्यों न तैयार करा के डिपार्टमेंट या बोर्ड से मंजूर करा ली जाय । परिषद् के सदस्यों का इन समितियों पर प्रभाव भी रहा है । पर प्रो० भार्गव का सदा यह कहना था कि परिषद् अपने प्रकाशनों द्वारा किसी व्यावसायिक संस्था की प्रतियोगिता नहीं करेगी । यह अपने समय से कुछ वर्ष आगे का ही साहित्य तैयार करेगी । वह दूसरे के लिए आर्थिक सफलता का मार्ग प्रशस्त करेगी ।

अभी मेरे एक मित्र डा० पालिट कलकत्ते से आए थे । उन्होंने बताया कि कलकत्ते में "ज्ञान और विज्ञान परिषद्" नाम की संस्था खुली है, उसने अपने आर्थिक संकट निवारण का यही उपाय निकाला है, कि अपनी प्रकाशित एक-दो पुस्तकें डिपार्टमेंट से स्वीकृत करा ली हैं, जिनकी बिक्री से परिषद् को समुचित लाभ होता है । पर प्रो० भार्गव ने हमारे सामने जो आदर्श रक्खा था, वह निर्धनता और निःस्वार्थ सेवा का था, और परिषद् ने इसी लिए अपने प्रकाशनों द्वारा किसी के साथ अनुचित प्रतियोगिता नहीं की ।

प्रो० भार्गव का व्यक्तित्व

प्रो० भार्गव का अपना एक विशेष व्यक्तित्व था । अपने जीवन का अधिकांश भाग उन्होंने प्रयाग विश्व विद्यालय में व्यतीत किया । उनका अपना निजी परिवार छोटा सा था । आप और आपकी पत्नी और एक मात्र पुत्री ललिता जी । पुत्र कोई न था । आपके बड़े भाई रामजीवन लालजी भार्गव बहुत दिनों तक आपके साथ रहे, और आजकल अलीगढ़ में रहते हैं । बड़े मिलनसार व्यक्ति हैं । प्रातः

भ्रमण एवं वायुसेवन के समय उनसे मेरी भेंट हो जाती थी। प्रो० भार्गव की पुत्री के विवाह के अनन्तर उनके नाती आदि परिवार में सदा रहते थे।

परिवार और यूनिवर्सिटी के अतिरिक्त प्रो० भार्गव का आजीवन संबंध भार्गव सभा से था। शायद इसके ये बहुत वर्षों से मंत्री रहे हैं। मेरे भाई विश्व प्रकाश जी के कला प्रेस में भार्गव सभा की बहुत-सी चीज़ें बराबर छपती रही हैं। मुझे जानकर यह सन्तोष हुआ, कि यद्यपि मैं प्रो० भार्गव के अन्तिम संस्कार में सम्मिलित न हो सका पर मेरे भाई इसमें अवश्य सम्मिलित हुए। भार्गव सभा के बाबू की हमारे परिवार से सदा भेंट होती रहती थी। और प्रो० भार्गव का सब समाचार मिलता रहता था। प्रो० भार्गव की पत्नी अनेक वर्षों से भजन कीर्तन में अपने को तल्लीन रखती आयी हैं, और यही अब उनका आश्रय रह गया है।

प्रो० भार्गव जी का जीवन सादा था, और पोशाक उससे भी सादी। ऊनी वस्त्र जाड़े में भी कदाचित् ही पहनते हों। विशेष कोट और छींटदार पगड़ी, घर में कभी-कभी मिर्ज़ई भी। यूनिवर्सिटी के छात्रों ने उन्हें बिना पगड़ी के न देखा था। एक बार की बात है, कि एक परिचित छात्र प्रो० भार्गव के घर पर उनसे मिलने गया। प्रो० भार्गव बिना पगड़ी के कुर्सी पर बैठे हुए थे। उस छात्र ने प्रो० भार्गव को न पहिचाना और उन्हीं से पूछा – "प्रो० भार्गव कहाँ हैं", प्रो० भार्गव लड़के की कठिनाई भाँप गए। पास ही खूँटी की ओर इशारा करके कहने लगे—"वहाँ"। खूँटी पर प्रो० भार्गव की पगड़ी टँगी हुई थी। पगड़ी ही तो भार्गव साहेब की पहिचान थी, और बिना उसके वे भला कैसे पहिचाने जाते।

प्रो० भार्गव की बातचीत का ढंग निराला था। उनके साथ बातचीत करने में बड़ा मज़ा आता था, कभी कभी वे चुपके से ऐसी बात करने लगते थे, मानों कि हम उसके प्रसंग से परिचित हों, और बहुत देर की "हाँ हूँ" के बाद ध्यान में आता था कि वे किस प्रसंग में बात चीत कर रहे हैं। उनकी अपनी आलोचनायें भी निराली होती थीं, और बहुत सी बातों में उनके विचार करने की शैली विचित्र होती थी। यूनिवर्सिटी के प्रसंगों में भी उनकी किन्हीं-किन्हीं विषयों में विचित्र भावना रहती थी। परीक्षा के पूर्व दी गयी "प्रिपरेशन-लीव" में उन्होंने ही प्रेक्टिकल्स की परीक्षायें रखवाने की प्रेरणा करायी। परीक्षा-तिथियों के निर्धारण के लिए उनकी निजी आयोजना रहती थी, जो हमारे रजिस्ट्रारों के लिए भी एक दुरूह समस्या थी।

वर्कशॉप ट्रेनिंग क्लास और फोटोग्राफी का विभाग खुल ही न पाता यदि प्रो० भार्गव जी-जान से इसमें न लगते। आरंभ में फोटोग्राफी एसोसियेशन बनी, जिसकी ओर से डिप्लोमा-क्लास आरंभ किया गया। मैं भी इसका कोषाध्यक्ष रहा। बाद को एसोसियेशन ने यह डिप्लोमा-कोर्स का विभाग यूनिवर्सिटी को सौंप दिया।

प्रो० भार्गव की उदारता अपने घर के नौकरों पर भी बहुत थी। अपने मकान में नौकरों के गृह जिस आराम के साथ उन्होने बनवाए, ऐसा मैंने धनी मानियों के यहाँ भी न पाया। सब पर उनका स्नेह था और सबको वे अपने परिवार का समझते थे।

आज इस उदारता के व्यक्ति का विछोह हमारे लिए असह्य हो रहा है। उनके संपर्क के न जाने कितने संस्मरण हमारे नेत्रों के सामने सजीव होकर आ रहे है। ईश्वर दिवंगत आत्मा को शान्ति दे।

श्री राम जीवन लाल जी भार्गव स्वर्गीय सालिगराम जी भार्गव के सगे अग्रज हैं। वृद्धावस्था में भी आपने अपने अनुज का परिचय लिख भेजा है। आप अपने ज्येष्ठ पुत्र डा० राम चंद्र भार्गव के साथ अलीगढ़ में रहते हैं जिनका स्वतंत्र संस्मरण आगे के पृष्ठों में है।

'प्रो० भार्गव की संक्षिप्त जीवनी'

श्री० रामजीवन लाल जी भार्गव, बी० ए०, अलीगढ़

पं० सालिगराम भार्गव का जन्म १२-१२-१८८८ में गुड़गाँव जिले के खोरी नामक स्थान में हुआ था, जहाँ उनकी नानी रहा करती थीं। आप मुं० लच्छीराम भार्गव के तृतीय पुत्र थे। मुं० लच्छीरामजी भार्गव अलवर रियासत में 'अफ्सर' कारखानेजात के उच्च पद पर अधिष्ठित थे। उस समय स्वर्गीय राजा मंगलसिंह जी का राज्य था। आप का विवाह सागर-निवासी पंडित मूलचन्दजी की दूसरी सुपुत्री अशर्फी देवी से हुआ था। उनके पिताजी का देहावसान सन् १९०० में हुआ। उस समय उनकी अवस्था बारह वर्ष की थी। तीन वर्ष के पश्चात् उनके ज्येष्ठ भ्राता पं० द्वारिका प्रसाद जी का स्वर्गवास सन् १९०३ में हो गया। इस समय आपके केवल एक पुत्री श्रीमती ललिता देवी भार्गव हैं जिनका विवाह मथुरा-निवासी श्री रघुनाथदास जी भार्गव से हुआ है। आपकी शिक्षा १९९८ ई० से ही उचित रीति से प्रारंभ हुई थी। सन् १९०५ में आपने अलवर हाई स्कूल से मैट्रिक की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की, और १९०९ ई० में आगरा कालिज से बी० एस-सी० की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। उस वर्ष के उत्तीर्ण विद्यार्थियों के अनुक्रमांकों में उनका छठवाँ नम्बर था, और उन्हें २०) मासिक की गवर्नमेन्ट द्वारा छात्रवृत्ति प्रदान की गई। आगरा-कालिज में सन् १९०९ में एक वर्ष तक डिमान्स्ट्रेटर के पद पर काम करते रहे। उस समय आपको १००) मासिक वेतन मिलता था। सन् १९१० में आपने म्योर सेन्ट्रल कालिज इलाहाबाद में दाखिल होकर १९१२ में एम० एस-सी० की परीक्षा उत्तीर्ण की, और उसी वर्ष जुलाई में उसी विद्यालय में भौतिकशास्त्र में डिमान्सट्रेटर के पद पर नियुक्त किए गए। सन् १९१९ में आप भौतिक-विज्ञान के सहायक अध्यापक नियुक्त हुए और उत्तर-प्रदेश की 'प्रांतीय एज्यूकेशनल सर्विस' में भी रहे। जब प्रोफेसर ड्यूक 'सैनिक-सेवा' में विलायत चले गए, तब उनकी दो वर्षों की अनुपस्थिति की अवधि के मध्य में दो वर्ष तक 'इन्डियन एज्यूकेशन सर्विस' में भी रहे। फिर जब प्रयाग-विश्वविद्यालय की फिर से व्यवस्था की गई और पुनर्संगठन हुआ, तो उन्होंने गवर्नमेन्ट की नौकरी से त्याग-

श्री राम जीवन लाल जी भार्गव
(स्वर्गीय प्रो० सालिगराम जी भार्गव के ज्येष्ठ सहोदर तथा इस जीवनी के लेखक)

पत्र दे दिया, और प्रयाग-विश्व विद्यालय में (५००-५०-१०००) के ग्रेड में 'फिजिक्स के रीडर' नियुक्त किए गए। सन् १९४६ से १९४९ तक आप भौतिक-विभाग के अध्यक्ष रहे, और १ मई, १९४९ में आपने अवसर ग्रहण किया। आप १६ सितम्बर १९५३ को इस असार संसार से चल बसे। इस समय उनकी पत्नी, पुत्री, तथा आठों दौहित्र-

दौहित्रियाँ, तीनों भतीजे, अन्य संबंधी एवं वृहद् मित्र-मंडल उनके दिवंगत होने से अत्यन्त शोकातुर हैं। उनके मित्र, परिचित, संबंधी, छात्र, तथा सहयोगी उनका सदा स्मरण करते रहेंगे।

ये उन थोड़े से दूरदर्शित और विवेकशील व्यक्तियों में से थे जिन्होंने आज से चालीस वर्ष पूर्व ही इस बात का

नव-विवाहित दम्पति रूप में:—
श्री रघुनाथ प्रसाद भार्गव तथा श्रीमती ललिता देवी
(प्रो० सालिगराम जी भार्गव की पुत्री)

अनुभव कर लिया था कि हिन्दी राष्ट्रभाषा एक न एक दिन होकर रहेगी और देश की सच्ची और वास्तविक उन्नति तभी होगी जब शिक्षा का माध्यम हिंदी ही बनेगी और वैज्ञानिक साहित्य का निर्माण मातृभाषा में होने लगेगा, और इन्हीं महान् उद्देश्यों को सामने रख कर और वैज्ञानिक ज्ञान के प्रचार-प्रसार को ध्यान में रखकर जनता की अभिरुचि वैज्ञानिक साहित्य की ओर जाग्रत करने के आन्दोलन को मूर्तिमान स्वरूप देने के लिए एक संस्था को जन्म दिया गया। यह संस्था ही 'विज्ञान-परिषद्' थी। यदि मैं ठीक से याद कर पा रहा हूँ, तो मुझे यही याद पड़ रहा है कि इस परिषद् के आदि-संस्थापकों में इनके अतिरिक्त डा० गंगानाथ झा, श्री रामदास गौड़, प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव, तथा प्रो० व्रजराज थे। ये उसके प्रधान मंत्री के पद पर वर्षों तक रहे, और प्रधान तथा उपप्रधान के रूप में उससे अपना संबंध जीवन के अन्तिम दिन तक बनाए रहे। विज्ञान-परिषद् के नए भवन के बनने से पूर्व विज्ञान परिषद् का कार्यालय तथा पुस्तक-भंडार बहुत समय इनके ज़ीरो-रोड वाले निवास-स्थान पर रहा।

श्रीमती सालिगराम जी भार्गव (श्रीमती अशरफी देवी)

अध्यापक होने के नाते वे उन प्राचीन श्रेणी के अध्यापकों में से थे, जो गुरु-शिष्य के संबंध को पिता-पुत्र के रूप में देखते हैं। अपने विद्यार्थियों के प्रति उनका व्यवहार बहुत सहानुभूति पूर्ण, उदार, और प्रेममय था। वे जब छात्रों के साथ इतने स्नेह, सौहार्द और वात्सल्य का व्यवहार करते थे, तब यदि उनके विद्यार्थी उनके प्रति अपार श्रद्धा तथा

अनन्त सम्मान के भाव प्रदर्शित करते थे तो इसमें कुछ भी आश्चर्य की बात नहीं है। उनके छात्र इस समय प्रान्त तथा भारतवर्ष के प्रत्येक भाग में फैले हुए हैं। वे उनकी इस गुरु-शिष्य-संबंध की उज्ज्वलता तथा सात्विकता के साक्षी हैं।

उनमें अनेक अनुपम विशेषताएँ थीं, और उनको अत्यन्त अधिक लोकप्रिय बनाने वाली अद्वितीय विशेषताएँ थीं प्रेम, उदारता, त्याग, दूसरों के सुख-दुःख का ध्यान रखना, तथा अहंभाव की विस्मृति। उनका प्रेम निस्वार्थ तथा लोकोपकारी था, और उसमें अधिकार लिप्सा की भावना का पूर्णतया अभाव था। उन का प्रेम साधारण भौतिक प्रेम न था, किंतु वह सामान्य चेतना से अतीत था। उस प्रेम का दिव्य स्वरूप ईसामसीह के 'ईश्वर प्रेम है' अथवा 'अपने पड़ोसी से उसी प्रकार प्रेम करो, जिस प्रकार तुम अपने

डा० के० एस० कृष्णन के साथ
प्रो० सालिगराम जी भार्गव

आप से करते हो' आदि वाक्यांशों में सन्निहित है।

उनका रहन-सहन, स्वभाव, तथा प्रकृति सरल थी, और उनकी आवश्यकताएँ भी कम थीं, अतः वे सदा ही छात्रों, असहायों, अनाथों, विधवाओं, तथा निराश्रितों की सहायता करने के साधन जुटा सकते थे। उन्होंने अनेक कुटुम्बों को नष्ट होने से बचा लिया था। कितने घरों के चूल्हे उन्हीं के दान से दो समय जलते थे। उनकी उदारता की कोई सीमा नहीं थी! वह विश्वजनीय थी। उसमें संकीर्णता न थी। उनकी दृष्टि में सम्पूर्ण मानवता एक और अविभाज्य थी।

बंग-भंग (१९०५ ई०) से उन्होंने कभी-भी विदेशी
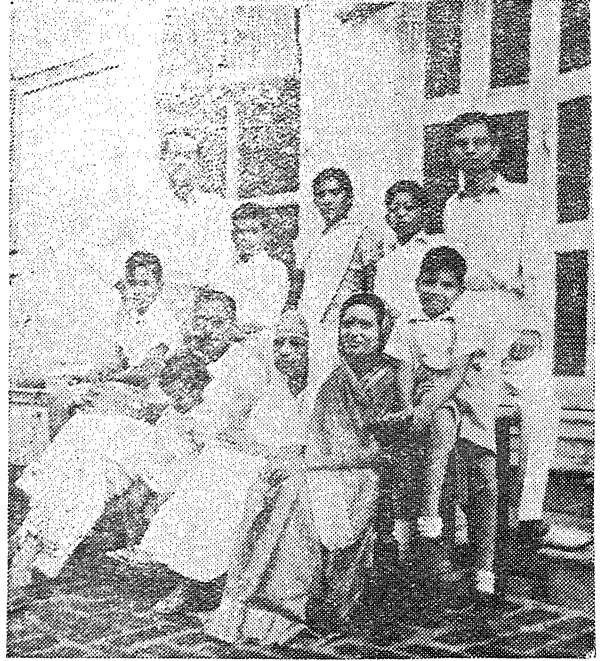
प्रो० सालिगराम जी भार्गव के दामाद श्री रघुनाथ प्रसाद भार्गव का परिवार (१९४८ ई०)

बाँई ओर से—पहली पंक्ति में खड़े हुए—

(१) श्री बृज रत्न एम० एस-सी० (द्वितीय पुत्र)
(२) पाल (पुत्र, पंचम संतान) (३) प्रमीला (पुत्री, तृतीय संतान)
(४) कृष्ण (पुत्र, चतुर्थ संतान) (५) बृज भूषण एम० एस सी० (ज्येष्ठ पुत्र)

दूसरी पंक्ति में बैठे—

(१) नरायन (पुत्र, छठीं संतान)
(२) श्री रघुनाथ प्रसाद भार्गव
(३) प्रतिभा (पुत्री, आठवीं संतान)
(४) श्री रघुनाथ प्रसाद भार्गव की माता
(५) श्रीमती रघुनाथ प्रसाद (ललिता देवी, प्रो० सालिगराम जी की पुत्री)
(६) बल्लभ (पुत्र, सातवीं संतान)

वस्त्र धारण नहीं किए। महात्मा गाँधी के 'खादी-प्रयोग' करने के लिए बल देने के बहुत पूर्व ही वे खादी का उपयोग स्वतः प्रेरणा से करते थे, और यूरोपियन अफसरों के आधीन रह कर भी उसका निरन्तर प्रयोग करते रहे। वे सदा ही खादी का कोट, कुर्त्ता, तथा पायजामा पहनते रहे, और मिलों की बनी मलमल या हाथ से बुने देशी कपड़े पर जयपुरी छपा हुआ साफा उनके माथे पर सुशोभित था। वे सदा निर्भीक रहे, और सत्य पालन तथा प्रतिज्ञा-निर्वाह करने में पीछे नहीं रहे। वे पक्के सिद्धान्तवादी और आदर्शवादी थे। उन्होंने तन-मन-धन से भार्गव-सभा की सेवा की थी। वे बहुत समय तक उसके प्रधान मंत्री रहे। वे उसके प्रधान और उपप्रधान भी रह चुके थे। उनके जातीय और सामाजिक कार्यों का बहुत महत्व है। जिस जाति में उन्होंने जन्म लिया, उसके लिए उन्होंने जो कुछ भी किया, उससे उनका गौरव बहुत बढ़ जाता है। प्रायः वे दशहरे, बड़े दिन, तथा गर्मी की छुट्टियों में प्रतिवर्ष अपने मित्रों तथा संबंधियों से मिलने जाया करते थे, और भार्गव सभा के अधिवेशनों, सम्मेलनों, तथा सभाओं में सम्मिलित होना तथा भार्गव सभा के कार्य को प्राणपण से करना उनकी इन लंबी-लंबी यात्राओं का प्रधान उद्देश्य होता था। अपनी इन लंबी यात्राओं में वे सभी वर्गों, श्रेणियों, तथा कोटियों के लोगों से मिलते थे। अमीर-गरीब, धनी-निर्धन सभी उनका समान रूप से स्वागत करते थे।

वे अत्यन्त सफल और योग्य अध्यापक थे। वे अपने छात्रों से अत्यधिक प्रेम करते थे, और यथा शक्ति आवश्यकता पड़ने पर आर्थिक सहायता भी देते थे। वे सभी प्रकार से अपने विद्यार्थियों की सहायता करते रहते थे। वे अनुशासन-प्रिय थे। कक्षाओं तथा भौतिक विभाग में उनकी व्यवस्था, प्रबन्ध, और व्यक्तित्व से बहुत ही उच्चकोटि का अनुशासन रहता था। उन्होंने आदर्श वातावरण बना दिया था। उनमें संगठन तथा व्यवस्था करने की अपूर्व शक्ति थी, और जब भौतिक-विज्ञान के अध्यक्ष नहीं भी थे, उस समय भी विभाग के प्रबन्ध, संगठन, तथा व्यवस्था का सम्पूर्ण कार्य विभाग के अध्यक्षों ने उन्हें ही सौंप रखा था, और वे इस ओर से निश्चिन्त होकर अध्ययन, और अनुसन्धान में निरत रहते थे। उनकी सज्जनता, सौहार्द, उदारता, निस्स्वार्थता, तथा सेवाभाव की उदात्त भावनाएँ तथा विशेषताएँ आदर्श तथा अनुकरणीय थीं। अपने सहकारियों तथा आधीनस्थ कार्यकर्त्ताओं के साथ उनका व्यवहार अत्यन्त सहानुभूतिपूर्ण, सदाशययुक्त, तथा कोमल एवं मधुर भावनाओं से अनुप्रेरित होता था।

(२८वें पेज का शेषांश)

बड़ी सेवा अन्य लोगों को हिन्दी में लिखवाने के लिए प्रोत्साहित करना था। उनके ही प्रयत्नों का फल है कि आज प्रयाग विश्वविद्यालय के अनेक वैज्ञानिक विभागों में हिन्दी के प्रेमी और लेखक विद्यमान है और वैज्ञानिक साहित्य के निर्माण में लगे हुए हैं। उत्तर प्रदेश के अन्य स्थलों के वैज्ञानिक लेखक भी बहुत कुछ श्री सालिगराम भार्गव के ऋणी है।

मैं अपनी श्रद्धांजलि श्री सालिगराम भार्गव जी को अर्पित करता हूँ। ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह उनकी आत्मा को शान्ति और सद्गति प्रदान करे। मेरे विचार में उनकी सबसे अधिक श्रेष्ठ श्रद्धांजली तो होगी वैज्ञानिक साहित्य का निर्माण जिसके प्रयत्न में वे सारे जीवन लगे रहे। यदि हम इस दिशा में प्रयत्न कर कुछ ठोस कार्य करें तो उससे उनकी आत्मा को अधिक शान्ति मिलेगी और साथ ही साथ राष्ट्रभाषा हिन्दी की सेवा और देश का कल्याण होगा।

सालिगराम भार्गव जी को मेरी श्रद्धांजलि

प्रो० फूल देव सहाय वर्मा, भूतपूर्व आचार्य,
कालेज आफ टेकनालाजी, काशी विश्वविद्यालय

प्रो० वर्मा जी विज्ञान परिषद् के भूतपूर्व सभापति हैं। आपका स्व० भार्गव जी से ३४ वर्षों से परिचय रहा है।

प्रोफेसर सालिगराम भार्गव मेरे अनन्य मित्रों में से एक थे। प्रायः ३४ वर्ष से कुछ उपर ही हुआ जब मैं बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के रसायन विभाग में प्राध्यापक नियुक्त होकर काशी आया। उस समय स्वर्गीय श्री रामदास गौड़ आयुर्वैदिक विभाग में विज्ञान के प्राध्यापक थे। उनके संसर्ग में मैं आया और उनकेही द्वारा श्री सालिग्राम भार्गव जी से मेरा परिचय हुआ।

प्रयाग की विज्ञान परिषद् के तीन प्रमुख संस्थापकों और कार्यकर्त्ताओं में रामदास गौड़ जी, सालिग्राम भार्गव जी और गोपाल स्वरूप भार्गवजी थे।

१६१६ ई० की बात है। उस समय हिन्दी के प्रति लोगों की पर्याप्त उदासीनता थी। हिन्दी में वैज्ञानिक पुस्तकों का भी निर्माण हो सकता है यह विचार रखनेवाले व्यक्तियों की संख्या उस समय बहुत थोड़ी थी। अब भी कुछ ऐसे लोग हैं जो ऐसी सम्मति व्यक्त करते है कि वैज्ञानिक सूक्ष्म विचारों को स्पष्टतया व्यक्त करने की शक्ति हिन्दी में नहीं है। ऐसे व्यक्ति वे ही हैं जो हिन्दी जानते नहीं अथवा अपने विचारों को हिन्दी द्वारा व्यक्त करने की कभी चेष्टाएं नहीं की।

१६१६ ई० की परिस्थिति सरलता से समझ में आ जा सकती है। उस समय हिन्दी का इतना विकास नहीं हुआ था। हिन्दी का ज्ञान भी अधूरा था। राज्य की ओर से हिन्दी के अध्ययन का केवल प्रबन्ध ही नहीं था वरन् जो अध्ययन करना चाहते थे उनके मार्ग में भी काफी अड़चनें थी। हाँ, काशी नागरी प्रचारिणी ने विज्ञान के अध्ययन और पुस्तकों के लिखने और लिखवाने के लिए बड़े परिश्रम से अनेक विद्वानों के सहयोग से एक वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दों का कोश तैयार कर प्रकाशित कर दिया था। उस समय विज्ञान परिषद् ऐसी संस्था को स्थापित कर उसके द्वारा हिन्दी और उर्दू में वैज्ञानिक साहित्य का निर्माण करना कुछ सरल काम नहीं था।

उपर्युक्त तीनों सज्जनों ने इस दिशा में कदम उठाया। इन व्यक्तियों में योग्यता थी, कर्मनिष्ठा थी और उससे ऊपर था अदम्य उत्साह। तीनों ही विज्ञान के प्रखर विद्वान थे। अड़चनें होते हुए भी इन लोगों में दूर दर्शिता थी जिससे वे हिन्दी के भविष्य की उज्ज्वलता को समझते थे। खेद है कि स्वर्गीय रामदास गौड़जी के जीवन-काल में हिन्दी भारत की राष्ट्र-भाषा के उच्च पद पर आसीन नहीं हो सकी थी। पर शेष दोनों व्यक्ति अपनी आंखों हिन्दी के उच्च पद को देख चुके हैं। उनको अपने प्रयत्न में सफलता देखकर अवश्य असीम आनन्द का अनुभव हुआ होगा।

मुझे हिन्दी से प्रेम था। इस कारण मेरा सम्पर्क इन व्यक्तियों के साथ दिनों दिन बढ़ता गया। मेरा सम्पर्क और भी घनिष्ट हो गया जब एक साल गर्मी की छुट्टी को प्रयाग में बिताने के लिए मैं प्रयाग गया और प्रायः दो मास वहाँ रहा। आप लोगों के प्रयत्न से ही मुझे रहने के लिए एक मकान मिल गया और दो मास का अवकाश बड़े आनन्द से वहाँ बिताया।

आप लोगों के सम्पर्क से मेरा हिन्दी प्रेम दिनों दिन बढ़ता गया। इन लोगों की प्रेरणा से ही हिन्दी में कुछ लिखने की रुचि दिनों दिन बढ़ती गयी और वैज्ञानिक साहित्य के निर्माण का भाव हृदय में उठा और उसके फल स्वरूप मैं हिन्दी की कुछ सेवा कर सका हूँ। इस मेरी तुच्छ सेवा का सारा श्रेय इन तीनों व्यक्तियों को ही है इनमें विशेषतः श्री सालिगराम भार्गव को है।

सालिगराम भार्गव जी ने प्रारम्भ में कुछ पुस्तकें हिन्दी में लिखीं। छोटे-बड़े अनेक लेख वे बराबर हिन्दी में लिखते रहे। पर स्वयं हिन्दी में लिखने के स्थान में उनकी सब से

(शेष २७वें पेज पर)

शोक-प्रकाश

डा० इकबाल नारायण गुर्टू,
भूतपूर्व उपकुलपति, प्रयाग विश्वविद्यालय

डा० इकबाल नारायण जी गुर्टू का प्रो० सालिगराम जी से बहुत पुराना परिचय है। छः वर्षों तक प्रयाग विश्वविद्यालय के उपकुलपति रहते समय आप भार्गव जी के निकट सम्पर्क में रहे।

आपके पत्र द्वारा अपने पुराने मित्र तथा सहयोगी प्रो० सालिगराम जी भार्गव की १६ सितंबर को मृत्यु हो जाने का संवाद सुनकर मैं शोकातुर हो गया हूँ। १० से १३ सितंबर तक मैं प्रयाग में ही था। परन्तु उनकी रुग्णता की कोई बात मैंने न सुनी। जान पड़ता है कि उनकी मृत्यु आकस्मिक हुई है।

मुझे प्रो० सालिगराम से परिचय रखने का सौभाग्य तो बहुत अधिक दिनों से है, परन्तु जिस अवधि में ६ वर्ष तक मैं प्रयाग विश्वविद्यालय का उपकुलपति रहा, उस समय मैं उनके निकट सम्पर्क में आ सका तथा जितना अधिक मैं उनका परिचय पाता गया, मैं उन के जीवन की सरलता, उद्देश्य की निश्छलता, उच्च कर्तव्य परायणता तथा चरित्र की श्रेष्टता की उतनी ही अधिक प्रशंसा करना सीखता गया। छात्रों की हितकामना उनके अंतर्गत में व्याप्त थी तथा उनके प्रति अनुराग एवं हृदय तथा मस्तिष्क के निर्मल गुणों के कारण ही वे छात्र जनों के सतत श्रद्धाभाजन बने रहे। उनके सहयोगी अध्यापक वृन्द भी उनकी निर्भीकता एवं निष्कपटता के कारण अपना स्नेहभाजन समझते थे। यह अत्यंत बड़े क्षोभ की बात है कि विश्वविद्यालय से अवसर प्राप्त करने के पश्चात् अपनी पूर्ण साधना से अर्जित विश्रान्ति-काल का उपभोग करने के लिए वे अधिक जीवित न रह सके। उनकी आत्मा को चिरंतन शान्ति प्राप्त होने की कामना करता हूँ।

(३२वें पेज का शेषांश)

सिद्धान्तों पर इतने दृढ़ थे कि किसी कारण से भी प्रचलित नहीं होते। समय में इतना परिवर्तन हो गया, दुनिया कहीं से कहीं पहुँचगई परन्तु सालिगराम जी का साफा और कोट पाजामा नहीं बदला। दृढ़ता हो तो ऐसी हो। अपने स्वभाव से दूसरों को प्रभावित कर देना भी एक गुण था कि जिसके कारण उनसे बड़ी अवस्था व बड़े दरजे के व्यक्ति भी उनके सामने झुक जाते थे स्वार्थत्याग, कर्तव्यपरायणता, लगातार परिश्रम, दूरदर्शिता उनके साधारण गुणो में से थे कि जो बिना जाने ही होते रहते थे।

श्रद्धांजलि

प्रोफेसर सतीश चंद्रदेव,
अध्यक्ष, अंग्रेजी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय

प्रयाग विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग के अध्यक्ष श्री सतीश चंद्रदेव का प्रोफेसर सालिगराम जी से १९१३ से परिचय है, परन्तु ९ वर्षों तक आप उनके बिल्कुल पड़ोसी भी रह कर अत्यन्त निकट से व्यक्ति की परख कर सके हैं।

मैं प्रो० सालिगराम से पहले पहल जुलाई १९१३ में साक्षात्कार कर सका था जब मैं म्योर सेन्ट्रल कालेज में भर्ती हुआ था तथा भौतिक विज्ञान विभाग में उनके आधीन रक्खा गया था। उस समय से लेकर आज चालीस वर्षों की अवधि व्यतीत हो जाने तक प्रो० भार्गव मेरे एक आदरणीय शिक्षक एवं मित्र रहे हैं। उनके प्रति मेरे हृदय में जितना आदर था, उसमें कभी न्यूनता नहीं हुई, यह उनके चरित्रबल का आदर्श था। अपनी कक्षा के उपकरण-अभावग्रस्त छात्रों में भी अभिरुचि उत्पन्न करा सकने में वे समर्थ शिक्षक थे। यह उनकी लगन तथा धैर्य का ही परिणाम था कि किसी विषय को छात्र जहाँ शुष्क समझते थे, उसी में अन्त में प्रायः अभिरुचि उत्पन्न कर लेते थे। आधुनिक भौतिक विज्ञान के अज्ञात क्षेत्र में एक निर्देशक एवं शोध-कर्त्ता रूप में आज भारत के उदीयमान वैज्ञानिकों की एक समूची पीढ़ी उनके प्रति यथेष्ट श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए विद्यमान है। इस सम्बन्ध में कुछ कहने का मेरा कार्य नहीं है। किन्तु उनके जीवन का एक पहलू है जिसे देखने का मुझे सुअवर प्राप्त हो सका था क्योंकि मैं नौ वर्षों तक उनका पड़ोसी रह चुका हूँ। इस सौभाग्य के ही कारण मुझे उनके निकट सम्पर्क में आना पड़ा और निकट के आवास की इस अवधि ने मेरे हृदय में उनकी चरित्रनिष्ठा एवं सरल तथा पवित्र जीवन-पथ के प्रति प्रगाढ़ भक्ति उत्पन्न की। जुलाई-से लेकर नवंबर १९३० तक विश्वविद्यालय देश की राजनीतिक उथल पथल का एक केन्द्र बना था। हम और वे प्रायः अधिक साथ रहते, उनकी मोटर पर ७ बजे सवेरे पहुँच जाते और प्रायः ३ या ४ बजे सन्ध्या को लौटते। हम लोग थोड़ा बहुत जो बन पड़ता, विश्वविद्यालय के छात्रों को हिंसा या असंयत व्यवहार में लिप्त न होने देने के लिए उद्योग करते। प्रोफेसर भार्गव अहिंसा के समर्थक थे और अपने सिद्धान्त का अक्षुण्ण रूप से अनुगमन करने का आदेश उनके छात्रों पर अधिक प्रभाव डाल सका। वे उनकी सच्ची राष्ट्रीयता के प्रति उनका आदर करते थे, किन्तु उन्होंने देखा उद्धतपन या उच्छृंखलता का उनके हृदय में कोई स्थान नहीं था।

उनकी उत्फुल्ल वृत्ति, कृपालुता, निस्वार्थ भावना तथा शुद्ध निष्ठा की स्मृतियाँ तो अगणित हैं। उनके देहावसान से मुझे हार्दिक शोक हुआ है। उनकी उस समय मृत्यु हो गई जब हम लोग उन्हें अधिक दिनों तक अपने मध्य देखने की आशा रखते थे। किन्तु मैं जानता हूँ कि अन्त काल के लिए वे सदा सन्नद्ध रहते थे और उनके सम्बन्ध में मेरी जो कुछ स्मृति है, मुझे विश्वास है कि अन्तकाल आ पहुँचने पर वे खिन्न होने वाले व्यक्ति नहीं थे। उनकी मृत्यु के पीछे सैकड़ों छात्र तथा मित्र उनके प्रति शोक प्रकट करने के लिए हमारे सम्मुख पड़े हैं। एक मनुष्य तथा शिक्षक रूप में उनके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने का यह अत्यंत प्रभावोत्पादक प्रमाण है।

'विज्ञान' पत्र के वास्तविक जन्मदाता

लेखक चिरंजीलाल माथुर B.A., L. T. LL. B.

सन् १९१४ में मैं टीचर्ज़ ट्रेनिंग कोलेज इलाहाबाद का एक विद्यार्थी था और श्री सालिग्राम जी भार्गव M. C. College इलाहाबाद में प्रोफेसर थे। मेरे पुराने सहपाठी होने के नाते से प्रायः मिलते और भिन्न-भिन्न विषयों पर वार्ता किया करते थे। एक दिन यह बात हुई कि साइंस (विज्ञान) का बोध केवल अँग्रेजी पढ़े लिखों तक ही सीमित है। हिन्दी में भी इसका प्रचार होना चाहिये। इसी वार्ता ने शीघ्र ही 'विज्ञान परिषद' का रूप धारण कर लिया। उस समय 'Vernacular Scientific Society' इसका नाम था। उस परिषद की बचपन की अवस्था में मैं भी एक सदस्य था।

फिर 'विज्ञान' नाम से एक पत्र निकलने लगा। 'विज्ञान परिषद' व 'विज्ञान' पत्र के जन्मदाता मेरे ५३ वर्ष के मित्र श्री सालिग्राम भार्गव थे। मैं इसका सदस्य हुआ और विज्ञान में Physiology (शरीर शास्त्र) पर मेरे सरल लेख निकल गये, यह सब श्री सालिगराम के ही उत्साह बढ़ाने से हुआ।

मेरा संबन्ध इनसे बहुत पुराना था। सन् १९०१ से आरंभ हुई मित्रता लगातार इनकी मृत्यु तक बदस्तूर बनी रही। मैं इनको कभी नहीं भूल सकता और मेरे विचार में मैं इनके चरित्र से प्रायः अधिक परिचित हूँ। क्योंकि मैं छोटी उमर से इनके समीप रहा और मेरे और इनके बीच में कोई भेद-भाव न था। वैसे तो ये ऐसे कृपालु थे कि सब पर इनकी कृपा थी परन्तु मैं कुछ विशेष कृपा पात्र रहा हूँ।

मैं अपने अनुभव से यह कह सकता हूँ कि श्री सालिगराम भार्गव जैसे चरित्र वाला शायद ही कोई हो। परोपकार तो उनका खास गुण था। परन्तु उनमें एक विशेषता यह थी कि बिना माँगे और बिना जताये ही वे उपकार करते थे। मैं नीचे कुछ घटनाएँ अपने और उनके जीवन की देता हूँ जिनसे उनके चरित्र का दिग्दर्शन भली भाँति हो जावेगा।

अलवर हाई स्कूल में हम दोनों पढ़ते थे। हवाखोरी में साथ जाना साथ पढ़ना प्रायः प्रतिदिन होता था। कक्षा में कभी साथ और कभी आगे पीछे होते-होते इन्होंने १९०५ में और मैंने १९०६ में Entrance परीक्षा पास की। मैं पढ़ता भी था और राज सेवा भी करता था। जब मेरी Entrance की परीक्षा का समय आया तो सालिगराम भार्गव आगरे Inter में थे। इन्होंने यह विचार किया कि चिरंजीलाल की पढ़ाई में नौकरी की वजह से हर्ज होगा। अतः बिना मेरी प्रार्थना के मुझे परीक्षा के कुछ सप्ताह पहले आगरे बुला लिया। इसका यह परिणाम हुआ कि मैं प्रथम श्रेणी में पास हुआ। मेरे और इनके परस्पर प्रेम व विश्वास से ऐसी दशा हो गई थी कि हमारे बीच में 'क्यों' कभी नहीं आता था। जो कुछ सालिगराम ने कह दिया चिरंजीलाल ने बिना तर्क किये मान लिया।

अब हम दोनों आगरे पढ़ने लगे। ये Second year में और मैं First year में। हमारे कालेज, छात्रालय और कक्षा अलग-अलग थी परन्तु हम रहते इस प्रकार थे जैसे एक कालेज, एक छात्रालय और एक कक्षा के विद्यार्थी हों।

भार्गव बोरडिंग हाउस (छात्रालय) में उस समय कई विद्यार्थी सालिगराम से आयु में बड़े थे। मैंने स्वयम कई बार देखा कि वे लोग लड़ते थे और सालिगराम उनका फैसला करते थे। इससे स्पष्ट प्रकट है कि इनमें बचपन से ही यह शक्ति थी कि आयु में अपने से बड़े को भी प्रभावित कर लेते थे। मैंने ५३ वर्ष में इनको कभी क्रोधित होते नहीं देखा। यदि कोई बात इनकी मरज़ी के खिलाफ़ होती तो बड़ी शान्ति से उपाय सोचकर बतलाते और अपने चित्त की शान्ति भंग कभी नहीं करते थे।

मैं पहले कह आया हूँ कि मेरे हृदय में इन्होंने इतना विश्वास उत्पन्न कर दिया था कि मैं इनसे 'क्यों' कभी नहीं कहता था। इस प्रकार इन्होंने न मालूम कितने मनुष्यों के

हृदय में विश्वास उत्पन्न किया होगा। जब हम आगरे थे तो एक गोविंददेव भार्गव मथुरा का भी second year में था। दुर्भाग्यवश गोविंददेव के सब घर वाले बुखार में पड़ गये। यदि गोविंददेव जाता तो उसका पढ़ाई का हर्ज होता। मेरा प्रथम साल था। सालिगराम ने झट अपने मन में तजवीज सोच ली और मुझसे कहा कि मथुरा जाकर गोविंददेव के मकान पर रहो जब तक कि उसके घर वालों में से कोई पुरुष खड़े पैरों न हो जावे। मैं बिना तर्क किये मथुरा चला गया।

दूसरों के हित का खयाल उनको सदा रहता था। दूर दर्शिता उनमें बहुत थी। एक घटना मेरे साथ हुई कि जो उनके दूरदर्शी होने का बड़ा उदाहरण है।

बी० ए० में जब मैं था तो कुछ समय परीक्षा से पहले मुझे ज्वर ने लगातार सताया। मैं परीक्षा की तय्यारी भली भाँति न कर सका। मेरा इरादा परीक्षा में सम्मिलित होने का नहीं था। सालिगराम जी इलाहाबाद ठहरने का प्रबन्ध करने पहले चले गये और बिना मुझे सूचित किये अन्य जाने वाले विद्यार्थियों से कह गये कि चिरंजीलाल को जरूर ले आना। जब ये लोग रवाना होने लगे तो मुझे जबरदस्ती इलाहाबाद ले गये। मैं चला तो गया परन्तु पढ़ाई बिल्कुल नहीं की क्योंकि मैं जानता था कि तय्यारी ठीक नहीं है। लापरवाही से परीक्षा में उत्तर लिखे और किंचित मात्र पास होने की आशा नहीं थी। परन्तु मैं पास हो गया। पीछे की दशा ने यह सिद्ध कर दिया कि यदि मैं उस समय परीक्षा न देता तो फिर मुझे B. A. होना असंभव हो जाता। सालिगराम की दूरदर्शिता से ही मैं ग्रेज्वेट हो गया।

सरविस (service) में मैं और सालिगराम जी अलग-अलग स्थानों पर रहे परन्तु हमारी मित्रता में कभी कोई फर्क नहीं आया और समय-समय पर मिलते रहते थे। सालिगराम जी का तो यह नियम था कि गरमी की छुट्टियों में अपने मित्रों से मिलने जरूर पहुँचते थे। मैं प्रायः इनकी इस यात्रा में साथी होता था।

मैं पहले कह आया हूँ कि सालिगराम जी बिना कहे और बिना मांगे सहायता करते थे। छात्रों को प्रत्येक प्रकार की सहायता सदा किया करते थे। एक घटना मेरे साथ बड़ी आश्चर्य-जनक हुई। सन् १९४० में जब कि मेरा बड़ा लड़का मेडीकल कालिज आगरा में पढ़ता था मैं एक स्कूल में अध्यापक हो गया। परन्तु मेरी आयु उस समय ५५ वर्ष की थी। कमेटी में सवाल तो उठा परन्तु एक सदस्य ने कह दिया कि Inspector of Schools आप रोक लगाएगा। कागजात Inspector of Schools के पास चले गये।

इसी दरमियान में एकाएक एक दिन सालिगराम जी आगरे में मेरे मकान पर पहुँचे। कुछ देर वार्तालाप करके कहने लगे कि मेरे साथ चलो। मेरे और इनके बीच में 'क्यों' तो था ही नहीं, मैं इनके साथ चल दिया। तांगे में बैठ कर Mr. Ghosh, Inspector of Schools के मकान पर पहुँचे। पहिले ये अन्दर चले गये और फिर मुझे बुलाया। ये मि० घोष सालिगराम जी के शिष्य थे। मेरे सामने तो केवल इतनी बात हुई कि Mr. Ghosh ने सालिगराम जी से पूछा आप किस काम से आगरे आये और इन्होंने उत्तर दिया मेरी ओर इशारा करके कि 'इनसे मिलने के लिये'। परिणाम यह हुआ कि मेरी नियुक्ति का पत्र ५५ साल का प्रश्न उठे बिना ही समर्थन होकर आ गया। इस घटना में विचारणीय यह बात है कि कितने चुप चाप कितनी गुप्त रूप से कितना लाभ पहुँचाने का उपाय कितनी दूरदर्शिता से सालिगराम जी ने उपकार के लिये किया। मुझे नहीं मालूम कि उन्होंने किस तरह यह पता लगा लिया कि मेरा नियुक्ति पत्र Mr. Ghosh के पास गया हुआ है और यह भी आश्चर्य की बात है कि ५५ साला होने का सवाल न उठाने का साहस Mr. Ghosh किस तरह कर गये। ऐसा साहस करने के लिए कितनी जोरदार सिफारिश हुई होगी। मैं उनका कितना आभारी हूँ यह बतलाना लेखनी की शक्ति से बाहर है।

श्री सालिगराम भार्गव के गुणों को एकत्रित करके मैं इस लेख को समाप्त करता हूँ।

बाल अवस्था से मृत्यु तक इनके हृदय में परोपकार का भाव सदा बना रहा स्वयम् इस बात की चिन्ता रखते थे कि किस प्रकार किसी को सहायता दी जावे। उनका घर अतिथि सत्कार के लिये सदा खुला था। सुभाव में शान्ति इतनी थी कि कभी क्रोध को पास नहीं फटकने देते थे। अपने

(शेष २९वें पेज पर)

श्रद्धांजलि

ले०—डा० के० पी० चटर्जी, भूतपूर्व अध्यक्ष, रसायन विभाग, प्रयाग विश्व विद्यालय

श्री सालिगराम जी के देहान्त के संवाद ने मुझे अत्यधिक दुःख दिया है। मैंने एक परम मित्र को खोया। उनसे मेरा साथ आज ४२ वर्ष का था। हम लोग दोनों एक ही साथ गवर्नमेन्ट हास्टल में, जिसको अब अमरनाथ झा होस्टेल कहते हैं, रहते थे। और एक ही साथ एम० एस सी० पास हुए थे; भार्गवजी भौतिक विज्ञान में और हम रसायन में थे।

भार्गवजी ने कभी अपने को कोट-पैंट में नहीं सजाया। अपने जन्मस्थान अलवर के सबसे मामूली अङ्गावरण को उन्होंने पहिनने के लिए चुन लिया था, और वही बचपन् से पहिनते आये। अंग्रेजी राज में भी अपने को बराबर देशी ही रक्खा। वही पतली रूई की पोशाक, क्या गरमी क्या जाड़े में, उनका अङ्गावरण था। वह योगी का स्वभाव रखते थे, ऋतु का प्रभाव उनको नहीं विचलित कर सका था।

भार्गवजी की प्रकृति मधुर थी; पर मधुरता के साथ उनमें तेज और उत्साह भी बहुत था। उनको हमने कभी 'दब गया' या 'बुत गया' ऐसा नहीं पाया; छात्र अवस्था में भी नहीं पाया, और पीछे भी नहीं पाया। उनका उत्साह संक्रामक था, उससे दूसरे भी उत्साहित हो जाते थे। उसी उत्साह से प्रयाग विश्वविद्यालय के भौतिक विज्ञान विभाग (Physics Department) ने कई तरह की उन्नति की। फोटोग्राफी शिक्षा और हाथ के काम की शिक्षा, (Workshop Training), इन सबों का पक्का बन्दोबस्त बनगया है। फोटोग्राफी शिक्षा प्रदान में सहायता करने के लिये मुझको उन्होंने खींच लिया था।

विज्ञान के परिभाषिक शब्द बनाने में, और छोटी छोटी सरल पुस्तकें लिखने में भार्गवजी की निष्कपट और निरन्तर चेष्टा आज फलवती हुई है। आज जो विज्ञान परिषद् और "विज्ञान" पत्रिका इतने गौरव से चलती हैं, उसका प्रारम्भिक गठन, भार्गवजी, गौड़जी, नामी साहेब, महामना गङ्गानाथजी, महावीर प्रसाद जी और कई एक शुभानुचिन्तकों ने उद्यम और उत्साह से किया। इन लोगों ने मनोरञ्जक पुस्तिकाएं लिखना और मासिक सभायें करना आरम्भ किया। वह आज ३५ वर्ष की बात है। हमको भी प्रायः बुला लेते थे, और हमसे दो तीन व्याख्यान भी दिलाये थे। इन सब कामों में भार्गवजी को हार्दिक आनन्द अनुभव होता था।

भार्गवजी भौतिक विज्ञान विभाग के अध्यक्ष हुये थे और सदाही प्रशंसा के साथ अपना काम चलाया था। आप शिक्षक भी बहुत ही अच्छे थे। भार्गवजी का घर-ऐसा व्यवहार लड़कों को बहुत आनन्द देता था। उनके शिष्य सारे उत्तर प्रदेश में फैले हुये हैं। उनका स्वर्ग-प्रयाण आज उन सब सन्तानों को मर्मान्तिक दुःख दे रहा है।

भार्गवजी दाताओं में नामी दाता थे, पर दान का प्रचार करनेवाले नहीं थे। अपनी पूजनीया माताजी की स्मृति में उन्होंने पदार्थ विज्ञान विभाग का एक बड़ा अङ्ग बनवा दिया। फोटोग्राफी मन्दिर का निर्माण और आनुषङ्गिक यन्त्रादिक के क्रय में उनके दान ने बहुत सहायता दी है। उनकी स्मृति से यह सब और बहुत कुछ परिपूर्ण रहेगा।

सालिगरामजी की उत्साहपूर्ण मूर्ति सदा ही नयन के सामने जागरूक रहेगी। स्वर्गवासी मेरे मित्र, उन महापुरुष को मेरी यह श्रद्धांजलि पहुँचे।

एक स्मृति

लेखक—डा० डी० वी० देवधर, भूतपूर्व अध्यक्ष,
भौतिक विज्ञान विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय।

स्वर्गीय प्रोफेसर सालिगराम भार्गव का व मेरा परिचय प्रथम सन् १९११ में हुआ। उस समय वे प्रयाग के म्यूर-कॉलेज में एम० एस-सी० के दूसरे वर्ष में पढ़ते थे व मैं एम० एस-सी० के प्रथम वर्ष में पढ़ता था। भौतिक विज्ञान यह अध्ययन का एक ही विषय हम दोनों का था। म्यूर कालेज के हॉस्टेल में, जो कि उन दिनों में गवर्नमेंट हॉस्टेल कहलाया जाता था, मेरे और सालिगराम जी के कमरे निकट थे। सालिगरामजी के और हमारे विचार-विनिमय बहुत होते थे। साधारणः दोनों के विचार, आचार एक ही प्रकार के होने के कारण थोड़े ही दिनों में हमारी मित्रता दृढ़ हो गई। म्यूर कॉलेज की शिक्षा समाप्त होने के पश्चात् यद्यपि हम दूर हो गये तथापि हमारी मित्रता आज ४२ वर्ष पर्यन्त कायम रही। सालिगरामजी विद्यार्थी अवस्था में शरीर से थोड़े दुबले थे। परन्तु वे स्वदेशभक्त, उदार तथा दयालु थे। शरीर-सुधार की दृष्टि से हम प्रति दिन शाम को ५।६ मील घूमने जाते थे। घूमने की पार्टी में हम ८।६ विद्यार्थी थे। इसके अलावा हमारा एक दूसरा नित्य क्रम था। प्रतिदिन रात्रि के १०॥ बजे सोने के पहले सालिगराम जी और मैं म्यूर कॉलेज के कम्पाउंड में १ मील दौड़ लगाते थे। इस प्रकार ५।६ महीने के व्यायाम से उनके शरीर को बहुत लाभ मिला।

हिंदी में वैज्ञानिक विषय पर लेखन करने के सम्बन्ध में उन दिनों हम और सालिगराम जी बहुत विचार करते थे। इस विषय में अत्यंत प्रेम और परिश्रम करने वाले स्वर्गीय श्री रामदास गौड़ भी थे। गौड़जी उस समय म्यूर कॉलेज के रासायनिक विभाग में अध्यापक थे। यह बात स्मरण करने के योग्य है कि इन विचार-विनिमयों का परिणाम यह हुआ कि सन १९१३ में विज्ञान परिषद् की स्थापना हुई और "विज्ञान" मासिक निकलना आरम्भ हुआ। सालिगराम जी अनुशासन के प्रेमी थे और वे अच्छे आयोजक भी थे। परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् उन्हें विक्टोरिआ एम्प्रेस रीडरशिप नाम की १०० रु० माहवार की अन्वेषण छात्रवृत्ति मिली, और सालिगरामजी म्यूरकॉलेज के भौतिक विज्ञान की प्रयोगशाला में अन्वेषण का काम कुछ समय तक करते रहे। उन दिनों में भौतिक विभाग के प्रधानाध्यापक श्री जे० जे० ड्यूरक थे। सालिगरामजी पर प्रेम करते थे, और उन्होंने इनको म्यूर कॉलेज में अध्यापक का स्थान दिया। प्रयाग विश्वविद्यालय की जब पुनः स्थापना हुई तब सालिगरामजी "रीडर" नियुक्त किये गये। कुछ वर्ष पश्चात् श्री मेघनाद साहा प्रधानाध्यापक नियुक्त होकर कलकत्ते से प्रयाग विश्वविद्यालय में आये, तब सालिगरामजी उनके साथ सहकारिता से काम करते रहे। डॉ० साहा के कलकत्ते वापस जाने के उपरान्त डॉ० के० एस० कृष्णन प्रधानाध्यापक नियुक्त हुये। उनके साथ भी प्रेम से और सहयोगिता से सालिगरामजी का काम चलता रहा। डॉ० कृष्णन को दिल्ली की भौतिक विज्ञानशाला में नियुक्त होने के कारण प्रयाग का प्रधानाध्यापक का स्थान जब रिक्त हुआ तब शालिग्राम जी की नियुक्ति उस स्थान पर को गई। प्रोफेसर सालिगरामजी बहुत अच्छी श्रेणी के अध्यापक थे। विद्यार्थियों का तथा उनके सहयोगी अध्यापकों का उन पर बड़ा प्रेम था। उनका सर्व जीवन प्रयाग के विश्वविद्यालय में व्यतीत हुआ। उनका रहन-सहन बहुत सरल था। वे सर्वदा खादी के वस्त्र पहनते थे। गर्व का स्पर्श उनको कभी भी न हुआ। विश्वविद्यालय से सेवानिवृत्त होने के पश्चात् सालिगरामजी का समय समाजसेवा में व्यतीत होता था। उनके शरीर का स्वास्थ्य अच्छा था। परन्तु ईश्वर की इच्छा से उनका आकस्मिक देहावसान हो जाना एक महान् दुर्भाग्य है। इस प्रकार के चेता, उदार, गर्वरहित व दानी पुरुष बहुत कम पाये जाते हैं। विज्ञान परिषद् के क्षेत्र में तो सालिगराम जी का नाम सदा के लिए अमर रहेगा। ईश्वर उनकी आत्मा को शान्ति दे।

— ——

महान जीवन की गौरव-मयी गाथा

ले०—श्री शत्रुघ्न भार्गव, एम० ए०,
प्राध्यापक, किशोरीरमण डिग्री कालिज, मथुरा

विश्व की रंगभूमि में जीवन की जो चिरंतन लीला हो रही है, उसका प्रारंभ जैसे अज्ञेय है वैसा ही अंत भी रहस्यमय है। हम सभी लोग न मालूम जन्म के धूमिल पर्दे को चीर कर इस विश्व-रंगमंच पर किसी अज्ञात सूत्र-धार के निर्देश से अपने अपने जीवन-नाटक की विभिन्न लीलाओं का अभिनय कुशल अभिनेताओं की तरह दिखला कर मृत्यु के तमसावृत पर्दे के पीछे जा कर सदा के लिए छिप जाते हैं। अभिनेता चला जाता है, तो दर्शक उसके अभिनय की चर्चा करते हैं, और उसका मूल्य-निर्धारण करते रहते हैं। आज हम एक ऐसे दिवंगत महामानव की पुण्यमयी पावन गुण-गाथा की पवित्र पयस्विनी से अपनी जड़ लेखनी और संतप्त हृदय को प्लावित कर अपने को धन्य समझते हैं! वे सब हम को निस्सहाय छोड़ कर सब को रुला कर, निष्ठुरता के प्रति स्नेह बढ़ा कर न मालूम कहाँ चले गए, पर अपने कीर्ति-गौरव को सदा के लिए छोड़ गए। वे यशः-काय से सदा हमारे साथ हैं। स्नेह, त्याग, उदारता, सेवा, निरभिमानिता, सहृदयता, सौजन्य, तथा सौहार्द ही उनके अन्तर्जगत् के वे अपरिवर्तनशील स्थायी गौरव हैं, जिनके आधार पर उनके जीवन का सच्चा मूल्य निर्दिष्ट किया जा सकता है।

मेरे मानस-पट पर अंकित अनेक अमिट और अमर स्मृति-चित्र हैं, जिनके रंगों को मिटाने में समय का बल-शाली चक्र भी समर्थ न हो सकेगा। वे अक्लान्तकर्मा थे। उनके मत से मनुष्य को किसी भी अवस्था में अकर्मण्य नहीं होना चाहिए था। उनका विश्वास था कि विषयों में अनासक्त हो तथा फल की कामना से रहित होकर निरन्तर काम में प्रसन्न-चित्त से लगे रहना ही भगवान की वास्तविक पूजा है। वे समय को सच्चा धन समझते थे। समय का जितना महत्त्व वह समझते थे, उतना मैंने कम व्यक्तियों को समझते देखा। खाली बैठने तथा बेकार की बात-चीत करने को वे सब से बड़ा पाप समझते थे। उनके सब काम समय पर होते थे। जीवन के प्रत्येक पल को वे मूल्यवान समझते थे।

सादगी उनके जीवन का लक्ष्य था। दिखावा और अभिमान उन्हें छू तक नहीं गया था। सरलता और सच्चाई, ईमानदारी और ईश्वर-विश्वास उनकी सफलता की कुंजियाँ थीं। वे निर्भीक तथा स्पष्टवक्ता थे। वे दयालु, क्षमाशील, तथा उदारमना थे।

सचमुच ही वे 'संकटमोचन' थे। सदा दूसरों को परामर्श देने तथा उलझनों को सुलझाने में वे तत्पर रहते थे। कठिन से कठिन गुत्थियों को सीधे सादे ढंग से सुलझाने में वे प्रायः सफल होते थे, जिससे उनकी कार्य-कुशलता, बुद्धिमत्ता, तथा दूरदर्शिता का पूरा-पूरा आभास मिलता था। अपने चरित्रबल, त्याग, सेवा के बल पर उन्होंने सब के हृदयों में घर कर रखा था। सब उनका विश्वास करते थे, उनका सम्मान करते थे, श्रद्धा करते थे। वे अजातशत्रु थे। उन्होंने अपनी जान में कभी भी किसी का बुरा नहीं सोचा, किसी का अहित नहीं किया।

उनका नवनीत कोमल हृदय दूसरे के दुःख की ज़रा सी आँच भी पाकर पिघल जाता था। औदार्य, दया, और सहृदयता का स्रोत उमड़ पड़ता था। उनकी दानशीलता नैसर्गिक थी। वे सदा ही सब की गुप्त रूप से सहायता करते रहते थे। उनके संसर्ग में यदि कोई एक बार भी आया तो उन्होंने जीवन-पर्यन्त बड़े प्रेम और उदारता से उस संबंध को निबाहा। उन्होंने दूसरों की सहायता करने में सम और विषम परिस्थितियों का ध्यान नहीं रखा।

अपनी व्यक्तिगत कठिनाइयों को कभी भी प्रकट न होने देते थे। मैंने अपने जीवन में उन्हें कभी उत्तेजित अथवा विचलित होते नहीं देखा। लोग उत्तेजित होकर कभी-कभी बहुत लाल-पीले हो जाते थे और कभी उनको मुँह पर ही भला-बुरा तक कह डालते थे, पर वे शांत भाव से मुसकराते ही रहते थे, हँसते ही रहते, और जब आलोचक और विरोधी शान्त हो जाता, तो पछताता था पर वे क्षमा-याचना करने का अवसर ही न देते। यद्यपि अब उनका पार्थिव शरीर इस नश्वर संसार में नहीं हैं, तथापि उनका वह सौम्य, शान्त स्वरूप और मन्द मुस्कान भूल जाना सरल नहीं है। आज भी ऐसा लगता है मानों वे किसी ओर से आ रहे हैं। वे किसी को निराश करना नहीं जानते थे। कोई ऐसा विरला ही होगा जो आवश्यकता पड़ने पर उनके पास गया हो, और उन्होंने तन-मन-धन से उसकी सहायता न की हो। आत्मवत् सर्वभूतेषु समझने वाले ऐसे आदर्शवादी, सिद्धांतवादी, तथा परोपकारी महात्मा संसार में कम होते हैं। वे ऐसे परदुखकातर सुजन थे कि दूसरों की सहायता में अपने सुख-दुःख, सुविधा-असुविधा का ध्यान न रखते थे। 'मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखम्' धैर्य, कष्टसहिष्णुता, आत्म-सम्मान, तथा चारित्रिक निष्ठा उनकी अपनी विशेषताएँ थीं। उनमें संगठन-शक्ति अपूर्व थी, और वे निस्पृह थे। उनमें उग्रता और मधुरता तथा नवीनता एवं प्राचीनता का अपूर्व सम्मिश्रण था।

वे बहुत ही मिलनसार तथा सामाजिक व्यक्ति थे। मित्रता करना और उस का निबाहना वे भली भाँति जानते थे। छोटी से छोटी-स्थिति के आदमी के साथ भी वे मधुरता का व्यवहार करते थे। उन्हें मैंने क्रुद्ध होते हुए बहुत ही कम देखा। नए मित्र वे बड़ी जल्दी बना लेते थे। उनके मित्रों तथा परिचितों की संख्या बहुत बड़ी है, और उसमें सभी वर्गों तथा स्थितियों के लोग हैं। अतिथि-सत्कार में वे कोई भी कमी नहीं होने देते थे। महत्वपूर्ण कार्यों में व्यस्त रहने पर भी वे अतिथियों की सेवा बड़ी तत्परता से करते थे, और उनकी सुख-सुविधा का पूरा-पूरा ध्यान रखते थे। उसके शिष्ट और भद्र व्यवहार की मधुर छाप सब के हृदयों पर अमिट पड़ती थी। स्वार्थ का इतना विवेकपूर्ण निष्ठुर त्याग तथा बौद्धिक वैराग्य कम ही लोगों में मिलते हैं।

उनकी दिनचर्या, कार्यशैली, खान-पान, निद्रा,-आहार-विहार सभी संयमित और नियमित थे। अपनी इन्हीं विशेषताओं के कारण वे अपने जीवन में बहुत कुछ कर सके थे। यह बात उनके सार्वजनिक जीवन पर विहङ्गम दृष्टि डालने से स्पष्ट हो जाती है। उसमें विविधता तथा अनेकरूपता थी। उनका कार्य-क्षेत्र सर्वाङ्गीण था। हिंदी-सेवा और विज्ञान-सेवा उनकी राष्ट्रीयता का एक अंग थीं। वर्षों तक विज्ञान-परिषद् के मंत्री, प्रधान-मंत्री, प्रधान और उपप्रधान रहकर उन्होंने इस संस्था का काम किया, उसका महत्व किसी से छिपा नहीं है। वे पृष्ठभूमि में रहकर ठोस काम करने वाले थे। नाम और यश की कामना नहीं थी। जाति-सेवा भी उन की मानव-सेवा का एक अंग थी। उन्होंने जो अपनी जाति के लिए किया, वह कम ही लोग करेंगे। नवीन नवीन योजनाओं को मूर्तिमान रूप देने की उनमें अनोखी क्षमता थी। प्रयाग-विश्व-विद्यालय के भौतिक-विभाग के रीडर और अध्यक्ष के रूप में उन्होंने भौतिक-विभाग की चतुर्दिक उन्नति के लिए जो कुछ भी किया वह उस विभाग के इतिहास में सदा के लिये स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा। फोटोग्राफिक एसोशियेशन की कक्षाएँ उन्हीं की चलाई हुई हैं। लेबोरेट्री-वर्कशाप-ट्रेनिंग कक्षाओं की स्थापना उन्होंने ही की थी। एअरोनाटिक्स की कक्षाओं का श्रीगणेश उन्होंने करना चाहा था। इसके लिए उन्होंने सात हजार के लगभग दान भी विश्वविद्यालय को उसकी स्वर्णजयन्ती के अवसर पर प्रदान किया था। 'हिन्द फ्लाइङ्ग क्लब' की गतिविधि में उनकी रुचि थी। अपने दौहित्र चि० ब्रजभूषणदास तथा चि० ब्रजरक्षदास को उन्होंने वायुयान-संचालन की शिक्षा दिलवाई। प्रयाग की साइंटिफिक इन्स्ट्रूमेन्ट कम्पनी की गति-विधि तथा उन्नति में उन्होंने काफी रुचि दिखलाई। अपनी परमपूज्या माता जी की पुण्यस्मृति में उन्होंने प्रयाग-विश्व-विद्यालय के भौतिक-विज्ञान विभाग में एक बड़े कमरे का निर्माण कराया। प्रयाग की अनेक महत्वपूर्ण संस्थाओं को वे नियमित रूप से सहायता देते रहते थे। वे सेवा-समिति के प्रमुख कार्यकर्ताओं में से थे। दीर्घकाल तक वे सेवा-समिति के द्वारा संचालित विद्यामंदिर

हायर सैकेन्ड्री स्कूल के मैनेजर भी रहे। मथुरा की किशोरीरमण संस्थाओं की प्रबंधकारिणी समिति के वे एक स्थायी और सम्मानित सदस्य थे। हिन्दुस्तानी एकेडमी और पब्लिक लाइब्रेरी से भी उनका घनिष्ठ संबंध रहा था। वे अनेक विश्व-विद्यालयों की नियुक्ति-समितियों के सदस्य थे। अनेक वर्षों तक वे प्रयाग-विश्व-विद्यालय की कार्यकारिणी समिति के सदस्य रहे और विश्व-विद्यालयों के सभी महत्त्वपूर्ण विषयों में सक्रिय भाग लेते रहे। प्रयाग-विश्व-विद्यालय के लिए उनके मन में अपार प्रेम था। उन्होंने उसकी उन्नति में अपनी उन्नति, और उसके हित में अपना हित समझा। आजकल की शिक्षण-संस्थाओं में प्रचलित दलबंदी और छिछली गन्दी द्वेषपूर्ण राजनीति एवं आत्म-प्रदर्शन तथा स्वाधिकार-बल-संवर्द्धन से वे कोसों दूर रहे। वे कीचड़ में कमल के समान थे। वे निःशङ्क तथा निर्भीक थे। अपने निर्दिष्ट पथ से तिलभर भी विचलित नहीं होते थे। कोई भी प्रलोभन उन्हें खरीद नहीं सकता था। उन्होंने अपने आपको किसी भी कीमत पर बेचा नहीं था, अतः वे सदा सर उठाकर चलते थे। बाहर और भीतर से वे एक थे। जो दिल में था, वही जबान पर था। उनकी आँखें और मुख-मण्डल उनके हृदय की निर्मलता के प्रतीक थे। तैंतालिस वर्षों तक प्रयाग में रहने के कारण वे वहाँ के सार्वजनिक जीवन की स्फूर्ति और प्रेरणा के केन्द्र बन गए थे। वे पाँच वर्षों तक रिवाड़ी एलेक्ट्रिक सप्लाई के डाइरेक्टर रहे। यह कहा जा सकता है कि उनके निधन से एक अक्लांत जीवन का अवसान हो गया। इस दीप-निर्वाण से अंधकार छा गया। कर्म और प्रेरणा के आलोक को निरन्तर प्रसारित करनेवाले गगनचुम्बी प्रकाश-गृह का शिखर भूशायी हो गया, जिसके कारण अपने जर्जर जीवन-जलयान में आरूढ़ सहस्रों अंधकाराच्छादित निराश्रित व्यक्ति क्षुब्ध भव-सागर में विषम-परिस्थितियों की उत्ताल लहरों के कारण मार्ग नहीं पा रहे हैं।

आदर्श अध्यापक के रूप में उनका स्थान सदा अग्रगण्य रहेगा। उनका विद्यार्थियों के साथ संबंध प्राचीन भारत के गुरुकुलों तथा आश्रमों के गुरु-शिष्य-संबंध की याद दिलाता है। वे पितृ-तुल्य अपने शिष्यों के साथ व्यवहार करते थे। स्मरण-शक्ति उनकी ऐसी तीव्र थी कि जब वे किसी भी विद्यार्थी को कक्षा में सम्बोधित करते थे तो उसका नाम लेकर ही बुलाते थे। वर्षों बाद भी अपने शिष्यों से मिलने पर वे उन्हें नहीं भूलते थे। इतना ही नहीं, वे उनके पिता और भाइयों के विषयों में प्रश्न कर सब को चकित कर देते थे। वे कभी-कभी छात्रों के अभिभावकों से पत्र-व्यवहार भी करते रहते थे। कितने ही दिनों बाद उनके छात्र उनसे मिलें, वे उनसे उसी उत्साह और तपाक से मिलते थे मानों अभी-अभी कल ही विश्व-विद्यालय छोड़ा हो। वे विद्यार्थी अपने भाइयों और पुत्रों तथा पौत्रों को लेकर जब विश्व-विद्यालय में शिक्षा दिलाने को आते थे और उन्हें सहेज जाते थे तो उन्हें अपूर्व आत्मिक उल्लास का अनुभव होता था। उनमें हास-परिहास की पर्याप्त मात्रा थी। वे इस अमोघ शस्त्र का अचूक प्रयोग यथाअवसर कर देते थे। उनका हास्य बड़ा ही शिष्ट, मर्यादित, और उच्चकोटि का होता था। वे निष्पक्ष थे। सब को समान समझते थे। न वे किसी के लिए सिफ़ारिश करते थे, और न किसी की स्वीकार ही करते थे। अन्याय और अत्याचार तथा अनुशासन-विहीनता को ज़रा देर के लिए भी वे सहन नहीं कर सकते थे। वे बुराई के साथ पलभर भी समझौता करने को तैयार नहीं थे। खरी-खरी दो टूक बात करने में वे अपने ढंग के अकेले ही व्यक्ति थे। वे सदा विद्यार्थियों को सादा जीवन और उच्च आदर्शमय जीवन बिताने के लिए कहते थे। वे पोशाक की सादगी और रहन-सहन की सरलता पर विशेष ध्यान देते थे। उन्होंने अवसर पड़ने पर अपने विद्यार्थियों की सहायता करने से कभी मुँह नहीं मोड़ा। वे अपने विद्यार्थियों को जहाँ एक ओर तो स्वदेशी को प्रयोग लाने के लिए उत्साहित करते रहते थे, वहाँ दूसरी ओर वे उन्हें उत्तमोत्तम वैज्ञानिक ग्रंथों को लिखकर मातृभाषा का भण्डार भरने के लिए प्रोत्साहित करते रहते थे। वे विद्यानुरागी तथा अध्ययनशील प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। स्वाध्याय उनके जीवन की दिनचर्या का अनिवार्य अंग था। प्रातःकाल चार बजे उठकर प्रायः मैंने पढ़ते पाया। वे बड़े ही परिश्रम और लगन से रात दिन एक कर अपने 'लेक्चर-नोट्स' तैयार करते थे। उनकी विशेषता यह थी कि वे अपने विषय की आधुनिक से आधुनिकतम पुस्तकें मंगवाकर सदा अपने ज्ञान की अभि-

वृद्धि करते रहते थे और भौतिक विज्ञान संबंधी विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं से उनकी मेज भरी-पुरी रहती थी। अपने विषय के पूर्ण ज्ञाता होने के अतिरिक्त अर्थशास्त्र, राजनीति, ज्योतिष, तथा आचार शास्त्र से उन्हें विशेष रुचि थी। समाचार-पत्रों को वे नित्य ही पढ़ते थे। प्रयोगशाला के प्रबन्ध तथा व्यवस्था में वे बड़े दक्ष थे। वे अपने विद्यार्थियों को साधारण स्तर से उठा कर धीरे-धीरे क्रम से ऊँचाई पर ले जाते थे, और मौलिक सारभूत तत्वों तथा सिद्धान्तों की विवेचना वे बड़ी स्पष्टता से करते थे। जब तक वे यह न जान लेते थे कि विद्यार्थी समझ गए हैं, तब तक वे आगे नहीं बढ़ते थे। उनकी शिक्षा-प्रणाली नितान्त मौलिक और नवीन होती थी। विद्यार्थियों के प्रति उनका व्यवहार बड़ा ही उदार तथा सहानुभूति पूर्ण था। उनकी उदारता, विशालहृदयता, तथा दानशीलता की उदात्त वृत्तियों में संकीर्णता तथा भेदभाव के लिए स्थान न था। विश्व-विद्यालय के सैंतीस वर्षों के दीर्घ सेवा-काल में वे कदाचित दो एक बार ही विश्वविद्यालय देर से पहुँचे हों। विभाग की घड़ी प्रायः आगमन की सूचना पर ही ठीक होती थी। आप को रास्ते में पाकर विद्यार्थियों को आश्वासन होता था कि वे ठीक ही समय पर जा रहे हैं। विश्व-विद्यालय के कार्य करते समय उन्होंने दिन को दिन, रात को रात नहीं समझा। वे वहाँ सब से पहले पहुँचते, और सबसे बाद में आते थे। कभी-कभी तो लौटने में उन्हें रात हो जाती थी। छुट्टियों में भी वे प्रायः जाते थे। सर सुन्दरलाल हास्टल के प्रधान वार्डन होने के समय वे सीधे ही कालिज से वहाँ जाते, तब कहीं लौट कर घर आ पाते।

यों तो वे समस्त वसुधा को ही अपना कुटुम्ब माननेवाले महानुभाव थे, फिर भी उनका गार्हस्थ्य जीवन बड़ा सुखी तथा मधुर था। संतोष, आत्म-संयम, तथा संतुलित सम एवं अंतर्भेदिनी दृष्टि उनकी बड़ी विशेषताएँ थीं। अपनी निजी आवश्यकताओं को उन्होंने बहुत घटा रखा था। छोटे से छोटे काम करने में उन्हें संकोच नहीं होता था। वे लोगों का मन रखकर काम लेना जानते थे। सेवकों के रहते हुए भी वे यह चाहते थे कि घर के लोग जहाँ तक हो सके अपना काम स्वयं ही करें। स्वावलम्बन और आत्म-निर्भरता को वे विशेष महत्व देते थे। उन की मातृभक्ति, पितृभक्ति, सद्बुद्धि, सद्व्यवहार, सौहार्द, तथा भ्रातृप्रेम अपूर्व थे। दोनों भाइयों का प्रेम देखकर कलियुग में भी द्वापर युग के राम-लक्ष्मण की याद आ जाती है। घर के सेवकों के साथ उनका घरवालों का सा ही व्यवहार था। वे घर के अनिवार्य अंग थे। उनके सुख-दुःख का पूरा पूरा ध्यान रखते थे। उनके न होने पर सेवक गण भी घरवालों के ही सदृश दुखी हैं। और उनकी अश्रुधार नहीं रुकती है।

अपने भतीजों, दौहित्रों तथा पौत्रों के लिए उनके मन में अपार प्रेम था। जब जब इन में से किसी ने जीवन में कुछ सफलता प्राप्त की, तब तब उनकी प्रसन्नता का अन्त दिखलाई नहीं पड़ता था। बालकों से उन्हें विशेष स्नेह था। जब कभी वे मेरे पुत्र चि० सुभाष भार्गव तथा भतीजे चि० मधुमित्र भार्गव को देखते तो लाख कामों और उलझनों के रहते हुए भी कुछ देर के लिए उनसे बातें करने का अवसर निकालते थे। कभी-कभी हम लोग अपने चाचाजी की प्रतीक्षा करते रहते, तो ये बालक भी अपने बाबाजी की प्रतीक्षा में हमसे अधिक उतावले रहते थे। वे वादा कर कभी पीछे नहीं हटते थे। जो कहते वह पत्थर की रेखा की भाँति दृढ़ होता था।

आज मैं उस महापुरुष के निधन होने पर केवल व्यक्तिगत भावना से प्रेरित हो कर यह श्रद्धांजलि नहीं समर्पित कर रहा हूँ और न केवल यही सोच कर ये पंक्तियाँ लिख रहा हूँ कि 'मेरे पूज्य चाचाजी नहीं रहे', परन्तु मैं तो इस लिए विह्वल और कातर हो रहा हूँ कि मानवता की महानता के आदर्श तथा निष्ठा को मूर्तिमान स्वरूप प्रदान करनेवाला महामानव उठ गया, नरक तुल्य कंटकित संसार-नरक को स्वर्ग के नन्दन-कानन में परिणत करने वाली स्वर्गीय विभूति चल बसी। आज उनके न रहने से परिवार का प्राण गया, जाति-तरणि का कर्णधार गया, आश्रितों का परिपालक गया, एक सुहृद विवेकशील मित्र, एक पथ-प्रदर्शक ममत्वशील भावुक संवेदनशील हृदय, तथा संकट-ग्रस्तों तथा विपन्नों का मुक्तिदाता गया। 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः' के अनुसार जो जन्म धारण करता है, वह विनाश को प्राप्त होता ही है; परन्तु यह जानता हुआ भी हमारे शोक-संतप्त हृदय के धैर्य का बाँध टूट रहा है और हृदय

(शेष ३९वें पेज पर)

भार्गव जी से मेरा ३९ वर्ष का परिचय

लेखक—डा० जी० बी० देवधर, प्राध्यापक, भौतिक विज्ञान विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय।

स्वर्गीय पंडित सालिगराम भार्गव जी से मेरा प्रथम संबंध करीब ३९ वर्ष पहले, सन् १९१४ में म्यूर सेंट्रल कॉलेज में हुआ, उस समय सालिगराम जी ने रेडिओ ऑक्टिविटी के विषय में कुछ संशोधन करना आरंभ किया था। प्रोफेसर जे० जे० ड्यूरक जो उस समय भौतिक शास्त्र के मुख्य अध्यापक थे, उनपर बहुत प्रेम करते थे। डिमॉन्स्टेटर का काम कुछ वर्ष तक करने के पश्चात् उनको संयुक्त प्रांतीय शिक्षण विभाग में असिस्टेन्ट प्रोफेसर का काम मिला। सन् १९२२ में इलाहाबाद विश्वविद्यालय की नवीन रचना होनेपर उसमें सालिगराम जी रीडर नियुक्ति हुए और उन्होंने सरकारी नौकरी का त्याग किया। इलाहाबाद विश्वविद्यालय की सेवा उन्होंने २७ वर्ष तक निस्वार्थ बुद्धि से और प्रेम से की, सेवा-निवृत्त होने के पहिले एक वर्ष उनको भौतिक शास्त्र विभाग में मुख्य अध्यापक की जगह दी गयी। यह सम्मान उनको बहुत पहिले देना चाहिये था। यह दुःख की बात है की हमारे विश्वविद्यालय के हर एक शिक्षण विभाग में केवल एक ही प्रोफेसर की जगह रहती है। योग्य अध्यापक को थोड़े ही वर्ष के पश्चात् प्रोफेसर बन जाना चाहिये। ऐसी कुछ योजना हो जाने से नीची श्रेणी के शिक्षक अपनी योग्यता बढ़ाने के लिये अपने काम में अपना तनमन अर्पण करेंगे और इस व्यवस्था से विश्वविद्यालय को बहुत लाभ पहुँचेगा।

सालिगराम जी विद्यादान के अतिरिक्त योग्य विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति भी दिया करते थे और इस योग्य काम में बहुत सा धन खर्च करते थे। विश्वविद्यालय में बहुत सा रुपया देकर आपने कुछ कमरे भी बनवाये। और यह सब इस बुद्धि से नहीं किया कि इस दान के बदले उनको कुछ मिल जाय। इनका यह सात्विक दान था।

रहन सहन में सादे और निःस्वार्थ बुद्धि से कार्य करने वाले शिक्षकों की बहुत कमी है, सालिगराम जी का आदर्श अपने सामने रखकर हम सब लोग अपना काम करें तो समाज और राष्ट्र को कितना लाभ पहुँचेगा!

सालिगराम जी का दूसरा एक कार्य बहुत ही महत्व का समझना चाहिये, वह विज्ञान परिषद् की स्थापना. जनता की शिक्षा मातृभाषा में होना अत्यन्त आवश्यक है। इस सिद्धांत को, विज्ञान परिषद् की स्थापना करके, मूर्त स्वरूप देने का महत्वपूर्ण काम सालिगराम जी ने किया। प्रायः इसी काम से उनका नाम शिक्षित समाज में अजर अमर रहेगा।

(३८वें पेज का शेषांश)

ही मानों नेत्रों की राह से अश्रुरूप में बाहर छलका पड़ रहा है। काल के समक्ष हम सब निस्सहाय हैं। ईश्वर के विधान के सामने सर झुकाते हैं। परन्तु क्षण भर में क्या से क्या हो गया? अरे अभी तो वे हँसते-बोलते चलते फिरते दृष्टि-पथ में थे, और अभी अभी... ..

अद्यैव हसितंगीतं पठितं यैः शरीरिभिः।
अद्यैव ते न दृश्यन्ते कष्टं कालस्य चेष्टितम् ॥

प्रोफेसर भार्गव की पुण्य-स्मृति में

लेखक—डा० विश्वम्भर दयाल सक्सेना,
राष्ट्रीय भौतिक विज्ञान अनुसंधानशाला, दिल्ली

प्रोफेसर सालिगराम भार्गव को शिक्षक के रूप में बहुत से जानते होंगे। उन्होंने न जाने कितने विद्यार्थियों को पढ़ाया होगा और न जाने कितनों की परीक्षा ली होगी। मैंने जब सन् १९२६ में एम० एस-सी० की परीक्षा आगरा कालिज से दी थी तब भी उनका पर्चा था। पर मेरा उनसे विशेष संबन्ध सन १९४२ के बाद, जब मैं इलाहाबाद यूनिवरसिटी में लेकचरर के पद पर नियुक्त हुआ, तब से हुआ। मेरा विचार है कि इलाहाबाद यूनिवरसिटी के भौतिक विज्ञान विभाग का वैज्ञानिक जगत में जो स्थान है उसका आधा श्रेय प्रोफेसर भार्गव को है। वह प्रयोगशाला की हर चीज से परिचित थे और परिचित ही नहीं उसके गुण और दोषों से भी विज्ञ थे। डाक्टर साहा और कृष्णन के समय में भौतिक विज्ञान विभाग जो काम कर सका उसका एक कारण यह भी है कि प्रोफेसर भार्गव ने प्रयोगशाला का सारा काम अपने उपर लेकर उनको अपने प्रयोगों के लिये काफी समय दिया। भौतिक विज्ञान सम्बन्धी प्रयोगों में प्रोफेसर भार्गव की अभिरुचि थी और एक्स किरण सम्बन्धी विषयों पर उन्होंने कुछ प्रयोग किये हैं। शुरू से ही उनका यह विचार था कि हमारी पढ़ाई की खास कमजोरी यह है कि वह लड़कों को मानसिक रूप से बहुत उन्नत बना देती है पर वह अपने हाथों से काम करने के अयोग्य रह जाते हैं जिसके कारण वह अच्छे प्रयोग नहीं कर सकते। इस कारण उन्होंने फोटोग्राफी क्लास और वर्कशाप की स्थापना में काफी कोशिश की और उनमें बराबर दिलचस्पी लेते रहे।

निजी रूप से प्रोफेसर भार्गव बहुत साधु पुरुष थे। दूसरों की मदद के लिये वे सदा उद्यत रहते थे। विशेष रूप से उल्लेखनीय यह बात है कि यूनिवरसिटी के निम्न वर्ग के स्टाफ की उन्होंने सदा मदद की और उनकी तकलीफों का सदा ध्यान रक्खा। इस कारण भौतिक विज्ञानशाला का निम्नवर्ग का स्टाफ उनका नाम बहुत इज्जत और श्रद्धा के साथ लेता है।

उनका व्यवहार सब के साथ बहुत अच्छा और मिलनसारी का था। जब वह भौतिक विज्ञान विभाग के अध्यक्ष थे तो उन्होंने कभी भी अपने व्यवहार से यह नहीं ज़ाहिर होने दिया कि वह हमारे अध्यक्ष हैं। वह बहुत हँसमुख थे। मिलते ही 'कहिये मिस्टर क्या हो रहा है" शब्द सुनाई पड़ते थे जिसके कारण आप उनसे निडर होकर बातचीत कर सकते थे। अपने सम्बन्ध की एक बहुत मनोरञ्जक बात उन्होंने हमें सुनाई थी। वह हमेशा छापा हुआ साफा पहन कर कालिज आते थे और उसी से उन्हें नये लड़के पहिचानते थे। एक दफे जब वह सुन्दरलाल होस्टल के वार्डन थे, एक नये लड़के ने आकर उनसे पूछा 'भार्गव साहब कहाँ हैं?' भार्गव साहब ने खूँटी की तरफ इशारा करके कहा 'वह टँगे हैं'।

विज्ञान के हिंदी भाषा द्वारा पढ़ाने के वह बहुत हिमायती थे, पर जहाँ तक मेरा ख्याल है उनका विचार था कि वैज्ञानिक शब्दावली का हिंदी रूपान्तर करने के बजाय उसको खुद ब खुद बनने के लिए छोड़ देना चाहिये।

प्रोफेसर साहब अपने विचारों पर दृढ़ थे और समय पर निर्भीकता से कह भी सकते थे। उनके जल्दी निधन से हमारी सब की बहुत हानि हुई है।

गुरुदेव भार्गव जी

लेखक—डा० देवेन्द्र शर्मा, अध्यापक, भौतिक विज्ञान विभाग, प्रयाग वि० वि०, तथा मंत्री, विज्ञान परिषद

"उसका जीवन नम्र था, और तत्वों का उसमें ऐसा समन्वय था कि स्वयं प्रकृति खड़ी होकर समस्त विश्व में घोषणा कर दे, 'यह मानव था !"*

१८ जुलाई सन् १९३७ को जब मैं विश्वविद्यालय में प्रथम वर्ष का छात्र होकर आया उस समय भार्गव साहब छुट्टी पर थे। श्री विष्णुदत्त जी भार्गव के साथ उसी दिन मुझे उनके पहली बार दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, और परिचय के पूर्व ही उन्होंने मुझे पहचान भी लिया कि अमुक का पुत्र हूँ। कुछ मास बाद जब वे छुट्टी के बाद विश्वविद्यालय आये तो उनसे सम्पर्क और बढ़ता गया। उनकी सादगी और विचारों की विशुद्धता उतनी ही धवल थीं जितना उनका पहनावा। उनका जीवन का अपना दर्शन था जिसके आधार पर जीवन व्यतीत करते थे। आज फ़िज़िक्स विभाग और फ़ोटोग्राफ़ी विभाग के इस रूप का बहुत कुछ श्रेय भार्गव साहब को है—'मनसा, वाचा, कर्मणा:' ही नहीं उन्होंने धन से भी इनके उत्थान में सहायता दी।

हिन्दी के क्षेत्र में उनका सहयोग कम महत्व का नहीं है। विज्ञान का संस्थापन उनके ही द्वारा हुआ, यद्यपि इस महान् कार्य के प्रतिपादन का श्रेय लेने का उन्होंने कभी अनजाने भी प्रयत्न नहीं किया—ऐसी थी उनकी सरलता। यह सरलता केवल दिखावटी भूषण न था। वे छोटे-बड़े सब के प्रति दयाभाव रखते थे। उनकी सहिष्णुता और समवेदना की भावना अपने युग से बहुत आगे की थी। डिपार्टमेण्ट में कोई भोज या पार्टी होती तो उसमें छोटे बड़े सब कर्मचारी एक ही साथ बैठते थे जैसे सब एक परिवार के व्यक्ति हों, जहाँ छुआ छूत, ऊँच नीच आदि की भावना लुप्त हो जाती है। प्राय: भार्गव साहब इन पार्टियों में खिलाने और बात-चीत में ही सहयोग देते थे, खाते न थे। इसका कारण कभी-कभी लोग रूढ़िवादी समझ लेते थे, परन्तु वास्तविक कारण समय की पाबन्दी था। जब भोजन के समय पर कोई आयोजन होता तो वे सब के साथ भोजन करते।

उनकी समय की पाबन्दी और कर्त्तव्यपरायणता कैवेण्डिश का ध्यान दिलाती है जिसने अपने जीवन के अन्त को भी एक रासायनिक परिवर्त्तन की दृष्टि से देखा था। भार्गव साहब का समय से आना जाना और सब कार्यों का विधिपूर्वक सम्पादन करना 'कर्मण्येवाधिकारस्ते······', के आधार पर था। अप्रैल १९४९ के मध्य में जब उन्हें पता लगा कि मुझे कैनेडा जाना है तो तुरन्त उन्होंने कहा, 'अब आगामी वर्ष के तुम्हारी क्लासों का प्रबन्ध करना चाहिए··' जब कि प्राय: दो सप्ताह बाद वे स्वयं अवकाश ग्रहण करने जा रहे थे।

इस वर्ष १४ सितम्बर को अचानक जब मुझे पता लगा कि भार्गव साहब बहुत बीमार हैं, दास साहब के साथ मैं उनके यहाँ गया। वे बहुत दुर्बल थे, बोलने चालने की मना थी, परन्तु ज्वर उतर गया था यद्यपि साँस बहुत तेज़ थी। सोचा था जब ज्वर नहीं है तो दो दिन बाद आने पर शायद बात चीत भी कर सकें। किन्तु दो दिन बाद ही विधि के विधान में लम्बी यात्रा लिखी थी जिसके लिये विश्वविद्यालय के चिर परिचित मार्गों से होकर प्रिय स्वजनों को आशीर्वाद देते हुए आगे बढ़ गये······।

***"हिज़ लाइफ़ वाज़ जैण्टिल, एण्ड द ऐलीमेण्ट्स सो मिक्स्ड इन हिम दैट नेचर माइट स्टैण्डअप् एण्ड से टु औल द वर्ल्ड, 'दिस वाज़ अ मैन !"**

—शेक्सपियर कृत 'जूलियस सीज़र' से

बाबा जी–कुछ स्मृतियाँ

लेखिका—श्रीमती शारदा भार्गव, धर्मपत्नी
श्री शंकरशरण भार्गव, खतौली।

पूज्य स्वर्गीय प्रोफेसर सालिगराम जी के दर्शन जब से मैंने होश सँभाला समय-समय पर करती आई हूँ जब वह मेरे पूज्य दादा स्वर्गीय रायसाहिब बिहारीलाल जी रिवाड़ी के पास ठहरा करते थे। रिवाड़ी परिवार के हम बालक तथा अन्य जन अपने पूज्य दादा जी का अत्यधिक आदर करते थे और जब हमने अपने श्रद्धेय दादा जी को प्रोफेसर साहिब की प्रतिष्ठा गान करते सुना उसी समय से मुझमें तथा अन्य परिवार जनों में पूज्य प्रोफेसर साहिब के प्रति एक विशेष सम्मान और श्रद्धा उत्पन्न हो गई थी। भाग्यवश सन् १६४४ में मेरा विवाह श्रद्धेय प्रोफेसर साहिब के आदरणीय ज्येष्ठ भतीजे के ज्येष्ठ पुत्र से हुआ और मैं प्रोफेसर साहिब के कुटुम्ब की वधू बन गई। इस नौ वर्ष की अवधि में पर्याप्त समय मुझे अपने दादा श्वसुर प्रोफेसर सालिगराम जी (जिन्हें अब मैं बाबा जी कहती हूँ) जैसी दिव्य आत्मा के निजी घनिष्ठ सम्पर्क में रहने का अवसर मिला। इसी अवधि की मैं कुछ छोटी-छोटी- घटनाओं का वर्णन करूँगी जिससे उनकी सत्यप्रियता, शुद्ध आचार विचार, हास्यप्रियता, प्रेम, सादगी, सरल स्वभाव, परोपकार, मिलनसारी तथा जो काम हाथ में लेते थे उसके लिए लगन तथा कर्तव्यपरायणता का भान होगा।

एक बार बाबा जी प्रयाग से मथुरा जा रहे थे। आपके साथ एक बालक–ज्येष्ठ दौहित्र भी थे जिसकी आयु उस समय १२ वर्ष से कुछ ही अधिक थी। बालक का उठान भी ऐसा था कि रेल के आधे टिकट से भी काम चल सकता था परन्तु पूज्य बाबा जी ने उनका पूरा ही टिकट लिया। यात्रा के दौरान में एक टिकट-कलेक्टर महोदय आए और कहने लगे "साहब! आपके पास आधा टिकट अधिक है" बाबा जी ने उस बालक की ओर संकेत करते हुए कहा कि उसके लिए पूरा टिकट लिया गया है। टिकट बाबू ने उत्तर दिया, बालक अभी छोटा है आधा ही टिकट लगेगा। इस पर बाबा जी ने हास्य पूर्वक उत्तर दिया "साहब! आप इन्हें छोटा क्यों बनाना चाहते हैं? हम तो इन्हें बड़ा ही बनाना चाहते हैं।"

एक सम्बन्धी ने बाबा जी को एक ऐसा प्रमाण पत्र प्राप्त करने के लिए लिखा जिसमें यह प्रमाणित किया जाए कि उक्त सम्बन्धी का बालक किसी स्कूल में नहीं पढ़ा है जबकि बाबा जी जानते थे वह स्कूल में पढ़ा है। इसके उत्तर में उन्होंने लिखा, "We have always looked down on persons who told lies, Why should we imagine that we would be guilty of the same? Let us be straight forward and honest in our dealings." मैंने देखा जब कभी कोई छोटी-मोटी झूठी बात हमारी पीढ़ी के बालक गण कर देते थे और बात पकड़ी जाती तब बाबा जी से वह लोग विवाद करते कि तथा कथित बात झूठ किस प्रकार है तथा उससे किसी की हानि न हुई आदि। वह तत्काल बड़े प्रेम से समझाते हुए कहते "बेटे! छोटी झूठ भी झूठ है और फिर तुम समझो इसी भाँति झूठ बोलने की आदत पड़ जाती है।"

पूज्य बाबा जी आचार विचार में कुछ पुरातन ढंग के मनुष्य थे, परन्तु उनमें कट्टरता का भाव नहीं था। सकरा खाना खाते समय वह केवल धोती पहन कर ही खाना खाते थे और कपड़े उतार देते थे। एक दिन एक अतिथि बाबा जी के साथ खाना खाने रसोई में आए। एक थाली पर उक्त डाक्टर अतिथि बैठे और दूसरी थाली पर बाबा जी बैठे। उनके साथ उनके एक पौत्र बैठ गए जो कपड़े पहने थे। अतिथि डाक्टर से रहा न गया। वह बोल उठे "प्रोफेसर साहिब! सकरा खाना! और आपके साथ यह बालक कपड़े पहने बैठा है।" बाबा जी मुसकराये और बोले "डाक्टर साहब! यह तीसरी पीढ़ी का आदमी है। इसे सब माफ़ है।"

बाबाजी छोटे और बड़े से बहुत ही सादा वेश भूषा में मिला करते थे जो आजन्म एक सा ही रखा। खादी का

बन्द गले का कोट, खादी का पाजामा अथवा धोती तथा साँगानेरी छपा हुआ साफ़ा यही उनका पहनावा था। वैसे तो वह विश्वविद्यालय में प्रत्येक ऋतु में यही पहने रहा करते थे परन्तु गर्मियों की छुट्टियाँ थीं। एक दिन वह अपना साफ़ा और कोट उतार कर विश्वविद्यालय में अपने कमरे में बैठे थे। एक नवागन्तुक उनके पास आए और कहने लगे कि वह प्रोफेसर भार्गव से मिलना चाहते हैं। बाबा जी हँस पड़े और खूँटी पर टँगे हुए साफ़े की ओर संकेत करते हुए बोले "Mister! Prof. Bhargawa is hanging on the nail." यह सुन कर नवागन्तुक कुछ सिटपिटा गए और फिर बातचीत करने लगे।

मैंने देखा जब कभी भी मैंने उनका छोटे-से-छोटा काम किया तब वह कभी धन्यवाद देने से नहीं चूकते थे। यदि किसी समय मुझे धन्यवाद देना चाहिए था और मैं कहना भूल जाती तब तत्काल याद दिला देते कि मुझे भी धन्यवाद देना चाहिए था। जैसे बहुधा मुझे वह डाक्टर के यहाँ ले जाया करते थे। जब डाक्टर इंजेक्शन लगा चुकते तब कहते, डाक्टर को धन्यवाद दो। बाबा जी अपने लिए किए गए छोटे से काम को बड़ी महानता देते थे। एक समय वह खतौली आए, कुछ अपने कपड़े धुलवाना चाहते थे—दो दिन में ही वापिस चाहते थे। खतौली छोटा स्थान है। यहाँ इतने कम समय में कपड़े धुल नहीं सकते थे। मैंने ही उनके तमाम कपड़े धोकर इस्त्री आदि करके उनके बक्स में लगा दिए। उनको न जाने किस प्रकार मालूम हुआ कि कपड़े मैंने धोये थे। वह खतौली से रिवाड़ी पहुँचे। उन्होंने मेरे पति को लिखा "मेरे कपड़े बहुत अच्छे धोए गए-जिसके लिए शारदा जी को मेरी ओर से बधाई और धन्यवाद दीजिएगा। यदि आप धोते तो मैं समझता आप पर आपके पिता और बाबाओं का अलवर में धोबियों के मोहल्ले में रहने का असर है परन्तु वह तो शारदा जी ने धोए थे। उन पर असर बड़ी जल्दी आया।" अलवर में हमारे पूर्वज धोबी पाड़े मोहल्ले में रहते थे।

सिफारिश के सम्बन्ध में श्रद्धेय बाबा जी विश्वास नहीं करते थे। बहुधा जहाँ सिफारिश न होनी चाहिए वह वहाँ न सिफारिश करते थे और न मानते थे। एक सज्जन उनसे अपने किसी काम को कहने आए। बाबा जी ने उनको बतला दिया कि वह उनके लिए क्या कर सकते हैं और क्या नहीं कर सकते परन्तु इससे उक्त सज्जन को सन्तोष नहीं हुआ। वह कुछ ही समय पश्चात एक अन्य सज्जन के साथ मोटर में बैठ कर आए। मोटर आकर बंगले की बरसाती में खड़ी हुई, बाबाजी बंगले के बरामदे में खड़े हुए थे। ज्यूँ ही मोटर की आवाज बन्द हुई त्यों ही बाबाजी बोले "नमस्कार साहब! माफ कीजिएगा यदि आपको आपके साथ बैठे हुए सज्जन के विषय में बात करनी है तो मैं बात नहीं करूँगा।" खैर! यह बात उक्त सज्जन को बुरी लगी और वह वापिस चले गए।

मैंने पूज्य बाबाजी को क्रोधित होते हुए नहीं देखा। जब कभी वह उत्तेजित हुए उन्होंने गाली के स्वरूप "भैया" या "भले आदमी" शब्दों का प्रयोग किया और अधिक उत्तेजना हुई तो "तुम्हारी समझ" कह कर बात समाप्त कर दी। नौकरों से विशेषकर उनका बर्ताव सदा सराहनीय था। उनका वेतन निर्धारित करते समय सदा उनके जीवन की आवश्यक वस्तुओं की उपलब्धि किस वेतन से होगी यही सोचा करते थे। उनके बच्चों की शादी व बीमारी में काफी रुपया दे देते थे जिसकी अदायगी का प्रश्न ही नहीं उठता था। वह कुछ लोगों को मासिक आर्थिक सहायता दिया करते थे—यदि कभी वह बरामदे या बगीचे में टहलते हुए होते और सहायता पाने वाले व्यक्ति को दूर से देख लेते तब तत्काल ही उसको निर्धारित रुपया निकाल कर ले आते, उसके आते ही उसको रुपया दे देते जिससे उसे तनिक भी प्रतीक्षा न करनी पड़े।

कुटुम्ब के सदस्यों में तथा अन्य लोगों में मित्रता तथा सद्भावना उत्पन्न करना उनका स्वभाव (Hobby) था। समय-समय पर जब भाँति-भाँति की कठिनाइयाँ लोगों पर आती थीं, उनके पास जब लोग कठिनाइयों के उपचारार्थ पहुँचते तब सान्त्वनापूर्ण समस्या को सुलझने और सुलझाने का प्रयत्न करते थे। इस हेतु उनके कुछ शब्दों का उल्लेख करूँगी "बातचीत ही इतनी है कि सब लोगों को एक दूसरे की सहायता कर कर दिन काट लेने चाहिए थोड़े दिन की तो बातचीत है।" एक समय लिखा "No body can please everybody and you should not expect uniform behaviour of everybody

which depends upon circumstances which can change any moment.Only you should try to understand other's point of view without forcing your own" कभी कभी वह निराश भी हो उठते थे ऐसी स्थिति में उन्होंने लिखा, You will find people are not honest in their dealings these days. You need not worry about their dealings with others,...... You can not possibly undertake uphill task of correcting people. Govt has failed to correct them, though it enacted so many laws and actually took some people to task" इसी प्रकार लिखा "आप घबराइये नहीं। सब इन्तजाम हो जायगा। ईश्वर बड़ा दयालू है। लोगों को परेशान नहीं होने देता है।"

एक दिन बाबाजी प्रातः काल रिवाड़ी से दिल्ली पहुँचे जे० एच० बील्डिंग्स के एक फ्लेट में जहाँ परिवार के कुछ अन्य सदस्य ठहरे हुये थे वहीं वह आ गये। इस स्थान को एक सरायनुमा स्थान ही कहा जा सकता है परन्तु वहाँ खाना इत्यादि बनाने का सब प्रबन्ध था। बाबाजी ने पूछा "सब लोगों के खाने का क्या प्रबन्ध है ?"। कुछ परिस्थितियाँ ऐसी थीं कि वहाँ खाना बनने का समय नहीं था। मेरे पति जो वहाँ थे उन्होंने स्थिति बताई और बाजार में खाने का प्रस्ताव उपस्थित किया। बाबा जी बोले "तुम यह कहते हो, मैं तो बाजार में नहीं खाऊँगा" फिर उन्होंने अपने जीवन की निम्नलिखित घटना सुनाई—"जब मैं बालक था तब एक दिन अलवर में किसी खोमचे वाले से कुछ खरीद कर दोने में खाने लगा। ऐसा करते हुए मुझे वहाँ के एक सज्जन ने देख लिया और वह जोर से चिल्लाया "देखो मुंशी जी के लड़के दोना चाट रहे हैं, और वह इसी प्रकार कहता गया। यह बात सुनकर मैं भागा परन्तु वह मेरे पीछे भागता गया, चिल्लाता गया। दोना तो रास्ते में ही गिर गया और मैं किसी प्रकार घर पहुँचा, इसके पश्चात मैंने कभी सड़क पर खाया पीया नहीं है।" यह किस्सा सुन कर खाने का कुछ अन्य प्रबन्ध हुआ। बाबाजी को लोगों को अपने यहाँ खाना खिलाना तथा दूसरों के यहाँ खाना खाना भाता था। किसी के यहाँ खाना खाने के बाद वह सिगरेट व पान आदि खाते पीते थे तब जब वह उसको समाप्त न कर लेते थे तब तक सड़क पर नहीं जाते थे।

विवाह के बारे में उनके विचार थे। वह मानते थे कि युवक तथा युवतियों की एक विशेष आयु रहती है जब उनका विवाह हो जाना चाहिए। यह उन युवक अथवा युवतियों के आन्तरिक मन में भी रहता है। उस आयु के पश्चात दोनों में विवाह के लिए उत्साह कम हो जाता है। परिवार के विवाह योग्य युवकों की विवाह के लिए राजी न होने की स्थिति उन्हें एक अजीब स्थिति लगती थी। इस सम्बन्ध में उन्होंने पत्रों में इस प्रकार लिखा था "He was dejected. As a matter of fact there is nothing to cheer him up. He lives a solitary life which is not conducive of cheerful living. एक दूसरे पत्र में उन्होंने लिखा "आजकल का जीवन नियमपूर्वक नहीं। किसी बात की किसी को चिन्ता नहीं। मनमानी करना चाहते हैं जो भाग्य में है सो होगा।" इस विषय में बहुत Critical होना उन्हें पसन्द नहीं था। वह लिखते हैं "Let us take everything sportsman like because destiny decides every thing for us." विवाह सम्बन्धों के बारे में उनको एक निराशा सी भी उत्पन्न हो गई थी जो उनकी निम्नलिखित पंक्तियों में व्यक्त है :—"आजकल कोरी लिखा पढ़ी से काम नहीं चलता। स्वयं ही जाना पड़ेगा। बाकी असर आपने देखा... जी लो, मैं किस जमाने से जानता हूँ...मैंने पत्र लिखा जिसकी पहुँच की सूचना तक नहीं आई। यह हाल बाहर वालों का है। घर वालों का हाल जानते ही हैं...ने कोई बात मानी यदि वह बात मानता तो...खैर। अब ऐसी बातें छोड़ देनी पड़ेगी। दुनिया स्वार्थी हो ही चली है।"

एक दिन मोटर खराब हो जाने के कारण बाबाजी विश्व विद्यालय साइकिल पर गए। लगभग १२ बजे दिन में धूप में ही घर आए। अप्रैल का अन्तिम सप्ताह चल रहा था उस समय प्रयाग की धूप में काफी तेज़ी आ जाती है। घर लौटने पर कपड़े बदले, खाना खाया, कुछ आराम किया और फिर कहीं जाने के लिए तैयार होने लगे। परिवार

(शेष पृ० ४८ पर)

स्मृति-तर्पण

लेखक—श्री० शरदिन्दु बसु, एम० एस-सी०
उपप्रधानसंचालक, वेधशाला, नई दिल्ली।

आज से ३३ वर्ष हुए श्रद्धेय प्रोफेसर सालिगराम भार्गव जी के साथ मेरा पहिला परिचय हुआ था। केवल सात वर्ष उनसे गुरू-शिष्य का सम्बन्ध रहा। इसलिये सालिगराम जी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर प्रकाश डालना मेरे लिये सम्भव नहीं। इस कार्य का तो उनके मित्रवर्ग और सतीर्थ ही निर्वाह कर सकेंगे जिनकी संख्या कुछ कम नहीं। "विज्ञान" के इस स्मृति-अंक में मैं अपनी भी श्रद्धाञ्जलि अर्पण करने को प्रवृत्त हुआ, वह केवल इस अधिकार से कि मुझे भी सात वर्ष उनके शिष्यत्व का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

उत्तर प्रदेश के एक ज़िला स्कूल से जब हम इलाहाबाद आये और म्योर कालेज के छात्र-वृन्द में नाम लिखाया तो वहाँ पहिले ही दिवस फिज़िक्स विभाग में सालिगराम भार्गवजी के संपर्क में हमें आना पड़ा। उसी दिन से हम सबसे उनके निरहङ्कार और भव्य बर्ताव, उनके सीधे सादे पहनाव और सर्वोपरि उनके चित्ताकर्षक पढ़ाने के ढङ्ग ने हमारे किशोर हृदयों पर एक ऐसा प्रभाव डाला जो दिन पर दिन और बढ़ता ही गया।

जिस विषय में सालिगराम जी शिक्षा दान करते थे उसके सूक्ष्मातिसूक्ष्म अंशों को भी प्रोफेसर महोदय ऐसा प्राञ्जल रूप देते थे कि वह विषयवस्तु केवल सहज ही नहीं प्रतीत होता, उसकी ओर एक आकर्षण सा हम सब अनुभव करने लगते थे। सच तो यह है कि यही अध्यापन का आदर्श भी है। यह सालिगराम जी ही की विशेषता थी जिसके कारण हम लोग उनके कुछ शिष्यों ने उसी समय निश्चय कर लिया कि विश्वविद्यालय में छात्रावस्था के अन्तिम दिवस तक हम फिज़िक्स का ही अध्ययन करते रहेंगे जिससे हमें अन्त तक सालिगराम जी से प्रेरणा मिलने का अवकाश रहे।

सालिगरामजी के व्यक्तित्व का प्रभाव भी उनके छात्रों पर कम नहीं था। जो भी छात्र उनके पास शिक्षा पाते थे, उनकी दृष्टि सदा उनपर रहती थी। उनके शिक्षण, स्वास्थ्य और उनके चरित्रगठन की ओर भी प्रोफेसर जी का ध्यान सदैव रहता था। वास्तव में तो सालिगराम जी केवल हमारे अध्यापक ही नहीं थे, वह एक अति धैर्यशील और अनुभवी अभिभावक से भी थे। उन्होंने अपने व्यक्तित्व से किसी किसी के जीवन की गति को सुपथ पर चालित किया इसके दृष्टान्त भी मिलेंगे। इस प्रकार विद्यादान और सच्चे गुरु के अन्य धर्मों का भी उन्होंने पूरा पूरा पालन किया। दृढ़चरित्र और धर्मपरायण सज्जनों में उनकी गिनती थी।

विज्ञान शास्त्रों की चर्चा इस देश में और व्यापक हो, मातृभाषा में विज्ञान विषयक लेखों का प्रचार बढ़े, इन बातों पर उनका बड़ा ध्यान था। उनका यह स्थिर विश्वास था कि हमारे देश के आनेवाले युग में विज्ञान के विस्तार से ही हमें आगे बढ़ने में अधिकतर सहायता मिलेगी। सालिगराम जी ने इसी मनोभाव से विज्ञान परिषद् तथा "विज्ञान" की भी सेवा अपने साध्यानुसार किया था। उनकी स्वादेशिकता ने एक यह भी रूप लिया था।

आज सालिगराम जी भार्गव इस लोक में नहीं। हम, उनके प्राक्तन छात्र-वृन्द, अपनी भक्ति का अर्घ्य उनको उत्सर्ग करते हैं। जिन मंगलमय भगवान् के विधान से श्री सालिगराम जी को स्वर्गलोक जाना पड़ा उन्हीं से आज हमारी प्रार्थना है कि हमारे स्वर्गीय गुरु सालिगराम जी की आत्मा अमरलोक में चिरशांति प्राप्त करे। अलमतिविस्तरेण।

स्वर्गीय भार्गव जी

लेखक—डा० डी० एस० कोठारी तथा
डा० रामनिवासराय,
भौतिक विज्ञान विभाग, दिल्ली वि० वि०

समाचार पत्रों द्वारा श्रद्धेय श्री सालिगराम जी भार्गव के आकस्मिक स्वर्गवास का समाचार जानकर हृदय को एक चोट सी लगी। भार्गव साहब का स्वास्थ्य जैसा अच्छा था और जैसा नियमित जीवन वह व्यतीत कर रहे थे उससे यह आशा थी कि वह दीर्घजीवी होंगे और अभी बहुत दिनों तक हम लोगों को उनके दर्शन और परामर्श का सौभाग्य प्राप्त होता रहेगा। परन्तु 'हरि इच्छा बलवान'। ईश्वर की ऐसी इच्छा न थी।

भार्गव साहब उन अध्यापकों में से थे जिनकी छाप उनके सभी विद्यार्थियों पर पड़ती थी। उनके पढ़ाने का अपना निराला ढंग था जिसके कारण विद्यार्थियों को विषय में रुचि उत्पन्न होती थी। वे किसी विद्यार्थी द्वारा पूछे गये प्रश्न को टालते नहीं थे। या तो उसी समय उसका समुचित उत्तर देते या कह देते कि उस प्रश्न का ठीक उत्तर देने में वे उस समय असमर्थ हैं और उसका उत्तर वे सोचकर दूसरे दिन देते। इस कारण विद्यार्थियों के हृदय पर भार्गव साहब का गहरा प्रभाव पड़ता तथा सभी विद्यार्थियों की उनमें अत्यन्त श्रद्धा थी और वे उनके लेक्चर में उत्साह पूर्वक भाग लेते और सर्वदा उनकी यही कोशिश होती कि वे भार्गव साहब के लेक्चर में अवश्य उपस्थित रहें।

परन्तु भार्गव साहब केवल लड़कों के प्रश्नों का ही उत्तर न देते वरन् स्वयं भी पढ़ाये गये विषयों पर काफी प्रश्न करते। इससे लड़के उनके विषय की उपेक्षा न कर सकते थे। फिर भी लड़कों को इस बात का डर बनाही रहता था कि भार्गव साहब कोई ऐसी बात न पूछ दें जिसका वे जवाब न दे सकें। एक बार उन्होंने क्लास में एक प्रश्न पूछा और फिर कहा अच्छा मैं इस प्रश्न को ऐसे आदमी से पूछूँगा जो इसका जवाब न दे सके। यह कह कर उन्होंने एक लड़के से इसका जवाब देने के लिए कहा। लड़का सचमुच उत्तर न दे सका और भार्गव साहब ने कहा "देखा आप लोगों ने, मैंने ऐसा लड़का ढूँढ़ निकाला जो उत्तर न दे सके"। परन्तु लड़का भी कम न था। उसने भी कहा "Yes Sir"। इस उत्तर पर सारे लड़के हँस पड़े और भार्गव साहब भी हँसने लगे। ऐसे अवसर तो बहुधा आया करते जब कोई न कोई लड़का प्रश्न का उत्तर न दे सके परन्तु एक लड़के का साहसपूर्वक "Yes Sir" कहने की घटना लड़कों के लिए तो अवश्य, और कदाचित् भार्गव साहब के लिए भी, एक नई बात थी।

मैंने ऊपर कहा है कि भार्गव साहब का पढ़ाने का ढंग अपना निराला था। वे युनिवर्सिटी द्वारा निश्चित पाठ्य क्रम के अनुसार कभी न पढ़ाते। पहले वे बी० एस-सी० में क्या पढ़ाते थे इसका हमें पता नहीं परन्तु १९१४ ई० के पश्चात् से वे विद्युत और चुम्बकत्व (Electricity and Magnetism) पढ़ाते रहे। इस विषय को पढ़ाने का उनका पाठ्य पुस्तकों से अलग, अपना क्रम था। पहले वे विद्युत्-धारा से पढ़ाई प्रारम्भ करते जबकि पाठ्य पुस्तकों में या तो स्थिर विद्युत् या चुम्बकत्व का वर्णन रहता है। विद्युत्-धारा में पहले विद्युद्वाहक बल के स्रोतों अर्थात् तरह तरह की सेलों का वर्णन करते। इनका वर्णन, विशेषतः संचायक सेलों का, वे इतनी सूक्ष्मता और इस विस्तार से करते कि लड़कों को वैसा वर्णन किसी पाठ्य पुस्तक में मिल सकना असम्भव था। इसके बाद धारा-मापी यंत्रों की बारी आती और वे पहले हेल्महोल्ज़ धारामापी की विवेचना करते फिर टामसन, ब्रोका और पाशेन धारामापियों का वर्णन करते। सबसे बड़ी बात यह है थी कि इनको क्लास में खोल कर दिखलाते। विद्यार्थी अपने प्रयोगों में हेल्महोल्ज धारामापी के अतिरिक्त इनमें से किसी और धारामापी का प्रयोग नहीं करते इसलिए इनको देखने का कोई और अवसर नहीं प्राप्त होता था। पाशेन धारामापी का तो जिक्र भी पाठ्यपुस्तकों में नहीं होता परन्तु हमारी दृष्टि में इस धारामापी का विशेष महत्व है क्योंकि इसकी कुंडली का रूप सिद्धान्ततः आदर्श है।

इसी तरह और विषयों का वर्णन भी वह विस्तार के साथ करते । फलतः विषय उनके क्लास के विद्यार्थी को सुगम हो जाता । जिस उपकरण को वे पढ़ाते उसे क्लास में अवश्य दिखलाते । इनमें से बहुतेरे, जैसे क्वाड्रैंट एलेक्ट्रोमीटर, क्यू मैग्नेटामीटर आदि, लड़के केवल इसी समय देखते क्योंकि उनको बाद में प्रयोग में लाने का अवसर न मिलता ।

जो कोई भी भार्गव से मिला होगा उनकी सादगी से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता । जाड़ा, गर्मी, बरसात सब मौसिमों में वे एक पोशाक पहनते । सिर पर छपा हुआ अलवरी साफ़ा, दोसूती का बन्द गले का कोट और तंग मोहरी का पाजामा, यही उनका बारहो महीने का पहनावा था । बहुत पहले वे जाड़ों में बन्द गले का ऊन का काला कोट पहनते थे । परन्तु जब मैंने देखा उन दिनों वे इसका परित्याग कर चुके थे । जाड़े में सर्दी से बचने के लिए वे अन्दर रूईदार पहनते । उन्होंने कई रूईदार बनवा रखे थे । ज्यों-ज्यों जाड़ा बढ़ता अधिक रूई वाले रूईदार वे पहनते ।

लोग उनके साफ़े के इतने अभ्यस्त हो गये थे कि नवपरिचित साफ़े के बिना उन्हें पहिचान भी नहीं सकते थे । कहते हैं कि एक बार एक लड़का उनके घर गया । उस समय वे कुर्ता, धोती पहिने बैठे थे । साफ़ा खूँटी पर टँगा था । लड़के ने उनसे पूछा भार्गव साहब कहाँ हैं । उन्होंने हँसते हुए खूँटी की तरफ़ संकेत किया और कहा वे टँगे हैं । इस घटना से उनकी विनोदप्रियता का भी पता चलता है । जो लोग उनके निकट सम्पर्क में नहीं आए हैं वे शायद ही उनके स्वभाव के इस अंग का अनुमान भी कर सकते हैं ।

भार्गव साहब समय के बड़े पाबन्द थे । हमने सर्वदा यही देखा कि वे नियमित रूप से युनिवर्सिटी खुलने के कुछ पहिले ही पहुँच जाते थे । जब वे विभाग के अध्यक्ष नहीं थे तब भी विभाग का बहुत प्रबन्ध उनके हाथ में था । अतएव उनके पहिले पहुँच जाने से विभाग में कोई गड़बड़ नहीं होने पाती । यदि कोई अध्यापक बीमारी या किसी और कारण से न आ रहा हो तो वे उसके क्लास का प्रबन्ध करते और ऐसा कभी न होता कि किसी अध्यापक की अनुपस्थिति के कारण कोई गड़बड़ हुई हो ।

जैसी समय की पाबन्दी वे स्वयं करते वैसी ही पाबन्दी की आशा वे औरों से भी करते । एक बार डाक्टर साहा ने डाक्टर दौलतसिंह कोठारी से हाइसेनबर्ग तथा क्रैमर्स के एक लेख को पढ़ने को कहा । डाक्टर कोठारी उस समय जर्मन नहीं जानते थे और लेख जर्मन भाषा में था । भार्गव साहब ने डाक्टर कोठारी को वह लेख पढ़ा देने के लिए एक निश्चित समय पर घर पर बुलाया । भार्गव साहब उन दिनों कामता प्रसाद कक्कड़ रोड पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वर्तमान भवन के सामने रहते थे । डाक्टर कोठारी उनके घर पर निश्चित समय से कुछ देर बाद पहुँचे । कारण पूछने पर उन्होंने बतलाया कि वे हास्टल से कटरा गये और वहाँ से इक्के पर चौक और फिर चौक से उनके घर । इक्का मिलने में देर हुई । इसीलिए वे देर से पहुँचे । जब भार्गव साहब को यह मालूम हुआ कि इनके पास साइकिल नहीं है तो तुरन्त इनसे साइकिल खरीदने को कहा और स्वयं भार्गव ब्रदर्स की दूकान पर जाकर इनके लिए छाँटकर एक अच्छी सी साइकिल खरीदवाई ।

प्रयोगशाला के सम्बन्ध में उनका ज्ञान असाधारण था । विभाग में जितने भी उपकरण थे लगभग उन सभी से परिचित थे और जानते थे वह कहाँ रक्खा हुआ है । जब वे लेक्चर देते और कोई उपकरण मँगाना होता तो कल्लू से उसे लाने को कहते । कल्लू लेक्चर रूम के बाहर ही बैठा रहता । कौन सा उपकरण लाना है इसको कल्लू को समझाने की भाषा भी अलग थी जिसको कल्लू ही समझता और तुरन्त ठीक उपकरण लाता । बाद को जब कल्लू बहुत बूढ़ा हो गया था तो कभी-कभी उससे उपकरण लाने में गल्ती भी हो जाती । परन्तु मैंने भार्गव साहब को कभी उससे नाराज होते नहीं देखा । हँसकर केवल यही कहते कल्लू अब तुम बूढ़े हो चले । अब तुमसे ठीक से काम नहीं होता ।

भार्गव साहब बड़े ही दयालु प्रकृति के आदमी थे । अपने घरेलू नौकरों और विभाग के नौकरों का सर्वदा ख्याल रखते थे और बहुत से विद्यार्थियों की आर्थिक सहायता करते रहते ।

सभी लोग उनको बड़ी आदर की दृष्टि से देखते थे। अपनी बिरादरी में वे प्रोफेसर साहब के नाम से प्रसिद्ध थे। डाक्टर घोष उनको बाबू साहब के नाम से पुकारते थे। और हमलोग उनको भार्गव साहब कहते थे। हमने विभाग के किसी आदमी को उनके सामने ऐसी बात कहते नहीं सुना जिसे वे अपने गुरुजनों के सामने कहने में हिचकिचाएँ। जब हम अध्यापक हो गये उनदिनों एक बार हम भार्गव ब्रदर्स के यहाँ बैठा ब्रिज खेल रहे थे। इतने में किसी ने आकर कहा कि प्रोफेसर साहब आ रहे हैं। भार्गव साहब का आना सुनकर हम ताश रखकर वहाँ से जाने लगे। इस पर श्री विष्णु दत्त भार्गव हँसकर कहनेलगे "अजी आप भार्गव साहब के सामने ब्रिज खेलने से डरते हैं? क्या वे ब्रिज नहीं खेलते? लो अभी मैं आपके सामने उन्हें भी खेल में भाग लेने को कहता हूँ।" उस दिन हमें ज्ञात हुआ कि भार्गव साहब भी हम लोगों की तरह ब्रिज भी खेलते हैं।

भार्गव साहब भी ऐसी बातों का ख्याल रखते थे। जब तक हम विद्यार्थी थे यह अनुमान भी न था कि भार्गव साहब सिगरेट या तम्बाकू पीते हैं। एक बार हम भार्गव साहब के कमरे में बैठे थे। भार्गव साहब उन दिनों डाक्टर साहा के कलकत्ते चले जाने के कारण विभाग के अध्यक्ष थे। एक और प्रोफेसर साहब जो नये-नये एक विभाग के अध्यक्ष होकर आए थे वह बैठे थे और इन साहब ने एक ऐसी बात कही जिसका जिक्र समवयस्कों के सामने ही किया जा सकता है। भार्गव साहब ने सिर नीचा कर लिया और हमसे कहा "अच्छा चलिए आपसे किसी और समय बात करूँगा।"

भार्गव साहब अब नहीं रहे परन्तु उनकी याद सब लोगों को बनी रहेगी।

(शेष पृ० ४४ का अंश)

के एक व्यक्ति ने बाबाजी से पूछा कि वह ऐसी कड़ी धूप में कहाँ जा रहे हैं। वह बोले "फोटोग्राफी कक्षा की परीक्षा २ बजे से है। मैं वहीं देख भाल (Invigilation) के लिए जा रहा हूँ।" इस पर परिवार जन ने कहा "आपकी आयु को देखते हुए इतना strain नहीं करना चाहिए आप अपने किसी subordinate से कह आते। वह देख भाल कर लेता।" उन्होंने तत्काल उत्तर दिया "कुछ लोग बूढ़े हो गए हैं व कुछ लोग बड़े आदमी हैं। मैं न बूढ़ा हूँ न बड़ा आदमी हूँ।" और यह कहते कहते ऐसी कड़ी धूप में वह साइकिल पर सवार हो गए। उस समय उनकी आयु लगभग ५५ वर्ष की थी। विश्व विद्यालय में फोटोग्राफी की शिक्षा का प्रबन्ध करने के लिए उन्होंने तन, मन, धन से सहायता की थी और उस समय विश्वविद्यालय के भौतिक शास्त्र विभाग के अध्यक्ष थे।

अब बाबाजी नहीं रहे—उनकी यह स्मृतियाँ तथा अन्य उनसे सम्बन्धित संस्मरण ही हमको उस महान आत्मा के बताए गए मार्ग पर अग्रसर होने के लिए प्रेरित करते रहेंगे।

—:०:—

स्वर्गीय भार्गव जी

लेखक—प्रो० परमानन्द एम० ए०, भूतपूर्व अध्यापक, इतिहास विभाग प्रयाग, विश्व विद्यालय

स्वर्गीय प्रो० शालिग्राम भार्गव का विशेष स्नेह पात्र होने के नाते मुझको अमिट खेद है कि मैं प्रयाग से बाहर रहने के कारण उनकी मृत्यु के समय और उनकी अंतिम बीमारी के समय उनसे मिलने में असमर्थ रहा। उन्हें ज्योतिष में बहुत विश्वास था और ज्योतिषियों की बताई हुई कुछ बातें से जो उन्होंने हमें बताई थीं, हमें यह आशा थी कि रोग कठिन होते हुये भी अभी उनका अंत समय नहीं आया है। यों तो लगभग १८ वर्ष पहले ही उन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालय की सेवा छोड़ कर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की सेवा करने का निश्चय इसीलिये किया था कि उनका समय अधिक शेष नहीं रह गया था और इसीलिये कुछ लोक सेवा करना था। उस समय मित्रों के आग्रह से उन्होंने अपना विचार स्थगित कर दिया था।

स्वर्गीय प्रोफ़ेसर साहब के निकट बसने का सौभाग्य मुझे लगभग १५ वर्ष प्राप्त हुआ जिसमें उनके जीवन की स्वच्छता और आचरण की पवित्रता तथा कर्त्तव्यनिष्ठता का सुन्दर उदाहरण हमको देखने को मिला। स्वयम् उनका कहना था कि पचास हज़ार की भीड़ में भी वह पहचानने जा सकते थे। वेशभूषा में ऐसी अनन्यता किसी दूसरे की थी ही नहीं। मिलने और बातचीत करने में भी एक समानता थी चाहे कोई उच्च पदाधिकारी हो चाहे उनका निजी नौकर या सरकारी चपरासी। बातचीत में वह लगी लिपटी नहीं रखते थे, हाँ तो हाँ, नहीं तो नहीं। ग़ौर करूँगा, ख्याल रक्खूँगा, भरसक कोशिश करूँगा इत्यादि मंत्रों का प्रयोग वे शायद ही कभी करते हों।

निश्चित समय पर काम करने में तो वह अद्वितीय थे। मुझे तो शंका है कि इससे भी उनके स्वास्थ्य को हानि पहुँची है। बड़ी लम्बी यात्रायें जिनमें वे २००० मील का सफ़र करते और २० स्थानों पर ठहर आते थे, पूर्व निश्चित क्रम के अनुसार होती थी और उनके ठहरने का स्थान और प्रत्येक स्थान पर मिलने की जगहें पहले से ही निश्चित रहती थीं। जो सावधानी गवर्नर जैसे सरकारी पदाधिकारी बड़े-बड़े साधनों के होते हुये भी कठिनाइयों से कर सकते हैं वह भार्गव जी अकेले अपनी व्यवस्था और प्रबन्ध से करते थे।

उनके घरेलू प्रबन्ध भी इसी प्रकार नियमानुसार होते थे। महीने की पहली तारीख को नौकरों का वेतन, बिजली और समस्त अन्य प्रकार के बिलों का अदा करना, पानी के पम्प और टंकी की सफ़ाई और बाजार का सौदा ठीक समय पर आ जाना—

जिन छोटी बड़ी बातों और लालचों के इस युग के सभ्य और शिक्षित जन वशीभूत हो जाते हैं, उनका प्रभाव भार्गव साहब पर तनिक भी नहीं था। शिक्षा के क्षेत्र में परीक्षक तथा निरीक्षक नियुक्त होने की लालसा सभी को होती है। ये नियुक्तियाँ करने वाली समितियों का सदस्य नियुक्त होना एक बड़ी बात है। इस माया जाल में न पड़ने वालों की संख्या बहुत थोड़ी है। श्री भार्गव उन गिने चुने व्यक्तियों में थे जिन्होंने एक बार माध्यमिक शिक्षा बोर्ड में परीक्षक पद के नियुक्ति पत्र को लिफाफा बिना खोले ही लौटा दिया था।

पदाधिकारियों में बिरला ही कोई होगा जो चपरासियों को घर पर न बुलाता हो और कुछ घंटे हाजिर न रखता हो। भार्गव साहब बरसों फ़िज़िक्स विभाग के अध्यक्ष रहे पर मैंने उनके पड़ोसी होते हुये भी उनके यहाँ किसी चपरासी को हाज़िर नहीं देखा।

उनके स्वतंत्र विचारों का आदर उच्च पदाधिकारी और दलबंदी में न पड़ने वाले लोग बहुत करते थे। प्रयाग के पुनर्संगठित विश्वविद्यालय के प्रथम उपकुलपति डी० ला० फास महोदय ने इनकी पद वृद्धि ही नहीं की वरन् महत्वपूर्ण कामों में भी सलाह ली।

जब एक बार यह ३ वर्ष के लिये विश्वविद्यालय की कार्यकारिणी (Executiue) समिति के सदस्य हो गये, तो सदा अपना स्वतंत्र मत रक्खा। किसी व्यक्ति के अनुरोध से या किसी दल विशेष को प्रसन्न करने के लिये अपने

विवेक के प्रतिकूल मत यह नहीं दे सकते थे। ऐसी स्थिति में ये बहुधा अपने को अकेला पाते थे। ऐसी संस्थाओं में जब दलबंदी हो जाती है तब किसी अच्छी योजना या अच्छे प्रस्ताव का स्वीकार कराना भी बिना दलबंदी के कठिन हो जाता है। इसी कारण उनका कार्यकारिणी समिति में दुबारा जाना व्यर्थ ही था।

विज्ञान के इतिहास में प्रोफ़ेसर भार्गव का स्थान दो कारणों से विशेष है। प्रथम यह कि हमारे प्रदेश में वैज्ञानिक अनुसंधान का प्रारम्भ Empress Victoria Readership की स्थापना से हुआ और श्री भार्गव इस छात्रवृत्ति के पाने वालों में दूसरे थे। और सन् १६१२-१७ तक पाते रहे। दूसरे यह कि विज्ञान को सर्वसाधारण तक पहुँचाने के एकमात्र साधन–उसका मातृ भाषा में प्रचार करने का प्रयत्न करने वाले सज्जनों में वह पहले थे। विज्ञान परिषद् के संस्थापक और उसके मुख-पत्र विज्ञान के संचालक होने के नाते वह इस प्रदेश में इंगलैन्ड की Royal Society के संस्थापकों का स्थान रखते हैं।

मित्रों के प्रति जो गहरा स्नेह वह रखते थे वह संकट के समय विशेष रूप से देखने में आता था। किसी के घर में कोई रोग पीड़ित हो या चोट खा गया हो या ऐसी कोई दूसरी दुर्घटना हो गई हो तो प्रोफ़ेसर महोदय अवश्य ही वहाँ जाकर न केवल सहानुभूति ही प्रकट करते वरन् सहायता देने को उत्सुक रहते। मुझे स्वयम् इसका कितनी ही बार अनुभव हुआ—कभी थोड़ी सी भी तबियत खराब हुई तो प्रोफ़ेसर साहब दिन में दो-चार बार देखने और पूछने आते और दवा भी देते क्योंकि homoeopathy में उनका अध्ययन अच्छा था। यही नहीं यदि कोई दूसरी चिंता भी मित्रों को होती तो वह उसमें शरीक होते और साहस बढ़ा कर और उचित परामर्श देकर सहायता करते।

ऐसे लोग इस युग में इतने अल्पसंख्यक हो गये हैं कि उनके मित्रों को सदा उनकी स्मृति बनी रहना स्वाभाविक है। काश, कुछ कम उमर वाले लोग उनका अनुकरण करते।

(५१वें पेज का शेषांश)

भी जब कभी प्रयाग जाता था तो उस सौजन्य मूर्ति के दर्शन की प्रेरणा को रोक नहीं सकता था। समझता था भार्गवजी के दर्शन बहुत दिनों तक होते रहेंगे, किन्तु ईश्वर को यह मंजूर न था। आज प्रोफेसर भार्गव इस संसार में न रहे, किन्तु उन्होंने सैकड़ों क्या हजारों छात्रों के अन्दर जो अमिट छाप छोड़ी है वह उन्हें सदा पथ-प्रदर्शन करती रहेगी। मैं भी इस अवसर पर अपनी श्रद्धाञ्जलि उस विशुद्ध आत्मा के प्रति अर्पित कर अपने को शुद्ध पाता हूँ। परमात्मा उन्हें चिर शान्ति प्रदान करे, यही प्रार्थना है।

प्रोफेसर भार्गव के प्रति मेरे संस्मरण

लेखक—श्री० रमाशंकर सिंह, एम० एस-सी०, प्राध्यापक किरणचित्र विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

प्रोफेसर सालिगराम भार्गव के प्रथम दर्शन का सौभाग्य मुझे सन् १६३६ ई० की जुलाई में हुआ जब मैंने प्रयाग विश्व-विद्यालय में बी० एस-सी० में प्रवेश पाया। वह शान्त सौम्य मूर्ति आज भी मेरे सामने उसी प्रकार बनी हुई है। चार वर्षों तक मैं वहाँ उनका छात्र रहा और इस प्रकार उनके निकट सम्पर्क में आने का सुअवसर प्राप्त हुआ। वहाँ की भौतिक विज्ञान की प्रयोगशाला से उनका अन्योन्याश्रित संबंध था, ऐसा जान पड़ता था दोनों वस्तुयें एक ही भावना की दो विभिन्न प्रतिमूर्तियाँ एक साकार दूसरी सजीव बनकर आई हों। वेश-भूषा भारतीय संस्कृति के प्रति उनकी आस्था बताती थी; उनकी कोमल वाणी 'अनुद्वेग वाक्यं' से परिप्लावित थी और उनके शुद्ध हृदय की झाँकी सदा उनकी मुखाकृति से मिलती रहती थी। ऐसा था उनका महान व्यक्तित्व।

उस समय प्रयोगशाला का सभी प्रबंध प्रो० भार्गव ही किया करते थे। डा० साहा के चले जाने बाद उन्होंने उस समय विशेषकर इस बात का सतत् प्रयत्न किया कि उस समय के विभागीय छात्रों को किसी विशेष कमी का अनुभव न हो। जहाँ तक अध्यापन का संबंध है, प्रोफेसर भार्गव भौतिक विज्ञान के आदर्श प्रोफेसर थे। उनके व्याख्यान बड़े ही सार-गर्भित होते थे। प्रयोग-शाला के नित्य के कामों से आपको बड़ी दिलचस्पी रहती थी, और सभी कामों की देख रेख आप किया करते थे। और एम० एस-सी० अन्तिम वर्ष में 'स्पेक्ट्रसकोपी' ही में विशेष अध्ययन करने की इच्छा थी, किन्तु प्रो० भार्गव मुझे 'वायरलेस' देने पर तुले हुए थे। इसी को लेकर थोड़े दिन मेरा सत्याग्रह चलता रहा, और अन्त में प्रो० भार्गव ने मुझे अपनी इच्छा के अनुसार ही विषय लेने की आज्ञा दे दी। फिर कभी भी इस प्रसंग को लेकर उन्होंने कोई बात नहीं की। इससे मेरे हृदय पर उनके व्यक्तित्व का गहरा प्रभाव पड़ा।

विश्व-विद्यालय आप नित्य ही दस बजे आ जाते थे। रास्ते में उनकी कार को देख कर मैं समय का पता लगाया करता था। चार बजे तक प्रोफेसर भार्गव कभी बैठे न दिखायी पड़ते थे और इस बीच में वह कुछ खाते-पीते भी नहीं थे। वह बहुत ही संयत और नियमित जीवन व्यतीत कर रहते थे और उनका स्वास्थ्य देख कर तरुणों को भी ईर्ष्या होती थी। सभी ऋतुओं में वही शुद्ध स्वदेशी श्वेत सूती वेश-भूषा उनके अन्दर छिपी किसी शाश्वत भावना की ओर इंगित करती थी। आश्चर्य है इस प्रकार का जीवन भी नियति के सामने अधिक मूल्य न रख सका। आपको हिन्दी से बड़ी अभिरुचि थी, फिर भी आप विश्व विद्यालय के अध्यापन में इस बात पर अधिक महत्व देते उस समय नहीं पाये गये, क्योंकि वह इस बात को जानते थे कि हिन्दी में वैज्ञानिक साहित्य का अभाव है। इसलिए वैज्ञानिक साहित्य के सृजन की ओर उनका ध्यान बना रहा। 'चुम्बक' नाम की पुस्तक आपने हिन्दी में उस समय लिखी जब वैज्ञानिक साहित्य का नितांत अभाव था। इस पुस्तक ने पथ-प्रदर्शन का कार्य किया और उस समय ऐसी कई पुस्तकें लिखी गईं। एक समय विज्ञान-परिषद् की बैठक में आपने बताया कि शब्दों को अपढ़-लोग शिक्षितों की अपेक्षा अधिक विकसित करने की क्षमता रखते हैं, और हम लोगों को इसे अपनाना कहाँ तक श्रेयस्कर होगा, इस पर विचार करना चाहिये। चार वर्षों तक प्रयाग विश्वविद्यालय में अध्ययन करने के पश्चात् जब मैं आप से विदा लेने गया तो आपने आज्ञा दी कि 'बाद के जीवन में भी हिन्दी में लिखने के क्रम को जारी-रखना।' मुझे दुख है मैं इस गुरु-ऋण को चुका नहीं पाया।

प्रयाग विश्वविद्यालय सन् १६४० में छोड़ने के पश्चात् प्रो० भार्गव से इस प्रकार का संबंध विछिन्न हो गया; फिर

(शेष ५०वें पेज पर)

विज्ञान-सेवा की अपूर्व-लगन

श्री० रामचंद्र भार्गव एम० बी० बी० एस०, डी० पी० एच०
(लखनऊ), Dh. Bact (Manchester)

अपने बाल्यकाल में अपने पूज्य चाचा जी को 'विज्ञान-प्रवेशिका' लिखते हुए मैंने देखा है। मैं अपने विज्ञान के प्रारंभिक पाठों के लिए इस पुस्तक का कृतज्ञ हूँ, और मुझे उनके द्वारा शिक्षा प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। यह उस समय की बात है जब मैं स्कूल में संस्कृत का अध्ययन कर रहा था, और 'विज्ञान' के अध्ययन में तब तक प्रवृत्त नहीं हुआ था। पुस्तक की सरल और मनोहर शैली, तथा उनके अध्यापन की विशिष्टता के कारण मुझे विज्ञान के वे प्रारंभिक पाठ बहुत ही रोचक, आकर्षक, तथा मधुर जान पड़े, यद्यपि घरेलू सामग्री का ही उपयोग प्रयोग और प्रदर्शन में होता था, और इस प्रकार विज्ञान के अध्ययन की ओर मेरी अभिरुचि अत्यन्त अधिक मात्रा में जाग्रत हो उठी. जिसके फल स्वरूप मैंने संस्कृत के स्थान पर विज्ञान का अध्ययन आरंभ कर दिया। विज्ञान-प्रवेशिका प्रथम भाग जनसाधारण के लिए लिखी गई हैं, और भाषा की सरलता, विषय की स्पष्टता, और शैली की चित्ताकर्षकता की दृष्टि से कदाचित् कुछ ही पुस्तकें उसकी समकक्षता प्राप्त कर सकें। विज्ञान के विगत वर्षों के अनेक अंकों में उनकी लेख-मालाएँ बिखरी पड़ी हैं। पूज्य चाचाजी सदा इस बात के लिए आग्रह करते थे कि वैज्ञानिक विषयों पर जनसाधारण के लिए लिखी हुई पुस्तकें सरल, स्पष्ट, रोचक, तथा सुबोध होनी चाहिए। उनका विचार था कि पारिभाषिक शब्दावली का निर्भ्रान्त, स्पष्ट, तथा सरल होना अत्यन्त आवश्यक है।

उन्होंने अपने चारों ओर के वातावरण को विज्ञानमय बना रखा था। वे बालकों और युवकों के बीच में रह कर अत्यन्त प्रसन्न रहते थे, और अपनी आत्मीयता और व्यापक सहानुभूति के कारण उनसे घुलमिल कर एक हो जाते थे। जब कभी भी वे मेरे पुत्रों डा० पुष्पमित्र भार्गव (जो एक रसायनज्ञ हैं, और संयुक्तराज्य में अन्वेषण-कार्य कर रहे हैं) और चि० सत्यमित्रभार्गव (जो आजकल लोको इंजनियर हैं) से मिलते थे, वे अत्यन्त प्रसन्न होते थे। उन्हीं के प्रेम के कारण मेरी पुत्री सुश्री लक्ष्मीभार्गव (भौतिक विज्ञान की शिक्षा प्राप्त कर रही है) तथा सुश्री कमलिनीभार्गव (विज्ञान की शिक्षा प्राप्त कर रही है) विज्ञान के अध्ययन की ओर अग्रसर हुई। उनका पथ-प्रदर्शन पाकर उनके दौहित्र चि० ब्रजभूषणभार्गव, चि० ब्रजरत्नदास, तथा ब्रजकृष्णदास आदि सभी ने विज्ञान के अध्ययन को अपने जीवन का ध्येय बनाया। चि० ब्रजभूषणभार्गव भौतिक विज्ञान की पढ़ाई समाप्त कर बंगलौर के 'साइन्स-इन्सटीट्यूट' में हैं, और चि० ब्रजरत्नदास 'भौतिक-विज्ञान' का अध्ययन कर रहे हैं। बालकों तथा नवयुवकों के प्रति उनके इस आकर्षण तथा स्नेह ने उन सब की रुचि विज्ञान की ओर अत्यधिक बढ़ा दी।

उनका विज्ञान-प्रेम तथा विज्ञान-निष्ठा असीम थे। 'विज्ञान' की सेवा वे बड़े उत्साह, लगन, और प्रेम से करते थे। उन्होंने अनेक अवसरों पर जनता के हितार्थ और ज्ञान-संवर्धनार्थ सुप्रसिद्ध वैज्ञानिकों द्वारा विभिन्न वैज्ञानिक विषयों पर भाषण कराने की व्यवस्था की। स्वर्गीय डा० ए० पी० सरकार, प्रो० डी० एन० पाल, मि० रामशरणदास निगम, मि० प्रभुदास, ने अपने प्रिय और विशेष विषयों पर भाषण दिए। भाषण के विषयों में रंगीन फोटोग्राफी पशुओं में परि-स्थितियों के अनुकूल परिवर्तन, एक्सरे, तथा दियासलाई बनाना इत्यादि विशेष रोचक थे। वे व्याख्यान प्रयोग और प्रदर्शन द्वारा विशेष रोचक बनाए जाते थे, और आज भी उन व्याख्यानों में उपस्थित जनता की रुचि, उत्साह, और

हर्ष की भावनाओं का स्मरण कर गद्गद् हो उठता हूँ। पूज्य चाचाजी भी यदा कदा अपनी रुचि के विषयों पर भाषण देते रहते थे। एक बार जब उन्होंने बेतार के तार (आकाशवाणी) पर भाषण दिया था, तो मुझे अभी तक याद है कि उपस्थित जनता में अपूर्व उत्साह की वेगवती हिलोर एक ओर से दूसरे छोर तक व्याप्त हो गई थी।

पूज्य चाचाजी आगरा कालिज के प्रो० नाग और डा० गणेशप्रसाद जैसे वैज्ञानिकों में भी हिंदी में भाषण देने के लिए रुचि उत्पन्न करा सके थे। प्रो० नाग तो उनके गुरु भी रह चुके थे। मि० नाग हिन्दी से नितान्त अपरिचित थे अतएव उन्होंने अपने भाषण की पांडुलिपि बंगला अक्षरों में ही तैयार की। मुझे उस पांडु-लिपि के देखने का अवसर मिला था। इस व्याख्यान में तत्कालीन गवर्नर ने सभापति के पद को सुशोभित किया था। एक बार पूज्य चाचाजी ने भारतीभवन पुस्तकालय के हाल में पंडित मदन-मोहन मालवीय के सभापतित्व में 'आरकेमीडीज़ का सिद्धांत' पर भाषण दिया था। इस भाषण में मैं भी उपस्थित था। उस भाषण को उपस्थित लोगों ने बहुत पसन्द किया।

पूज्य चाचाजी तथा श्री रामदास गौड़ उस समय के स्थानीय प्रतिष्ठित वैज्ञानिकों को जनसाधारण के हितार्थ रोचक वैज्ञानिक विषयों पर हिंदी में भाषण देने के लिए तैयार कर सके थे। उस समय के विद्वानों में हिन्दी के प्रति उपेक्षा का भाव था, और जनसाधारण में भी हिन्दी के प्रति अनुराग न था। उस समय हिन्दी की वास्तविक महत्ता और उपयोगिता से बहुत कम लोग परिचित थे। 'उस समय यह सोचना कि मातृ भाषा को उच्च ज्ञान-विज्ञान का माध्यम बनाना ही देश की सच्ची उन्नति का मूलमंत्र है, यह एक दूरदर्शिता की बात थी। डा० ए० पी० सरकार ने 'रंगीन फोटोग्राफी' पर जब अपना भाषण दिया था, तब डाक्टर हिल ने सभापतित्व का पद ग्रहण किया था। जब भाषण समाप्त हो गया तब जनता ने उस अधिवेशन के सभापति रसायन के प्रोफेसर डा० हिल से आग्रह किया कि वे भी कुछ हिंदी में बोलें, तब उन्होंने जनता के अनुरोध की रक्षा के हेतु हिन्दी में कुछ शब्द कहे। मैंने प्रायः उन्हें अपने विद्यार्थियों को भाषण देने तथा लेखों एवं पुस्तकों के लिए प्रोत्साहित करते हुए देखा। इस प्रकार उन्होंने अच्छा खासा लेखक मंडल तैयार कर लिया था।

उस समय के अनेक व्यक्ति उनके हिन्दी प्रेम और विज्ञान-निष्ठा को नहीं समझ सके थे। उन्होंने बातों ही बातों में अनेक बार यह इंगित किया था कि भविष्य में जब कभी इस प्रकार के भाषणों की आयोजना की जाय, तब वे अँगरेजी ही में हों तो अच्छा है।

पूज्य चाचाजी के घनिष्ठ मित्रों में से एक थे डा० त्रिलोकीनाथवर्मा। उन्होंने 'शरीर-विज्ञान' पर एक सुन्दर पुस्तक की रचना की थी। पुस्तक की शैली पर दोनों, प्रायः विचार विनिमय किया करते थे।

उनका सम्पूर्ण जीवन ही निस्स्वार्थ सेवा में समर्पित था, अतः अपने त्याग और व्यक्तित्व के आकर्षण से अध्यापकों, मित्रों, छात्रों, संबंधियों, तथा सहकर्मियों को समान रूप से प्रभावित करने की सामर्थ्य रखते थे।

(५४वें पेज का शेषांश)

उनकी सहायता का स्रोत सदा प्रवाहित रहता था। १००००) देकर उन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालय की भौतिक-शास्त्र विभाग को बिल्डिंग बनवायी। फोटोग्राफी का विभाग भी उन्हीं के प्रयत्नों का फल है। उनकी उदारता में क्षुद्रता, लघुता और महत्ता जैसी कोई इयत्ता न थी। उनके हृदय-द्वार सबके लिये समान रूप से उन्मुक्त रहते थे। वास्तव में वे एक पर-दुःख-कातर सुजन थे।

भगवान् से यही प्रार्थना है कि वे उनकी दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करें।

स्वर्गीय प्रोफेसर सालिगराम जी भार्गव

लेखक—श्री पृथ्वीनाथ भार्गव, एम० एस-सी० प्राध्यापक, रसायन विभाग, का० वि० वि०

दुःख की बात है कि प्रो० सालिगराम जी भार्गव अब इस संसार में नहीं रहे। स्वर्गीय श्री भार्गव की जीवन-कथा एक कर्त्तव्यनिष्ठ मनस्वी नरपुंगव की कथा है। आप का जन्म नवम्बर १८८८ में खोरी जिला गुड़गाँव में हुआ। वहीं पर आपके पिता स्व० पं० लक्ष्मीराम जी राज्य के एक उच्च पदाधिकारी थे। आप का विवाह सागर-निवासी पं० मूलचन्द जी की दूसरी सुपुत्री अशर्फी देवी जी से हुआ था। अभी आप की जिन्दगी के दो ही वर्ष व्यतीत हुए थे, कि आप के पिता व ज्येष्ठ भ्राता पंडित द्वारका प्रसाद जी का स्वर्गवास हो गया। इसके बाद आपने अपना बाल्यकाल तथा युवावस्था अपने द्वितीय भाई पंडित राम जीवन लाल जी की संरक्षता में व्यतीत किया। इस समय आप की एक मात्र पुत्री श्रीमती ललिता देवी हैं जिनका विवाह मथुरा-निवासी श्री रघुनाथ दास जी भार्गव से हुआ है।

सन् १९०५ में अलवर हाई स्कूल से मैट्रिक की परीक्षा पास करने के बाद आपने बी० एस-सी० की परीक्षा सन् १९०९ में पास की। इसके बाद आप आगरा कालेज में डिमांस्ट्रेटर हो गये। सन् १९१० में आपने यह पद त्याग कर म्यूर सेन्ट्रल कालेज प्रयाग से एम० एस-सी० की परीक्षा भौतिक शास्त्र विषय लेकर पास की। सन् १९१९ में आप उत्तर-प्रदेश की 'प्रान्तीय एजुकेशनल सर्विस' में नियुक्त किये गये। सन् १९२१ और सन् १९२२ में आप 'भारतीय एजुकेशनल सर्विस' में भी रहे। सन् १९२२ में आपने 'प्रान्तीय एजुकेशनल सर्विस' से त्यागपत्र देकर प्रयाग विश्व-विद्यालय में ५००—५०—१०००) रु० के ग्रेड में 'फीजिक्स के रीडर' का पद स्वीकार कर लिया। सन् १९४६ से १९४९ तक आप भौतिक शास्त्र विभाग के अध्यक्ष रहे। और १ मई १९४९ को आपने इस पद से अवकास ग्रहण कर लिया।

आप एक लम्बी अवधि से बीमार थे। गत १७ सितम्बर को आपका स्वर्गवास हो गया। आप की मृत्यु का समाचार आप के समस्त सुहृदों, शिष्यों तथा अनुगामियों के लिये आकस्मिक बज्रपात के सदृश था। प्रयाग की अनेक सार्वजनिक संस्थायें आप की मृत्यु के शोक में बन्द रहीं।

पंडित जी सादगी तथा सरलता की साक्षात् प्रतिमा थे। खद्दर के शुभ्र वस्त्रों में आवेष्टित वे भारतीय संस्कृति के जीते-जागते उदाहरण थे। उनका सारा काम नियम से होता था। प्रातःकाल चार बजे उठ जाने के पश्चात् नित्यक्रिया से निवृत्त हो अपने बगीचे में टहलते थे। इसके पश्चात् अध्ययन करते थे और फिर भोजन इत्यादि से निवृत्त हो अपने दैनिक कार्यों में संलग्न हो जाते थे। दीर्घसूत्रता और आलस्य तो उन्होंने जाना ही नहीं।

वे नितान्त शिष्ट तथा मृदुभाषी थे। अपने सरल और निश्छल स्वभाव के कारण वे मिलने वाले के हृदय-पटल पर अनायास अधिकार प्राप्त कर लेते थे। सर सी० वी० रमन, डा० मेघनाद साहा, डा० भाभा तथा डा० कृष्णन इत्यादि से इनका काफी परिचय रहा। भौतिक-शास्त्र विभाग के प्रधान पद के लिये डा० के० कस० कृष्णन को बुलाने का श्रेय इन्हीं को था।

कल्याण की भावना, दानशीलता, मित्रों के प्रति सहज आत्मीयता तथा अपने आश्रितों, नौकरों के प्रति सहानुभूति और उदारता आदि गुण उनमें केन्द्रीभूत थे। छुट्टियों में जाति की सेवा के लिये वे पर्यटन किया करते थे। विधवाओं और बच्चों की सेवा के लिये वे हमेशा तत्पर रहते थे।

उनके लिये कर्मण्यता ही प्रेम था और प्रेम ही कर्मण्यता थी। इतना ऊँचा आदर्श उसी का हो सकता है जो सेवा के महत्व को समझे। वह इतने उदार थे कि न जाने कितनी संस्थाओं, कितने परिचितों और गरीब छात्रों के लिये

(शेष ५३वें पेज पर)

स्वर्गीय श्री सालिगराम भार्गव

ले० श्री विष्णुदत्त भार्गव, प्रयाग

मेरी और श्री सालिगराम जी की जान पहचान ४० वर्ष से ऊपर उस समय हुई जब वह प्रयाग में म्योर सेन्ट्रल कालिज में एम० एस-सी० के लिये पढ़ते थे और मैं एक छोटा सा बालक स्कूल में पढ़ता था। मेरे पिता पं० भगवान दास जी भार्गव को विद्यार्थियों से अधिक स्नेह रहता था। विशेषकर जितने बाहर से आये हुये भार्गव विद्यार्थी बोर्डिङ्ग हाउस में रहते थे उनको यदा कदा बुलाया करते थे। एक दिन की घटना मुझे अच्छी तरह याद है। श्री सालिगराम जी को अन्य विद्यार्थियों के साथ एक रविवार को मेरे पिता जी ने आमंत्रित किया। वे सब न आये हम लोग बाट जोहते रहे। अगले रविवार को सब के सब आ धमके। पिता जी घर पर न थे। मैं तथा मेरे ताऊ जी थे। उन्होंने उलाहने के तौर पर कहा कि आप लोग पिछले रविवार को खाने क्यों नहीं आये। उत्तर मिला कि वह लोग इस रविवार के लिये आमंत्रित थे। बड़ी हँसी हुई। भोजन तैयार न था पर श्री सालिगराम जी बोले अब तो हम बिना खाये न जायेंगे। क्या बेतकल्लुफी व स्नेह था। भोजन तैयार किया गया और सब खाकर गये।

आपने में एम० एस-सी० उत्तीर्ण होने के पश्चात् में १९१२ में म्योर सेन्ट्रल कालिज में अध्यापक का पद ग्रहण किया। आपके अध्यापक होने के लगभग ६ वर्ष बाद मैं म्योर सेन्ट्रल कालिज में भरती हुआ और आपको गुरू के रूप में देखा। उसके बाद मेरे छोटे भाइयों पुत्र व भतीजों ने उनसे भौतिक विज्ञान पढ़ा। आप भौतिक विज्ञान के प्रमुख प्रोफेसर कई वर्ष तक रहे। भौतिक विज्ञान विभाग की उन्नति के कारण डा० साहा व डा० कृष्नन इत्यादि रहे तो श्री सालिगराम जी का हाथ भौतिक विज्ञान विभाग को ऊँचा करने में उन लोग से कम न था। यह आपका निःस्वार्थ व लगन से काम करने का फल है कि यह विभाग इस सुचारू रूप से चल रहा है। फोटो ग्राफी व Workshop Training विभाग भी आप ही की देन हैं। इस विभाग में Geophysics का स्थापन व उसके लिये इतनी बड़ी इमारत तैयार कराना आप ही के प्रयत्नों का फल है।

आपका जयपुर शाही साफा कालिज में एक निराली वस्तु थी। यहाँ तक हुआ कि आपको बिना साफा लोग पहचान भी नहीं पाते थे। एक बार इनका एक विद्यार्थी इनसे मिलने इनके घर गया वहाँ पर आप बाहर बैठे थे। विद्यार्थी ने उनको न पहचाना और उनसे पूछा भार्गव साहब (इसी नाम से वह कालिज में विख्यात थे) कहाँ हैं। हँसते हुये प्रोफेसर साहब खूंटी की ओर साफा दिखाते हुये बोले "भार्गव साहब यह टँगे हैं कहिये क्या काम है?" इतने में विद्यार्थी उनके बोलने पर उन्हें पहचान गया और बड़ा लज्जित हुआ।

आपके स्वभाव का तो कहना ही क्या है। आपने अपने विद्यार्थियों को मारना तो दूर रहा कभी कठोर बचन भी नहीं बोले। परन्तु जितना आपसे विद्यार्थी डरते थे उतना शायद ही किसी और से न डरते हों। यह सब होते हुये भी आपसे सब विद्यार्थी प्रेम करते थे और आप विद्यार्थियों से प्रेम करते थे। और उनके हित के लिये तन-मन-धन से तत्पर रहते थे आपको आजकल की दल बन्दी से कोई सरोकार न था।

सादा जीवन व उच्च विचार (Plain living & high thinking) को आदर्श उदाहरण आजकल मिल सकता है तो वह आप में पूर्ण रूप से था। आप बहुत सादा जीवन ही बिताना उचित समझते थे। कुछ लोगों को भ्रम था कि आप कंजूसी के कारण कम व्यय करते हैं। परन्तु यह पूर्ण भ्रम था। आपका खर्चा बहुत था। बहुतों को यह नहीं मालूम था कि वह अपने ग़रीब विद्यार्थियों को आर्थिक सहायता देते थे। महीने के अन्त में आपके वेतन में से कुछ भी नहीं बचता था। मेरे एक भाई के साथ एक

गरीब विद्यार्थी पढ़ता था। पढ़ने में तेज था और मेरे भाई व उसका competition रहता था। कभी वह प्रथम और कभी मेरा भाई प्रथम रहता था। गरीब होने के कारण उसने मेरे भाई से Tution के लिये कहा। मैंने एक सम्बन्धी पढ़ाने के लिये ४०) मासिक की एक Tution ठीक कर दी। प्रोफेसर साहब को इसका पता चला। उन्होंने मुझे उलाहना दिया कि यह क्या किया? मैं भौंचक्का रह गया। समझ में नहीं आया क्या ग़लती की। उन्होंने कहा कि यदि वह Tution करेगा तो अपना प्रथम स्थान न रख पावेगा। आपने उसे Tution न करने दी और चुपके से उसे आर्थिक सहायता देना आरंभ कर दिया। वह विद्यार्थी प्रथम उत्तीर्ण हुआ और परमात्मा की कृपा से एक अच्छे स्थान पर है। ऐसे कितने ही विद्यार्थी हैं जिन्हें आप सहायता देकर प्रोत्साहित करते रहते थे।

१६२६ में शहर से दूर हो जाने के कारण आपकी पत्नी को कष्ट होता था। वह भी बड़ी धार्मिक हैं। उनके लिये आपने एक मोटरकार खरीदी परन्तु आप फिर भी बहुत दिनों तक साइकिल पर ही कालिज आते रहे। किसी ने विद्यार्थियों से प्रोफेसर साहब के कार खरीदने की बात कही। विद्यार्थियों को इस बात पर इतबार न होता था कि यह बात सत्य है और शर्त तक बद ली। पर बात तो सत्य थी। आवश्यकता होने पर आप खर्च में बिलकुल नहीं हिचकते थे।

विद्यार्थियों के अतिरिक्त आप विधवाओं की भी सहायता करते थे। नौकरों को तो अपने लड़के ही समझते थे। उनकी बीमारी में व उनके ऊपर आपत्ति आने पर अपने ऊपर ही आपत्ति समझते थे।

मेरे एक भाई ने कुछ दिन भौतिक विज्ञान विभाग में (Physics Department) में लेकचरार का काम किया। विद्यार्थी के रूप में वह सूट पहनता था। जब वह लेकचरार हुआ तो मुझसे परामर्श किया कि वह क्या पहने। मैं कचहरी में बारहों मास खद्दर का सूती ही कपड़ा पहनता था। मैंने उसको सफेद खद्दर का बन्द कालर का कोट व पतलून पहनने की राय दी। प्रोफेसर साहब ने जो देखा तो आपको पसन्द आ गया। फिर क्या था कि अगले दिन खद्दर का कोट बनवा लिया। जाड़े के दिनों के लिये दो प्रकार की एक हलकी व एक जरा भारी रूई की बन्डी बन गई। और अपने जितने भी ऊनी मिल के अच्छे कोट थे नौकरों को दे डाले और केवल एक काला कोट राजकीय अवसरों पर जाने के लिये रक्खा।

मेरा तो उनका बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध था। पहले पहल जब मेरे पिताजी ने नैनी ग्लास वर्कस चलाया तो आप उसमें एक भागीदार थे। और बहुत प्रोत्साहित किया। आप ही की कृपा से मैंने Battery charging व Radio का काम आरम्भ किया। आपका कहना था कि Battery charging का काम बहुत कम लोग समझते हैं और उसकी विशेष आवश्यकता है।

आप मंच वक्ता (Plateform speaker) न थे। और न आपका विश्वास भी केवल बातें करने में था। आप ठोस काम करने के पक्ष में थे। इसका उनको बिलकुल ध्यान न था कि उसका श्रेय उनको मिलेगा या नहीं।

आप सर सुन्दर लाल होस्टल के सुपरिन्टेन्डेन्ट रहे व प्रयाग विश्वविद्यालय की कार्यकारिणी समिति (Executive Council) में बहुत दिन तक रहे। जिस निष्पक्षता व सत्यता से आपने काम किया वह बहुत सराहनीय है।

किसी को किसी प्रकार दुःख पहुँचाना या कटु बचन कहना तो आपने स्वप्न में भी न सोचा होगा।

आपने भार्गव जाति की सेवाएँ बहुत कीं। लगभग ४० वर्ष से आपका भार्गव सभा से सम्बन्ध रहा। उसके आप बहुत दिनों तक प्रधान मन्त्री रहे और इस समय कई वर्षों से प्रधान थे। आप जहाँ प्रगतिशील थे वहाँ आप इसके बड़े पक्षपाती थे कि जब तक जाति ही किसी बात को मंजूर न कर ले जब तक जाति की पुरानी परंपरा व नियमों का पालन निश्चित रूप से होना चाहिये। गर्मियों की छुट्टियाँ आप पहाड़ पर व्यतीत नहीं करते थे। अन्यथा वह उत्तर प्रदेश राजपूताना इत्यादि के मुख्य स्थानों का भ्रमण कर कर अपने इष्ट मित्रों व सम्बन्धियों से मिलना व जाति के झगड़ों व मसलों को हल करने में रहते थे। आपकी कृपा से जाति के कई झगड़े बड़ी सरलता से हल हो गये।

एक साधु आत्मा संसार से चली गई पर वह एक आदर्श छोड़ गई। परमात्मा उनकी आत्मा को शान्ति दे।

प्रो० सालिगराम जी भार्गव की मधुर स्मृति में

लेखक:—महामहोपाध्याय डा० पी० के० आचार्य, अवसरप्राप्त आई० ई० एस०, (बी० ए० आनर्स, एम०ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट० लंदन)

१९२० के दिसम्बर में जब मैं म्योर कालेज में आई० ई० एस० अधिकारी के रूप में आया तो भार्गव जी से मेरी भेंट हुई जो प्रिंसिपल ड्यूरेक के आधीन भौतिक विज्ञान के सहायक अध्यापक थे। उस समय प्रयाग विश्वविद्यालय पुनर्गठित हो रहा था और म्योर सेन्ट्रल कालेज प्रयाग विश्व-विद्यालय में सम्मिलित कर लिया जाने वाला था। भार्गव जी० पी० ई० एस० में स्थानापन्न रूप में थे और उनकी नियुक्ति स्थायी कर दी जाने वाली थी। सरकार की ओर से तत्कालीन शिक्षा-संचालक सर क्लाड डी ला फोस द्वारा जो प्रयाग विश्व-विद्यालय के प्रथम पूर्ण वैतनिक उपकुलपति नियुक्ति हुए थे, म्योर सेन्ट्रल कालेज के उन सभी कर्मचारियों को जो विश्वविद्यालय में स्थानान्तरित कर दिए गए थे, इस बात के निर्णय करने का निमंत्रण मिला कि उस समय के बाद सरकार की शर्तों को ही स्वीकार करें अथवा त्याग-पत्र देकर सीधे विश्व-विद्यालय के आधीन नौकरी स्वीकार करें। सरकारी नौकरी के स्थायित्व तथा सम्मान के लोभ ने मुझे आई० ई० एस० के ६००) से प्रारंभ होकर साधारण रूप में १७५०) तक समाप्त होने वाले ग्रेड के आगे ढाका विश्व-विद्यालय के १२००) से प्रारम्भ होकर १८००) तक समाप्त होने वाले ग्रेड को अस्वीकार करने को प्रेरित किया था। किन्तु भार्गव जी ने अपनी सरकारी नौकरी का परित्याग कर, जिसमें २५०) से प्रारंभ होकर ७५०) तक का ग्रेड था, विश्व-विद्यालय की नौकरी में ३००) से प्रारम्भ होकर ४५०) तक समाप्त होने वाले ग्रेड को स्वीकार किया था। वे ही एक अधिकारी थे जिसने अपनी योग्यता पर विश्वास, बुद्धिमत्ता तथा साहस के बूते पर त्याग-पत्र दिया तथा सरकारी नौकरी के स्थायित्व की उपेक्षा कर विश्वविद्यालय की नौकरी स्वीकार की। अन्त में उनका ही निर्णय चतुराई का सिद्ध हुआ। कुछ समयों में वे ५००)—१०००) के ग्रेड में रीडर नियुक्त हुए और अन्त में ८००)—१२५०) के ग्रेड में प्रोफेसर भी कुछ समय तक रहे।

उन्होंने एक दूसरी सज्जनता भी दिखलाई। ६० वर्ष होने के पूर्व ही उन्होंने अवसर प्राप्त करने का अकस्मात् निर्णय किया। अधिक युवक उत्कंठित व्यक्तियों को उच्चपद पाने का अवसर देने की उनकी इच्छा ने ही उन्हें शीघ्र त्याग-पत्र देने के लिए प्रवृत्त किया। इसके बाद वे काशी विश्व-विद्यालय में थोड़े समय के लिए गए किन्तु अपनी पुरानी जगह पर पुनः आ गए और अंतिम रूप में ६० वर्ष की अवस्था में अवसर प्राप्त करने तक यहीं रहे।

अवसर प्राप्त करने के प्रथम अवसर पर भार्गव जी ने सभी अध्यापकों, क्लर्कों तथा चपरासियों को छोटी-छोटी मंडलियों में बिदाई की दावतें दीं। सेवा भावना का दूसरा उदाहरण उन्होंने नौकरों के लिए अपने नए बंगले में सुन्दर आवास स्थान बनाकर उस समय दिया जब वे चौक से उठ कर अपने नए क्रय किए, चैथम लाइन के बंगले में आए। उनके अनेक दान के कार्यों में दारागंज की धर्मशाला है तथा माघ मेला में यात्रियों तथा कल्पवासियों के लिए रहने के लिए प्रतिवर्ष विशाल छप्पर डलवाना रहा है।

विश्व-विद्यालय के मामलों में भार्गव जी उन थोड़े से व्यक्तियों में से थे जो अपने सारे समय तथा शक्ति का उपयोग व्यक्तिगत स्वार्थ साधनों के स्थान पर विश्व-विद्यालय की सेवा में ही किया करते हैं। यह भार्गव जी के सतत उद्योग का ही परिणाम था कि श्री जे० एम० डेवेड जैसे योग्य रजिस्ट्रार ने सभी परीक्षाओं को ३० दिन में ही समाप्त कर देने की उनकी योजना स्वीकृत की थी। उनकी योजना के पूर्व परीक्षाओं का चलाना एक विकट समस्या थी और तीन मास तक शिक्षण कार्य अस्त-व्यस्त हो जाता था।

विज्ञान परिषद् स्थापना का श्रेय भार्गव जी को है। जब

राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी स्वीकार किए जाने का प्रश्न उठने लगा उसके बहुत ही पहले भार्गव जी ने हिन्दी में वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दों के निर्माण की आवश्यकता अनुभव की थी। इसकी सफलता के लिए भार्गव जी मुझसे सदा ही परामर्श किया करते थे। यह उन्हीं के विचार का परिणाम था कि विश्व-विद्यालय का फोटोग्राफी विभाग विकसित हो सका जिससे शिल्पीय कौशल तथा अवकाश के समय एक उपादेय कार्य सीखने का अवसर सुलभ हुआ।

विश्व विद्यालय के वे गिने चुने शिक्षक जो विश्व विद्यालय के ऐसे शुभ कार्यों में अपने को लिप्त रखते हैं, वे दलबन्दी, तथा गुट्टों में सम्मिलित होने और पवित्र विद्या-मन्दिर में विवाद खड़े करने के लिए अखाड़े बनाने में हाथ नहीं बँटा सकते। मैंने भार्गव जी के साथ विचार-विनिमय किया था कि शिक्षण विश्वविद्यालय एक शिक्षित पुरुषों की संस्था है जो अपने लिए व्यक्तिगत रूप से विचार कर सकते हों, अतएव यह प्रजातन्त्र के सत्य सिद्धान्तों को प्रचारित तथा व्यवहार के लिए उपयुक्त स्थल है जहाँ हमें किसी दल में सम्मिलित होने की आवश्यकता नहीं, जिसमें दलगत सङ्गठन के नाम पर व्यक्तिगत विचारों तथा क्रिया-कलापों का त्याग ही करना पड़ता है। हम लोगों ने प्रजातन्त्र की एक दूसरी योजना पर भी विचार किया था जिसमें छात्रों को उपयोगिता तथा उत्कृष्टता से उदासीन कक्षा-वक्तृताओं में अनिवार्यतः सम्मिलित होने का बन्धन हटा दिया जाय। विश्वविद्यालय के छात्रों को अपने लिए यह निर्णय कर सकने में समर्थ समझना उचित है कि अमुक कक्षा-वक्तृता सुनना उसके लिए लाभकर है या वह अपना समय किसी अन्य रूप में व्यतीत करने के लिए पुस्तकालय में व्यतीत करें, या योग्य अध्यापकों द्वारा निर्दिष्ट ढङ्ग अथवा अपनी साधारण बुद्धि के अनुकूल व्यक्तिगत अध्ययन करें। उन दिनों में योरोपीय सहयोगियों ने इन प्रस्तावों को हमारे ऐसे देश के लिए अत्यधिक क्रान्तिकारी बताया था जो उस समय तक स्वाधीन नहीं हो सका था।

जब कभी भार्गव जी सरीखे निर्भीक तथा उदारमना बहुसंख्यक अध्यापक आज की अस्तव्यस्तता से दूर निकल आवें, तो आज के प्रजातन्त्र के स्थान पर यथार्थ प्रजातन्त्र का परीक्षण तथा प्रसार विश्वविद्यालय केन्द्र से उस दशा में हो सकता है जब वे यथार्थतः ही विद्यामन्दिर बने हों तथा उनमें से उस तरह के अपावन तत्वों का पूर्णतया लोप हो चुका हो जैसा प्राचीन समयों के देवमन्दिरों में देव दासियों की विद्यमानता से भ्रष्ट वातावरण रहने की बात सुनी जाती है। प्रयाग विश्वविद्यालय का भावी रूप चाहे जो हो किन्तु स्वर्गीय प्रोफेसर सालिगराम भार्गव जी द्वारा संपन्न उदार कृत्य उन्हें उन लोगों की दृष्टि में अमर ही बनायेंगे जिन्होंने इस दिवंगत आत्मा को श्रद्धांजलि अर्पण करने के लिए इस संस्मरण के लेखक की भांति उनके मित्र तथा सहयोगी रहकर अत्यंत सन्निकट से परिचय प्राप्त करने का सुअवसर प्राप्त किया था।

मेरे संस्मरण

लेखक—डा० गोविन्द राम तोशनीवाल, भूतपूर्व प्राध्यापक, भौतिक विज्ञान विभाग प्र० वि० वि०

प्रो० सालिगराम जी भार्गव के स्वर्गवास के समाचार पाकर मुझे अत्यन्त दुःख हुआ। मेरा पहिला परिचय प्रो० साहिब से सन् १९२४ में हुआ जब मैं प्रयाग विश्वविद्यालय में एम० एस-सी० के प्रथम वर्ष में पढ़ने आया। पहिले ही दिन से उनकी पोशाक व सादगी देख कर मैं उनकी ओर आकर्षित हुआ। मेरा उनका साथ १९४५ तक रहा और मेरे ऊपर उनके सादे आचरण, सरल स्वभाव व निष्कपट व्यवहार का बड़ा असर पड़ा। प्रो० भार्गव साहिब का अपने विद्यार्थी से पिता, पुत्रों का सा व्यवहार रहा है। वे उनसे न केवल भौतिक विज्ञान की जटिल समस्यों पर ही परामर्श देने को तैयार थे बल्कि वे जरूरत पर आर्थिक सहायता भी देते थे। साल में दो चार चक्कर छात्रालयों के वे अवश्य लगाते और विद्यार्थियों के कमरों में मिलकर उनके साथ सहानुभूति दिखाते थे। प्रो० साहिब अपने विचारों के बड़े पक्के थे और अपनी Conscience के कभी विपरीत नहीं जाते थे।

प्रो० भार्गव साहिब का व्यवहार अपने नोकरों से भी उतना ही सच्चा व निस्वार्थ रहा है। संकट काल में उनकी आर्थिक सहायता भी भरसक करते रहे हैं।

विश्वविद्यालय की उन्नति का उनको हमेशा खयाल रहा है और किस प्रकार विश्वविद्यालय की ख्याति बढ़ाई जा सकी है उसका प्रयत्न हमेशा करते रहे हैं। प्रो० साहिब का प्रयत्न मातृ भाषा में विज्ञान की चर्चा का सराहनीय है। विज्ञान परिषद् के वे जन्मदाता व एक प्रकार से प्राण ही थे।

प्रो० भार्गव की याद उनके मित्रों एवम् विद्यार्थियों में सदा बनी रहेगी। और उनकी जीवनी कई भूले भटकों को रास्ता दिखाती रहेगी।

एक श्रद्धांजलि

लेखक—श्री० सी० एल० खण्डेलवाल, भूतपूर्व सहायक अध्यापक; गव० इंटर कालेज, इलाहाबाद

जुलाई १९१४ में मैं म्योर सेन्ट्रल कालेज में भरती हुआ, उस समय अध्यापकों में बहुत से अंग्रेज भी थे। डा० ई० जी० हिल, श्री० जे० ड्यूरेक, श्री० आर० एच० मूडी, श्री एस० जी० डन, श्री० ए० आर० बर्नेट हर्स्ट, श्री० एफ० डबल्यू० बक्लर, श्री० सी० पी० डबल्यू० लायड आदि। इन्हीं के साथ डा० गङ्गानाथ झा, डा० डी० आर० भट्टाचार्य आदि भी थे। ये सब लोग अंग्रेजी पहनावा पहनते परन्तु इनके मध्य श्री० सालिगराम जी भार्गव ही एक ऐसे थे जो पायजामा, पारसीकोट और जयपुरी छपा साफा धारण करते।

भौतिक विज्ञान विभाग के अध्यक्ष श्री० जे० ड्यूरेक थे तथा श्री० सालिगराम भार्गव श्री० एस० चटर्जी तथा श्री० शिवदास मुकर्जी सहायक अध्यापक थे। कुछ समय बाद श्री चुन्नीलाल साहनी (भूतपूर्व शिक्षा संचालक, उत्तर प्रदेश) भी विद्यार्थी-डिमान्ट्रेटर नियुक्त हुए। श्री० सालिगराम जी भार्गव का छात्र होने का मुझे भी सौभाग्य प्राप्त हुआ। हम लोगों ने उनको एक गतिमान विश्व कोश रूप में ही देखा, विशेषतया विद्युत विषय में वे अधिक पारंगत थे। उनमें शिक्षक के सभी-आदर्श गुण थे।

एक बार विद्युत का प्रयोग करते समय मेरा यंत्र बिगड़ गया तथा मैं दोष का स्थल ढूँढ़ सकने में असमर्थ रहा। दो एक अध्यापकों से भी मैंने निवेदन किया परन्तु उन्हें दोष का पता न चल सका। संयोग वंश श्रद्धेय भार्गव जी उधर से जा रहे थे, मैंने उन्हें पकड़ा। उन्होंने तुरन्त ही एक शिथिल जोड़ को कसने का आदेश दिया। यन्त्र काम करने लगा।

स्वर्गीय भार्गव जी की स्मृति बड़ी तीव्र थी। बीस वर्षों के बाद एक बार मैं मिला तो उन्होंने तुरन्त पहचान लिया। ईश्वर उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

स्वर्गीय भार्गव जी की डायरी के पन्ने

कुमारी प्रमीला भार्गव (दौहित्री प्रो० सालिगराम भार्गव) द्वारा अनुवादित

जनवरी १६१३

१. श्री हीरालाल और पुरुषोतम दास टंडन से मिले।

२. पारफिट ऐंड को० में एक ३० रु० कीमत का चोगा बनने को दिया।

३. जुकाम से पीड़ित, गोपाल स्वरूप और महेश पहुँचे।

४. ड्रड के कुछ अंश पढ़े।

५. हिन्दी में "ताप" के कुछ पृष्ठ लिखे।

६. हिन्दी में "ताप" पुस्तक लिखी। गाउन लाये।

खर्चा गाउन ३० रु०।

पब्लिक लाइब्रेरी १६ रु०।

७. दूरबीन (Telescope) से शुक्र और शनि को देखा। तारे अधिक बड़े नहीं दिखाई देते। हिन्दी में "ताप" लिखी।

८. Indian Society में भाषण सुना। कठिनाइयाँ समझाईं।

६. पब्लिक लाइब्रेरी से Microscopy प्राप्त किया। India पृष्ठ ११५ तक पढ़ी।

१०. छात्रावास-वाद विवाद समिति में संयुक्त परिवार व्यवस्था पर भाषण दिया। ट्रेनिंग कालेज (शिक्षण विद्यालय) में क्रिकेट खेलने का अभ्यास किया।

११. भारतीय भवन गए। 'मर्यादा' मँगाना शुरू किया। शाम को टेनिस खेले।

१२. बाबू हीरालाल आज आए, हिन्दी की "ताप" लिखी।

१३. गंगा नहाने गए। मालवीय जी से नहीं मिल सके।

१४. कक्षा-वक्तृता (लेक्चर) तैयार किया। नए German electroscope का काम समाप्त किया। सभा में गए जिसमें दीनदयाल जी और मालवीय जी ने भाषण दिया।

१५. हिन्दी में "प्रकाश" लिखी। India और दीप निर्वाण पढ़ी।

१६. कक्षा-वक्तृता (लेक्चर) तैयार किया। हिन्दी का उपन्यास पढ़ा।

१७. हिन्दी उपन्यास पढ़ा। Fournier पढ़ा।

१८. लखनऊ जानेवाला हूं।

१६. लखनऊ से चले। धोती छूट गई।

२०. धोती रु० २—४—०

२१. १२-३० बजे हिन्दू विश्व विद्यालय डेपुटेशन के के आगमन के कारण कालेज बन्द हो गया। जुलूस देखा। तृतीय और चतुर्थ वर्ष की कापियाँ जाँची।

२२. हिन्दू विश्वविद्यालय की सभा में गए। चतुर्थ वर्ष की कापियां जाँची। श्री ड्यूरेक से उनके छुट्टी पर जाने के बारे में बातचीत की।

२३. कक्षा वक्तृता तैयार किया। श्री ड्यूरेक से फिर बातें कीं।

२४. अखिल भारतीय हाकी टूर्नामेंट में मैच देखा। टेनिस खेला।

२५. अखिल भारतीय हाकी मैच के कारण कालेज १-२० पर बन्द हो गया था। श्री ड्यूरेक से मिले जो ३ दिन के लिए जा रहे हैं। हाकी का मैच देखा, अच्छा लगा।

२६. Maycock व 'दीप निर्वाण' हिन्दी का उपन्यास पढ़ा। हिन्दी में "ताप" लिखी। टेनिस खेला।

२६. देवधर जी के साथ बाबू भगवानदास के घर बाबू सीताराम (रिटायर्ड डिप्टी कलक्टर) के यहाँ गए और अनाथालय गए।

अनाथालय रु० १—०—०

३०. पब्लिक लाइब्रेरी गए—'दीप निर्वाण' समाप्त किया। क्रिकेट मैच के कारण कालेज १-२० पर बन्द हुआ।

फरवरी १९१३

१. हिन्दी में "ताप" लिखी। वाद-विवाद समिति की सभा में गए। 'सरस्वती' हिन्दी उपन्यास ए० पी० लाइब्रेरी से लाए।

२. बाबू भगवानदास से मिले, रजिस्ट्रार से लिख कर पूछा कि सामाजिक संस्थायें Social bodies रजिस्टर हो सकती हैं या नहीं।

४. 'सरस्वती' उपन्यास पढ़ा। दिल्ली दरबार पर श्री मालेट्स का भाषण सुना। भाषण मन के लायक नहीं था।

५. हिन्दी का उपन्यास पढ़ा। दर्शन-शास्त्र सम्बन्धी पत्रिकायें पढ़ी।

६. गंगा नहाने गए। हिन्दी का उपन्यास पढ़ा।

७. हिन्दी के उपन्यास को समाप्त किया।

६. सूरज के दृश्य प्रकाश कोटि को समझने के लिए सार्वजनिक पुस्तकालय गए।

१०. श्री डयूरेक के साथ स्पष्टीकरण के लिए Rowland प्रयोग शुरू किया।

११. श्री डयूरेक के साथ प्रयोग किया।

१२. प्रयोग किया। रजिस्ट्रार का पत्र देखा जिसमें Reader पद पर नियुक्ति की सूचना थी।

१३. ४-२० बजे तक कालिज में रहे।

१४. हिन्दी की 'ताप' लिखी।

१५. मुस्लिम बोर्डिंग हाउस के सुपरिंटेंडेंट मौलवी अब्दुल अली की मृत्यु हुई। उनकी मुर्दिनी में शामिल हुए। प्रश्न पत्र छापे। श्री ड्यूरेक ने कक्षा-वक्तृताओं की एक स्कीम तैयार की।

१६. भाई के एक पत्र से १३ ता० को ११-४५ रात के समय एक पुत्री के जन्म की ख़बर मिली।

१७. हिन्दी 'ताप' लिखी। 'सरस्वती' लौटाई।

१८ १०-३० पर कालेज गए, १-१५ पर लौटे क्योंकि श्री ड्यूरेक अपनी मोटर साइकिल में लगे थे। Hindi Scientific Glossory को देखा।

२०. बाबू हीरालाल मेरे साथ कालेज से आए

२१. तृतीय वर्ष के छात्रों की कठिनाइयाँ हल कीं।

२२. श्री ड्यरेक नाराज थे।

२४. प्रयोग शुरू किए। दो बार व्यवस्था गड़बड़ हुई जिससे श्री ड्यूरेक बहुत नाराज़ हो गए और वह मुझको अकेला छोड़कर चले गए।

२६ 'सरस्वती' पढ़ी।

२७. श्री ड्यूरेक से टामसन के प्रयोग करने को कहा।

२८. गोपाल स्वरूप जी से २ रु० उधार लेकर कालेज के Staff के फ़ोटो के लिए दिया। श्री ड्यूरेक Hertz waves के प्रयोग के लिए कोशिश कर रहे थे।

मार्च १९१३

४. विद्यालय से ६७-१३-८ मिले। चुन्नी लाल को वापिस किए।

मेस १३-०-०

गोपाल स्वरूप २-०-०

५. श्री ड्यूरेक से Readership और research के बारे में बातें कीं। उन्होंने कहा कि यह कठिन है क्योंकि सभी उनके पीछे हैं। डा० झा को देखने गए जो बाहर गए हुये थे।

७. Readership के बारे में डा० झा से मिले—

१०. विद्यालय १० से ४.३०। भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक पुस्तकों की लिखाई के लिए एक विशेष सभा में गए। श्री गौड़ से बातचीत की।

१२. 'ताप' श्री गौड़ को दिखाई।

१३. हिन्दी 'ताप' का कुछ अंश श्री गौड़ को पढ़कर सुनाया। हिन्दी 'ताप' लिखी।

१४. हिन्दी की 'ताप' श्री गौड़ को पढ़कर सुनाई। शाम को बाबू नन्द किशोर आए। उनके साथ 'गृहलक्ष्मी' कार्यालय गए।

१५. हिन्दी की 'ताप' श्री गौड़ को पढ़कर सुनाई। उनसे बातचीत भी की। गोपाल स्वरूप घर से लौटे।

१६. हिन्दी की 'ताप' पुस्तक का चित्र बनाया—

१७. कक्षा वक्तृता और हिन्दी 'ताप' का चित्र तैयार किया।

२४. सुबह हिन्दी 'ताप' लिखते रहे।

२६. हिन्दी 'ताप' लिखी।

२७. हिन्दी 'ताप' रात को लिखी। श्री ड्यूरेक से, जिनको बाहर जाने की इज़ाजत मिल गई थी, उनके बाहर

जाने के बारे में बातें की। उन्होंने मुझसे मालूम करने को कहा कि मेरी जगह कोई द्वितीय वर्ष का छात्र काम करने को राज़ी है या नहीं।

२८. हिन्दीं 'ताप' नहीं लिख सके।

३१. डिग्री की परीक्षा आरम्भ हुई। विद्यालय ६-३० से ११-३०। भाषा विज्ञान साहित्य समिति संस्थापित हुई। जिसमें डा० झा मंत्री और पं० सुन्दर लाल सभापति हुए।

अप्रैल १९१३

१२. श्री गौड़ के पास दोपहर को गए।

१८. electroscope ले जाने के बारे में श्री ड्यूरेक से बातचीत की।

१९. श्री गौड़ और श्री मुकर्जी से मिले।

२१. विज्ञान परिषद् की एक सभा हुई जिसमें सदस्यों के नाम प्रस्तावित किए गए। निश्चय हुआ कि विज्ञान प्रवेशिकाएं लिखी जायँ और जैसे जैसे काम होता जाए उसके भाग पंडित जी और मौलवी साहब को भेजे जाएँ।

२२. श्री गौड़ से विद्यालय में न मिल सके।

मई १९१३

२. श्री सी० एल० के साथ हिन्दी में वैज्ञानिक पुस्तकें लिखने की ठानी।

८. तीसरे पहर 'विज्ञान प्रवेशिका' का कार्य आरम्भ किया।

१२. थोड़ी प्रवेशिका लिखी। शाम को प्रबन्धक समिति की बैठक में सम्मिलित हुए।

१६. दोपहर में प्रवेशिका में तल्लीन रहे।

१७. सुबह व दोपहर को विद्युत तथा प्रवेशिका में तल्लीन रहे।

१८. ,, ,,

२१. रात को प्रवेशिका में तल्लीन रहे।

नवंबर १९१३

६. रजिस्ट्रार से मेकाक के अनुवाद की अनुमति के लिए निवेदन पत्र भेजा।

फरवरी १९१४

२१ विज्ञान परिषद् की बैठक में क्रिश्चियन कालेज के डा० एडवर्ड ने उर्दू में गायन और ध्वनि पर भाषण दिया।

मार्च

७. सायंकाल विज्ञान परिषद की बैठक में श्री गौड़ का भाषण 'स्वर्ण उत्पत्ति' पर हुआ।

१३. श्री जगन्नाथ खन्ना प्रधान अध्यापक प्रेम महा विद्यालय के साथ श्री गौड़ से मुलाकात की।

१४. विद्यालय गए। वहाँ श्री गौड़ और और भी लोगों से मिले।

अगस्त १९१४

२४. प्रेमवल्लभ ने कहा कि गर्वनमेंन्ट हाई स्कूल के प्राध्यापक विज्ञान प्रवेशिका की समालोचना लिख रहे हैं।

२९. विज्ञान परिषद की एक बैठक हुई जिसमें इसके रजिस्ट्रेशन के प्रस्ताव पर बहस हुई। तदुपरान्त डा० झा का ज्योतिष विज्ञान पर भाषण हुआ। सभा-भवन खचाखच भरा था।

३०. दोपहर को श्री अल्लाहबख्श के यहाँ उनकी मदद से 'प्रवेशिका' का उर्दू तरजुमा करने गए।

सितम्बर १९१४

११. कल जो श्री पाल का भाषण होने वाला है, उसकी तैयारी में व्यस्त रहे।

१२. श्री पाल ने विज्ञान परिषद के तत्वावधान में एक्स किरण पर भाषण दिया। भाषण उत्तम श्रेणी का था।

१५. शाम को सर्व श्री गौड़ और हीरालाल आए। विभिन्न प्रकार के श्रोतागण जो कि विज्ञान परिषद के अन्तर्गत हुए भाषणों में आते हैं उनसे उनके विषय में वार्ता की।

१६. विज्ञान परिषद की नियमावली लाकर पढ़ी।

अक्टूबर १९१४

१२. श्री शिवदास मुकर्जी ने सेंटजान ऐंबुलेंस एसोसिएशन तथा तत्कालीन चिकित्सा की उपयोगिता पर विज्ञान परिषद में, जो श्रीफ्रीमेंटल के सभापतित्व में हुई थी—भाषण दिया।

२४. श्री पाल ने श्री बर्न के सभापतित्व में ओषजन पर भाषण दिया।

३१. डा० झा के यहाँ गए। सोमवार की बैठक की सूचना निकलवाई। शाम को श्री ड्यूरेक पधारे।

नवम्बर १९१४

३. कक्षा की प्रगति के बारे में श्री ड्यूरेक को सब बातें बताईं।

६. श्री डयूरेक ने कहा, "मैं तुमसेबहुत खुश हूँ। तुम शिक्षण कार्य के अतिरिक्त भी कुछ न कुछ करते रहते हो। यदि गलती भी किया तो क्या हर्ज है।" द्वितीय वर्ष के विद्यार्थी का पहिला क्लास लिया।

७. इंडियन प्रेस निमंत्रण पत्र का प्रूफ देखने गए।

११. परिषद् की ओर से निमंत्रण पत्र भेजे।

१४. दीक्षान्त समारोह दिवस। प्रातःकाल सरकारी छात्रावास के साथ तस्वीर खिंचवाई। श्री सालिगराम टंडन से विद्यालय में भेंट की। श्री डयूरेक ने कहा कि श्रीमती बीसेंट आपत्तिजनक महिला हैं और यदि वे विज्ञान परिषद की सदस्या बनती हैं तो बहुत से लोग उसके सदस्य बनना पसन्द नहीं करेंगे।

१५. परिषद की पहिली वार्षिक बैठक डा० झा की अध्यक्षता में हुई। सभा की उपस्थिति क्षीण थी।

२२. सायकाल श्री गौड़ को नवीन संस्करण की छपी हुई कापियाँ देने गए।

२५. डा० झा के स्थान पर समिति की बैठक के लिए देर से पहुँचे। मौलवी हामिद उद्दीन व श्री फ्रीमेंटल वहाँ उपस्थित थे।

दिसम्बर १९१४

१६. डा० सुन्दर लाल विज्ञान परिषद की बैठक में सम्मिलित हुये।

जनवरी १९१५

२२. ह्विटकर ऐंड को को लिखा कि मैं उनको १० पौंड तब दूँगा जब कि अनुवाद Syndicate से स्वीकृत हो।

२५. पब्लिक लाइब्रेरी गए और मन्त्री से पुराने अंक की प्राप्ति के हेतु आवेदन पत्र द्वारा आज्ञा माँगी।

२७. प्रातः काल पब्लिक लाइब्रेरी गए और Electrician के दो अंक लाए।

फरवरी १९१५

२४. भाषण की योजना और संशोधन विज्ञान परिषद् के सभ्य तथा परिसभ्यों को भेजने में व्यस्त रहे।

२६. गो० कृ० गोखले की मृत्यु पर शोक सभा

२७. श्री गोखले के फूल १०,००० आदमियों के जलूस के साथ गङ्गा ले जाए गए। सायंकाल में परिषद की बैठक श्री गोखले के सम्मानार्थ स्थगित रही। श्री गोपाल स्वरूप ने "निर्मायक तथा संहारकर्ता मनुष्य" पर एक भाषण दिया।

जुलाई १९१५

१६. सायकाल परिषद् के कार्यालय में सदस्यों को विज्ञान की प्रतियाँ भेजने गए। एक तार मिला कि श्री निहालकरण सेठी मेरठ विद्यालय के एक पद के लिए नियुक्त हो गए हैं।

२०. निहाल करण सेठी को मेरठ कालिज की नौकरी स्वीकृत करने के लिए तार दिया।

३१. विज्ञान परिषद में परिवहन के साधनों पर एक भाषण दिया।

अगस्त १९१५

२७. हेड क्लर्क ने बताया कि अब विज्ञान परिषद को और भाषणों के होने के लिए अनुमति नहीं मिलेगी। श्री गौड़ और डाक्टर साहब से शाम को मिले।

१८. श्री निगम ने 'अतीत के आश्चर्य' पर भाषण दिया। साधारण बैठक आज न हो सकी।

सितम्बर १९१५

६. शाम को हम लोगों ने श्री ड्यूरेक को विदाई दी और एक तसवीर खींची गई। छात्रों की संख्या कम थी।

१२. आज सबेरे श्री गौड़ विज्ञान का कार्यालय देखने आये जो कटरे में स्थानान्तरित कर दिया गया है।

२५. परिषद के अन्तर्गत डा० सरकार ने "सूक्ष्मदर्शकीय दानव तथा उनसे निराकरण का उपाय" पर भाषण दिया।

अक्टूबर १९१५

३०. श्री डी० एन० पाल ने विज्ञान परिषद में वाष्प इंजिन पर भाषण दिया।

नवम्बर १९१५

२६. शाम को डा० सुन्दर लाल से समिति की वार्षिक बैठक के विषय में मिले।

२८. सारे दिन समिति की वार्षिक बैठक के निमंत्रण भेजने में व्यस्त रहे।

दिसम्बर १९१५

३. आज कायस्थ पाठशाला का शिलान्यास श्री लेफ्टिनेंट गर्वनर द्वारा हुआ।

५. शाम को हार्डिंग भवन में श्रीमती बीसेंट का भाषण था। अगणित लोग थे और भाषण बहुत ही उत्तम था।
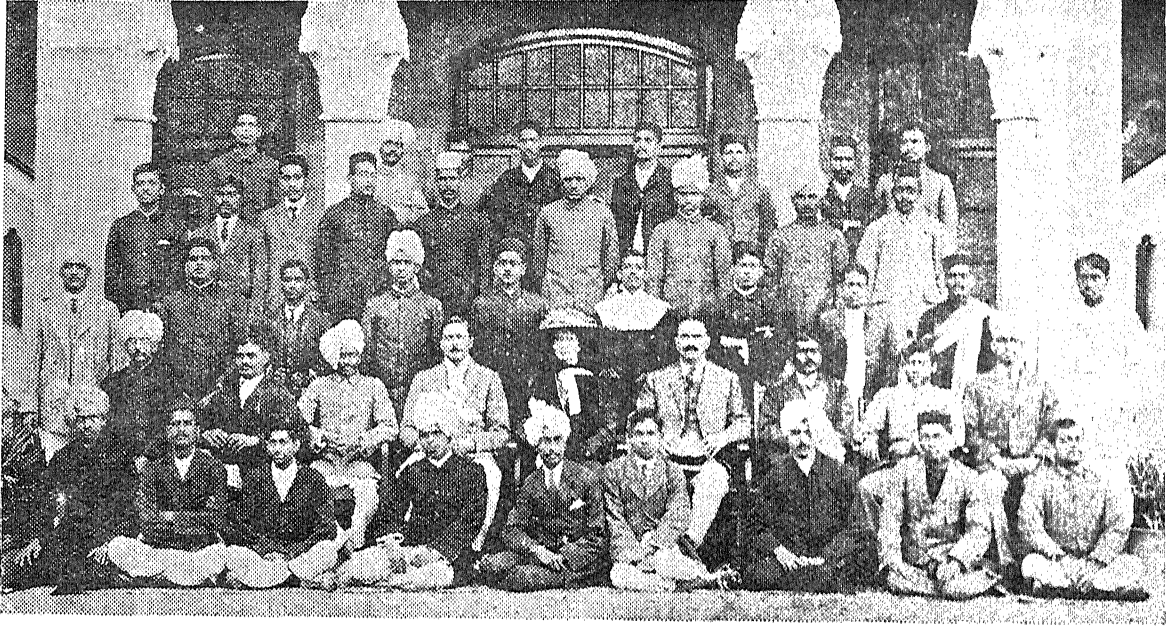
सन् १९१३ के लगभग एम० सी० कालेज का ग्रुप फोटो

बाईं ओर से

प्रथम पंक्ति (खड़े) (२) श्री० महेश प्रसाद भार्गव (३) श्री अंबिका पांडे एडवोकेट (४) श्री० बी० बी० डेंगवेकर वैद्य, जबलपुर (५) श्री० वाई० बी० रानाडे (भूतपूर्व असि० सर्जन) (७) श्री० देवरस, भूतपूर्व अध्यापक, विज्ञान, नागपुर वि० वि०।

दूसरी पंक्ति (खड़े) (१) श्री मुकर्जी, इनकम टैक्स अफसर।

तीसरी पंक्ति (खड़े) (१) श्री धनेश्वर प्रसाद (२) श्री नर्मदा प्रसाद (४) श्री चुन्नी लाल साहनी, भूतपूर्व शिक्षा-संचालक, उत्तर प्रदेश (६) श्री मुकर्जी एडवोकेट।

चौथी पंक्ति (बैठे) (१) श्री० गोपाल स्वरूप भार्गव (२) डा० एस० पी० वर्मा (भूतपूर्व रजिस्ट्रार, प्र० वि० वि०) (३) स्वर्गीय प्रो० सालिगराम भार्गव (४) श्री० सी० पी० लायड, प्रोफेसर अंग्रेजी विभाग (५) श्रीमती जेनिंग्स (६) श्री० जेनिंग्स, प्रिंसिपल, म्योर सेन्ट्रल कालेज, (७) श्री दुबे (८) श्री चटर्जी (अध्यापक, रसायन)

पाँचवीं पंक्ति (बैठे) (३) डा० डी० बी० देवधर, भूतपूर्व अध्यक्ष, भौतिक विज्ञान विभाग, लखनऊ वि० वि०

प्रो० सालिगराम भार्गव स्मृति अंक
(परिशिष्टांक)

विज्ञान

भाग ७८] मकर, २०१०, जनवरी १९५४ [सं० ४

स्वर्गीय श्री सालिगराम जी भार्गव

लेखक—डा० ईश्वरी प्रसाद, प्रोफेसर, राजनीति विभाग, प्र० वि० वि०

श्री प्रोफेसर सालिगराम भार्गव जी की मृत्यु से विज्ञान परिषद् को ही क्या, हिन्दी संसार को बड़ी क्षति पहुंची है। प्रोफेसर महोदय हमारे विश्वविद्यालय की विभूतियों में से थे। उनकी विद्वत्ता के विषय में कुछ भी कहना व्यर्थ है। जिस किसी ने भी विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की है वह उनके व्यक्तित्व से प्रभावित हुए बिना नहीं रहा है। तीस वर्ष से अधिक काल तक श्री भार्गव जी ने प्रयाग विश्व-विद्यालय की तन मन धन से सेवा की और विद्यार्थी जीवन पर अपनी अमिट छाप लगाई। उनके सहयोगी तथा छात्र गण उनको सदैव याद रक्खेंगे और जब तक भौतिक शाखा की प्रयोगशाला रहेगी उनके नाम का स्मरण आदर सहित किया जायगा। शालिग्राम जी हिन्दी के पुजारी थे। उसकी उन्नति तथा प्रचार के लिये अनेक वर्षों से प्रयत्नशील थे। पहले वे विज्ञान का सम्पादन भी करते थे। उन्होंने हिन्दी में अनेक लेख लिखे और हिन्दी द्वारा सायंस की शिक्षा देने वालों के पथप्रदर्शक हुए। जिनका श्री भार्गव जी से परिचय था वे जानते हैं कि वे साधारण व्यक्ति नहीं थे। उनकी सादगी, उनका प्रेम, उनकी सहिष्णुता और उनका त्याग सदैव चिरस्मरणीय रहेंगे। धनलोलुपता उन्हें छू तक नहीं गई थी। उन्होंने हजारों रुपये अपनी प्रयोगशाला को दिये और विद्यार्थियों को भी अनेक प्रकार से सहायता दी। भार्गव सभा के सभापति की हैसियत से उन्होंने समाज सेवा भी की और दोषों को दूर करने के लिये प्रशंसनीय प्रयत्न किया। वास्तव में भार्गव जी का आदर्श जीवन था। उनके निधन से विश्वविद्यालय को गहरी क्षति पहुँची है। हिन्दी संसार उनका सदैव आभारी रहेगा। हिन्दी भाषा के माध्यम द्वारा विज्ञान का प्रचार करने वालों में श्री शालिग्राम जी का स्थान सदा अग्रगण्य रहेगा।

———

श्री सालिग राम जी से मेरा परिचय

ले०—प्रिन्सिपल हीरा लाल खन्ना,
सभापति, विज्ञान परिषद्, प्रयाग.

विज्ञान परिषद के सभापति प्रिन्सिपल हीरा लाल जी खन्ना का स्व० प्रोफेसर सालिग राम भार्गव से ४३ वर्षों का परिचय है। आपने पुरानी स्मृति का आदर पूर्वक उल्लेख किया है,......

श्री सालिग राम जी से मेरा परिचय जुलाई १९१० में हुआ जब वे आगरे से प्रयाग आए थे। वे हिन्दू बोर्डिङ्ग हाउस में मेरे कमरे के पास ही रहते थे। उनके आचार बिचार बड़े ही परिष्कृत थे। वे बड़े मिलनसार और प्रसन्नचित्त वाले व्यक्ति थे। यद्यपि स्कूल में वे फारसी और उर्दू पढ़े थे तथापि उनका मातृभाषा से भी अपूर्व प्रेम था, चौथे ब्लाक के सभी रहनेवालों को देश तथा भाषा के प्रति बड़ा गहरा प्रेम था और तभी यह चर्चा होती रहती थी कि मातृभाषा में भी वैज्ञानिक साहित्य की रचना का कार्य बड़े वेग से शीघ्र ही प्रारम्भ कर देना चाहिए। दो साल पश्चात् वे भौतिक विज्ञान में डिमांस्ट्रेटर हो गए और इस प्रकार उन्हें स्व० रामदास गौड़ के सहकारी बनने का सुअवसर प्राप्त हुआ। स्व० गौड़ जी को भी मातृभाषा से अगाध प्रेम था और शीघ्र ही १९१३ में इन दोनों ने स्व० डा० गंगानाथ झा तथा मौलवी हमीदुद्दीन की सहायता से विज्ञान परिषद् की स्थापना कर दी।

परिषद में भार्गव जी मंत्री, प्रधान मंत्री, उप सभापति तथा सभापति के पद पर समय समय पर काम करते रहे। मुझे भी उनके साथ साथ काम करते रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वे मातृभाषा के सच्चे प्रेमी और उत्साही कार्यकर्त्ता थे। मुझे उनके साथ प्रयाग विश्वविद्यालय में भी काम करने का अवसर मिला था। वे कभी सच्चे और निष्कपट विचारों के प्रकट करने में संकोच न करते थे। उन्हें पार्टीबन्दी का मोह नहीं था। उनके विचार निष्पक्ष, निस्पृह, उदार और न्यायानुकूल होते थे। यही कारण था कि किसी दल विशेष के सदस्य न बन कर स्वतंत्र रूप से कार्य करते रहे। जब भौतिक विज्ञान का पिछला भाग बन रहा था तब मैंने देखा कि बैसाख जेठ की कड़ी धूप में भी ठेकेदारों को काम के लिए प्रोत्साहन देते रहते थे। उन्हीं के इस कठिन परिश्रम का परिणाम था कि जुलाई में युनीवर्सिटी खुलने के पहिले ही सब यथोचित प्रबन्ध हो चुका था। वे बड़ी लगन से काम करते थे और विद्यार्थियों को अपने सद्व्यवहार और सद्भावनाओं से सदैव प्रेरित करके काम में लगाए रहते थे। यही कारण था कि जिन कार्य विभागों का वे अपने विद्यार्थी जीवन में स्वप्न में ही दर्शन किया करते थे, उन्हीं विभागों को खोलकर उनमें यथेष्ट उन्नति उन्होंने कर दिखाई और गवेषणा के कार्य का संचालन करते रहे।

उनकी यह प्रबल इच्छा थी कि विज्ञान परिषद को चिरस्थायी नींव पर खड़ा कर दें। इसीलिए उनको चिन्ता थी कि युनीवर्सिटी के अहाते में ही कोई प्लाट ले कर उस पर परिषद का भवन निर्माण करा दे, खेद है कि प्लाट अब उनके देहावसान के पश्चात मिला है। हम सभी लोगों को चाहिए कि दिवंगत आत्मा की इच्छा को भवन निर्माण करके व्यक्त रूप प्रदान कर दें और परिषद का कार्य सुचारु रूप से चलाते रहें।

कुछ संस्मरण

लेखक—डाक्टर गोरख प्रसाद, गणित विभाग, प्र० वि० वि० तथा उप सभापति, विज्ञान परिषद, प्रयाग

प्रथम भेंट

श्री सालिगराम भार्गव से प्रथम भेंट सन् १९२१ या १९२२ में हुई। मैं उन दिनों काशी विश्वविद्यालय में कुछ ही समय पहले लेकचरर नियुक्त हुआ था और बनारस मैथेमैटिकल सोसायटी ने मुझे और श्री पद्माकर द्विवेदी को श्री सुधाकर द्विवेदी लिखित 'समीकरण-मीमांसा' नामक पुस्तक के संपादन का कार्य सौंपा था। यह पुस्तक विज्ञान परिषद् से छपने वाली थी। परन्तु विज्ञान परिषद् के पदाधिकारियों और श्री पद्माकर द्विवेदी में कुछ ऐसा मतभेद पड़ गया था कि छपाई रुकी पड़ी थी। बात यह थी कि विज्ञान परिषद् का निश्चय था कि 'का, की, में, से' आदि विभक्तियाँ शब्दों के साथ ही मिला कर छापी जायँ, परन्तु श्री सुधाकर द्विवेदी जी के सुपुत्र श्री पद्माकर द्विवेदी का हठ था कि विभक्तियाँ पृथक छपें। इसी गुत्थी को सुलझाने के लिये श्री सालिगराम जी और श्री गोपाल स्वरूप जी भार्गव काशी पहुँचे थे। पद्माकर जी को समझाने की बहुत चेष्टा की गयी, परंतु वे इस बात पर अड़े रहे कि विभक्तियाँ अलग ही रहें, क्योंकि उनके पिता जी उनको अलग लिखते थे और अलग ही छपाते थे। उनका विश्वास था कि विभक्तियों को शब्दों के साथ छापने से उनके पूज्य पिता जी की आत्मा को कष्ट होगा। इसलिये अंत में विज्ञान-परिषद को ही झुकना पड़ा। श्री पद्माकर द्विवेदी की चेष्टा से सरकार ने समीकरण-मीमांसा की छपाई के लिये १२०० रुपये की सहायता दी थी, और फिर पुस्तक पद्माकर जी के पिता की थी। इन दोनों कारणों से उनको प्रसन्न रखना आवश्यक था। इस विभक्तियों के झगड़े में इतना समय नष्ट हुआ कि मैं समीकरण-मीमांसा के संपादक होने के यश का भागी न हो सका, क्योंकि सितम्बर १९२३ में मैं ग्रेट ब्रिटेन चला गया।

पूर्वोक्त प्रसंग में जब सालिगराम जी और गोपाल स्वरूप जी बनारस आये थे तब उन लोगों ने ज़ोर दिया कि मैं स्वयं विज्ञान के लिये कुछ लेख लिखूँ। गणित पर लेख लिखने की मेरी इच्छा नहीं हुई, परन्तु मुझे फोटोग्राफी में उन दिनों विशेष रुचि थी। मैंने कहा कि मैं फोटोग्राफी पर लेख लिखने की चेष्टा कर सकता हूँ, परंतु पारिभाषिक शब्दों को हिंदी में विशेष कठिनाई होगी। तब श्री गोपाल स्वरूप जी ने मुझे आश्वासन दिया कि आवश्यक शब्दों की हिंदी वे स्वयं बना देंगे। जहाँ तक मुझे स्मरण है उन दिनों गोपाल स्वरूप जी विज्ञान के संपादक थे और सालिगराम जी विज्ञान परिषद् के मंत्री।

कुछ ही दिनों बाद मैंने गोपाल स्वरूप जी को पारिभाषिक शब्दों की एक सूची भेजी जिसके शब्दों का हिंदी रूपांतर शीघ्र ही मेरे पास पहुँचा। तब मैंने बड़ी मिहनत से और अनेक बार शब्द-कोशों का प्रयोग कर 'डेवेलपमेंट' पर एक लेख भेजा, जो विज्ञान में छपा।

इस प्रकार श्री सालिगराम भार्गव के विशेष आग्रह से और श्री गोपाल स्वरूप भार्गव की सहायता से मैं हिंदी का लेखक बन गया।

इलाहाबाद में

विदेश से लौटने पर मेरी नियुक्ति इलाहाबाद विश्व-विद्यालय में १९२५ में हुई। तब तो श्री सालिगराम जी से बहुधा बातें हुआ करती थीं। एक बार उन्होंने विज्ञान के वार्षिक उत्सव पर हिंदी में व्याख्यान देने के लिये विशेष आग्रह किया। श्री मैकेन्ज़ी (शिक्षा-डाइरेक्टर) सभापति का आसन ग्रहण करने वाले थे। श्री सालिगराम जी को हम लोग सदा भार्गव साहब कहा करते थे और हम सभी नये शिक्षक उनको अत्यंत आदर की दृष्टि से देखते थे। उनका आग्रह हम सब के लिये शिरोधार्य होता था। अतः मैंने लेकचर दिया ही। पीछे कुछ लेख भी दिये। परिणाम यह हुआ कि मैं विज्ञान-परिषद की ओर खिंचता ही गया।

भार्गव साहब ने एक बार मुझसे विज्ञान-परिषद का

मंत्री पद स्वीकार करने को कहा। मुझे इसमें बड़ी हिचक हो रही थी, क्योंकि मैं जानता था कि इसमें समय बहुत लगा करेगा। परन्तु श्री रामदास गौड़ ने जब यह बताया कि मेरे गुरु श्री डाक्टर गनेश प्रसाद सभापति होने जा रहे हैं और वह भी चाहते हैं कि मैं मंत्री हो जाऊँ तो मुझे मंत्री बनना ही पड़ा।

भार्गव साहब को विज्ञान और विज्ञान परिषद से सच्चा प्रेम था। दूसरों के हाथ में कार्य भार सौंप कर स्वयं आराम करना वे जानते ही न थे। सदा कार्य की देख-रेख में लगे रहते थे। हर तरह से अन्य कार्यकर्ताओं की सहायता करते रहते थे। इसलिये मंत्री का मेरा काम बहुत-कुछ हलका हुआ रहता था। डायरेक्टर और इन्स्पेक्टर से मिल कर विज्ञान की ग्राहक-संख्या बढ़वाने का कार्य वे स्वयं करते रहते थे।

श्री रामदास जी गौड़ के देहांत के बाद विज्ञान के संपादन का भार मेरे सिर पर पड़ा। मंत्रित्व दूसरों को सौंपा गया। भार्गव साहब के प्रोत्साहन से मैं लगन से काम करता रहा। एक बार मैंने बताया कि प्रूफ देखने में मेरा बहुत-सा समय निकल जाता है। उन्होंने तुरंत कहा कि मैं वैतनिक प्रूफ रीडर रख लूँ। पैसे की कठिनाई बताने पर उन्होंने कहा कि प्रबन्ध हो जायगा और शीघ्र ही उन्होंने अपने पास से प्रूफ दिखायी का रुपया विज्ञान परिषद में जमा कर दिया। उनके उत्साह को देखते हुये मुझे लज्जा लगी कि उनके पैसे से मैं आराम करूँ और वैतनिक प्रूफ-रीडर से प्रूफ दिखाऊँ। उनका पैसा लौटाना तो अनुचित जान पड़ा, क्योंकि विज्ञान के लिये जो भी मिले सब थोड़ा है। मैंने उनके पैसे को ब्लाक बनवाने में खर्च करने का निश्चय कर लिया और ऐसा ही किया भी।

निःस्वार्थ सेवा

भार्गव साहब की सभी सेवायें पूर्वोक्त दृष्टांत की तरह ही निःस्वार्थ और बिना ढिंढोरा पीटे हुआ करती थीं। बहुत दिनों से उनकी इच्छा थी कि इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में फोटोग्राफी-शिक्षा का प्रबन्ध कर दिया जाय। जब वे यूनिवर्सिटी के पदाधिकारियों को इस बात पर राज़ी न कर सके तो एक दिन उन्होंने मुझसे पूछा कि यदि यहाँ फोटोग्राफी-शिक्षा के लिये क्लास खुले तो मैं अवैतनिक रूप से सहायता दे दिया करूँगा न। उनकी इच्छा को जानते हुये मैंने इसे सहर्ष स्वीकार किया। इसी प्रकार उन्होंने अन्य मित्रों को भी राज़ी किया और अंत में फ़ोटोग्रैफिक असोसियेशन की स्थापना एक दिन हो ही गयी, जिसका मुख्य उद्देश्य यही था कि लड़कों को फोटोग्राफी की शिक्षा दी जाय। प्रारम्भिक व्यय के लिये उन्होंने अपने पास से रुपया दिया। जब डार्क रूमों का अभाव खटकने लगा तो उन्होंने अपने पैसे से भवन बनवा दिया जिसमें चार डार्क रूम, एक हॉल और एक बरामदा था। इस योजना से उनको इतना प्रेम था कि आरम्भ में कुछ वर्षों तक वे प्रत्येक व्याख्यान में उपस्थित रहे। यूनिवर्सिटी में एक्स्ट्रा-म्यूरल लेकचर की योजना बनी, कुछ दिन चली और पीछे ठप हो गयी, जिसका कारण यह था कि बड़े लोग उसमें भाग नहीं लेते थे। न वाइस-चैंसलर, न डीन और न प्रोफेसर उसमें आते थे—स्वयं कभी लेकचर देना हो तो बात दूसरी रहती! परंतु भार्गव साहब की निरंतर उपस्थिति से फोटोग्राफी के व्याख्यानदाताओं और क्रियात्मक-शिक्षकों के उत्साह में कमी न पड़ने पाती। फिर, यह बात भी थी कि फोटोग्राफी अत्यंत उपयोगी है और विद्यार्थी उसे सीखने के लिये स्वयं उत्सुक रहते थे।

भार्गव साहब को फोटोग्राफी-शिक्षण का प्रबन्ध कर देने से ही संतोष नहीं हुआ। वे चाहते थे कि परीक्षाएँ भी हों और उनको मान्यता भी मिले। इसलिये परीक्षाएँ तो आरम्भ से होने लगीं, परंतु वे निरंतर इस चेष्टा में रहे कि परीक्षाएँ यूनिवर्सिटी की ओर से हों और परीक्षार्थियों को सार्टिफिकेट भी वहीं से मिले। कई वर्षों तक वाइस चैंसलर और कार्यकारिणी के सदस्यों को समझाते रहने पर भार्गव साहब सफल हुये। फोटोग्रैफिक ऐसोसियेशन की कुल संपत्ति यूनिवर्सिटी को दे दी गयी और यूनिवर्सिटी की ओर से अब फोटोग्राफी की शिक्षा और परीक्षा होती है।

सरल जीवन

भार्गव साहब बड़ी सादगी से रहते थे। सदा एक प्रकार का वस्त्र पहनते थे। सफेद खद्दर की धोती, खद्दर का ही बंद गले का कोट और जयपुरी साफा छोड़ और कुछ न पहनते थे। जाड़े में भी बाहर से वही कपड़ा दिखाई पड़ता

शेष ६६वें पेज पर

एक पुरातन छात्र की श्रद्धांजलि

लेखक—श्री० एस० के० घोष, एम० एस-सी०, अवसरप्राप्त शिक्षासंचालक, उत्तर प्रदेश।

स्वर्गीय प्रो० सालिगराम जी भार्गव केवल एक प्रभावोत्पादक छात्र ही नहीं थे, प्रत्युत एक आदर्श चरित्र के पुरुष भी थे। उनकी कर्तव्यपरायणता अनुकरणीय थी। किन्तु मुझे जो बात अत्यधिक महत्वपूर्ण ज्ञात हुई वह उनके उच्च नैतिक सिद्धान्त थे जिनके साथ वे कभी समझौता नहीं कर सकते थे। अपने अध्यापन कार्य के प्रारंभ काल में म्योर सेन्ट्रल कालेज में उन्होंने अपने को अपने सहकर्मियों एवं छात्रों के मध्य सर्वप्रिय बना लिया था। प्रातः से सन्ध्या तक वे कभी अध्यवसाय से दूर नहीं भागते थे। एक बार ग्रीष्म की तीक्ष्ण गर्मी में उन्हें एक छात्र द्वारा बर्फ डाले हुए ठंडे पानी का ग्लास दिया गया। छात्रों ने यह निश्चय किया था कि प्रयोग समाप्त हो जाने पर जो बर्फ बचेगी उससे ठंडा किया पानी सब लोग प्रयोगशाला में ही पीएँगे। प्रोफेसर भार्गव ने बर्फ डाले पानी को तुरन्त ही इस कारण अस्वीकार कर दिया कि बर्फ सरकारी वस्तु थी। उनका गंभीर पांडित्य, अध्यापन व्यवसाय के उच्च आदर्शों के प्रति उनकी निस्स्वार्थ अनुरक्ति, सरल जीवन तथा इन सब से परे देश भक्ति का उत्साह ऐसे गुण हैं जो एक ही व्यक्ति में एकत्र होने दुर्लभ ही हैं।

६८वें पेज का शेषांश

था। कोट के भीतर गरम कपड़ा चाहे भले ही पहन लें। अपने ऊपर पैसा व्यय करना उनको ठीक न जँचता था। यहाँ तक कि फाउंटेन-पेन भी न रखते थे। पेन्सिल जेब में बराबर रहती थी। उसी से काम चलाते थे। घड़ी भी जेब-घड़ी थी जो काले तागे में बँधी रहती और तागा गले में पड़ा रहता। कागज की किफायत तो इतनी करते थे कि आये लिफाफों को खोलकर उनके भीतरी पृष्ठ का भी वे उपयोग कर लिया करते थे। अन्य किसी में ऐसी प्रवृत्तियाँ दोष गिनी जातीं: वह मक्खीचूस समझा जाता। परंतु भार्गव साहब में ये गुण माने जाते थे। कारण कि अच्छे कामों में पैसा लगाने के लिये वे सदा तैयार रहते। विज्ञान परिषद् और फोटोग्रैफिक एसोसियेशन की सहायता की बात ऊपर आ ही गयी है, परंतु किसी को ठीक पता न होगा कि किन-किन संस्थाओं को, गरीब विद्यार्थियों को और अन्य गरीबों को वे गुप्त सहायता दिया करते थे।

यूनिवर्सिटी में

यूनिवर्सिटी में वे आदर्श शिक्षक माने जाते थे। जब वे अपने डिपार्टमेंट के अध्यक्ष थे तो अन्य शिक्षक उनसे सभी खुश रहते थे। यूनिवर्सिटी का संचालन कई वाइस-चैंसलरों के हाथ में पारी-पारी से गया और दुर्भाग्यवश यूनिवर्सिटी में पार्टीबंदियाँ भी हुईं, परंतु भार्गव साहब सदा पार्टियों से दूर रहे और सदा सत्य और औचित्य पर ध्यान देकर काम करते थे। यह लेख भार्गव साहब का जीवन-चरित्र नहीं है: इसमें उनके अनेक गुणों का एक लेश मात्र ही आ पाया है, परंतु स्थानाभाव के कारण इतने ही से संतोष करना पड़ेगा। मैंने तो भार्गव साहब को कई बातों में अपना आदर्श मान रक्खा था और उनके दिखाये मार्ग पर चलने की चेष्टा बराबर करता चला आया हूँ।

भौतिक विज्ञान के कुलपति

डा० अजित राम वर्मा, इम्पीरियल केमिकल इण्डस्ट्रीज़, फ़ेलो, लन्दन विश्वविद्यालय

१९३८ की जुलाई में मैंने प्रोफ़ेसर शालिग्राम जी भार्गव के पहली बार दर्शन किये। मैं तभी ही प्रयाग विश्व विद्यालय की B.Sc. में भर्ती हुआ था और वे Physics में हम लोगों को सर्वप्रथम लेक्चर देने आये थे। यह introductory लेक्चर था। मुझे उनका वह लेक्चर भली भांति अभी तक याद है। उन्होंने Vernier scale का महत्व और उसके पढ़ने का तरीक़ा समझाया था। चीज बहुत छोटी है परन्तु physical observations लेने में बुनियादी चीज़ है। उस लेक्चर से उनका दृष्टिकोण स्पष्ट पता चलता है। Fundamentals के समझने पर उनका सदैव ज़ोर रहता था।

उस घटना के बाद तो मेरा उनके साथ, प्रयाग विश्व विद्यालय के भौतिक विभाग में लगभग ९ वर्ष तक सम्पर्क रहा। उन्होंने हमें B.Sc. और M.Sc. में Electricity and magnetism और atomic physics पढ़ाई। उनके लेक्चर काफ़ी रोचक होते थे। उन्हें experi ments (प्रयोग) दिखाने का बहुत शौक था, और discharge in rarefied gases तो उन्होंने हम सब को कई बार दिखाया। सच पूछिये तो वे विशेषतया experimental व्यक्ति थे। वे उन लोगों में से जो यदि किसी विषय को समझते थे तो सचमुच समझते थे और फिर दूसरों को समझा भी सकते थे। वे उन लोगों में से नहीं थे जो किसी बात को बिना समझे ही समझ बैठें कि समझ गये। उनका दिमाग़ हर बातों में सुलझा हुआ था।

प्रयागविश्वविद्यालय के भौतिक विज्ञान विभागकी बागडोर भार्गव साहब के हाथ में काफ़ी दिनों तक रही है और उनकी छाप चारों ओर नज़र आती है। उनका विचार था कि physics के experiments का एक बहुत आवश्यक अंग है workshop practice। जब मैं B.Sc. में था तब उसी साल उन्होंने workshop practice में ट्रेनिंग दिलवाने की व्यवस्था करवाई। मैं भी उसमें भर्ती हुआ और उसका लाभ मुझे अब यहां मालूम हो रहा है। उनके परिश्रम से उसी साल photography में भी एक कोर्स शुरू हुआ था जिसका मैंने भी लाभ उठाया और अभी भी उठा रहा हूँ। इसी प्रकार physics के और भी applied विभागों में उनकी दिलचस्पी बराबर रही है और आज physics के चारों ओर जो और ऐसे विभाग नज़र आ रहे हैं उनमें उनका एक बहुत बड़ा हाथ है।

वे सदैव सादगी से रहने वाले महा पुरुष थे। क्या छोटा क्या बड़ा, हर एक उनके पास सीधे जाकर मिल सकता था और अपनी परेशानी कह सकता था। किसी छात्र को शायद फीस देने की आर्थिक दिक्कत है, किसी लेक्चरर को कुछ समस्याओं में राय चाहिये, किसी चपरासी को घरेलू कार्यों के लिये कुछ मदद चाहिये, सब की दौड़ भार्गव साहब के पास तक थी। भार्गव साहब के लिये Physics Deptt एक बड़ा परिवार था जिसके वे अधि-पति (Head) ही नहीं बल्कि कुलपति थे। हम सब उस कुलपति को श्रद्धांजलि भेंट करते हैं।

———

वे क्या थे ?

लेखक—श्री रघुनाथ दास जी भार्गव, मथुरा

अपने आप को भूल कर अपने पने के संकीर्ण भाव को निकाल कर सब को अपने समान देखना तथा सब के दुखों को अपना समझना महापुरुष का प्रथम लक्षण है।

पूज्य चाचा जी अपनी सुख-सुविधाओं के प्रति उदासीन थे, और दूसरों के लिए तो उन्होंने जितना किया उतना कदाचित् बहुत ही कम लोग कर पाते हैं। उनका प्रेम उदार, व्यापक, विश्वजनीन तथा 'स्व' की संकुचित सीमा से उठा हुआ था! उनके जीवन का मूल मंत्र था - कर्तव्य और सेवा।' उनकी दानशीलता एवं उदारता ने कितने ही कुटुम्बों को विनाश के गर्त्त में जाने से बचा लिया। कितने ही घरों में दोनों समय चूल्हे तथा दीपक उनके दम से जलते थे। कितने ही छात्र उन की सहायता से विद्याध्ययन करते और कितने ही निराश्रित उनका आश्रय पा कर कालयापन करते थे। वे तो 'नेकी कर कुँए में डाल' चरितार्थ करने वाले महापुरुष थे! उनकी सहायता तथा दान करने की रीतियाँ भी इतनी गुप्त होती थीं कि कभी कभी सहायता पानेवालों तक को यह पता नहीं चल पाता था। सच ही गुप्त दान महादान होता है। देश समाज, और जाति पर जब जब संकट आए, उन्होंने प्राणपण से सहायता की। दूसरों के दुखों से उत्पन्न उनके हृदय की अन्तर्वेदना की थाह कठिनाई से मिलती थी। दूसरों का जरा सा भी कष्ट उन्हें असह्य था, और अपना बड़े से बड़ा नगण्य। वे छोटे-बड़े सब को महत्व देते थे। वे गुणग्राहक तथा सच्चे पारखी थे। सब को श्रेय देते थे। किसी संस्कृत कवि का यह कथन उनके विषय में ठीक उतरता है :—

परगुण परमाणून्पर्वतीकृत्यानित्यं निज हृदि
विलसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ॥

वे तो वसुधा को ही कुटुम्ब मानते थे। ऐसी दिव्यात्माएँ कम ही जन्म लेती हैं।

उनमें नवीनता और प्राचीनता का अद्भुत सम्मिश्रण था। भौतिक-विज्ञान के आचार्य होते हुए भी वे भारतीय संस्कृति तथा धर्म के प्रति अपूर्व निष्ठा रखते थे। पाश्चात्य देशों के लौकिक अभ्युदय, संगठन शक्ति, लगन, परिश्रम, व्यवस्था के प्रशंसक होते हुए भी वे पूर्ण भारतीय थे। उन्होंने जीवन को स्वतन्त्र दृष्टि कोण से परखा था। उनकी वेश भूषा, रहन-सहन, पोशाक सभी भारतीय थे। वे सुधारवादी होते हुए भी क्रांतिकारी नहीं थे। संयम, नियन्त्रण, अनुशासन, और व्यवस्था पर बल देते थे। प्रत्येक को अपना कर्तव्य पालन करना चाहिए, और जीवन का एक क्षण भी व्यर्थ नहीं बिताना चाहिए। यही वे बार बार कहते थे।

मित्रता करने और निबाहने में वे बड़े कुशल थे। उनकी मित्र-मंडली बहुत ही व्यापक थी, जिसमें अनेक वर्गों तथा विभिन्न श्रेणियों, अवस्थाओं, रुचियों के व्यक्ति थे। 'सादा-जीवन और उच्च विचार' उनके जीवन का महान उद्देश्य था, और वे स्वयं ही उसकी सजीव मूर्ति थे। अपनी असाधारण बुद्धि, सूझ-बूझ तथा दूरदर्शिता से वे कठिन से कठिन गुत्थियों को सुलझा देते थे, और झगड़ों का निपटारा करते थे। उनकी सी आत्मीयता, सम्वेदना, सहानुभूति, सौहार्द, सौजन्य और उदारता अब कहाँ मिलेगी! वे आदर्श अध्यापक कुशल नेता, स्नेही मित्र, सफल प्रबंधक तथा संगठनकर्ता, आदर्श समाज सेवी, प्रसिद्ध विज्ञान-सेवी, अद्वितीय हिंदी प्रेमी, उच्च विचारक, परोपकारी, दानी, और भी न जाने क्या-क्या थे, किंतु निस्वार्थता एवं परदुःखकातरता से उनके व्यक्तित्व का जो समन्वित चित्र मस्तिष्क में अंकित होता है वह इतना पूर्ण, विविध, और व्यापक है कि यह निश्चित रूप से कह सकना मेरे लिए कठिन हो रहा है कि 'वे वास्तव में क्या थे?' यह प्रश्न: प्रश्न ही बना रहकर गूँज उठता है, और उसकी प्रतिध्वनि लौट कर टकराती है।

कर्मवीर प्रोफेसर सालिग रामजी भार्गव

रायबहादुर मिट्ठन लाल भार्गव, एडवोकेट, अजमेर

१—प्रोफेसर साहब (Simple living and High thinking) सादा जीवन उच्च विचार वाले थे। यह इस बात से प्रत्यक्ष है कि वे इलाहाबाद विश्वविद्यालय के फिजिक्स विभाग के सर्वोच्च अधिकारी थे परन्तु सदा यूनिवर्सिटी में सफेद साफा, खादी का लम्बा कोट और खादी का पाजामा पहने रहते थे।

[illegible] रुपये पैसे या पद में छोटे हों या [illegible] नम्रता पूर्वक व्यवहार करते थे। [illegible] जानते ही न थे। सभी श्रेणी के [illegible] बहुत प्रिय थे और सभी जगह [illegible] जाते थे।

[illegible] द्यार्थी किसी भी प्रान्त के किसी भी [illegible] शिक्षा ग्रहण करने के लिए आते [illegible] उनकी पूरी तरह देख भाल करते [illegible] आवश्यकता होती थी, वे मदद करने

[illegible] हब छोटे पद से काफी ऊँचे पद तक [illegible], परन्तु आपको घमंड छू न गया था। [illegible] साहब में इन्तजाम करने की योग्यता [illegible] र्घकाल तक इलाहाबाद विश्वविद्यालय [illegible] के कार्यालय का भली प्रकार से कार्य

[illegible] सर साहब के चरणों में श्रद्धांजलि पेश [illegible] हैं कि वह दिवंगत आत्मा को शांति [illegible] तत परिवार को धैर्य धारण करने की

प्रो० सालिग्राम भार्गव के इन्तकाल पर एक नज्म

श्री० 'सरवर'

नहीं है जहाँ में किसी को करार
सबक दे रहे हैं ये लैलोनहार।
गमो रंज से दिल को फुरसत नहीं
किसी को जमाने में राहत नहीं।
श्री भार्गव प्रोफेसर थे यहाँ
थे अपने मुहकमे के रूहे रवाँ।
न थी व मे हस्ती में जिनकी मिसाल
गुजरने से उनके न क्यों हों मलाल।
अचानक किया मौत ने उन पै वार
इसी से हर एक का है दिल बे करार।
बड़े नेक तीनत बड़े नेकनाम
गरीबों का करते थे दिल से वह काम।
मुसीबत से सब को बचाते रहे
बुरे वक्त पर काम आते रहे।
जुदाई से अब उनकी रोते हैं सब
गमो रंज में जान खोते हैं सब।
रहे टीचरों में वह आली विकार
कहाँ लोग ऐसे हैं अब वजादार।
महीना सितम्बर का आया नरास
खुदा ने बुलाया उन्हें अपने पास।
बहुत आज 'सरवर' के दिल को है गम
उठाये से उठता नहीं है कलम।

स्वर्गीय प्रोफेसर साहब

लेखक—श्री कृष्ण सहाय, अखिल भारतीय भार्गव सभा, प्रयाग

प्रोफेसर साहब का जन्म ११ नवम्बर १८८८ को ठीक भार्गव सभा के जन्म के एक मास पश्चात् खोरी ग्राम में अपने नाना श्री भोलानाथ जी के घर हुआ।

मेरा प्रोफेसर साहब से पहले-पहल परिचय मई १९३२ में मथुरा में हुआ। राय बहादुर पं० राधारमण ने मुझे बुलाकर कहा कि 'प्रोफेसर, यही नये सभा क्लर्क हैं।' पहले तो मैं उनको देखकर चौंका क्योंकि मैंने उनकी जैसी वेश-भूषा में किसी यूनीवर्सिटी के प्रोफेसर को नहीं देखा था। फिर तो १९३२ में जब वह मंत्री भार्गव सभा हुये तो मुझे उनके पास आना ही पड़ा। मेरा उनका पूरा सम्पर्क ३ अप्रैल १९३५ से आरम्भ हुआ जब से मैं उनके साथ उनके नये बंगले में आकर रहा। उसके बाद से उन्होंने मुझे अपना होकर माना और मरते दम तक निभाया।

प्रोफेसर साहब कहा करते थे कि ७ वर्ष की अवस्था तक तो उनका ध्यान पढ़ाई की तरफ था ही नहीं और लोगों को सन्देह होने लगा था कि जाने पढ़ेगा भी या नहीं। भाग्य ने जोर मारा। बस क्या था उन्होंने पढ़ना आरम्भ किया और पढ़ाई के ही हो गये।

प्रोफेसर साहब का जीवन सरल था। बनावट आप से छू तक नहीं गई थी। आप बाहर व भीतर से एक से थे। यह एक अति दुर्लभ गुण है। इसी कारण उनका कोई शत्रु था ही नहीं। उनका बरताव सब से एक सा था। प्रोफेसर साहब को यह कभी ख्याल नहीं आता था कि वह क्या खाते और क्या पहनते हैं जब कि उन्हें हर प्रकार के साधन सुलभ थे।

प्रोफेसर साहब को दूसरों का सत्कार करने में बड़ा आनन्द आता था। दूसरों को भोजन कराने में तो उनको अपार सुख मिलता था। जब कोई बाहर से आता तो पहला यह सवाल होता कि आप खाना कब खायेंगे?

प्रोफेसर साहब किसी को दुखी नहीं देख सकते थे। वह जब किसी का हाथ एक दफा पकड़ लेते थे तो फिर कुछ भी हो, छोड़ना नहीं जानते थे। उनके इस गुण से अनेकों व्यक्तियों के बेड़े पार हो गये।

प्रोफेसर साहब कभी किसी का अविश्वास नहीं करते थे। उनकी तालियाँ यों ही दराज में पड़ी रहती थीं। उनके बाहर जाने पर मैं ही बहुधा उनका हिसाब रखता था; लौटने पर उन्होंने कभी यह पर्वाह नहीं की कि पीछे से क्या हुआ। वह हर किसी को अपना जैसा सीधा सच्चा मानते थे। धोका दिये जाने पर यही कहते कि मेरा क्या बिगाड़ा, अपनी आकबत बिगाड़ी। और फिर वही हाल उनका रहता था।

प्रोफेसर साहब कभी किसी का दिल नहीं दुखाते थे। यदि वह कुछ कहते तो डाट की भावना से नहीं। मैं जब कभी सभा के काम से बाहर गया तो लौट कर हाल बताने पर यही कहते—बड़ा अच्छा हुआ। भले बुरे की जिम्मेदारी सदैव उन्होंने अपने ऊपर ली। यह कभी नहीं कहा कि मुंशी जी (इसी नाम से मुझे पुकारते थे) ने ऐसा किया, मैं क्या जानूँ।

मैंने प्रोफेसर साहब को कभी क्रोधित होते और अपमानित शब्द कहते नहीं सुना। क्रोध और अपमानित शब्दों का उत्तर मुसकान से देते देखा। नौकरों से काम बिगड़ने पर यही कहते सुना, "भय्या तूने ऐसा क्यों किया"। मारने और गाली देने की बात ही क्या।

उनका कहना था, "काम बिगड़ने पर मत कहो कि हम तो ऐसा ही जानते थे। पहिले ही बताओ"। वह हर छोटे बड़े की बात सुन लेते थे। वह बात में सार देखते थे, छोटा बड़ा मुँह नहीं। वह या तो स्वयं मान लेते थे या मना देते थे।

शेष ७४ पेज पर

स्वर्गीय प्रोफेसर सालिगराम जी भार्गव

लेखक—श्री रामजी दास भार्गव बी० ए०, रिटायर्ड सुपरिटेंडेंट, उत्तर प्रदेश पुलिस हेड क्वार्टर

आप अलवर शहर के रहने वाले थे और लड़कपन का जमाना उसी शहर में व्यतीत हुआ। आपके पिता श्री लच्छी राम जी भार्गव जिनको आमतौर से "मुन्शीजी" के नाम से सब लोग याद करते थे अलवर राज के मुलाजिम थे और "शब्द मुन्शी" एक तरह से आपका खान्दानी "अल्ल" हो गया था क्योंकि उनके पुत्र श्री राम जीवन लाल जी भी जो अभी मौजूद हैं उसी सर नाम से याद किये जाते हैं। श्री लच्छी रामजीकी स्त्री का थोड़े ही उम्र में स्वर्गवास हो गया। उस वक्त आपके दो पुत्र मौजूद थे। इस लिये दूसरी शादी करने से इनकार करते रहे। मगर एक ज्योतिषी ने आप से कह दिया था कि आपको दूसरी शादी करनी पड़ेगी जिससे एक हीरा-पुत्र पैदा होगा। चुनांचें ऐसा ही हुआ। और पं० सालिगराम जी इस तरह जगत में आये।

आपके पिता के और सब से बड़े भाई के स्वर्गवास हो जाने पर आपकी शिक्षा दूसरे बड़े भाई श्री रामजीवन लाल जी की निगरानी में हुई और एम० एस-सी० पास करने के बाद आपने सरकारी नौकरी स्वीकार कर ली और म्योर सेंट्रल कालेज में नियुक्त हुये।

जब इलाहाबादयूनिवर्सिटी ने मौजूदा चोला ग्रहण किया तो आपने यूनिवर्सिटी की नौकरी स्वीकार करली और लगभग ३७ साल सरकारी और यूनिवर्सिटी की नौकरी करने के बाद आप नौकरी से पृथक हो गये।

आपका दृढ़ विश्वास था कि देश की उन्नति के लिये यह बहुत जरूरी है कि विज्ञान की नई-नई खोजों को जनता के समझने के लिये देश की सरल भाषाओं में प्रकाशित किया जावे और यही विचार श्री रामदास जी गौड़ का भी था। इस तरह विज्ञान परिषद् Vernacular Scientific Society) का जन्म हुआ जो अभी तक जारी है और जिसने विज्ञान पत्रिका निकाल कर और देशी जबानों में वैज्ञानिक विषयों पर किताबें छपवा कर देश की बहुत कुछ सेवा की है और कर रही है।

पं० सालिगराम जी के साथ की वजह से मैं भी इस परिषद् का २-३ साल तक मेम्बर (fellow) रहा था।

पं० सालिगराम जी की सहायता से एक शीशी बनाने का कारखाना भी जारी हुआ था जो अभी तक काम कर रहा है जिसके मालिक इस वक्त श्री कामेश्वर प्रसाद जी भार्गव हैं।

परमेश्वर आपकी आत्मा को बैकुण्ठ प्राप्त करे।

७३वें पेज का शेषांश

प्रोफेसर साहब का विचार था कि काम जिन्दगी में चाहे थोड़ा ही हो,पर ठोस हो। उनका विचार था कि सुधार घर में, फिर जाति में और फिर देश में हो सकता है। उन्होंने अपने सम्बन्धियों का जो कुछ किया उसका यहाँ उल्लेख करना आवश्यक नहीं। सब लोग खुशहाल हैं।

आप हिन्दी मासिक पत्रिका 'विज्ञान' के जन्मदाताओं में से थे और विज्ञान परिषद् की कार्यवाही में बड़ी दिलचस्पी से भाग लेते थे और उसके एक सदस्य भी थे।

वैसे तो साधारण वस्तु के छिन जाने पर भी दुःख होता है। फिर इतने बड़े रत्न के खो जाने का किसे और क्यों दुःख न हो। प्रोफेसर साहब ने अपने जीवन में संत दुर्लभ आचरण किये। उनकी आत्मा को सच्ची शान्ति तभी मिलेगी जब उनके अनुयायी उनके पद चिन्हों पर चलें।

अमर पद-चिह्न

सुश्री० ललिता देवी भार्गव, (पुत्री, प्रो० सालिगराम जी भार्गव)

जितने भी महापुरुष इस मरु-भूमितुल्य संसार में अवतीर्ण होते हैं, वे सब के लिए अमिट पद-चिह्न छोड़ जाते हैं, जिनका अनुकरण कर अन्य जन अपनी जीवन-यात्रा सानन्द पूरी कर लेते हैं। पूज्य पिता जी भी हम सब के लिये अमर 'पद-चिन्ह' छोड़ गए हैं! इन पद-चिन्हों पर यदि यात्रा को जाय, तो देश और समाज बहुत कुछ उन्नति कर सकता है।

आज का युग तो आत्म-विज्ञापन का है। इस युग में लोग काम तो कम करते हैं, पर डींग बहुत मारते हैं। पूज्य पिता जी ठोस काम करने वाले थे! वे पृष्ठ भूमि में ही रह कर काम करते थे। पूरी सच्चाई और ईमानदारी के साथ। धन और यश दोनों से दूर रहते थे। वे दूसरों को श्रेय देते थे, और किसी काम के आगे बढ़ने पर उसे दूसरों के हाथ सौंप देते थे। वे पदलोलुप न थे। इतने निस्वार्थभाव से काम करने वाले विरले ही होते हैं। वे तन-मन-धन सब कुछ निछावर कर सकते थे।

प्रायः यह देखने में आया है कि लोग प्रतिज्ञा तो कर बैठते हैं, पर उसे पूरी नहीं करते हैं। कहते कुछ हैं, करते कुछ हैं। मन में कुछ है, होंठ पर कुछ। पूज्य पिता जी अपनी बात के धनी थे, आदर्श के पक्के, सिद्धान्त के दृढ़। जीवन में वे कभी नहीं डगमगाए, कभी हिम्मत नहीं हारी, कभी किसी के सामने सर नीचा नहीं किया, कभी किसी की जान में हानि नहीं की। वे अन्याय और असत्य के साथ किसी भी दशा में समझौता करने को तैयार न थे। वे स्पष्ट वक्ता थे और थे निर्भीक। भेदभाव तथा पक्षपात, संकीर्णता, संकुचित जातीयता की मात्रा उनमें न थी। आज बहुत ही कमलोगों में ये गुण हैं। प्रायः लोग 'अवसरवादी, हो गए हैं। खुशामद और जीहजूरी करना ही उन का आदर्श है। उन्हें निन्नानवे के फेर में पड़ कर उचित-अनुचित का ध्यान नहीं रहता। यदि पूज्य पिता जी के मार्ग का अनुसरण किया जाय तो देश के नव युवक बहुत कुछ कर सकते हैं। उनमें नवयुवकों का सा उत्साह था, लगन थी। निराशावाद को वे पास नहीं फटकने देते थे। समय का ध्यान उनको बहुत रहता था। सदा ही कुछ न कुछ करते ही रहते थे। दूसरों की सुख-सुविधा का उनको सदा ध्यान रहता था। उनका नियमित समय पर सब काम होता था। सभी बातों के लिए वे समय निकालते थे। उनमें अपार साहिष्णुता थी। उनकी उदारता, दानशीलता में संकीर्णता एवं क्षुद्रता नहीं थी। उनका नवनीत सा कोमल, भावुक, एवं संवेदन-शील हृदय दूसरों के दुःख से पिघल जाता था। वे अपनी उदार और व्यापक सहानुभूति के कारण बहुत ही लोकप्रिय थे, और सब के आदर और श्रद्धा के पात्र हो गए। विषम परिस्थितियों का हँसते हुये सामना करते थे। उलझनों को सुलझाने तथा ग्रन्थियों को दूर करने में उनकी तीव्र मेधा तथा दूरदर्शिता बहुत काम आती थी। छात्रों के साथ उनका सम्बन्ध बिलकुल घर वालों के ही सदृश था। विरोधियों के कटु से कटु वाक्य एवं तीव्र से तीव्र आलोचनाएँ उन्हें विचलित नहीं कर पाती थीं। उनमें इतनी इच्छा-शक्ति एवं आत्म-विश्वास था कि जिस बात को वे ठीक समझते थे उससे पीछे हटना उनके लिए असम्भव था। उनके लिए कर्त्तव्य और प्रेम पर्याय थे। उन्होंने अपनी आवश्यकताएँ बहुत कम कर रखी थीं। अपना सब काम अपने हाथ से करते थे। उन्होंने कदाचित् ही किसी से अपने लिए कुछ करने को कहा हो। उनकी सदा की यही चिंता रही कि उनके कारण किसी को कष्ट न हो। वे जीवन-पर्यन्त अपने सिद्धान्तों और आदर्शों को पूर्णता एवं दृढ़ता के साथ निबाहते रहे, और इसी में शरीर उनका जवाब दे रहा था; बृद्धावस्था ने उनके रुग्ण-दुर्बल शरीर पर अपनी गहरी छाप लगा दी थी, पर वे हार, मान कर चुपचाप बैठने वाले नहीं थे। वे

शेष ७६ वें पेज पर

स्वर्गीय भार्गवजी

लेखक—श्री पुरुषोत्तम मजुमदार, भौतिक विज्ञान विभाग, प्र० वि० वि० (कर्मचारी गण की ओर से)

हमारे पूज्य श्री सालिगराम भार्गव के आकस्मिक निधन का समाचार हमारे लिए वज्रपात की तरह था और उसने हमें संताप में डाल दिया। हमको उनके अस्वस्थ होने की कोई खबर न मिली थी जिससे यह समाचार और भी क्षोभकर हो गया।

भार्गव साहब के परलोकवास ने उन सब पर विषाद की छाया डाल दी है जो उनके संसर्ग में आये। उनकी सहज सहानुभूति ने सबको अपना स्वजन बना लिया था, और शायद कम लोगों को इतने सच्चे मित्र और सराहने वाले मिलते होंगे जितने उन्हें मिले।

हमारा विश्वविद्यालय भार्गवजी का बहुत कृतज्ञ है क्योंकि वे इसमें स्वाभाविक अनुराग लेते थे और सदा इसकी और विद्यार्थियों की भलाई में व्यस्त रहते थे। उनमें अदम्य साहस और शक्ति थी, और जो काम उनके सुपुर्द किया जाय उसके पूरा करने में किसी बात को हटा नहीं रखते थे।

जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है मैं भार्गव जी का सदा आदर करता रहूँगा—वे मुझे अपने बच्चे की तरह स्नेह करते थे। वे प्रायः प्रति वर्ष ग्रीष्मावकाश में अजमेर जाते थे और उनके बार उन्होंने मेरे स्वास्थ्य की उन्नति एवं जलवायु परिवर्तन के लिए अपने साथ चलने का आग्रह किया। एक यही मिसाल यह दिखाने को पर्याप्त है कि वे उन लोगों के प्रति जो उनके नीचे काम करते थे कितने दयालु थे।

भार्गव साहब की महानता, निस्पृहता और हृदय की विशालता उनके अपने घरेलू कर्मचारियों के प्रति व्यवहार से भी प्रत्यक्ष हैं। मुझे स्वयं मालूम है कि जब वे अपने बंगला का निर्माण कर रहे थे तो उन्होंने अपने नौकरों के लिये भी पक्के बिजली और पानी से सज्जित कमरे और बरामदे बनवाये तथा साथ में खाद्य पदार्थ रखने के लिये आल्मारियाँ और रसोई के लिए उपयुक्त स्थान का प्रबन्ध।

उन्होंने विश्वविद्यालय में फोटोग्राफी विभाग के तथा ऐक्सरे विभाग के दो कमरों के निर्माण के लिए धन दिया। निधन के पूर्व उनकी आयु कुल ६४ वर्ष की थी, और यदि वे हम लोगों के मध्य कुछ और जीवित रहते क्योंकि उनका स्वास्थ्य सामान्यतः अच्छा रहता था—तो वे लोकहित के लिए और भलाई के कार्य करते किन्तु यह दैव इच्छा न थी।

हमारी प्रार्थना है कि उनकी आत्मा को शान्ति-प्रदान हो और उनका आदर्श हमारे देशवासियों को उत्तरोत्तर प्रोत्साहन देता रहे।

मेरे मित्र और सहकारी श्री शिवशङ्कर लाल श्रीवास्तव इन विचारों और भावनाओं में अपना संयोजन दे रहे हैं।

७५वें पेज का शेषांश

अजेय थे। वे सदा तरुण रहे, और तरुणों को भी लज्जित करनेवाले तरुण। दूसरों के लिए अपने को मिटाना ही उन का ध्येय था। शरीर और धन की सार्थकता वे दूसरों की सेवा करने में ही समझते थे। दीपक की बत्ती स्वयं जलकर ही संसार को प्रकाशित करती है, पुष्प स्वयं अपने को नष्ट कर संसार को सुरभि प्रदान करता हैं, कर्पूर एवं धूप स्वयं अपनी आहुति देकर अपने सौरभ का विस्तार करते हैं, और ठीक इसी प्रकार 'आत्मोत्सर्ग' में उनका जीवन समाप्त हुआ।

हम सब इस संसार रूपी अतिथिशाला में यात्री ही के समान हैं। पूज्य पिता जी तो इस 'अतिथिशाला' का परित्याग कर 'महाप्रस्थान' कर चुके, और उनके द्वारा छोड़े हुए अमर पद-चिह्न उज्ज्वल नक्षत्रों और प्रकाश-स्तम्भों की भाँति प्रकाश प्रदान करते रहेंगे और हमारे अश्रु उन्हें आजीवन अधिक उज्ज्वल और अलोकमय बनाते रहेंगे।

गरायमान्य व्यक्तियों द्वारा संवेदना-प्रकाश

[विज्ञान परिषद् तथा स्वर्गीय प्रो० सालिगराम जी भार्गव के परिवार के सदस्यों के नाम भेजे गए संवेदना-प्रकाश के पत्रों के उद्धरण —सम्पादक]

डा० ताराचंद

भारतीय राजदूत, राजदूतावास, तेहरान (ईरान)

अपने पुराने मित्र प्रोफेसर सालिगराम भार्गव की मृत्यु का संवाद सुनकर मैं अत्यंत शोकातुर हुआ।

जब मैं पिछली बार अप्रैल में उनसे मिला था तो उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा था किन्तु दैव की गति अटल है। मुझे तनिक भी आशा नहीं थी कि उनका अंतकाल इतना समीप है। इस अवसर पर मैं हार्दिक संवेदना प्रेषित करता हूँ।

डा० मेघनाथ साहा

एफ० आर० एस०, सदस्य, लोकसभा, दिल्ली, भूतपूर्व अध्यक्ष, भौतिक विज्ञान विभाग, प्र० वि० वि०

प्रो० सालिगराम भार्गव से मेरा १४ वर्षों तक प्रयाग विश्वविद्यालय के भौतिक विज्ञान विभाग में साथ रहा, अतएव मैं उनकी स्मृति में अवश्य कुछ लिखने का इच्छुक हूँ। परन्तु संस्मरण लिखने के लिए मुझे कुछ समय चाहिए।

डा० के० बनर्जी

प्रधानाचार्य, भौतिक विज्ञान विभाग, प्र० वि० वि०

प्रयाग विश्वविद्यालय के भौतिक विज्ञान विभाग के अध्यापक, कर्मचारी तथा छात्रगण प्रो० सालिगराम जी की मृत्यु पर अपनी हार्दिक संवेदना प्रकाशित करते हैं। भार्गव जी का इस विभाग से ३७ वर्षों तक घनिष्ट संबंध था। वे इसकी अनेक रूप से उन्नति के उत्तरदायी थे।

डा० ए० बी० भाटिया

भौतिक विज्ञान विभाग, नेशनल रिसर्च कौंसिल, ओटावा, कनाडा

प्रो० सालिगराम जी भार्गव की मृत्यु का दुखद् संवाद बड़ा मर्मान्तक है। मैं उनके सम्बन्ध में कुछ शोक प्रकाश की पंक्तियाँ लिखने का इच्छुक हूँ। मुझे पन्द्रह वर्ष पूर्व एक छात्र की भाँति उनके सम्पर्क में आने का अवसर मिला था। उनके प्रति हमारी आदर भावना असीम थी।

भारत में विज्ञान की प्रगति के सम्बन्ध में उनके प्रचुर योगदान के सम्बन्ध में अनेक लोगों ने लिखा होगा किन्तु मेरे विचार में उनका सबसे अधिक योगदान उदीयमान विज्ञान-साधकों के सम्मुख उदाहरण उपस्थित करना था। वे अत्यधिक स्वार्थ त्यागी, प्रतिभाशाली तथा प्रभावोत्पादक शिक्षक थे। उनका हृदय अत्यंत दयार्द्र था। वे सबको सहायता प्रदान करने के लिए सदा ही इच्छुक रहते थे जिनको कुछ भी सहायता की आवश्यकता हो।

डा० रामधर मिश्र

गणित विभाग, लखनऊ यूनिवर्सिटी

आपके ११ सितम्बर के पत्र से श्री भार्गव जी के देहावसान का दुःखद समाचार मिला। 'विज्ञान' का एक विशेषांक निकालने के निश्चय के लिए आपको बधाई; इतना तो कम से कम हमें करना ही चहिए।

श्री पद्मपति सिंहानियां

कमला टावर, कानपुर

पूज्य सालिगराम जी भार्गव के निधन का समाचार पाकर हृदय अत्यन्त क्षोभ से भर गया। मिथ्या संसार से मनुष्य की पंच भौतिक काया का अन्त होना ही सत्य है।

ईश्वर हमें इस क्षोभ वहन के लिये शक्ति, दुखी परिवार को धैर्य एवं दिवंगत आत्मा को चिर शान्ति प्रदान करे।

व्यावहारिक भौतिक विज्ञानशाला भवन के शिलान्यास के अवसर पर प्रधान मंत्री श्री० जवाहरलाल नेहरू, डा० भट्टाचार्य वाइसचान्सलर तथा श्री० पद्मपत सिंहानिया के साथ प्रोफेसर सालिगराम जी भार्गव

डा० के० एन० माथुर

डी० एस-सी०, एफ० इस्टि० पी०, उप संचालक, राष्ट्रीय अनुसंधानशाला, दिल्ली

मैं अपने श्रद्धेय प्रोफेसर साहब की मृत्यु का संवाद सुनकर अवाक् रह गया। उनकी बीमारी की कोई सूचना नहीं थी। अतएव मृत्यु के समाचार से बड़ा ही शोक हुआ। मेरी हार्दिक संवेदना स्वीकार करें।"

श्री धर्मनाथ प्रसाद कोहली

डी० आई० जी०, पुलिस, उत्तर प्रदेश

प्रो० सालिगराम भार्गव के स्वर्गवास को जानकर अत्यन्त दुःख हुआ। वे मुझ पर विशेष कृपा रखते थे और अक्सर उनसे मिलने का सौभाग्य मुझे प्राप्त होता रहता था। मैं उनसे जुलाई के अन्तिम सप्ताह में मिला था और मुझे यह आभास भी न हो पाया था कि उनका अन्त इतना समीप है। वे सदैव ही दूसरों की सहायता करने में प्रस्तुत रहते थे और उनकी एक महान आत्मा थी जो हर क्षेत्र में अपनी छाप डाल देती थी। मुझे अब भी वह समय स्मरण है जब मैं २८ वर्ष पूर्व यूनिवर्सिटी में गया था और बी० एस-सी० में उनका छात्र था। छात्रों के साथ उनका व्यवहार केवल अध्यापक का नहीं होता था वरन उससे कहीं ऊँचा और आत्मीयता से भरा होता था। उनके इस लोक से जाने का हम सबको महान् दुःख है।

डा० विश्वेश्वर प्रसाद

३८ प्रोवीन रोड दिल्ली,

दुःखद समाचार मिला। ईश्वर की इच्छा! ऐसा तो स्वप्न में भी कभी ध्यान में न आता था कि प्रोफेसर साहब इतनी जल्दी हम सब से नाता तोड़ कर चल देंगे। पर भगवान को उनकी वहां अधिक आवश्यकता थी, इसी लिए उसने उनको हमारे बीच से उठा लिया, विधि की विडम्बना, इस में हमारा चारा ही क्या है, सिवाय शोक करने के और अपने लिए रोने के हम सब कर ही क्या सकते हैं। धैर्य करना ही धर्म है।

हम लोगों को इस दुःखदायी समाचार से बड़ा दुःख हुआ। धैर्य रखिए, और ईश्वर को याद करिए।

श्री० श्याम बिहारी लाल भार्गव

बी० काम०, मैनेजर, जयपुर बैंक लि०,
कृष्ण भवन जयपुर

प्रो० सालिगराम जी भार्गव की दुखद तथा असामयिक मृत्यु का संवाद पाकर बड़ा शोक हुआ। ईश्वर उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

श्री० के० पी० भार्गव

प्रधान सचिव, उत्तर प्रदेश।

प्रोफेसर सालिगराम जी भार्गव के सम्बंध में विज्ञान की स्मृति अंक के संबंध में आपका पत्र मिला। विलंब के लिए क्षमा करें। मैं अवश्य ही इस स्मृति अंक के लिए कुछ लिखता क्योंकि उनसे १६२६ ई० से मेरा परिचय था। मैं उनका सम्मान करता था। मैं उन बहुसंख्यक व्यक्तियों में से एक हूँ जिन्हें उनके निकट सम्पर्क में आने का अवसर मिला। उनसे परिचय प्राप्त करने को एक सौभाग्य की बात ही मानूँगा किन्तु सरकारी कार्यों की अड़चन से मुझे लिखने से वंचित रहना पड़ता है।

श्री रामेश्वर प्रसाद भार्गव

चीफ कमिश्नर्स हाउस, इम्फल

मृत्यु का समाचार पढ़कर हम लोगों को बहुत दुःख हुआ। यह स्वप्न में भी नहीं सोच सकते थे कि उनकी मृत्यु इतनी जल्दी होगी। ईश्वर उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

श्री जगदीश प्रसाद भार्गव

एम० ए०, बी० काम०, एल-एल० बी०
८ क्लाइव रोड कलकत्ता १

१६ ता० को प्रोफेसर साहब की मृत्यु का अप्रत्याशित संवाद मिला जो अत्यन्त शोकप्रद तथा मर्मान्तक है। अनेक वर्षों के उनके सम्पर्क के कारण मुझे विश्वास नहीं हो पाता कि उनकी मृत्यु हो गई। यथार्थ में अनेक क्षेत्रों में उनकी सेवा वृत्ति तथा उदारता के कार्यों से उनका नाम मानव कल्याण के लिए अभूतपूर्व शक्ति रूप में जीवित रहेगा।

प्रोफेसर, एक महान आत्मा, सादगी तथा अध्यवसाय की मूर्ति थे। उनको बहुत दिनों तक वे सब लोग स्मरण करते रहेंगे जो उनके सम्पर्क में कभी भी आ सके होंगे। ईश्वर दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

श्री युधिष्टिर भार्गव,

एम० एस-सी०, भूतपूर्व सम्पादक 'विज्ञान' ग्वालियर

आपके पत्र द्वारा श्री प्रोफेसर सालिगराम के दुखद देहावसान का समाचार पाकर अत्यंत दुख हुआ। जैसा कि आपको विदित है वे मेरे गुरु रह चुके हैं व उनके चरणों में बैठकर मैंने बहुत कुछ सीखा। उनके असामयिक देहावसान से न केवल भार्गव जाति की क्षति हुई है परंतु समस्त विद्यार्थी वर्ग ने शुभ चिंतक तथा अद्वितीय अध्यापक खो दिया है। मुझे रह रह कर उनकी सौम्य मूर्ति, सादी पोशाक और मुस्कराता हुआ चेहरा याद आता है। कुछ ही महीने पूर्व उन्होंने मुझे पत्र द्वारा सूचना दी थी कि वे मेरे पास इंदौर आकर कुछ समय तक रहेंगे परंतु अभाग्य वश कुछ और ही हुआ। आशा है कि इस दुखद घटना को हम सब लोग धैर्य पूर्वक सहन करेंगे तथा उनकी पवित्र आत्मा की चिर शान्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना करेंगे।

श्री घनश्याम दीक्षित

डिवीजनल सुपरिंटेडेन्ट, नार्दन रेलवे, दिल्ली

पूजनीय भार्गव साहब के देहावसान का समाचार सुन कर अतीव दुःख हुआ। भार्गव साहब का मेरे प्रति पिता तुल्य प्रेम था। समाचार सुनकर आँखों तले अंधेरा छा गया परमात्मा की इच्छा के सामने किसी का वश नहीं चलता।

श्री जे० पी० मुकर्जी

८।६ आर्यनगर, कानपुर

प्रिय मित्र प्रोफेसर सालिगराम जी भार्गव का देहावसान का संवाद पाकर अत्यन्त दुःखित हुआ। भगवान ही एक मात्र भरोसा है। वह आपको शक्ति दें।

श्री पूर्णचन्द्र भार्गव

भार्गव पत्रिका कार्यालय, आगरा

परम श्रद्धेय प्रोफेसर साहिब की आकस्मिक व अत्यन्त शोकप्रद मृत्यु पर हमारी हार्दिक संवेदना व सहानुभूति स्वीकार कीजिये।

श्री शंकर प्रसाद भार्गव

११३।४८ स्वरूप नगर कानपुर

आपका पत्र भाई सा० बाबू सालिगराम के निधन की सूचना का मिला। एकदम से वज्र सा गिर गया। वे कालेज के ही दिनों से मेरे साथी थे और मेरे ऊपर बड़ी कृपा और प्रेम रखते थे। ईश्वर की इच्छा। उनकी आत्मा को सुख और शान्ति मिले। उन्होंने इस लोक में अच्छा यश कमाया और उनकी पुण्यस्मृति चिरकाल तक जीवित रहेगी। हम सब लोगों को धैर्य्य और संतोष धारण करना चाहिये।

श्री शंकर प्रसाद भार्गव

खतौली

जो सोचते न थे वही हुआ। मुझ से बाबा जी चलते समय भी यही कहते रहे "शंकर तुम जा सकते हो, मैं मरूँगा नहीं।" और उनकी आंखों में जल छलक आया था। सब से अधिक दुःख तो इस बात का रहा कि वह इतनी जल्दी चले गये जब कि वह न जाना चाहते थे और जब कि आज के ज़माने में समाज और घर को उनके से आदर्शवादी की आवश्यकता रही। कुछ सेवा भी उनकी न कर सके ऐसा हमारा दुर्भाग्य रहा। ईश्वर की इच्छा। समझ में नहीं आ रहा है कि कैसे अपने को सान्त्वना दें और क्या करें। उनकी एक-एक बात आज याद आ रही है।

श्री दीनानाथ दिनेश

मानवधर्म कार्यालय, पीपल महादेव, दिल्ली

आपका पत्र मिला। हृदय-विदारक समाचार को सुनकर अत्यन्त दुःख हुआ। पूज्य प्रो० सालिगराम जी जाति के गौरव थे। उनके देहान्त से भार्गव जाति को ऐसी क्षति पहुँची है जिसकी पूर्ति नहीं हो सकती। प्रभु का विधान अटल है और सन्तोष के अतिरिक्त मनुष्य के पास क्या है।

सोहनलाल गुप्त

एम० एस-सी०, एम० ए०, लेक्चरर, पी० वी०
म्युनिसिपल कालेज, हरद्वार

उन्नीस बरस पुरानी घटना जो आजन्म नवीन रहेगी इस प्रकार है। बी० एस-सी० कक्षा में एक छात्र ने फाउन्टेन पेन की क्लिप से अनजान में या जानकर आवाज की। प्रो० भार्गव ने तुरन्त कक्षा से प्रश्न किया कि क्या खो गया? हम लोग कुछ भी उत्तर न दे सके। उन्होंने स्वयं उत्तर में कहा 'समय'। कितनी बड़ी और कितनी सुंदर ढंग से दी गई सीख थी।

श्री० जी० डी० मोदी,

११५ बानी पार्क, जयपुर

जो दुर्निवार है उसको तो सहना ही पड़ेगा। दैवी इच्छा के सम्मुख हम दुर्बल प्राणी नतमुख ही रह सकते हैं। प्रोफेसर साहब, जो आजीवन आदर्श तथा पवित्र जीवन व्यतीत करते रहे, आज आकाश लोक के पुण्यशील प्राणी ही हैं।

दीवान मौलिचंद्र,

गली लोडीवालाँ, जयपुर

प्रो० सालिगराम जी भार्गव का समकक्ष इस बीसवीं शताब्दी में कोई दूसरा व्यक्ति नहीं दिखाई पड़ सकता जब कि समय के बदलने से नम्रता, मानव सहानुभूति, स्नेह तथा शील का सर्वथा लोप ही हो गया है। मैं घर पर वर्तमान रहूँ या न रहूँ, वे पुराने पारस्परिक संबंध को बनाए रखने के लिए मेरे घर पर प्रति वर्ष आया करते थे।

सभ्य (साधारण)

१ प्रो० एच० आर० दिवेकर, लश्कर
२ डा० निहालकरण सेठी, आगरा
३ श्री फूलदेव सहाय वर्मा, पटना
४ व्यवस्थापक शर्मा मोटर सर्विस, परभणी
५ डा० गोरख प्रसाद, इलाहाबाद
६ श्री कृष्णचन्द्रदुबे, सागर
७ श्री शान्ति स्वरूप दसज, रीवाँ
८ डा० रामकुमार वर्मा, इलाहाबाद
९ श्री हरदास शर्मा, झाँसी
१० राव सुखपाल सिंह, ग्वालियर
११ श्री नन्दलाल मालवीय, बम्बई
१२ डा० दिव्यदर्शन पन्त, इलाहाबाद
१३ श्री रामव्रत प्रसाद सिन्हा, नई दिल्ली
१४ डा० व्रिजकिशोर, इलाहाबाद
१५ प्रो० एम० एल० सर्राफ, पिलानी
१६ श्री घनश्याम दीक्षित, दिल्ली
१७ श्री वंशीधर मिश्र, लखीमपुर खीरी
१८ श्री राजाभाऊ लक्ष्मणराव जी घोडगांवकर, धार
१९ श्री छोटू भाई, सुथार अनाद (गुजरात)
२० श्री विद्यासागर विद्यालंकार, दिल्ली
२१ महन्त मोहनानन्दनाथ, हरद्वार
२२ श्री आर० पी० सक्सेना, कानपुर
२३ डा० अवधेशनारायण सिंह, लखनऊ
२४ श्री रामदासजी, दौराला (मेरठ)
२५ सार्वजनिक पुस्तकालय, तारानगर
२६ श्री बलवीर सिंह जी, रुड़की
२७ श्री के० पी० सेंगरिया, चान्दनी
२८ व्यवस्थापक यूनिवर्सल बुकस्टाल, कानपुर
२९ पं० चेतराम शर्मा, गढ़वाल
३० श्री निरंजनलाल हरिशंकर, अलीगढ़
३१ श्रीकृष्ण पाण्डेय, लखनऊ
३२ श्री सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव, जौनपुर
३३ श्री महेन्द्रनारायण दास, दरभंगा
३४ डा० रामाचरण, बनारस
३५ श्री श्रीनिवास झगड़ूलाल शर्मा, परभणी
३६ डा० एफ० सी० आलक, दिल्ली
३७ श्री श्रीकृष्णलाल जी पोद्दार, कलकत्ता
३८ डा० यमुनादत्त तिवारी, इलाहाबाद
३९ पं० गोवर्धन शर्मा, हैदराबाद
४० श्री रामचन्द्रराय, नई दिल्ली
४१ श्री नित्यानन्द जी, मुजफ्फरनगर
४२ श्री चिरंजीलाल पालीवाल, फतेहगढ़
४३ श्री जगदेव प्रसाद, गोरखपुर
४४ गुजरात विद्या सभा भद्र
४५ श्री सुरेश चन्द्र माथुर, मैनपुरी
४६ डा० विजन चक्रवर्ती, सिन्धरी
४७ श्री सुशील कुमार श्रीवास्तव, रीवाँ
४८ श्री कैलाशनाथ जी, मदुरा
४९ हिन्दी प्रकाशन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस
५० श्री रामदेव मिश्र, सागर
५१ श्री श्रीनिवासदास वैद्य, जोतपुर (होल्कर स्टेट)
५२ डा० सुरेन्द्र प्रसाद जी, मुंगेर
५३ श्री बट्टनलाल गुप्त, हमीरपुर
५४ श्री मोहनलाल लडढा, जयपुर
५५ श्री जसवन्त सिंह पंगारिया, आकोवा (राजस्थान)
५६ डा० एस० पी० मुशरान, इलाहाबाद
५७ श्री गोपीकृष्णदास, बनारस
५८ श्री एस० नागराजन, करायकुडी
५९ डा० हीरालाल निगम, इलाहाबाद
६० श्री ए० बी० महाजनी, सागर
६१ श्री एस० एस० लाल, सागर
६२ श्री एस० एन० झा, रीवाँ
६३ श्री सद्गुरुशरण निगम, सागर
६४ श्री बालकृष्ण अवस्थी, इलाहाबाद

६५ श्री परमेश्वर नाथ भार्गव,	जयपुर	१०१ डा० बल्देव बिहारी सक्सेना,	इलाहाबाद
६६ श्री पी० वी० देहदराय,	सागर	१०२ श्री हजारी लाल रोहतगी,	काननुर
६७ श्री ओम प्रकाश जी,	अलीगढ़	१०३ डा० उमाशंकर श्रीवास्तव,	इलाहाबाद
६८ श्री रामधर मिश्र,	लखनऊ	१०४ डा० मुरलीधर श्रीवास्तव,	इलाहाबाद
६९ श्री जागेश्वर दयाल वैश्य,	कोटा	१०५ डा० एस० के० दत्त,	इलाहाबाद
७० श्री महेशचन्द्र गुप्ता,	मुरादाबाद	१०६ डा० हरीशंकर चौधरी,	नैनीताल
७१ श्री प्रह्लादराय सिंहानिया,	दरभंगा	१०७ डा० धर्मेन्द्रनाथ वर्मा,	इलाहाबाद
७२ श्री रामचन्द्र गुप्ता,	मेरठ	१०८ डा० धर्मनारायण,	इलाहाबाद
७३ श्री ब्रिजकिशोर मालवीय,	लखनऊ	१०९ डा० सत्यनारायण प्रसाद,	इलाहाबाद
७४ श्री रुद्रपाल सिंह,	इलाहाबाद	११० डा० कैलाशनाथ श्रीवास्तव,	इलाहाबाद
७५ श्री एस० एम० बाखले,	सागर	१११ डा० रामकुमार सक्सेना,	इलाहाबाद
७६ श्री बद्रीप्रसाद जोशी,	उदयपुर	११२ डा० ब्रह्मस्वरूप मेहरोत्रा,	इलाहाबाद
७७ डा० अरुणकुमार दे,	इलाहाबाद	११३ डा० कामेश्वर सहाय भार्गव,	नैनीताल
७८ श्री राममूर्ति मेहरोत्रा,	प्रतापगढ़	११४ डा० गिरिजादयाल श्रीवास्तव,	इलाहाबाद
७९ श्री द्वारकानाथ बादामी,	इलाहाबाद	११५ डा० शम्भूप्रसाद नैथानी,	इलाहाबाद
८० श्री दामोदरदास खन्ना,	इलाहाबाद	११६ डा० ए० के० मित्रा,	इलाहाबाद
८१ डा० सत्येश्वर घोष,	इलाहाबाद	११७ तोशनीवाल ब्रदर्स,	बम्बई
८२ डा० इक़बालकृष्ण तैमिनी,	इलाहाबाद	११८ डा० रामनारायण टण्डन,	इलाहाबाद
८३ डा० बालकृष्ण,	इलाहाबाद	११९ डा० नारायण सिंह परिहार,	इलाहाबाद
८४ डा० कृष्ण बहादुर,	इलाहाबाद	१२० डा० के० मजूमदार,	इलाहाबाद
८५ डा० तेजनारायण शिवपुरी,	इलाहाबाद	१२१ श्री बालकृष्ण श्रीवास्तव,	इलाहाबाद
८६ डा० स्वरूप नारायण तिवारी,	आगरा	१२२ डा० विशम्भरदयाल सक्सेना,	नई दिल्ली
८७ डा० कृष्णकान्त वर्मा,	इलाहाबाद	१२३ श्री कृष्णगोपाल,	इलाहाबाद
८८ श्री सत्यप्रकाश,	इलाहाबाद	१२४ श्री प्रेमस्वरूप,	इलाहाबाद
८९ डा० प्रेमनाथ सक्सेना,	इलाहाबाद	१२५ आनन्द प्रकाश,	इलाहाबाद
९० डा० रवीन्द्रनाथ सिंह चौहान,	इलाहाबाद	१२६ पं० देवकुमार मिश्र,	पटना
९१ श्री श्यामबिहारी लाल श्रीवास्तव,	इलाहाबाद	१२७ डा० चन्द्रप्रकाश अग्रवाल,	दिल्ली
९२ श्री विजयनारायण सहारिया,	इलाहाबाद	१२८ श्री विश्वम्भर प्रसाद,	पटना
९३ डा० नन्दकिशोर,	इलाहाबाद	१२९ डा० एल० डी० तिवारी,	बरेली
९४ श्री नरेन्द्रप्रसाद श्रीवास्तव,	इलाहाबाद	१३० डा० राधारमण अग्रवाल	कानपुर
९५ श्री रघुवंश नारायण माथुर,	इलाहाबाद	१३१ श्री शान्ति स्वरूप रोहतगी,	कानपुर
९६ श्री वीरेन्द्रप्रताप खरे,	इलाहाबाद	१३२ डा० एस० के० मुकुर्जी,	कलकत्ता
९७ श्री बी० एस० दलेला,	इलाहाबाद	१३३ श्री इन्दुप्रकाश शर्मा,	कानपुर
९८ श्री इन्द्रमोहन लमगोड़ा,	इलाहाबाद	१३४ श्री विश्वनाथ सिनहा,	भागलपुर
९९ श्री बालाप्रसाद श्रीवास्तव,	इलाहाबाद	१३५ श्री गोलोकविहारी चौधरी,	भागलपुर
१०० मेजर रामकृष्ण कौल,	इलाहाबाद	१३६ श्री हजारीलाल गुप्त,	झाँसी

१३७ श्री फुलेश्वरप्रसाद सिंह, भागलपुर
१३८ श्री लक्ष्मीनारायण श्रीवास्तव, लखनऊ
१३९ श्री विन्ध्यवासिनी प्रसाद, अलीगढ़
१४० श्री एस० एन० गुप्ता, इलाहाबाद
१४१ बलवन्त सिंह रावत, गढ़वाल
१४२ डा० ए० दे०, कानपुर

आजीवन सभ्य

१ श्री गोपाल स्वरूप भार्गव, इलाहाबाद
२ श्री हरदयाल सिंह, लखनऊ
३ श्री कन्हैयालाल भार्गव, इलाहाबाद
४ श्रीमती रानी फूलकुमारी देवी साहिबा, लखनऊ
५ डा० नीलरतनधर, इलाहाबाद
६ श्री शंकर प्रसाद भार्गव, कानपुर
७ श्री हीरालाल खन्ना, कानपुर
८ श्री चुन्नीलाल साहनी, बम्बई
९ डा० डी० बी० देवधर, लखनऊ
१० बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन, इलाहाबाद
११ डा० सत्यप्रकाश, इलाहाबाद
१२ श्री परमानन्द जी, इलाहाबाद
१३ माननीय श्री हरिश्चन्द्र जी, इलाहाबाद
१४ डा० के० एन० भाल, पटना
१५ पं० अमरनाथ झा, पटना
१६ श्री वेंकटलाल ओझा, हैदराबाद
१७ स्वामी हरिशरणानन्द जी, अमृतसर
१८ श्री वेदमित्र जी, इलाहाबाद
१९ श्री तोताराम शर्मा, हाथरस
२० चन्द्र प्रकाश गोविल, करांची
२१ श्री आर० बी० लाल, लखनऊ
२२ डा० श्रीरंजन, इलाहाबाद
२३ श्री पुरुषोत्तमदास स्वामी, उदयपुर
२४ डा० सद् गोपाल, देहरादून
२५ प्रो० दयाशंकर दुबे, इलाहाबाद
२६ श्री लाल उदयभान सिंह, लखनऊ
२७ श्री शिवबहादुर सिनहा, लखनऊ
२८ श्री राजा रघुवीर सिंह, भिन्ड
२९ श्री ओंकारनाथ शर्मा, कासगंज
३० श्री कल्याण जी ओधव जी गांधी, बम्बई
३१ स्वामी अभयानन्द जी, गुरुकुल घटकेश्वर
३२ डा० रामदास तिवारी, इलाहाबाद
३३ डा० ओंकारनाथ पर्ती, सागर
३४ राजा वैंकट लाल जी लोया, हैदराबाद
३५ श्री राम शंकर त्रिवेदी, बाँदा
३६ डा० ब्रिजमोहन, बनारस
३७ सेन्ट एन्ड्रूज़ कालेज, गोरखपुर
३८ डा० राम चरण मेहरोत्रा, इलाहाबाद
३९ श्री हरि मोहनदास टंडन, इलाहाबाद
४० डा० नन्द कुमार तिवारी, इलाहाबाद
४१ श्री दुकालू प्रसाद मिश्र, रायपुर
४२ श्री कैलाशनाथ कपूर, कलकत्ता
४३ डा० हीरालाल दुबे, इलाहाबाद
४४ भारतीय भवन लाइब्रेरी, इलाहाबद
४५ पं० जनार्दन प्रसाद शुक्ल, रामपुर
४६ श्री हजारीलाल गुप्त, इलाहाबद
४७ श्री बीरेन्द्र नारायण सिंह, फतेहगढ़
४८ श्री श्यामसुन्दर जी, कानपुर
४९ लाला दयाराम जी कानोडिया, कानपुर
५० डा० बाबूराम सक्सेना, इलाहाबाद
५१ डा० सन्त प्रसाद टंडन, इलाहाबाद
५२ डा० रमेशचन्द्र कपूर, इलाहाबाद
५३ डा० धीरेन्द्र वर्मा, इलाहाबाद
५४ प्रो० अमियचन्द्र बनर्जी, इलाहाबाद
५५ लेफ्टिनेन्ट कर्नल श्री गोविन्द तिवारी, इलाहाबाद
५६ डा० देवेन्द्र शर्मा, इलाहाबाद
५७ श्री राम नारायण कपूर, कलकत्ता
५८ डा० बी० एन० प्रसाद, इलाहाबाद
५९ डा० अनन्तप्रसाद मेहरोत्रा, इलाहाबाद

भार्गव जी का वंशवृक्ष

हमारे भार्गव जी

रामऔतार हेड बेअरर, फ़िज़िक्स डिपार्टमेंट, प्र० वि० वि०

जब से भार्गव साहब इस डिपार्टमेण्ट में आये मैं तभी से यहाँ रहा हूँ। मुझे ऐसा कोई मौका नहीं याद आता जब उन्होंने हम लोगों पर कृपा न की हो। वे बहुत नेक आदमी थे और हम लोगों को कभी कोई कष्ट न हुआ। हम उनकी बड़ाई कहाँ तक करें। इनके समान ग़रीबों के सुख-दुख का ध्यान देनेवाला, भूल-चूक समझनेवाला मनुष्य फिज़िक्स डिपार्टमेंट में आज तक श्रीमान भार्गव के बराबर कोई न आया और न आयेगा।

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

१—*विज्ञान प्रवेशिका, भाग १*—विज्ञान की प्रारम्भिक बातों की उत्तम पुस्तक—ले० श्रीरामदास गौड़ एम० ए० और प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी; ।=)

२—*चुम्बक* – हाई स्कूल में पढ़ाने योग्य पुस्तक—ले० प्रो० सालिगराम भार्गव एम० एस-सी; मू० ।।।=) (अप्राप्य)

३—*मनोरंजन रसायन*—ले० प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव एम० एस-सी; २)

४—*सूर्य सिद्धान्त*—संस्कृत मूल तथा हिन्दी 'विज्ञान भाष्य'—प्राचीन गणित ज्योतिष सीखने का सब से सुलभ उपाय—ले० श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस-सी०, एल० टी०, विशारद; छः भाग मूल्य ८) । इस लेखक को १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है । भाग १, २ अप्राप्य)

५—*वैज्ञानिक परिमाण*—विज्ञान की विविध शाखाओं की इकाइयों की सारिणियाँ—ले० डाक्टर निहाल-करण सेठी डी० एस-सी०; १)

६—*समीकरण मीमांसा*—गणित के एम० ए० के विद्यार्थियों के पढ़ने योग्य—ले० पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १।।) द्वितीय भाग ।।=)

७—*निर्णायक (डिटमिनैंट्स*—गणित के एम० ए० के विद्यार्थियों के पढ़ने योग्य—ले० प्रो० गोपालकृष्ण गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री बी० एस-सी; ।।।) (अप्राप्य)

८—*बीज ज्योमिति या भुजयुग्म रेखागणित*—इंटर-मीडियेट के गणित के विद्यार्थियों के लिये—ले०—डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी०, १।) (अप्राप्य)

९—*वर्षा और वनस्पति*—लोकप्रिय विवेचन—ले० श्री शंकरराव जोशी; ।=)

१०—*सुवर्णकारी*—ले० श्री० गंगाशंकर पचौली; ।=)

११—*विज्ञान का रजतजयन्ती अंक*—विज्ञान परिषद के २५ वर्ष का इतिहास तथा विशेष लेख (अप्राप्य) १)

१२—*व्यंग-चित्रण*—(कार्टून बनाने की विद्या)—ले० एल० ए०; डाउस्ट; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी एम० ए०; १७५ पृ० सैकड़ों चित्र, सजिल्द २)

१३—*मिट्टी के बरतन*—चीनी मिट्टी के बरतन कैसे बनते हैं, लोकप्रिय—ले० प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा; १७५ पृष्ठ ११ चित्र; सजिल्द २) (अप्राप्य)

१४—*वायुमंडल*—ऊपरी वायुमंडल का सरल वर्णन—ले०—डाक्टर के० बी० माथुर, सजिल्द, २)

१५—*लकड़ी पर पालिश*—पालिश करने के नवीन और पुराने सभी ढंगों का व्योरेवार वर्णन । ले०-डा० गोरख-प्रसाद और श्री रामरतन-भटनागर, एम० ए०, २१८ पृष्ठ, ३ चित्र, सजिल्द; २) (अप्राप्य)

१६—*कलम पेवंद*—लेखक श्री शंकरराव जोशी; २०० पृष्ठ; २० चित्र; मालियों मालिकों और कृषकों के लिये उपयोगी, सजिल्द; २)

१७—*जिल्दसाजी*—इससे सभी जिल्दसाजी सीख सकते हैं, ले० श्री सत्यजीवन वर्मा, एम ए० सजिल्द, २)

१८—*तैरना*—तैरना सीखने की रीति अच्छी तरह सम-झाई गई है । ले०—डा० गोरखप्रसाद, मूल्य १)

१९—*सरल विज्ञान-सागर प्रथम भाग*—सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद । बड़ी सरल और रोचक भाषा में जन्तुओं के विचित्र संसार, पेड़ों पौधों की अचरज-भरी दुनिया सूर्य, चन्द्र, और तारों की जीवन-कथा तथा भारतीय ज्योतिष के संक्षिप्त इतिहास का वर्णन है । सजिल्द मूल्य ६) (अप्राप्य)

२०—*वायुमण्डल की सूक्ष्म हवाएँ*—ले० - डा० संतप्रसाद टंडन, डी० फिल० मूल्य ।।।)

२१—*खाद्य और स्वास्थ्य*—ले० — डा० —ओंकारनाथ परतो, एम० एस-सी०, डी० फिल० मूल्य ।।।)

२२—*फोटोग्राफी*—लेखक श्री डा० गोरख प्रसाद डी० एस-सी० (एडिन), फोटोग्राफी सिद्धान्त और प्रयोग का संक्षिप्त संस्करण, सजिल्द मूल्य ४)

२३—*फल संरक्षण*—फलों की डिब्बाबन्दी, मुरब्बा, जैम, जेली, शरबत, अचार, चटनी, सिरका, आदि बनाने की अपूर्व पुस्तक—ले० डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और श्री वीरेन्द्रनारायण सिंह एम० एस-सी० कृषि-विशारद, सजिल्द मूल्य २।।)

२४—*शिशु पालन*—लेखक श्री मुरलीधर बौड़ाई । गर्भवती स्त्री की प्रसवपूर्व व्यवस्था तथा शिशु की देखभाल, शिशु के स्वास्थ्य तथा माता के आहार-विहार आदि का वैज्ञानिक विवेचन । मूल्य ४)

हमारे यहाँ नीचे लिखी पुस्तकें भी मिलती हैं:-

१—*साबुन विज्ञान*—विद्यार्थियों और व्यवसाइयों के लिये एक सरल और सुबोध पुस्तक, जिनमें साबुन तैयार करने की विभिन्न विधियाँ और नाना प्रकार के साबुन तैयार करने की रीतियाँ हैं, सैकड़ों अनुभूत और प्रमाणित नुसखे भी दिये गये हैं। लेखक श्री श्याम नारायण कपूर बी० एस-सी०, ए० एच० बी० टी० आई० फेलो, आयल टेकनोलोजिस्ट एसोसिएशन मूल्य ६)

२—*भारतीय वैज्ञानिक*—१२ भारतीय वैज्ञानिकों की जीवनियाँ—ले०—श्री श्यामनारायण कपूर, सचित्र ६० पृष्ठ, सजिल्द; मूल्य ३)

३—*वैक्युमब्रेक*—ले०—श्री ओंकारनाथ शर्मा। यह पुस्तक रेलवे में काम करने वाले फिटरों इंजन-ड्राईवरों, फोरमैनों और कैरेज एग्जामिनरों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। १६० पृष्ठ ३ चित्र जिनमें कई रंगीन हैं, २)

४—*यांत्रिक चित्रकारी*—ले० ओंकारनाथ शर्मा, मूल्य २।।)

५—*विज्ञान के महारथी*—लेखक श्री जगपति चतुर्वेदी। संसार भर के प्रसिद्ध वैज्ञानिकों के जीवन व खोजपूर्ण कार्यों का विस्तृत वर्णन है। मूल्य २)

६ -*पृथ्वी के अन्वेषण की कथाएँ*—ले० श्री जगपति चतुर्वेदी। प्रमुख भौगोलिक अन्वेषणों का रोचक वर्णन मूल्य १।।)

७—*विज्ञान जगत की झाँकी*—ले० प्रो० नारायण सिंह परिहार। मूल्य २)

८—*खोज के पथ पर*—ले० श्री शुकदेव दुबे दुर्गम स्थानों एवं पर्वतों की खोज रोमांचकारी वर्णन। मूल्य ।।)

२५—*मधुमक्खी पालन*—द्वितीय संस्करण। ले०—पंडित दयाराम जुगड़ान; क्रियात्मक और ब्यौरेवार; मधुमक्खी पालकों या जन-साधारण को इस पुस्तक का अधिकांश अत्यन्त रोचक प्रतीत होगा, मधुमक्खियों की रहन सहन पर पूरा प्रकाश डाला गया है। २८५ पृष्ठ; अनेक चित्र, सजिल्द; ३)

२६—*घरेलू डाक्टर*—लेखक और सम्पादक-डाक्टर जी० घोष, एम० बी० बी० एस, डी० टी० एम० प्रोफेसर बद्रीनारायण प्रसाद, पी० एच० डी०, एम० बी, कैप्टेन डा० उमाशंकर प्रसाद, एम० बी० बी० एस०, डाक्टर गोरखप्रसाद, आदि। ५० चित्र, सजिल्द, ४)

२७—*उपयोगी नुसखे; तरकीबें और हुनर*—सम्पादक डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश, २००० नुसखे, १०० चित्र; एक एक नुसखे से सैकड़ों रुपये बचाये जा सकते हैं या हजारों रुपये कमाये जा सकते हैं। मूल्य ३।।)

२८—*फसल के शत्रु* लेखक श्री शंकर राव जोशी, फसलों को नष्ट करने वाले रोगों, कीड़ों, आदि से रक्षा के सुगम उपाय। मू० ३।।)

२९—*साँपों की दुनिया*—ले० श्री रामेश वेदी, साँपों के भेद पहचान आदि का विशद वर्णन। मू० ४)

३०—*पोर्सलीन उद्योग*—ले० प्रो० हीरेन्द्रनाथ बोस, पोर्सलीन की वस्तुएँ, पात्र आदि बनाने का वर्णन। मू० ।।।)

३१—*राष्ट्रीय अनुसंधानशालाएँ*—भारत की राष्ट्रीय वैज्ञानिक अनुसंधानशालाओं का सचित्र परिचय। मू० २)

३२—*गर्भस्थ शिशु की कहानी*—ले० मारग्रेट शी गिल्बर्ट (अनु० प्रो० नरेन्द्र) मा की कोख में शिशु शरीर की रचना का सरल वर्णन। मू० २।।)

पता—विज्ञान परिषद्, प्रयाग

बच्चों के से नाना जी

कुमारी शशी भार्गव, आयु १० वर्ष

एक दिन की बात लिख रही हूँ जब हमारे नाना जी पं० सालिगराम जी हमारे यहाँ लखनऊ आये थे। ऊषा मेरी चचेरी बहिन है जो नाना जी को उस समय पहचानती न थी। बात इस तरह है—

"शशी, जरा उधर देखो एक बूढ़ा आदमी सिर पर धब्बेदार साफा, सफेद लम्बा कोट पहने तथा हाथ में बेत लिये इधर चला आ रहा है" ऐसा मेरी बहन ऊषा ने, एक दिन जब नाना जी हमारे यहाँ लखनऊ आये, तब कहा। मेरी छोटी बहन उस आदमी को देखकर चिल्लाने लगी, नाना जी, नाना जी .....।" नाना जी मुस्कराते हुये आगे बढ़ आये—बात ही बात में हम बच्चों की फौज ने नाना जी को घेर लिया। हम लोग फल आदि खा रहे थे। हम सब नाना जी को फल का नाश्ता खाने को कहने लगे। नाना जी हँसते ही रहे और हम लोगों को खाने को कहते रहे। फिर जरा आँखें फाड़कर मुँह फुला कर अपने पेट पर हाथ रखते हुये मेरी एक तोतली बहन की तरफ देखकर बोले, "मुदे भूत नहीं है तुम लोग ताओ बेती"—फिर क्या था कहकहा लग गया और नाना जी भी हँसते हँसते बाबा जीसे बात करने चले गये।

उस समय हमें तनिक भी ख्याल नहीं आया कि नाना जी हमारे साथी न थे। यह सोच कर कि हम नाना जी से कभी न मिलेंगे दुखः होता है। भगवान् उन्हें शान्ति दे। हम उस महान् पुरुष की पुण्य आत्मा के लिये परमपिता परमेश्वर से सदैव शांति प्रदान करने की आराधना करते हैं।

———

मेरे-बाबा पं० सालिगरामजी

अशोक भार्गव, कक्षा ६, अलवर

हा न रहे कुल भूषण मेरे बाबा थे यश खान।
सबका हितकर सदा प्रेम का जो देते थे ज्ञान॥
हुए शोक से कातर सुन बाबा का स्वर्ग प्रयाण।
उन्हें शान्ति दे, हमें धैर्य दे, ईश्वर दया निधान॥

———

श्री सालिगरामजी भार्गव के निधन पर

श्री निरंजन लाल भार्गव, चावड़ी बाजार दिल्ली

प्रोफेसर साहब की स्वर्ग यात्रा को मैं एक दैवी प्रकोप समझता हूँ। कारण हमारा एक सच्चा हितकारी पथ-प्रदर्शक ही उठ गया। महान आत्माओं के आशीर्वाद ही से कल्याण हो जाता है, फिर उनका संरक्षण तो सोने में सुगंध के समान ही है। किसी के गुणों का गान करना ही उसकी सच्ची याद है।

उनकी सात्विक वृत्ति, प्रिय वादन, सरल व्यवहार, हिल मिल कर चलने का स्वभाव सराहनीय एवं अनुकरणीय थे। स्वामी तुलसीदास ने लिखा है, 'बिछुरत एक प्राण हर लेहीं।' सचमुच ही उनका निधन नहीं हुआ हमारे ही प्राण चल गए।

———

एक व्यंग चित्र

('युनिवर्सिटी मेगजीन' के अनुग्रह से)

Reg. No. 372

विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

परिषद् का उद्देश्य

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद् का संगठन

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार सभ्यगण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उप-सभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमन्त्री, दो मन्त्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्य को ६) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ १०० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिए वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशन में उपस्थित रहने का तथा अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित, परिषद् की सब पुस्तकों, पत्रों, तथा विवरणों इत्यादि को बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य वृन्द समझे जायेंगे।

प्रधान संपादक—*डा० हीरालाल निगम*

सहायक संपादक—*श्री जगपति चतुर्वेदी*

मुद्रक—हिन्दी साहित्य प्रेस, इलाहाबाद

प्रकाशक—विज्ञान परिषद्, बैंक रोड, इलाहाबाद
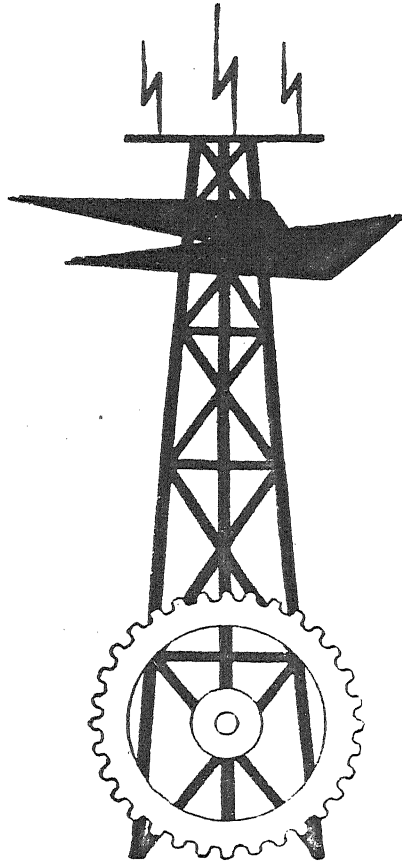
विज्ञान

फरवरी १९५४
कुंभ २०१०

भाग ७८
अंक ५

वार्षिक मूल्य
चार रुपए

प्रति अंक
छः आने

Approved by the Directors of Education, Uttar Pradesh
and Madhya Pradesh for use in Schools,
Colleges and Libraries

विज्ञान के नियम

१—वार्षिक मूल्य ४) तथा प्रति अंक का ।=) है।

२—प्रति मास प्रथम सप्ताह में विज्ञान प्रकाशित होता है।

३—ग्राहक किसी भी मास से बनते हैं।

४—वार्षिक मूल्य सदा दो एक मास पूर्व अग्रिम भेजने से ।≥) वी० पी० व्यय की बचत हो सकती है।

५—नमूने की प्रति माँगने पर या बिना मांगे भी ज्ञात पतों पर मुफ्त भेजी जाती है।

लेखकों से निवेदन

१—लेख किसी भी विषय के वैज्ञानिक पक्ष पर होना चाहिये।

२—लेख मनोरंजक और सुबोध होना चाहिये।

३—कागज पर एक ओर ही सुपाठ्य लिखना चाहिए।

४—चित्र सदा काली स्याही से बने होने चाहिए। हल्के या अन्य रंग में बने चित्रों का ब्लाक नहीं बन सकता।

५—लेख भेजने के दो मास पश्चात् भी न छपने पर स्मरण-पत्र अवश्य भेजें।

विषय-सूची

वार्षिक मूल्य ४) चार रुपया एक प्रति का ।=) छः आना।

विज्ञान

विज्ञानं ब्रह्मेति व्याजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० ।३।५

संख्या ७८ | कुंभ २०१०, फरवरी १९५४ | अंक ५

लेश-तत्व

डा० ब्रह्मस्वरूप मेहरोत्रा, बोटेनी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय

प्राय: सभी यह जानते हैं कि मनुष्य मात्र के स्वास्थ्य के लिए विटैमिन्स कितने आवश्यक हैं। पर यह कम को ज्ञात होगा कि ऐसे पदार्थ जो लेश-तत्वों के नाम से पुकारे जाते हैं कितने जीवनावश्यक हैं। लेश-तत्व कुछ ऐसी धातुओं के समूह को कहते हैं जिनकी अत्याणु मात्रा में आवश्यकता पड़ती है पर जिनके बिना क्या जीव-जन्तु और क्या ही पादप, दोनों ही पनप नहीं सकते। जीव-जन्तुओं तथा पादपों के जीवन में लेश-तत्वों का जो स्थान है इसके सम्बन्ध में जो ज्ञान आजकल प्राप्त है वह लगभग पिछले २० वर्ष का ही है।

सभी साठ-तत्व जो जीवित-कोशा में पाए जाते हैं जीवित रहने के लिए आवश्यक नहीं हैं, उदाहरणार्थ—सोना, ऐलोमीनियम सिलीकन, फ्लोरीन आदि को कुछ पादप अन्तर्ग्रहण करते हैं पर इन तत्वों का पोषकता से कोई सम्बन्ध नहीं होता। जो तत्व अणु मात्रा में प्रयोग में आते हैं और जिन्हें जीव-विज्ञानाचार्य माइक्रोन्यूट्रियट्स कहते हैं उनमें से आठ महत्वपूर्ण हैं। वे हैं—लोहा, ताम्र, ज़िन्क, मैनगैनीज़, कोबैल्ट, आयोडीन, बोरन, मौलिब्डिनम। इनमें से पहले छः जीव-जन्तुओं के लिए तथा प्रथम चार और अन्त के दो पादपों के लिए आवश्यक हैं। किसी आवश्यक लेश-तत्व की कमी का परिणाम यद्यपि जीव में स्पष्ट होता है फिर भी ये किस प्रकार व्याधि उत्पन्न करते हैं इसका पता लगाना सरल कार्य नहीं है। इसका उत्तम उदाहरण हमें आयोडीन में मिलता है। यद्यपि मनुष्य को हजारों वर्ष से यह पता है कि आयोडीन की कमी से जीवों में गलगण्ड (Goitre) हो जाता है पर इस कमी से किस प्रकार व्याधि उत्पन्न होती है इसका पता लगाने के लिए अधिक परिश्रम करना पड़ा है।

गलगण्ड, जिसका प्रधान चिन्ह गर्दन में अर्बुद अतिवृद्धि है, गल-ग्रंथि (thyroid gland) के कुकार्य से उत्पन्न होता है। यह ग्रंथि गलतिग्मी (thyroxine) नामक एक न्यासर्ग (hormone)

का निर्माण करती है जिसका रुधिर-प्रवाह द्वारा परिवहण होता है और जो चयापचय (metabolism) को वश में रखने में अधिक क्रियाशील रहता है। यदि ग्रंथि अधिक मात्रा में गलतिग्मी उत्पन्न करता है तो शरीर शीघ्रातिशीघ्र बढ़ता है और उसमें विघर्षण तथा दारण (wear and tear) भी अधिक होता है। गलतिग्मी की न्यूनता का उलटा ही प्रभाव पड़ता है—शरीर सुस्त पड़ जाता है, रोगी शारीरिक तथा मानसिक निद्रालस्य (lethargy) से पीडित हो जाता है, उसमें शारीरिक तथा मानसिकीय (psychological) प्रत्यावल को सहन करने की शक्ति नहीं रहती। यदि जीवन के प्रारम्भ में ही यह अवस्था आ जाती है तो व्यक्ति का विकास ही नहीं हो पाता और वह एक निस्सहाय अ-जाम्बुक-बाल (cretin) हो जाता है।

गल-ग्रंथि को आयोडीन लघु मात्रा में आवश्यक होती है। इसकी कमी होने पर गल-ग्रंथि गलतिग्मी (thyroxine) पर्याप्त मात्रा में नहीं उत्पन्न कर पाती क्यों कि गलतिग्मी ६५% आयोडीन से बनती है। गल-ग्रंथि इस तत्व को रुधिर-प्रवाह से, जब तक वह उसमें आवश्यक मात्रा में न पहुँच जावे, शनैः शनैः संचित करती रहती है। प्रायः एक साधारण भोजन में आवश्यकता से अधिक आयोडीन होता है। कुछ ऐसे स्थान हैं जहाँ के खाद्य पदार्थों अथवा पानी में उचित मात्रा में आयोडीन नहीं रहता। ऐसे भागों में आयोडीन भोजन के साथ मिश्रित करना आवश्यक होता है। प्रायः आयोडाइज्ड टेबिल साल्ट (Iodized Table salt) इसके लिए उपयोग में लाया जाता है।

लेश-तत्वों का अन्तिम प्रभव (source) मिट्टी ही है। इनमें इन तत्वों की कमी अपक्षरण (erosion), उद्विलयन (leaching), तथा पिछली खेती द्वारा प्रचूषण के कारण अथवा उन चट्टानों की अनुपस्थिति के कारण जिनमें ये तत्व अधिक पाये जाते हैं, होती है। हमें यह भी जान लेना चाहिए कि मिट्टी में आवश्यक तत्वों की उपस्थिति ही इस बात का द्योतक नहीं है कि पादप उनको पर्याप्त मात्रा में प्रचूषित कर रहे हैं। मिट्टी की अम्लता (acidity) या क्षारीयता (alkalinity) प्रांगारिक पदार्थों की मात्रा और आर्द्रता, उसकी लघुता या गुरुता तथा उसमें अणु जीवों की संख्या—ये सब ही मिल कर पादपों द्वारा लेश-तत्वों के प्रचूषण में प्रभाव डालते हैं। लोहा प्रायः मिट्टी में अप्रयोगात्मक रूप से बँधा रहा है। जलाणुभेदित (waterlogged) मिट्टी में, जिसमें औक्सीजन (जारक) की मात्रा कम होती है, शीघ्रातिशीघ्र फैरिक संयोग प्रायः अविलेय फैरस संयोगों में परिवर्तित हो जाते हैं। ऐसे उपचार जिसके द्वारा मिट्टी की अम्लता बढ़ती हो वे संयोग फिर से विलेय किए जा सकते हैं। जिन्क की कमी होने पर पाश्चात्य देशों के माली प्रायः इसकी कमी, जिन्क की कील तने में गाड़ कर अथवा जिन्क के विलेय संयोगों का छिड़काव करके, पूरी करते हैं।

बोरन की प्राप्ति मिट्टी को अम्ल बना कर और मौलिब्डिनम की मिट्टी को चूने से क्लीव (neutralise) करके बढ़ाई जा सकती है। मैनगनीज प्रायः चूर्णिय (calcareous) जीर्णकों (peats) और अन्य मिट्टियों में जिनमें अधिक प्रांगारिक पदार्थ प्राप्त हैं, होता है।

किन लेश-तत्वों की आवश्यकता है? प्रारम्भ में यह समस्या सरल सी जान पड़ती है: एक-एक करके किसी जीव के भोजन में से इन लेश-तत्वों को कम करते जाएँ और उसका परिणाम आलोक करें। पर यह कार्य इतना सरल नहीं है जितना कि प्रतीत होता है। ये तत्व इतनी न्यून मात्रा में आवश्यक होते हैं कि प्रतिधारित तत्व भोजन के अन्य पदार्थों के साथ मिल कर पहुँच सकता है। इसके अतिरिक्त यह भी सम्भव है कि एक तत्व दूसरे तत्व को अंशतः आदिष्ट कर देता है, और क्षति प्रतीत नहीं होती। पादपों के लेश-तत्वों की आवश्यकता का ठीक-ठीक पता लगाना इतना कठिन नहीं है जितना जीवों के लेश-तत्वों का। पादपों को हम

पोषक विलयन में प्रत्येक पोषक के ऊपर पूरा नियन्त्रण रख कर उत्पन्न कर सकते हैं। यदि किसी पादप से कोई विशेष पोषक, जो उस पादप के लिए आवश्यक होता है, अनुपस्थित होता है तब वह या तो पादप के विकासन में बाधक होता है या उसमें कुछ ऐसे चिन्ह प्रकट करता है जैसे पत्तियों का रंग, फलन, फूल की वृद्धि तथा पादप के ऊपरी भाग की वृद्धि का अनुपात, तथा एनज़ाइम (enzyme) निर्माण की प्रतिकृति (pattern)।

लेश-तत्वों की क्षति के प्रभाव के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान अधिक बढ़ा-चढ़ा है पर वे किस प्रकार जीवों में अपना कार्य करते हैं इसका हमें अभी कम ज्ञान है। इसके लिए हमें उस संयोग, जिसमें लेश-तत्व पाया जाता है, की रासायनिक संरचना का विस्तार विश्लेषण करना आवश्यक है अथवा उसका प्रभाव किसी एक परिभाषित रासायनिक प्रतिक्रिया के ऊपर देखना है। अभी तक ऐसा कुछ ही लेश-तत्वों के साथ किया जा चुका है। मुख्यतः आयोडीन और लोहे का ही पूर्ण रूप से अध्ययन किया गया है। ये दोनों तत्व हीमोग्लोबिन व्यूहाणु (molecule) के चिर-स्थायी मध्य स्थान पर अधिकार किए हुए हैं।

लोहे की न्यूनता के कारण जीव-जन्तु अरक्तता से पीडित होते हैं क्योंकि शरीर का ६६ फी सदी लोहा रक्त के हीमोग्लोबिन में रहता है और शेष का कुछ भाग जिगर, प्लीहा (spleen) तथा अस्थि-मज्जा में रहता है, जहाँ रक्त-रुधिर-कोशा का निर्माण होता है। कोबैल्ट और ताम्र भी कुछ सीमा तक हीमोग्लोबिन के निर्माण से सम्बन्धित है क्योंकि अरक्तता से पीडित रोगी जिनके अन्दर लोहे की मात्रा का कोई प्रभाव नहीं पड़ता प्रायः कोबैल्ट तथा ताम्र या दोनों की प्राप्ति पर उचित प्रभाव प्रकट करते हैं। भेड़ों तथा अन्य पशुओं की अनेक अरक्तता से उत्पन्न व्याधियाँ कोबैल्ट की न्यूनता के कारण ही समझी गई हैं। आस्ट्रेलियन भेड़ों की एक व्याधि जो ताम्र की कमी के कारण होती है चेता संहति (nervous system) के ऊपर स्पष्ट तथा स्थायी प्रभाव डालती है। इस प्रकार की अरक्तता का प्रथम चिह्न ऊन की अवनति होना है। ताम्र उच्च कोटि के जीव-जन्तुओं के रक्त में हीमोग्लोबिन की मात्रा संघृत रखने के अतिरिक्त हीमोसाइनिन, जो अपृष्ठ-वंशियों (Invertebrates) का श्वसन-रंगा है, आवश्यक अंग है।

ज़िन्क श्वसन-संहति (respiratory system) का एक आवश्यक भाग है। यह एक एनज़ाइम, जिसे कार्बोनिक एनहाइड्रेट कहते हैं, का एक अंग है जो पहले ऊतियों में कार्बन डाइऑक्साइड और जल के मिलने से कार्बोनिक एसिड के निर्माण की क्रिया को आवेजित (accelerate) करता है और तब इस विधि को फेफड़ों के अन्दर उलटने में सहायक होता है, जिससे शरीर से कार्बन डाइऑक्साइड निकाली जा सके। पशुओं को प्रति दिन ०·००४ ग्राम के लगभग जिन्क की आवश्यकता पड़ती है।

बोरन और मौलिब्डिनम दोनों तत्व पादपों के लिए ही आवश्यक हैं न कि जीव-जन्तुओं के लिए। बोरन की न्यूनता से अनाज के पादप (crop plants) में कई सुज्ञात दैहिक रोग हो जाते हैं। प्रायः बोरन का प्रथम बाह्य लक्षण पादप के मुख्य काण्ड के अग्रवर्धीय भाग की मृत्यु होना है। इसके पश्चात् पार्श्वीय कलिकों की वृद्धि पार्श्वप्ररोहों में हो जाती है और तब इनके अग्र भाग की भी मृत्यु हो जाती है। इसके अतिरिक्त पत्तियाँ थोड़ी स्थूल हो जाती हैं और कुछ मुड़ भी जाती हैं। कभी-कभी कुछ पीत-रक्तता (chlorosis) भी हो सकती है। पर्णवृन्त और पत्र प्रायः भिदुर (brittle) हो जाते हैं और पुष्पों का पादपों में निर्माण होना भी कठिन हो जाता है। ऐसे पादपों में मूल की वृद्धि भी प्रायः कम होती है। बोरन की कमी से चुकंदर, तम्बाखू, सेब आदि के पादप पीडित होते हैं। इनको स्वस्थ्य बनाने के लिए बोरन बहुत ही न्यून मात्रा में आवश्यक होता है। भिन्न पादपों को भिन्न मात्रा में बोरन की आवश्यकता पड़ती है। मौलिब्डिनम

नाइट्रेट प्रहसन विधि से सम्बन्धित है। यह शिम्बिमत् पादपों (leguminous plants) के मूल ग्रन्थि शाकाणु (root nodule bacteria) द्वारा नाइट्रोजन स्थिर (fix) करने की क्रिया में सहायक होता है। मिट्टी में इस तत्व की न्यूनता बहुत कम पाई जाती है। कभी-कभी यह भी समस्या आ जाती है कि पादप प्रायः इस तत्व को ऐसी मात्रा में एक कर लेते हैं कि वे पशुओं के लिए विषैले बन जाते हैं।

हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि पादपों के भोजन में लेश-तत्वों की कमी आवश्यक लेश-तत्वों को मिट्टी में मिश्रित करने से, पूरी की जा सकती है। इस प्रकार के मिश्रण प्रायः पादपों के लिये घातक प्रमाणित होते हैं। उदाहरणार्थ, बोरेक्स केवल २० पौंड प्रति एकड़ की ही मात्रा में तमाम आलू की खेती का नाश कर सकता है। इसके अतिरिक्त घरों में यह भी देखा गया है कि कभी-कभी पादपों को सामान्य मिट्टी के गमलों से निकाल कर यदि ताम्र के गमले में लगा दिया गया है तो पादप की ही मृत्यु हो गई है।

हमें कोई ऐसा विनिधान (prescription) नहीं मालूम है जिसको हम किसी भी पादप को उचित मात्रा में लेश-तत्व प्रदान करने के लिए उपयोग में ला सकें, क्योंकि प्रत्येक वर्ग के पादप प्रत्येक लेश-तत्व के लिए भिन्न मात्रा में आवश्यकता तथा सहन-शक्ति रखते हैं। इसके अतिरिक्त भिन्न लेश-तत्वों का प्रभाव भी आपस में सम्बन्धित है। उदाहरणार्थ ताम्र और कोबेल्ट दोनों लोहे के साथ हीमोग्लोबिन के निर्माण से सम्बन्धित हैं। इसी प्रकार यद्यपि केवल मेगनीशियम ही पर्ण-शाद व्यूहाणु (chlorophyll molecule) में प्रवेश करता है पर ताम्र और लोहा भी पर्ण-शाद के निर्माण पर प्रभाव डालते हैं। एक पशु के भोजन में अधिक मात्रा में मौलिब्डिनम के होने से ताम्र की कमी के चिन्ह स्पष्ट रूप से प्रकट होते हैं यद्यपि ताम्र उचित मात्रा में उपस्थित रहता है।

यदि हम यह निश्चित रखना चाहते हैं कि हमारे शरीर में उचित मात्रा में लेश-तत्व पहुँच रहे हैं तो हमे भिन्न-भिन्न प्रकार की भूमि में उपजित खाद्य-पदार्थों का सेवन करना चाहिए।

लेश-तत्वों के प्रकार्य

क्योंकि लेश-तत्व पादपों द्वारा बहुत क्षुद्र मात्रा में आवश्यक होते हैं इसलिये सम्भवतः ये चयापचय (metabolism) में आवेजक (catalyst) की तरह काम करते हैं। इसमें लेश-तत्व विटैमिन्स से मिलते-जुलते हैं। विटैमिन्स की भाँति लेश-तत्व भी कुछ एनजाइम संहतियों (enzyme systems) के आन्तरिक भाग जान पड़ते हैं। आज-कल इसका पता लगाया जा रहा है कि किन-किन लेश-तत्वों की कमी से कौन-कौन से एनजाइम प्रभावित होते हैं। उदाहरणार्थ कटे सेब को भूरे रंग का कर देने वाले एनजाइम को ताम्र की आवश्यकता पड़ती है। भूरा रंग सेब के कुछ संयोगों के वायु से मिलने पर जारण (oxidation) के कारण उत्पन्न होता है और इस क्रिया में ताम्र सहायक होता है। अन्य कई एनजाइमों के लिए आवश्यक लेश-तत्वों का भी पता लग गया है। भिन्न एनजाइम जो जारण में सहायता देते हैं उन्हें इस क्रिया में लोहे और ताम्र की आवश्यकता पड़ती है और अन्य किसी धातु से काम नहीं चल पाता। ज़िन्क उस-आवेजक का अतिआवश्यक भाग है जो कार्बन डाइऑक्साइड के परिवाहन से सम्बन्धित है। यद्यपि हम यह नहीं जानते कि मौलिब्डिनम किस एनजाइम संहति में भाग लेता है पर हमें यह स्पष्ट है कि यह नाइट्रोजन स्थिरीकरण (nitorgen fixation) और नाइट्रेट उपयोग (nitrate utilization) में आवश्यक है।

हमें अब यह भी पता लग गया है कि लेश-तत्वों के प्रदाय (supply) की मात्रा को परिवर्तित करने से हम पादप की अन्तिम वृद्धि को बिना परिवर्तित किये पादप के एनजाइम संकेन्द्रण (concentration) में आवश्यक परिवर्तन कर सकते हैं। इस सम्बन्ध में हमें अभी अधिक ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता है।

'सोवियत् रूस के नये खनिज स्रोत'

श्री० कृष्णचंद्र दुबे एम० एस-सी०, सागर विश्वविद्यालय, सागर

सोवियत् रूस में भौमिक विज्ञान की उन्नति के लिये विशेष ध्यान दिया जा रहा है! पृथ्वी के गर्भ में गुप्त सारे खनिजों को वे खोद निकालना चाहते हैं। उनके इस परिश्रम का फल है आज का जाग्रत और उन्नत रूस जो आधे विश्व का नेता है! पिछले तीस वर्षों में रूस में जो नई खोजें हुई हैं उनका विवरण यहाँ दिया जा रहा है।

सरजी किरोव नामक वैज्ञानिक ने आर्कटिक वृत्त के पार कोला प्रायद्वीप का भौमिक पर्यवेक्षण किया। फर्समैन ने इस प्रायद्वीप के खिबिनी पर्वत-शाखा में अपाटाइट नामक खनिज की खोज की। अपाटाइट की रचना कैलशियम फासफेट है और इससे खाद्य बनाई जाती है। इस खनिज के अलावा खिबिनी पर्वत में नेफेलीन प्राप्त हुआ। नेफेलीन का उपयोग कांच, पेन्ट इत्यादि में होता है। खिबिनी अपाटाइट की खोज के कुछ वर्षों बाद देश के दूसरे सिरे, दक्षिण कज़ख़स्तान में भी अपाटाइट की खोज हुई। इन खानों से लाखों टन सुपरफासफेट बनाया जाता है जो कपास की खेती में काम आता है। सोवियत् रूस में पोटैश खनिजों की ओर विशेष रूप से वृद्धि हुई है। जारशाही के युग में पोटैशियम क्षार का आयात जर्मनी से किया जाता था पर उत्तर यूराल विभाग में इन खनिजों की प्राप्ति से रूस का स्थान विश्व के अग्रणी पोटैश खनिज उत्पादक देशों में आ गया है। यूराल विभाग के सिवा सोलिकाम्स विभाग में भी ये खनिज पाये जाते हैं।

कोयले के उत्पादन की दृष्टि से सोवियत् रूस का स्थान विश्व में दूसरा है। पर उनका दावा है कि यदि टन के आधार पर तुलना न करके कैलोरी के आधार पर की जावे तो रूस सर्वप्रथम है। अर्थ यह कि रूस के कोयले की किस्म बहुत अच्छी है। कोयले के नये क्षेत्रों में पेकोरा कोयला क्षेत्र उल्लेखनीय है जो आर्कटिक वृत्त में है और जिसकी खोज का श्रेय भौमिकविद् चेरनोव को है। नई खोजों के साथ ही साथ सोवियत् वैज्ञानिकों का ध्यान पुराने क्षेत्रों की ओर कम नहीं हुआ वरन् वे सदा प्रयत्नशील रहे कि कोयला क्षेत्रों की उन्नति की जावे। तीन क्षेत्र जो मुख्य हैं—डोनबास, कुज़नास और कारागंडा। डोनेट्स घाटी का कोयला क्षेत्र जो रूस का सबसे पुराना क्षेत्र है, पूर्ण रूप से पर्यवेक्षित था पर उत्साही वैज्ञानिकों ने इसका पुनः पर्यवेक्षण किया और इसकी सीमा बढ़ाकर दिखाई। अब इस क्षेत्र की सीमा उत्तर-पश्चिम में लोज़ोवाया तथा दक्षिण-पूर्व में डान और साल्स्क स्टेपीज तक हो गई है। इस क्षेत्र से अब पहिले से डेवढ़ा कोयला प्राप्त हो रहा है। इस क्षेत्र से भी आश्चर्यजनक उन्नति हुई है—कुज़नेट्स्क घाटी क्षेत्र की जहाँ पहिले से पैंतीस गुना अधिक माल निकाला जा रहा है। यावोरस्सी नामक भौमिकविद् जिसे अब स्टैलिन-पुरस्कार मिल चुका है, इस क्षेत्र की उन्नति में मुख्य है।

अपनी खोजों में सोवियत् वैज्ञानिकों ने आधुनिकतम यंत्रों से काम लिया है पर साथ ही साथ उन्हें एक और मनोरंजक उपाय सूझा। कुछ स्थानों के नाम ऐसे हैं जिनसे कुछ अर्थ निकाला जा सकता है। उदाहरण स्वरूप जेजकजगान का अर्थ होता है—"वह स्थान जहाँ ताँबा खोदा जाता था।" साटपयेव नामक वैज्ञानिक स्थान के नाम का भी विश्लेषण करता है। इस स्थान के नाम से ही उसने यहाँ ताँबे के खनिज की प्राप्ति की। इसी प्रकार हैदरकान स्थान के 'कान' ने उसे वहाँ की पारे के

खनिज की प्राप्ति का श्रेय दिलाया। उत्तरी कज़ाकस्तान में, बोशचेकल में ताँबे की प्राप्ति हुई है और उज़्बेकिस्तान के आलमलिक में भी ताँबे की प्राप्ति हुई है। इस प्रकार कज़ाकस्तान सोवियत् रूस का मुख्य ताँबा-केन्द्र हो गया है।

बाकू तैल-क्षेत्र की उन्नति :—

जिस शीघ्रता से हम अपने खनिज स्रोतों को खाली करते जा रहे हैं, उतनी ही शीघ्रता से हम अंधकार की ओर जा रहे हैं। यदि मनुष्य ने विज्ञान में इतनी उन्नति न कर ली कि न्यून से न्यून परिणाम में खनिज का अधिक से अधिक उपयोग कर ले अथवा हमारे विज्ञान ने यह योग्यता न प्राप्त की कि कम से कम धातु वाले खनिज से भी वह धातु प्राप्त कर सके तो हमारा भविष्य अधिक उज्ज्वल नहीं है। 'हमारे' से मेरा मतलब है मनुष्य जाति से। बात यह है कि हमारे खनिज के ये स्रोत एक बार खत्म हो जाने पर फिर से भरे नहीं जा सकते। यह मनुष्य के वश की बात नहीं। तो हमारी बुद्धिमत्ता इसी में है कि हम अपने खनिजों का उचित उपयोग करें और उनकी बचत करें। दूसरे हमें नये स्रोतों की खोज करनी है। सोवियत् वैज्ञानिक इन प्रश्नों की ओर अधिक सचेत हैं और उनकी यह सजगता बाकू तैल-क्षेत्र की उन्नति से प्रकट है। सुदूर उत्तर में सोवियत् भूविदों ने उखटा तेल क्षेत्र का निरीक्षण किया है। यों तो उखटा के बारे में जानकारी बहुत पुरानी है। करीब १५ वीं शताब्दी में पेचोरा के निवासी यहाँ मिट्टी से अपनी गाड़ियों में तेल का काम लेते थे। जारशाही के जमाने में प्रयदुनोव नामक एक व्यापारी ने इस क्षेत्र की ओर ध्यान दिया पर इसके पहिले कि वह कुछ कर पाये, वह टैक्स न देने के अपराध में गिरफ्तार हो गया। सिडोरोव नामक एक दूसरे व्यवसायी ने इसके बाद यहाँ कुछ काम किया पर मशीन टूट जाने से उसे यह त्याग देना पड़ा। वोरोनोव नामक एक कप्तान ने एक डेनिश इंजीनियर यहाँ के पर्यवेक्षण को लगाया पर इस इंजीनियर ने बाकू को प्रतियोगिता से बचाने के लिये असत्य कह दिया कि यहाँ तेल नहीं है। अक्टोबर क्राँति के पश्चात् सोवियत् वैज्ञानिक इस बर्फीले प्रदेश में अपनी खोज में सफल हो ही गये।

बाकू के क्षेत्र का सूक्ष्मतम पर्यवेक्षण किया जा चुका है और तेल के कुँए ४ किलोमीटर की गहराई तक काम कर रहे हैं और पाँच किलोमीटर गहराई के कुएँ भी शीघ्र ही काम करने लगेंगे। बाकू के पश्चिमवर्ती प्रदेशों में भी तेल की खोज हुई है। किरोवाबाद में कुछ तैल फुहारों की खोज हो चुकी है। दक्षिणवर्त्ती भाग में कुरा नदी तक तैल-क्षेत्रों की उपस्थिति का ज्ञान हो गया है। इन नई खोजों के अतिरिक्त रूसी इंजीनियर तिरछे कुँए खोद कर समुद्री भागों से भी तेल निकाल रहे हैं। समुद्र में भी वे इस्पातों के प्लेटफार्म बनाकर उसपर तेल खींचने की मशीन लगाने में समर्थ हो गये हैं। इस प्रकार समुद्री भागों से तेल प्राप्त किया जा रहा है।

यूराल पर्वत और वोल्गा नदी के बीच में एक नये क्षेत्र की खोज हुई है जो "दूसरा बाकू" कहा जाता है। इस क्षेत्र के बारे में पिछली शताब्दी में लोगों को ज्ञान था पर इस दिशा में कोई प्रयत्न नहीं हुआ था। १९२९ में पोटैशियम खनिज की खोज के लिये कामा घाटी में प्रयत्न चल रहा था पर पोटैशियम न मिलकर तेल मिल गया पर यह स्रोत बहुत कम था। यूराल और वोल्गा के बीच के कार्बोनिफरस और परमियन स्तरों में तेल की अधिकता है और यहाँ कई क्षेत्रों में काम हो रहा है। ओरेन बर्ग, व्याटका और झिगुली क्षेत्रों में तेल के कुँए चल रहे हैं। जारशाही के युग में बाकू क्षेत्र के पूँजीपतियों ने इन दूसरे क्षेत्रों की खोजों के सारे प्रयत्न विफल कर दिये थे क्योंकि उस हालत में उन्हें प्रतियोगिता का सामना करना पड़ता। पर सोवियत् राज्य में बाकू क्षेत्र ने इन्हीं क्षेत्रों की खोज

[शेष पृष्ठ २४ पर]

भूसन्तोल[1]

(ISOSTASY)

[लेखक—प्रो० जनार्दनप्रसाद श्रीवास्तव एम० ए०, एल० टी०, एम० एस-सी०, एफ० एन० जी० एस०, अध्यक्ष, भूगोल-विभाग, टी० डी० डिग्री कालेजजौनपुर]

भूमिका

डटन (Dutton) नामक एक अमरीकी भू-गर्भ वेत्ता ने सन् १८८९ ई० में सबसे पहले ISO-STASY (भूसन्तोल) शब्द का प्रयोग किया । ISOSTASY का शाब्दिक अर्थ है सन्तुलन की ओर प्रवृत्ति । भूसन्तोल पृथ्वी की पर्पटी के विभिन्न प्राकृतिक विभागों के सन्तुलन का द्योतक है । डटन ने ही सर्वप्रथम क्षतिपूर्ति की अवधारणा (Concept of Compesnation) का प्रतिपादन किया । इसकी विस्तृत विवेचना आगे की गई है । इसके अनुसार भू-पृष्ठ के उठे हुए भागों (जैसे पर्वतों) के नीचे कम घनत्व के पदार्थ हैं और निचले क्षेत्रों (जैसे सागर-नितल) के नीचे अधिक घनत्व के पदार्थ हैं । ज्यामिति-वेत्ताओं (Geodesists) ने इस सिद्धान्त को और आगे विकसित किया है ।

अक्ष-रेखा मापन Latitude Measurements

अक्षरेखा का ज्योतिषीय निर्धारण स्वतन्त्ररूप से लटकते हुए सीसमुण्ड (Plumb Bob) की दिशा के अनुसार होता है । यदि पृथ्वी बिल्कुल गोल होती और उस पर सवत्र समान गहराई के सागर का आवरण होता तो सीसमुण्ड[2] (Plumb Bob) प्रत्येक स्थान पर सागर-पृष्ठ के प्रति अभिलम्ब (Normal) रहता, किन्तु यह वास्तविकता नहीं है । न तो पृथ्वी बिल्कुल गोल ही है और न ही उस पर सर्वत्र समान ऊँचाई का जल का स्तर है । इसके अतिरिक्त द्वीप, पर्वत और पठार जैसे उठे हुए भाग अपने आकर्षण द्वारा सीस-मुण्ड को प्रभावित करते हैं, जिससे वह अभिलम्ब दशा में नहीं रहने पाता । इस प्रकार के विक्षेप (Deflection) का अनुभव सर्व प्रथम सन् १८५१ ई० में सिन्ध-गंगा के मैदान में ज्यामितीय-आपरीक्षण (Geodetic Survey) करते समय किया गया । यह ज्ञात हुआ कि दो स्थानों के अक्षांशों का अन्तर ज्योतिष की रीति से तथा त्रिकोणीकरण (Triangulation) की रीति से एक सा नहीं आता । इनमें से एक स्थान हिमालय पर्वत से सौ मील से भी कम दूरी पर था । इससे यह अनुमान किया गया कि हिमालय पर्वत ने सीसमुण्ड को अपनी ओर आकर्षित किया होगा, जिससे यह अन्तर हो गया है । प्रैट (Pratt) ने इस आकर्षण का मूल्य निर्धारित किया और तदनुसार समस्त गणना (Calculations) में परिवर्तन किये गये । उसने पर्वत-पिण्डों का घनत्व २.७ माना, जो भूपर्पटी की शिलाओं का औसत घनत्व है । इतना सब करने पर भी विक्षेप के गणित (Calculated) और ईक्षित (Observed) मूल्य समान न हुए । जितना विक्षेप वास्तव में हुआ, गणित के अनुसार, उससे कहीं अधिक होना चाहिये था । अतएव इस अन्तर

१—लेखक की शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली रचना 'भूसैद्धान्तिकी' से उद्धृत ।

२—साहुल ।

के समाधान के लिये दो वैकल्पिक (alternative) उपकल्पनायें उपस्थित की गईं :—

(१) पर्वत बहुत ही हल्के पदार्थों से बने हैं और उनका घनत्व इतना अधिक नहीं है, जितना कि अनुमान किया गया है।

(२) भूपृष्ठ के उठे हुए भागों अथवा वर्धनों (Bulges) के नीचे कम घनत्व के पदार्थ हैं और निचले प्रदेशों के नीचे अधिक घनत्व के।

प्रथम उपकल्पना के समर्थकों ने तो यहाँ तक कह डाला कि पर्वत केवल बुलबुले हैं और वे पूर्णतः अथवा-आंशिक रूप से खोखले हैं भूगर्भ शास्त्र के प्रमाण इसके विरुद्ध हैं। अतएव द्वितीय दृष्टिकोण को मान्यता मिली। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला गया कि—

'भू पृष्ठ के ऊपर उठे हुये भागों के आकषण के आधिक्य की क्षतिपूर्ति नीचे घनत्व की न्यूनता से होती जाती है।'

भ्वाकृष्टि मापन (Gravity Measurements)

भ्वाकृष्टि के गणित और ईक्षित मूल्यों (Calculatad and observed values) के अध्ययन से भी हम उपर्युक्त निष्कर्ष पर पहुँचते हैं।

भ्वाकृष्टि के मूल्य को निम्नलिखित प्रतिकारक प्रभावित करते हैं :—

(१) अक्षांश
(२) देशान्तर
(३) ऊँचाई
(४) भौम्याकृति (Topography)

(१) अक्षांश—भ्वाकृष्टि सम्बन्धी समस्त गणनाओं में पृथ्वी के समस्त पुञ्ज को उसके मध्य-विन्दु पर संकेन्द्रित मानते हैं। पृथ्वी ध्रुवों पर चपटी है। अन्य शब्दों में विषुवत-रेखा की अपेक्षा ध्रुव पृथ्वी के मध्य-विन्दु से अधिक निकट हैं। चित्र १ से यह कथन स्पष्ट होगा। अतएव विषुवत-रेखा की अपेक्षा ध्रुवों पर भ्वाकृष्टि का मूल्य अधिक है।
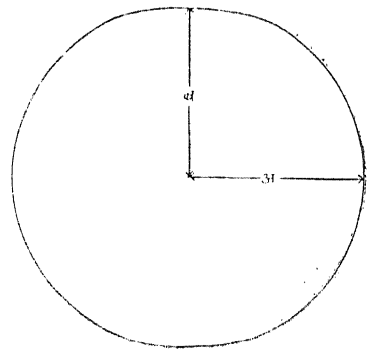
चित्र १ —उपगोल पृथ्वी [The Earth Spheroid]

[इस चित्र से यह स्पष्ट होगा, कि पृथ्वी बिल्कुल गोल नहीं है, वरन् ध्रुवों पर चपटी है। यही कारण है कि पृथ्वी के मध्य विन्दु से ध्रुवों की दूरी (ब) विषुवत रेखा की दूरी (अ) से कम है।]

(२) देशान्तर—किसी भी देशान्तर पर—विशेष कर विषुवत-रेखा पर—पृथ्वी की रचना समान नहीं है—कहीं वह ऊँची है, तो कहीं नीची। अतएव पृथ्वी के मध्य-विन्दु से उसकी दूरी असमान है और तदनुसार भ्वाकृष्टि का मूल्य भी भिन्न है।

(३) ऊँचाई—भ्वाकृष्टि के मूल्य को प्रभावित करने वाला तीसरा प्रतिकारक ऊँचाई है, क्योंकि विभिन्न ऊँचाइयों पर स्थित स्थान पृथ्वी के मध्य-विन्दु से विभिन्न दूरियों पर होंगे और तदनुसार भ्वाकृष्ट के मूल्य में भी अन्तर होंगे।

(४) भौम्याकृति—स्थल और जल के विभिन्न रूप भी सीसमुण्ड को प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिये, पर्वत आकषण करते हैं।

भ्वाकृष्टि के गणित मूल्य को इक्षित मूल्य पर लाने के लिये उपर्युक्त सभी प्रतिकारकों पर विचार किया गया और तदनुसार संशोधन भी किये गये, किन्तु फिर भी उनमें अन्तर बना ही रहा। अतएव, यह निष्कर्ष निकाला गया कि—

'भूपृष्ठ के ऊपर उठे हुए भागों की क्षतिपूर्ति नीचे घनत्व की न्यूनता से हो जाती है।'

क्षतिपूर्त्ति की अवधारणा
(The Concept of Compensaton)

भ्वाकृष्टि के गणित मूल्य को इच्छित मूल्य के समान लाना ही भूसन्तोल की प्रधान व्यवहारिक समस्या है। इस समस्या के सन्तोषजनक हल के लिये वह आवश्यक है कि हमें यह ठीक प्रकार से ज्ञात हो जावे कि भूपृष्ट के नीचे घनत्व कहाँ पर और किस प्रकार घटता-बढ़ता है।

हेफोर्ड (Hayford) ने यह विचार रखा कि पृथ्वी में एक ऐसा समतल है, जिसके ऊपर शिलाओं के घनत्व में भिन्नता है, किन्तु उसके नीचे घनत्व सर्वत्र समान है। इसे उसने 'क्षतिपूर्त्ति के समतल' का नाम दिया। चित्र २ में क्षतिपूर्त्ति का समतल प्रदर्शित किया गया है। क्षतिपूर्त्ति के समतल पर स्थित समान क्षेत्रफल के आधार वाले निकटवर्ती स्तम्भों में घनत्व और ऊँचाई प्रतीपानुपाती (Inversely proportional) हैं अर्थात्
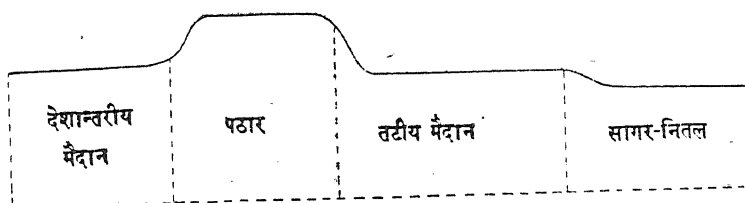
चित्र २—भूसन्तोल विषयक एक दृष्टिकोण

$$\text{घनत्व} \propto \frac{1}{2} \text{ ऊँचाई}$$

उपर्युक्त सूत्र की सहायता से हम क्षतिपूर्त्ति के समतल को निर्धारित कर सकते हैं। हेफोर्ड ने यह ज्ञात किया कि यदि हम क्षतिपूर्त्ति के समतल को धरातल से लगभग २०० किलोमीटर की गहराई पर मान लें, तो भ्वाकृष्टि सम्बन्धी अन्तर ९० प्रतिशत कम हो जाता है।

इन सभी संशोधनों के उपरान्त भी भ्वाकृष्टि का गणित मूल्य इच्छित मूल्य के बिल्कुल समान नहीं होता। इसका कारण स्थानीय शिलाओं की संरचना का विभेदन है।

भूसन्तोल के सम्बन्ध में भौगोलिक एवं भौमिकीय दृष्टिकोण

स्तम्भों की कल्पना वास्तव में गणित में की जाती है। प्रकृति में इस प्रकार के स्तम्भ विद्यमान नहीं हैं, अतएव वे पृथ्वी की यथार्थ संरचना के द्योतक नहीं हैं।

अब हम स्तम्भ-अवधारणा की दृष्टि से यह विचार करेंगे कि यदि स्तम्भों के सन्तुलन में कुछ गड़बड़ी हो जाती है, तो उसका क्या प्रभाव पड़ता है। यदि अपरदन (Erosion) के कारण कोई पर्वत-स्तम्भ घिस जाता है, तो उसका भार घट जाता है। दूसरी ओर पर्वत स्तम्भ का अपरदित पदार्थ महासागर स्तम्भ में एकत्र होता है, जिससे उसका भार बढ़ जाता है। फलस्वरूप पर्वत स्तम्भ ऊपर उठ जाता है और महासागर स्तम्भ नीचे धँस जाता है। यह तथ्य चित्र ३ से स्पष्ट होगा। पवत स्तम्भ के ऊपर उठने से भूपर्पटी में जो स्थान रिक्त होता है, उसकी पूर्त्ति के लिये सैम्रा (Sima) दूसरी दिशाओं से उस ओर प्रवाहित होता है। भूगर्भ शास्त्र इसकी पुष्टि करता है। किन्तु यह तो स्पष्ट ही है कि ज्यामितिवेत्ताओं की यह अवधारणा कि पृथ्वी की पर्पटी ऐसे स्तम्भों से बनी है, जिनमें स्वतंत्ररूप से ऊपर उठने और नीचे धँसने की गतियाँ होती रहती हैं, न्यायसंगत नहीं है। इच्छित तथ्य इसके प्रतिकूल हैं। इसके अतिरिक्त यह अवधारणा एक ओर तो क्षैतिज-गतियों की पूर्ण उपेक्षा करती है और दूसरी ओर उद्ग-गतियों (Vertual movements) का अतिरञ्जन। इससे प्रगट है, कि ज्यामिति वेत्ता पृथ्वी की संरचना से भली भाँति परिचित नहीं हैं।

पृथ्वी में भिन्न घनत्व के पदार्थ स्तम्भ के रूप में नहीं वरन् स्तरों (Layers) अथवा कर्परों

(Shells) के रूप में विद्यमान हैं और हमें इसका विचार करना आवश्यक है।
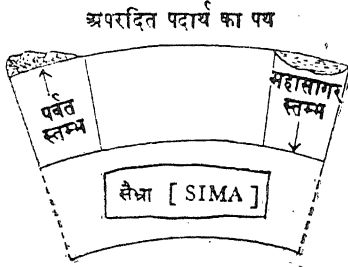
चित्र ३—सन्तुलन का विक्षोभ

सन् १८५९ ई० में एरी (Airy) ने यह विचार प्रस्तुत किया कि पर्वतों के मूल सैश्रा में धँसे हुए हैं (चित्र ४८ ग)। इस प्रकार कम घनत्ववाले पर्वत-मूल अधिक घनत्व के सैश्रा में घुसकर उसके आकर्षण को घटा देते हैं। अन्य शब्दों में, इस उपकल्पना के अनुसार पर्वत सैश्रा पर तैरते हैं।
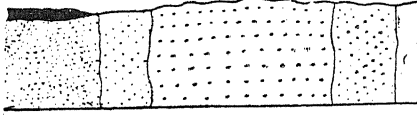
(क) हेफोर्ड तथा बौवी की धारणा
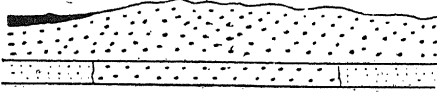
(ख) जौली की धारणा
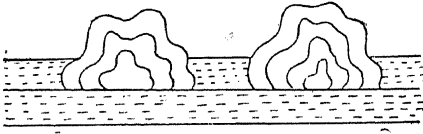
(ग) एरी की धारणा

चित्र ४—भूसन्तोल के सम्बन्ध में विद्वानों की धारणायें

सन् १९३५ ई० में जौली (Joly) ने यह प्रदर्शित किया कि उपर्युक्त दोनों कल्पनाओं में विशेष अन्तर नहीं है। उसने बतलाया कि जहाँ हेफोर्ड और बौवी (Bowie) ने पृथ्वी की संरचना को गणित के दृष्टिकोण के अनुसार माना है वहाँ उन्होंने समान क्षेत्रफल के नीचे समान मात्रा वाले स्रावन के मौलिक सिद्धान्त की भी अवहेलना नहीं की है। जौली ऐसी पर्पटी को जिसमें क्षतिपूर्ति के समतल के ऊपर घनत्व और ऊँचाई प्रतीपानुपाती हों अकारण, अव्यवहारिक और असम्भव मानता है। वह उसे गणितज्ञों की कपोल-कल्पना समझता है। उसका कथन है कि यदि यह सम्भव भी हो तो भौमिकीय प्रक्रियायें इस अवस्था को अधिक काल तक न रहने देंगी। जौली ने हेफोर्ड द्वारा प्रसाधित एक अन्य उपकल्पना की ओर ध्यान आकर्षित किया है (चित्र ४ ख) जिसके अनुसार—

(१) सबसे ऊपर समान घनत्व का एक स्तर है, जो हल्की महाद्वीपीय पर्पटी से बना है।

(२) उसके नीचे लगभग १० मील मोटा ऐसा स्तर है जिसमें घनत्व एकसा नहीं है क्योंकि इसमें ऊपर के कम घनत्ववाले पदार्थ के कुछ भाग धँसे हुये हैं।

वास्तव में, यह महाद्वीपीय कर्पर के असम आधार (Irregular base of continental shell) का सरल प्रदर्शनमात्र है, जिसमें क्षतिपूर्ति का कोई समतल निहित नहीं है। दूसरी ओर इसमें एक ऐसा स्तर है, जिसमें पारस्परिक घनत्वपूरक पदार्थ वितरित हैं।

भारतवर्ष में भूसन्तोल सम्बन्धी दशायें

ज्यामिति (Geodesy) की दृष्टि से भारतवर्ष में अनेक विशेषतायें पाई जाती हैं। संसार के अन्य किसी भाग में भ्वाकृष्टि के मूल्य में इतने असाधारण विभेदन नहीं पाये जाते, जितने उत्तरी भारत में। कर्नल बुर्राड के अनुसार द्रव का समतल क्षैतिज दशा से इतना अधिक कहीं भी विचलित नहीं होता जितना भारतवर्ष में। भारत में ही सर्वप्रथम यह ज्ञात हुआ कि—

(१) हिमालय के ऊपर उठे हुए वर्धन के नीचे कम घनत्व के पदार्थ हैं।

(२) सिन्ध-गंगा के मैदान के नीचे अधिक घनत्व के पदार्थ की एक शृंखला विद्यमान है।

(३) पूर्वी और पश्चिमी घाटों में दोलक (Pendulum) का विक्षेप सागर की ओर होता है, दक्षिणी पठार की ओर नहीं।

उपर्युक्त अनुसन्धानों ने विकसित होकर 'भूसन्तोल' के सिद्धान्त का रूप ग्रहण कर लिया, जिसका उल्लेख ऊपर हो चुका है। हिमालय प्रदेश की अपेक्षा दक्षिणी पठार में भूसन्तोल की दशायें कहीं अधिक सम्पन्न हैं। यही कारण है, कि दक्षिणी भारत में भूकम्प कभी नहीं आते, जब कि उत्तरी भारत में वे बारम्बार आते हैं।

अब हम भूसन्तोल की दृष्टि से भारतवर्ष के प्रमुख प्राकृतिक विभागों का अध्ययन करेंगे—

१. हिमालय प्रदेश

हिमालय प्रदेश के विभिन्न स्थानों में सीसमुण्ड (Plumb Bob) और दोलक (Pendulum) के विक्षेपों (deflections) के ईक्षित (Observed) और गणित (Calculated) मूल्यों में बड़े ही असाधारण अन्तर पाये जाते हैं। यह तथ्य निम्नांकित तालिका से स्पष्ट होगा—

स्थान (Places)	उत्तरी विक्षेप (Deflection towards North)	
	गणित मूल्य (Calculated Value)	ईक्षित मूल्य (Observed Value)
देहरादून	८६ सैकण्ड	३१ सैकण्ड
मरी	४५ सैकण्ड	१२ सैकण्ड
कलियाना	५८ सैकण्ड	१ सैकण्ड

उपर्युक्त अंकों से स्पष्ट है कि हिमालय पर्वत से काफी क्षतिपूर्ति हो जाती है। बाह्य-हिमालय में अल्प-क्षतिपूर्ति (Under—Compensation) होती है और मध्य-हिमालय में अति-क्षतिपूर्ति (Over-Compensation) होती है।

२—सिन्ध-गंगा का मैदान

सिन्ध-गंगा के मैदान में विक्षेप निश्चित रूप से दक्षिण की ओर होता है, हिमालय की ओर नहीं। २३° उ० अक्षांश तक दक्षिणी विक्षेप बढ़ता जाता है; इसके दक्षिण में विक्षेप उत्तर की ओर होने लगता है। इस आश्चर्यजनक तथ्य का स्पष्टीकरण कर्नल बुर्रार्ड ने किया है। इनके अनुसार सिन्ध-गंगा के मैदान के नीचे अधिक घने पदार्थों से बनी एक शृङ्खला विद्यमान है, जो उड़ीसा से उत्तर-पश्चिम की दिशा में जबलपुर होती हुई कलाट तक चली गई है। भ्वाकृष्टि सम्बन्धी आधुनिक मापन इस कल्पना की पुष्टि करते हैं।

डा० राजनाथ का दृष्टिकोण

काशी हिन्दू-विश्वविद्याल के भूगर्भ-भूभौतिकी विभाग (Departments of Geology and Geo-physics) के अध्यक्ष डा० राजनाथ भी उपर्युक्त कल्पना को सही मानते हैं। इसकी पुष्टि के लिये इन्होंने अनेक प्रमाण भी प्रस्तुत किये हैं। इन्हें इलाहाबाद और बनारस के जिलों में बहुत से हाथी-दाँत के अवशेष मिले हैं। जिन पदार्थों में ये अवशेष पाये गये हैं, वे पोटवार के पठार की तृतीयक युग (Tertiary period) की मृत्तिका (clay) से मिलते-जुलते हैं। इलाहाबाद के निकट नैनी में संछिद्रण (Bore-hole) किया गया। उसमें भूमि के नीचे बहुत गहरे एक उद्वलि (Anticline) में हाथी-दाँत का एक टुकड़ा मिला है।

३. दक्षिणी लावा का क्षेत्र (Deccan Trap)

इसकी रचना अपेक्षाकृत अधिक घनत्व के पदार्थों से हुई है। भारी पदार्थों से निर्मित होने के कारण इसे धन-विचालिता (Positive Anamoly) देना चाहिये किन्तु यह ऋण-विचालिता (Negative Anamoly) देता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है, कि इसके नीचे कम घनत्व के पदार्थ विद्यमान हैं। [शेष पृष्ठ १४ पर]

प्राणिजगत् का विकास

[ले०—श्री प्रतापचन्द्र गुप्त, प्रयाग विश्वविद्यालय]

प्राणि जगत् पर एक दृष्टि डालते ही हम उसमें निहित विभिन्नता से आश्चर्यान्वित हो उठेंगे। प्रारम्भ में मनुष्य के अविकसित मस्तिष्क ने शायद यह सोचा हो कि विभिन्न प्राणियों का प्रादुर्भाव उसी रूप में हुआ होगा जैसा कि वे वर्तमान समय में हैं। परन्तु मनुष्य का वर्तमान विकसित मस्तिष्क यह बात पूर्णतया सिद्ध कर चुका है कि विकसित प्राणियों का विकास अविकसित प्राणियों से ही हुआ है। अनेक खोजों एवं अनुभवों के द्वारा यह बात सिद्ध हो चुकी है कि एक अरब पच्चीस करोड़ वर्ष पूर्व पृथ्वी पर कुछ ऐसे छोटे जीवाणुओं का प्रादुर्भाव हुआ जो अनुकूल वातावरण के प्रभाव से अपने स्वरूप में उन्नति करते गये तथा आज की वर्तमान विकसित अवस्था में पहुँच गये।

मनुष्य की यह धारणा कुछ खोजों एवं प्रमाणों पर आधारित है यदि हम प्राणिमात्र के शरीर रचना को ही ले लेवें तो देखेंगे कि प्रत्येक जीव एक दूसरे से आश्चर्य जनक समानता रखता है। उदाहरणार्थ यदि हम रीढधारियों को ही ले लेवें तो देखेंगे कि रीढधारियों के समूह के अंतर्गत २ प्राणियों का एक विशाल समूह आ जाता है। प्रत्येक रीढधारी आपस में आश्चर्यजनक समानता रखता है। रीढधारी जीवों को पाँच समूहों में विभाजित किया गया है जो क्रमशः मछली, उभचर, रेंगने वाले जानवर, चिड़ियाँ तथा स्तनधारी हैं। यदि इन सभी समूहों के जीवों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाय तो हमें मालूम होगा स्तनधारियों का प्रादुर्भाव मछलियों के विकास के फलस्वरूप हुआ है।

वर्तमान समय में समस्त जीवों को उनकी विकसित, अर्द्ध विकसि या अविकसित अवस्था के विचार से क्रमबद्ध कर सकते हैं। प्रत्येक क्रम एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। इसलिये हम दावे से कह सकते हैं कि विकसित प्राणी का विकास अविकसित प्राणियों से हुआ है।

यदि प्रत्येक विभाग के प्राणियों के कुछ खास अंग पर हम विचार करें तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि उनमें आश्चर्यजनक समानता है। उदाहरणार्थ यदि हम अवयवों पर ही विचार करें तो देखेंगे कि मछलियों को छोड़ कर यह प्रायः प्रत्येक रीढ़धारी में किसी न किसी रूप में पाया जाता है। चिड़ियों में यह डैने के रूप में तथा कुछ पानी में रहने वाले स्तनधारियों में पैडल के रूप में पाया जाता है। रीढ़धारियों में उगलियों की संख्या प्राय पाँच होती है लेकिन कुछ में वातावरण एवं उनके स्वभाव के कारण इस संख्या में फर्क पड़ जाता है उदाहरण स्वरूप अनगुलाटा (Ungulata) में पिछले पैरों की उगलियाँ इसलिये कम हो जाती हैं क्योंकि वह हमेशा इन पैरों को जमीन से ऊपर रखता है।

भ्रूणावस्था में जीवों का परीक्षण भी विकासवाद के सिद्धांत को सिद्ध करता है। यदि किसी विकसित भ्रूण की प्रत्येक अवस्था का अध्ययन किया जाय तो हमें विदित होगा कि भ्रूण प्रायः उन सभी अवस्थाओं से होकर गुजरता है जिन अवस्थाओं में वर्त्तमान अविकसित जीव विद्यमान हैं। प्रत्येक विकसित या अविकसित प्राणी का विकास गर्भ के एक छोटे से सेल से होता है जो प्राणिजगत के सबसे पुराने एवं छोटे प्राणी अमीबा का प्रतिरूप होता है। इसी प्रकार यदि हम मेंढक के विकास को देखें तो हमें विदित होगा कि मेंढक अपनी विकास अवस्था में

एक ऐसी अवस्था में पहुँचता है, जबकि वह मछली का प्रतिरूप मात्र होता है तथा उसे टैडपोल कहते हैं।

चट्टानों की परतों के मध्य स्थित प्राणियों के अवशेषों का अध्ययन करने से भी हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि विकास प्राप्त जीवों का उद्गम स्थान अविकसित प्राणी ही है। चट्टानें दो प्रकार की होती हैं। पहली चट्टानें पिघले हुये पदार्थों के जमने से हुई हैं तथा इनके मध्य किसी प्रकार के अवशेष नहीं होते। दूसरी प्रकार की चट्टानें वे हैं जो कि धीरे धीरे बालू धूल कोयले के कणों के गिरने से बनती हैं। इस प्रकार की चट्टानें परतदार चट्टानें कहलाती हैं तथा इन्हीं परतों के मध्य में जीवों के कड़े अवशेष जैसे उनकी हड्डियाँ, दाँत तथा अन्य कड़े भाग पाये जाते हैं। यदि हम सबसे निचली परतों में पाये जाने वाले अवशेष का अध्ययन करें तो वहाँ हमें सिर्फ अर्द्ध विकसित प्राणियों के ही अवशेष मिलते हैं। यह सिद्ध करता है कि प्रारम्भ में सिर्फ अविकसित प्राणी ही पाये जाते थे तथा समय बीतने के साथ ही विकसित प्राणियों का प्रादुर्भाव हुआ। जर्मनी संग्रहालय में रखा हुआ आरकियापटेरिस (Archaeoprateryx) का अवशेष यद्यपि परदार चिड़ियों के समान है तदापि उसके कई अंग रेंगने वाले जानवरोंसे आश्चर्यजनक समानता रखते हैं। यह अवशेष यह सिद्ध करता है कि चिड़ियों का प्रादुर्भाव रेंगने वाले जीवों में कुछ आवश्यक परिवर्तनों के ही करण हुआ है।

विकसित प्राणियों का प्रादुर्भाव अविकसित जीवों से ही हुआ है इस तथ्य को पूर्णयता सिद्धात करने के लिये अनेक व्यक्तियों ने खोज की जिनके फलस्वरूप अनेक सिद्धांत प्रकाश में आये जिनमें से तीन सिद्धांत काफी प्रसिद्ध हैं तथा समस्या का उचित हल प्रस्तुत करते हैं।

पहला सिद्धांत लेमारकियन (Lamarckian) का सिद्धांत है। इनके अनुसार नये एवं विकसित प्राणियों का प्रादुर्भाव वातावरण के बदलने के कारण उनके पुराने स्वभाव तथा कार्य प्रणाली बदल गयी, जिसके कारण एक नये प्रकार के प्राणी का प्रादुर्भाव हो गया।

लेमारकियन (Lamarckian) के अनुसार नये प्राणी के जन्म के लिये तीन चीजें आवश्यक होती हैं। पहला आस पास का वातावरण, दूसरा किसी खास अङ्ग का उपयोग, या अनुपयोग तीसरा पैत्रिक गुण।

इस सिद्धांत को पूर्णतया सिद्ध करने लिये लेमारकियन ने जिराफ का उदाहरण लिया। उनके अनुसार जिराफ की अगले टांगों के लम्बे होने का रहस्य उस स्थान के लम्बे लम्बे ऊँचे पेड़ हैं।

यद्यिप यह सिद्धाँत प्रणियों के विकास का हल प्रस्तुत करता है तद्यपि यह विकासवाद के कुछ प्रश्नों को हल नहीं कर पाता।

दूसरा सिद्धांत डारविन का प्रसिद्ध सिद्धांत है। डारविन के सिद्धाँत के अनुसार प्रत्येक प्राणी बहुत तेजी से एवं असीमित संख्या में बच्चे उत्पन्न करता है जिसके कारण सीमित स्थान में असीमित जीव उत्पन्न हो जाते हैं तथा तब जीने के साधनों के अभाव में प्रत्येक जीव को अपने जीवन के लिये संघर्ष करना पड़ता है। डारविन के अनुसार जो अधिक योग्य होते हैं उन्हें प्रकृति सुरक्षित कर लेती है तथा जो अयोग्य होते हैं वे मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रकृति योग्य एवं शक्तिशाली जीवों को चुन लेती है। प्रकृति के इस चुनाव कार्य को डारविन ने 'Natural Selection' का नाम दिया।

डारविन के सिद्धांत को पूर्णतया समझने के लिये हमें प्रकृति में हर क्षण होने वाली कुछ घटनाओं पर सोचना होगा। यदि हम जीवों की उत्पादन क्षमताको देखें तो हमें विदित होगा कि प्रत्येक जीवकी उत्पादन क्षमता कल्पनातीत होती है। उदाहरणार्थ यदि एक घोघा कुछ पीढ़ियों तक संतान बढ़ाने में सफल हो जाय तथा उसकी प्रत्येक संतान को बढ़ने का समुचित अवसर एवं साधन प्रदान किया जाय

तो कुछ ही पीढ़ियों बाद उनकी संख्या ६६×१०२ हो जायेगी तथा उनका कुल आयतन का आठगुना होगा। अतएव यह स्वयंसिद्ध है कि प्रकृति इतनों में से अधिकांश को मार डालती है तथा केवल कुछ योग्य सन्तानों को ही बढ़ने का अवसर देती है।

किसी सन्तान के योग्य होने में पैत्रिकता का भी काफी सहयोग होता है। यह प्रायः देखा गया है कि एक ही माता पिता के समस्त बच्चों में प्रत्येक में कुछ न कुछ विभिन्नता अवश्य होती है। उनमें से कुछ जीवन संघर्ष के योग्य होते हैं तथा कुछ अयोग्य होते हैं। डारविन के अनुसार विभिन्नता जीवन संघर्ष के लिये आवश्यक होती है तथा इसी विभिन्नता के कारण नये एवं विकसित प्राणियों का प्रादुर्भाव होता है।

डारविन ने कृत्रिम चुनाव के द्वारा यह सिद्धकर दिया है, कि विकसित प्राणियों का प्रादुर्भाव चुनाव के ही फलस्वरूप हुआ है।

डारविन ने घरेलू जानवरों पर कई प्रयोग किया तथा इन प्रयोगों के फलस्वरूप उसने कई नई नस्लें उत्पन्न कीं।

जिस प्रकार डारविन ने कृत्रिम चुनाव के द्वारा अच्छी नस्लें उत्पन्न कीं उसी प्रकार डारविन के अनुसार प्रकृति भी चुनाव के द्वारा अच्छी नस्लें एवं विकसित प्राणी उत्पन्न करती है तथा इसी चुनाव प्रणाली के फलस्वरूप आज इस पृथ्वी पर बड़े-बड़े विकसित जीव दृष्टिगोचर होते हैं।

डी-वेरी का स्थिति भेद का सिद्धान्त भी इसी दिशा में एक महान् प्रयास है। इस सिद्धान्त के अनुसार वर्तमान जीव जगत् का विकास कुछ छोटी मोटी विभिन्नताओं तथा प्रकृति के चुनाव द्वारा नहीं हुआ है बल्कि किसी बच्चे में अकस्मात एवं एकाएक ही गम्भीर भेद उत्पन्न हो जाता है जिसके कारण नये प्राणियों का प्रादुर्भाव हो जाता है। इस एकाएक आये हुये भेद को स्थिति-भेद या Mutation कहते हैं।

डी-वेरी ने अनेक पेड़ पौदों पर प्रयोग करके यह सिद्ध किया कि चुनाव द्वारा उत्पन्न विभिन्नताओं का कोई स्थायी असर नहीं होता तथा नयी नस्लों के उत्पन्न होने का यह तरीका ज्यादा अच्छा होता है कि एकाएक ही किसी बच्चे में गम्भीर भेद आ जाय।

स्थिति-भेद या Mutation के सिद्धान्त एवं प्राकृतिक चुनाव में कोई ज्यादा अन्तर नहीं है। क्योंकि किसी भी रूप में नये प्राणियों का प्रादुर्भाव क्यों न हो यह जीवन-संघर्ष द्वारा उत्पन्न प्राकृतिक चुनाव के सिद्धान्त से सहमत है, लेकिन उनके अनुसार जीवन-संघर्ष का विकास से कोई सम्बन्ध नहीं है। उनके कथनानुसार स्थिति-भेद एवं प्राकृतिक चुनाव ही विकास में सहायक होते हैं। डीवेरी के अनुसार स्थिति भेद की अवस्था में प्रकृति में तेजी के साथ परिवर्तन होते हैं जिनके कारण नये नये प्रकार उत्पन्न होते हैं। प्रकृति इन प्रकारों में से योग्य प्रकारों को चुन लेती है तथा उन्हें सुरक्षित रखती है। इस प्रकार प्रकृति में विकसित प्राणियोंका प्रादुर्भाव होता है।

लेकिन प्रकृति में स्थिति-भेद की अवस्था के बहुत कम उदाहरण मिलते हैं इस कारण विकासवाद की समस्या का उचित हल हम डारविन के "प्रकृति के चुनाव एवं क्रमशः विभिन्नता" में अधिक अच्छे रूप में पाते हैं।

भूसन्तोल

[पृष्ठ ११ का शेष]

४. बम्बई तट।

बम्बई के तट पर सीसमुण्ड का विक्षेप सागर की दिशा में होता है। यह अनुमान किया जाता था कि उसके पूर्व में पश्चिमी घाट के स्थित होने से, विक्षेप पूर्व-दिशा में होगा। विक्षेप के विपरीत दिशा में होने का कारण यह भी हो सकता है कि बम्बई-तट और पश्चिमी-घाट के बीच में कम घनत्व के पदार्थ विद्यमान हों, जो पश्चिमी-घाट के भारी पदार्थों की क्षतिपूर्ति कर देते हों।

निष्कर्ष

यह सत्य है कि भूसन्तोल के सिद्धान्त में अनेक दोष हैं, फिर भी यह अनेक ऐसे तथ्यों का स्पष्टीकरण करता है, जो अन्य भाँति समझ में नहीं आते।

भारत की खनिज ईंधन-सम्पत्ति

लेखक—श्री पुष्कर सिंह बी० एस-सी० आनर्स, एम० एस-सी०

प्रायः यह प्रश्न पूछा जाता है, प्राकृतिक देन में जीवन के लिये, संस्कार और सभ्यता के लिये किन किन उपादानों की अत्यधिक आवश्यकता होती है। इसके उत्तर में उदीयमान विद्वान जल को श्रेष्ठ मानते हैं। पानी और मृदा की सहायता से हमें अन्न और वस्त्र प्राप्त होते हैं। ये वृक्ष वृन्द और अन्य जीवधारियों के लिये भी अत्यावश्यक हैं। सभ्यता के स्तर से जीवन की वास्तविक जरूरत की वस्तुओं को देखा जाय तो खनिज ईंधन हीं उत्तमोत्तम है। आज का मानव संसार औद्योगिक विकास की ओर प्रगतिशील है। इन्डस्ट्रीयल रिवोलुशन के बाद औद्योगिक विकास के लिये ईंधन की इतनी अधिक जरूरत हुई कि यदि हम इसके लिये निम्नलिखित वाक्यांश को दर्शायें तो अतिशयोक्ति न होगी—"ईंधन मनुष्यों के जीवन का अवलम्ब है, ईंधन कल्याण का परम निधान है, ईंधन ही सर्व पुष्टि का साधन है।" या इसे हम कहें—"यतो ईंधनस्तुततो वयम्" (ईंधन हैं, इसी से हम लोग हैं।)—यह बात सबको ध्यान में रखनी चाहिये। लेकिन प्राग्-लिखित अवतरण भारत की वर्तमान स्थिति के लिये लागू नहीं है। यह तो उन देशों के लिये लागू है जिनका औद्योगिक विकास चरम सीमा तक पहुँच चुका है।

अक्सर खनिजों को हम तीन वर्ग में विभाजित कर सकते हैं :—

(अ) *ईंधन खनिज* :—इनमें मुख्यतः कोयला, पेट्रोल, पारिमाणिक उर्जा और गैस को सम्मिलित करते हैं।

(आ) *धातु खनिज* :—इसके अन्तर्गत ताँबा, जस्ता, प्लेटिनम, लोहा इत्यादि आता है।

(इ) *अधातु खनिज* :—इस वर्ग में गंधकीय ओषिद तथा धातुओं का समन्वय रहता है।

ईंधन की व्याख्या हम विषद रूप में करने के लिये किसी पर्यायवाची शब्द को देने में असमर्थ हैं। फिर भी "खनिज ईंधन, अवैज्ञानिक व्यक्ति के लिये दैनिक जीवन की अत्यावश्यक सामग्री है; लक्ष्मीपति तथा व्यापारी को खनिज ईंधन धन और शक्तिदायक है; मनोवैज्ञानिक तथा मानवहितैषी को ये वर्तमान सभ्यता के लिये नैतिक उत्थान का स्तम्भ, तथा राजनीतिज्ञ को राजकीय चौकड़ी के लिये लाभ्यर्थ वस्तुएँ हैं।" औद्योगिक नैतिक और सैनिक सुरक्षा के साधन का मूल खनिज ईंधन ही है। खनिज ईंधन का औद्योगिक विकास से चोली-दामन का नाता है, ये दोनों परस्पर सापेक्ष हैं। ईंधन तीन प्रकार के होते हैं—ठोस, द्रव व गैस। ईंधन खनिज के वर्ग से हम यहाँ कोयला, पेट्रोल, पारिमाणिक-उर्जा तथा प्राकृतिक-गैस का विशेष विवरण उद्धृत करते हैं। केन्द्रीयसरकार ने केन्द्रीय ईंधन-अनुसन्धानशाला स्थापित कर इसकी महत्ता को बढ़ा दी है। यह अनुसन्धानशाला बिहार प्रान्त में धनबाद से १० मील दक्षिण की ओर जीलगोरा नामक स्थान पर स्थित है। यहाँ ईंधन की विभिन्न समस्याओं पर अनुसन्धान किया जाता है।

खनिज-कोयला सम्पत्ति :—कोयला प्रकृति की एक अद्भुत देन है। इसने संसार के मानव-जीवनको सुख-समृद्धि प्रस्तुत करने में अन्य खनिजों से अधिक सफलता प्राप्त की है। वर्तमान युग में औद्योगिक महानता की उत्तुङ्ग श्रेणी प्राप्त करने के लिये कोयला एक महत्वपूर्ण उपादान है। कोयले के वृहत उपयोग ने इंग्लैंड को सैन्यशक्ति की वृद्धि में अक्षुण्ण महत्ता

प्रदान की। प्रथम युद्ध के पहले जर्मनी का औद्योगिक विकास कोयले की देन है। अमेरिका आज हर पहलू में अपनी सर्वांगीण शक्ति का डंका इसी की बदौलत बजा रहा है। इस तरह कोयला मनुष्य की सुख-समृद्धि, राष्ट्र का औद्योगिक विकास तथा सैन्य शक्ति के संगठनार्थ उत्तम उपादान है।

कोयला पृथ्वी में प्रस्तरावस्था में पाया जाता है। पत्थर कोयला की वैज्ञानिक परिभाषा अलग-अलग वैज्ञानिकों ने भिन्न-भिन्न रूप से की है। मेरी स्टोप्स और ह्वीलर के अनुसार "कोयला समाधिस्थ वृक्षों का ठोस प्रस्तरीभूत पुंज है, जो निम्नशतांश अधकचरे के सिवाय शुद्ध है।" या "कोयला परिष्कृत खनीजीय वनस्पति है जैसे बालुकाश्म परिष्कृत बालु है या जम्बशिला परिष्कृत कीच है।" यथार्थतः कोयले का मुख्य कलेवर कार्बन की निश्चित मात्रा, उड़नशील द्रव्य, आर्द्रता तथा राख है। जीव विकास काल से वनस्पतियों की अगाध राशियों ने दलदलीय आर्द्र भाग में समाधिस्थ होते जाने का लाखों करोड़ों वर्षों तक प्रयास जारी रखा। इसमें उत्तरोत्तर वनस्पतियों के स्तर विन्यास से पीट या काष्ठीय-कीच की उत्पत्ति हुई। इससे कोयला बनने में प्रायः समाधिस्तर की मुटाई, दबाव, ताप तथा समय सहायक होते हैं। दबाव तथा ताप, शिलाओं के मरोड़ पर निर्भर रहता है। यह अनुमान लगाया गया है कि एक फुट पीट के निर्माण में करीब १०० साल लगते हैं तथा तीन से आठ फुट काष्ठीय कीच से एक फुट कोयला बनता है। या १५ फुट काठ कबाड़ से एक फुट कोयला बनता है। कपिश या भूरा कोयला उथले समाधिस्तर में तथा कम स्तर मरोड़ के प्रभाव से बनता है तथा बिटुमिनस या जतुक्य अंगार तथा एन्थ्रॉसाइट और उत्कृष्ट श्रेणी वाले कोयला मरोड़ तथा स्तरभ्रष्टता वाले भाग में पाये जाते हैं। शिलाओं के मरोड़ तथा स्तर-भ्रष्टता से कार्बनकी मात्रामें वृद्धि देखी गई है। इसका उदाहरण हम अमेरिका में पेनसिलवेनिया की कोयला-तहों में पाते हैं। जहाँ मरोड़ तथा स्तर-भ्रष्टता के अभाव वाले क्षेत्र में ४३ प्रतिशत शुद्ध कार्बन को कोयले की कुल मात्रा में विद्यमान पाया जाता है, वहाँ कुछ मरोड़ तथा स्तर-भ्रष्टता के क्रमिक-विकास वाले क्षेत्रों में कोयले की कुल मात्रा में कार्बन का अंश क्रमशः ४८, ५६, ५८ प्रतिशत तक हो जाता है। उत्कृष्टतम मरोड़ और स्तरभ्रष्टता के प्रभाव वाले क्षेत्र में, दबाव का यथेष्ट प्रभाव पड़ने से ६८, तथा ७३ प्रतिशत तक कार्बन की मात्रा विद्यमान पाई जाती है।

कोयला भिन्न-भिन्न अवयवों का समन्वय है जिनमें कार्बन की मात्रा मुख्य हैं। इसकी अधिकता या न्यूनता पर कोयले का काला रंग आश्रित रहता है और ये धुआँ रहित ऊँची लपटोंसे जलती हैं। इसके बाद उड़नशील द्रव्य, आर्द्रता और राख की मात्रा होती है। इनकी मात्राओं को हम निम्नलिखित तालिका में दर्शाते हैं :—

नाम	कार्बन	हाइड्रोजन	आक्सीजन नाइट्रोजन	उड़नशील द्रव्य %	आर्द्रता	आपेक्षिक घनत्व
पीट या काष्ठीय कीच	५८	६	३६	६७	५०	१.२
कपिश या भूरा कोयला	७२	५	२३	५३	२५	१.२
जतुक्य अंगार या बिटुमिनस कोयला	८०	५	१५	३५	५	१.३
जत्वंगार या कोकिंग कोयला	८७	५	८	२३	२	१.३
एन्थ्रॉसाइट या विद्यामिज	९६	२	२	५	१.०	१.४

पत्थर-कोयले की पद-वृद्धि—पद-वृद्धि में पीट या काष्ठीय कीच से लेकर उत्तम कोयला एन्थ्रॉसाइट या विद्यामिज के निर्माण तक क्रमिकविकास होता जाता है। कोयले के इन विभिन्न रूपों में उड़नशील द्रव्यों की अपेक्षा कार्बन की मात्रा अधिक होती जाती है। इसे हम निम्नलिखित प्रकार से दर्शा सकते हैं :—

कोयला-सम्पत्ति:—संसार के अनेक भागों में, अनेक कालों में कोयला व्याप्त है। इसे देश काल के अनुसार आद्य-युग के उत्तरार्द्ध से लेकर नवजंतुक युग या तृतीयक काल के प्रादि-नूतन युग तक कहीं न कहीं किसी रूप में निर्मित होते देखा गया है। यह बात अवश्य है कि जहाँ सबसे बाद के प्रादि-नूतन युग में केवल अधबना कोयला (पीट) बना पाया जाता है वहाँ आद्य-युग के उत्तरार्द्ध में कोयले का केवल प्रारम्भ ही देखा जाता है। भौगोलिक दृष्टि से कोयला भारत भर में व्याप्त है। इन्हें कालानुसार चार मुख्य क्षेत्रों में विभाजित कर सकते हैं—(१) गोंडवाना कोयला-क्षेत्र (२) महासरट युगीय कोयला-क्षेत्र (३) खटीयुगीय कोयला-क्षेत्र और (४) तृतीयक कालीन कोयला क्षेत्र। इनमें गोंडवाना कोयला-क्षेत्र ही मुख्य है। महासरट युगीय और खटी युगीय कोयला औद्योगिक विकास के लिये पर्याप्त नहीं हैं तथा तृतीयक कालीन कोयला में प्रादि-नूतन युगीय कोयला खनीजीय उद्योग में लाया जाता है। करीब ९८ प्रतिशत कोयला गोंडवाना क्षेत्र से तथा शेष तृतीयक कालीन कोयला-क्षेत्र से प्राप्त होता है। गोंडवाना क्षेत्र के अधिकांश मूल्यवान कोयले को ध्यान में रखने पर कार्बन-जनक युग कोयला-निर्माण का स्वर्ण-युग कहा जा सकता है जब उच्चकोटि के कोयले का निर्माण हो सका। भारत के मानचित्र के अवलोकन से ज्ञात होता है कि निम्न गोंडवाना कोयला-क्षेत्र नदियों की घाटियों में ही परिन्यस्त हो सकी हैं। इनमें—(१) दामोदर घाटी (२) सोन—पालामाऊ घाटी (३) महानदी घाटी (४) छत्तीसगढ़—रीवाँ घाटी (५) गोदावरी वर्धा घाटी (५) सतपुड़ा घाटी और (७) पूर्वी हिमालय की घाटी। अतः निम्न गोंडवाना क्षेत्र का कोयला बंगाल, बिहार, उड़ीसा, मध्यभारत, उत्तर

प्रदेश, मध्यप्रदेश, हैदराबाद (दक्षिण), मद्रास और पूर्वी हिमालय के प्रान्तों में पाया जाता है।

१९३२ में डा० सीरिल एस० फाक्स ने भारत की कुल कोयला-सम्पत्ति का पर्यवेक्षण किया था। उनके अनुसार, भारत की कुल कोयला-सम्पत्ति ८७०,००० लाख टन है जिसमें से करीब २,२५,००० लाख टन औद्योगिक विकास के उपयोग में लाया जा सकता है। इसे हम निम्न प्रकार से उद्धृत कर सकते हैं :—
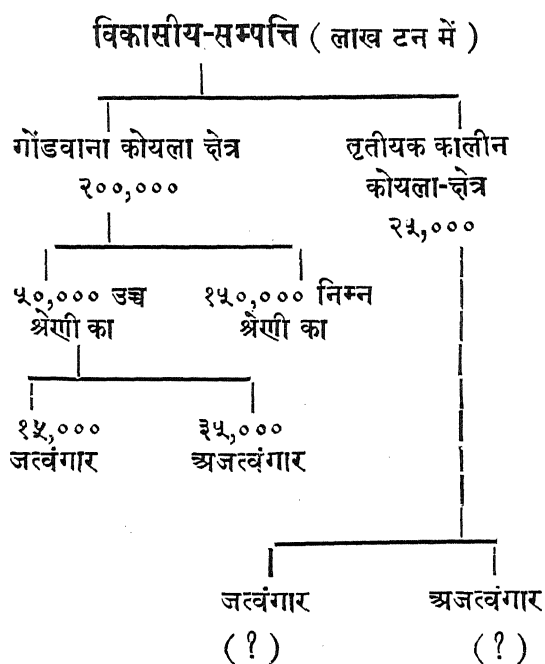
कोयले का उत्पादन:—पत्थर कोयला खुदाई का उद्योग संसार भर में एक मुख्य उद्योग है। १९५० के भारतीय-खदान कानून की दृष्टि से भारत में ३४७,८८६ मनुष्य कोयला खोदने के उद्योग में लगे हुए हैं। पिछले तीन दशक के उत्पादन से अब का उत्पादन करीब दुगुना हो गया है और १९५२ में ३५६२ लाख टन कोयला निकाला गया था। अधिकांशत: ६७ से ६८ प्रतिशत कोयला गोंडवाना श्रेणी से निकाला जाता है जिसमें दामोदर की घाटी ८५ प्रतिशत कोयला पूरा करती है। हम यहाँ निम्नलिखित तालिका में १९३९ से १९५२ तक के उत्पादन के आँकड़े प्रस्तुत करते हैं :—

साल	लाख टन
१९३९	२७७·९
१९४०	२९३·८
१९४१	२९४·६
१९४२	२९४·३
१९४३	२५५·१
१९४४	२६१·२
१९४५	२८९·७
१९४६	२९२·७
१९४७	३००·७
१९४८	२९८·२
१९४९	३१४·४
१९५०	३२३·१
१९५१	३४४·३
१९५२	३५६·२

इन आंकड़ों से विदित होता है कि १९४३ से १९४६ तक कोयले के उत्पादन में कमी हो गई। यह द्वितीय महायुद्ध का दुष्परिणाम है। इसका मुख्य कारण मजदूरों की कमी थी। युद्ध के बाद मजदूरों को खदानों के बनिस्बत खेतों में अधिक लाभ दिखाई दिया तथा खदान बहुत गड्ढे हो गये थे और बाहरी यंत्रों का भी उपयोग बहुत कम लोगों को मालूम था।

कोयले की खपत:—कोयले की खपत को हम मानव सभ्यता के विकास का मान-दण्ड मानते हैं। इस स्तर में कोयला उत्पन्न करने वाले देशों में भारत का स्थान आठवाँ है। परन्तु संसार के कुल वार्षिक उत्पादन का २ प्रतिशत है। भारत में कोयले की खपत निम्नलिखित उद्धरण से ज्ञात होती है :—

उद्योगों के नाम	प्रतिशत टनों में
रेलवे	३२.६
लोहा तथा स्टील	२४.८
रायल इंडियन मेरीन	०.१
बंकर कोयला	३.५
कपड़ा मील	७.१
इनलैन्ड स्टीमर	२.०
पोर्ट ट्रस्ट	७.१
ईंट तथा कवेलू भट्टी	३.६
चाय	०.७
कोयला खदान	५.३
कागज मील	०.८
घरेलू खर्च	१५.२

घरेलू खच को अन्य देशों की घरेलू खपत की दृष्टि से देखा जाय तो शून्य है। इसे हम तुलनात्मक दृष्टि से नीचे दर्शाते हैं :—

देशों के नाम	वार्षिक खपत टनों में प्रति मनुष्य
ब्रिटेन	३.६
बेल्जियम	३.६
संयुक्त राष्ट्र अमरीका	३.३
कनाडा	२.५
जर्मनी	२.०
भारत	०.०६

भारत के सिवाय अन्य देशों में कोयले की कमी को जल-शक्ति से उत्पन्न बिजली दूर करती है।

पेट्रोलियम या मृतैल

कोयला के बाद सभ्यता के स्तर को ऊँचा उठाने में पेट्रोलियम का द्वितीय स्थान है। कोयले के समान पेट्रोलियम या मृतैल की उत्पत्ति भी प्रांगारिक तत्वों से हुई है। ये प्रांगारिक तत्व सूक्ष्म वनस्पति तथा जीव हैं।

अशुद्ध पेट्रोलियम (जिसके शुद्धीकरण से हमें मिट्टी तेल, पेट्रोल तथा अन्य चिकनई पदार्थ मिलते हैं) तैलीय हाइड्रो-कार्बन का मिश्रण है जिसमें उद्-जन, नाइट्रोजन और गंधक, प्राकृतिक गैस, जल और कचरे का समन्वय रहता है। पेट्रोलियम शब्द की उत्पत्ति "पेट्रास" याने 'पत्थर' और "ओलि-यम" याने 'तेल' या पत्थरों में पाये जाने वाले तेल हैं। पेट्रोलियम बृहत रूप में तीन भागों में वर्गीकरण किया जा सकता है :—
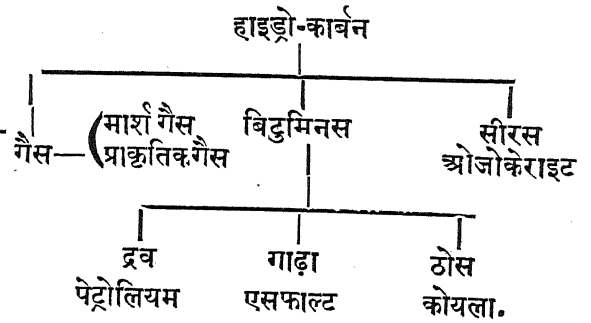
पेट्रोलियम हल्का पीला, हरा, भूरा या काले रङ्ग का होता है। पीले रङ्ग का मृतैल अधिकतर शुद्ध और लाभदायक होता है।

पेट्रोलियम की उत्पत्ति:—पेट्रोलियम, देश-कालीन के अनुसार समुद्र में पाये जाने वाले सूक्ष्म वनस्पति तथा जीवों से उत्पन्न होता है। कोयला अलवणीय जल में प्रस्तरीभूत पुंज है लेकिन पेट्रो-लियम सामुद्रिक जल में परिन्यस्त अवसाद से उत्पन्न होता है। प्रस्तरीकरण के बाद बेक्ट्रीया के द्वारा इनमें दबाव से रासायनिक परिवर्तन होता है। वर्तमान समय में इसे हम किसी गड्ढे में उत्पन्न मार्श गैस से जान सकते हैं। बरसात के समय, गडडे जमीन में पानी भर जाता है। इनमें नजदीक के पेड़ों से पत्तियाँ इकट्ठी होती रहती हैं। पत्तियों में

कुछ समय के पश्चात् सड़ने की क्रिया शुरू होती है। यदि हम इन स्थानों की परीक्षा करें तो एक दुर्गन्धि युक्त गैस का आभास होता है। इसे मार्श गैस कहते हैं। मृतैल, कोयले के समान कोई परिचायक निशान नहीं छोड़ता है। रसायन के विद्वान इसे धातु के कारबाइड पर, पृथ्वी के अन्तरिक्ष में, वाष्प के प्रभाव से बना मानते हैं। लेकिन भू-वेत्ता इस मत पर सहमत नहीं हैं क्योंकि मृतैल में प्रांगारिक तत्वों का आभास मिलता है जिसके कारण हम प्रांगारिक तत्वों से उत्पत्ति मानते हैं। पेट्रोलियम अधिकांश रूप में बालुकाश्म और चूर्णिज प्रस्तरों में मिलता है परन्तु दबाव के कारण इन्हें आग्नेय शिलाओं के पोरों में जाते देखा गया है। पेट्रोलियम के एकत्रीकरण के लिये एन्टीक्लाइन बनाव सबसे सुरक्षित रचना है क्योंकि इनमें गैस भ्वाकृष्टि के कारण सबसे ऊपर, उसके नीचे मृतैल और सबसे नीचे पानी का जमाव देखा गया है।

पेट्रोलियम-सम्पत्तिः—भारत में पेट्रोलियम सम्पत्ति बहुत ही सीमित क्षेत्र में है। भारत की पेट्रोलियम पट्टी पश्चिम में ईरान, सिंध और पंजाब से तथा पूर्व में आसाम, बर्मा और हिन्द-जावा की पट्टियों को जोड़ती है। ये तृतीयक काल के प्रस्तरीभूत शिला में पायी जाती है। भारत में तृतीयक काल के सिवाय और किसी भी काल में पेट्रोलियम नहीं मिलता है। लोगों का कथन है कि आसाम के पेट्रोलियम क्षेत्र का सम्बन्ध उसके कोयला क्षेत्र से है लेकिन कोई निश्चयात्मक सूचक का दिगदर्शन असंभव है। अन्य देशों में देखा गया है कि कोयला और पेट्रोलियम सम्बन्धित हैं और इसी से पेट्रोलियम की उत्पत्ति कोयला से भी मानते हैं। प्रयोगशाला में कोयला से पेट्रोल के समान द्रव का निर्माण देखा गया है।

श्री पासको के अनुसार भारत पाकिस्तान तथा बर्मा की मृतैल पट्टी तीन क्षेत्रों में विभाजित है। ये पूर्वकालीन आदिनूतन युग के समुद्र हैं :—

(१) सिंध-बलुचिस्तान-पंजाब क्षेत्रः—इस क्षेत्र का एपेक्स शिमला-हिमालय के पादवर्तीय हैं। यहां से यह पट्टी पोतवार की तरफ चौड़ी होती गई है और दक्षिण, दक्षिण-पश्चिम की तरफ मुड़कर अरब समुद्र में विलीन हो गई है। लेखक का अनुमान है कि अरब समुद्र में पेट्रोलियम की पट्टी मिल सकती है क्योंकि अमेरिका में इसी तरह समुद्र में पेट्रोलियम की पट्टी पाई गई है। पेट्रोलियम की उत्पादन-वृद्धि के लिये अरब समुद्र में ड्रीलिंग की जरूरत है। इसका अनुमान हमें घोघा में पाये जाने वाले गैस से होता है।

(२) आसाम क्षेत्रः—यह उत्तरी आसाम में डिगबोई से शुरू होकर, ब्रह्मपुत्र की घाटी, सिलहट और पश्चिमवर्तीय किनारे से अक्याब तक सीमित है।

(३) बर्मा क्षेत्रः—यह क्षेत्र उत्तर दक्षिण चिन्द्वीन, इरावदी नदी के कछार से होती हुई आराकन पर्वत तक फैली है।

पेट्रोलियम उत्पादनः—संसार के पेट्रोलियम उत्पादन में भारत सिर्फ ०·६ प्रतिशत जोड़ता है। १९३६ में भारत और बर्मा का उत्पादन ३६००,००,-००० गैलन था याने १०३/४ लाख टन। इसमें बर्मा से २५००—२७५० लाख गैलन तेल हर साल निकलता है तथा संसार के पेट्रोलियम वाले देशों में इसका १६वां स्थान है। भारत के १९४० के उत्पादन आंकड़ों से विदित होता है कि

आसाम	६६२ लाख गैलन
बर्मा	२५०० लाख गैलन
पंजाब	३०५ लाख गैलन

१९४९ में भारत में कुल पेट्रोलियम का उत्पादन ४५० लाख यू० एस० बैरल था जिसमें से अधिकांशतः डिगबोई पेट्रोलियम क्षेत्र से प्राप्त हुआ था। इस मृतैल क्षेत्र से रोज ५४०० बैरल पेट्रोलियम निकलता है याने १९,५०,००० बैरल सालाना। डा० डी० एन० के अनुसार इस क्षेत्र का उत्पादन इस तरह है :—

१९३९	८१० लाख गैलन
१९४१	१०१० लाख गैलन
१९४३	९७० लाख गैलन

इसके सिवाय आसाम क्षेत्र का उत्पादन इस प्रकार है :—

१९४६	६४८·७ लाख गैलन
१९४७	६५१·६ लाख गैलन
१९४८	६५६·१ लाख गैलन
१९४९	६६७·१ लाख गैलन

द्वितीय महायुद्ध के समय पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त में एक प्रयोगीय ड्रीलिंग हुई जिसमें से प्रतिदिन १५,००० बैरल काला तेल निकलता था जो कुछ समय पश्चात कड़ा हो जाता जा।

सालाना खपत :—मोटरों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि होने, ट्रैक्टरों, पेट्रोल और डीजल आयल इंजनों तथा आयल बर्नरों के विकास होने तथा उनके उपयोग में वृद्धि होने के कारण पेट्रोल मिट्टी के तेल, ईंधन के रूप में प्रयुक्त किये जाने वाले अन्य तेलों और पुर्जों में लगाने के लिये चिकने तेलों की माँग में आशातीत वृद्धि हुई है। भारत में सालाना ३५ लाख टन पेट्रोलियम की खपत होती है जो अधिकतर ईरान, परशिया, और बोर्नियो से निर्यात किया जाता है। इस खपत के मान से ९००० लाख गैलन जिसकी कीमत करीब ८० करोड़ रुपये है, बाहर के देशों से मंगाया जाता है। इनमें निर्यात का अनुपात इस तरह है :—

मिट्टी तेल	४० प्रतिशत
ईंधन तेल	४६ ,,
चिकनई तेल	१० ,,
पेट्रोल तथा अन्य हल्के तेल	३-४ प्रतिशत

सालाना खपत के मान से भारत की कुल पेट्रोलियम सम्पत्ति, वर्तमान उत्पादन के अनुसार, १५ साल में खपत हो जायगी इसलिये पेट्रोलियम का उत्पादन कृत्रिम तरीके से प्रयोगशाला में करना जरूरी है। जितना खनिज तेल भारत में काम आता है उसका केवल सात प्रतिशत ही यहाँ पैदा होता है। इसलिये कोयले से पेट्रोलियम की तरह का एक ऐसा तेल बनाया जाता है जिससे मोटर कार आदि चलाई जा सकें। इस प्रकार का तेल अन्य देशों में बहुतायत में बनाया जाता है और इसकी अपने देश को भी आवश्यकता है। यह देखा गया है कि करीब ७ टन कोयले से एक टन तेल बनता है। पेट्रोलियम के अभाव को निम्नलिखित तरीके से दूर किया जा सकता है :—

(१) *हरे पदार्थ और मोलेसेस से अलकोहल निकालना* :—बंगलोर के इंडियन इंस्टीट्यूट आफ साइंस में एक योजनानुसार अनुसन्धान किये गये हैं। गन्ने की खोई जैसी खेती व्यवसाय की बची खुची वस्तुओं (मोलेसेस) का इस्तमाल करके सस्ती शक्ति अलकोहल बनाने की सम्भावना की जाँच करने के लिये एक कमेटी बना दी गई है।

(२) जम्बशिला का डिस्टीलेशन

(३) प्राकृतिक गैस को दबाव के प्रभाव से

(४) कोयला या कपिश कोयला को उद्जनीकरण से द्रव बनाकर

(५) कोयले से उत्पन्न वाटर गैस को फिशरट्राप्स तरीके से बदलकर

(६) द्वितीय पदार्थ, हल्के तेल तथा डामल से

प्राकृतिक गैस :—प्राकृतिक गैस प्रकृति का सर्वश्रेष्ठ ईंधन है।

प्राकृतिक गैस भारत में कई जगह पाई जाती हैं लेकिन उनका सदुपयोग कहीं नहीं होता है। कच्छ में घोघा नामक स्थान पर गैस निरन्तर निकलता रहता है। यहाँ पर दियासलाई लगाने से गैस बड़ी भारी लौ के साथ जलती है। इसी तरह कई स्थानों में इसका अनुभव किया गया है। गैस की शत प्रतिशत उत्पत्ति बेकार जाती है। इटली में प्राकृतिक गैस से बड़े बड़े कारखाने चलते हैं। यह

गैस काजल, कार्बन-ब्लैक, तथा गेसोलिन के उत्पादन में काम आ सकती है तथा पोर्टलैण्ड सीमेन्ट और बिजली घर में भी उपयोग में लायी जा सकती है।

जल-शक्ति:—वर्षों पहले फ्रांसीसियों ने जंगल से इकट्ठी की हुई लकड़ियों को "हरा कोयला" नाम दिया है। ग्रीनोबल, फ्रांस के एक उदीयमान फ्राँसीसी विद्वान ने हरा कोयला के बदले जल शक्ति को "श्वेत कोयला" कहा है। उन्होंने कहा, "श्वेत कोयला हमारी सन्तानों का ईंधन होगा"। उसके इस वाक्य के आशय में अनादि काल तक उपयोग में आने वाली शक्ति छिपी हुई है। जंगल के जंगल अग्नि प्रकोप से ढह सकते हैं, कोयले का उत्पादन समाप्त हो सकती है, पेट्रोल खर्च किया जा सकता है लेकिन नदियाँ अनंत काल से बह रही हैं और अनादि काल तक बहती रहेंगी। जल शक्ति कभी खतम होनेवाली नहीं है। इसके अनेक गुणों में सर्व श्रेष्ठ गुण यह है कि इसे जितनी बार चाहें उपयोग में ला सकते हैं। इनका जल-स्रोत सदा रहता है। पंच-वर्षीय योजना के अनुसार, भारत की बड़ी बड़ी नदियों में विशालतम बाँध बनाकर करोड़ों एकड़ भूमि की सिंचाई की जा सकेगी तथा साथ ही साथ करोड़ों किलोवाट विद्युत-शक्ति का भी उत्पादन किया जा सकेगा। यह अतुल सम्पत्ति का परिचय है। इस शक्ति से बिजली की रेलगाड़ियाँ चलाई जा सकेंगी तथा ईंधन की समस्या भी हल हो जायगी।

पारिमाणिक उर्जा :—कार्य करने की आंतरिक शक्ति को उर्जा कहते हैं। परमाणु के विघटन से जो गरिमा उत्पन्न होती है उसे पारिमाणिक उर्जा कहते हैं। मानवीय शक्ति इस गरिमा के सदुपयोग से "एटामिक युग" का स्वप्न देख रहा है। यह स्वप्न यथार्थतः सत्य का प्रतीक होगा। वैज्ञानिक अनुसन्धान का कदाचित् सबसे महत्वपूर्ण कार्य परमाणु शक्ति कमीशन द्वारा किया जा रहा है। वह आजकल परमाणु उर्जा देने वाले खनिजों के प्राप्ति स्थानों के विषय में खोज कर रहा है। इस कमीशन के नीचे परमाणु शक्ति का रिसर्च बोर्ड (बोर्ड आफ रिसर्च आन एटामिक एनर्जी) काम करता है।

त्रावणकोर में जो समुद्र के किनारे रेत मिलती है उसमें थोरियम बहुत होता है। परमाणु शक्ति उत्पन्न करने के लिये यह एक महत्पूर्ण पदार्थ है। त्रावणकोर की इस मोनाज़ाइट रेत थोरियम को अलग करने की योजना पूरी हो गई है और आशा की जाती है कि व्यापारिक तल पर इस रेत से शीघ्र ही थोरियम पृथक किया जाने लगेगा। थोरियम और यूरेनियम धातुओं का परमाणु बम के सम्बन्ध में बहुत ही अधिक महत्व है और यदि हम इन धातुओं की अच्छी मात्रा अपने देश में प्राप्त कर सकेंगे तो हमारा देश भी सैनिक शक्ति में किसी से कम नहीं रहेगा।

तेजोद्गिरण वाले खनिज गया बिहार, राजपुताना, और त्रावणकोर-कोचीन में पर्याप्त मात्रा में मिलता है। भारत में पाये जाने वाले तेजोद्गिरण खनिज की मात्रा अनिश्चित है परन्तु संपुट ईंधन समस्या को हल करने के लिये अधिक उर्जा की जरूरत नहीं है। करीब १६०० टन कोयला एक पौंड यूरेनियम के बराबर शक्ति उत्पन्न करता है इसके अनुपात में ८००,००० टन यूरेनियम संसार की कुल कोयला सम्पत्ति ३२ अरब टन कोयला के बराबर होगा। मोनाजाइट रेत पर अमेरिका की गिद्ध दृष्टि लगी हुई है। इस रेत का कायापलट देखिये अंग्रेजों के शासन के समय जर्मनी वाले इस रेत को जहाज में भरकर मुफ्त में ले जाया करते थे। प्रथम युद्ध के समय में यह रेत चार आने टन तक बिका। १९४७ में इस रेत के निर्यात पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया और अब आलवे (Alwaye) में इस रेत पर वैज्ञानिक अनुसन्धान चल रहा है।

———

भूशास्त्रीय शब्दावली

कुछ सुझाव

श्री० महाराज नारायण मेहरोत्रा, लेकचरर, भूशास्त्र विभाग, का० वि० वि०

भूशास्त्र पर अभी तक हिन्दी में कोई भी शब्द कोष प्रकाशित नहीं हुआ है। इस कारण लेखक की इच्छा है कि कुछ सुझाव विद्वान-मण्डली के सम्मुख रखें ताकि शब्द कोष निर्माण के समय उन पर यथोचित ध्यान दिया जा सके।

वैज्ञानिक विषयों पर हिन्दी पुस्तकों की जितनी महती आवश्यकता आजकल प्रतीत हो रही है, कदाचित इतनी पहले कभी न थी। आज हिन्दी हमारे देश की राष्ट्र-भाषा घोषित की जा चुकी है। इस अवसर पर वैज्ञानिकों का विशेष कर हिन्दी प्रेमियों का यह कर्त्तव्य है कि विज्ञान के गूढ़ तत्वों को सरल तथा सुबोध बनाकर राष्ट्र-भाषा में रखें, ताकि विज्ञान न केवल विद्यार्थी समाज, वरन् जन साधारण के निकट भी पहुँच सके।

यह विज्ञान का युग है। वैज्ञानिक प्रगति बड़े वेग से हो रही है। नित्य नये-नये आविष्कार हो रहे हैं, नये-नये सिद्धान्त प्रतिपादित हो रहे हैं। पर भारतवासी इन सबसे अनभिज्ञ हैं। देशोन्नति के लिये आवश्यक है कि विज्ञान का ज्ञान जन-साधारण तक पहुँचाया जाये। पर यह कब सम्भव है! हमारे देश की ८० प्रतिशत जनसंख्या अभी भी निरक्षर है। विदेशी भाषाओं का तो कहना ही क्या, अपनी मातृभाषा में लिखी पुस्तकें पढ़ने में भी हम असमर्थ हैं। पर शिक्षा का प्रसार जिस वेग से हो रहा है उससे आशा की जाती है कि आगामी बीस, तीस वर्षों में सभी जन पुस्तकें पढ़ने तथा समझने योग्य हो जायेंगे। आजकल जिन विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त है वह इस बात को भली भाँति जानते हैं कि वैज्ञानिक पुस्तकें विदेशी भाषा में लिखी होने के कारण उनके समझने में कितना अधिक समय लग जाता है। यही पुस्तकें यदि अपनी भाषा में लिखी हुई होतीं तो उससे आधे समय में ही हम वह ज्ञान प्राप्त कर लेते। यही कारण है कि जो पाठ्य पुस्तकें विदेशों में स्कूल या कालेजों में पढ़ाई जाती हैं, हमारे यहाँ उच्चतर शिक्षा के लिये स्वीकृत की जाती हैं।

हिन्दी में पुस्तकें लिखते समय लेखकों को कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इनमें सब से बड़ी समस्या है शब्दावली की तथा दूसरी कठिनाई है साहित्य भंडार में वैज्ञानिक पुस्तकों का अभाव। रसायन शास्त्र, भौतिक शास्त्र, प्राणी शास्त्र, वनस्पति शास्त्र आदि विषयों में हिन्दी में शब्द-कोष तैय्यार हो चुके हैं। पर भूशास्त्र के कुछ गिने चुने शब्द ही ऐसे हैं जिनके पर्याय शब्द कोषों में मिलते हैं। इसलिये भूशास्त्र का हिन्दी शब्द कोष तैय्यार करते समय बहुत से नये शब्दों का निर्माण करना होगा। जहाँ तक संभव हो सके प्रचलित शब्दों को ज्यों का त्यों ले लेना चाहिये। शब्द निर्माताओं से यह भी आशा की जाती है कि वह चालू शब्दों का तिरस्कार नहीं करेंगे। Earth quakes के लिये भूकम्प, Volcano के लिये ज्वालामुखी, Glacier के लिये हिमानी आदि शब्दों से काम चलाया जा सकता है। ऐसे शब्दों के लिये नये शब्द गढ़ने की कोई आवश्यकता नहीं है।

इसके अतिरिक्त भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न भागों में खदानों पर काम करने वाले भूशास्त्रियों की सहायता लेकर खदानों पर प्रचलित शब्दों का संग्रह करना चाहिये। आशा है अति सुन्दर और अर्थ-

पूर्ण शब्द इस प्रकार संग्रहित किये जा सकते हैं। लेखक के मित्र श्री श्यामविहारी लाल श्रीवास्तव, एम० एस० सी०, ने जो आजकल राजस्थान में खदानों पर कार्य कर रहे हैं कुछ शब्द संग्रहित कर भेजे हैं। इनमें से कुछ नीचे दिये गये हैं :—

Stone—भाटा

White stone or Quartz —धौला भाटा

Chalcopyrite—सोना भाखी

Lead—सूरमा

Mica—भोडल, अभरक

Calcite—गाया भाटा

Soap stone—घीया भाटा

Hill—डूँगर

Hillock—डूँगरी

Veins—सल या नस

स्वयं लेखक ने Geology के लिये नये शब्द का प्रयोग किया है। इसका कारण बतलाना ही होगा। Geology के हिन्दी पर्याय 'भू गर्भ विद्या' या 'भूगर्भ विज्ञान' प्रचलित हैं। पर लेखक के विचार में Geology का पर्याप भूगर्भ विद्या, या विज्ञान नहीं हो सकता क्योंकि Geology के अंतर्गत केवल भूगर्भ का ही नहीं वरन् धरातल का अध्ययन भी आ जाता है। Geology शब्द ग्रीक भाषा में 'Ge' से लिया गया है जिसका अर्थ है पृथ्वी, Logy का अर्थ है 'ज्ञान'। इस प्रकार Geology शब्द का अर्थ हुआ 'पृथ्वी का ज्ञान' इस कारण भू-शास्त्र (वह शास्त्र जो हमें पृथ्वी के विषय में बतलाये) ही इसका उचित पर्याय जँचता है।

Earthquake के लिये भी हिन्दी में दो पर्याय है—भूकम्प या भूचाल। इसमें भूचाल शब्द की अपेक्षा भूकम्प शब्द ही अधिक उपयुक्त है। Earthquake में पृथ्वी कम्पन होता है। पृथ्वी हिलने डुलने लगती है—पर पृथ्वी चलती नहीं है इसलिये भूचाल शब्द उपयुक्त नहीं।

'सोवियत् रूस के नये खनिज स्रोत'

[पृष्ठ ६ का शेष]

और उन्नति में सहायता की और अपने यहाँ से भौमिकविद्, इंजीनियर और योग्यता प्राप्त कामगर दिये। इस सहायता और सहयोग का फल हुआ सन् १९३२ में इशिमबेयवो में तथा १९३० में क्रेशनोंकाम्स तथा बगरस्लान में और सिज़रान, स्टैवरोपोल और साराटोव में तेल की प्राप्ति।

इस "दूसरे बाकू" में कारबोनिफरस और परमियन स्तरों से तेल निकाला जा रहा था पर वैज्ञानिक गुबकिन ने अपने अध्ययन से यह फल निकाला कि इसके नीचे के डेवोनियन स्तर में भी तेल सम्भव है। इस आधार पर और गहरी खुदाई हुई और गुबकिन का अनुमान सच निकला। १९४४ में याबलोनोवाँय घाटी में डेवोनियन स्तर का तेल फूट निकला और यह क्षेत्र पूर्वी सोवियत् रूस का मुख्य क्षेत्र है। यहाँ जो शहर बसा उसके मुख्य मार्ग का नामकरण "डेवोनियन मार्ग" है! डेवोनियन तेल की खोज सेवरोकाम्स और टाटारिया में भी हुई है। पिछले कुछ वर्षों में यह डेवोनियन तैल स्रोत ही सोवियत् रूस को तैल की पूर्ति कर रहा है। यूराल के पार साइबीरियन क्षेत्र में भी तेल-क्षेत्रों का अनुमान लगाया जा रहा है। वोल्गा नदी के पश्चिम में भी तेल की खोज चालू है। मास्को और लेनिनग्राड के बीच भी खुदाई चल रही है।

सोवियत् वैज्ञानिकों का यह प्रयत्न सच में प्रशंसनीय है। आज वे दावा करते हैं कि विश्व का आधा तेल, आधा लोहा उनके पास है। अपाटाइट, पोटैशियम, मैगनीज का एक तिहाई, गंधक, बोरोन, निकल, कोबाल्ट, हीलियम गैस, रेडियम सभी उन्हें मिल रहे हैं। स्टैलिन ने सन् १९४७ में इन्हीं वैज्ञानिकों और वैज्ञानिक खोजों के बल पर गर्व किया था कि "जहाँ तक प्राकृतिक खनिज स्रोतों का प्रश्न है, हम पूर्ण रूप से सुरक्षित हैं।"

डा० शांति स्वरूप भटनागर का दीक्षांत भाषण

(१)

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के ३६ वें उपाधि-वितरण उत्सव में डा० शांति स्वरूप भटनागर ने जो दीक्षांत भाषण किया, उसका सारांश नीचे दिया जाता है।

जैसा कि आप लोगों में से बहुतों को मालूम होगा, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के साथ कई तरह से मेरा सम्बन्ध रहा है। पहले-पहल मैं विश्वविद्यालय में रसायन विज्ञान के प्राध्यापक (प्रोफेसर) की हैसियत से १९२१ में आया था और तीन वर्ष तक काम किया। उसके बाद से मैं उसका एक अवैतनिक प्राध्यापक हूँ और विभिन्न कार्यों से कभी-कभी यहाँ आता रहा हूँ। "मधुर मनोहर अतीव सुन्दर यह सारी विद्या की राजधानी" का जो कुल-गीत आप में से कुछ ने अभी-अभी सुनाया, मेरा ही बनाया हुआ है। जब मैं यहाँ था, मैंने ही इसे बनाया था और विश्वविद्यालय ने इसे स्वीकार कर लिया था। गीत में विद्या की इस राजधानी के प्रति मेरे सच्चे भावों का समावेश है।

एशियायी भाषाओं का स्कूल

प्राचीनकाल से ही बनारस विद्या एवं पांडित्य का केन्द्र रहा है। वर्तमान विश्वविद्यालय का एक लक्ष्य हिन्दू शास्त्रों तथा संस्कृत साहित्य का उन्नयन एवं अध्ययन भी है। भाषा और संस्कृति के अध्यापन के लिये इस समय यहाँ दो प्रसिद्ध कालेज गवर्नमेंट संस्कृत कालेज तथा कालेज आप ओरियंटल लर्निङ्ग—मौजूद हैं। अतएव, यह प्राचीन नगरी, एशियायी भाषाओं के एक स्कूल के लिए सर्वथा उपयुक्त समझी जानी चाहिये। इस प्रकार के अध्ययन का अपना विशेष महत्व है। साथ ही, विश्वविद्यालय के अधिकारियों के लिये मेरा एक यह भी सुझाव है कि वे अपने यहाँ भाषा-शास्त्र के पाठ्यक्रम चालू करने की उपादेयता पर भी विचार करें।

विज्ञान एवं प्रोद्योग

विज्ञान और प्रोद्योग (टेक्नालोजी) ने मनुष्य की आयु लगभग एक तिहाई बढ़ा दी है और औद्योगिक उत्पादन का स्तर इतना ऊँचा कर दिया है, जिसकी पहले कभी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। अतएव, यह विश्वविद्यालय इन विषयों की अवहेलना नहीं कर सकता। उसे ऐसी अनुकूल स्थितियाँ उत्पन्न करनी होंगी कि इस विश्वविद्यालय द्वारा विज्ञान एवं प्रोद्योग की पर्याप्त उन्नति संभव हो सके। यह बहुत जरूरी है।

आयुर्वेदिक गवेषणा

विश्वविद्यालय में आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रणाली की शिक्षा के लिये एक स्कूल काफी अरसे से स्थापित है और एक आयुर्वेदिक अस्पताल भी है। किन्तु कोई भी प्रणाली, गवेषणा एवं विकास के समुचित योगदान के बिना उन्नति की दशा में नहीं रह सकती। मुझे आशा है कि विश्वविद्यालय के अधिकारी इस मूल तथ्य के प्रति जागरूक हैं। वैज्ञानिक तथा औद्योगिक गवेषणा परिषद् औषधि सम्बन्धी गवेषणा के लिये लखनऊ में एक उत्तम प्रयोगशाला खोल रही है और इस विश्वविद्यालय के आयुर्वेदिक विभाग को उससे पूरा लाभ उठाना चाहिये। आयुर्वेद में गवेषणा के लिये यह केन्द्रीय संस्था, विश्वविद्यालय को अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करेगी।

कठिनाइयों का निवारण

भारतीय विश्वविद्यालयों की कठिनाइयों और उनके निवारण के उपायों पर खूब सोच-विचार करने के बाद मैं यही समझ पाया हूँ कि हमारे विश्वविद्यालयों के लिये सब से ठीक रास्ता यही होगा कि विस्तार की नीति अपनाकर नये अध्ययन के विभाग खोलने के बजाय, वे अपने वर्तमान क्रिया-कलाप को ही अधिक पुष्ट करें। ऐसी स्थितियां उत्पन्न की जायं कि अध्यापन-वृत्ति की ओर सर्वोत्कृष्ट व्यक्ति आकर्षित किये जा सकें। अध्यापकों की संख्या बढ़ायी जाय और अध्यापन का स्तर ऊँचा उठाया जाय। दिनों दिन हमारे विश्वविद्यालय अपनी आर्थिक व्यवस्था के लिये केन्द्र एवं राज्यों की सरकारों पर अधिकाधिक अवलम्बित होने लगे हैं, किन्तु सरकार के साधन भी सीमित हैं।

वर्तमान व्यवस्था का दृढ़ीकरण

पहले देशी नरेशों, जमीदारों और उद्योगपतियों से जो आर्थिक सहायता विश्वविद्यालयों को प्राप्त होती थी, उसकी सम्भावना भी अब कम होती जा रही है। इसलिए मेरा यह विश्वास दृढ़ होता जा रहा है कि विश्वविद्यालयों को विस्तार की चिन्ता न करके इस बात की चिन्ता करनी चाहिये कि अपने वर्तमान क्रिया-कलाप को और पुष्ट करके किस प्रकार वे उन विषयों के अध्यापन का प्रतिमान अधिक ऊँचा कर सकते हैं, जिनकी शिक्षा की व्यवस्था उन्होंने पहले से कर रखी है।

खासकर उत्तर प्रदेश में तो विश्वविद्यालयों के कार्य के समन्वय की परम आवश्यकता है। इसलिये यहाँ किसी विश्वविद्यालय के प्रस्तावित विस्तार के प्रश्न को ऐसे विस्तार की आवश्यकता की दृष्टि से ही नहीं, बल्कि इस दृष्टि से भी देखा जाना चाहिये कि क्या राज्य के किन्हीं अन्य विश्वविद्यालयों में प्रस्तावित विस्तार से प्राप्त होने वाली सुविधाएँ पहले ही से मौजूद नहीं हैं।

मैं इस विश्वविद्यालय के छात्रों को बहुत भाग्यवान समझता हूँ। उन्हें ऐसी संस्था में शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिला, जिसके उप-कुलपति का स्थान कभी श्री मालवीय जी तथा श्री राधाकृष्णन् जैसे प्रतिभाशाली व्यक्ति ग्रहण कर चुके हैं। वर्तमान उप-कुलपति आचार्य नरेन्द्र देव को पाकर इन छात्रों को अपने को धन्य समझना चाहिये।

(२)

'नेशनल काउंसिल आफ एजुकेशन (बंगाल)' के उपाधिवितरण के अवसर पर डाक्टर शांति स्वरूप भटनागर ने जो दीक्षांत भाषण दिया, उसका सारांश नीचे दिया जाता है।

केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय इस देश के स्वतंत्रता-आंदोलन का जो इतिहास तैयार कर रहा है, उसमें 'नेशनल काउंसिल आफ एजुकेशन' और 'सोसाइटी फार प्रोमोशन आफ टेक्निकल एजुकेशन इन बंगाल' के नाम स्वर्ण अक्षरों में लिखे जायंगे। इन संस्थाओं ने राष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये वैज्ञानिक, प्रौद्योगिक (टेक्निकल), साहित्यिक तथा औद्योगिक शिक्षा प्रदान करने का काम १९०६ में सँभाला था। इनकी स्थापना करके बंगाल ने एक बार और सिद्ध कर दिखाया कि राष्ट्रीय मामलों में नेतृत्व ग्रहण कर सकने के वह सर्वथा योग्य है।

जादवपुर के इंजीनियरिंग और टेक्नालोजी के कालेज से देश की एक वास्तविक आवश्यकता की पूर्ति हुई है और मैं नहीं समझता कि इस संस्था का विकास बंगाल में प्रोद्योग (टेक्नालोजी) तथा गवेषणा (रिसर्च) के सर्वोत्कृष्ट केन्द्र के रूप में क्यों न किया जाय।

जिन दिनों 'वैज्ञानिक तथा औद्योगिक गवेषणा परिषद्, उद्योग तथा पूर्ति मंत्रालय के अधीन थी, उन दिनों मैंने तत्कालीन मंत्री महोदय के समक्ष एक प्रस्थापना उपस्थित की थी। इसमें देश के औद्योगिक विकास के लिये एक ऐसी परिषद् (कौंसिल) विधिवत् स्थापित करने का सुझाव दिया

गया था, जो निजी तथा सरकारी, दोनों ही क्षेत्रों में उद्योगों के विकास एवं उन्नति के लिये योजनाएँ तैयार करे। विचार यह था कि औद्योगिक विकास के लिये विशेषज्ञों और वित्तदाताओं की परिषद् की सहायता प्राप्त हो। अब हाल में ही, वाणिज्य एवं उद्योग मंत्री से यह जान कर मुझे खुशी हुई है कि इस तरह की परिषद् की योजना सम्भवतः क्रियान्वित की जा सकेगी, क्योंकि वित्त मंत्रालय ने सिद्धांत रूप में उसे स्वीकार कर लिया है।

बेकारी दूर करने का उपाय

हमें याद रखना चाहिये कि बेकारी दूर करने का एक ही तरीका है और वह है देश के पूर्ण औद्योगिकरण का इस दिशा में शीघ्रता के साथ फल प्राप्त करने के लिए, हमें निडरता से बड़ी-बड़ी योजनाएं अपनानी होंगी।

इंजीनियरों के लिये मेरी एक सलाह यह भी है कि वे विशुद्ध विज्ञान के क्षेत्र में काम करने वालों से निकट सम्पर्क रखें। इंजीनियरी के क्षेत्र में जो भी बड़े चमत्कार हो सके हैं, वे विशुद्ध विज्ञान के अन्वेषणों के बिना सम्भव नहीं थे। अन्वेषण की इस क्रिया से इंजीनियरी-विज्ञान आज भी प्रभावित है। उदाहरणार्थ धातुओं के सम्बन्ध में इस समय एक रासायनिक क्रांति चल रही है, जिससे नये उद्योग पैदा हो रहे हैं और नयी प्रतियोगिताएं उत्पन्न हो रही हैं।

इस्पात का प्रयोग प्रायः हर प्रकार के निर्माण में होता है और भारत में भी इस्पात का उत्पादन बढ़ाने की योजनाएं चालू हैं। किन्तु संसार हमारी प्रतीक्षा नहीं करता। इस्पात का स्थान दूसरे धातुओं ने लेना शुरू कर दिया है।... हो सकता है कि १९७५ तक, जब भारत काफी परिमाण में इस्पात तैयार करने के योग्य हो, अन्य देश उसकी जगह दूसरे ही धातु इस्तेमाल करने लगें। क्या इससे, धातु-उद्योगों की विकास योजनाओं के निर्माण में हमारी कल्पना का अभाव नहीं प्रकट होता ?

यदि मनुष्य द्वारा धातुओं के प्रयोग का इतिहास देखा जाय, तो पता चलेगा कि १६वीं शताब्दी तक केवल ७ धातु इस्तेमाल में आते थे। उसके बाद की तीन शताब्दियों में संसार को केवल ७ और धातु प्राप्त हुए। किन्तु १९०० के बाद की आधी शताब्दी में, व्यापार के काम आने वाले धातुओं की संख्या तिगुनी हो गयी। इसके अलावा कई धातुओं को मिलाकर मिश्र-धातु भी तैयार किये गये और तैयार हो रहे हैं। प्रोद्योग (टेक्नालोजी) का अध्ययन करने वाले भारतीय छात्र, अपने को इन नयी खोजों से कैसे पृथक् रख सकते हैं।

धातु और प्रोद्योग के अतिरिक्त, प्रयुक्त विज्ञान के अन्य क्षेत्रों में भी भारी प्रगति हुई है। हमें इस प्रगति के साथ चलना है और अपने को संगठित रखना है। राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं, इंजीनियरिंग कालेजों और औद्योगिक तथा सरकारी क्षेत्रों में हमें इस प्रकार एक-दूसरे के सहयोग से काम करना है कि नयी-नयी बातों की जानकारी में हम पीछे न रहें और धातुओं तथा उनके प्रयोग से सम्बन्धित विज्ञानों की उन्नति के लिये अपने पवित्र कर्तव्य को समुचित रूप से निभा सकें।

———

भारत में टेलिफोनों का विकास

(पृष्ठ २९ का शेष)

तथा 'केरियर' प्रणाली के लिए आवश्यक प्रायः सभी चीजें तैयार की जायेंगी। कारखाना जब पूरी तौर से चलने लगेगा, तब देश को इन चीजों की कमी न रहेगी। कर-चलित टेलिफोनों का बहुत सा सामान बम्बई, जबलपुर व कलकत्ते में कई साल से बन रहा है।

इस समय सारे देश में लगभग ६०,००० टेलिफोनों की माँग है। यह माँग मौजूदा प्रणालियों का विस्तार करके और नये 'एक्सचेंज' तथा 'पब्लिक काल आफिस' खोल कर ही पूरी की जा सकती है।

भारत में टेलिफोनों का विकास

(लेखक—श्री बी० आर० बत्रा, डाक-तार विभाग के चीफ इंजीनियर)

सन् १८७७ में माइक्रोफोन के आविष्कार और बाद में उसमें तीव्रता से किये गये सुधारों के फल-स्वरूप तार-विभाग का काम काफी बढ़ने लगा था। और पहली बार १८८१ में ब्रिटिश सरकार ने कलकत्ता, मद्रास, बम्बई, कराची तथा रंगून में एक्सचेंज खोलने के लिए 'ओरियंटल टेलिफोन कम्पनी' को लाइसेन्स दिया था।

तब से अब तक टेलिफोन-व्यवस्था में अनेक सुधार, संशोधन एवं परिवर्तन किये जा चुके हैं, और आधुनिक स्वचलित (आटोमेटिक) टेलिफोन व्यवस्था उन्हीं सबका परिणाम है। आटोमेटिक एक्सचेंज, भारत में सबसे पहले १९२० में लाहौर में और पूना के गवनमेंट हाऊस, लायलपुर, इलाहाबाद, उटकमण्ड तथा कुन्नूर में १९२२-२३ में चालू किये गये। २२ मई १९२४ को बम्बई में 'स्ट्राउजर' किस्म के दो बड़े आटोमेटिक एक्सचेंज बम्बई में चालू किये गये और १९२५-२६ में दिल्ली की टेलिफोन व्यवस्था भी 'आटोमेटिक' कर दी गई। इसके बाद अन्य बड़े शहरों की बारी आती गई।

पहली 'बोलती घड़ी' यानी समय बताने वाली घड़ी १९३४ में बम्बई में लगायी गयी और बाद में कलकत्ते में भी आ गयी। दिल्ली के लिए एक फोटो-विद्युत किस्म की ऐसी ही घड़ी शीघ्र ही आने वाली है, जो हिन्दी में समय बतायेगी।

टेलिफोन-एक्सचेंजों के विस्तार से, उन्हें दूर की ट्रंक-व्यवस्था के जरिये एक-दूसरे से सम्बंधित करने की आवश्यकता पैदा हुई। पहली ट्रंक-लाइन १८९४-९५ में कलकत्ता और नागपुर के बीच खोली गयी। उन दिनों तार द्वारा भेजे जाने वाले संवादों के कारण टेलिफोन के सम्वादों में काफी बाधा पड़ती थी। मालूम देता था कि कोई तूफान-सा आ रहा है और बहुत से लोग जोर-जोर से बातें कर रहे हैं। इसको हटाने के लिए जरूरी था कि ट्रंक-टेलिफोन के लिए दूसरे खम्भे गाड़े जायं। धीरे-धीरे यह भी किया गया तथा बाधा-निवारक अन्य उपायों से भी काम लिया गया। इसके बाद १९१४ में, शिमला और नयी दिल्ली के बीच पहली सार्वजनिक ट्रङ्क-व्यवस्था स्थापित की गयी। अधिक दूरी से संवादों को बीच में दुहराने की जरूरत पड़ती थी और धीरे-धीरे यह त्रुटि भी दूर हुई।

ट्रंक साधनों की संख्या में वृद्धि होने से इस बात की आवश्यकता हुई कि तारों के ही जोड़े के जरिये एक ही साथ कई टेलिफोन-संवाद भेजे जा सकें। इसकी पूर्ति के लिए भारत में 'केरियर' प्रणाली की व्यवस्था की गयी। इस समय देश में केरियर-चेनल व्यवस्था १,७१,२०० मील में फैली हुई है। केरियर-प्रणाली कलकत्ता और बम्बई के बीच में १९३१-३२ में चालू की गयी थी। उसके बाद वह देश के अन्य भागों में भी चालू की गयी।

रेडियो-टेलिफोन

१९३२-३३ में भारत और ब्रिटेन के बीच रेडियो-टेलिफोन सर्विस खोली गयी। अब यह सुविधा जापान, इंडोनीशिया, अमेरिका, फारस, मिश्र तथा लंदन के जरिये अन्य यूरोपीय देशों के लिए उपलब्ध है।

स्थानिक टेलिफोनों की संख्या काफी बढ़ जाने से, सारे तारों को खम्भों के जरिये न दौड़ाकर, कुछ

तारों को केबल के जरिये।जमीन के नीचे से भी दौड़ाया गया है।

देश के विभाजन से तार-टेलिफोन व्यवस्था में बाधाएँ पड़ीं और पूर्वी पञ्जाब, पश्चिमी बंगाल तथा आसाम को सबसे अधिक क्षति उठानी पड़ी। बँटवारे के बाद आसाम के साथ शेष भारत का सीधा सम्बन्ध टूट गया। इसलिए यह सम्बन्ध स्थापित करने का काम ५ महीने के अन्दर ३५ लाख रुपया के खर्च से पूरा किया गया। अक्टूबर १९-४७ में कश्मीर के भारत में शामिल हो जाने से कश्मीर के लिए भी पठानकोट होकर तार व टेलिफोन की व्यवस्था करनी पड़ी।

द्वितीय महायुद्ध से भारत में तार-टेलिफोन व्यवस्था के विस्तार को काफी बल मिला, और सरकार की एक विकास-योजना के कारण इस विभाग की सम्पत्ति कुछ ही वर्षों में दूनी हो गयी। युद्ध बन्द होने पर डाक व तार विभाग ने विस्तार सम्बन्धी एक पंच-वर्षीय योजना तैयार की।

भारत में टेलिफोन-व्यवस्था का घनत्व, प्रति १,००० व्यक्ति पीछे केवल ३ है, जबकि अमेरिका में यह संख्या २५० है। देश के बंटवारे के बाद टेलिफोन-एक्सचेंजों की संख्या ३११ तथा सीधे सम्बन्धों (डाइरेक्ट कनेक्शन्स) की संख्या ६७,६०० थी। ३१ मार्च १९५३ को ये संख्याएँ क्रमशः ५६५ तथा १,१९,०४१ हो गयी थीं। अब कुल २,००,८१३ टेलिफोन उपयोग में आ रहे हैं।

यद्यपि नये टेलिफोन अधिकतर बड़े नगरों तथा अन्य शहरी क्षेत्रों में ही लगाये जा रहे हैं, पर देहाती क्षेत्रों की आवश्यकताओं का भी ध्यान रखा जा रहा है। इसलिए अनेक 'पब्लिक काल आफिस' (टेलिफोन के सार्वजनिक दफ्तर) खोले जा रहे हैं, जो ट्रंक-लाइनों से जुड़े रहते हैं। देश के बंटवारे के समय से आफिसों की संख्या ३३९ थी, पर अब १९६१ है।

लक्ष्य

अब तक लक्ष्य यह रहा है कि हर जिला-सदर दफ्तर में एक टेलिफोन एक्सचेंज और हर सब-डिवीजन में तथा २०,००० की जन-संख्या वाले कस्बे में एक 'पब्लिक काल आफिस' होना चाहिए। आगे चल कर लक्ष्य यह होगा कि हर गाँव या कई गाँवों के लिए एक-एक टेलिफोन हो।

टेक्निकल कर्मचारियों की कमी पूरी करने के लिए जबलपुर में एक टेक्निकल ट्रेनिंग सेंटर खोला गया है, जहाँ से ट्रेनिंग लेकर हर साल लगभग ५०० कर्मचारी निकलते हैं। केन्द्र के लिए नई इमारत बन रही है। यह काफी बड़ा केन्द्र है।

भारत एक बहुत ही लम्बा-चौड़ा देश है, जिसके विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न जलवायु मिलता है। तार-टेलिफोन की लाइने कहीं ऊँचे पहाड़ों पर से, कहीं समुद्र-तट के किनारे-किनारे और कहीं बहुत ही शुष्क तथा कहीं बहुत ही तर प्रदेशों से होकर ले जायी गयी हैं। इन क्षेत्रों में पशु पक्षियों से तार की लाइनों को बाधा पहुँचती है। कौवे तारों पर घोंसले बना लेते हैं, तो कहीं उड़न-लोमड़ियों की समस्या पैदा होती है और कहीं चीलें मरे हुए सांपों को दो तारों पर डाल कर उनका सम्बन्ध तोड़ देती हैं। इन बाधाओं से बचाव के लिए दूर-दूर के फासलों तक जमीन के अन्दर 'केबल' ले जाने की व्यवस्था की गयी है। ऐसी पहली केबल-लाइन बम्बई से थाने तक बनेगी। इसके बाद कलकत्ता तथा असंसोल के बीच और फिर अन्य दूर स्थित स्थानों के बीच 'केबल' डाले जायेंगे।

प्रथम पंच-वर्षीय योजना

देश की प्रथम पञ्च-वर्षीय योजना के अन्तर्गत कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, बङ्गलोर, हैदराबाद, दिल्ली तथा लखनऊ की टेलिफोन-व्यवस्थाओं का विस्तार किया जायगा। साज-सामान देश में ही बनाने के लिए कच्चे माल के मिलने में कठिनाइयाँ पड़ती हैं। इनके निवारण के लिए सरकार ने १९४८ में 'इंडियन टेलिफोन इंडस्ट्रीज' के नाम से एक बड़ा कारखाना खोला है। इसमें आटोमेटिक एक्सचेंजों

[शेष पृष्ठ २७ पर]

विज्ञान समाचार

भारत में नृवंश विज्ञान सम्बन्धी कार्य की प्रगति

भारत सरकार का नृवंश विज्ञान (एंथ्रोपालोजी डिपार्टमेंट) विभाग जिन समस्याओं को लेकर कार्य करता रहा है, उनसे पता चलता है कि नृवंश विज्ञान, समाज विज्ञान सम्बन्धी व्यावहारिक समस्याओं से अधिक भिन्न नहीं है। आदिम जातियों के प्रति क्या नीति अपनायी जाय, इस विषय में सहायता देने के लिए विभाग ने सरकार के समक्ष एक विस्तृत प्रतिवेदन प्रस्तुत किया है, जिसमें, संसार के विभिन्न भागों में आदिम जातियों के सम्बन्ध में प्राप्त अनुभवों को ध्यान में रखते हुए, उनके सांस्कृतिक एवं जातीय सम्बन्धों तथा उनके प्रशासन को प्रभावित करने वाली समस्याओं के बारे में प्रकाश डाला गया है। अण्डमान द्वीपों की जिन जरावार, ओंग और संतीनली आदिम जातियों को ब्रिटिश शासन के १०० से अधिक वर्षों में भी नहीं हिलाया-मिलाया जा सका, उनसे मैत्री सम्बन्ध कायम करने के लिए पोर्ट ब्लेयर में एक उप-केन्द्र काम कर रहा है। इसी तरह आसाम की उत्तर-पूर्वी सीमा की अबोर जातियों में भी एक व्यवस्थित रूप से पर्यवेक्षण कार्य हो रहा है। तिब्बत सीमावर्ती कई क्षेत्रों में, जहाँ भारतीय अफसर पहले कभी नहीं जा सके थे, अब पर्यवेक्षकों का एक दल काम करता है। उत्तर-पूर्वी सीमांत की जिन कई आदिम जातियों के सम्बन्ध में अब तक बहुत कम प्रामाणिक जानकारी प्राप्त है, उनके सम्बन्ध में अधिक खोज करने के लिए विभाग की ओर से आसाम में शीघ्र ही एक और उप-केन्द्र खोलने का प्रबन्ध हो रहा है।

पश्चिम बंगाल में शरणार्थियों के बीच तनाव की पृष्ठभूमि और उसके असर तथा दो केन्द्रों में सामूहिक जीवन के पर्यवेक्षण से सम्बन्धित समस्याओं का भी अध्ययन किया गया है। भोजन सम्बन्धी सुधार करने के उद्देश्य से बच्चों और आदिम जातियों के लोगों के कुछ समूहों में अनुसंधान का काम हो रहा है। वंशानुगत दोषों, जीवन सामर्थ्य के अन्तरों, प्रजनन-शक्ति की विभिन्नता, आदि समस्याओं का भी अध्ययन किया जा रहा है।

पूर्वी शिमला पहाड़ियों के जौनसार बावर में और आसाम के अबोर क्षेत्र में पर्यवेक्षण का व्यापक कार्य हुआ है। रिकार्डों में आवाज भरने और चल चित्र लेने के यन्त्रों द्वारा आदिम जातीय लोगों की बोलचाल, नाच, और गाने के पूरे रिकार्ड ले लिये गये हैं।

विभाग द्वारा इस समय आठ स्नातकोत्तर छात्रों को ट्रेनिंग दी जा रही है, जो दो वर्षों तक चलेगी। इसका उद्देश्य प्रशिक्षार्थियों को आदिम जातियों के जीवन की गहरी जानकारी प्राप्त कराना और गवेषणा कार्य के लिए प्रथम कोटि की ट्रेनिंग देना है। भारत में नृवंश विषयक गवेषणा कार्य करने के उत्सुक विदेशी विद्वानों का सहयोग प्राप्त करने के लिए दो वर्षों में एक बार किसी एक ऐसे विज्ञान को शिक्षावृत्ति देने की भी व्यवस्था है। यह शिक्षावृत्ति दो वर्ष तक चलती है। इससे केवल वृत्ति-प्राप्त-कर्ता को ही लाभ नहीं होता, बल्कि उस विज्ञान द्वारा विदेशों में अर्जित ज्ञान की जानकारी विभाग को भी उपलब्ध होती है।

भारतीय डाक्टरी चिकित्सा गवेषणा परिषद्

भारतीय डाक्टरी चिकित्सा गवेषणा परिषद् १९४९ में स्थापित की गयी थी। स्वास्थ्य सम्बन्धी गवेषणा के क्षेत्र में आज इसका वही स्थान है, जो उनके अपने क्षेत्रों में वैज्ञानिक तथा औद्योगिक गवेषणा परिषद् और भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् को प्राप्त है।

संगठन

योजना आयोग और स्वास्थ्य मन्त्रालय में स्वीकृत गवेषणा कार्यों के लिए अनुदानों के अलावा, चिकित्सा-परिषद् को उसकी चालू कार्रवाइयों के लिए प्रति वर्ष भारत सरकार से १२ लाख रु० अनुदान मिलता है। इसका संचालन केन्द्र के स्वास्थ्य मन्त्री की अध्यक्षता में एक शासना समिति करती है। इस शासन-समिति में विश्वविद्यालयों के स्वास्थ्य विभागों, संसद् के दोनों सदनों, भारतीय विज्ञान काँग्रेस असोसियेशन, स्वास्थ्य मन्त्रालय, वैज्ञानिक एवं औद्योगिक गवेषणा परिषद् के प्रतिनिधि और महत्वपूर्ण गवेषणा शालाओं के निर्देशक (डाइरेक्टर) शामिल हैं। इसक वैज्ञानिक कार्य एक वैज्ञानिक सलाहकार बोर्ड की सहायता से चलता है, जिसके सभापति स्वास्थ्य सेवाओं के महानिर्देशक हैं। स्वास्थ्य विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञ इस बोर्ड के सदस्य रखे गये हैं, बोर्ड के काम में ११ सलाहकार समितियाँ सहायता देती हैं।

भारतीय डाक्टरी चिकित्सा गवेषणा परिषद् ने कुन्नूर में पोषणा सम्बन्धी गवेषणा की प्रयोगशालाएँ खोल रखी हैं। हाल के कुछ वर्षों में उसने विभिन्न गवेषणाशालाओं और विश्वविद्यालयों में वातारोग, औद्योगिक स्वास्थ्य, आदि अनेक विषयों के लिए भी अर्द्ध स्थायी रूप से गवेषणा के कई यूनिट स्थापित किये हैं।

पिछला रिकार्ड

कुन्नूर में मैकारिसन द्वारा किया गया पोषण सम्बन्धी गवेषणा कार्य संसार भर में प्रसिद्ध है। इस तरह का दूसरा गवेषणा कार्य, जिसे संसार के लोगों ने मान्यता दी है, बच्चों और बड़ों में अच्छी खूराक के अभाव की खोज का है। अभी हाल के वर्षों में प्रसूति और शिशु कल्याण सम्बन्धी समस्याओं की ओर भी ध्यान दिया गया है।

भारतीय डाक्टरी चिकित्सा गवेषणा परिषद् (इंडियन कौंसिल आफ मेडिकल रिसर्च) के भारतीय मलेरिया संस्थान (कलेरिया इंस्टिट्यूट) का प्रादुर्भाव हुआ था और आज भी यह विभाग संस्थान की कई गढेषणा-योजनाओं का खर्च देता है। १९२७ में गवेषणा परिषद् द्वारा स्थापित एक विशेष आयोग ने काला-अजार नामक रोग का पूरा-पूरा अध्ययन किया था। परिषद् द्वारा ईजाद किये गये हैजा और प्लेग के टीके अब देश में सभी जगह काम में लाये जा रहे हैं। पागल कुत्तों तथा अन्य पशुओं के काटने से उत्पन्न होने वाले रोग (रेबीज) के लिए कसौली के पेस्च्योर इंस्टिट्यूट द्वारा ईजाद किया गया टीका सभी जगह काम आता है और एक अचूक टीका है।

भारतीय डाक्टरी चिकित्सा गवेषणा परिषद् ने कुष्ट रोग के बारे में जो कार्य किया है, उससे इस रोग के इलाज में सल्फोन के प्रयोग सम्बन्धी हमारे ज्ञान में काफी वृद्धि हुई है। कुष्ट रोगियों की दशा सुधारने के लिए विशेष विधियाँ निकाली गयी हैं और समाज में इस रोग के फैलाने के कारणों का पता लगाने का काम भी हाथ में लिया गया है। कलकत्ता के आल इण्डिया इंस्टिट्यूट आफ हाइजीन एण्ड पब्लिक हैल्थ में स्थापित औद्योगिक स्वास्थ्य सम्बन्धी गवेषणा यूनिट कारखानों में काम करने

से उत्पन्न होने वाले रोगों के अध्ययन में लगा हुआ है।

गवेषणा सम्बन्धी शिक्षण और उपयोग

गवेषणा को शिक्षा का एक अंग बनाना और व्यवहारिक रूप में उसके परिणामों से लाभ उठाना, परिषद् के कार्य का मुख्य सिद्धान्त रहा है। शिक्षा के एक अंग के रूप में गवेषणा कार्य करने के लिए, परिषद् ने १९४५ में, मेडिकल कालेजों के युवक स्नातकों को गवेषणा सम्बन्धी छात्र वृत्तियाँ देने की एक योजना चलायी थी। आजकल भारतीय डाक्टरी चिकित्सा गवेषणा परिषद् देश के १६ मेडिकल कालेजों में गवेषणा-योजनाओं पर रुपया खर्च कर रही है, जब कि १९३७-३८ में वह केवल तीन कालेजों को ही यह खर्च देती थी। दूसरे शब्दों में, जहाँ १९३७ में वह अपने कुल बजट का केवल ३.६ प्रति शत संस्थाओं के गवेषणा-कार्य पर खर्च करती थी, वहाँ १९५२ में उसने २० प्रतिशत खर्च किया है।

अभी हाल में इस योजना में कुछ परिवर्तन करने का निश्चय किया गया है। सिर्फ गवेषणा के लिए ही शिक्षा-वृत्तियाँ देने के बजाय, अब वे अध्यापन कार्यों में योग्य उम्मीदवारों की ट्रेनिंग के लिए भी दी जाया करेंगी। परिषद् अन्तरराष्ट्रीय स्वास्थ्य संगठन के निकट सहयोग से कार्य करती है और इस खास योजना के लिए 'रोकफैलर फाउंडेशन' ने ५ लाख ५० हजार रुपया की रकम देने का प्रस्ताव किया है।

समालोचना

प्राणिशास्त्र (त्रैमासिक)

सम्पादक तथा प्रकाशक—श्री अमर, एम० एस-सी०, एम० ए०, साहित्यरत्न, संस्थापक, भारतीय प्राणिशास्त्र परिषद्, २ हुसेनगंज, लखनऊ। वार्षिक मूल्य १०) तथा एक अंक का मूल्य ३)

'प्राणिशास्त्र' का दूसरे वर्ष का अंक १, २ हमारे सामने है। इसके कतिपय पूर्व अंकों को भी देखने का अवसर हमें मिला है। हमें तो इस पत्र के प्रकाशन का प्रयास करने पर आश्चर्य होता है। मूल्यवान तथा स्थायी महत्व के लेखों से समन्वित विज्ञान के एक अंग का त्रैमासिक पत्र हमारी सबसे अधिक प्रसन्नता का विषय है। हमारे सहयोगी ने एक ऐसा उदाहरण रखा है जिसमें उनको एक-एक अक प्रकाशन में वर्षों देर हो जाती है, फिर भी वे अपना उद्योग नहीं छोड़ते। हम अपने सहयोगी की प्रत्येक प्रकार से उन्नति की कामना रखते हैं। ऐसे सुन्दर रूप के छपे पत्र में रंगीन चित्रों की अत्यन्त भद्दी छपाई बहुत अधिक खटकती है। दूसरे दस रुपए वार्षिक मूल्य से प्रचार में अवश्य भारी बाधा पड़ती होगी। फिर भी इस प्रयास की हम अवश्य सराहना करेंगे।

रेडियो-संग्रह (त्रैमासिक)

वर्ष १, अंक १, पृष्ठ संख्या ६६, मूल्य ।।)

भारतीय आकाश वाणी द्वारा प्रसारित हिन्दी के दर्जनों विद्वानों की रचनाओं का यह सुन्दर सग्रह आठ आने में एक अलभ्य वस्तु है। यह केन्द्रीय सरकार के प्रकाशन विभाग की देन है। हम आशा करते हैं कि इतने भव्य रूप में सस्ता प्रकाशन कर केन्द्रीय सरकार किसी दिन लोकप्रिय विज्ञान को भी अपना कार्य क्षेत्र अवश्य बनाएगी, और जनता में काव्य तथा साहित्य के साथ विज्ञान की आवाज भी पहुँचाएगी।

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

पुस्तक	मूल्य
१—विज्ञान प्रवेशिका, भाग १	।=)
२—चुम्बक	।।।=)
३—मनोरंजन रसायन	२)
४—सूर्य सिद्धान्त छः भाग (भाग १,२ अप्राप्य)	८)
५—वैज्ञानिक परिमाण	१)
६—समीकरण मीमांसा प्रथम भाग	१।।)
द्वितीय भाग	।।=)
७—निर्णायक डिटमिनैंट्स	।।।)
८—बीज ज्योमिति या भुजयुग्म रेखागणित	१।)
९—वर्षा और वनस्पति	।=)
१०—सुवर्णकारी	।=)
११—विज्ञान का रजत जयन्ती अंक (अप्राप्य)	१)
१२—व्यङ्ग-चित्रण	२)
१३—मिट्टी के बरतन (अप्राप्य)	२)
१४—वायुमंडल	२)
१५—लकड़ी पर पालिश (अप्राप्य)	५)
१६—कलम पेवंद (अप्राप्य)	२)
१७—जिल्दसाजी	२)
१८—तैरना	१)
१९—सरल विज्ञान-सागर प्रथम भाग (अप्राप्य)	६)
२०—वायुमण्डल की सूक्ष्म हवाएँ	।।।)
२१—खाद्य और स्वास्थ्य	।।)
२२—फोटोग्राफी	४)
२३—फल संरक्षण	२।।)
२४—शिशु पालन	४)
२५—मधुमक्खी पालन	३)
२६—घरेलू डाक्टर	४)
२७—उपयोगी नुसखे, तरकीबें और हुनर	३।।)
२८—फसल के शत्रु	३।।)
२९—साँपों की दुनिया	४)
३०—पोर्सलीन उद्योग	।।।)
३१—राष्ट्रीय अनुसंधानशालाएँ	२)
३२—गर्भस्थ शिशु की कहानी	२।।)

हमारे यहाँ नीचे लिखी पुस्तकें भी मिलती हैं:—

पुस्तक	मूल्य
१—साबुन-विज्ञान	९)
२—भारतीय वैज्ञानिक	३)
३—वैक्युमब्रेक	२)
४—यांत्रिक चित्रकारी	२।।)
५—विज्ञान के महारथी	२)
६—पृथ्वी के अन्वेषण की कथाएँ	१।।)
७—विज्ञान जगत की झाँकी	२)
८—खोज के पथ पर	।।)

पता—विज्ञान परिषद्, (केमिस्ट्री डिपार्टमेंट, प्रयाग विश्वविद्यालय) **प्रयाग**

Reg. NO. 372

विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

परिषद् का उद्देश्य

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद् का संगठन

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार सभ्यगण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उप-सभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमन्त्री, दो मन्त्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्य को ६) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ १०० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिए वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशन में उपस्थित रहने का तथा अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित, परिषद् की सब पुस्तकों, पत्रों, तथा विवरणों इत्यादि को बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७ -परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य वृन्द समझे जायेंगे।

प्रधान संपादक—डा० *हीरालाल निगम*
सहायक संपादक—*श्री जगपति चतुर्वेदी*

आर्ट प्रिन्टर्स, जीरो रोड, इलाहाबाद—३

प्रकाशक—विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद

विज्ञान
विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र
मार्च १९५४
मीन २०१०
भाग ७८
अंक ६
वार्षिक मूल्य
चार रुपए
प्रति अंक
छः आने

Approved by the Directors of Education, Uttar Pradesh
and Madhya Pradesh for use in Schools,
Colleges and Libraries

विज्ञान के नियम

१—वार्षिक मूल्य ४) तथा प्रति अंक का ।=) है।

२—प्रति मास प्रथम सप्ताह में विज्ञान प्रकाशित होता है।

३—ग्राहक किसी भी मास से बनते हैं।

४—वार्षिक मूल्य सदा दो एक मास पूर्व अग्रिम भेजने से ।≋) वी० पी० व्यय की बचत हो सकती है।

५—नमूने की प्रति माँगने पर या बिना मांगे भी ज्ञात पतों पर मुफ्त भेजी जाती है।

लेखकों से निवेदन

१—लेख किसी भी विषय के वैज्ञानिक पक्ष पर होना चाहिये।

२—लेख मनोरंजक और सुबोध होना चाहिये।

३—कागज पर एक ओर ही सुपाठ्य लिखना चाहिए।

४—चित्र सदा काली स्याही से बने होने चाहिए। हल्के या अन्यरंग में बने चित्रों का ब्लाक नहीं बन सकता।

५—लेख भेजने के दो मास पश्चात् भी न छपने पर स्मरण-पत्र अवश्य भेजें।

विषय-सूची

वार्षिक मूल्य ४) चार रुपया एक प्रति का ।=) छः आना।

विज्ञान

विज्ञानं ब्रह्मेति व्याजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० ।३।५

संख्या ७८ | मीन २०१०, मार्च १९५४ | अंक ६

विलुप्त तथा दुर्लभप्राय जन्तु*

जगपति चतुर्वेदी

जंतु-जगत की विचित्रताओं में उनके रंग-रूप, आकार-प्रकार, तथा स्वभावों के अतिरिक्त किन्हीं कारणों से संसार से बिलकुल ही नष्ट या नष्टप्राय हो जाना भी है। वैज्ञानिकों ने ऐसे जन्तुओं की जातियाँ नष्टप्राय होने के कारणों पर विचार करने का प्रयत्न किया है। यह एक आश्चर्य की ही बात है कि जिन जंतुओं को पहले उपेक्षणीय-सा माना जाता था, वे मनुष्यों के आक्रमण तथा अपने निवास क्षेत्र में अन्य आक्रामक जंतुओं के आगमन से जब सर्वथा नष्ट हो गये या नष्टप्राय हो गये तो उनकी शरीर रचना, रंग-रूप स्वभाव आदि की चर्चा अधिक होने लगी और संसार को उनके सम्बन्ध में पहले जहाँ कुछ भी ज्ञान नहीं था, वहाँ लोगों को विशेष जानकारी हो सकी। यदि उनके लुप्तप्राय होने की संभावना अधिक विचारशील मानव समाज को हो पाती तो आज उनकी जातियों नष्ट हो जाने का अवसर न आया होता। आज जिन जंतुओं की जातियों सर्वथा नष्ट होने की तनिक भी संभावना ज्ञात होती है उनको बचाने का प्रयत्न तुरन्त ही करने का उद्योग किया जाता है। ऐसे अनेक जन्तु आज पाये जाते हैं जो पहले अधिक क्षेत्रों में अपना प्रसार रखते थे, परन्तु मानव-प्रयत्नों या प्राकृतिक सुविधाओं से अब थोड़े सीमित क्षेत्रों में ही बचे रह सके हैं। इनको दुर्लभप्राय या नष्टप्राय जंतु कहा जाता है।

यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि रीढ़दार जन्तुओं के लोप की घटना भूतल पर विशाल भौगर्भिक तथा जलवायु परिवर्तनों से संबंधित है, किन्तु इस तथ्य के अतिरिक्त अन्य कारण भी कुछ जन्तुओं की जातियाँ लुप्त करने में निस्सन्देह सहायक होते हैं। प्राचीन प्रागैतिहासिक परिवर्तनों तथा घटनाओं की बता आज स्पष्ट रूप से हमारी कल्पना में भले ही न आ सकती हो, परन्तु आज के ऐतिहासिक काल में जंतुओं की जातियाँ लुप्त होने के स्पष्ट उदाहरण

* ['विलक्षण जन्तु' किताब महल, इलाहाबाद]

सुलभ हैं। सर्वथा विलुप्त हुए जंतुओं में मारीशस के डोडो पक्षी की कथा बहुत प्रसिद्ध है।

डोडो पक्षी का सर्वोत्तम परिचय सेवरी (१५७६ १६३९) द्वारा चित्रित चित्रों से मिलता है। इसका शरीर हृष्ट-पुष्ट होता था तथा चोंच के सिरे से दुम की छोर तक लम्बाई तीन फीट होती थी। किन्तु उसके पङ्ख इतने छोटे थे कि उड़ नहीं सकता था। चोंच दीर्घाकार और काली होती थी। उसका अंतिम भाग शृंगीय वक्र अंकुश रूप का होता था। मुख के पार्श्व भाग अधिकांश परहीन (नग्न) होते थे। पैर नाटे, स्थूल तथा छिछड़े युक्त होते थे। जंघे के ऊपर पर (पतत्र) निकले होते थे। वक्षस्थल तथा पूँछ का रंग श्वेत होता था। पङ्खों का रंग पीलापन युक्त श्वेत तथा शरीर के परों का रंग गहरा भस्मीय (राख के रंग का) होता था। इसके जीवित नमूने मारीशस से योरप में १६१० तथा १६२० के मध्य पहुँचाये गये। इंगलैंड में दो बन्दी रूप में डोडो १६३० तथा १६४० ई० के मध्य विद्यमान थे किन्तु आज इसकी ठीक शरीर रचना तथा स्वभाव आदि का बता सकना कठिन ही है। कहा जाता है कि यह जंगलों में रहा करता था, कंकड़ निगल जाया करता था, शिशुहंस की तरह शब्द करता था तथा एक उजला-सा बड़ा अंडा घास की गद्दी पर देता था।

हालैण्ड वासियों ने पहले-पहल १५९८ ई० में डोडो देखा। वे इसे बेकार सा पक्षी कहते थे क्योंकि इसका मांस खाने में उतना स्वादिष्ट नहीं लगता था किन्तु इसका नाम डोडो कदाचित् इस कारण पड़ा कि यह बोदा या सीधा सा पक्षी था और पुर्तगाल की भाषा का शब्द "डोडो" सरल या बोदे अर्थ का द्योतक है। अतएव कदाचित् उस शब्द द्वारा ही यह बोदेपन के कारण पुकारा जाने लगा। इस पक्षी की अंतिम विद्यमानता मारीशस में १६८० ई० तक पाई जाती है किन्तु इसका अंतिम रूप से लोप १६९३ ई० में हुआ। इस प्रकार योरोप के जीवविज्ञान विशारदों को यह सौ वर्षों तक ज्ञात रहा। विशेषज्ञों की प्रायः एक सम्मति यही है कि इस पक्षी का लोप हालैंड तथा पुर्तगाल के अविवेकशील माँझियों के हाथ हुआ। वे अपने साथ कुत्ते और शूकर ले गये तो उनके द्वारा भी डोडो के सर्वथा विलुप्त हो जाने की क्रिया पूर्णतः संपन्न होने में यथेष्ट क्रियात्मक सहायता प्राप्त हुई। डोडो की जाति संसार से नष्ट होने की यही संक्षिप्त कथा है।

जन्तुओं के कङ्काल तथा प्रस्तरावशेष-विज्ञानों के सम्बन्ध में फ्रांस में कुवियर नाम के एक प्रसिद्ध विद्वान हो गये हैं। उन्होंने १८२८ ई० में डोडो के केवल आंशिक रूपों के अवशेष विद्यमान होने का उल्लेख किया था, जिनमें एक तो ब्रिटिश म्यूजियम में रक्षित केवल एक पैर था तथा दूसरा आक्सफोर्ड के एक संग्रहालय में भद्दे रूप में रक्षित सिर था। इन दो अवशिष्ट अंगों के अतिरिक्त संसार में डोडो के सदेह रूप का कोई चिह्न नहीं था, परन्तु बाद में सावधानी से निरीक्षण करने पर कुवियर महोदय ने ज्ञात किया कि लंदन के प्रसिद्ध संग्रहालय ब्रिटिश म्यूजियम में रक्षित पैर जिस जाति के पक्षी का है, उससे किसी विभिन्न जाति के डोडो पक्षी का पैर ही आक्सफोर्ड के संग्रहालय में रक्षित है। इसके पश्चात् तो डोडो के कङ्काल तथा अस्थि-खंड मारीशस की एक झील के पङ्क में सुरक्षित पाये जा सके जिससे उसके रूप का निश्चय किया जा सका।

डोडो का ही निकट बन्धु सालिटेयरी नाम के पक्षी का निवास हिन्द महासागर के रोड्रिग द्वीप में था। वहाँ यह पक्षी डोडो की भाँति ही मार-मार कर खा लिया गया था और शूकर तथा श्वानों द्वारा शिकार भी बना था, किन्तु इसे १७६० ई० तक विद्यमान पाया जा सका। सालिटेयरी पक्षी के सम्बन्ध में विद्वानों में भ्रांतियाँ भी फैली थीं, किन्तु उसके अनेक कंकाल आज अनेक संग्रहालयों में विद्यमान हैं जिससे उसके सम्बन्ध में पर्याप्त जानकारी हो जाती है। डोडो का एक तीसरा बन्धु श्वेत डोडो हिंद महासागर के रियूनियन द्वीप में था। उसका चित्र पी० विथूज (१६५४-९३) नाम के चित्र-

कार ने किया था तथा फ्रांकोइज करेची नाम के वैज्ञानिक ने उसका वर्णन कर प्रकट किया कि वह डोडो के समान जाति का था। समोआ में दन्तयुक्त चंचुधारी कपोत भी मारीशस के डोडो का निकटतम जीवित बन्धु कहा जा सकता है। यह कबूतर पहले भूमि पर घोंसला बना कर अंडा देता था। उसके अंडे तथा नवजात बच्चे सहज ही शत्रुओं के शिकार बनते। उसकी जाति नष्ट-प्राय-सी होने लगी। परंतु इस आपदा का कदाचित् कबूतर ने अनुभव किया और अपनी पूर्व वंशानुगत परम्परा को त्याग कर भूमि की जगह वृक्ष पर ही घोंसला बनाना प्रारम्भ कर जाति की रक्षा की।

दंतयुक्त चंचुधारी कपोत ने आधुनिक युग में अपना जीवन-क्रम परिवर्तित करने का उदाहरण रक्खा है। यह बात अवश्य है कि वह डोडो की तरह सर्वथा लूला-सा नहीं बन गया था। उसके पङ्खों का रूप उसे उड़ा सकने योग्य शेष रह गया था। अतएव उसने भूमि पर घोंसला बनाने की वृत्ति अंत समय में परित्यक्त कर अपनी जाति को संसार के विलुप्त जन्तुओं की श्रेणी में लिखाने से बचा लिया। पशुविवेक का यह एक ज्वलंत उदाहरण ही है।

दीर्घ आक की कथा भी डोडो की भाँति आज विशेष प्रसिद्ध है। आइसलैन्ड के निकट एलडी द्वीप में इसका अन्तिम नमूना १८४४ई०में पाया गया था। आरकनी, सेंट किल्डा तथा आयरलैन्ड में जीवित नमूने अन्तिम रूप में क्रमशः १८१२, १८२१ तथा १८३४ ई० तक बहुसंख्यक पाये गये थे। आइसलैन्ड के निकट के पार्वत्य द्वीपों, न्यूफाउडलैन्ड (विशेषतया फङ्क द्वीप) उत्तरी तथा पश्चिमी स्काटलैन्ड, उत्तरी और दक्षिणी आयरलैन्ड तथा उत्तरी अमेरिका के मेनी नामक स्थान तक के पूर्वी तट पर यह पक्षी पहले बहुसंख्यक रूप में पाया जाता था। कुवियर महोदय ने तो यहाँ तक लिखा है कि यह इङ्गलैन्ड में कभी-कभी पहुँचने वाले जीवित जंतुओं में गिना जाता था, किंतु इसका सर्वथा लोप होने के पश्चात् इसके कंकालों के अवशेष डेनमार्क तथा डरहम तट के निकट के एक द्वीप की गुफा में पाये गये। डोडो तथा सालिटेयरी पक्षियों की भाँति दीर्घ आक के सम्बन्ध में भी अधिक जानकारी उसके सर्वथा विलुप्त होने के पश्चात् ही संसार को हो सकी है। यह बाह्य रूप से पेंग्विन-सा प्रतीत होता था, किंतु सूक्ष्म अवलोकन पर यह तरङ्क काक (पफिन) के अधिक निकट का ज्ञात होता है। यह जल में तो अपने क्षुद्र पङ्खपादों से बड़ी तीव्रता से तैर सकता था, परन्तु भूमि पर डोडो से अधिक मन्द गति से ही चल सकता था। इस समय संसार भर में १०० आकों के रक्षित शव संग्रहालयों में विद्यमान पाये जाते हैं।

मादा दीर्घ आक एक बार में एक अंडा देती थी। अन्डे का आकार साढ़े चार इञ्च लम्बा तथा तीन इञ्च चौड़ा होता था। उसका रङ्ग हल्का पीला या श्वेत होता था जिस पर काले तथा भूरे रङ्ग के गोल धब्बे या गोले आकार चित्रित होते थे। इसके अंडे के सौ नमूने सुरक्षित हैं। आज यह निश्चयपूर्वक कह सकना बड़ा कठिन है कि इस पक्षी का सर्वथा लोप किन कारणों से हुआ। कुछ लोग तो यही मानते हैं कि माझियों ने खाने के लिए इस पक्षी तथा उसके अंडों को समाप्त किया। पक्षी का माँस तो सुस्वादु होता ही था, अंडे भी खाने योग्य थे। अन्डों को इन पक्षियों के जनन-स्थलों से सैकड़ों की संख्या में एकत्र किया जाता था। किंतु रे लंकेस्टर नाम के प्रसिद्ध वैज्ञानिक ने इस धारणा का सर्वथा खंडन किया है।

मोआ पक्षी की कथा कम लोमहर्षक नहीं है, परन्तु उसकी जाति विलुप्त करने का उत्तरदायित्व आज के संसार को न देकर न्यूजीलैण्ड के मूलवासी, मावरी लोगों पर डाला जाता है। यह पक्षी आज से पाँच-छः शताब्दी पूर्व तक जीवित था। कदाचित् आज के मावरी लोगों के पूर्वजों द्वारा शिकार हो-होकर उसकी जाति सर्वथा नष्ट हो सकी। इस पक्षी की जानकारी के सम्बन्ध की घटनाएँ आज के वैज्ञानिक शोध कार्य को अत्यन्त गौरव प्रदान करने

वाली हैं। जिस समय इसके आकार-प्रकार का कुछ भी पता नहीं था। पहले-पहल केवल जङ्घास्थि का मध्य भाग प्राप्त हुआ। रिचार्ड ओवेन नाम के वैज्ञानिक ने एकमात्र उस अस्थि को देख कर इस विलुप्त पक्षी के आकार की घोषणा की। बाद में इस पक्षी के अवशेष अन्यत्रभूमि के अन्दर या गुफाओं और पूर्व समय के उपनिवेश-स्थापकों के निवास-स्थलों के निकट पाये गये, जिससे यह ज्ञात किया गया कि केवल एक अस्थि खंड के आधार पर
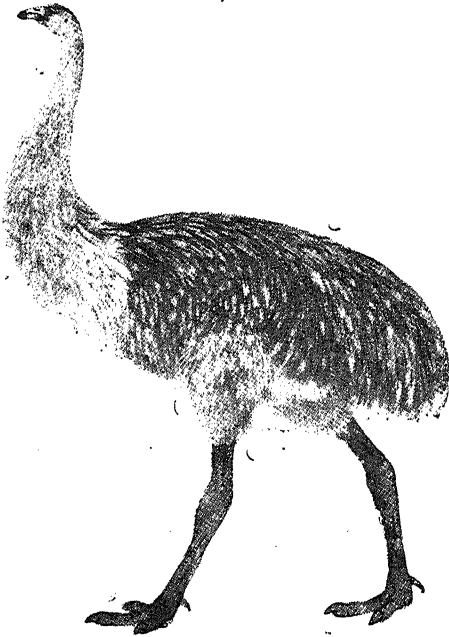
मोआ

व्यक्त की हुई रिचार्ड ओवेन की भविष्यवाणी इस पक्षी के आकार के सम्बन्ध में कितनी सत्य थी। इसके कंकाल के अतिरिक्त पेशियाँ, त्वचाएँ, उपास्थियाँ आदि पदार्थ भी अवशेष रूप में प्राप्त हो सके हैं।

मोआ के पर बड़े सुन्दर रूप में रक्षित पाये जा सके हैं। उनको देखकर तो यह ज्ञात होता है कि थोड़े समय पूर्व मृत पक्षी के पर हों। उनके रङ्गों में कोई विकृति उत्पन्न नहीं पाई जाती। कुछ पर(पतत्र) काले होते थे जो आधारतल में लाल भूरे तथा छोरों पर श्वेत होते थे। अन्य परों का रङ्ग कलौंछ (काला सदृश) भूरा या पीला होता था। आकार में विशेष विभेद पाया जाता है। दीर्घ आक की अधिक से अधिक ऊँचाई खड़े होने पर बारह फीट होती थी, किंतु क्षुद्रतम आकार में आक की ऊँचाई मुर्गी के बराबर ही होती थी। कदाचित् मादा का आकार नर से बड़ा होता था। इसका सिर आश्चर्यजनक रूप में छोटा होता था, नेत्र भी अत्यन्त छोटे होते थे। गर्दन के आंशिक नग्न (परहीन) होने का विश्वास किया जाता है। पैर पुष्ट होते थे, पंख बहुत छोटे होते थे। सारे शरीर पर बाल के समान मोटे पर (पतत्र) उगे होते थे। खंडित तथा पूर्ण रूप के अंडे भी पाये जा सके हैं। उनका रंग प्रायः हल्का या गहरा है। किसी-किसी में पीलेपन की पुट ज्ञात होती है, किन्तु वह कदाचित् धुँधला हो जाने के नमूने ही हैं। सन् १९३९ ई० में दक्षिणी द्वीप में वैराऊ नदी के मुहाने पर कब्रों के अंदर मोआ के अंडे आये पाये गये थे। उन अंडों में कुछ इतने सुरक्षित थे कि यह स्पष्ट ज्ञात होता था कि एक छिद्र बनने से वे वायु द्वारा प्रवाहित होकर वहाँ पहुँचे हैं। उनके सम्बन्ध में वैज्ञानिकों की यह धारणा ठीक ही ज्ञात होती है कि एक ओर छिद्र बन जाने से उन्हें हवा उड़ा लेजाती थी। ताजे रूप में ज्ञात होने वाले अंडे की परीक्षा कर डफ नाम के वैज्ञानिक ने १९५० में यह बात व्यक्त की कि अंडे में एक छेद हो जाने से उसका रूप पानी की बोतल-सा हो जाता है जो उसे बहा ले जाने के लिए यथेष्ट होता है। उनके साथ ही मावरी लोगों के पुराने कङ्काल प्राप्त होने से यह विदित होता है कि किसी समय मावरी लोग तथा मोआ पक्षी समकालीन ही थे और न्यूज़ीलैंड में निवास करते थे। अन्य खुदाई के प्रमाणों से आज यह सिद्ध किया जा सका है कि १६५० ई० तक मोआ पक्षी का सर्वथा लोप हो चुका था। डफ की खोजों ने यह भी ज्ञात किया कि मावरी लोगों के शिकार करने के परिणामस्वरूप न्यूज़ीलैंड

के एक हंस तथा एक चील जाति का मोआ की भाँति सर्वथा लोप हो गया।

मावरी लोगों की जनश्रुतियों द्वारा प्रतीत होता है कि मोआ पक्षी भद्दड़ और सुस्त स्वभाव के होते थे। भूमि पर ही घास-पात में घोंसला बनाकर अंडा देते थे। वनस्पतियों का ही आहार करते थे। उनके आस-पास के जंगल में चारों ओर आग लगाकर उनको भालों की निरन्तर मार से सहज था। डाला जाता था। अतएव वे मृत हो जाते और मावरी लोगों के आहार बनते।

न्यूजीलैंड का एक दूसरा विचित्र पक्षी नोटोर्निस नामक था। उसका ज्ञान पहले प्रस्तरावशेष रूप में ही हुआ। किन्त वर्षों बाद ज्ञात हुआ कि उसके जीवित नमूने भी दक्षिणी द्वीप में विद्यमान हैं। १९४८ ई० तक यह बात संदिग्धात्मक ही थी कि यह
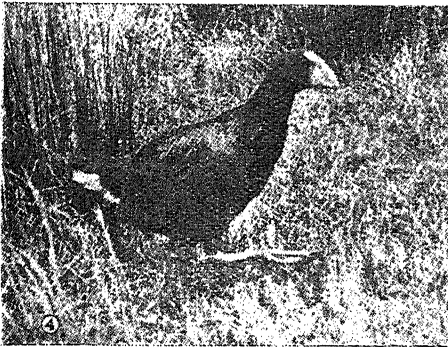
नोटोर्निस पक्षी (न्यूजीलैण्ड का टकाहिया) इसे १८९८ ई० से १९४८ ई० तक विलुप्त ही समझा जाता था। परन्तु १९४८ में डा० जी० बी० ओर्बेल ने इसकी पुनः खोज की।

पक्षी अब भी जीवित है या इसकी जाति का सर्वथा लोप ही हो चुका है। किन्तु उसी वर्ष मचिलन पर्वत माला क्षेत्र की एक झील के पश्चिमी पर छोटे क्षेत्र में नोटोर्निस पक्षी का निवास एक पुरानी हिम नदीय घाटी में पाया जा सका, किन्तु प्रस्तरावशेषों तथा अर्द्ध-प्रस्तरावशेषों को देखकर यह प्रमाणित होता है कि इस पक्षी का प्रसार-क्षेत्र अवश्य ही पहले विस्तृत था। इसका प्रसार किसी समय उत्तरी द्वीप के दक्षिणी भाग के निम्न स्थलों तथा दक्षिणी द्वीप के दक्षिणी, उत्तरी-पूर्वी तथा दक्षिणी-पश्चिमी भागों में भी था। नोटोर्निस के प्रसार-क्षेत्र पर विलियम नाम के वैज्ञानिक ने १९५० ई० में अच्छा प्रकाश डाला।

मेडागास्कर के एपिओर्निस पक्षी की कथा एक पौराणिक कथा-सी ही प्रतीत हो सकती है। परन्तु वह किसी समय एक जीवित जंतु ही था। इस वृहदाकार पक्षी का उल्लेख मार्कोपोलो ने "राक" नाम के पक्षी रूप में किया था। अरब की दन्त-

एपिओर्निस
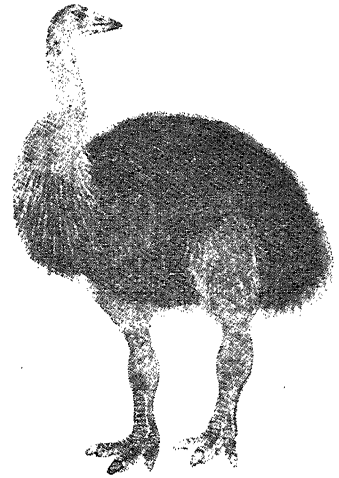
कथाओं में भी राक पक्षी का नाम आता है। इन दंत-कथाओं की बात चाहे जो हो, परन्तु एपिओर्निस तो दो-तीन सौ वर्षों पूर्व जीवित अनुमानित किया जाता था। लोगों का अनुमान था कि मेडागास्कर के अज्ञात जंगलों में वह कहीं अवश्य जीवित पड़ा होगा किन्तु यथार्थ प्रमाण नहीं थे।

इस वृहदाकार पक्षी के अण्डे का आकार १३ इंच लम्बा तथा साढ़े नौ इंच चौड़ा पाया जा सकता है। इसके छिलके या प्रकवच में १२ बोतल द्रव या पानी रक्खा जा सकता है। इसका प्रयोग मूलवासी

जलपात्र की भाँति किया करते थे। तूफान के समय कभी-कभी ये अंडे तटीय मरुभूमि से प्रवाहित होकर जल पर तैरते मिलते हैं।

विलुप्त तथा लुप्तप्राय पक्षियों में हम उपर्युक्त पक्षियों के रक्षित शवों, कंकालों, अंडों आदि के प्रत्यक्ष प्रमाणों द्वारा उनका ज्ञान प्राप्त करते हैं किन्तु ऐसे पक्षियों के विलुप्त होने की कथा भी सुनी जाती है जिनके प्रत्यक्ष कोई भी प्रमाण हमें देखने को नहीं मिल सकते। वेरिल नाम के वैज्ञानिक ने ऐसे पक्षियों में डोमिनिका (पश्चिमी द्वीप समूह) के डायब्लोटिन नामक पक्षी का उल्लेख किया है जिसका प्रत्यक्ष-प्रमाण या चित्र भी सुलभ नहीं। डायब्लोटिन पर्वत के ढाल पर सीमित क्षेत्र में इसके किसी समय निवास करने का विश्वास किया जाता है। कहा जाता है कि ये पक्षी दिन को तो बिलों में रहते थे और रात को शिकार करने निकला करते थे। इनका मांस कदाचित् इतना सुस्वादु होता था कि शिकारियों ने इनको मार-मार कर समाप्त ही कर दिया। सिखाये हुए कुत्तों द्वारा इनको पकड़वाने में सहायता ली जाती थी। आज से एक शताब्दी पूर्व कदाचित् इनका लोप हो गया। इस पक्षी की खाल या अंडे को सुरक्षित नहीं रक्खा जा सका है। संदिग्ध रूप में एक पक्षी का चित्र लेबट नाम के व्यक्ति द्वारा चित्रित मिलता है, किन्तु वह कदाचित् किसी तरङ्ग-कांक पक्षी का ही है जो ग्वाडेलौपे द्वीप में विद्यमान पाया जाता है। इसका रूप उस संदिग्ध पक्षी से मिलता है।

पक्षी जगत में ही दुर्लभ या विलुप्त होने के दृश्य नहीं देखे जाते। अन्य जन्तुओं में भी ऐसी घटनाएँ घटित होती हैं। अफ्रीका में एक जन्तु गर्दभ समान होता है, जिसके सारे शरीर पर आड़ी-आड़ी मोटी धारियाँ बनी होती हैं। इसे जेब्रा कहते हैं। हमारे देश में जन्तुशालाओं में यह देखने को मिल सकता है, किन्तु इस जन्तु के समान ही एक दूसरा जन्तु भी होता था जिसका केवल आगे का भाग ही पट्टियों-युक्त होता था। उसे हम अर्द्धांग-पट्टित जेब्रा या
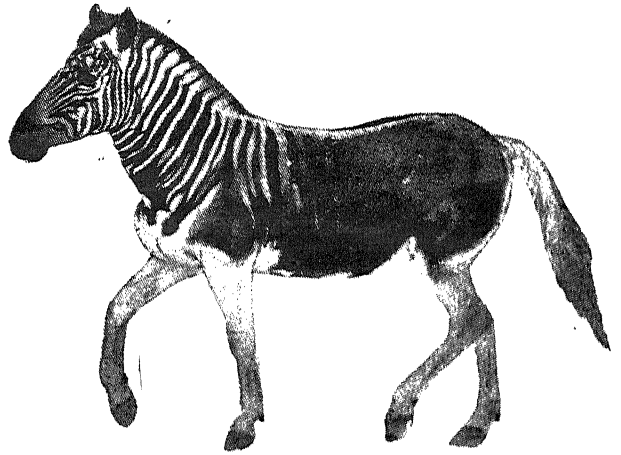
क्वेग्गा (अर्द्धाङ्ग पट्टित जेब्रा की विलुप्त जाति)

गर्दभ भी कह सकते हैं किन्तु उसे क्वेग्गा नाम से प्रसिद्ध पाया जाता है। यह जन्तु आज सर्वथा विलुप्त हो गया है। परन्तु १०० वर्षों पूर्व इसकी जाति जीवित थी। दक्षिण अफ्रीका में यह साधारण रूप में पाया जाता था। १८३६ ई० तक भी यह जीवित था। इसका अन्तिम जीवित नमूना १८६४ ई० तक जन्तु विज्ञान परिषद् द्वारा इंगलैंड में प्रदर्शित किया गया था।

समुद्री गाय एक दूसरा जन्तु है जिसके अल्प-काल तक ही जीवित देखे जाने के उदाहरण हैं। इसके स्थान पर निकटतम रूप के मेनाटी डुगोंग नाम के जन्तु आज पाये जाते हैं। परन्तु पूर्वकाल में इस जन्तु के आज से करोड़ों वर्ष पूर्व भी विद्यमान रहने का प्रमाण प्राप्त होता है। अठारवीं शताब्दी में स्टेलर नाम के वैज्ञानिक ने इसकी एक नयी प्रजाति उत्तरी अमेरिका तथा एशिया के मध्य अल्यूशियन द्वीप में प्राप्त की थी। यह समुद्री गाय २० फीट लंबी थी। उसका सिर छोटा-सा था। स्कंधदेशीय मत्स्य-पाद तैरने के अङ्ग समान थे। पिछले पैरों का अभाव था। मछली की तरह दुम थी। मुख में

केवल दो अस्थायी कर्तनक दाँतों को छोड़ कर अन्य दाँतों का अभाव ही था। शैवाल इसका मुख्य आहार था। उसके चबाने के लिए तालुओं का प्रयोग करना पड़ता था। इस जन्तु का इतनी बुरी तरह संहार किया गया कि इसका दस वर्षों में ही सर्वथा लोप हो गया। यह मनुष्य के हाथों इस संसार से अपना नाम मिटा सका।

महावृषभ की कथा कम मनोरञ्जक नहीं है। इसे औरोक या उरुस भी कहा जाता है। इसका प्रसार किसी समय सारे यूरोप में था किन्तु बहुत दिनों पूर्व इसका सर्वथा लोप हो गया। सीजर के प्राचीन लेख में उल्लिखित किया गया है कि यह यूरोप के विभिन्न भागों में पाया जाता था तथा इसका आकार हाथी के बराबर होता था। इस महावृषभ की ऊँचाई सात फीट होती थी। आज के हाथी की औसत ऊँचाई नौ फीट होती है। अतएव उसके आकार का अनुमान आज के हाथी के आकार से किया जा सकता है। इस बृहदाकार जन्तु के शृंगों का प्रसार एक छोर से दूसरी छोर तक सात या आठ फुट तक होता था। इस जन्तु का आज कोई वंशज संसार में नहीं है। अन्तिम महावृषभ १६२७ ई० में वार्सा में मारा गया था। इसके समान अन्य वन्य-वृषभों के जो जीवित नमूने आज पाये जाते हैं वे इसके यथार्थ वंशज नहीं कहे जा सकते। उनका रूप सर्वथा परिवर्तित है। आकार में तो इतनी विषमता है कि यह कहना बड़ा कठिन है कि महा-वृषभों से आज के वृषभों की उत्पत्ति से बादरायण सम्बन्ध भी हो सकता है अथवा नहीं।

महावृषभ (औरोक या उरुस)

ध्रुवीय मार्जार एक ऐसा जन्तु है जो लुप्तप्राय है। इसे कुछ सीमित क्षेत्रों में ही पाया जाता है किंतु कभी इसका व्यापक क्षेत्रों में प्रसार रहा होगा। इंगलैंड में इसे पूर्वकाल में विशेष प्रसारित विश्वास किया जाता है किन्तु अब एक छोटे क्षेत्र में मध्य वेल्स प्रदेश में ही इसे पाया जाता है। पहले इसके कच्चे चमड़े की इतनी पूछ तथा खपत थी कि इसे मारने के लिए पुरस्कार मिलते थे किन्तु १८५० ई० के पश्चात् इसकी संख्या बहुत न्यून होने लगी। इसका तो सर्वथा लोप ही हो गया होता क्योंकि कुत्तों द्वारा इसके शिकार की चलन बढ़ गई थी। १९३० में यह लुप्तप्राय कहा जाने लगा परन्तु इसकी संख्या कुछ बढ़ गई है।*

---

*ब्लाक 'विलक्षण जन्तु' किताब महल इलाहाबाद के सौजन्य से प्राप्त।

हैदराबाद की केन्द्रीय वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधानशालाएँ

लेखक—श्री बंकट लाल ओझा

किसी भी देश की प्रगति उद्योग व्यवसाय के बिना असंभव है और उद्योग व्यवसाय का उत्कर्ष विज्ञान पर अवलम्बित है, आज यूरोप और अमेरिका वैज्ञानिक क्षेत्र में सब से आगे हैं, इसीलिए वे रणक्षेत्र में ही नहीं उद्योग व्यवसाय में भी संसार में अपना अग्रगण्य स्थान रखते हैं, स्विट्जरलैंड, स्वीडेन, जापान और ब्रिटेन आदि देश भूमंडल के मानचित्र में क्षेत्र फल और जनसंख्या की दृष्टि से भले ही छोटे दिखाई दें, परन्तु औद्योगिक क्षेत्र में तो वे विश्व के देशों का बाजार अपने माल से पाट रहे हैं, साधन-सम्पन्न अमेरिका भी उनकी प्रतियोगिता में अपने आपको असमर्थ पाता है, रूस के यश वैभव का भी रहस्य विज्ञान ही है, विजयी जापान को पराजय का मुख दिखानेवाला भी विज्ञान ही है, इस प्रकार युद्ध हो या शान्ति, विज्ञान की छत्रछाया अनिवार्य है, हमारे देश में भी मुट्ठी भर अंग्रेजों का कल तक शासन जन बल पर नहीं अपितु विज्ञान पर ही आश्रित था।

कल तक हमारे देश के औद्योगिक विकास के क्षेत्र में विज्ञान का नगण्य सा स्थान था, क्योंकि उससे भारतीय बाजार ब्रिटेन के हाथ से निकल जाने का भय था, इसीलिए हमारे देश की प्रगति रुकी रही बड़े पैमाने पर उद्योग धन्धें विकसित न हो सकने के मुख्य कारण हैं :—

१—सरकारी नीति :—पहले सरकार ऐसे उद्योग स्थापित करने के लिये प्रोत्साहन देती थी जो विदेश से आई सामग्री को ही प्रयुक्त करता था या ऐसी सामग्री तैयार करता जो ब्रिटेन के उद्योग में खप सके। जो उद्योग भारतीयों के प्रयत्न से भारत के लिए स्थापित होते थे उन पर सरकार अनेक विघ्न बाधाएँ डालती थी। उस प्रकार की ही वस्तु ब्रिटेन से मंगाकर सस्ते दर पर बिकवाती थी, या ऐसे उद्योग के लिए यंत्र अथवा आवश्यक सामग्री ही मंगाने न देती थी। कानून कायदे भी देश की औद्योगिक प्रगति के लिए बाधक थे।

२—शिक्षण तथा संयुजन का अभाव :—सरकार की कोई निश्चित औद्योगिक नीति नहीं थी जिसके फलस्वरूप कुशल प्रशिक्षित व्यक्तियों द्वारा औद्योगिक अनुसंधान कराने की व्यवस्था कदाचित ही किसी देशी राज्य, संस्था, विश्वविद्यालय आदि में होती। कुछ बड़े-बड़े उद्योग प्रयत्न करते अवश्य थे पर परस्पर सहयोग नहीं था, वैज्ञानिक प्रशिक्षण भी इस रूप का था कि छात्र उद्योग धन्धों में उसका उपयोग नहीं कर पाते।

३—उद्योगपतियों में सहयोग का अभाव :—भारतीय उद्योगपति सहकारिता से कभी भी काम न करते थे। एक कारखाना दूसरे कारखाने की सहायता करने के स्थान पर उसकी निर्मित वस्तुओं की भद्दी नकल करता और उसके विशेषज्ञों को भड़काकर अपने यहाँ ले आता था।

४—राष्ट्र के प्रति अनुरक्ति तथा सेवा का अभाव—प्रायः यह देखा जाता है कि हम लोग निजी स्वार्थों

की चिन्ता में ही ग्रस्त रहते हैं तथा देश के हिताहित की ओर ध्यान नहीं देते, जिससे हमारे उद्योग पनप नहीं पा रहे हैं।

५—उद्योगपतियों में साहसिक प्रयोग का अभाव—प्रत्येक उद्योग में उन्नत देश के लिए अनुसंधान उद्योग-धन्धे की रीढ़ है, भारत में बहुत कम उद्योगपति इसमें विश्वास रखते हैं, और जिनकी रुचि इस ओर है वे इतने साधन सम्पन्न नहीं हैं कि भारी व्यय को उठा सकें।

६—वैज्ञानिकों का दृष्टिकोण—राज्य या विश्वविद्यालयों के वैज्ञानिकों ने भी सहयोगात्मक अनुसंधान की आवश्यकता अनुभव नहीं की।

हमारे सौभाग्य से राजनैतिक स्वतंत्रता के सूयादय के प्रभातकाल में ही जब कि देश के सम्मुख अनेक जटिल समस्याएं थीं फिर भी हमारे प्रधान मंत्री पं० जवाहर लाल नेहरू इस ओर सतत् जाग्रत और प्रयत्नशील रहे जिसका परिणाम देश में नव स्थापित राष्ट्रीय अनुसंधानशालाएं हैं। कहने को तो दूसरे महायुद्ध के अवसर पर १९४२ में भारत की अँग्रेज सरकार ने वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधान परिषद् स्थापित की थी, परन्तु उसमें अनुसंधान कार्य तो शाही वायु सेना, अमरीकी वायु सेना, युद्ध विभाग और अन्य सुरक्षा विभागों के लिए ही होता था। आज परिस्थिति बदल गई है। अब यह वैज्ञानिक अनुसंधानशालाएं राष्ट्र-निर्माण के कार्य में महत्वपूर्ण भाग ले रही हैं और वे दिन दूर नहीं जब भारत औद्योगिक प्रगति के क्षेत्र में शक्तिशाली और आत्मनिर्भर होगा।

हैदराबाद में भी एक छोटी सी राज्य सरकार की औद्योगिक अनुसंधानशाला नारायनगुडा में गत २० वर्षों से कार्य कर रही थी, जहाँ राज्य में कागज आदि बनाने के प्रारंभिक परीक्षण व अनुसंधान कार्य हुआ था। सन् १९४४ में भारत सरकार के अनुरोध पर इसे विकसित करने के लिए योजना बनी थी। इसके भवन निर्माण आदि के लिए १९४६ में १५ लाख, १९४७ में १८ लाख रु० स्वीकृत हुये थे, राज्य की राजनैतिक अस्थिरता के कारण उस समय कार्य न हो सका, पुलिस कार्यवाही के बाद डाक्टर एस० हुसैन जाहिर ने इस अनुसंधानशाला के सञ्चालक का पद ग्रहण किया और तत्कालीन फौजी सरकार के सम्मुख इसे विकसित करने की योजना प्रस्तुत की। ६ नवम्बर १९४९ को इसके भवन की आधारशिला तब के फौजी गवर्नर ने रखी थी, जिसका पहला अंश लगभग तैयार है और जिसके निर्माण में १९ लाख रु० खर्च हुआ है, जिसमें १४ लाख रु० राज्य सरकार ने और ५ लाख रु० भारत सरकार ने दिये हैं, करीब ४ लाख रु० की अभी और आवश्यकता पहले अंश के लिए है, उसमानशाही और आजमशाही मिलों ने भी १ लाख रु० और अन्य छोटे उद्योगों ने भी १५,८०० रु० इसे प्रदान किये हैं। यह अनुसंधानशाला भारत की प्रथम प्रादेशिक अनुसंधानशाला है जहाँ कि उस प्रदेश में उपलब्ध कच्ची सामग्री के औद्योगिक उपयोग और वहाँ के उद्योगधन्धों को पूर्ण वैज्ञानिक रूप से विकसित करने के लिए अनुसंधान किया जायगा, यह अनुसंधान इस प्रकार के होंगे कि जिससे देश के अन्य अनुसंधानशालाएं जो कार्य कर रही हैं उनको अनावश्यक रूप से दुहराया न जाय, और समय व शक्ति का अपव्यय न हो, ता० २ जनवरी १९५४ को प्रातः १०-३० बजे भारत के प्रधान मंत्री पं० जवाहर लाल नेहरू ने इस अनुसंधानशाला का उद्घाटन किया है। इस प्रकार हैदराबाद राज्य की औद्योगिक प्रगति के एक नये अध्याय का श्रीगणेश हो चुका है।

सागर

लेखक—श्री महाराज नारायण मेहरोत्रा एम० एस-सी० (भूशास्त्र) भूशास्त्र विभाग, का० वि० वि०

सागर पृथ्वी के एक बहुत बड़े भाग (लगभग ७०%) को घेरे हुये है। ज्यों-ज्यों हम सागर तट से सागर के अन्दर जाते हैं—जल की गहराई बढ़ती जाती है। सागर की अधिकतम गहराई का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि उसमें विश्व की सब से ऊँची चोटी केवल डूब ही नहीं जायेगी, वरन पानी के तल से लगभग एक मील नीचे रहेगी। पर महाद्वीपीय ढाल (Continental Slope) तक, जो कि धरातल और समुद्र के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है, समुद्र छिछला है। यहाँ पर कहीं भी समुद्र की गहराई ६०० फुट से अधिक नहीं है।

समुद्र के जल का तापक्रम भी गहराई के साथ साथ कम होता जाता है। पर समुद्र की सतह पर भी प्रत्येक स्थान पर तापक्रम समान नहीं है। भू-मध्य रेखा के निकट यह ताप अधिक (लगभग ८०° फा०) तथा ध्रुवों के निकट कम (लगभग २८° फा०) ध्रुवों के निकट २८° फा० पर भी पानी नहीं जमता है—क्यों कि सागर जल में बहुत से क्षार मिले रहते हैं। सर्व प्रथम सागर का जल खारा न था। यह खारापन तो सागर को नदियों की देन है जो अत्यधिक मात्रा में खार ला लाकर समुद्र में जमा-कर रही हैं।

भूतात्विक दृष्टि से हम सागर के कार्य को दो भागों में विभाजित कर सकते हैं। पहला सागर की लहरों का विनाश कार्य, जो कि तटवर्तीय प्रदेश और निम्न जल रेखा तथा उच्च जल रेखा तक ही सीमित रहता है, दूसरा सागर का रचनात्मक कार्य जो कि सागर में समुद्र तट से लेकर सागर की अधिकतम गहराई तक होता रहता है।

सागर का विनाश कार्य

सागर के विनाश कार्य के लिये उसमें उठी तरंगे ही एक मात्र कारण हैं। सागर के जल को बड़ा गंभीर और शान्त कहा जाता है—पर जिस समय इसमें लहरें उठती है, इनका विकराल स्वरूप दर्शनीय होता है।

चन्द्र की आकर्षण शक्ति के कारण ही समुद्र में ज्वार भाटा आया करता है। ज्वार के समय समुद्र का पानी लहरों के साथ किनारे की ओर तेजी से बढ़ता है। और भाटे के साथ यह जल फिर समुद्र में वापस आ जाता है। यह लहरें दो चार फुट से लेकर पचास या साठ फुट तक ऊँची उठती हैं—और इनका प्रभाव साधारणतः ६०० फुट गहराई तक होता है। पर अभी हाल ही में खम्बात की खाड़ी में सौ फुट ऊँची लहरें उठी थीं। यह लहरें टनों पानी अपने साथ ले जाती हैं और किनारे से टकराती हैं। किनारे पर निरन्तर प्रहार होते रहने से समुद्र तट की रेखा स्थल की ओर बढ़ती रहती है।

कभी-कभी समुद्रों में भयंकर तूफान आ जाते हैं। अभिलेखों से ज्ञात हुआ है कि तूफान के समय उठी लहरों के थपेड़ों ने बड़े२ प्रकाश स्तम्भों को तोड़कर बहा दिया, बड़े बड़े बांधों को नष्ट भ्रष्ट कर किनारे के प्रदेशों को जलमग्न कर दिया जिससे जनधन की बड़ी हानि हुई। सन् १९५३ की जनवरी के अंतिम सप्ताह में समुद्र में अति भयङ्कर तूफान आया

जिससे योरुप में खण्ड-प्रलय का दृश्य उपस्थित हो गया, जिसका वर्णन नीचे संक्षेप में दिया गया है।

'समुद्री लहर बांध को तोड़कर तट के नगरों में घुस गई। (अनेक मकान समुद्र की लहर की चपेट में आ गये) जिससे ब्रिटेन, हालैण्ड, वेल्जियम, स्विटजरलैण्ड और जर्मनी में भीषण क्षति हुई। इसके प्रभाव में सैकड़ों व्यक्ति मर गये, सहस्रों गृहविहीन हो गये। आयरिश सागर में ब्रिटिश स्टीमर 'प्रिंसेज विक्टोरिया' डूब गया जिसमें लगभग १५० व्यक्तियों की मृत्यु हुई। अन्य बहुत से जहाज लापता हो गये। टेम्स नदी के मुहाने पर स्थित 'कैनवे द्वीप' लाशों का द्वीप बन गया। गिरे हुए मकानों के मलवे के ऊपर, पेड़ों की डालों में फँसी हुई, तथा पानी पर तैरती बहुत सी लाशें दिखाई पड़ती थीं। यातायात व संवाद के साधन भङ्ग हो गये। वेल्जियम के ओस्टैण्ड नगर का दो तिहाई भाग पानी से ढक गया। फ्रांस में डंकर्क नगर के निचले भाग जलमग्न हो गये। स्विटजरलैण्ड में बर्फीले तूफान और जोरों की वायु से रेल का आवागमन बंद हो गया। कई स्थानों के बीच टेलीफोन सम्बन्ध भङ्ग हो गया। कहा जाता है कि लोगों की स्मृति में यह यूरुप का सबसे बड़ा तूफान था।'

समुद्र की लहरों का पानी तटवर्तीय शिलाओं पर प्रहार करता है और उन शिलाओं में विद्यमान दरारों के द्वारा भीतर घुस जाता है। दरारों में वायु पहले से ही भरी रहती है—पर जब लहर का पानी दरार में घुसता है तो वायु संकुचित हो जाती है। जैसे ही लहर वापस जाती है वायु फिर एक दम फैलने लगती है। इस प्रकार वायु के संकुचन और फैलाव से बड़ी बड़ी शिलाएँ शिथिल हो जाती है—उनमें की दरारें धीरे धीरे बड़ी होती जाती हैं और अंत में चट्टानें टूट जाती हैं।

कभी कभी जल जोड़ों (Joints) में घुसकर शिलाओं में विद्यमान अन्य छोटी छोटी दरारों में घुस जाता है और विनाशकारी दबाव डालता है। इससे शिलाएँ शिथिल समतलों पर से अलग अलग होकर गिरने लगती हैं।

जिस प्रकार वायु अपने साथ रेत, धूल, कण आदि बहा कर ले जाती है और वह वायु के विनाश कार्य में सहायता पहुँचाते हैं, उसी प्रकार सागर की लहरें भी अपने साथ बहुत सा रेत कंकड़ पत्थर लेकर जाती हैं और किनारे से टकराती हैं। इनकी रगड़ लगने से चट्टानें घिसने लगती हैं और धीरे २ उनका क्षय होने लगता है। विशेषकर चट्टानों का निचला भाग—जहाँ तक लहर की पहुँच होती है, इसके प्रभाव में नष्ट होता है। निरंतर क्षय होने से चट्टानों का निचला भाग खोखला होता जाता है और ऊपर का भाग लटकता दिखाई देने लगता है। कुछ समय पश्चात् शिलाओं का ऊपरी लटकता भाग अपने ही भार के कारण टूट कर नीचे गिर जाता है। इस प्रकार शिलाओं का क्षय होने से समुद्र तट की रेखा स्थल की ओर बढ़ती रहती है।

चट्टानों का क्षय उनके योग तथा रचना पर निर्भर है। सुसंगठित व कठोर शिलाएँ जैसे क्वार्टजाइट आदि पर दीर्घ काल तक जल का कोई प्रभाव नहीं होता। इसके विपरीत असंगठित व शिथिल चट्टानें जैसे 'शिस्ट' (Schist) आदि शीघ्र ही नष्ट हो जाती हैं।

सागर तट की रचना में पृथ्वी से संबद्ध घटनाओं का भी बड़ा प्रभाव पड़ता है। कभी कभी स्थल का समुद्रगर्भी भाग ऊपर उठ आने से किनारा सागर की ओर बढ़ आता है। कभी-कभी किनारे के पास का प्रदेश जलमग्न हो जाता है जिससे किनारा स्थल की ओर बढ़ आता है। भारतवर्ष के पश्चिमी समुद्र तट की जो रूपरेखा आज दिखाई देती है भ्रंश (Fault) के कारण स्थल का कुछ भाग समुद्र में धस जाने से ही बनी है। पूर्वी किनारे के सभी द्वीपसमूह रेखाबद्ध होकर एक दूसरे से जुड़े हुए थे पर बीच की धरती धस जाने के कारण एक दूसरे से अलग हो गये हैं।

सागर का रचनात्मक कार्य—

धरातल पर कार्य करने वाली शक्तियां जो कुछ भी पदार्थ तोड़ती, बखेरती हैं उसका अधिकांश वायु और नदियां सागर की ओर ले जाती है। इसके अतिरिक्त समुद्र की लहरों द्वारा क्षय किया पदार्थ भी सागर में ही जमा होता रहता है।

नदियों द्वारा जो पदार्थ सागर में पहुँचता है, उसमें कुछ तो जल में घुला रहता है और कुछ बालू बजरी मिट्टी आदि के रूप में विद्यमान रहता है। सागर में यह पदार्थ अपने आकार व हल्के भारीपन के हिसाब से क्रमिक रूप में जमा होते जाते हैं। बड़े व भारी कण समुद्र तट के निकट ही जमा हो जाते हैं। छोटे हल्के और महीन कण धारा के साथ समुद्र के भीतर दूर तक चले जाते हैं।

समुद्र के किनारे का बालू, कंकड़ पत्थर पानी की लहरों के साथ नाचता रहता है। जब लहर किनारे की ओर जाती है तो यह पदार्थ लहर के साथ आगे बढ़ते हैं और फिर लहर के साथ वापस आ जाते हैं। लहरों के आवागमन से सब पदार्थ किनारे पर की क्रमिक व्यवस्था में रख दिये जाते हैं। भरे और रिनार्ड ने समुद्र तट के निक्षेपों को दो भागों में विभाजित किया है।

१. समुद्र तट के पदार्थ।

२. गहरे जल में पाये जाने वाले पदार्थ।

समुद्र तट के पदार्थ—यह निक्षेप स्थल के क्षत-विक्षत पदार्थ के समुद्र में जमा होने से बने हैं। विशेष कर यह कार्य नदियों और वायु द्वारा ही सम्पन्न किया जाता है। इन पदार्थों को भी दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(क) तटीय पदार्थ (समुद्र तट पर पाये जाने वाले पदार्थ)

(ख) छिछले जल में पाये जाने वाले पदार्थ (कंकड़ रेत, कीचड़ आदि)

(क) *तटीय पदार्थ*—यह पदार्थ उच्चतम और निम्नतम जल चिन्हों के बीच पाये जाते हैं। यह लगभग ६०,००० वर्गमील क्षेत्रफल घेरे हुए हैं। इन पदार्थों में पत्थरों, और कंकड़ों की बहुलता रहती है। थोड़ा बहुत बालू भी पाया जाती है। किसी २ स्थान पर बालू कणों के चूर २ होने से बनी मिट्टी भी मिलती है। पर यह मिट्टी अल्प मात्रा में ही मिलती है।

इन निक्षेपों में लहर के प्रभाव से जो चिन्ह बनते हैं उन्हें 'लहर चिन्ह' तथा वायु द्वारा निर्मित चिन्हों को 'वायुचिन्ह' कहते हैं। यह चिन्ह समुद्र तट पर बनी सभी रेतीली शिलाओं में पाये जाते हैं। इस प्रकार इन चिन्हों से शिलाओं के उद्गम स्थान का भी पता चलता है। इनके अतिरिक्त तटीय निक्षेपों में कभी २ 'पद चिन्ह' व 'वर्षा चिन्ह' भी दिखलाई पड़ते हैं।

(ख) *छिछले जल में पाये जाने वाले पदार्थ*—यह निम्नतम जल रेखा से ६०० फीट की गहराई तक पाये जाते हैं। यह दो प्रकार के होते हैं। एक तो वह जो यांत्रिक क्रिया द्वारा बनते हैं, दूसरे पदार्थ वह हैं जिनके निर्माण में जीव विशेष का हाथ रहता है।

यांत्रिक पदार्थ—(Mechanical Deposits): नदियों तथा वायु द्वारा लाया पदार्थ अधिकतर निम्नतम जल चिन्ह से आगे जाकर जमा हो जाता है। कहीं २ इसका फैलाव महाद्वीपीय ढाल के अंतिम छोर तक होता है। इन पदार्थों में बालू की ही अधिकता रहती है। किनारे की ओर कंकड़ व बजरी भी पाई जाती है।

धारा के प्रवाह में इन पदार्थों के जमा होने में विषमताएं (irregularities) हो जाती हैं। इसमें एक स्तर के ऊपर दूसरा स्तर क्षितिज से अलग-अलग कोण बनाता हुआ जमा होता है। इस प्रकार की रचना को संकर स्तर (Cross bedding) कहते हैं। शिलाओं में इनकी उपस्थिति, उनके (शिलाओं के) छिछले जल में बनने का प्रमाण है। कभी २ वायु चिन्ह भी इन शिलाओं में देखने को मिलते हैं।

जैविक निक्षेप (Organic deposits):—जैविक निक्षेप जल में रहने वाले जीव-जन्तुओं के अवशेषों के जमा होने से बनते हैं। समुद्र के कई

प्रकार के जल जीव जैसे फोरामिनिफर, मूँगा या प्रवाल, (Corals), एकिनोडर्म, मौलस्क, ब्रायोजोआ आदि रहते हैं। इनमें से कुछ छिछले जल में और कुछ गहरे जल में पाये जाते हैं। उष्णदेशीय तथा उपोष्ण देशीय सागर इनके रहने के अति उत्तम स्थान हैं और वहीं पर यह अधिकता से पाये जाते हैं। इन जल जीवों के खोल अधिकतर Ca Co_3 के बने होते हैं यह Ca Co_3 इन्हें समुद्री जल से प्राप्त होता है। जल जीवों के मरने पर उनकी ठठरी के चूर चार होने से समुद्र में चूने के निक्षेप बन जाते हैं। यह निक्षेप आकार और ऊँचाई में बढ़ते रहते हैं।

प्रवाल जन्तु ही छिछले जल के प्रमुख निवासी हैं। इनके पनपने और वृद्धि के लिये तीन बातों की आवश्यकता है—खारी, उथला तथा उष्णजल। जल की गहराई १५० फुट से अधिक नहीं होनी चाहिये और उसका तापमान ६८° फा० से कम न होना चाहिये। इन प्रवाल जन्तुओं की ठठरी चूने के पदार्थों की बनी होती है। इस चूने के जमा होने से समुद्र में बड़े बड़े द्वीपों की रचना हुई है। डारविन ने इन प्रवालियों (Coral reefs) को तीन भागों में विभक्त किया हैं।

१—अनुतट प्रवालियाँ (Fringing Coral reefs)—यह स्थल के समानान्तर चली जाती हैं और छिछले पानी के द्वारा थल से अलग रहती हैं। पर छिछले पानी के नीचे की चट्टानें भी मूँगे की बनी होती हैं। निम्न ज्वार के समय यह समुद्र तट से जुड़ी दिखाई देती हैं। यह प्रवालियाँ लगभग आध मील से एक मील तक चौड़ी होती हैं।

२–परातट प्रवालियां (Barrier Coral reefs) यह किनारे से बहुत दूर स्थल के समानान्तर फैली हुई वह श्रेणियाँ हैं जो तट से विस्तृत और गहरे जल द्वारा पृथक हैं। सबसे बड़ी परातट प्रवाली आस्ट्रेलिया के उत्तरी पूर्वी किनारे पर है। यह परातट-महाप्रवाली (Great Barrier Reef) के नाम से विख्यात है। इसकी लम्बाई १२०० मील तथा चौड़ाई १० से लेकर ६० मील तक है। इसका सबसे ऊँचा भाग समुद्र तट से १८०० फीट ऊपर है। यह श्रेणी समुद्र तट से कहीं २० तो कहीं ८० मील की दूरी पर स्थित है। हिन्द महासागर स्थित न्यु-कैलीडोनिया की प्रवाली ४०० मील लम्बी है।

३—वृत्ताकार प्रवालियाँ (Atolls)—यह वह गोलाकार प्रवालियाँ है जिनके बीच में छिछले पानी की झील होती है। इस झील के जल का कहीं २ श्रेणी के निमग्न स्थानों द्वारा सागर के जल से संबंध रहता है। इस प्रकार की श्रेणियाँ दक्षिणी प्रशान्त महासागर में बहुलता से पाई जाती हैं।

समस्त प्रवाल श्रेणियाँ लगभग ५०००००० वर्ग-मील जल पर आधिपत्य जमाये हैं। प्रवाल श्रेणियों की उत्पत्ति के विषय में वैज्ञानिकों के भिन्न २ विचार हैं। समुद्री धाराएं अपने साथ मूँगों को बहाकर तट की ओर ले गई—जहाँ पर असंख्य मूँगों की ठठरी के जमा होने से अनुतट प्रवालियाँ निर्मित हुई। अन्य दोनों प्रकार की प्रवालियां भी अनुतट प्रवाली की रचना पर अवलम्बित हैं। डारविन, डाना, आदि के विचार में पहले अनुतट प्रवाली किसी ज्वालामुखी द्वीप के चारों ओर बनी। द्वीप के नीचे धस जाने से इन श्रेणियों का सम्बन्ध ज्वालामुखी द्वीप के तट से भंग हो गया और अनुतट प्रवालियाँ-परातट प्रवाल श्रेणियों में परिणित हो गई। द्वीप के सागर जल में और अधिक धस जाने से अथवा द्वीप के सागर में विलीन होने से यह श्रेणियां वृत्ताकार प्रवालियों का रूप धारण कर लेती हैं।

डेली के विचार में वृत्ताकार प्रवालियों की रचना परातट-प्रवालियों से हुई। पर आपके विचार में यह परिवर्तन ज्वालामुखी द्वीप के नीचे धसने के कारण नहीं, वरन हिमकाल के उपरान्त सागर में जल वृद्धि होने के फलस्वरूप हुआ। जल वृद्धि के कारण परातट प्रवालियों द्वारा आवद्ध भाग जल मग्न हो गया और यह वृत्ताकार प्रवालियां बीच में पानी की खाई को घेरे हुए दिखलाई पड़ने लगी।

गहरे जल में पाये जाने वाले पदार्थः—६०० फीट

की गहराई से गहरे जल का क्षेत्र प्रारम्भ होता है। ऊपर ही बतलाया जा चुका है कि ६०० फीट की गहराई के उपरान्त लहरों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। यहां केवल बालू, बजरी आदि का महीन चूरा ही जमा होता है। इस पदार्थ को कीच (Mud) कहते हैं। कीच कई रंग की होती है जैसे नीली, हरी, लाल, आदि।

नीले रंग की कीच समुद्र में बहुत बड़े क्षेत्रफल (लगभग १४,५००,००० वर्ग मील) को घेरे हुए है। यह कीच ७०० फीट से लेकर १६००० फीट तक की गहराई में पाई जाती है। इसका नीला रंग इसमें विद्यमान जैविक पदार्थ तथा लोहे के गंधकीय खनिजों की अधिकता के कारण है। प्रायः सभी समुद्रों के गहरे जल में यह कीच विद्यमान है।

लाल कीच ब्राजील के अटलांटिक तट पर तथा चीन के पीले सागर में बहुलता से पाई जाती है। इसका रंग इसमें विद्यामान लोहे की आक्साइड के कारण होता है।

पर यदि कीच में ग्लोकोनाइट खनिज की बहुलता होती है तो उसका रंग हरा हो जाता है। अन्यथा यह नीले कीच के समान है।

इसके अतिरिक्त भी गहरे जल में बालू तथा चूने के निक्षेप मिलते हैं। चूने के निक्षेपों में फोरमिनिफर पंक (Foraminifera ooz) तथा टैरोपोड पंक (Pteropod ooz) और बालू के निक्षेपों में डायटम पंक (Diatom ooz) तथा रेडियोलेरियन पंक (Radiolarian ooz) मुख्य हैं। यह पंक जिन जीव जन्तुओं के कुटने पिसने से बनता है, उन्हीं के ऊपर इनका नामकरण किया है।

फोरेमिनिफर पंक :—फोरेमिनिफर की खोल व ठठरी के चूरे से बने पंक को कहते हैं। फोरेमिनिफर जाति के वशंज ग्लोबिजरीना (Globigerina) के खोल के चूरे से बने पंक को ग्लोविजरीना पंक कहते हैं। फोरेमिनिफर पंक लगभग ५०,०००,०००, वर्गमील क्षेत्रफल घेरे हुए हैं तथा २५०० फीट से १८००० फीट की गहराई तक मिलता है। यह पंक अटलांटिक महासागर में बहुलता से पाया जाता है। प्रशान्त महासागर का तो लगभग १८ प्रतिशत भाग इसी पंक से ढका है।

टैरोपोड पंक :—यह ४००० से ९००० फीट तक की गहराई में मिलता है तथा प्रशान्त महासागर के लगभग एक प्रतिशत भाग को ढके है यह आस्ट्रेलिया के उत्तरी पूर्वी किनारे पर तथा उत्तरी अटलांटिक महासागर में भी मिलता है।

रेडियोलेरियन पंक :—रेडियोलेरिया जल जीव के खोल बालू के बने होते हैं। इन खोलों के टूटकर जमा होने से जो निक्षेप बनते हैं उन्हें रेडियोलेरियन पंक कहते हैं। यह पंक जल की अधिकतम गहराई (लगभग १४००० से २७००० फीट तक) में पाया जाता है और लगभग ३०००,००० वर्गमील क्षेत्रफल घेरे हुए है। प्रशान्त और हिन्द महासागर में यह प्रचुर मात्रा में मिलता है, पर अटलांटिक महासागर में यह कहीं नहीं पाया जाता।

डायटम पंक :—यह अंटार्कटिक सागर, उत्तरी प्रशान्त महासागर तथा पश्चिमी प्रशान्त महासागर में पाया जाता है। अंटार्कटिक महासागर में तो यह लगभग ११०००,००० वर्गमील क्षेत्रफल घेरे हुए है।

लाल मिट्टी :—समुद्र की महत्तम गहराई में लाल मिट्टी पाई जाती है। यह ज्वालामुखी पदार्थ-विशेष कर प्युमिस, ज्वालामुखी काँच तथा चूने की बनी होती है। १३००० फुट से २४००० फुट गहराई तक पाई जाती है और समुद्र का सबसे अधिक क्षेत्रफल (लगभग ५०,०००,००० वर्गमील) घेरती है।

गणितीय शब्द-मालाएं

डा० ब्रज मोहन, गणित विभाग, काशी विश्वविद्यालय

149.	Permutation	क्रमचय
	Combination	संचय
	Accumulation	पुंज
	Aggregate	वृन्द
	Assemblage	समुच्चय
	Bundle	गुच्छ
	Cluster	झुण्ड
	Collection	संग्रह
	Set (of points)	कुलक
	Range (of points)	(विन्दु) माला
150.	Plane Trigonometry	समतल त्रिकोणमिति
	Spherical Trigonometry	गोलीय त्रिकोणमिति
151.	Plus	धन, युत (र)
	Minus	ऋण, वियुत (र)
152.	Polhode	पृष्ठ लुंठज
	Herpolhode	तललुंठज
153.	Possible	संभव
	Probable	संभाव्य
	Possibility	संभावना
	Probability	संभाव्यता
154.	Practice	व्यवहार
	Theory	सिद्धान्त
155.	Prefix	उपसर्ग
	Suffix	प्रत्यय
156.	Price	मूल्य
	Value	मान
157.	Principal	मुख्य, प्रधान
	Primary	प्राथमिक
	Secondary	गौड़, द्वितीयक
	Preliminary	प्रारम्भिक
	Elementary	आरम्भिक
158.	Prism	संक्षेत्र
	Pyramid	स्तूप, सूचीस्तम्भ
159.	Proper Fraction	शुद्ध भिन्न
	Improper Fraction	अशुद्ध भिन्न
160.	Quadrangle	चतुष्कोण
	Quadrilateral	चतुर्भुज
161.	Quantity	प्रकार, तत्ता (र)
	Quantity	राशि, परिमाण, इयत्ता (र)
162.	Rational	सुमेय (र)
	Irrational	दुर्मेय (र)
	Surd	करणी
	Commensurable	संमेय
	Incommensurable	असंमेय
163.	Reflex angle	बृहत् कोण
	Re-entrant angle	पुनर्युक्त कोण
164.	Relative velocity	आपेक्षिक वेग
	Absolute velocity	निरपेक्ष वेग
165.	Remainder	शेष, शेषफल
	Residue	अवशेष
166.	Revolution	क्रान्ति, परिक्रमण
	Rolling	लुंठन
	Rotation	परिभ्रमण
	Translation	स्थानान्तरण
	Turning	परिणमन
167.	Rotor (Curl)	कुन्तल
	Scalar	अदिश
	Tensor	प्रदिश
	Vector	सदिश
168.	Series	श्रेणी
	Progression	श्रेढ़ी
169.	Shape	प्ररूप, आकार
	Form	रूप
	Figure	आकृति

170. Shear विरूपण
Strain प्रतति
Stress चांप
171. Sign चिन्ह
Symbol संकेत
172. Significant figure सार्थ अंक
Insignificant figure व्यर्थ अंक
173. Similarity समरूपता
Similitude अनुरूपता
174. Sine ज्या
Cosine कोज्या
Tangent (१) स्पज्या (२) स्पर्शी
Cotangent कोस्पज्या
Secant (१) व्युकोज्या (२) छेदक
Cosecant व्युज्या
175. Solid ठोस
Body काय (र)
Lump पिण्ड
176. Space अवकाश
Place स्थान
177. Speed चाल
Velocity वेग
178. Stable स्थायी
Unstable अस्थायी
179. Statics स्थिति विज्ञान, स्थैतिकी (र)
Dynamics गतिविज्ञान, (प्रावैगिकी) (र)
180. Sub-tangent अधःस्पर्शी
Sub-normal अधोलम्ब
181. Tangent स्पर्शी
Normal अभिलम्ब
182. Tangential acceleration स्पर्शीय गतिवृद्धि
Normal acceleration अभिलम्ब गतिवृद्धि
183. Tangential Velocity स्पर्शीय वेग
Normal Velocity अभिलम्ब वेग
184. Technic=Technique
(1)=Special method प्रणाली
(2)=Special Procedure प्रक्रिया
(3)=Technical language परिभाषा
(4)=Technicality पारिभाषिकता
Method विधि
Procedure कार्यविधि
Process विधा (र)
185. Thick मोटा, स्थूल
Thin पतला, सूक्ष्म
186. Translation स्थानान्तरण
Transmission संचारण
Transference अन्तरण
Handing over हस्तान्तरण
187 Transitive relation सकर्मक सम्बन्ध
Intransitive relation अकर्मक सम्बन्ध
188. Tropic of Cancer कर्क रेखा
Tropic of Capricorn मकर रेखा
189. True सत्य
Correct शुद्ध, साधु
Accurate परिशुद्ध, सुसाधु
Exact यथार्थ
Precise यथार्थतम
190. Umbra छाया
Penumbra उपच्छाया
191. Undulation हिलोर
Vibration कम्पन
192. Vertically downward force अधोमुखी बल
Verticallay upward force ऊर्ध्वमुखी बल
193. Zero शून्य
Vacuum खं

—समाप्त—

मानव-भूगोल का क्रमिक विकास

[लेखक—जनार्दन प्रसाद श्रीवास्तव एम० ए०, एम० एस-सी०, एफ० एन० जी० एस०,
अध्यक्ष भूगोल-विभाग, टी० डी० डिग्री कॉलिज, जौनपुर]

युगों से यह प्रश्न विचारणीय रहा है कि मनुष्य की शारीरिक एवं मानसिक गतिविधियों पर परिस्थितियों का क्या प्रभाव पड़ता है। वर्तमान युग में जिन विद्वानों का ध्यान सर्वप्रथम इस विषय की ओर आकर्षित हुआ, उनमें फ्रान्स के जीन बोदिन (Jean Bodin) का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन्होंने ईसा की सोलहवीं सदी में यह ज्ञात करने का प्रयत्न किया कि मानव-समाज पृथ्वी पर किन रूपों में प्रस्तरित हुआ। लगभग डेढ़ शताब्दी के उपरान्त ए० दूबोस (A. Dubos) ने जलवायु सम्बन्धी दशाओं का कला एवं विज्ञान में योग्यता से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया। सन् १८६१ ई० में एक अन्य विद्वान बफोन (Buffon) ने मनुष्य तथा परिस्थितियों में पारस्परिक सम्बन्ध प्रदर्शित करने की चेष्टा की। इनका यह प्रयास पूर्व के विद्वानों की तुलना में कहीं अधिक वैज्ञानिक, परिशुद्ध (Precise) एवं उन्नतिशील था।

सन् १८८१ ई० में हैनरी बकल (Henry Buckle) ने अपने 'इंगलैण्ड की सभ्यता के इतिहास' (History of Civilization of England) में सौ से अधिक पृष्ठों में प्राकृतिक नियमों का समाज एवं व्यक्तिगत चरित्र पर प्रभाव पर प्रकाश डाला।

तत्पश्चात् हमबोल्ट (Humbolt) तथा रिटर (Ritter) नामक विद्वानों ने मनुष्य तथा परिस्थितियों के पारस्परिक दासत्व को स्वीकार करके अपने उत्तराधिकारियों के लिये आधुनिक भूगोल (Modern Geography) के विकास के लिये सुदृढ़ नींव स्थापित कर दी। हमबोल्ट प्रधानतः प्राकृतिक भूगोल-वेत्ता थे, किन्तु रिटर को मानव-भूगोल अधिक प्रिय था। रिटर ने मानवीय दृष्टिकोण से भूगोल पर विचार किया और मानव-जाति के इतिहास में प्राकृतिक दशाओं के प्रभाव की विवेचना की। इन्होंने इस विषय पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार नहीं किया, प्रत्युत मौलिक एवं मोटे सिद्धान्तों की स्थापना की। इनकी विवेचना में भूगोल केवल इतिहास की पृष्ठभूमि रही।

उपर्युक्त दोनों विद्वानों की मृत्यु के पश्चात प्रतिक्रिया का युग आया। पैसचैल (Peschel) नामक विद्वान ने रिटर के दृष्टिकोण का—विशेषकर उनकी प्राकृतिक अंश की उपेक्षा का—घोर विरोध किया और यह विचार प्रकट किया कि भूगोल का सम्बन्ध भूपृष्ठ के अवयवों से है, मनुष्य की गतिविधि उसके क्षेत्र से परे है। इस प्रकार भूगोल-जगत में दो विचारधारायें अस्तित्व में आ गईं, जो जर्मनी में १९वीं शताब्दी की एक विशेषता थी।

× × ×

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में, डारविन के जीव-विकास के सिद्धान्त के प्रकाशन के अनन्तर, मनुष्य और प्रकृति के सम्बन्ध को व्यवस्थित रूप देने का प्रयत्न किया गया। भूगोल-विषयक दो विरोधी दृष्टिकोणों के अन्तर को पाटने के लिये दो सम्प्रदायों ने विशेष योग दिया, जिनमें एक के प्रमुख जर्मनी में रैटजैल (Ratzel) थे और दूसरे के फ्रान्स में लाप्लास (Laplace)

रैटजैल (१८४४—१९०४) जीवशास्त्र के आचार्य (Doctor of Zoology) थे। पहले ये पत्रकार

थे। तत्पश्चात् यह म्यूनिच में भूगोल के अध्यापक नियुक्त हुए। सन् १८८२ ई० में इनके नृभूगोल (Anthropo Geography) का प्रथम खण्ड प्रकाशित हुआ। दस वर्ष के बाद इसका दूसरा खण्ड प्रकाशित हुआ। इस बीच में इनका एक और ग्रन्थ 'मनुष्य जाति का इतिहास' (Volker-Kunde) भी निकला।

ये १८ वर्ष तक लीपजिग में रहे इस अवधि में इन्होंने भूगोल के विकास के लिये महत्वपूर्ण कार्य किये। इनका अंतिम ग्रंथ, जो राजनैतिक-भूगोल विषयक था, सन् १८९७ ई० में प्रकाशित हुआ। इनके ग्रंथों में डारविन के सिद्धांत की छाप स्पष्ट है। इनका अध्ययन तर्कपूर्ण एवं नियमबद्ध था। मानव-भूगोल को विज्ञान के उच्च स्तर पर लाने का श्रेय मुख्यतः इन्हीं को है।

\+ + +

फ्रैडरिक लाप्लास (१८०६-८२) ने योरप की आर्थिक और सामाजिक दशाओं का विस्तृत अध्ययन किया। इन्होंने समाजशास्त्र की अनेक दिशाओं में अभिवृद्धि की। लाप्लास के फ्रांसीसी अनुयायियों में टूरविल्ले (Tourville) और डिमाउलिंस (Demoulins) उल्लेखनीय हैं। इन्होंने कुछ विशेष जातियों का अध्ययन किया और यह निश्चित रूप से सिद्ध कर दिया कि उनका संगठन (Organisation) प्राकृतिक परिस्थितियों पर अवलम्बित है। दो कारणों से रैटजैल के मानव-भूगोल को कटु आलोचना हुई—एक तो उसकी पृष्ठभूमि पार्थिव (Materialistic) थी और दूसरे वह अन्य विज्ञानों के क्षेत्र में प्रवेश करती थी जो उसकी अनधिकृत चेष्टा समझी गई।

\+ + +

मानव-भूगोल की नवीन परिभाषा को स्थायित्व देने का सबसे अधिक श्रेय वाइडल डे ला ब्लाचे (Vidal de la Blache) तथा उनके शिष्य जे ब्रून्ह्स (J, Brunhes) को है। ब्लाचे ने भूगोल सम्बन्धी एक समिति (Annales de Geographie) की स्थापना की और 'ऐतिहासिक भूगोल की मानचित्रावली' (An Atlas of Historical Geography) में उत्तमोत्तम लेख लिखे। सन् १९१८ ई० में इनकी मृत्यु हो गई। इनके मानव-भूगोल संबन्धी निबन्ध इनकी मृत्यु के उपरांत 'मानव-भूगोल के सिद्धांत' (Principles of Human Geography) नामक ग्रंथ के रूप में प्रकाशित हुए। इनका मुख्य ध्येय कारण और प्रभाव के पारस्परिक सम्बन्ध पर प्रकाश डालना और तब उनके आधार पर तथा हम्बोल्ट और रिटर के अनुसार पृथ्वी के विभिन्न भागों के तुलनात्मक अध्ययन की सहायता से साधारण नियमों का निर्माण करना था।

मावन-भूगोल विषयक नवीन दृष्टिकोण में प्रकृति की अपेक्षा मनुष्य का महत्व अधिक हो गया है। नवीन व्याख्या के अनुसार मनुष्य की जीवन-चर्या केवल परिस्थितियों पर आधारित नहीं है, वरन् सामाजिक, ऐतिहासिक एवं मनोवैज्ञानिक दशाओं पर भी अवलम्बित है।

ब्लाचे के प्रमुख शिष्य ब्रून्हस ने 'मनुष्य के धरातल पर कार्य' के विषय में अपने विचार व्यक्त किये हैं तथा ब्लाचे के सिद्धांतों की सुन्दर विवेचना की है। इन्होंने वनस्पति, जीवों एवं खनिजों पर मनुष्य की विजय प्राप्ति को वैज्ञानिक रूप दिया। सन् १९३० ई० में इनकी मृत्यु हो गई।

\+ + +

मानव भूगोल के पाँच मुख्य अंग हैं :—

(१) जाति सम्बन्धी भूगोल (Racial Geography)—इसका विषय है—जातियों का वितरण, उनकी शारीरिक एवं मानसिक विशेषतायें तथा परिस्थितियों से उनका सम्बन्ध।

(२) सामाजिक भूगोल(Social Geography) मानव-समाजों के प्रादेशिक वितरण तथा उनके पारस्परिक सम्बन्ध पर प्रकाश डालती है।

(३) राजनैतिक भूगोल (Politicl Geography)—इसका विषय है—राजनैतिक इकाइयों

की भौगोलिक पृष्ठभूमि अथवा राजनैतिक इकाइयों एवं भौगोलिक विभागों का सम्बन्ध।

(४) आर्थिक भूगोग (Economic Geography)—इसका विषय उत्पादन (Production) उपभोग (Consumption) विनिमय (Exchange) एवं यातायात (Transport) है।

(५) ऐतिहासिक भूगोल (Historical Geography)—इसका उद्देश्य विकास के विचार से मानव-भूगोल का अध्ययन है।

मानव भूगोल के उपर्युक्त अंगों की सृष्टि निकट भूत का विषय है तथा इनका विकास अन्य विज्ञानों के विकास से सम्बन्धित है। मानव-भूगोल के नवीन दृष्टिकोण के लिये ब्लाचे की देन अमूल्य है। इन्होंने सामाजिक भूगोल को अत्यन्त सुदृढ़ नींव प्रदान की है। मानव-वसति (Settlements) का भौगोलिक परिस्थितियों से सम्बन्ध सामाजिक भूगोल का एक प्रमुख अंग है। इस विषय में मीटजेन (Meitzen) का कार्य सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। नगरीय भूगोल (Urban Geography) के अन्तर्गत नगरों की स्थिति, योजना, विकास तथा कार्य आते हैं। इस सम्बन्ध में जर्मन भूगोलवेत्ता विशेषकर मार्टेग्नी (Martegny) उल्लेखनीय हैं। आधुनिक काल में आर्थिक-भूगोल अपनी उपयोगिता के कारण सबसे अधिक महत्वपूर्ण विषय बन गया है। चिसहोल्म (Chisholm) का व्यापारिक भूगोल जो सर्वप्रथम सन् १८८९ ई० में प्रकाशित हुआ था आज भी अंग्रेजी में आधिकारिक एवं आदर्श ग्रन्थ है। वर्तमान कालीन आर्थिक भूगोलवेत्ताओं में रसैल-स्मिथ (Russell Smith) का नाम विशेष उल्लेखनीय है। राजनैतिक भूगोल सम्बन्धी सर्वप्रथम ग्रन्थ रैटजैल का है। इस विषय के अन्य विद्वानों में सुपान (Supan) अनस्टैड[1] (Unstead), बाउमैन[2] (Bowman), रौक्सबी[3] (Roxby) आदि मुख्य हैं। ऐतिहासिक भूगोल के प्रमुख विद्वानों में हिमली (Himly), बोडोनल (Bodo Knull), फ्रीमैन (Freemen), हियरफोर्ड बी० जॉर्ज[4] (Hereford B. George), कुमारी सैम्बिल (Miss Samble) तथा कौर्निश[5] (Cornish) उल्लेखनीय हैं।

———

बिना चश्मे के ठीक ठीक देखिये

(पृष्ठ २९ का शेष)

जैसे किसी फूल का, हरी घास पर टहलने का, नदी में तैरती हुई नाव का, आसमान में उड़ते हुए बादलों का अथवा किसी पहाड़ी दृश्य का स्मरण कीजिए।

यदि यह क्रिया प्रति दिन दो तीन बार की जाय तो आप अनुभव करेंगे कि आपकी दृष्टि में तीव्र गति से सुधार हो रहा है। नेत्र रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा में विश्राम की क्रिया बड़े ही महत्व की है।

हथेली बिश्राम की क्रिया के बाद आँखों की दृष्टि को जाँचने वाले स्नेलेन चार्ट को ५ से २० फीट की दूरी से पलकें गिराते हुए पढ़िए। यदि आपको दूर से देखने में कठिनाई होती हो किन्तु पास की चीजें साफ न दिखाई देती हों तो आपको पढ़ाई की जाँच वाले टाइपों को पढ़ना चाहिए, बहुत से रोगी पहली ही बार में अपनी दृष्टि में सुधार होते हुए पायेंगे। स्थायी लाभ के लिए लगभग एक महीने तक प्रयास की जरूरत है। निकट दृष्टि दूर दृष्टि, विषम दृष्टि, अन्धापन आदि रोगों से पीड़ित हजारों व्यक्तियों ने सूर्य चिकित्सा से लाभ उठाया है।

———

[1] Author of 'Belt of Political Change in Europe'

[2] Author of 'New World' – a standrad work in political geography

[3] Author of 'Far Eastern Questions in its geographical aspects'

[4] Author of 'Relation of History and Geography.'

[5] Author of 'Great Capitals'

वायुयान

[ले० श्री ओमप्रकाश]

वर्तमान युग वायु-युग है। नये-नये शहर नित्य भारत के वायु-मानचित्र में जोड़े जा रहे हैं। भारत जैसे देश के लिये, जो विस्तार में काश्मीर से कन्या-कुमारी तक लगभग २०० मील लम्बा, वा पूर्वी पंजाब से कामरूप तक करीब १८०० मील चौड़ा है, यातायात का सर्वोत्तम साधन वायुयान ही है। रेल या मोटर गाड़ी, किसी ऐसे प्रदेश के लिये जो अधिक फैला न हो, बहुत अच्छे हैं; परन्तु भारत जैसे सुविस्तृत देश के लिये थोड़े से समय में इस छोर से उस छोर तक जाने के लिये वायुयान से उत्तम और कोई साधन अभी तक आधुनिक विज्ञान ने नहीं निकाला।

पर "वायुयान" है क्या? यदि आप "भारतीय वायुयान नियम," १९३७ (Indian Aircraft Rules, 1937) निकाल कर वायुयान की परिभाषा देखें तो आपको लिखा मिलेगा :—

"वायुयान वह यंत्र है जो आकाश में वायु की प्रतिक्रियाओं से उड़ता है और इसमें गुब्बारे (चाहें वे छूटे हों अथवा बँधे), पतंग, हवाई-नाव, ग्लाइडर व अन्य उड़ने के यंत्र सम्मिलित हैं।"

यह परिभाषा तो बड़ी टेढ़ी-मेढ़ी हुई, पर इसी को सीधे-सीधे आप कह सकते हैं—"मनुष्य द्वारा बनाये यंत्र, जो उड़ सकें, 'वायुयान' कहलाते हैं।"

वायुयान के मुख्य प्रकार दो हैं। पहले तो वे जो वायु से हलके हैं और उन्हीं कारणों से उड़ते हैं जिन कारणों से नावें आदि पानी पर तैरती हैं। ऐसे वायुयानों को "अचल-वायुयान" (Aerostat) कहते हैं। उदाहरण के लिये गुब्बारे को ही लीजिये। आपने देखा होगा कि मेले तमाशों के अवसर पर बहुधा ऐसे गुब्बारे मिलते हैं, जो ऊपर उड़ते हैं व जिन्हें पतली डोर से बाँध कर रक्खा जाता है। यदि ऐसे गुब्बारों की डोरी छूट या टूट जाय तो वे ऊपर उड़ जाते हैं। ऐसे ही गुब्बारे—इनसे जरा बड़े—मौसम विशेषज्ञ (metereologist) हवा की गतियाँ मालूम करने को ऊपर छोड़ते हैं। यह गुब्बारे, चूँकि किसी चीज से बँधे नहीं रहते, छूटे गुब्बारे (free-baloons) कहलाते हैं। छूटे रहने के कारण पवन इनको अपने साथ उड़ाती ले जाती है और जैसे-जैसे ये ऊपर जाते हैं वैसे ही इनको उसी ऊँचाई की हवा अपनी गति से उड़ाती है। इन गुब्बारों को दूरबीन व कोणनापक यंत्र (Sextant) से देख कर मौसम-विशेषज्ञ ऊपरी पवन की दिशा व गति मालूम करते हैं।

इन छूटे गुब्बारों को नियंत्रण में रखने के लिये जमीन से तार से बाँध दिया जाता है। तब ये "बंधे गुब्बारे" (fixed or kite baloons) कहलाते हैं। इनकी सब से बड़ी कठिनाई तार की है। जितना लम्बा तार होगा उतने ही ऊँचे ये गुब्बारे जावेंगे। प्रथम व द्वितीय महायुद्धों में इन बँधे गुब्बारों से बहुत काम लिया गया। प्रथम महायुद्ध में इन बँधे गुब्बारों के नीचे एक खटोला बाँध दिया जाता था और उसी खटोले में बैठ कर एक आदमी ऊँचा चला जाता था व ऊँचाई से शत्रु के यहाँ का सब हाल-चाल देख लेता था। तार को खींचकर उस आदमी को फिर नीचे ले आते थे और वह शत्रु की पंक्तियों के पीछे होने वाली सब तैयारियों को बताता था। द्वितीय महायुद्ध में इन बंधे गुब्बारों से दूसरे ही प्रकार का काम लिया गया। बड़े

बड़े शहरों, कारखानों, बड़े जहाजों या ऐसी ही किसी स्थिर वस्तु जिसे कि गोतामार बम्बवर्षकों (Dive-bombers) से बचाना होता था, के ऊपर व चारों तरफ भिन्न-भिन्न ऊँचाइयों तक ये गुब्बारे जाने दिये जाते थे। इन गुब्बारों के बांधने वाले तारों को विस्फोटक पदार्थों से जोड़ दिया जाता था। इस कारण पहले तो गोतामार-बम्बवर्षक इन गुब्बारों के गुट्ट (Baloom barrage) के डर से नीचे गोता मारते ही नहीं थे, और यदि भूल से गोता मारें भी तो इन गुब्बारों या तारों के छू जाने पर या तो तार ही शत्रु के वायुयान को काट देगा, या फिर विस्फोटक पदार्थ उस वायुयान का सत्यानाश कर देगी।

यदि कई गुब्बारों को जोड़कर एक गुब्बारा बनाया जावे व उसमें इधर से उधर चलाने के लिये जिस दिशा में चाहें, उस दिशा में चलाने के लिये— एक मोटर लगा दी जावे, तो वह हवाई-नाव (Air ship) हो जाता है। ऐसी नावों का प्रथम महायुद्ध में बहुत चलन था। जर्मनी ने इनका बहुत प्रयोग किया था और ये "जैप्लेन" कहलाते थे। ऐसी ही एक हवाई नाव जब प्रथम बार योरप से कराँची आ रही थी तब उसी के ठहरने के लिये एक बड़ा अड्डा (Hangar) बनाना पड़ा था। रास्ते में ही दुर्घटना हो जाने से वह हवाई-नाव जल गई, परंतु वह ऊँचा बड़ा अड्डा अभी भी कराँची हवाई-अड्डे पर खड़ा है।

हवाई-नावों में क्या खराबियाँ थीं जिनसे की इनका चलन उठ गया, बाद में लिखेंगे।

अभी तक हमने "अचल-वायुयानों" का वर्णन किया है, जो वायु से हल्के होने के कारण उड़ते हैं। दूसरी प्रकार के वायुयान वे हुए जिनको पहले किसी तरह वायु में चलाना पड़ता है और वे अपनी चाल के कारण वायु में उड़ सकते हैं। ये वायु से भारी होते हैं और "चल-वायुयान" (Aerodyne) कहलाते हैं।

चलन-वायुयान भी कई प्रकार के होते हैं। एक तो वे जिनमें कोई ऐंजिन नहीं होता। इनको ऊपर किसी दूसरी शक्ति से भेजना पड़ता है और ये फिर धीरे-धीरे नीचे आते हैं। इन्हें पुच्छ-विमान (glider) व पाल विमान (Sail plane) कहते हैं। पाल विमान बहुत हल्का होता है व उसके पंख (wings) बहुत लम्बे होते हैं, इस कारण वह पुच्छ-विमान से बहुत अधिक समय तक हवा में मंडरा सकता है। पुच्छ-विमान में सामान आदि रखने की जगह (Carrying capacity) अधिक होती है। साधारण पतङ्ग भी एक प्रकार का चल-वायुयान ही है।

जिन चल-वायुयानों में ऐंजिन लगा होता है 'हवाई-जहाज' (flying machines) कहलाते हैं इनके तीन मुख्य प्रकार हैं—(१) विमान (Aeroplane) (२) पङ्ख-हीन विमान (gyroplane) व (३) चक्र-विमान (Helicoptor)

विमान भी कई प्रकार के होते हैं व इनके विभाजन बनावट व अन्य विशेषताओं के कारण किये गये हैं। बहुत से विमान, विशेषतः जिन्हें आप बहुधा देखते हैं 'स्थल-विभाग' (Land planes) हैं, क्योंकि ये स्थल से ही ऊपर उठते हैं व स्थल पर ही उतरते हैं। कुछ विमान ऐसे होते हैं जो जल (समुद्र, नदी, झील आदि) से ही ऊपर उठ सकते हैं व जल पर ही उतरते हैं। ऐसे विमानों को जल-विमान (Sea plane) कहते हैं ऐसे भी बनाये जाते हैं कि वे जल अथवा स्थल कहीं से भी उड़ सकते हैं या उतर सकते हैं। ऐसे विमानों को जल-स्थल विमान (Amphibian) कहते हैं।

जल-विमानों की बनावट के अनुसार दो और भाग किये गये हैं। ऐसे जल-विमान जो और सब तरह से स्थल-विमानों की तरह से ही हैं, केवल पहियों के बजाय नीचे नावें लगी हैं, नाव-विमान (Float plane) कहलाते हैं। परन्तु कुछ जल-विमान ऐसे होते हैं कि पूरा विमान ही एक नाव की शक्ल का होता है। ऐसे जल-विमानों को गगन-नाव (Flying boat) कहते हैं।

विमान मुख्यतः पड़े तल में चलता है। चालक शक्ति देने वाले चक्र अथवा ऐंजिन उसे आगे बढ़ाते हैं और इस क्रिया की प्रतिक्रिया के स्वरूप उसे ऊपर उठने की शक्ति मिलती है। इस कारण विमानों को उठने या उतरने के लिये लम्बी दौड़ लगानी पड़ती है। 'पंखहीन-विमान' में पंखों की जगह पंखों जितनी ही लम्बी पत्तियों वाला एक चक्र लगा दिया जाता है इस उपाय से धरती पर से उठते समय —विशेषतया उतरते समय—बहुत थोड़ी जगह की आवश्यकता होती है।

अभी तक जिन हवाई जहाजों का वर्णन हुआ है उनके लिये वायु में रहने के लिये प्रतिक्षण आगे बढ़ना अनिवार्य है। वे ऐसा नहीं कर सकते कि आकाश में उड़ते-उड़ते एक स्थान पर स्थिर हो जावें, एकदम ऊपर या सीधे नीचे चले जावें अथवा पीछे जा सकें। यह कार्य चक्र-विमान Helicopter द्वारा संभव हैं। चक्र-विमान में भी पंखों की बजाय चक्र होता है परन्तु यह चक्र ऐंजिन-चालित होता है। इस चक्र की पत्तियों के चलने की प्रतिक्रिया से उत्पन्न शक्ति चक्र-विमान को ऊपर या नीचे ले जाती है। चक्र-विमान को ऊपर-नीचे अथवा आगे पीछे ले जाने के लिये इसी चक्र की पत्तियों की गति में अथवा उनके घूमने के तल में परिवर्तन करना होता है। साधारण विमान में लगभग सब शक्ति पड़े तल में आगे बढ़ने के काम में लाई जाती है और उसका केवल थोड़ा सा भाग ऊपर या नीचे जाने में इस्तेमाल होता है, परंतु चक्र विमान सब में शक्ति मुख्यतः ऊपर उठने के काम में लाई जाती है और उसका एक भाग आवश्यकतानुसार आगे बढ़ने या पीछे हटने में प्रयोग होता है। इन्हीं गुणों के कारण चक्र-विमान के लिये बड़े हवाई-अड्डों की आवश्यकता नहीं—वह छतों तक पर उतारा जा सकता है।
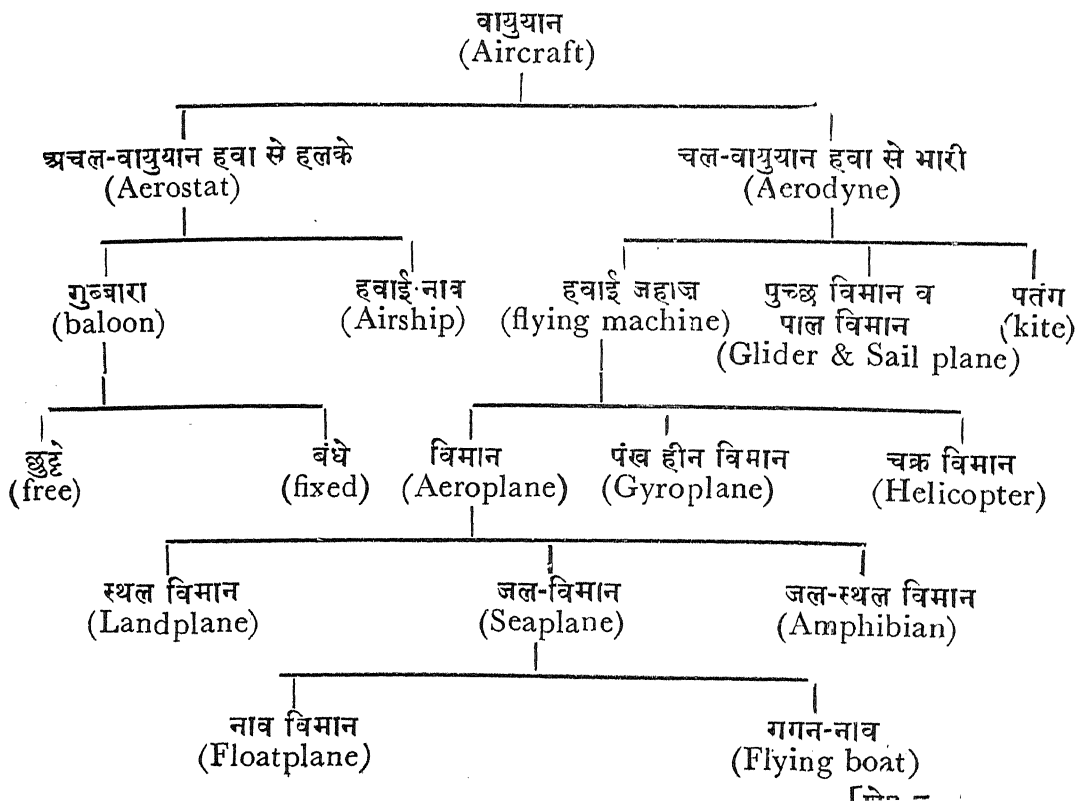
पृथ्वी की उत्पत्ति

ले० श्री दुलह सिंह कोठारी एम० एस-सी०, महाराणा भूपाल कालेज, उदयपुर

पृथ्वी की उत्पत्ति—पृथ्वी की उत्पत्ति कब और कैसे हुई, एवं इसी प्रकार के अन्य प्रश्नों का बिलकुल ठीक एवं प्रामाणिक उत्तर देना असम्भव तो नहीं, किन्तु कई प्रकार की गुत्थियों से उलझे होने के परिणाम स्वरूप, कठिन अवश्य है। इस विषय पर अनेकों वैज्ञानिकों ने अपने मत प्रगट किए हैं और कुछ सिद्धान्त भी स्थापित किये हैं। इन सिद्धान्तों की वैज्ञानिक सत्यता एवं प्रामाणिकता के विषय में कुछ भी कहना, सरल बात नहीं है, फिर इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि पृथ्वी की उत्पत्ति की समस्या हमारे विशाल एवं विस्तृत सौर्य-मण्डल के अन्य कुटुम्बीयजनों की उत्पत्ति की महान तथा विकट समस्या का ही एक पहलू है।

(१) *सूर्य से किसी तारे की भिड़न्त*—कोई २०० वर्ष पूर्व जोर्ज लूई बफुन, विख्यात फ्रांसीसी वैज्ञानिक ने यह बतलाया है कि कदाचित् समय के दूर अन्तरिक्ष में हमारे सूर्य के एवं किसी विशालकाय अन्य ज्योतिर्पिण्ड के (जिसका आकार सूर्य से कई गुना अधिक रहा होगा) बीच में आकस्मिक ऐसी जोर की भिड़न्त हुई कि उस भयङ्कर चोट के कारण ही, इन दोनों पिन्डों में से भिन्न-भिन्न अंशों में तारकीय द्रव्य निकल पड़ा। उसी द्रव्य से पृथ्वी एवं अन्य नक्षत्रों की रचना हुई। सब ही नक्षत्रों का एक ही दिशा में सूर्य के चहुँ ओर परिक्रमा लगाना और उन सबों का एक ही समतल में होना, इस सिद्धान्त की पुष्टि करता है। फिर जिस दिशा में सूर्य अपने अक्ष पर घूम रहा है, उसी दिशा में ही नक्षत्र भी सूर्य की परिक्रमा लगा रहे हैं। इस बात से भी इसी सिद्धान्त की पुष्टि होती है। अतः इस सिद्धान्त के अनुसार जो सूर्य सौर्य मन्डल के केन्द्र पर स्थित है, वह हमारी पृथ्वी की एवं अन्य नक्षत्रों की जननी है। इस सौर्य मन्डल के परिवार का पिता वही अनन्त पथ का पथिक, दूसरा पिण्ड था, जिसने सूर्य से भिड़न्त की। उस पिता का आज कहीं पता नहीं है। अवश्य यह ब्रह्माण्ड के किसी कोने में अब भी विचरण कर रहा होगा। इस सिद्धान्त के अनुसार नक्षत्रों की कक्षाएँ (Orbits) वृत्ताकार होने के स्थान पर दीर्घ वृत्त कार (Elliptical) होना चाहिए।

(२) *लापलेस का सिद्धान्त*—(*निहारिका-सिद्धान्त*)—लापलेस भी फ्रांस देश का विख्यात गणितज्ञ हो गया है। सन् १७९६ में उसने एक नवीन सिद्धान्त की स्थापना की। लापलेस के मतानुसार सौर्य मंडल के नक्षत्रों की उत्पत्ति केवल उसी सूर्य के,—जो उसके केन्द्र पर स्थित है, भयंकर विस्फोट के परिणाम स्वरूप हुई है। एक समय हमारा सूर्य बहुत बड़ा पिण्ड रहा होगा, जो अपने अक्ष पर परिभ्रमण कर रहा था। उसके भीतरी भागों में तापक्रम एवं दबाव बढ़ते-बढ़ते इतने अधिक हो गये कि सारे पिण्ड का एकाएक ही एक भयंकर विस्फोट हुआ। इस विस्फोट के पश्चात सूर्य फिर से ठण्डा होने लगा, साथ ही सिकुड़ने भी लगा। जैसे-जैसे वह सिकुड़ने लगा, उसके परिभ्रमण की गति अधिक विषम होती चली गई और उसमें से द्रव्य की बड़ी-बड़ी तथा पृथक् पृथक् अंगूठियों का एक के पश्चात् एक, निकलना आरंभ हुआ।

जिस किसी ने तीव्र गति से फिरते हुए गाड़ी

के पहिये की परिधि से पानी के अथवा कीचड़ के कणों को बहुत ही वेग से उछलते हुए देखा है, वह एक परिभ्रमण करते हुए विशाल पिण्ड से द्रव्य फेंके जाने की थोड़ी बहुत कल्पना तो कर ही सकता है। लापलेस के मतानुसार कालान्तर में प्रत्येक अंगूठियों ने पिण्डों के रूप धारण कर लिये—जो अन्त में नक्षत्र बन गये। लापलेस का यह सिद्धान्त गणित की दृष्टि से अपूर्ण ही नहीं, परन्तु बहुत भ्रान्ति युक्त था। प्रथम तो गणित के आधार पर यह स्पष्ट रूप से प्रमाणित नहीं किया जा सकता कि सिकुड़ते हुए सूर्य से केवल आवश्यकीय संख्या में ही अंगूठियों का क्यों कर जन्म होना चाहिये। वरन ऐसी परिस्थितियों में तो असंख्य पतली-पतली अंगुठियों का क्रमशः उत्पन्न होना अधिक उपयुक्त है। इस प्रकार के उत्सर्जन के लिये अवश्य ही परिभ्रमण की गति बहुत ही भयंकर होनी चाहिये। केन्द्रीय पिण्ड ने कभी भी इस गति को प्राप्त की होगी इसमें सन्देह तथा शंका है। द्वितीय द्रव्य की अंगुठियों का क्रमशः पिण्डों का रूप धारण कर लेना, एक बहुत ही आपत्तिजनक बात है। तृतीय कुछ नक्षत्रों का भार सूर्य के भार का $\frac{1}{700}$ अंश ही है। परन्तु उनका सम्मिलित परिभ्रमण आवेग (Rotational Momentum) सूर्य के आवेग से ५० गुना अधिक है। यह एक असम्भव सी बात जान पड़ती है। लापलेस का सिद्धान्त इस प्रकार की शंकाओं से पूर्ण है।

फिर भी १९ वीं शताब्दी में यही सबसे अधिक मान्य एवं प्रचलित सिद्धान्त माना जाता था। आधुनिक वैज्ञानिकों ने इस सिद्धान्त में बहुत कुछ संशोधन एवं सुधार किये हैं।

सर नारमन लोकियर का उल्का-सिद्धान्त—इस मत की धारणाओं के अनुसार निहारिकाओं में केवल तापोज्ज्वल गैसें ही नहीं होतीं, किन्तु चहुँ दिशाओं में अनियमित रूप से भागते हुए छोटे-छोटे पत्थरों के विशाल झुण्ड के झुण्ड भी पाये जाते हैं। परस्परीय मुठभेड़ एवं संघर्षण के कारण जो ताप उत्पन्न होता है, उससे वह पिघल कर कभी कभी बड़े पिण्ड का रूप धारण कर लेते हैं। बड़े पिण्ड गुरुत्वाकर्षण के कारण अन्य छोटे पिण्डों को अपनी ओर खींचने लगते हैं और शनैः शनैः आकार एवं भार में वृद्धि होते होते पिण्ड ग्रह बन जाते हैं। यह सिद्धान्त कई दृष्टियों से अपूर्ण है। इस सिद्धान्त के निर्माता एवं समर्थन करने वाले वैज्ञानिकों ने ग्रहों के बनने की विधि की पूर्णतया व्याख्या करने के पूर्ण प्रयत्न नहीं किये। उन्होंने यह भी सिद्ध नहीं किया कि ग्रह अपने निर्दिष्ट मार्ग पर किसी केन्द्रीय पिण्ड के चहुँ ओर क्यों परिक्रमा लगाते हैं? कुछ लोगों की मान्यता के अनुसार छोटे-छोटे पिण्ड चारों दिशाओं में गमन करते रहते हैं और अकस्मात ही भिड़न्त के कारण वे पिघल कर एक बड़े पिण्ड में परिवर्तित हो जाते हैं जो धीरे-धीरे बढ़ते-बढ़ते ग्रह बन जाते हैं। परन्तु अन्य लोगों के मतानुसार छोटे-छोटे पिण्ड आरम्भ से ही किसी विशालकाय पिण्ड के चहुँ ओर अपनी कक्षाओं में परिक्रमा लगाते रहते हैं। जिस स्थान पर पिण्डों की भिड़न्त होती है, वहीं पर ग्रहों का निर्माण भी होता है। इस मत के सर्वश्रेष्ठ समर्थक चैम्बरलैन तथा मोल्टन हैं।

जेम्स जिन्स का ज्वार-सिद्धान्त—(Tidal Theory) विश्व में असंख्य ज्योतिर्पिण्ड इधर-उधर आकाश में गमन कर रहे हैं। फिर भी ब्रह्माण्ड की अनन्त विस्तीर्णता को देखते हुए किसी एक पिण्ड से साक्षात् भिड़न्त की भयानक घटना के घटने की सम्भावना, वैज्ञानिकों के अनुमान से बहुत ही कम है। ज्वार-सिद्धान्त के अनुसार सौर्य मन्डल की उत्पत्ति के लिये दो पिण्डों की भिड़न्त आवश्यक नहीं है। भौतिक विज्ञान के महत्वपूर्ण गुरुत्वाकर्षण नियम के अनुसार द्रव्य का एक पिण्ड दूसरे पिण्ड को आकर्षित करता है और जैसे-जैसे पिण्डों के बीच की दूरी कम होती जाती है, आकर्षण भी दूरी के वर्गीय उत्क्रमानुपात से बढ़ता जाता है—दूरी के आधे हो जाने पर आकर्षण चौगुना, दूरी

के एक तिहाई हो जानेपर आकर्षण नौगुना हो जाता है। फलतः भ्रान्त पथिक की भाँति असीम विश्व के गर्भ में विचरण करते-करते, जब कभी दो पिंड एक दूसरे के बहुत समीप आ जाते हैं तो गुरुत्वाकर्षण के फल स्वरूप कदाचित् दोनों पिंडों में से पृथक्-पृथक् एक सिगरेट की आकृति का लम्बा तन्तु निकल पड़ता है। धीरे-धीरे तन्तुओं के ठंडे होने के कारण द्रव्य का शिथिलीकरण होने लगता है। अन्त में वह छोटे छोटे पिंडों का रूप धारण कर लेता है। इस प्रकार उत्पन्न हुए पिंड अपने-अपने उत्पादक पिंड के चारों ओर परिक्रमा लगाने लगते हैं इस प्रकार एक ही साथ दो सौर्य मंडल की रचना हो जाती है। यदि उत्पादक पिंडों में एक दूसरे की अपेक्षाकृत विशेष छोटा हुआ तो फिर विशाल पिंड का गुरुत्वाकर्षण अधिकतम होने के कारण बहुत करके छोटे पिंड में से ही द्रव्य अधिक मात्रा में आकर्षित होगा, जिससे संभवतः एक सौर मंडल की ही रचना होगी।

यह सिद्धान्त प्रसिद्ध ब्रिटिश वैज्ञानिक सर जेम्स जिन्स ने सन् १९१६ में गणित के आधार पर स्थापित किया। इस वैज्ञानिक के मतानुसार हमारे सौर्य मंडल की भी रचना इसी प्रकार होनी चाहिये। बुध, मङ्गल, शुक्र, बृहस्पति, शनि, यूरेनस नेपच्यूनएवं प्लूटो, हमारी पृथ्वी के भाई-बहिन हैं। इसके अन्य भाई बहिनों के साथ वह पिंड जिसके आकर्षण के फल स्वरूप हमारे सौर्य मंडल की उत्पत्ति हुई, कदाचित् ब्रह्माण्ड के किसी कोने में कहीं न कहीं विचरण कर रहा होगा। सौर्य-मंडल की रचना को हुए कई अरब वर्ष हो चुके अतः वह दूसरा पिंड हमारे से अनन्त दूरी पर होना चाहिये। हम उस पिंड को कभी भी नहीं देख सकते, केवल उसकी हम कल्पना मात्र कर सकते हैं।

कदाचित् उपग्रहों की रचना भी इसी प्रकार हुई है। उत्पत्ति काल से ही लेकर ग्रहों की कक्षाएँ पूर्णरूपेण वृत्ताकार एवं दीर्घ वृत्ताकार रही हों, ऐसी संभावना बहुत ही कम जान पड़ती है। आरम्भ से पिंडों के परस्परीय गुरुत्वाकर्षण एवं अन्य शक्तियों के

कारण कक्षाओं में कई प्रकार की विषमताएँ रही होंगी। जैसे जैसे सौर्य मंडल व्यवस्थित होता गया वैसे-वैसे कक्षाएँ भी पूर्ण होती चली गईं। जिस समय विविध ग्रह, केन्द्रीय सूर्य के चहुँ ओर अपनी निर्दिष्ट परन्तु अपूर्ण कक्षाओं पर परिक्रमा लगा रहे थे, तो आकस्मिक कोई ग्रह सूर्य के इतने निकट पहुँच गया कि गुरुत्वाकर्षण के परिणाम स्वरूप उसमें से द्रव्य का तंतु निकल पड़ा। कालान्तर में तंतु के ठण्डा होने पर द्रव्य का शीतलीकरण हुआ तो उसके छोटे-छोटे पिण्ड बन गये। इन्हीं पिण्डों को उपग्रह कहते है।

जिस प्रकार ग्रह सूर्य के चारों ओर परिक्रमा लगाते हैं, उसी प्रकार उपग्रह भी अपने ग्रह के चारों ओर परिक्रमा लगाते हैं। पिण्डों के परिक्रमा लगाने का कारण यह है कि जिस ज्योतिर्पिण्ड से उनकी रचना हुई वह अवश्य ही अपनी ही अक्ष पर परिक्रमण कर रहा था। उदाहरणार्थ चन्द्रमा जो पृथ्वी का एक मात्र उपग्रह है, अपनी जननी की परिक्रमा लगाने में इसलिये व्यस्त है कि पृथ्वी अपने पुत्र को जन्म देने के पूर्व ही अपनी अक्ष पर परिक्रमण कर रही थी।

इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि सर जेम्स का सिद्धान्त अन्य सिद्धान्तों की अपेक्षा सौर्य मंडल की उत्पत्ति की व्याख्या करने में अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है। सर जेम्स जिन्स एक महान् एवं प्रतिभाशाली गणितज्ञ होने के नाते, ने दूसरों की तरह अपने सिद्धान्त का कोरी कल्पनाओं के आधार पर निर्माण नहीं किया, परन्तु उन्होंने बहुत ही सुन्दर एवं वैज्ञानिक ढंग से अपने परिणामों की पुष्टि यथासम्भव गणित द्वारा की है। इस सम्बन्ध में उन्हें पर्याप्त सफलता भी मिली। यद्यपि जेम्स जिन्स सौर्य मंडल सम्बन्धी कई विशेषताओं का (जैसे ग्रहों का एक ही दिशा में सूर्य की परिक्रमा लगाना, ग्रहों की कक्षाओं का एक ही समतल में होना, इत्यादि), समस्याओं की उचित रूप से व्याख्या करने में सफल हुए हैं, फिर भी ऐसी अनेक समस्याएँ हैं, जिनको

वह पूर्ण रूप से नहीं सुलझा सके हैं।

सन् १९३५ में प्रोफेसर एच० एन० रसल ने इस महत्वपूर्ण सिद्धान्त की कई त्रुटियों की तथा विशेष-कर आवेगघूर्ण सम्बन्धी कठिनाई की विवेचना करते हुए यह बतलाया कि संभवतः सर जैम्स कभी सिद्धांत ग्रहों की उत्पत्ति की व्याख्या करने में अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं प्रतीत होता है।

संक्षेप में हमारी पृथ्वी की उत्पत्ति की यही कहानी है। विविध सिद्धान्तों की तुलनात्मक व्याख्या करना हमारा अभिप्राय नहीं है क्योंकि यह कार्य जितना सरल लगता है, उससे कहीं अधिक कठिन है। फिर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि पृथ्वी की उत्पत्ति गैसों के एक विशालकाय पिण्ड के रूप में हुई। यह पिण्ड अपनी धुरी पर परिभ्रमण करता हुआ, केन्द्रीय सूर्य के चहुँ ओर परिक्रमा लगाने लगा। ताप के विकिरण के कारण जैसे जैसे यह पिण्ड ठण्डा होता गया, इसमें (द्रव्य) गैसों का शीतलीकरण होने लगा और कालान्तर में यही तरलीय तथा अर्द्ध सान्द्रीय अवस्थाओं को प्राप्त कर वर्तमान अवस्था में पहुँचा। इसका घनीकरण अवश्य ही ऊपरीय भागों से आरम्भ हुआ। अतः प्रथम इसके बाहरी तल पर पपड़ी जमने लगी। शनैः, शनैः इस पपड़ा की मोटाई भीतर की ओर बढ़ती चली गई। घनीकरण के परिणाम स्वरूप इसके गर्भीय भागों में आकुंचन होने लगा। पपड़ी में झुर्रियाँ पड़ने लगीं। फलतः इसके तल पर बड़े २ पर्वतों की जैसे गिरिराज हिमालय एवं अन्य विशाल पर्वत श्रेणियों की रचना हुई। अनुमान है कि आदि काल में इन पर्वतों की ऊँचाई कहीं अधिक रही होगी, परन्तु प्रकृति के परम प्रकोप के कारण ही इन्होंने अपनी वर्तमान अवस्थाओं को प्राप्त किया।

यह कहानी बहुत ही कौतूहलपूर्ण एवं रोमांच-कारी है। परन्तु यह किसी भी दृष्टि से पूर्ण नहीं मानी जा सकती। अनेक भ्रान्तियों, अस्पष्टताओं तथा नाना प्रकार की कठिनाइयों के कारण, इस कहानी के अनेक पहलु आज भी उलझनों से भरे पड़े हैं।

आशा है कि अपने आधुनिक साधनों के द्वारा भविष्य में मानव पृथ्वी की उत्पत्ति संबंधी विविध गुत्थियों एवं समस्याओं को सुलझाने में सफलहोगा। प्रयासही प्रगति का मूल है। प्रयत्न शील भविष्य का वैज्ञानिक ही आशाओं का आधार है।

वायुयान

[पृ० २२ का शेष अंश]

नोट :—पाठकों की जानकारी के लिये, नीचेसब प्रकार के वायुयानों की सरकारी परिभाषाएं (भारतीय वायुयान नियम १९३७ के अनुसार) दीहुई हैं :—

1. Aircraft means any machine which can derive support in the atmosphere from reaction of the air, and includes baloons whether fixed or free, airships, kites, gliders and flying machines.
2. Aerostat means an aircraft supported in air statically and includes all airships and baloons
3. Aerodyne means an aircraft whose support in flight is derived dynamically from the reactions on surfaces remaining fixed under the same conditions of flight.
4. Baloon means an aerostat, not provided with mechanical means of propulsion.
5. Airship means a mechanically driven aerostate, having means of directional control.
6. Aeroplane means a mechenically driven aerodyne supported by aerodynamic reactions- on surfaces remaining fixed under the same conditions of flight.
7. Glider means an aerodyne supported in flight by aerodynamic reactions on surfaces remaining fixed under the same conditions of flight and not provided with mechanical means of propulsion.
8. Flying machine means a mechanically driven aerodyne and includes all aeroplanes, helicopters and gyroplanes.

बिना चश्मे के ठीक ठीक देखिए

ले०—श्री डा० के० एम० अग्रवाल, नेत्र-विशेषज्ञ, लखनऊ

आदिम असभ्य मानव की अपेक्षा आज का मानव अधिक चिन्ताग्रस्त रहता है। घबराहट के कारण यदि आदिम मानव के हाथ पैर फूल जाते थे तो वह जीवन संग्राम में टिक नहीं पाता था। किन्तु आज का मानव विभिन्न चिंताओं में ग्रस्त जीवन ही नहीं व्यतीत करता वरन् आने वाली पीढ़ियों तक के लिए वह अपनी मानसिक विशेषताएँ उत्तराधिकार में छोड़ जाता है। उसकी चिंताएँ ही बहुत से रोगों और विशेषकर नेत्र रोगों की जड़ हैं।

नेत्र दोषों का मूल कारण जान या अनजान में देखने की क्रिया में आँख के ऊपर पड़ा जोर अथवा तनाव है। जोर पड़ने से आँख के स्वाभाविक कामों में बाधा पड़ती है। देखने में जोर प्रायः तभी पड़ता है जब दिमाग पर भी किसी तरह का जोर लगाना पड़े। जब दिमाग पर भार रहता है तो मानसिक नियन्त्रण ढीला पड़ जाता है। सभ्यता की वृद्धि के साथ मनुष्य के मस्तिष्क पर लगातार पड़ने वाला यह तनाव बढ़ता जाता है। फलस्वरूप ज्यों-ज्यों सभ्यता बढ़ती जाती है हमारी आँख की दृष्टि-शक्ति भी क्षीण होती जाती है।

टकटकी लगाकर या घूर कर देखने का स्वभाव आँख की अधिकतर तकलीफों का कारण है। कृष्ण, पटल, कृष्ण चक्षु पटल और चक्षुपट की बीमारियों का कारण प्रायः सिफलिस, उपदंश या पायरिया आदि समझे जाते हैं। कामवासना की तृप्ति के लिए अपनाई जाने वाली बुरी आदतों के कारण भी आँखों पर जोर पड़ने की प्रवृत्ति होती है अथवा वह प्रवृत्ति व्यक्ति में पहले विद्यमान हो तो जोर बढ़ जाती है। प्रायः लोग कहते हैं कि वृद्धावस्था में आँखों की ज्योति स्वभावतः क्षीण हो जाती है। परन्तु यह धारणा भ्रामक है।

उपचार

नेत्र दोष चाहे दूर की वस्तु साफ न दिखाइ पड़ने का हो चाहे पास की, उसका मूल कारण मानसिक तनाव ही है जिसे दूर करना आवश्यक है। यदि आप आँखों को ठीक प्रकार से देखने की शिक्षा दे लें और नेत्र विनभा साधनों को अपनाएँ तो मानसिक भार कम होगा और साथ ही आँखें कमजोर होने से बची रहेंगी।

आँखों का उचित प्रयोग

आँखों को बाहरी चोट, विजातीय द्रव्य, अत्यधिक प्रकाश आदि से बचाने के लिए भगवान ने पलकें बनाई हैं। आँसुओं और विभिन्न ग्रन्थियों के स्राव को ठीक-ठीक फैला कर वे आँख के पर्दे को नम और स्वच्छ रखती हैं और आँखों में बाहर से आने वाली धूल को साफ रखती हैं। अतः आँखें अपनी स्वाभाविक क्रिया तभी कर सकती जब पलकें नीचे झुकी हों और आँखें अधखुली हों। ऊपर या सामने की ओर देखना हो तो पलकों को नहीं ठुड्डी के नीचे उठाना चाहिए। आँखों को चौड़ा फैलाना तो किसी दशा में भी उचित नहीं है।

जिन लोगों को दूर की चीज साफ न दिखाई देती हो उन्हें तो इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये।

पलक झपकाना

स्वस्थ आँखों की पलकें बराबर झपकती रहती हैं। यह कार्य इतनी तीव्र गति से होता रहता है कि

हम उसका अनुभव नहीं कर पाते। किन्तु जिनकी आँखों में कोई दोष होता है उनकी आँखों की पलक झपकाने की क्रिया मन्द पड़ जाती है और उन्हें टकटकी लगा कर या घूर कर देखने की आदत पड़ जाती है और पलक झपकाने के लिये उन्हें जानबूझ कर कोशिश करनी पड़ती है। पलक झपकाना आँखों को आराम देने का आसान तरीका है।

आँख के सभी रोगियों को जल्दी-जल्दी और नियमित रूप से पलक झपकाने और इस प्रकार आँखों पर जोर पड़ने से उन्हें बचाने की आदत डालनी चाहिए। आरम्भ में आदत डालने के लिए थोड़ा प्रयत्न करना पड़ता है किन्तु आदत पड़ जाने पर यह क्रिया अपने आप अनायास ही होने लगेगी।

पलकें गिराने के लाभ का एक प्रत्यक्ष और रोचक उदाहरण लीजिए। किसी अक्षर को देखिए। पलक गिराना बन्द कर दीजिए। आप देखेंगे कि स्याही धुंधली पड़ रही है, अब पलक झपकाइये। आप देखेंगे कि स्याही पुनः लौट आई।

बहुत से लोग पढ़ते समय आँखों पर जोर पड़ने और उनके दर्द करने की शिकायत करते हैं ऐसे सभी लोग सामान्यतया यह भूल करते हैं कि पढ़ते समय वे बार-बार पलकें नहीं गिराते। एक लाइन पढ़ने में कम से कम तीन बार पलकों को गिराना चाहिये।

लेटे-लेटे भी पढ़ने में हर्ज नहीं है पर शर्त यही है कि सिर को ऊँचा रखिये और पलकें गिराना न भूलिए। धूप में पढ़ने से बचना चाहिए, क्योंकि चमक से आँखों पर जोर पड़ता है।

लिखना

प्रायः लोग आगे लिखते समय पीछे के शब्दों को देखते चलते हैं। इस तरह आँखों पर जोर पड़ता है। लिखते समय हमारा ध्यान कलम की नोक पर होना चाहिये। कलम की नोक के साथ हमें अपनी आँखें बदलना और बीच-बीच में बार-बार पलकों को झपकाते रहना चाहिए।

सूर्य चिकित्सा

नेत्रों की चिकित्सा में सूर्य के प्रकाश का विशेष महत्व है। हमारे पूर्वजों को इस महत्व का पता था, इसी कारण हमारे वेदों और शास्त्रों में सूर्य को आँखों का देवता कहा गया है और सूर्य नमस्कार का धार्मिक महत्व बनाया गया है।

प्रतिदिन प्रातःकाल सूर्य के सामने आँख बन्द कर खड़े होने से आँखें चमकीली बनती हैं, उनकी आकर्षण शक्ति बढ़ती है और नेत्रों की व्याधियाँ कभी नहीं सतातीं।

आँख बन्द करके सूर्य के सामने मुँह करके आराम से बैठिए। शरीर को एक ओर से दूसरी ओर धीरे-धीरे घुमाइये। इस प्रकार प्रातःकाल और संध्या समय जब धूप में अधिक तेजी नहीं होती, दस से तीस मिनट तक प्रकाश सेवन करना चाहिए। ज्योंही शरीर या आँखों को धूप के कारण परेशानी हो प्रकाश का सेवन बन्द कर देना चाहिए। प्रकाश का सेवन करने के बाद छाया में चले आइये और आँखों को ठंडे पानी से धो डालिए। जाड़े में गुनगुने पानी से भी आँखें धोई जा सकती हैं।

नेत्र स्नान

आँखों को स्नान कराने के कई उपाय हैं :

१. आँखें बन्द करके जल के ठंडे छींटे दीजिए। छींटे जल्दी-जल्दी दीजिए पर जोर से नहीं।

२. आँख धोने वाले प्याले आईकप को मुँह तक पानी से भरिए और आँख के पास ले जाइये। अब आँखें प्याले के पानी के भीतर रख कर जल्दी जल्दी पलकें गिराइए। इस प्रकार प्रत्येक आँख को एक या दो मिनट तक धोना चाहिए। दूसरी आँख को प्याले में डुबाने के पूर्व प्याले का पानी बदल डालिए। आँखों को धोते समय सिर को ऊँचा उठाने की आवश्यकता नहीं है।

३. किसी बड़े बर्तन या बाल्टी में ठंडा पानी भर लीजिए। चेहरे को पानी के भीतर ले जाइये और सांस को रोके रहिए। आँखों को धीरे-धीरे पानी के

प्रधान मंत्री जवाहर लाल नेहरू का भाषण

[वैज्ञानिक और औद्योगिक अनुसंधानशाला का नेहरू जी द्वारा उद्घाटन]

मेरी राय में विज्ञान की प्रगति भारत में कितना महत्व रखती है, यह इसी से साबित है कि मुझे दो दिन में तीन बार विज्ञान पर कहना पड़ रहा है। आज लोग ऐसे हैं जो इसे फिजूल खर्ची समझते हैं। मगर हिन्दुस्तान में काफी लोग अब समझने लगे हैं कि विज्ञान की प्रगति हमारे लिए जरूरी है। एक बात जोर की वह या कि आम लोगों के दिमाग में धँसाया कि विज्ञान एक चीज है। ऊपरी लोगों को नहीं, आम लोगों को समझाना है। प्रजातंत्र हकुमत में आम लोगों की राय ही चल सकती है इसीलिए उसी की जबान में कार्रवाई हो जिससे लोग समझें नहीं तो एक दीवार रहेगी। पिछले पाँच वर्षों में कई अनुसंधानशालाओं की नींव रखी, कई के उद्घाटन किए, लोग यह न समझे की बड़ी इमारत बना देने से विज्ञान की प्रगति हो रही है। प्रगति इंसान से होती है। ईंट पत्थर से नहीं होती। इमारतें भी अच्छी मजबूत सुन्दर हों। हमारी ताकत इमारतों में ही खत्म न हो जाय और फिर ताकत न रहे की उन्हें चला सकें। हिन्दुस्तानी बड़ी बड़ी बातें करते हैं पर काम पूरा नहीं करते। सैर शायरी करते हैं। पर

भीतर कई बार खोलिए और बन्द करिये। कुछ सेकेंड ऐसा करने के बाद कुछ सेकेंडों के लिए चेहरे को पानी से बाहर निकाल लीजिए। पानी में मुंह डाल कर इस क्रिया को दुहराइये। ५ से १० बार तक ऐसा कीजिए।

हथेली विश्राम

आँखों को जल से धोने के बाद उन्हें हथेली से ढाक कर विश्राम दीजिए। यह व्यायाम आँखों के लिए सबसे अधिक गुणकारी पाया गया है। प्रत्येक व्यक्ति को, जो अपने नेत्रों की ज्योति सुरक्षित रखना चाहता है, इसे अपना दैनिक स्वभाव बना लेना चाहिए।

हथेली विश्राम की क्रिया में आँखों को बन्द करके उन्हें हथेलियों से ढाँक कर विश्राम दिया जाता है। बायीं हथेली बाँयी आँख पर और दाहिनी हथेली दाहिनी आँख पर होनी चाहिए। हथेलियों को प्याले की सी शक्ल का बना लीजिए। उंगलियों को सीधी न रख कर एक हाथ की दूसरे हाथ और माथे से सटा कर रखिए। पुतलियों पर जो न पड़े।

अपनी आँखों को इस प्रकार पूरी तरह बन्द और ढँका रख कर हाथ की कुहनी को घुटनों पर आ जाने दीजिए। घुटनों को नजदीक रखिए। इस व्यायाम के लिए यह आराम की मुद्रा है। आप चाहें तो अपनी कुहनियों को मेज पर भी टिका सकते हैं या उनके नीचे तकिया रख कर भी काम चला सकते हैं।

हथेलियों से आँखों को विश्राम देते समय आँखों के आगे काला पर्दा सा दिखाई पड़ना चाहिए। यदि काला रंग नजर न आए बल्कि कोई दूसरा रंग नजर आए तो समझ लेना चाहिए कि आँख और दिमाग पर जोर पड़ रहा है। इस तनाव को दूर करने और आँख को पूर्ण विश्राम देने के लिए कोयले का टुकड़ा, काली बिल्ली, काला कोट, काला हैट, काला जूता, काला मखमली कपड़ा या दूसरी किसी काली वस्तु का ध्यान कीजिए। अगर आप काली चीज का ध्यान आसानी से नहीं कर सकते तो किसी अच्छी चीज का ध्यान करना चाहिए।

(शेष पृष्ठ १९ पर)

इससे तरक्की होने वाली नहीं। इस ढङ्ग से काम करना चाहिए कि शिकायत न रहे। बड़े अफसर को को जो काम सौंपा जाता है वह दूसरे को करने के लिए कह देता है और दूसरा तीसरे को इस तरह पता ही नहीं चलता की कहां गलती हुई।

हाथ से काम करने का महत्व समझाते हुये उन्होंने कहा "हमारे विद्यार्थी समझते हैं कि ऊँचे दर्जे का काम मेज कुर्सी पर बैठ कर करने का है। हाथ पैर चलाने का काम उनकी हैसियत के माफिक नहीं है। हाथ पैर से काम करने वाले को नीच समझते हैं। अमेरिका में एक खेती के कालेज के प्रोफेसर ने मुझे कहा था कि हिन्दुस्तान के विद्यार्थी झिझकते हैं हाथ पैर से काम करने में। वैज्ञानिक अनुसंधान-शालाओं जो काम सफाई का नहीं होता उसे विद्यार्थी खुद नहीं करते नौकरचाकरों से कराते हैं, जो अच्छा नहीं है। निकम्मा ख्याल इससे बढ़ कर दूसरा नहीं है। बेसिक शिक्षा के लिए यह कहा जाता है कि बच्चा शुरू से ही कुछ हाथ चलाना सीखे।

विज्ञान तेजी का जमाना है। दुनिया बदल दी है। इस तरह से नहीं जादू मंत्र से या ज्योतिषी से पूछने से। आसमान पर, बिजली पर, एटम की ताकत पर, प्रकृति की शक्ति को अपने वश में कर लिया है। फायदा व नुकसान दोनों हुआ, अनुसंधान-शालाओं को कारखानों की तरक्की करनी है। ज्यादा दूर तक निगाह रखना है। वैज्ञानिक को गज भर नहीं दूर तक देखना है। एक बड़ी बात सामने रखनी है। विज्ञान का तरीका है कि प्रयोग किया जाय और साबित हो तो मंजूर करें, कल गलत साबित हो तो उसे भी मंजूर करें। विज्ञान सचाई है। विज्ञान से जो चीज निकले मंजूर करें आपकी पसंद की हो या न हो। विज्ञान की तरक्की तो करें साथ साथ अपने दिमाग की भी करें, तंगख्याली कम हो हर तरह की, धर्म, राजनीति, रहन सहन में भी। कम ख्याली के पिंजरे बनाए। हलके हलके उन पिंजरों से निकलने की कोशिश कर रहे हैं। विज्ञान इसमें हमारी मदद करता है, हिन्दुस्तान में अब योग्य शासक अफसर बड़ा नहीं। बड़ा आदमी वैज्ञानिक है, बड़ा आदमी इंजीनियर है हुक्म जारी करने वालों का दर्जा दूसरा व बड़ा आदमी वैज्ञानिक है, बड़ा आदमी इंजनियर है। अब हुक्म जारी करने वालों का दर्जा दूसरा व तीसरा हो गया है। इसके लिए हमें दिमागी तौर पर तैयारी करना है।

मेरे जैसे राजनीतिज्ञ लोग जिनको कोई तालीम की जरूरत नहीं रहती। बिना सीखे मैदान में कूद पड़ते हैं, यह प्रजातन्त्र है मैं इसका हामी हूँ। मगर कोई पेशा करना हो मसलन बढ़ई का तो वर्षों काम सीखना पड़ता है।

१००-२०० वर्षों से हिन्दुस्तान पिछड़ गया था। उसकी वजह से विज्ञान की कोई तरक्की नहीं हुई। हाँ, एक दो वैज्ञानिक हुये उनको मौका नहीं मिला आम तौर पर विश्वविद्यालयों में विज्ञान पढ़ाया जाता है जो जरूरी है। राष्ट्रीय अनुसंधानशालाएँ अच्छा काम कर रही हैं। एकदम मार्के की बातें नहीं आएँगी। एक एक अनुसंधानशाला लाख लाख काम करती है। देश भर में उनका जाल फैलाना ठीक था। यह उस ढंग की नहीं है। एक खास विषय पर सीमित नहीं है। कई विषयों पर दखल देती है। मैं समझता हूँ दोनों की जरूरत है। मुल्क हमारा बहुत बड़ा है। इस किस्म की चन्द हो तो मुनासिब है। डा० हुसेन जाहिर ने डरते डरते सफाई पेश की कि कोई बात दोहराई नहीं जायगी। मैं कहता हूँ जरूरी काम को जरूर दोहराया जाय।

हैदराबाद दक्षिण का केन्द्र है। यह अनुसंधान-शाला हैदराबाद प्रदेश की तरक्की तो करे ही मगर अपने पास पड़ोस के प्रदेशों का भी ख्याल रखे। सीमित कायदा बनाना गलत बात है। विज्ञान की प्रगति में दीवारें न हों। लोग इन अनुसंधानशालाओं को सफेद हाथी कहते हैं। उनका इमतिहान अब काम से होगा, इमारतों से नहीं।

विज्ञान समाचार

अमेरिका में ताप-निरोधक वस्त्र का आविष्कार

अमेरिका की एक फर्म ने ऐसा तन्तु तैयार किया है जो २३०० अंश फार्नहाइट के ताप को सहन कर सकता है और किसी प्रकार क्षति नहीं पहुँचती। वह उस समय तक मुलायम नहीं पड़ता जब तक कि उसे ३००० अंश फार्नहाइट का ताप न पहुँचे। इस तन्तु की ताप निरोधक क्षमता का पता इस बात से चलता है कि लोहे को पिघलाने के लिए २७६३ अंश फार्नहाइट ताप की आवश्यकता होती है।

यह तन्तु अलूमीनियम औक्साइड तथा सिलिकोन कार्बाइड से बिजली की भट्टियों द्वारा तैयार किया जाता है। नियाग्रा प्रपात (न्यूयार्क) की कार्बोरन्डम कम्पनी के अनुसन्धान विभाग में यह तन्तु तैयार किया गया है और आशा की जाती है कि यह बहुत से औद्योगिक कार्यों के लिये उपयोगी सिद्ध हो सकेगा। इस समय यह तन्तु केवल रूई के गालों जैसी शक्ल में उपलब्ध है, किन्तु कम्पनी इसको ऐसे कागज की शक्ल में बनाने के लिये परीक्षण कर रही है जो आग की लपट को संहार सके और ध्वनि को रोक सके।

इस तन्तु की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह देखने में अत्यन्त महीन है। इसकी मोटाई केवल ४ माइक्रोन के बराबर होती है। इसकी अपेक्षा रेशम के तन्तु की मोटाई १८ माइक्रोन तथा मनुष्य के बाल की मोटाई १०० माइक्रोन होती है। (एक माइक्रोन एक मिलिमीटर का हजारवाँ हिस्सा होता है)। उसके इस अत्यन्त महीनपने का लाभ यह है कि उसे सुपरफिल्टर अथवा कई प्रकार के ताप और विद्युत के प्रभावों को रोकने के लिए अवरोधक पत्र के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है।

यह तन्तु विद्यु और ताप सम्बन्धी बहुत सी वस्तुओं में एसबेस्टस के साथ काम आ सकता है और यदि इसे विद्युत व ताप अवरोधक पत्रों में लगाया जाये तो उससे अग्नि के प्रभाव को रोका जा सकेगा, ताप का ह्रास कम होगा और ध्वनि भी रुक जायेगी। छारण पत्र के रूप में प्रयोग करने पर यह गैस और धुएँ की उपादेयता को बहुत लाभप्रद बना देगा।

बहुत हल्का (२ पौंड प्रति घन फुट) होने के कारण यह बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। जेट इंजिनों में ध्वनि का नियन्त्रण करने तथा शीत व ताप की रोकथाम करने के लिये भी इस तन्तु को प्रयोग में लाने के सम्बन्ध में परीक्षण किये जा रहे हैं। आशा है कि यह इस कार्य के लिये बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगा, क्योंकि जेट इंजिन की उड़ान में उसका अधिक से अधिक तापमान लगभग १५०० डिग्री फार्नहाइट होता है।

उड्डयन-कार्यों के अलावा, इस तन्तु से कागज बनाने तथा अन्य रासायनिक उद्योगों में बहुत लाभ उठाया जा सकेगा।

सूर्य की किरणों से इन्जन चलेंगे और बिजली पैदा की जायेगी

सूर्य की किरणों के सम्बन्ध में अनुसन्धान करने वाले वैज्ञानिकों की अभी हाल में विस्कौन्सिन विश्वविद्यालय में जो बैठक हुई थी उसमें प्रस्तुत की गई रिपोर्टों से पता चलता है कि बहुत से वैज्ञानिक सूर्य की किरणों से प्राप्त होने वाली शक्ति को उपयोग में लाने के तरीके मालूम करने के सम्बन्ध में अनुसन्धान कर रहे हैं। आशा है कि शीघ्र ही सूर्य की

किरणों से प्राप्त की जाने वाली शक्ति को काम में लिया जाने लगेगा।

कन्सौलिडेटेड

'कन्सौलिडेटेड वल्टी एयरक्रैफ्ट कम्पनी' के ताप सम्बन्धी यन्त्रक्रिया के इंजीनियर जोजेफ फारयेर ने बताया है कि उस की कम्पनी ने सूर्य के ताप को एकत्र करने तथा उससे ५ हजार डिग्री फार्नहाइट तक ताप पैदा करने की प्रक्रिया मालूम कर ली है। इससे जेट इंजनों के सम्बन्ध में परीक्षण करने में सहायता मिलेगी।

एक वर्ष में इंजन तैयार

वाशिंगटन स्थित स्मिथसोनियन इन्स्टिट्यूशन के चार्ल्स एबट ने बताया है कि सूर्य की धूप से चलने वाला एक छोटा सा इंजन तैयार किया जा रहा है जिस की परीक्षा एक वर्ष के भीतर ही की जा सकेगी। उसका विश्वास है कि उस इंजन से इतना अधिक ताप एवं प्रकाश तथा विद्युत उपलब्ध हो सकेगी जो एक फार्म में सिंचाई करने के निमित्त पम्प चलाने के लिए पर्याप्त होगी। एबट का अनुमान है कि उस इंजन पर लगभग एक हजार डालर लागत आयेगी।

अनुसन्धान—सलाहकार जौर्ज लोफ ने कहा है—मुझे विश्वास है कि १० वर्षों के भीतर घरों को गर्म करने के लिए सूर्य के ताप से सामान्य रूप में काम लेना सम्भव हो जायेगा। न्यूयार्क यूनिवर्सिटी की मेरिया टेल्किस ने सूर्य की किरणों से गर्म रखा जाने वाला एक परीक्षणात्मक मकान बना भी डाला है।

रसायन-विज्ञान द्वारा उपयोग

अमेरिकन कैमिकल सोसाइटी के प्रेसिडेन्ट तथा विस्कौन्सिन में हुए सूर्य से प्राप्त होने वाली शक्ति सम्बन्धी सम्मेलन के अध्यक्ष फेरिंगटन डेनियल्स ने बताया कि सूर्य की किरणों को उपयोग में लाने के सम्बन्ध में अभी तक रसायन-विज्ञान ही सब से अधिक उपयुक्त क्षेत्र प्रतीत हुआ है। किन्तु अभी भी कुछ ऐसे रासायनिक द्रव्यों को तैयार करना शेष है जिन से सूर्य की शक्ति को जमा किया जाये और आवश्यकता पड़ने पर उस का उपयोग किया जा सके।

डेनियल्स ने कहा—रसायन-शास्त्रियों को ऐसे उचित मिश्रण तैयार करने के लिये प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये जो फोटो में प्रयुक्त होने वाले रासायनिक द्रव्यों की प्रतिक्रियाओं द्वारा प्रकाश को जज्ब कर सकते हों व सूर्य शक्ति को संग्रहित रख सकते हों ताकि जरूरत पड़ने पर उसे काम में लिया जा सके। यह बताया गया है कि इस सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण कदम पहले ही उठाये जा चुके हैं।

सूर्य की शक्ति का संचय

मैसेच्यूसेट्स इन्स्टिट्यूट औव् टैक्नोलौजी के लौरेन्स हीट ने यह पता लगाया है कि सीरिक तथा सीरस परक्लोरेट में सूर्य की अल्ट्रावायलट किरणों से शक्ति को संचित करने की क्षमता है। सीरियम धातु के इन लवणों का प्रयोग करके हीट ने पानी के तत्वों – ओषजन तथा उदजन को अलग-अलग कर दिया। फिर इन गैसों को संचित किया जा सकता है और उन्हें दुबारा मिला लेने से वह संचित शक्ति प्राप्त की जा सकती है। वैज्ञानिकों ने बिजली द्वारा सूर्य की किरणों से शक्ति संचित करने के उपायों का भी संकेत किया है।

इस प्रकार के एक उपाय में बिजली की बैटरी में एक और शक्ति संचित होती रहती है और फिर उसे उस पार्श्व की ओर भेज दिया जाता है जो अंधेरे में होता है।

दूसरा तरीका यह है कि दो इलैक्ट्रिकल कन्डक्टरों को साथ साथ जोड़ दिया जाता है। एक को सूर्य गर्म करता है; और दूसरा ठण्डा रहता है। उस का फल यह होता है कि एक छोटी सी विद्युत् धारा उत्पन्न हो जाती है। अब आवश्यकता इस बात की है कि कोई ऐसी धातु या धात्वीय मिश्रण तैयार किया जाये जिसे इस प्रकार मिलाने से अधिक शक्ति वाली बिजली उत्पन्न की जा सके।

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

परिषद् का उद्देश्य

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद् का संगठन

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार सभ्यगण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उप सभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमन्त्री, दो मन्त्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्य को ६) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ १०० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिए वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशन में उपस्थित रहने का तथा अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित, परिषद् की सब पुस्तकों, पत्रों, तथा विवरणों इत्यादि को बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य वृन्द समझे जायेंगे।

प्रधान संपादक डा० हीरालाल निगम
सहायक संपादक—श्री जगपति चतुर्वेदी

आर्ट प्रिन्टर्स, जीरो रोड, इलाहाबाद—३

प्रकाशक—विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद

विज्ञान

अप्रैल १६५४
मेष २०११

भाग ७६
अंक १

वार्षिक मूल्य
चार रुपए

प्रति अंक
छः आने

सरल विज्ञान ग्रंथावली

लेखक—जगपति चतुर्वेदी, सहा० सम्पा०, 'विज्ञान'

सरल विज्ञान ग्रन्थावली हिन्दी में लोकप्रिय वैज्ञानिक साहित्य सरल रूप में प्रस्तुत करने का एक नवीन तथा अभूतपूर्व प्रयास है। सभी पुस्तकें केवल एक लेखक द्वारा लिखी हुई हैं। लगभग १५० या २०० पृष्ठों तथा बहु संख्यक चित्रों के साथ प्रत्येक का मूल्य २) है।

भौतिक विज्ञान

बिजली की लीला—बिजली के वैज्ञानिक मर्म, तार टेलीफोन, विद्युत्प्रकाश, एक्सरे रेडियो आदि की कहानी।

परमाणु के चमत्कार—परमाणु सम्बन्धी वैज्ञानिक खोजों तथा परमाणु बम, उद्जन बम आदि के मर्म की कहानी।

भूगर्भ वि०, पुरा-जीवविज्ञान, पुरा-वनस्पति विज्ञान

विलुप्त जन्तु—प्रस्तरावशेषों के आधार पर पचासकरोड़ वर्षों तक पुराने जन्तुओं के वंश लोप होने की कहानी।

भूगर्भ विज्ञान—धरती के निर्माण तथा अंतः और वाह्य अंगों के रूप परिवर्तन की विलक्षण कहानी।

विलुप्त वनस्पति—प्राचीन काल के प्रस्तरावशेषों के आधार पर पचास कोटि वर्षों तक पुराने वनस्पति वंशों की कहानी।

कोयले की कहानी—पत्थर कोयले की उत्पत्ति तथा वैज्ञानिक शोध और उपयोग की कहानी।

ज्वालामुखी—धरती के आंतरिक भाग में ज्वाला उत्पन्न होने के कारण तथा संसार केज्वालामुखियों की कहानी।

रसायन

तत्वों की खोज में—रासायनिक तत्वों के अनुसंधान तथा उनके अन्वेषक वैज्ञानिकों की मनोरंजक कहानी।

साधारण

वैज्ञानिक आविष्कार—भाग १, २—पुरानी तथा नई वैज्ञानिक खोजों की विशद कहानियाँ

आविष्कारकोंकी कहानी—युगान्तरकारी आविष्कारकों तथा वैज्ञानिकों की कथा।

वनस्पति विज्ञान

वनस्पति की कहानी—वनस्पतियों के जन्म, वृद्धि, क्रियाकलाप, तथा भेद प्रभेदों की कहानी।

चिकित्सा विज्ञान, कीटाणु विज्ञान

जीने के लिए—रोगों और कीटाणुओं का मर्म ज्ञात करने वाले वैज्ञानिकों की मार्मिक कहानी।

कीटाणुओं की कहानी—रोग उत्पन्न करने वाले तथा अन्य सूक्ष्मदर्शकीय कीटाणुओं और परम कीटाणुओं की कहानी।

पेनिसिलिन की कहानी—रसायन चिकित्सा तथा पेनिसिलिन के आविष्कार, की कहानी

शल्य विज्ञान की कहानी—शरीर में चीरफाड़ करने के प्राचीन तथा नवीन ज्ञान की कहानी।

जीव-जन्तु विज्ञान

समुद्र जीव जन्तु—समुद्र के अंदर रहने वाले अद्भुत रंग-रूपों के जंतुओं का वर्णन।

अद्भुत जन्तु—अद्भुत रङ्ग रूप के जन्तुओं की कहानी।

विलक्षण जन्तु—विचित्र आकार प्रकार के जन्तुओं का वर्णन।

पक्षी ग्रंथावली—पक्षियों के रङ्ग रूप, जीवन-क्रम, निवास सन्तानोत्पादन, स्वभाव भेद तथा पहचान का वर्णन

१—शिकारी पक्षी
२—जलचर पक्षी
३—वन वाटिका के पक्षी
४—वन उपवन के पक्षी (प्रेस में)
५—उथले जल के पक्षी (प्रेस में)

विज्ञान परिषद्, प्रयाग

Approved by the Directors of Education, Uttar Pradesh
and Madhya Pradesh for use in Schools,
Colleges and Libraries

विज्ञान

विज्ञानं ब्रह्मेति व्याजानात, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० ।३।५

संख्या ७९ | मेष २०११, अप्रैल १९५४ | अंक १

धन्यवाद

उत्तर प्रदेश सरकार के शिक्षा प्रसार विभाग ने "विज्ञान" की १७४ प्रतियाँ इस वर्ष पुस्तकालयों को भेजने का आदेश-पत्र हमारे पास भेजा है। इसके लिए हम अधिकारियों को धन्यवाद देते हैं। वास्तव में अब तक उपेक्षा के पश्चात् विज्ञान को प्रश्रय देने का यह प्रयत्न उनकी कर्त्तव्यपरायणता की भावना जागृत् होने का प्रमाण है। हम इस सहायता से विज्ञान को अधिक सुन्दर बनाने की आशा रख सकते हैं। यदि अन्य राज्य भी हमें कम से कम दो-दो सौ ग्राहक दे दें तो हम विज्ञान में विशेष उपयोगी, ज्ञानवर्द्धक तथा रोचक सामग्री देने में समर्थ हो सकते हैं। बिहार तथा विन्ध्य प्रदेश के शिक्षा तथा प्रचार विभागों से हमें कई बार आश्वासन भी मिले परन्तु उसकी पूर्ति न हो सकी। हमारा पत्र प्रादेशिक नहीं है। सभी राज्यों तथा केन्द्रीय सरकार से सहायता प्राप्त होने के हम पात्र हैं। यदि विज्ञान-प्रेमी सज्जन स्वयं प्रयत्न कर या अधिकारियों को प्रेरित कर उचित सहायता दिलाने का प्रयत्न करें तो हम विज्ञान के लेखकों को पुरस्कार देने तथा अपना कोई वैतनिक सहायक रखने में समर्थ हो सकते हैं। लेखों में यथेष्ट चित्र दे सकेंगे। उस दशा में निश्चित रूप से विज्ञान का कायापलट हो सकेगा। हमें विश्वास है कि हमारी यह आकांक्षा पूरी होने में अधिक विलंब न लगेगा।

सम्पादक
'विज्ञान'

जंतुओं का देशाटन

संसार में मनुष्यों को जीविकार्जन करने की चिंता में देश-देश भटकना पड़ता है। अपने ही देश में भी कोने-कोने तक दूर-दूर से जाते और कुछ अर्जित करते या मनोरंजन करते पाया जाता है किंतु जन्तुओं को भी कुछ कारणों से देशाटन करना पड़ता है, इस तथ्य की ओर हमारी दृष्टि प्रायः नहीं जाती है। पक्षियों के दल का आना-जाना तो हम अवश्य देखते हैं। टिड्डियों का भारी संख्या में आना देखा जाता है परन्तु कभी उनके लौट जाने की बात नहीं सुनी गई। वे अपने अभियान में कुछ दूर जाकर कदाचित् नष्ट ही होती हैं। पुनः कालान्तर में शलभों का आक्रमण मूल जन्मस्थान से संख्यातीत संख्यावृद्धि होने के कारण होता है किंतु पक्षियों या अन्य बहुतेरे जन्तुओं में देशाटन का एक चक्र-सा पाया जा सकता है जिसमें जन्तु भ्रमण करने के स्थान की ओर प्रायः पुनः लौट आते हैं। ऐसे यात्राचक्रीय अभियानों का कारण उपयुक्त भोजन तथा सन्तानोत्पादन के स्थल ढूँढ़ना है। यह समझा जाता है कि कुछ स्थल तो भोजन के उपयुक्त हो सकते हैं परन्तु कुछ अन्य स्थल विशेष तापमान, वातावरण आदि कारणों से सन्तानोत्पादन के अधिक उपयुक्त हो सकते हैं किन्तु इसके साथ ही यह कठिन प्रश्न उपस्थित होता है कि जनन स्थल तो कहीं एक क्षेत्र है और आहार प्राप्त करने का स्थान विषम ऋतुओं के समय इतनी अधिक दूर है, फिर किस विशेष निर्देश तथा व्यवस्था द्वारा उतनी अधिक दूरी का मार्ग पा सकना संभव हो सकता है? इन प्रश्नों पर कुछ विचार कर अस्थायी निष्कर्ष निकालने के प्रयत्न किये गये हैं जिनका वर्णन कौतूहल वर्द्धक ही है। यथार्थ में जन्तुओं के अन्तर्तम में उत्पन्न भावों, सूक्ष्म वृत्तियों और शक्तियों का ज्ञान प्राप्त कर सकने के लिए कोई साधन या वैज्ञानिक उपकरण नहीं बने हैं, अतएव कल्पनाओं के आधार पर ही कुछ धारणाएँ बनानी पड़ती हैं।

अनेक मत्स्य, पक्षी, सील, ह्वेल (तिमि) तथा कुछ चमगीदड़ आदि जल-जीवी तथा वायुजीवी जन्तु अधिक विस्तृत यात्रा-चक्र रखते हैं। एक निर्दिष्ट समय, निर्दिष्ट दिशा क्षेत्र की यात्रा कर जनन कार्य में लिए पहुँचते हैं। उनकी सन्तान उत्पन्न होकर पता नहीं किन कारणों से अपना जन्म-स्थान ही छोड़ देने के लिए विवश होती है तथा माता-पिता के पूर्व स्थान को चली जाती है। उनके साथ ही या कई जन्तुओं में सन्तानों के पीछे माता-पिता उस सन्तानोत्पादन स्थान को छोड़ते हैं। इन कृत्यों की मीमांसा में कुछ जन्तुओं के देशाटन की चर्चा की जा सकती है।

लम्बे देशाटन के यात्रा-चक्र वाली मछलियों में ईल तथा सालमन का विशेष उल्लेख किया जा सकता है। काड तथा अन्य कुछ मछलियाँ भी इससे कुछ कम महत्व का यात्रा-चक्र बनाती हैं। काड मछलियाँ व्यावसायिक पदार्थ प्रदान करने के लिए प्रसिद्ध हैं। समुद्र में इनके यूथ के यूथ पृथक् पृथक् पाये जाते हैं। इन मत्स्य-यूथों में असंख्य काड होते हैं। मत्स्य-यूथ का एक स्वतन्त्र सङ्घ या ईकाई बनी रहती है। इन मत्स्य सङ्घों का एक प्रमुख भोजन स्थल स्पिट्सबर्गेन, बियर द्वीप तथा बेरेंट्स समुद्र में अपेक्षाकृत शीत तथा उथले जल खंड में पाया जाता है। यहाँ समुद्र के ऊपरी तल पर एककोषीय सूक्ष्मदर्शकीय जलवाही वनस्पति प्रचुर मात्रा में विद्यमान होता है जो अल्पवय शिशुओं के लिए

उपयुक्त आहार होता है। आठ वर्षों तक समुद्र-तल के इन जलवाही सूक्ष्मदर्शकीय वनस्पतियों का आहार करते-करते काड मत्स्य के शिशु अल्हड़पन की अवस्था पाकर प्रौढ़ बनते हैं और सन्तानोत्पादन करने की प्रकृतिदत्त प्रवृत्ति से सम्पन्न हो जाते हैं किन्तु प्रकृति का विधान है कि इनका सन्तानोत्पादन उस क्षेत्र में समुचित नहीं जहाँ आहार की प्रचुरता मात्र है। जनन क्षेत्र उससे पृथक ही होता है। वे नार्वे के पश्चिम तट पर लोफोटेन द्वीप समूहों के निकट प्रवास कर जाते हैं और वृहद सन्तानोत्पादन यूथ बन जाते हैं। वहाँ अण्डे देते हैं। अण्डों का वहाँ विकास होता रहता है। उनसे इल्ली उत्पन्न होती हैं।

समुद्र में उष्ण तथा शीत जल की धाराएँ भी प्रवाहित होती हैं जिनका वर्णन प्राकृतिक भूगोल के अध्ययन करने वाले छात्रों को पढ़ने का अवसर मिलता है। नार्वे के निकट से उत्तर की ओर ऐसी उष्ण जलधारा प्रवाहित होती है। उसके साथ वे इल्लियाँ भी बह चलती हैं। माता-पिता उसी जल-धारा में अधिक मन्द गति से पीछे-पीछे उसी दिशा में चलते हैं। फलतः नवजात मत्स्य तथा उनके जनक मत्स्य भी आहार क्षेत्र में पहुँच जाते हैं। उत्तर में शीत जल ही होता है किन्तु वही निश्चयात्मक रूप से आहार स्थल होता है। उसमें जलवाही सूक्ष्म-दर्शकीय वनस्पतियों का बाहुल्य होता है, किंतु उधर जनन कार्य के लिए अपेक्षाकृत कुछ उष्ण जल की आवश्यकता रहती है, अतएव नार्वे के निकट के क्षेत्र को इस जाति का मत्स्य उसके उपयुक्त समझता है। वहाँ के अपेक्षाकृत उष्ण जल में अंडे शीघ्र विकसित तथा पोषित होते हैं तथा अपनी जाति के पोषण या आहार स्थल तक धारा द्वारा प्रवाहित होकर पहुँचने तक वे भोजन कर सकने योग्य यथेष्ट पुष्ट हो गये होते हैं।

लोगों की धारणा है कि जल की धारा के विपक्ष ही चलने या तैरने का प्रयत्न करने की प्रवृत्ति मछलियों में पाई जाती है। १९५३ के वर्षा-प्राबल्य से जल-प्रलय-सा होने का दृश्य प्रयाग के निवासियों ने देखा। उस समय यमुना तथा गंगा के बढ़े हुए जल के कारण बाँध की मोरी बन्द रखनी पड़ी थी, किन्तु गंगा के जल का तल कुछ नीचा होने पर मोरी के भीषण प्रवाह से नगर का जल गिरने लगा तो गंगा के अपेक्षाकृत निम्न तल से मोरी के द्वार की ओर मछलियाँ इतनी अधिक संख्या में कूद जाने का प्रयत्न करतीं कि जल के ऊपर उपयुक्त ढंग से कपड़े फैलाने पर माझियों को स्वतः मछलियाँ हाथ में पहुँचती प्रतीत होतीं। बहुत से लोगों को यह बड़े कौतूहल की बात नहीं ज्ञात होती। वर्षा के जल के ऊपरी भाग में पड़े रहने से जितनी सड़ान पैदा हो गई थी उसमें तो मछलियाँ जी भी नहीं सकती थीं। किन्तु बहुत से लोगों को यह जान पड़ता कि ऊपर की ओर से ही मछलियाँ आकर गंगा में कूद रही हैं।

प्रकृति-पर्यवेक्षकों ने निरीक्षण कर ज्ञात किया कि पहाड़ी नदियों में धारा के विरुद्ध तैर कर जाने वाली मछलियाँ मार्ग में कहीं ऊंचाई से नदी की धारा गिरने से झरना बना होने पर अपनी शक्ति भर उस ऊँचाई को फाँद कर ऊपर की धारा में उल्टा जाने का भगीरथ प्रयत्न करती हैं। ठीक ऐसा ही दृश्य प्रयागवासियों ने मोरी के द्वार से छोटे से झरने रूप में पानी गिर कर गंगा की धारा में मिलते जाने के समय देखा था। डा० ई० एस० रसेल ने इस बात का समर्थन किया है कि मछलियाँ जल-प्रवाह के उल्टे तैरती हैं, किन्तु काड तथा अन्य मछलियों के लम्बे देशाटन का अवलोकन कर उनका कथन है कि अंडा देने के पूर्व काड मछली इस सर्व-मान्य सिद्धांत का ही अनुसरण करती है और स्पिट्सबर्गेन या अन्य स्थलों की ओर नार्वे की ओर से उत्तराभिमुख जाती धारा के उल्टे तैरती नार्वे तक पहुँचती हैं, किन्तु अंडे तथा उनसे उत्पन्न इल्लियाँ धारा के अनुकूल प्रवाहित होकर दक्षिण से उत्तर की ओर जाती हैं और नार्वे से स्पिट्सबर्गेन, बियर द्वीप आदि तक पहुँचती हैं। यह ध्यान में रखने की बात है कि कोई समुद्र धारा

मछली को भूमि की दृष्टि से उसकी आपेक्षिक स्थिति का ज्ञान नहीं करा सकती। मछली किसी स्थिर वस्तु को देख या अन्य प्रकार से अनुभव कर भूमि की तुलना में आपेक्षिक स्थिति तथा दिशा का ज्ञान प्राप्त कर सकती है। उदाहरणतः समुद्र के पेटे के निकट तैरते हुए वह दिशा का कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकती है। एक बात यह भी सम्भव हो सकती है कि जल के तापमान या खारेपन में क्रमागत उतार या चढ़ाव से ही वह अपनी यात्रा-दिशा निर्धारित कर लेती हो। यह तथ्य है कि तापमान तथा खारेपन की क्रमागत न्यूनाधिकता का अनुभव मछली को सूक्ष्म रूप में भली-भाँति हो सकता है। काड के उत्तर भाग में अपेक्षाकृत शीत प्रदेशों में जीविकार्जन अर्थात् आहार प्राप्त करने जाने तथा सन्तानोत्पादन के लिये अपेक्षाकृत उष्ण जल-भाग की खोज में दूर की लम्बी यात्रा कर नार्वे पहुँचने की यही मीमांसा की जा सकती है।

काड मछली के उत्तर दक्षिण देशाटन करने (अथवा ठीक शब्दों में समुद्राटन करने) की भाँति अटलांटिक में ईल-मत्स्य को पूर्व-पश्चिम दिशा में बड़ी दूर तक समुद्राटन करने का उदाहरण रखते पाया जाता है। ईल मछली की कथा बड़ी ही विचित्र है। योरप में बसन्त के आगमन पर प्रतिवर्ष एक प्रकार के क्षुद्र जल-जंतुओं का यूथ नदियों के मुहानों तथा निम्न जलभागों में संकुलित पाया जाता रहा। जन्तु भी क्या था, सिलाई करने वाली सुई समान ही मोटा और दो इञ्च लम्बा होता था। उसका शरीर दिव्य कांच की भाँति लगभग पारदर्शी दिखाई पड़ता। संसार में तो लाखों योनियाँ हैं। उन्हीं में से यह भी कोई नगण्य जल-जन्तु था किन्तु वर्ष के एक भाग में एक विशेष जलखंड में उसका बाहुल्य अवश्य कुछ विस्मय उत्पन्न किया करता था। उस रहस्य को खोलने वाला कोई आधार प्राप्त नहीं था। आज यह अवश्य ज्ञात हो सका है कि ये अल्पवय ईल मत्स्य हैं जो इन जलभागों में अन्यत्र से आ पहुँचते हैं। उनका जनन क्षेत्र योरप में कहीं भी नहीं है। पहले तो केवल इतना ही देखा जाता कि ये अल्पवय लम्बोतरे मत्स्य शिशु नदियों की धारा में ऊपर की ओर चढ़कर उसकी सहायक नदियों की धारा तथा जल-धारा से संलग्न जलाशयों में पहुँचते और वयस्क होकर ईल मछली के नाम से ज्ञात होते। इससे कुछ विशेष अधिक बातें नहीं ज्ञात हो सकी थीं।

ईल के सम्बन्ध में यह विचित्र बात बहुत कम लोगों को ही ज्ञात थी कि ये ही वयप्राप्त ईल कुछ दिनों में किसी अन्तर्भावना से प्रेरित होकर पुनः समुद्र की ओर चल पड़ते हैं। समुद्र में जाने की उनकी यह प्रेरणा इतनी प्रबल हो उठती है कि नदी नालों से असम्बद्ध बने जलाशयों तक से भी वापस होकर समुद्र गमन का प्रत्येक सम्भव प्रयत्न करते हैं। किसी भी जलखंड में जा फँसे होने से वहाँ से निकल कर समुद्र की ओर जाने में कोई भी बाधा पार करने में वे कोई प्रयत्न उठा नहीं रखते। इस विचित्र व्यापार का क्या कारण हो सकता है, इस प्रबल यात्रा-भावना का कौन-सा अपरिहार्य कारण हो सकता है, यह संसार के लिए सदा से एक पहेली ही रही है।

यदि ईल ऐसे जलाशय में पड़ा हो जहाँ पहुँचने के लिए पहले जलमार्ग रहा हो परन्तु ऋतु की विषमता से वह जलमार्ग सूख जाने से जलाशय का किसी नदी जलधारा से सम्बन्ध न रह गया हो, तो वहाँ से स्थल मार्ग की यात्रा कर ही नदी की धारा में पहुँच जाने का प्रयत्न करते हैं। इस भीषण यात्रा के लिए वे ऐसा उपयुक्त अवसर ढूँढ़ते हैं जब आँधी तूफान का प्रकोप हुआ हो, धरती जलसिंचित हो रही हो। प्राकृतिक कोप द्वारा उत्पन्न इतनी क्षीण आर्द्रता के अवलम्ब पर भी ईल मत्स्य भूयात्रा पार कर लेने का साहस एकत्र करते हैं और अभियान प्रारम्भ कर देते हैं। यह उनकी समुद्र-गमन की प्रचंड लालसा का ही परिणाम होता है। परन्तु ईल कहीं कुएँ में पड़ा हो या मनुष्य के हाथों हौजों या जलपात्रों में बन्द हो जहाँ से उसका निकल सकना असम्भव ही हो तो वह विवश होकर वहीं पड़ा रह

जाता है। वहाँ से बाहर आने का कोई प्रयत्न कार्यकर नहीं हो सकता। इस कारण वह निष्फल प्रयत्न नहीं करता। नदी से समुद्र में जाने की आयु के ईलों की अपेक्षा वह अधिक समय तक उन स्थानों में जीवित पड़ा रहता है।

प्रकृति विज्ञान के पर्यवेक्षकों ने बड़े ही यत्न से ईल के अभियान करने के प्रयोजन तथा मार्ग का ज्ञान प्राप्त कर लिया है। इसके लिए अनेक वर्षों तक निरन्तर पर्यवेक्षण तथा समुद्र यात्रा करते रहना पड़ा है। समुद्र के जलखंड से ईलों के नमूने भारी संख्या में स्थान-स्थान से लिये जाते रहे हैं। ईलों की गतिविधि का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उसके शरीर की परीक्षा से उसकी आयु भी जान लेने का प्रयत्न किया गया है। मछलियों की भाँति ईल में छिछड़े होते हैं, परन्तु वे सूक्ष्म आवरण के नीचे ही होते हैं तथा एक दूसरे पर आरोहित नहीं होते, बल्कि सटे-सटे पृथक्-पृथक् रूप में शरीर के चारों ओर बिछे होते हैं। ऋतु के परिवर्तन से उन शल्कों (छिछड़ों) में भी वृक्ष के आड़े कटे तने की गोल-रेखाओं या मुद्रिकाओं की भाँति चिह्न अंकित होते हैं जो उन ईलों की आयु व्यक्त कर सकते हैं। इस ज्ञान से ईलों का रहस्य समझ सकने में विशेष सहायता मिली है।

ईल की आयु निर्धारित कर सकने के प्रमाणों से यह ज्ञात हो सका है कि मादा ईल, जिसका आकार नर ईल की अपेक्षा बड़ा होता है, साढ़े सात वर्ष के लगभग आयु की होने पर मीठे (अलवणीय) जलखंड से समुद्र की ओर जाने के लिए सन्नद्ध हो पड़ती है। अपेक्षाकृत छोटे आकार के नर उससे एक या दो वर्ष पूर्व ही समुद्र-यात्रा के लिए चल पड़ते हैं।

आयु की दृष्टि से ईलों के सात वर्ग बनाये जा सकते हैं जो नदी तालाबों आदि में रहते हैं। इनमें सात वर्ष की आयु हो जाने वाले वर्ग के ईल ही प्रतिवर्ष समुद्र गमन के लिए उद्यत होते हैं। शेष सभी वर्गों के ईल निर्द्वन्द्व उन जलखंडों में ही पड़े रहते हैं। प्रतिवर्ष यही क्रम चलता है। प्रत्येक ईल छः वर्षों तक जीवनयापन करते हुये अपने से अधिक वय के ईलों का प्रस्थान चुपचाप देख लेता है। उस अभियान से स्वयं प्रभावित नहीं होता। अगले वर्ष वह स्वयं पूर्वगामी ईलों का अनुकरण करता है। इस प्रकार कुल ईल संख्या के सातवें या आठवें भाग को ही प्रतिवर्ष समुद्राटन के लिए प्रवृत्त पाया जा सकता है।

जब ईल समुद्र-अभियान प्रारम्भ करते हैं तो निराहार रहने का व्रत प्रारम्भ कर देते हैं। उनको आहार की कोई आवश्यकता भी नहीं होती। सात वर्षों तक नदी तालाबों में ग्रहण किये आहार से उनके शरीर में यथेष्ट वसा (चर्बी) एकत्र हो चुकी रहती है। वह उसके मार्ग में शरीर रक्षा के लिए यथेष्ट होती है। रंगों में भी विलक्षण परिवर्तन होता है। उनका रङ्ग धूमिल हो जाता है। उदर का सुनहला पीला रङ्ग बदल कर रूपहला श्वेत हो जाता है। उसी समय नेत्र विशाल हो जाते हैं। यह सब समुद्र-यात्रा के उपयुक्त शरीर बना लेने की तैयारी ही होती है। अब उन्हें नदी-तालाबों के जल-वनस्पति, तथा कीच के कारण गँदले पेंदे की जगह अगाध जलराशि के समुद्र में प्रयाण करना होता है। समुद्र के स्वच्छ खुले जलखंड में उन्हें अनेक प्रबल शत्रुओं से बचते रहने के लिये अधिक दृष्टि-शक्ति की आवश्यकता होती है।

इतनी तैयारी कर चुकने पर जब ईल नदी की धारा किसी प्रकार पार कर मुहाने तक पहुँच जाने में सफल हो जाता है तो समुद्र के जल में अपना अभियान प्रारम्भ कर देता है। वह कहाँ जाता है, क्या गम्तव्य स्थल तथा यात्रा-उद्देश्य होता है, इसका वह कुछ आभास नहीं देता। केवल यही देखा जाता है कि वह पुनः नदी-तालाबों के जल में लौटकर वापस नहीं आता। उसकी यात्रा जीवन की अन्तिम यात्रा ही कही जा सकती है। यह अनन्त की ओर यात्रा होती है।

वयस्क ईलों के महा अभियान का लक्ष्य न भी

ज्ञात हो तो भी वैज्ञानिकों ने उसकी गतिविधि का रहस्योद्घाटन करने के लिए एक दूसरा प्रमाण संग्रहित किया है। ईलों के न्यूनतम आयु के शिशु जहाँ पाये जा सकते हैं, वही जलखंड वयस्क ईलों के पहुँचने का लक्ष्य हो सकता है। यह देखा गया है कि योरप के समुद्र-तट से बिदा होकर ईल दक्षिण पूर्व की ओर समुद्र-यात्रा कर सरगोसा समुद्र की ओर जाते हैं जो अमेरिका के फ्लोरिडा प्रदेश से पूर्व की ओर बहामा तथा बरमुडा द्वीपों के मध्य है।

इस तथ्य को ज्ञात करने में बड़ा प्रयत्न करना पड़ा है। इटली में मसीना जलप्रणाली सिसली द्वीप को इटली से पृथक् करती है। यहाँ पर गहरे समुद्रों के विचित्र जलजन्तु प्रायः ऊपरी तल पर दिखाई पड़ जाते हैं जो कभी छिछले जलखंडों में नहीं दिखाई पड़ सकते। अतएव समुद्री जीव-जन्तुओं के अध्ययन के लिए वह एक उपयुक्त क्षेत्र है। यहीं पर ग्रेसी तथा कैलेंडू कियो नाम के दो वैज्ञानिकों ने विलक्षण ईल के जीवन का कुछ अध्ययन प्रारम्भ किया। उनको एक क्षुद्रकाय रङ्गहीन जलजन्तु मिला जो दोनों बगल चपटा, पत्ती की तरह था तथा छोरों की ओर नोकीला था। सिर छोटा सा था। जबड़ों में तीव्र दाँत थे जिससे वह छोटे जल-जन्तुओं को खा सकता था। कुछ समय में वह कायापलट कर छोटा रूप धारण कर गोल बनता गया। दाँत भी गिर गए। फीतेनुमा मत्स्य के स्थान पर अब वह ईल का अल्पायु रूप बन गया।

इस तरह इल्लियाँ अन्यत्र भी पाई जाती रहीं किंतु कुछ बात समझ में नहीं आती। अन्त में अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक परिषद् ने इस ओर ध्यान देकर ईलों के सम्बन्ध में खोज करने का भार डेनमार्क पर डाला। वहाँ डा० श्मिट ने शोधकार्य प्रारम्भ किया। उनको जल-नौका द्वारा जहाँ तक यात्रा कर जाल डालना सम्भव हुआ, केवल एक ही आकार के शिशु ईल मिलते। ऐसा तो किसी प्रकार होना उसी समय सम्भव था जब उन क्षेत्रों में कहीं भी इसका जनन-स्थान न हो। अनेक स्थानों में सैकड़ों बार पतले छेदों के जाल डाल डालकर भी किसी निष्कर्ष पर न पहुँचने और ईल की उत्पत्ति का जलखंड ज्ञात न होने पर डा० श्मिट ने बड़ा जलयान लेकर दूर सागर की यात्रा कर शोध करना प्रारम्भ किया और पश्चिमी द्वीपसमूह तक जा पहुँचे। इस यात्रा में उन्हें प्रत्येक स्थान पर शिशु ईल प्राप्त होते अतएव उसकी उत्पत्ति का भेद खुलने ही वाला था कि प्रथम महायुद्ध छिड़ गया और इस शोध कार्य को स्थगित करना पड़ा।

डा० श्मिट के जलयान को विपत्ति का भी सामना करना पड़ा। वह तट पर तूफान द्वारा फेंक दिया गया। किसी प्रकार ईलों के शिशुओं का स्थान-स्थान पर से लिया हुआ भंडार जिन बोतलों में पृथक्-पृथक् था, वे बच सकीं। वापस आकर डा० श्मिट ने जब यात्रा के भिन्न-भिन्न स्थानों के समुद्र खंडों के इन नमूनों का अध्ययन किया तो उन्हें ज्ञात हुआ कि योरप से जितनी ही अधिक दूरी के समुद्र में प्राप्त शिशु ईल का नमूना है, वह क्रमागत रूप से उतना छोटा है। यह एक महत्वपूर्ण तथ्य था जिससे व्यक्त होने लगा कि पश्चिमी द्वीप समूहों के समुद्र में कहीं ईल के अंडे दिये जाते होंगे और उन अंडों से उत्पन्न इल्लियाँ या शिशु योरप की ओर प्रस्थान करते होंगे। इस कारण योरप के निकट होते जाने पर उनका आकार भी बड़ा होता जाता होगा। कितने ही घोर प्रयत्नों के पश्चात् यह सत्य उद्घाटित हो सका था।

प्रथम महायुद्ध समाप्त होते ही १९२० में एक बार जलयान पर डा० श्मिट ने सीधे पूर्वी द्वीप समूहों तक यात्रा की और बहामा द्वीप के उत्तर समुद्र में ईल के न्यूनतम आयु के शिशु भारी संख्या में जालों द्वारा प्राप्त किये। यहीं ईल की जन्मभूमि थी जो योरप से चार हजार मील दूर स्थित थी, किन्तु इतनी दूरी के जल खंड में उत्पन्न होकर असंख्य शिशु ईल योरप की नदियों के मुहाने में प्रति वर्ष वसन्त में पहुँचा करते हैं।

कठिनाइयों का समाधान होने के मार्ग में ही

एक विषम समस्या यह भी खड़ी हुई कि एक जल-भाग से लिये गये नमूने में पश्चिमी द्वीप समूहों में एक दूसरे प्रकार की इल्ली प्राप्त हो सकी जो ईल की साधारण इल्ली से भिन्न थी। आज उसका मर्म स्पष्ट ज्ञात हो सका है। ईल की दो जातियाँ होती हैं। एक तो योरोपीय तथा दूसरी अमेरिकीय। कुछ थोड़े से जलभाग में तो दोनों जातियों के ईल की मिश्रित इल्लियाँ पाई जा सकती हैं, उसके पश्चिम ऐसी सीमा है जहाँ से पश्चिम के उस समुद्र-भाग में केवल अमेरिकीय ईल की इल्लियाँ मिलती हैं तथा पूर्व के क्षेत्र में एक सीमा के पूर्व के उसी जल क्षेत्र में योरोपीय ईल की इल्लियाँ होती हैं। एक विशेष क्षेत्र में इन ईलों का जननक्षेत्र है। उस क्षेत्र में ही अमेरिकीय ईल की इल्लियाँ किसी अज्ञात प्रेरणा से पश्चिम की ओर केवल एक सहस्र मील का मार्ग पार कर अमेरिका के स्थलवर्ती जलखंडों, नदियों, झीलों आदि में पहुँचती हैं, परन्तु योरोपीय ईल की इल्लियाँ एक समान जलखण्ड में ही उत्पन्न होकर पूर्व की ओर तीन-चार हजार मील की समुद्र यात्रा कर योरप पहुँचने में प्रवृत्त होती हैं। शिशु रूप में इतनी विशाल समुद्र यात्रा के लिए प्रवृत्ति उत्पन्न करने का क्या कारण हो सकता है, यह विज्ञान के लिए एक गहन रहस्य की बात ज्ञात होती है। इस यात्रा में योरोपीय ईल की इल्लियों को तीन वर्ष लगता है। अमेरिकीय इल्ली को एक वर्ष लगता है।

सबसे न्यून आयु की इल्ली चौथाई इंच लम्बी प्राप्त हो सकी है। लम्बाई में आधे इंच की और वृद्धि होने तक वे अधिक गहरे तल में रहती है। आकार में वृद्धि हो जाने पर जलतल से १२ फैदम से २५ फैदम (१ फैदम = ६ फीट) की गहराई तक रहती हैं। इतनी ही गहराई के नीचे रहते हुए वे समुद्र यात्रा भी करती हैं। ईल की इल्लियों का मार्ग निर्देशक साधन समुद्र की ऊष्ण-जल धारा कही जा सकती है जिसे गल्फ स्ट्रीम कहते हैं। इसकी मन्द जलधारा के थपेड़ों से ही वे कदाचित् अपना मार्ग इंगित समझती हैं। प्रथम वर्ष की यात्रा में तो वे पश्चिमी अटलांटिक तक ही पहुँचती हैं। उनका आकार एक इञ्च रहता है। दूसरे वर्ष उनकी लम्बाई दूनी, लगभग दो इञ्च हो जाती है और वे मध्य अटलांटिक पहुँच चुकी रहती हैं। तीसरे वर्ष उनका आकार बढ़ कर तीन इञ्च लम्बा हो गया होता है, और वे यूरोप तक पहुँच गई होती हैं।

यूरोप पहुँचने पर ईल के रंग में परिवर्तन होता है। इल्ली रूप में वे पारदर्शी तथा रंगहीन रहते हैं। धीरे-धीरे त्वचा रंगीन होने लगती है। इसका कारण उसकी त्वचा में काले या गहरे भूरे रंग के तारे समान अत्यन्त सूक्ष्म विन्दुओं का उत्पन्न होना है। सिर के ऊपर ये विन्दु विशेष घने होते हैं। खुले समुद्र में तो गहराई में रहने के कारण इल्ली सूर्य के ताप से बची रहती है, परन्तु अब उसे गहरे समुद्र की रक्षा प्राप्त नहीं रहती। समुद्र में उसकी पारदर्शिता शत्रुओं से उसे अदृश्य भी रखे रहती है। नदी के अपेक्षाकृत छिछले जल में यह रंगीन त्वचा सूर्य की कुछ विशेष किरणों से कदाचित् बचाती है और जल-वनस्पतियों के मध्य वह रङ्गीन रूप से छिप भी सकती है। ईल के जन्म धारण करने तथा आहार क्षेत्र में अभियान की यह विचित्र कहानी है। पुनः समुद्र में जाने की कथा भी वैज्ञानिक शोधों से कदाचित् अधिक स्पष्ट रूप से किसी दिन वर्णित कर सकना सम्भव हो।

प्रशान्त महासागर (पैसिफिक) की सालमन मछली की कई जातियों में समुद्राटन या पर्यटन का अवलोकन कर विचित्र परिणाम निकाले गये हैं। १९२८ ई० में रिच तथा होम्स नामक वैज्ञानिकों ने यह व्यक्त किया कि वयस्क राजा सालमन मछली मुख्य कोलंबिया नदी में दो समयों में प्रवेश करती है। एक तो बसंत में, दूसरे वर्षा के अन्त में। बसंत ऋतु में नदी में प्रवेश करने वाली सालमन १०० मील तक कोलंबिया नदी में चढ़ने के पश्चात् दक्षिण मुड़ कर बिल्लामेट्टे नदी में प्रविष्ट कर जाती है। वर्षा के अन्त में नदी में प्रवेश करने वाली सालमन सीधे पूर्व दिशा में कोलंबिया नदी में चढ़ती जाती

है। समुद्र में पुनः वापस आने के पूर्व उन मछलियों को चिन्हित करने से निम्न निष्कर्ष प्राप्त हुए:—(१) जो मछलियाँ विल्लामेट्टे तथा कोलंबिया नदी में पली होती हैं, वे पुनः इन नदियों में ही प्रवेश करती हैं। बहुसंख्यक सालमन उन छोटी सहायक नदियों से ही पुनः प्राप्त की जाती हैं जहाँ की शिशु मछलियों में से कुछ पहले चिन्हित हुई थीं। (२) जो शिशु विल्लामेट्टे नदी की मछली के अंडों से उत्पन्न होते हैं किन्तु उनका जनन तथा पालन ऊपरी कोलंबिया नदी में हुआ रहता है, वे कोलंबिया नदी में ही ऐसी ऋतु में वापस आते हैं जो विल्लामेट्टे नदी में सालमन के प्रवेश करने का होता है।

सालमन की दूसरी जातियों के सम्बन्ध में भी वैज्ञानिकों ने प्रयोग किये। फोर्स्टर नाम के वैज्ञानिक ने फ्रेजर नदी की एक छोटी सहायक कुलटुस नदी में ओंचोरहिंचस नर्का नाम की जाति की सालमन मछली के नवजात शिशुओं को चिन्हित कर छोड़ दिया। बाद में जब वयस्क सालमन पुनः पकड़ी गई तो कुल ९६७ सालमन में से ८३ प्रतिशत कुलटुस नदी से ही प्राप्त हुई। शेष १३ प्रतिशत समुद्र में मछली पकड़ने के क्षेत्र से मिली। कोई भी चिन्हित सालमन किसी अन्य जनन क्षेत्र से नहीं प्राप्त हुई। इन प्रयोगों को दुहरा कर सालमन के जीवन-क्रम का ज्ञान प्राप्त किया गया है।

ऐसा ज्ञात होता है कि मीठे (अलवणीय) जल में रहने पर अल्पवय मछली में कोई निर्दिष्ट रूप की क्षेत्रीय भावना होती है जो जल खंड के रूप, तापमान, ओषजनप्रसार या रासायनिक रचना पर आधारित रहती हो। यह भी कल्पना होती है कि मछलियाँ इन वातावरणों तथा जल खंड के नमूनों से परिचित और अभ्यस्त-सी हो जाती हैं। अतएव एक निश्चित जनन-क्षेत्र के निकटवर्ती ऐसे स्थलों में आ पहुँचती हैं। किन्तु इन्हें मछलियों की वृत्तियों के सम्बन्ध में निश्चित तथ्य नहीं कहा जा सकता। अभी तक मूल जनन-क्षेत्रों में मछलियों के वापस आने के मार्ग की दिशा, दूरी आदि के सम्बन्ध में अधूरा ही ज्ञान प्राप्त हो सका है। प्रिचर्ड नामक वैज्ञानिक ने गुलाबी सालमन (ओंचोरहिंचस गोरबुस्चा) के संबंध में वैंकूवर के निकट खोज की है। वैंकूवर द्वीप के निकट मारिसन क्रीक से ४५ मील उत्तर के समुद्र से जो मछली चिन्हित कर छोड़ दी गई वह डेढ़ मास पश्चात् मारिसन क्रीक में पुनः प्राप्त हुई। दूसरी सालमन मारिसन क्रीक के ११५ मील दक्षिण लोपेज द्वीप के निकट पकड़ कर चिह्नित की गई वह मारिसन क्रीक में सवा महीने बाद पुनः प्राप्त हुई। इन प्रमाणों से यह विदित होता है कि गुलाबी सालमन की यह जाति अपने जनन क्षेत्र की नदी के मुहाने से यथेष्ट अधिक दूर तक समुद्र-यात्रा करती है तथा अन्य जनन-क्षेत्रों में प्रवेश करने का भी अवसर पाती है।

अटलांटिक की सालमन मछली के विषय में निरीक्षण कार्यों के परिणाम उल्लेखनीय हैं। हंट्समैन नाम के वैज्ञानिक ने यह निष्कर्ष निकाला है कि जो अधेड़ सालमन अपने जनन-क्षेत्र की नदी में वापस आते हैं, वे पुनः समुद्र में उस क्षेत्र से बहुत अधिक दूर नहीं जाते जहाँ तक उसकी जनन क्षेत्रीय नदी के जल का भौतिक या रासायनिक प्रभाव हो सकता हो। अतएव स्थलखंडीय जल में प्रवेश करने की यात्रा प्रारम्भ करने पर वह स्वभावतः अपने जनन-क्षेत्र तक पहुँचती है, किन्तु जो मछलियाँ बहुत दूर तक समुद्र टन करती हैं उनके पुनः जनन क्षेत्र में वापस आने के प्रमाण सुलभ नहीं हैं। सालमन में अपने जनन स्थान को स्मरण रखने की वृत्ति मानने में कुछ बाधाएँ भी ज्ञात होती हैं। यदि एक ही जनन-क्षेत्र ऐसा हो जहाँ उसकी भौतिक आवश्यकताएँ पूर्ण हो सकती हैं तब तो जन्म स्थान स्मरण रखने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। अनेक जनन क्षेत्रों में घूम-फिर कर वह अपनी आवश्यकता के अनुकूल एकमात्र जनन स्थल तक अंततः पहुँच ही सकती है। इन कारणों से रिच तथा होम्स नाम के वैज्ञानिकों के निष्कर्षों को असत्य बता कर व्हाइट तथा हंट्समैन का कथन है कि अटलांटिक के साल-

मन में वसंत तथा वर्षांत ऋतु के समयों में विभिन्न जलखंड की यात्रा का कारण मछलियों के अंग की विशेष रचना नहीं हो सकती, बल्कि धाराओं का विशेष रूप ही हो सकता है।

उभयचर सरीसृपों तथा उभयचरों में भी देशाटन वृत्ति देखी जाती है। किन्तु मछलियों तथा पक्षियों समान अधिक नहीं पाई जाती। इनका यात्रा-चक्र भी जनन क्षेत्र से आहार क्षेत्र तथा इसके विपरीत होता है। पक्षियों के नियमित प्रवास या देशाटन के सम्बन्ध में हम यहाँ नहीं लिखना चाहते। उसके सम्बन्ध में पक्षियों की पुस्तकों में पढ़ने योग्य सामग्री है, किन्तु कुछ स्थलजीवी या जलजीवी स्तनपायी जंतुओं का विशेष उल्लेख करने की अवश्य आवश्यकता है। उनकी कुछ प्रवास यात्रा या महायात्रा का वर्णन तो अत्यन्त आश्चर्यजनक है। साधारण रूप में शीत या उष्णता की विषम ऋतु होने पर थोड़ा-बहुत स्थानांतर तो संसार भर में एक साधारण घटना है। पहाड़ी देशों या ध्रुवीय क्षेत्रों में हिम का प्रसार होने पर अपेक्षाकृत उपयुक्त वातावरण में जन्तु प्रवास कर अपनी उदर पूर्ति तथा जीवन रक्षा करते हैं। परन्तु इस अभिप्राय के अतिरिक्त भी यात्राओं के अद्भुत उदाहरण पाये जाते हैं।

रोमीय सील जलजीवी स्तनपायी है। इनकी यात्रा का विवरण विचित्र है। मादा तथा अल्पायु नर शीतकाल में दक्षिणी कैलिफोर्निया तक जाकर निवास करते हैं, परन्तु वयस्क सील का निवास अलास्का की खाड़ी या अल्यूशियन द्वीप समूहों के निकट होता है। सन्तानोत्पादन काल में वयस्क नर सील उत्तर की प्रिबिलीफ द्वीप समूह तक प्रवास करने चले जाते हैं जो अल्यूशियन के उत्तर छोटे चट्टानी द्वीप हैं तथा निकटतम भूखंड से दो सौ मील दूर हैं। ऐसे पृथक् रूप के भूखंड के असम्बद्ध छोटे स्थल के जनन क्षेत्र में मादा सील भी तीन हजार मील की यात्रा कर पहुँच जाती है। ये मादाएँ पहले से ही गर्भवती रहती हैं और इस जनन क्षेत्र में पहुँचने के कतिपय दिनों के अन्दर ही शिशुओं का जनन करती हैं। शिशुओं को दूध पिलाना बन्द करने के पश्चात् ही वे पुनः गर्भ धारण करती हैं और दक्षिण की यात्रा प्रारम्भ करती हैं। इनके प्रवास चक्र का रहस्य नहीं खुल सका है। पता नहीं उसका क्या कारण है और किस प्रकार वह सम्पन्न होता है।

ह्वेल भी लम्बे स्थानों तक प्रवास करने पहुँचते हैं। उत्तरी अमेरिका में ह्वेल की कई जातियाँ ग्रीष्म काल ध्रुवीय समुद्रों में बिताती हैं। उनका शीतकाल दक्षिण में निम्न कैलिफोर्निया के निकटवर्ती समुद्र में व्यतीत होता है। किन्तु इस विशालकाय जलजीवी स्तनपायी जंतु की गतिविधि का निरीक्षण कर सकना बड़ा कठिन कार्य है। चमगीदड़ों के भी प्रवास करने की बात सुनी जाती है। परन्तु उसका यथेष्ट स्पष्ट रूप नहीं ज्ञात हो सका है। उनके शीत ऋतु में निवास-क्षेत्र का विशेष ज्ञान प्राप्त नहीं होता। किन्तु अमेरिका के प्रवासी चमगीदड़ों को दूर के समुद्रों में जहाजों पर तथा बरमुडा द्वीप में पाया जा सका है।

ऋतु-वैषम्य या जनन तथा आहार क्षेत्रों के लिए प्रवास की बात छोड़ कर कुछ स्तनपायी जन्तुओं में किसी-किसी समय आकस्मिक रूप से प्रवास की भीषण वृत्ति फूट पड़ती पाई जाती है। ऐसे प्रवास अपेक्षाकृत अनियमित अवधियों के पश्चात् होते पाये जाते हैं। लेमिंग नाम के एक कुतर कर खाने वाले स्तनपायी जन्तु की ऐसी प्रवास-कथा उल्लेखनीय है।

लेमिंग एक कुतर कर खाने वाला छोटा स्तनपायी जन्तु है। यह उपनिवेश रूप में पूर्वी स्कैंडिनेविया के ध्रुवीय स्टेपी भूभागों के ऊजड़ खण्ड में रहता है। साधारणतया यह वर्ष में दो बार संतान-उत्पादन करता है। एक बार चार या पाँच शिशुओं को जन्म देता है। कुछ अनियमित अवधि, दो-तीन या चार वर्षों पश्चात्, इनकी संख्या अत्यधिक हो जाती है। अधिक संख्या में शिशु-उत्पादन शक्ति की वृद्धि कदाचित् इसका कारण हो। जब ऐसी स्थिति आ पहुँचती है, तो लगभग सम्पूर्ण लेमिंगों का उप-

निवेश नीचे उतर कर पश्चिमी घाटियों में पहुँचने लगता है। ये घाटियाँ पर्वतीय पठार से नीचे की ओर फैली हैं। यह प्रवास-क्रम उस समय तक संचालित रहता है जब तक सभी लेमिंग समुद्र में प्रविष्ट नहीं हो जाते। अंत में वे समुद्र के जल में डूब मरते हैं।

लेमिंगों की सामूहिक रूप से जल समाधि प्रकृति की एक अघटनीय घटना है। सुना जाता है कि पौराणिक युगों के समय युधिष्ठिर के नेतृत्व में पांडवों ने हिमालय के हिम-शृङ्गों की यात्रा की थी और वहाँ से ही उन्होंने यह संसार परित्यक्त किया था। कह नहीं सकते, इस कथानक में कितना सत्य है। किन्तु आज लेमिंग हमारे नेत्रों के ही सम्मुख बलात् समुद्र गर्भ में सामूहिक रूप में पहुँच कर जीवन उत्सर्ग रह-रह कर करते रहते हैं। आज के किसी पौराणिक कथाकार को ऐसी कथावस्तु दुर्भाग्यवश सुलभ नहीं होती, अन्यथा इन्हें भी कदाचित् कुछ आस्थाजन्य मान्यता मिलती।

कोलेट नाम के वैज्ञानिक ने लेमिंग की जीवन-कथा के सम्बन्ध में कई तथ्यों को निर्धारित किया है। उनके विचार से (१) लेमिंगों की अत्यधिक संख्या वृद्धि पर ही ऐसी प्रवास क्रिया अवलम्बित होती है। (२) इस कृत्य में उनके आहार की न्यूनता या अन्य कोई शरीरगत व्याघात प्रत्यक्ष कारण नहीं होता। कुछ सीमित संख्या के लेमिंग पीछे छूटे रह जाते हैं। वे ही पुनः वंशवृद्धि कर सकने में समर्थ हो सकते हैं। (३) इस प्रवास के कारण लेमिंगों की जातियों के स्थायी प्रवास क्षेत्र में वृद्धि नहीं होती। (४) अधिकांश प्रवासी लेमिंग मृत्यु को ही प्राप्त होते हैं। (५) प्रवास के कारण लेमिंगों में शारीरिक कृत्य में अन्तर होता है। वे पहले जहाँ दब्बू, डरपोक जंतु बने रहते हैं, प्रवास के समय अपेक्षा साहसी हो जाते हैं। कुछ कलहप्रिय भी हो जाते हैं।

हीये तथा अन्य वैज्ञानिकों ने स्प्रिंग बाक नामक दक्षिण अफ्रीका के हिरण तथा अन्य शिकार के जन्तुओं के सम्बन्ध में ऐसी घटना का उल्लेख किया था। बहुसंख्यक जन्तु भारी पंक्तियाँ बना कर लगातार कई दिनों तक पश्चिम दिशा में चलते रहते हैं। मार्ग में ही अनगिनत मर जाते हैं, किन्तु अन्त में शेष जन्तु समुद्र तट तक पहुँच जाते हैं। वहाँ जाकर वे भी मृत हो जाते हैं। ऐसे प्रत्येक महा अभियान से पुनः लौटना नहीं होता। यह भी एक विलक्षण घटना है जो दस वर्षों से लेकर बीस वर्षों तक की अवधि के पश्चात् पुनः घटित होती है।

—जगपति चतुर्वेदी

महाद्वीपीय ऊढ़–एक विवेचना

पुष्कर सिंह बी० एस-सी० (आनर्स) एम० एस-सी०

महाद्वीपों को अलग-अलग समुद्रों के द्वारा विभाजित देखकर एक इतर मनुष्य को उनके एक महा-महाद्वीप के रूप में होना बुद्धि के परे प्रतीत होता है लेकिन विवेचनात्मक दृष्टि से अवलोकन करने पर इसे हम अप्रतीत नहीं मान सकते हैं। महाद्वीपीय-ऊढ़ का उल्लेख हमें ग्रंथों में भी मिलता है, अतीत, अनागत और वर्तमान तक पृथ्वी परिवर्तनशील रही है और रहेगी। वैदिक ग्रन्थों में एक स्थान पर पृथ्वी के विभाग वर्णन का विवरण इस प्रकार मिलता है, "हम लोग जहाँ बैठे हैं यह द्वीप भूमंडल रूप कमल की पंखड़ियों में के घेरे का कोश है, जिसमें पंखड़ियाँ जुटती हैं। इसकी लम्बाई चौड़ाई (क्षेत्रफल) चार लाख कोस (एकलाख योजन) और वह कमल के फूल के समान गोल (समवर्तुल) है।.........एक समय राजा प्रियव्रत ने अपने रथ के पहिये के सहारे पृथ्वी पर सात गड्ढे किये, जो समुद्र हुए। इसी कारण पृथ्वी के जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक और पुष्कर ये सातों द्वीप हुए।" डाक्टर रघुवीर ने अपने हिन्दी कोष में एशिया महाद्वीप को जम्बू द्वीप कहा है। प्राग्लिखित अवतरण से ज्ञात होता है कि वैदिककाल में महाद्वीपीय-ऊढ़ आंशिक रूप में लोगों को विदित था।

आलोचनात्मक दृष्टि से महाद्वीपों के विभाजन को दो वादों में व्यक्त कर सकते हैं :—(१) थल सेतु वाद और (२) महाद्वीपीय-ऊढ़ सिद्धांत

थल सेतु वाद के मानने वाले विद्वानों का कथन है कि महाद्वीप अचल हैं और एक महाद्वीप दूसरे महाद्वीप से थल सेतुओं के द्वारा जुड़ा हुआ था। इन्हीं सेतुओं के द्वारा थलचर, वृक्षवृन्द तथा अन्य प्राणियों का आवागमन होता था। भौगोलिक काल पर्यन्त मध्यस्थ भूमि के धस जाने से महासागरों की उत्पत्ति हुई है। थल सेतुओं का इस तरह समुद्र तल में धस जाना, समतुल्यक सिद्धांत के प्रचेताओं को अविश्वसनीय प्रतीत होता है। महाद्वीप और थल सेतु सैस्फ से निर्मित है तथा समुद्र तल सैम्रा से निर्मित है। सैस्फ की विशिष्ट भ्वाकृष्टि २·७ है और सैम्रा की विशिष्ट भ्वाकृष्टि ३ है। इन दोनों की विशिष्ट भ्वाकृष्टि को ध्यान में रखते हुए यह कहना कि सैस्फ, सैम्रा में धस गया याने थलपुञ्ज, समुद्र तल में धस गया, तथ्यहीन है। इसका तात्पर्य यह निकाल सकते हैं कि बर्फ पानी में डूब जाता है। यह वाद समतुल्यक सिद्धांत की अवहेलना करता है। कुछ विद्वानों का कथन है कि ये थलसेतु विभंग के फलस्वरूप समुद्र तल में धस गये। थल सेतु वाद के मताधिकारियों ने इतने बड़े परिमाण में विभंग होने का कोई सामूहिक प्रमाण नहीं दिया है। इसके सिवाय यह विचार भी समतुल्य सिद्धांत से असंभव प्रतीत होता है।

थल सेतु वाद के मताधिकारियों में जेफरी का विशेष स्थान है। उनका कथन है कि पृथ्वी की पपड़ी में अनेक तत्वों का समाहार है तथा ये भिन्न-भिन्न अवस्था में भिन्न भिन्न रूप में परिवर्तनशील हैं याने एक काँचीय शिला स्फटकीयशिला में परिवर्तन शील है और एक स्फटकीय शिला का काँच-रशिला में रूपान्तर हो सकता है। वे कहते हैं कि यदि २० शतमान मोटी टेकीलाइट स्तर स्फटकीय इक्लोगाइट में परिवर्तित होता है तो स्तर में ३.६ शतमान गड्ढा होता है जो एक भौतिक नियम में कटिबद्ध

है। यह नियम किसी प्रकार से समतुल्यक सिद्धांत की अवहेलना नहीं करता है और जो थल सेतुओं के लोप का भी कारण है। इसके प्रमाण में वे अटलांटिक समुद्र को पेश करते हैं। अटलांटिक समुद्र का तल सैरफ से निर्मित है जो गोंडवाना महाद्वीपों को थल सेतुओं से जोड़ता था।

महाद्वीपीय-ऊढ़ सिद्धांत के ऐतिहासिक महत्व के लिये हमें पिछले चार शताब्दियों के इतिहास के पृष्ठ उलटने पड़ेंगे। इनमें मुख्यतः फ्रांसिस बेकन, बफन, फिशर, वारिंग, और पिकरिंग के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। दक्षिण अमेरिका और अफ्रिका के समुद्री तटों को देखकर, फ्रांसिस बेकन ने १६वीं शताब्दी में कहा था, "यह सम्भव है कि ये दोनों महाद्वीप किसी समय में एक रहे होंगे।" इसके बाद १८५८ में महाद्वीपीय-ऊढ़ सिद्धांत को मौलिक रूप से स्नीडर ने अपनी पुस्तक में स्थान दिया। सन् १६१० में एक अमेरिका निवासी वैज्ञानिक एफ० बी० टेलर ने इसे सुचारु रूप से प्रस्तुत किया। उनके अनुसार "जब समतुल्यक सिद्धांत के अनुसार सैरफ का एक टुकड़ा लम्ब रूप में सरक सकता है (भूकम्प के कारण) तो फिर उसकी क्षैतिज गति क्यों असम्भव है।" और सैरफ की इसी क्षैतिज गति को टेलर ने "ऊढ़" नाम से विभूषित किया। उनके अनुसार महाद्वीपों का ऊढ़ प्रायः तृतीयक काल में ध्रुवों से भूमध्यरेखा की ओर हुआ है। इसके पश्चात १९१२ में एक जर्मन निवासी भूभौतिक वेत्ता अलफ्रेड वेगेनर ने स्वतन्त्र रूप से इसका प्रसार किया। वेगेनर ने महाद्वीपीय-ऊढ़ सिद्धान्त का वाद के रूप में प्रतिवादन करने के लिये प्रायः सभी प्रमाणों और साहित्यों का उपयोग किया। परन्तु इसी समय महायुद्ध छिड़ जाने के कारण यह विचार स्थगित कर दिया गया था। युद्ध के बाद सन् १६२२ में वेगेनर ने अपनी पुस्तक "डाई इन्स्टेहुङ्ग डेयर कांटिनेन्ट अंड ओजियेन" का जर्मन भाषा में संशोधित संस्करण निकाला तथा १६२४ में इसी का अनुवाद अंग्रेजी में हुआ। इसके बाद महाद्वीपीय ऊढ़ सिद्धान्त वाद-विवाद का एक मुख्य विषय हो गया। वेगेनर के अनुसार महाद्वीपीय-ऊढ़ की गति दो दिशाओं में देखी गयी—पश्चिमवर्तीय और भूमध्यरेखावर्तीय। पश्चिमवर्तीय प्रवाह के अंतर्गत उत्तर और दक्षिणी अमेरिका का तथा मध्य-रेखावर्तीय ऊढ़ के कारण अफ्रिका आदि महाद्वीपों का अस्तित्व हुआ। इनके साथ ही ध्रुवों की स्थिति में भी परिवर्तन हुआ परन्तु पृथ्वी की चक्रीय धुरी पर इसका कोई असर नहीं हुआ। यहाँ हम वेगेनर के महाद्वीपीय-ऊढ़ सिद्धांत की मुख्य बातों को निम्नलिखित तरीके से उद्धृत करते हैं :—

(१) पृथ्वी एक संकुचन पिण्ड नहीं है।

(२) पृथ्वी की सतह पर पानी की मात्रा सदैव समान रही है।

(३) पृथ्वी के शैशवकाल में उसके ऊपर एक पतली कणाश्मीक पपड़ी थी जो प्रवालादि युग के पहले दबाव और भंजन के कारण एक महाद्वीप पैंगिया के रूप में बना। पैंगिया के दो भाग थे—उत्तरी भाग को लारेशिया और दक्षिणी भाग को गोन्डवानालैण्ड कहते हैं। गोन्डवाना स्थल खंड के अन्तर्गत दक्षिणी अमेरिका, अफ्रिका, भारत, आस्ट्रेलिया और अंटार्कटिक आते हैं तथा लारेशिया के अन्तर्गत उत्तरी अमेरिका, योरप और एशिया आते हैं और इन दोनों स्थल-खंडों के चारों ओर एक महासागर था जिसे भूगर्भवेत्ताओं ने "पैंथेलेशिया" की संज्ञा दी है। (चित्र १)

(४) भौमिक काल पर्यन्त पैंगिया में क्षैतिज गति आरम्भ हुई जो अभी भी विद्यमान है। यह क्षैतिज गति प्रायः पुराकल्प में ही शुरू हो गई थी परन्तु मध्य महासरट युग के पहले तक आस्ट्रेलिया और अन्टार्कटिका में विदारण न हुआ और ये दक्षिण-पूर्व की ओर प्रवाहित हुए। खटी युग में दोनों अमेरिका पश्चिम की तरफ अग्रसर हुए और अन्त में प्राति नूतन युग में ग्रीनलैण्ड और न्यूफाउन्डलैण्ड नार्वे और ग्रेट-ब्रिटेन से अलग हुए। (चित्र २ और ३)
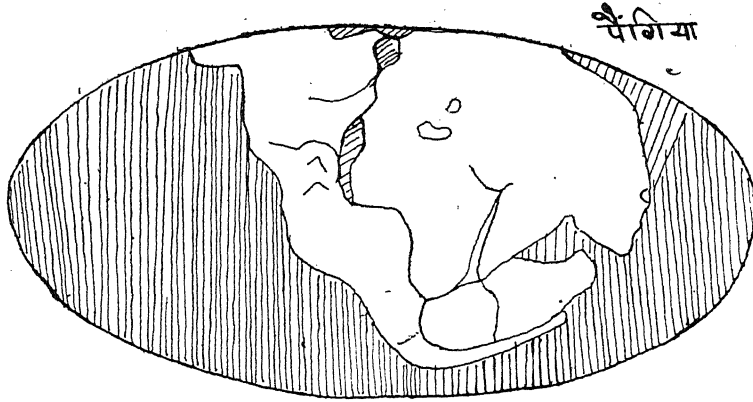
चित्र १—उच्च कार्बन जनक काल में महाद्वीपों की स्थिति
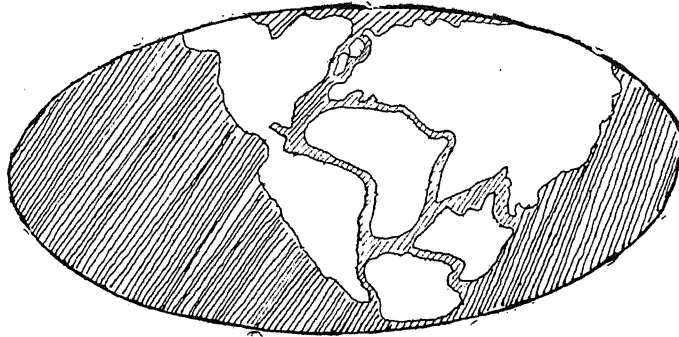
चित्र २—प्रादि नूतन युग में महाद्वीपों की स्थिति
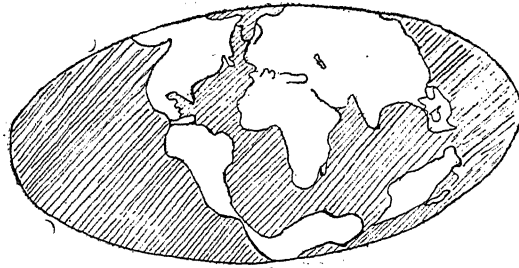
चित्र ३—चतुर्थ काल में महाद्वीपों की स्थिति

(५) जब हम ग्लोब पर काम करते समय इन महाद्वीपों को एक दूसरे से जोड़ते हैं तो ये एक दूसरे से (Jig saw) पहेली के समान जुड़ जाते हैं।

(६) विगत काल में दोनों ध्रुव स्थानान्तरित होते गये और गिरि-युग में ये ध्रुव अपनी वर्तमान स्थिति से २५०० मील दूर हो गये थे।

(७) पृथ्वी के पर्वत तथा उत्तुङ्ग शैल पृथ्वी के संकुचन के कारण निर्मित नहीं हुए हैं बल्कि महाद्वीपीय-ऊढ़ के कारण हुए हैं। एक श्रेणी अग्रसर चालित कणाश्मीक महाद्वीप के छोर से उठी जो बसाल्टीक पपड़ी से टकरा गई जिसके कारण उत्तर अमेरिका के कारडिलेरा और दक्षिणी अमेरिका के

एन्डीज पर्वत का विन्यास हुआ। परन्तु भूमध्यरेखा वर्तीय ऊढ़ के फलस्वरूप योरुप और एशिया के पर्वतों की उत्पत्ति हुई याने यूरुपीय-एशियाटिक पिंड और अफ्रिका के एक दूसरे तरफ प्रवाह के कारण पर्वतों का निर्माण हुआ।

(८) वेगेनर ने समतुल्यक सिद्धान्त का पूर्णरूप से समर्थन किया है और इसी के फलस्वरूप छोटे या बड़े थल सेतुओं का बसाल्टीक स्तर में लोप होना अविश्वसनीय है। उसने सब महाद्वीपों को एक महा-महाद्वीप पैंगिया के रूप में अनुमान कर थल-सेतुओं से छुटकारा पा लिया।

(९) तदनुसार, वेगेनर ने महाद्वीपों और महा-समुद्रों की स्थिति के अस्थायी होने का समर्थन किया है।

महाद्वीपीय ऊढ़ के कारण :—इस शीर्षक के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न विद्वानों के विचारों को संग्रहीत किया गया है।

(अ) डो व्यूमा ने १८२६ में महाद्वीपीय-रूढ़ का कारण संकुचन को कहा है। संकुचन से आप पर्वतों और भञ्जन के जनन को समझा सकते हैं लेकिन महाद्वीपीय ऊढ़ का कारण होना स्तुत्य नहीं है।

(आ) जी० एच० डारविन महाद्वीपीय ऊढ़ का कारण चन्द्रमा की उत्पत्ति के बाद पृथ्वी में पड़े दरार को बतलाते हैं। (चित्र ४)
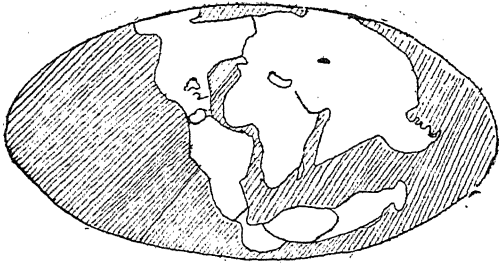
चित्र ४—चन्द्रमा की उत्पत्ति के पश्चात महाद्वीपों की स्थिति

(इ) रेजीनाल्ड आर्चिबाल्ड डैली, अपनी पुस्तक "अवर मोबाइल अर्थ" (१९२३) में गुरूत्वाकर्षण शक्ति को महाद्वीपीय-ऊढ़ का कारण कहते हैं।

(ई) स्वेस गुरूत्वाकर्षण शक्ति को नहीं बल्कि महाद्वीपों के सुनम्य रेंगने को महाद्वीपीय-ऊढ़ के लिये महत्व देते हैं।

(उ) एफ० बी० टेलर (१९१०) के अनुसार महाद्वीपीय-ऊढ़ का मुख्य कारण बेला-बल था। उनका कथन है कि खटी-युग से पृथ्वी और चन्द्रमा में आकर्षण शुरू हुआ। तृतीयक काल के पहले के पर्वत चन्द्र आकर्षण के कारण नहीं बल्कि सूर्य-आकर्षण के कारण निर्मित हैं। टेलर का अनुमान है कि विगतकाल में सूर्य पृथ्वी के बहुत नजदीक था जिसके कारण सूर्य-आकर्षण अधिक था।

जहाँ तक टेलर भूमध्य रेखीय-रूढ़ का समर्थन करते हैं वहाँ तक सत्य भाषित होता है क्योंकि तृतीयक काल और कार्बन-जनक-गिरि युग के पर्वत इसी काल में निर्मित होने का श्रेय पाते हैं। परन्तु मुख्य आपत्ति उस समय होती है जब (१) वे चन्द्र आकर्षण को खटी युग में होने का प्रश्रय देते हैं तथा (२) पुराकल्प के बाद सूर्य का इतनी दूर पर होना गिरि-कार्बन-जनक युग के हिमावरण का अपवाद करता है।

(ऊ) वेगेनर (१९१४) ने महाद्वीपीय-ऊढ़ का कारण बेला-बल तथा केन्द्रापग बल को कहा है। सैस्फ और सैभ्रा के विशिष्ट भ्वाकृष्टि में अन्तर होने के कारण दोनों में केन्द्रापसारी बल उत्पन्न होता है जो भूमध्यरेखा-वर्तीय ऊढ़ का कारण है। यह ४५° अक्षांश में अधिक बलवर्धक होता है। पश्चिमवर्तीय प्रवाह पृथ्वी में बेलाबल के फलस्वरूप होता है। ज्योतिष-वेत्ताओं के अनुसार, इतना बल जो महा-द्वीपों का विदारण कर सके, असम्भव प्रतीत होता है।

(क) स्वेडर ने पश्चिमवर्तीय और भूध्यरेखा-वर्तीय महाद्वीपी ऊढ़ के लिये पृथ्वी की धुरी की पूर्वायण गति को आश्रित माना है। यह गति ०° पर अधिक तथा ३६° अक्षांश रेखाओं पर शक्ति-हीन रहती है।

(ख) महाद्वीपीय-ऊढ़ को हम तेजोद्गिरण या रेडियम धर्मिता के अनुसार हल कर सकते हैं। इस सिद्धांत के मानने वालों में तीन विभिन्न मत हैं।—(१) प्रोफेसर जॉली का तेजोद्गिरण प्रभाव (२) प्रोफेसर आर्थर होम्स का संवाहन प्रवाह तथा (३) डाक्टर फरमर का तेजोद्गिरण प्रभावित उतार-चढ़ाव।

(१) प्रो० जाली का तेजोद्गिरण प्रभाव :—बेगेनर के समर्थकों में जॉली का भी विशेष नाम है। उनकी तेजोद्गिरण विधि के अनुसार पृथ्वी पर भौमिक प्रकोप अनिवार्य है। पृथ्वी के स्थल पुंज सैस्फ से तथा सामुद्रिक भाग सैभ्रा से पुंजित है। सैस्फ की भ्वाकृष्टि २.६ है तथा सैभ्रा की भ्वाकृष्टि ३ है। सैस्फ स्तर अधिकांशतः कणाश्मीक या ग्रेनीटीक तत्वों से बना है जिसमें प्रति ग्राम कणाश्म से ३०.०×१०^{-१४} केलॉरी ताप प्रति सेकंड वियोजित होता है। सैस्फ में तेजोद्गिरण तत्व अधिक होने के कारण सैभ्रा से अधिक ताप वियोजित करता है। इस ताप की अधिकता के कारण सैस्फ का ताप ताप-प्रावण्य के कारण सैभ्रा में चला जाता है। सैभ्रा का द्रवांक १०५०° शतांक है और सैभ्रा को द्रवांक तक पहुँचने में ३०,०००,००० वर्ष से ६०,०००,००० वर्ष लग जाते हैं। सैभ्रा के द्रवीकरण के पश्चात् सैस्फ से निर्मित महाद्वीप पुंज उसमें तैरने लगते हैं। पृथ्वी की इस अवस्था में बेला-बल का प्रभाव अधिक होता है और इस बेला-बल के प्रभाव से महाद्वीप पश्चिम की ओर प्रवाहित होते हैं। इसी समय सैभ्रा निर्मित समुद्र तल के ताप का वियोजन होता है। जॉली ने कितने विद्वता पूर्ण लेख से वेगेनर का समर्थन किया है इसका विचार पाठकगण स्वयं ही कर सकते हैं।

(२) प्रो० होम्स का संवाहन प्रवाह :—प्रो० होम्स का कथन है कि जब सैस्फ का ताप सैभ्रा में चला जाता है उस समय ताप विभिन्नता के कारण दोनोंके बीच संवाहन प्रवाह शुरू हो जाता है। इसी संवाहन के कारण हम महाद्वीपों में स्थानान्तर पाते हैं।

(३) डाक्टर फरमर का तेजोद्गिरण प्रभावित उतार-चढ़ाव :—फरमर के अनुसार पृथ्वी के श्यामाश्म स्तर के नीचे इकलोगाइट स्तर है। उन्होंने यह भी कहा है कि बसाल्ट और श्यामाश्म इकलोगाइट में परिवर्तनशील है तथा इकलोगाइट, श्यामाश्म और बसाल्ट में बदल सकते हैं। यह प्रतिक्रिया पृथ्वी में २६ से ३६ मील के नीचे होती है।

श्यामाश्म
या　　= इकलोगाइट
बसाल्ट

यह इकलोगाइट प्रतिक्रिया ताप-अपहरण और आयतन-घटन क्रिया के साथ होती है। इसके विपरीत श्यामाश्म-इकलोगाइट के प्रतिक्रिया के सुनम्य पाठ से महाद्वीपीय-ऊढ़ को उत्तेजना मिलती है।

वेगेनर की विचार धारा का अनुकूल और प्रतिकूल प्रमाण—महाद्वीपीय ऊढ़ अभी भी गतिमान है जिसका हम बेहरिंग के डमरूमध्य में पर्यवेक्षण कर सकते हैं। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि हिमालय पर्वत अभी ऊँचा उठ रहा है इसे हम भूज्यामिती के सहारे निश्चित कर सकते हैं। इस शीर्षक में हम वेगेनर के विचारों को आलोचनात्मक दृष्टि से अवलोकन करते हैं।

(१) अटलाँटिक महासागर और प्रशाँत महासागर के तलों में विभिन्नता :—प्रशांत महासागर एक आदिकालीन महासागर है जिसका तल मुख्यतः सैभ्रा से निर्मित है परन्तु अटलांटिक महासागर का तल सैस्फ से निर्मित है। यह महासमुद्र आदिकालीन नहीं बल्कि महाद्वीपीय-ऊढ़ के कारण बना है। इसी तथ्य को लेकर वेगेनर ने स्थल पुंज को सैस्फ से निर्मित तथा समुद्रतल को सैभ्रा से निर्मित माना है।

सैस्फ की पपड़ी तेजोद्गिरण ताप के प्रभाव से पतली हो गई और उसमें दरार आ गये। सैस्फ और सैश्रा के विस्तार को समझाने के लिये वेगेनर ने ट्रैबर्ट की बिन्दुरेखा की सहायता ली। ट्रैबट ने पृथ्वी सतह को प्रतिशत के आधार पर कोटि मानकर तथा ऊँचाई व गहराई को बारंबरता के रूप में भुज मानकर एक बिन्दु रेखा खींची है। ट्रैबर्ट को इस बिन्दुरेखा में दो शिखर आते हैं—पहला शिखर—१०० मान पर तथा दूसरा शिखर—४७०० मान पर। वेगेनर इन दोनों शिखरों को सैस्फ और सैश्रा का शिखर मानता है। उनका कथन है कि एक ही सतह इतना अविच्छिन्न नहीं हो सकता है जितको कि ट्रैबर्ट की बिन्दुरेखा में दर्शाया गया है। एक ही सतह दर्शाने के लिये वेगेनर ने उसी बिन्दुरेखा में गास के नियम से निर्धारित एक दूसरी बिन्दु रेखा खींची है जिसमें एक ही शिखर आता है। यह शिखर—२४५० मान पर आता है। इस बिन्दु रेखा के सूक्ष्म अध्ययन से ज्ञात होता है कि पहली बिन्दु रेखा से दूसरी बिन्दू रेखा दुगुनी है। जे० बी० डगलस और ए० ए० डगलस ने ट्रैबर्ट की इस बिन्दु रेखा पर टीका टिप्पणी की तथा प्रो० लेक ने वेगेनर को बिन्दुरेखा को तर्कहीन सिद्ध कर दिया है। (चित्र ५)
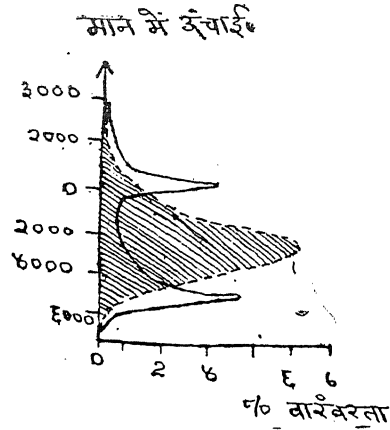
चित्र ५—ट्रैबर्ट का बिन्दुरेखा चित्र

(२) *तेजोद्गिरण प्रमाण*:—तेजोद्गिरण प्रमाण को वेगेनर ने प्रस्तुत नहीं किया है लेकिन उनके समर्थक डाक्टर इ० एफ० ज्वायनर ने अपनी पुस्तक "भूत की गवेषणा" में इसे स्थान दिया है। वेगेनर के विचारों और आकृतों को सत्य मानकर डा० ज्वायनर ने कौन-कौन से द्वीप तथा महाद्वीप किस किस युग में अलग हुए यह नीचे इस सारिणी में दिया है:—

	ऊढ़ की वार्षिक गति	दूरी सहस्त्रमान	अलग होने का काल	साल
१ केप फेयरवेल-स्काटलैन्ड	३६ से १८ मान	१७८०	प्राति-नूतन युग	५०,०००–१००,०००
२ न्यूफाउन्ड लैन्ड-आयरलैन्ड	०·२–०·१५ मान	२४१०	अति नूतन युग	१२०-१६० लाख
३ ब्यूनस आयर्स-केपटाउन	०·०७ मान	६२२०	खटी युग	६०० लाख
४ दक्षिण भारत-दक्षिण आफ्रिका	०·०८ मान	५५५०	निम्न तृतीयक युग	७०० लाख
५ तसमानिया-विक्टीसलैन्ड	०·०७ मान	२८८०	निम्न-आदि-नूतन युग	४५० लाख

(३) *प्राच्य जलवायु प्रमाण*:—वेगेनर ने प्राच्य जलवायु के आधार पर महाद्वीपीय ऊढ़ को सिद्ध करने की कोशिश की है। बृहत प्रमाण में दो प्रकार के क्षैतिजगति की अवोच्यपक्रम की गई है—पहला ध्रुवों के स्थानान्तर से तथा दूसरा पृथ्वी की पपड़ी के प्रवाह से। प्रायः दोनों प्रकार की गति मानी गई है परन्तु कौन सी गति अधिक है और कौन कम, यह अनिश्चित है।

ध्रुवों के स्थानान्तर से भूमध्यरेखा की स्थिति में भी अंतर पड़ता है। इस स्थानान्तर के कारण जलवायु में भी फर्क पड़ता है। वेगेनर के अनुसार प्रवालादि युग में उत्तर ध्रुव १४° उ० अक्षांश, १२४ प० देशांश; कार्बन जनक युग में १६° उ० अक्षांश, १४७ प० देशाँश तथा तृतीयक काल में ५१° उ० अक्षाँश, १५३ प० देशाँश रही है। इसी के अनुसार दक्षिण ध्रुव और भूमध्य रेखा में भी स्थानान्तर हुआ। (चित्र ६) वर्तमान समय में तृतीयक काल की भूमध्य
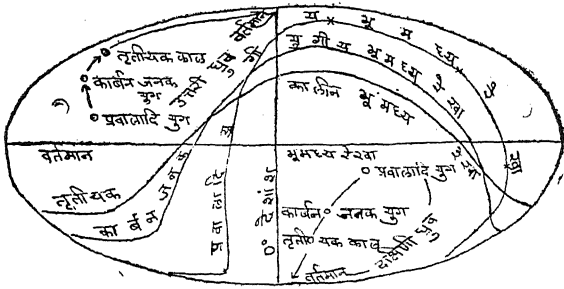
चित्र ६—विभिन्न भूकालों में भूमध्यरेखा और ध्रुवों की स्थितियां (क्रिशगार के आधार पर)

रेखा को निश्चयात्मक रूप से निर्दिष्ट कर सकते हैं। तृतीयक काल में भूमध्यरेखिक कटिबन्ध मलाया में, प्रादि नूतन युग में उत्तरी भूमध्यसागर में और मध्यनूतन युग में गेम्बीया और पश्चिम अफ्रिका में स्थित था। अतः यह कहा जा सकता है कि दोनों अमेरिका के पश्चिमवर्तीय प्रवाह से एन्डीज और उत्तर अमेरिकी कारडीलेरा पर्वत की रचना हुई है और जब तृतीयक भूमध्यरेखा अलपाइन भंजन के ऊपर थी तब भूमध्यरेखीय ऊढ़ के कारण आल्प्स और हिमालय की संरचना हुई। इसी तरह कार्बन युग की भूमध्यरेखा ऊढ़ से हरसीनियन भंजन का निर्माण हुआ। इसी आधार पर वेगेनर ने गोंडवाना काल में भारत, आफ्रिका, दक्षिण-अमेरिका और आस्ट्रेलिया पर हुए हिम प्रकोप को समझाने की कोशिश की है।

(४) *स्थानीय रूपधेय के प्रमाण*:—वेगेनर के विचारों को सब से अधिक समर्थन अटलांटिक महासागर के पूर्वी और पश्चिमी किनारों की रचिति समानता, उनके पर्वतों की दिशा और संरचना, निखातक अवशेष समानता तथा शैल रचना से मिलता है। ब्राजील के पश्चिमी और अफ्रिका के पूर्वी तटों की समानता को देखकर वेगेनर ने अपने कार्बनजनक कालीन नक्शे में इन्हें जोड़ दिया है। ड्यूटायट ने अपनी पुस्तक "घुमक्कड़ महाद्वीप" में इन दोनों तटों में निम्नलिखित रचिति समानता दिखलाई है:—

(i) अर्जेन्टाइना के सियरा डेरेंडिल और अफ्रिका के केप पर्वत।

(ii) भूमध्य सागरीय और एन्टीलीयन प्रदेश।

(iii) बेलजियम के आरमोरिकन भंजन तथा दक्षिणी ग्रेट ब्रिटेन और अपलेशियन पर्वत।

(iv) केलेडोनियन और अपलेशियन पर्वत।

(v) नार्दन लैंड के आद्ययुग के पर्वत।

(vi) यूरोपीय-अफ्रिका और अमेरिका की कोमेगमेटिक समानता।

स्पिट्सबर्गन और उत्तर ग्रीनलैन्ड में समान शिलाएं प्राप्त होती हैं। आद्य-युग अग्नि-आक्रमिक शिलाएं लैब्रेडोर में और केप फेयरवेल में मिलती हैं। इनके सिवा, वेगेनर के अनुसार, उत्तर स्काटलैन्ड और हेब्रीडीज की दलाश्म (Gneiss) शिलाओं की दिशा और लैब्रेडोर की दलाश्म-शिला की दिशा एक ही है—उत्तर-पूर्व से दक्षिण-पश्चिम।

शुकर्ट इस पर आरोप लगाते हैं कि १२०,०००,००० वर्ष के बाद भी क्या इन तटों में समानता हो सकती है? ये भौमिक काल पर्यन्त विदारण और खनन से छिन्न-भिन्न हो गये हैं। वेगेनर ने एक गल्ती की कि इन किनारों को एक ही में सटा दिया। जे० ए० स्टीयर्स ने कहा है—कि इन दोनों भागों को इस प्रकार जोड़ देना जैसे फटे तास के दो टुकड़ों को जोड़ दिया जावे—तथ्यहीन है। ड्यूटायट ने इन गलतियों को सुधारने के लिये, इन दोनों भागों के बीच ४००—८०० मान का अन्तर रखा है।

(५) *पुरासात्विकी के प्रमाण*—पुरावनस्पति विज्ञान के अनुसार जिह्वापर्ण वनस्पति, दक्षिणी अमेरिका, दक्षिण भारत, मेडागास्कर और दक्षिण अफ्रिका में मिलते हैं। इस आधार पर वेगेनर ने इन महाद्वीपों को तथा भारत को कार्बनजनक युग में एक ही स्थान पर रखा है। कार्बन जनक युग की शिलाओं में हिमावरण और हिमनदों के निशान मिलते हैं। ब्राजील के सैंट केथराइन शिलास्तर में, भारत के कार्बन जनक युग के शिलास्तर में, फाकलैन्ड द्वीप, दक्षिण अफ्रिका के कारू शिलास्तर में तथा आस्ट्रेलिया और अंटार्कटिक में हिमावरण के निशान मिलते हैं। वेगेनर पर यह आरोप है कि ये जिह्वपर्ण वनस्पति काश्मीर, उत्तर-पश्चिम अफगानिस्तान, उत्तर-पूर्वीय फारस, टोंकिन, उत्तरी रूस और साइबेरिया में भी प्राप्त होते हैं। लेक के अनुसार इन प्रदेशों में जिह्वापर्ण वनस्पति का विस्तार, थल सेतुओं से हुआ है तथा कुछ प्रदेशों में सामुद्रिक प्रवाह के द्वारा हुआ है जैसा कि दक्षिण और मध्य अमेरिकन और एशियाटिक द्विबीजी, नूतनकल्प में हवाई द्वीप में सामुद्रिक प्रवाह से चले गये हैं।

प्रोफेसर ह्वान ह्यून के अनुसार समान दानवसरट तथा सरीसृप मध्यप्रदेश, ब्राजील, मेडागास्कर, उरग्वे तथा अर्जेन्टाइना में प्राप्त होते हैं इनके सिवाय निम्न मत्स्य युग (बोकेवेल्ड) के दक्षिण अफ्रिका में पाये जाने वाले समुद्रीजीव अर्जेन्टाइना तथा दक्षिणी ब्राजील में तथा ट्रायगोनिया-अमोनाइट निखातक उत्तर-पश्चिमी अर्जेन्टाइना पूर्वी अफ्रिका के महासरट युग और खटी-युग के स्तर में पाये जाते हैं। शुकर्ट का आरोप है कि यदि अफ्रिका और दक्षिण अमेरिका सौ-पचास मील की दूरी पर होते तो इन प्राणियों की कई जातियाँ मिलतीं, जो विद्यमान नहीं हैं।

पुराकल्प की टिलाइट शिलाएं चार पर्वत, भारत और अफगानिस्तान में मिलती है जो वेगेनर के बनाये हुए उस युग के नक्शे में भूमध्यरेखा से ३०° अक्षांश के भीतर हैं। इसी प्रकार की टिलाइट शिलाएं बोस्टन, उत्तर-पश्चिम अफ्रिका और उत्तरी अलास्का में भी मिलती हैं। प्रो० लेक गिरि-युग के इन टिलाइट को देखकर कहते हैं कि यदि हम वेगेनर के अनुसार ध्रुवों को २५०० मील दूर ले जायेंगे तो हिमनदों का प्रकोप भूमध्यरेखा के अन्तर्गत तक होगा। कोलमेन का आरोप है कि वेगेनर के पैंगिया के अनुसार हिमनदों के प्रकोप वाले स्थान सूखे तथा आर्द्र रहित स्थल होंगे जहाँ कि बर्फीली हवा का पहुँचना असम्भव है जैसा कि प्राति-नूतन युग के हिमनदों के प्रकोप से एशिया का अन्तरिक्ष बचा रहा।

(६) *तैल प्रमाण*—गुटनबर्ग ने, वेगेनर के विचार के विपरीत, सैस्फ को दक्षिणी महाद्वीप में विस्तृत माना है। ये सैस्फ पुञ्ज भूमध्यरेखा पर भंजित पर्वत के रूप में विस्तृत हैं। इसे उसने तैल के पाये जाने वाले प्रदेशों के विस्तार से निश्चित किया है।

(७) *महाद्वीपी ऊढ़ के बारे में आचार्य बीरबल साहनी के विचार*—आचार्य बीरबल साहनी ने पुरावनस्पति विज्ञान के सहयोग से वेगेनर के विचारों को प्रोत्साहन दिया है। उनका कथन है "महाद्वीप एक दूसरे से परे ही नहीं, बल्कि एक दूसरे की तरफ भी गतिमान हैं।"

प्रागुल्लिखित अवतरण के समर्थन के लिये उन्होंने पुरावनस्पति विज्ञान की सहायता ली है।

पूर्वकालीन पुराकल्प वानस्पतिक प्रदेशों के सूक्ष्म अध्ययन से दो निष्कर्ष निकलते हैं :—

(१) पृथ्वी के कुछ समान वनस्पति वाले देश महासागरों के विरुद्ध किनारों पर स्थित हैं। (चित्र ७)
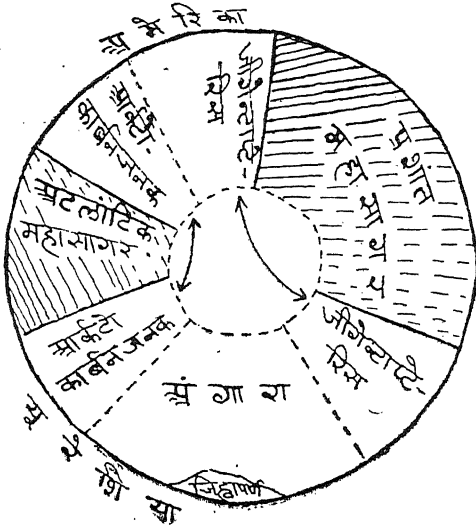
चित्र ७—वनस्पतियों का विस्तार (आचार्य साहनी के आधार पर)

(२) दूसरे अत्यन्त असमान वनस्पति वाले देश जैसे हिन्द-आस्ट्रेलिया के गोंडवाना प्रान्त और चीन-सुमात्रा के जीगेन्टाप्टेरिस प्रान्त परास्परानु-बन्धन (कपोतपुच्छन) स्थिति में हैं। (चित्र ९)

क्या हम इन दोनों प्रमाणों को बिना महाद्वीपीय-ऊढ़ की सहायता से समझा सकते हैं इन्हें समझाने के लिये पहले हम जिह्वापर्ण प्रजाति (ग्लोसोप्टेरिस) और जिगेन्टाप्टेरिस प्रजाति में असमानता दर्शाते हैं—(अ) जिह्वापर्ण वनस्पति अपने वैशेषिक प्रकार और विस्तार के कारण जिगेन्टाप्टेरिस वनस्पति से भिन्नता रखता है। मध्य शैली के उच्च पुराकल्प वनस्पति, जिगेन्टाप्टेरिस, के बारे में प्रोफेसर हाले (१९२७) कहते हैं "जिगेन्टाप्टेरिस वनस्पति के किसी भी जाति को जिह्वापर्ण प्रजाति के किसी भी वनस्पति के समान कहना असम्भव है। ये योरोप और उत्तर अमेरिका के कार्बन-जनक काल के वनस्पति के समान हैं।"
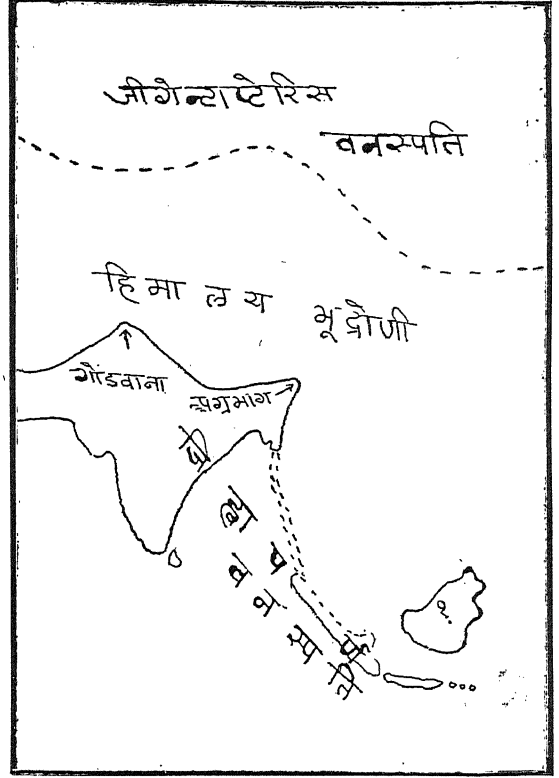
चित्र ८—(आचार्य साहनी के चित्रों के आधार

(आ) *जलवायु भिन्नता*—जिह्वापर्ण प्रजाति का कार्बनजनक-गिरि युग काल के—हिमदशा से तत्काल ही मुक्त—बाद विकास हुआ समशीतोष्ण जलवायु में ही पनप सका। इसके विपरीत जिगेन्टाप्टेरिस वनस्पति, योरोप के कार्बन जनक वनस्पति के समान ऊष्ण जलवायु में विकसित हुई। डक्टर ई० नोरिन इन स्तरों के रासायनिक अध्ययन के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि ये अवसाद आर्द्र-ऊष्ण जल वायु में ही परिन्यस्त हो सके हैं। प्रोफेसर सीवर्ड

का अनुमान है कि "गोंडवाना भूमि की जलवायु गिरि युग में ठंडी थी और उत्तरी गोलार्द्ध की जलवायु से काफी आनन्ददायक थी।"

उपरोक्त विभिन्नता को देखकर क्या हम कह सकते हैं कि ये दोनों वनस्पति एक ही जलवायु में विकसित हुए होंगे और पनप सके होंगे जैसा कि उन्हें हम नक्शे में २८° अक्षांश के करीब पाते हैं? इस समस्या को महाद्वीपीय-ऊढ़ सिद्धांत के द्वारा हल कर सकते हैं। ये वनस्पति पहले टेथी सागर या तृतीय उपशनि के उत्तर दक्षिण में विस्तृत थे। इस टेथी सागर को, नक्शे में (चित्र ८) हिमालय भूद्रोणी के नाम से दर्शाया गया है जो पूर्व-पश्चिम फैला था। बाद में उत्तरी छोर से दबाव के कारण ये एक दूसरे से कपोतपुच्छन्न के समान जुड़ गये हैं। इस गति में उत्तर-पूर्वी आसाम के गोंडवाना प्रोमोन्टरी ने रोधक विवर्तनी का काम किया जिसके कारण ये स्तरीत अवसाद दखना के समान दक्षिण की तरफ मुड़ गये हैं। इस रोधकविवर्तनी को नक्शे में (चित्र ९) तीर से बतलाया गया है। इस झुकाव को डाक्टर डी० इन० वाडिया ने सिनटेक्शीयल बेन्ड (Syntaxial bend) कहा है।
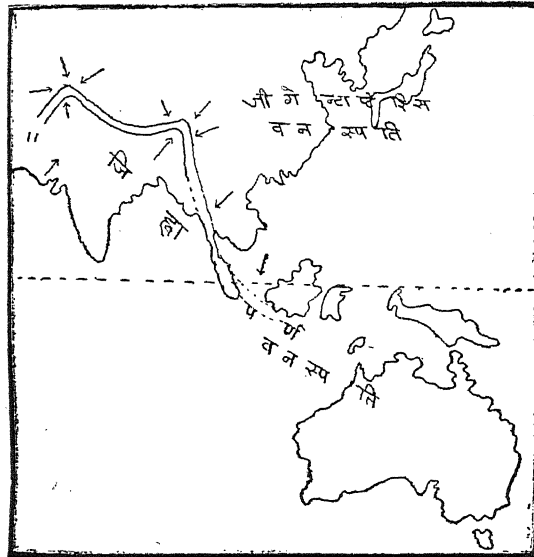
चित्र ६—आचार्य बी० साहनी के चित्रों के आधार पर

आचार्य बीरबल साहनी के इस वक्तव्य पर श्री गेब्रो ने आरोप किया है। वे कहते हैं कि ये दोनों वनस्पति सस्थानी हैं और दोनों में विभिन्नता का कारण दक्षिण-पश्चिम चीन के उत्तर-दक्षिण फैली हुई बसाल्टीक प्रस्थ है। लेकिन गेब्रो महाशय यह भूल गये कि बसाल्टीक प्रस्थ सिर्फ वनस्पतियों की रचनात्मक विभिन्नता हल कर सकता है न कि जलवायु विभिन्नता को। तथा यह बसाल्टीक प्रस्थ दक्षिणी चीन के दक्षिण भाग में नहीं फैला था फिर वहाँ के जिगेन्टाप्टेरिस वनस्पति का रोधक कहाँ से आया। इसके लिये हम यह मानने को तैयार हैं कि उनके बीच बसाल्टीक प्रस्थ के बदले सामुद्रिक रोधक था जहाँ अवसाद के जमाव के कारण आसाम-बर्मा-मलाया विभाग के पर्वतों को पाते हैं।

इस तरह हम वेगेनर के विचारों को कठिन प्रत्यालोचनाओं का सामना करते पाते हैं। महाद्वीपीय ऊढ़ के साथ ही वेगेनर का नाम अमर रहेगा जिसने एक नई धारा का सूत्रपात किया।

विलियम फ्रीजी ग्रीनी

(चलचित्र आविष्कार-कर्त्ता)

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में छाया-चित्रण एक व्यवसाय बन रहा था। तूलिका तथा चित्र-लेखनी के धनी चित्रकार जहाँ पहले श्रीसम्पन्नों को ही सम्मुख घन्टों बैठा कर रूप-चित्रण का अवसर प्रदान करते, वहाँ अब दरिद्रनारायण ने भी अपने अनुयायियों को अपना चित्र थोड़े व्यय में कागज पर उतरवा लेने का साधन प्राप्त करते देखना प्रारम्भ किया था। यह विधि छाया-चित्रण नाम से अभिव्यक्त हो चली थी। सूर्य की रश्मियाँ ही जन-साधारण के चित्र अल्पव्यय में ठीक मुखाकृति के अनुरूप थोड़े समय में ही काँच-पट्टिका (ग्लास प्लेट) पर उतारना प्रारम्भ कर रही थी। उस काँच-पट्टिका से मनोवाँछित संख्या में कागज पर चित्र छाप लिये जा सकते थे। यह फोटोग्राफी किंवा छाया-चित्रण नामक इन्द्रजाल का भूतल पर अवतरण था। इस अभिनव इन्द्रजाल का व्यावसायिक रूप फैलकर इसके गुप्त रूप का भंडा-फोड़ कर बता रहा था कि यह भौतिक तथा रसायन के सिद्धान्तों पर आधारित एक विज्ञान सम्मत तथ्य ही है। ऐसे ही वातावरण में गटनबर्ग नाम के एक छायाचित्रकर्मी (फोटोग्राफर) के यहाँ ब्रिस्टल नगर (इंगलैंड) में एक नया आगंतुक शिष्यत्व के लिए आ पहुँचा। यह १८६९ ई० की घटना है। गटनबर्ग की तरह अन्य कितने ही कुशल छायाचित्रकर्मी छाया-चित्रण को जीविका का साधन बना चुके थे। उनके यहाँ नवसिखुए भी इस व्यवसाय को सीखकर जीविका अर्जित करने के उत्सुक होते थे। उन्हीं में १४ वर्ष का एक किशोर बालक विल्ली ग्रीन भी था जिसने गटनबर्ग को अपना गुरु बनाया था।

विल्ली ग्रीन को छाया-चित्रण सीखने का कार्य मिल गया। यह ब्रिस्टल के धातुव्यवसायी का कनिष्ठतम पुत्र था। इसका पिता एक प्रतिष्ठित नागरिक था। उसकी सात संतानों में पाँच पुत्रियाँ और दो पुत्र थे। विल्ली ग्रीन कनिष्ठ पुत्र था। उसे भौतिक तथा रसायन विज्ञानों से विद्यालय में रुचि थी। अतएव इस नये व्यवसाय की ओर प्रवृत्ति हो सकी। गटनबर्ग ने उसे शिष्य रूप में तत्काल स्वीकार किया। इस व्यवसाय को जीवन-क्रम बनाने के निर्णय ने ही विल्ली ग्रीन का भावी जीवन-प्रवाह निर्धारित किया।

विल्ली ग्रीन काम सीख लेने में बड़ा कुशल था किन्तु शिष्यत्व में अनाड़ी था। उसने शीघ्र ही काम सीख कर गुरु से भी उत्कृष्ट कार्य कर गुरु को गुड़ के दर्जे पर ही छोड़ कर स्वयं चीनी का पद प्राप्त करने का उदाहरण प्रदर्शित कर दिखाया।

गुरु के गुड़ रह जाने और चेला के चीनी बन उठने की घटनाएँ मनोरंजक तथा परिहासपूर्ण हो सकती हैं। गटनबर्ग के सम्मुख भी ऐसी विचित्र स्थिति उत्पन्न हुई। जब ग्राहकों से प्रत्यक्ष सम्पर्क का अवसर भी विल्ली ग्रीन को गटनबर्ग ने देना प्रारंभ किया तो वह अपने रोबीले, भयप्रद स्वामी से सुन्दरतर कार्य कर दिखलाता। वय की मादकता में वह अपनी चित्रशाला में आगत मधुरमुखी सुन्दरियों के प्रति हठात् आकर्षण अनुभव करने से वंचित नहीं रहता। उसका शिक्षागुरु ईर्षालु-सा बन कर प्रायः उसे चित्रणपट्टिका रसायन-विकसित करने के अंधकक्ष में जा बैठने के लिए कह उठता।

विल्ली को जब कभी अवकाश मिलता, इस

नूतन विचित्र-विद्या के सारे सुलभ साहित्य को पढ़ता रहता। लियोनोर्डो काड विंची ने किस प्रकार इस कला का सूत्रपात किया, नेपोलियन के भूतपूर्व अधिकारी निसेफोरे नाइप्से ने कैसे दारुण कष्ट उठकर प्रभाकर की किरणों से रासायनिक पदार्थों से प्रलेपित पट्टिका पर वस्तुओं की रूपरेखा उतार लेने का कठोर उद्योग किया, नाइप्से के सहकर्मी लुई डेगुरे ने किस प्रकार १८३७ ई० में इस मर्म को जान लिया कि रजतपट्टिका को धूप में छाया-चित्रक यन्त्र में (कैमेरा) में खुला रखने पर पारद वाष्प के द्वारा चित्र उतारना सम्भव हो सकता है—एक के बाद एक घटित होने वाली इन सब अभूतपूर्व घटनावलियों का वर्णन विल्ली ग्रीन ने बड़ी ही उत्कंठा से पढ़ा।

उधर शिक्षागुरु गटनबर्ग तथा उसके शिष्य विल्ली ग्रीन का मधुर संघर्ष पाँच वर्षों तक चलता रहा। विल्ली ग्रीन गटनबर्ग की फटकार, लताड़, कटूक्ति आदि दुर्व्यवहार आँख-कान बन्द कर अनदेखी सी कर सहन कर जाता। शिष्य को अपना गुरु पीड़न तथा आततायी वृत्ति का खुल कर प्रदर्शन करता जान पड़ता, किन्तु गुरु अपने शिष्य में विकट उद्धतपन, दुस्साहस, अविनम्रता का ही भाव देखता। एक दिन विचित्र ही घटना घटित हो कर रही। विल्ली अचानक दौड़ कर द्वार तक गया, किवाड़ खोला और सड़क पर किसी चलती मूर्ति पर आँख गड़ा दिया। गटनबर्ग ने अपने उद्धत शिष्य की यह करतूत देखी, बस इस पर बरस पड़ा, "यह क्या बेहूदगी है ?"

विल्ली ने बड़े ही सरल ढंग से उत्तर दिया, "गुरुवर ! क्या आप उन्हें पहचानते नहीं ? सामने जाते हुए लम्बकाय वयप्राप्त सज्जन को आप नहीं जानते। वे फाक्स टालबट हैं जिन्होंने काँच-पट्टिका पर उभरी आकृतियों को कागज पर मुद्रित कर लेने के विज्ञान को ज्ञात किया, जिसने छायाचित्रों युक्त प्रथम पुस्तक प्रकाशित करने का यश प्राप्त किया।"

गटनबर्ग कुछ उपेक्षापूर्वक हाथ झटक कर उच्च स्वर से ही फिर बोला, "यह तो पुरानी बात है। कितने ही ऐसे आविष्कारक हो गये हैं जिन्होंने हम लोगों के धन्धे की कोई न कोई बात आविष्कृत की है। ये परस्पर अभियोग भी चला कर कटते-मरते रहते हैं। हमसे क्या मतलब है कि किस व्यक्ति ने किस वस्तु को आविष्कृत किया। जाओ, चलो, अपना काम करो।"

जोस्टी नाम के किसी हमजोली युवक से विल्ली ग्रीन प्रगाढ़ मैत्री सी हो चली थी। उसकी विधवा माता ने किसी स्विटजरलैंड के कंगाल सामंत-से विवाह किया था। उसने विल्ली ग्रीन को घर पर आमंत्रित किया। उसकी सौतेली बहन, हेलेना हाल में ही स्विटजरलैन्ड से आई थी, किंतु आते ही रुग्ण हो गई थी। हेलेना फ्रीजी २१ वर्ष आयु की कुमारी थी। सुन्दरी तो थी, परन्तु दमा रोग से ग्रस्त थी। अँग्रेजी का कामचलाऊ ज्ञान रखती थी। उसके प्रति विल्ली ग्रीन आकर्षित-सा हुआ। उनके साक्षात्कार का परिणाम यह हुआ कि भविष्य में हेलेना फ्रीजी श्रीमती विल्ली ग्रीन बन सकीं। १८७४ में दोनों का विवाह हुआ। वर की आयु तो १९ वर्ष ही थी, किन्तु कन्या तीन वर्ष बड़ी, २२ वर्ष की थी।

विवाह तो हो गया परन्तु गुरु की दुर्भावना भी उधर विल्ली के प्रति बढ़ती ही गई। एक दिन गुरु-शिष्य के बीच हंगामा मचा। सदा के लिए गुरु-शिष्य का सम्बन्ध टूट गया। विल्ली को कहीं कार्य ढूँढ़ना पड़ा। एक महिला बाथ नगर में छाया-चित्र की दूकान रक्खे थी। उसने विल्ली ग्रीनी के हाथों अपनी दूकान का काम सौंप दिया। उसी में हेलेन फ्रीजो भी उत्साहपूर्वक काम में हाथ बटाने लगी। बाथ में ही उनकी प्रथम संतान उत्पन्न हुई। कर्तव्य-परायण पत्नी के प्रति प्रगाढ़ अनुरक्ति रखने के कारण विल्ली ग्रीन ने अपने नाम के साथ पत्नी के नाम का अन्तिम अंश जोड़ लिया किन्तु ध्वनिसाम्य के लिए ग्रीन शब्द में भी ईकार लगा कर ग्रीनी बना

लिया। इस प्रकार वह विलियम फ्रीजी ग्रीनी नाम से पुकारा जाने लगा। इसी नाम से उसे आविष्कार-जगत में भी प्रसिद्ध पाया जाता है। उसका नाम एक सुखी परिवार के संतुष्ट वातावरण का द्योतक ही समझा जा सकता है।

विलियम फ्रीजी ग्रीनी सफल व्यवसायी सिद्ध हुआ। उसकी दो अन्य चित्रशालाएँ भी चलने लगीं। एक तो ब्रिस्टल में खुली तथा दूसरी साईमाउथ में। उसकी अच्छी आय थी। सभी ग्राहक उसके कार्य से संतुष्ट रहते थे। अपने धंधे से उसे रुचि थी। वह रंग के उतार चढ़ाव के प्रभावों का नया-नया प्रयोग करता रहता। परन्तु इस सुखी, संतुष्टिपूर्ण जीवन में भी एक विषाद की रेखा थी। उसकी पत्नी हेलेना का दमा रोग नहीं छोड़ता, रोग का प्रभाव होने पर वह बेदम-सी हो जाती। परन्तु विलियम ग्रीनी का उसमें कुछ बस न चलता। वह अपनी स्नेहमयी, कर्तव्यपरायण स्त्री की पीड़ा में कुछ कर न पाता। किसी प्रकार रोग के उभाड़ को अपना पूर्ण वेग दिखा जाने के बाद शान्त होने तक प्रतीक्षा करता रहता। बार-बार दमा का उभाड़ होता। हर बार उसके स्वयं शान्त होने की ही उसे प्रतीक्षा करनी पड़ती।

फाक्स टालबट की कीर्ति विलियम ग्रीनी ने दूर से ही देखी-सुनी थी। बाथ में उसे प्रत्यक्ष उस यशस्वी व्यक्ति से ही परिचय तथा सौहार्द्र प्राप्त करने का अवसर मिला। बाथ के दस वर्षों के जीवन में विलियम ग्रीनी के लिए यह परिचय अत्यन्त लाभकर सिद्ध हुआ। वह फाक्स टालबट के केवल प्रशंसक की जगह अब समानता के पद पर मित्र बना था। फाक्स टालबट से उसे सुनने का अवसर प्राप्त होता कि छायाचित्रण भविष्य में क्या चमत्कार दिखा सकने में समर्थ हो सकता है। वह कहता कि चित्र उतार कर धन कमा लेना तो उसका एक गौण पक्ष ही है। उसका यथार्थ प्रयोग तो विज्ञान की शोध में ही भारी चमत्कार दिखा सकता है। ज्योतिर्विज्ञान संबन्धी शोध छाया-चित्रण द्वारा सम्भव हो सकती है। सूक्ष्मदर्शकीय जीवाणुओं की भी कदाचित् परीक्षा हो सके। इन सुझावों को देकर फाक्स टालबट विलियम ग्रीनी को लन्दन नगर जाकर ऐसी भावी कल्पनाओं के मूर्त रूप देने में योगदान देने का कोई अवसर प्राप्त करने के लिये उत्प्रेरणा प्रदान करता। लन्दन नगर में ही ऐसे कार्यों की पृष्ठभूमि मिल सकती थी, जहाँ वृहद् विज्ञान संग्रहालय, विख्यात विद्वत् परिषदें आदि अवस्थित थीं। फाक्स टालबट ने विलियम ग्रीनी में एक प्रतिभाशाली व्यक्ति को देखा था, अत एव उसे उत्प्रेरित करने में वह हर्ष का अनुभव करता था। विलियम फ्रीजी ग्रीनी के अन्तराल में किसी उन्नति-पथ के उन्नायक बनने की प्रचुर भावना मंथित होती रहती थी, किसी अभिनव वस्तु के आविष्कृत करने की उत्कट लालसा उमड़ रही थी। किसी नवीन ज्ञान-पथ के उद्भव करने की जिज्ञासा जागरूक हो रही थी। परन्तु प्रश्न था, कौन-सा पथ समीचीन है, किस दिशा में लक्ष्य विद्ध करना कार्यकर हो सकता है।

उत्कट शोध-उत्साह के उभाड़ने में एक अन्य पुरुष के परिचय ने विलियम ग्रीनी को उचित पथ प्रदर्शन किया। एक स्पष्ट पथ उसके सम्मुख रखने में उस परिचय ने साहाय्य प्रदान किया। यह व्यक्ति जान आर्थर रूबक रज नाम का था जो श्वेत लम्बी कूर्च (दाढ़ी) मय मुखाकृति प्रदर्शित करने वाला एक वयोवृद्ध पुरुष था। उसका सारा जीवन अभिनव आविष्कारों को करते रहने में ही व्यतीत हुआ था। उसने एक दिन विलियम ग्रीनी को एक अद्भुत वस्तु दिखाई। रज का निवासस्थल बाथ में ही था। उसके घर में ही एक कर्मशाला भी थी। उसकी प्रदर्शित वस्तु ने विलियम ग्रीनी के जीवन में युगान्तर उपस्थित किया। रज महोदय के गृह पर आमंत्रित होकर विलियम ग्रीनी पहुँचा। वह एक दीवाल के सम्मुख बिठाया गया। स्वच्छ चूने से पुती उज्ज्वल भित्ति की ओर विलियम ग्रीनी का मुख था। पीछे रज महोदय ने कौतुक दिखाने का आयोजन किया।

गैस का उज्ज्वल प्रकाश बुझा दिया गया। श्वेत भित्ति पर एक ऐन्द्रजालिक दीप-जन्य मूर्ति उत्पन्न हुई। वह एक जंतु की रेखांकित मूर्ति थी। अकस्मात वह चलने लगी। कई एक झटकों के पश्चात् उस जंतु ने एक उछाल पूरी की। उछाल मारने की ऐसी गतियों के चक्र को वह मूर्ति कई बार दुहरा सकी। इस निर्जीव भित्तिपृष्ठ पर जीव की चपलता का दृश्य उपस्थित हो सका। यह देख कर विलियम ग्रीनी अवाक्-सा रह गया। उसने रज महोदय से विश्वासपूर्वक यह बात कही कि यह संसार का एक सबसे महत्वपूर्ण आविष्कार है। रज महोदय उसकी इस प्रशंसोक्ति पर एक मंद हँसी ही हँसते रहे। उन्होंने बाद में इस दृश्य का भेद खोला। वह कोई भी भारी आविष्कार नहीं था। बल्कि साधारण बुद्धि-कौशल का चित्रांकन रूप में एक दृश्य ही था। उन्होंने अपना नया यंत्र उसे दिखाया जिसमें उन्होंने पहले की कई बातों का ही मिश्रण कर यह कौतूहल उत्पन्न करने का एक आयोजन किया था। पाँच-सात चित्र बना कर यह खेल रचा गया था।

रज महोदय के इस यंत्र में प्रकाशस्तम्भ की तरह एक गोल बुर्ज थी जिसमें प्रकाश के चारों ओर अटारी थी। अटारी में सात पहल थे। उनमें रज महोदय ने प्रकाश के सम्मुख छाया चित्रप्रदर्शक काँच पट्टिका अर्थात् लैन्टर्न स्लाइड रख दिये थे जिनमें उस जंतु के उछाल मारने की सात क्रमिक विभिन्न स्थिति के चित्र बने थे। जब अटारी प्रकाश के सम्मुख तीव्र गति से नचाई जाती जिसके सामने एक काँच का ताल रक्खा था, तो उन सातों आकृतियों में से एक-एक बारी-बारी से प्रकाश के सम्मुख आती और काँच के ताल द्वारा प्रकाश के किरणों से भित्ति पर चित्र उतारतीं। ताल द्वारा वे बड़े रूप में बन कर दिखाई पड़तीं।

विलियम फ्रीजी ग्रीनी ने एक ऐसी अद्भुत बात देखी जिसमें गतिशून्य सात चित्रों का क्रमिक प्रदर्शन निर्जीव भित्ति पर उछाल मारता जन्तु दिखा देता। वह सचमुच जीवित जन्तु समान उछाल मारता जान पड़ता। गतिशून्य चित्रों से गतिशील जंतु का प्रदर्शन क्या मर्म रख सकता था !

रज महोदय ने शंका समाधान कर बताया कि किसी वस्तु का प्रतिबिम्ब ग्रहण करने में नेत्र कुछ शिथिल होते हैं। कोई वस्तु जब हमारे सामने से हट गई होती है तो उसके क्षणों बाद तक भी हमारे नेत्रों की दृष्टि में वह वस्तु सामने दिखाई पड़ती ही रहती है। उसी समय दूसरा दृश्य या चित्र सम्मुख आ जाने से नेत्र इस दृश्य को पहले से सम्बन्धित-सा अनुभव करने का धोखा खा जाते हैं। उसी में हम लोग अपनी कल्पना भी भिड़ा देते हैं। अतएव भिन्न भिन्न क्रमिक गति के किंतु निर्जीव, गतिशून्य चित्र एक के बाद एक नेत्रों के सम्मुख प्रदर्शित किये जाने पर एक चलते-फिरते दृश्य का अनुभव करते हैं। हमें भ्रम हो जाता है कि हम यथार्थतः गतिशील वस्तु ही देख रहे हैं।

विलियम फ्रीजी ग्रीनी को इन बातों के श्रवण करते ही एक बात ध्यान में आई। उसने सोचा कि कितने अधिक परिश्रम से वे विभिन्न गतियों के क्रमिक चित्र इस तरह रेखांकित किये गये होंगे कि यथार्थ गति क्रिया के विभिन्न रूपों के ही अनुरूप आभासित हों। हाथ से इतनी कुशलता कितना कष्ट साध्य तथा श्रमसाध्य है !

उसने मन में सोचा कि हाथ से ऐसे चित्र परिश्रमपूर्वक अंकित करने के स्थान पर छायाचित्र ही क्यों न उतारकर ऐसे क्रमिक रूप के गतिप्रदर्शक चित्र तैयार कर लिये जायँ और उन्हीं से छायाचित्र प्रदर्शक काँचपट्टिका (लैन्टर्न स्लाइड) बनाकर प्रकाश के सम्मुख प्रदर्शित की जाय जिससे श्वेत भित्ति या किसी पट पर प्रभाव के गतिशील चित्र दिखाई पड़ें।

विलियम ग्रीनी ने जो बात सोचनी प्रारंभ की थी उसे भाँप कर रज महोदय ने उत्तर दिया, "तुम्हारा यह विचार सर्वथा नवीन बात नहीं है ! ऐसी क्रिया के प्रयोग पहले ही कितने व्यक्तियों ने किये हैं। फ्रान्स में प्रोफेसर मेरी ने उड़ती चिड़िया

या चलते-फिरते मनुष्य की गतियों के अनेक क्रमिक चित्र अपने छायाचित्रण यंत्र में उतारे। केलिफोर्निया की घुड़दौड़ के मैदान में एडवर्ड माईब्रिज नाम के व्यक्ति ने चौबीस छायाचित्रण यंत्र एकत्र लगाकर दौड़ते हुये घोड़ों की चाल के क्रमिक चित्र उतारे। उन लोगों ने इनकी छायाचित्रप्रदर्शक काँच पट्टिकाएँ बनाकर उनको प्रयुक्त करने का प्रयत्न किया। उनके छायाचित्र काँच की चकत्तियों के छोर पर मुद्रित कर उन्हें अपनी ऐन्द्रजालिक लालटेन के ताल के सम्मुख नचाया।

रज महोदय ने दूसरी युक्ति की थी। हाथ से विभिन्न स्थिति के क्रमिक चित्र अंकित कर उनके प्रकाश के सम्मुख प्रदर्शन द्वारा दीवाल पर परिवर्द्धित चित्र दिखाये गये थे। इसी कारण रज महोदय का कथन था कि उनके अद्भुत दिखाई पड़ने वाले उस प्रयोग में कोई नवीन बात नहीं थी। वह बच्चों के लिए प्रदर्शन की एक मामूली खिलौने-सी वस्तु थी जिसका केवल व्यावसायिक उपयोग ही हो सकता था परन्तु मेरी तथा माइब्रिज के प्रयोग वैज्ञानिक पृष्ठभूमि रखते थे।

रज महोदय की इन रहस्योद्घाटक बातों को सुनकर विलियम ग्रीनी ने उनके साथ प्रयोग कर इन विविध विधियों को स्वयं कर दिखाना चाहा। यह उनके चलचित्र आविष्कार के अभियान का बीज-वपन था।

विलियम ग्रीनी कल्पना-प्रवर व्यक्ति अवश्य था, परन्तु शिल्प कौशल का उसमें अभाव-सा था। अतएव रज महोदय ने उपकरण तथा यंत्रों का निर्माण करने में स्वयं हाथ लगाया। एक नवीन युक्ति यह की गई कि एक चित्र के पश्चात् दूसरा चित्र सम्मुख आने के अन्तर काल में एक परिभ्रमणशील व्यवधान-पट प्रकाश का संबंध काट देता। अतएव क्षण भर तक ऐसी ही स्थिति रखने से एक चित्र नेत्र के सम्मुख अधिक स्पष्ट तथा स्थिर भासित होता। दूसरे चित्र से उसे मेल करने की विचित्र नेत्र-शक्ति आवश्यक नहीं होती।

अपने नव निर्मित यंत्र से फ्रीज़ी ग्रीनी ने पड़ोसियों का मनोरंजन करने का घर पर आयोजन किया। निमंत्रित दर्शक आ पहुँचे। लोगों ने सोचा, साधारण स्थिर चित्रों के प्रदर्शन की ही व्यवस्था है जिसमें दृष्टिप्रसारक ताल लैन्टर्न स्लाइट (छायाचित्र प्रदर्शक काँचपट्टिकाओं) के चित्र श्वेत पटों पर बड़े रूप में दिखा कर मनोरंजन कराते हैं। फ्रीज़ी ग्रीनी ने चालाकी से कुछ स्थिर छायाचित्र ही लैंटर्न स्लाइट द्वारा पहले प्रदर्शित किये। इनके पश्चात् ही श्वेत प्रदर्शन पट पर एक मूर्ति प्रदर्शित हुई जिसकी आँखें एक बार दाएँ, फिर दूसरी बार बाएँ अपनी पुतलियाँ बार-बार घुमाती दिखाई पड़तीं। लोग यही समझ रहे थे कि कोई कुमारी पर्दे के निकट पीछे से खड़ी होकर अपनी मुखाकृति सामने लाकर आँख की पुतलियाँ दाएँ-बाएँ घुमाते रहने का खेल कर रही है। कुछ परिहासप्रिय व्यक्तियों ने पुकार मचाना भी प्रारंभ किया, कि "सुंदरी, पीछे क्यों छिपी हो, सामने क्यों नहीं आजाती?" कुछ अधिक जिज्ञासु तथा कौतूहल-प्रिय दर्शकों ने तो पर्दे के पीछे जाकर उस कुमारी को ढूँढ़ निकालकर इस प्रदर्शन के भंडाफोड़ करने की धमकी देना प्रारम्भ किया। परन्तु विलियम फ्रीज़ी ग्रीनी ने बड़ी ही कठिनाई से उन्हें विश्वास दिलाया कि वहाँ कोई भी संदेहजनक प्राणी नहीं विद्यमान है, बल्कि केवल श्वेत पर्दा मात्र है। इस प्रदर्शन के बाद फ्रीज़ी ग्रीनी की ही प्रत्यक्ष मूर्ति पर्दे पर आ धमकी। किंतु वह तो छायाचित्र मात्र था। केवल बड़े रूप में बनकर पर्दे पर प्रतिबिम्बित हो रहा था। पर्दे पर उसकी मुखमुद्रा गतिशील दिखाई पड़ रही थी। परन्तु वह स्वयं तो यंत्र के पीछे दर्शक मंडली के साथ ही था। एक दर्शक स्त्री ने तो उठकर छाते से उस ऐन्द्रजालिक मूर्ति को ही ढकेल गिराना चाहा। परन्तु वहाँ तो अकेला पर्दा छोड़कर कुछ दूसरी वस्तु थी ही नहीं। पर्दा हिलकर ही रह गया।

यह चलचित्र का फ्रीज़ी ग्रीनी द्वारा प्रथम पदर्शन ही था। दर्शकों के ऊपर उसका प्रभाव अत्यन्त

उत्साहवर्द्धक था। किन्तु यह सब तो केवल प्रारम्भ था। अनेक शोधों द्वारा सुविधाजनक पदार्थों के चित्र पट अधिक कौशल से अधिक शीघ्रतापूर्वक तैयार कर अधिक समय तक प्रदर्शित किये जाने से ही जनता के प्रदर्शन के विशेष सफल साधन बन सकते थे।

रज महोदय ने विलियम फ्रीजी ग्रीनी से विज्ञान जगत को कुछ मिलने की सम्भावना से लन्दन के विशाल नगर में जाने का परामर्श दिया था जहाँ बड़े-बड़े वैज्ञानिक तथा कुशल शिल्पी अपना कौशल प्रदर्शन करते रहते तथा अभिनव आविष्कारों को जनता पर प्रकट करते रहते। उस विशाल नगर में उसे कुछ ठोस उत्प्रेरणा तथा मार्ग-प्रदर्शन प्राप्त होने का अधिक अवसर मिल सकता था। फ्रीजी ग्रीनी ने आदरणीय रज महोदय से प्रोत्साहन प्राप्त किया था। सम्पर्क में रहकर जितना उनसे सीख सकता था, सीख चुका था। अब अधिक कुछ उनसे सीखने की बात रह भी नहीं गई थी। इन बातों पर विचार कर फ्रीजी ग्रीनी ने लन्दन नगर में जाकर भाग्य-परीक्षा करने का विचार किया। बाथ तथा दूसरी जगह की चित्रशालाओं में वैतनिक प्रबन्धक नियुक्त कर अपनी पत्नी तथा पुत्री को भी उसने वहीं छोड़ दिया, प्रति साप्ताहिक अवकाश में आते रहने का वचन देकर सांत्वना दी तथा लन्दन में पैर जमते ही परिवार को ले जाने का भी आश्वासन दिया और लन्दन जा पहुँचा। वहाँ ३० वर्ष की आयु का यह युवक चित्रकार १८८५ ई० के प्रारम्भिक भाग में आ पहुँचा। आर्थर तथा एसमे कालिन्स नाम के दो कालिन्स बन्धुओं के साझे में उसने एक चित्र शाला की दूकान कहीं खोल ली। दूकान में साझे का यह व्यापार सुखकर सिद्ध न हो सका।

फ्रीजी ग्रीनी का मन अपने परिवार में अटक रहता था। साप्ताहिक अवकाश के नाम पर शुक्रवार की दोपहर को चल देता तथा सोमवार की दोपहर तक लन्दन लौटता। इस बीच कालिन्स बन्धु चित्र उतारने का कार्य करते। परन्तु वे उतने कुशल शिल्पी नहीं थे। ग्राहक तो फ्रीजी ग्रीनी के हाथों उतरी तस्वीर ही चाहते। सब ओर उसकी चित्रकुशलता को ख्याति हो रही थी। अतएव व्यवसाय तो बिगड़ रहा ही था, सप्ताह के जितने दिनों फ्रीजी ग्रीनी लन्दन रहता उसमें भी वह दूकान में कितने समयों अनुपस्थित ही रहता। कहीं किसी वैज्ञानिक परिषद् की आवश्यक बैठक होती, या कोई भौतिक या रसायनशास्त्री से सम्पर्क का अवसर होता, विलियम ग्रीनी दूकान छोड़कर वहाँ पहुँच जाता। यही नहीं, उसने यंत्र विद्या, भौतिक विज्ञान, रसायन, विद्युत् तथा शिल्प शास्त्र का अधिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए पालीटेकनिक संस्था की कक्षाओं में भी नाम लिखा कर उपस्थित होना प्रारम्भ किया। ये सब बाधाएँ व्यवसायी के लिए प्रत्यक्ष रूप में तो अहितकर ही सिद्ध जान पड़तीं। उसके ग्राहक टूटते जाते।

तीनों साझीदारों ने ग्रीनपार्क (उद्यान) के सम्मुख पिकेडिली में एक नई चित्रशाला खोली। उसमें विद्युत् प्रकाश की व्यवस्था थी। विद्युत प्रकाश से ही छायाचित्र उतारने का नूतन आविष्कार हुआ था। उस प्रकार चित्र उतारने की व्यवस्था वहाँ थी। चित्रशाला के पीछे उसकी बड़ी कर्मशाला में फ्रीजी ग्रीनी अपने छायाचित्रण यन्त्र तथा चित्र-प्रसारक के सम्बन्ध में "चल चित्र" के लिए शोध करता रहता। अपनी नवीन शोध की सूचना भी उसने छायाचित्र परिषद् को दी। प्रदर्शन हुआ। परिषद् ने देखा कि फ्रीजी ग्रीनी ने दृढ़, भंजक काँच की चकत्तियों को हटाकर उनकी जगह एक नई व्यवथा को चित्र उतारने का माध्यम बनाया है। जिलेटिन पट्टिका पर एक संवेदनशील लेप की तह जमा कर उससे छायाचित्र पट्टिका का काम लिया जाता है। चित्रप्रसारक ताल की जगह अरंडी के तेल में सिंचित कागज को ही पारदर्शक बना कर प्रयुक्त किया जाता है। किन्तु इन नवीन परिवर्तनों से उन्हें कोई बहुत भारी बात तो दिखाई न पड़ी, केवल विहंसती हुई मूर्ति की बारह क्रमिक तस्वीरें

ही दिखाई गई थीं। प्रचलित परिपाटी की काँच पट्टिका के प्रयोग देखने के ही अभ्यस्त सदस्यों को इन परिवर्तनों का प्रयोग कुछ जँच न सका। फलतः फ्रीजी ग्रीनी के आविष्कार को छायाचित्र परिषद् द्वारा कोई प्रोत्साहन न प्रदान किया जा सका परंतु फ्रीजी ग्रीनी अत्यन्त उच्चकोटि का कुशल छायाचित्रकार तो था ही, इस कारण वह छायाचित्र परिषद् का सदस्य अवश्य बना लिया गया।

छायाचित्र परिषद् से निराश होकर फ्रीजी ग्रीनी ने सीधे जनता पर ही अपने आविष्कार का महत्व प्रकट करने का उद्योग प्रारम्भ किया। उसकी चित्रशाला पिकाडिली भवन के तहखाने में थी। उसने ऊपर के एक कमरे की खिड़की पर चित्र-प्रदर्शन की व्यवस्था की। रात को एक चलती-फिरती कंकाल मूर्ति उस पर प्रदर्शित की जाती। इस नाचते कंकाल को जनता खड़ी होकर विस्मय से देखती। चलते-फिरते यात्री खड़े होकर इस दृश्य का अवलोकन करने लगते। संध्या को घर जाने वाले व्यक्ति रुककर एक गंभीर दृष्टि इस चलते-फिरते जादू पर डालते। दूकानों की सहायक भृत्या कुमारियाँ गर्दन उठा कर यह विस्मय देखतीं। कोचवान अपनी गाड़ियाँ खड़ी कर एक गहरी विस्तारित दृष्टि इस चित्र प्रदर्शन का मर्म समझने के लिए उस पर डालते। उद्यान के पर्यटक दम्पति इस तमाशे को देखने घूम पड़ते। लोगों की भीड़ इकट्ठी देख पुलिस कर्मचारी भी उसी दृश्य पर अन-जाने दृष्टि डालने आ पहुँचते। भीड़ के एकत्र होने का कारण जानने के लिए पहुँचे वे सिपाही भीड़ को हटने का आदेश देने के स्थान पर स्वयं ही इस चलते-फिरते इन्द्रजाल को देखकर नेत्रतृप्ति-सी करने लगते। सारी पटरी तथा आधी दूर तक सड़क ऐसे दर्शकों से भर जाती।

कुछ दिनों तक इसी प्रकार का तमाशा जारी रहा। सारे लन्दन में इस जादू की चर्चा होने लगी। इस कंकाल के नाचने की लीला को गुप्त पुलिस ने भी देखा-सुना। निदान एक दिन गुप्त पुलिस के एक अधिकारी ने फ्रीजी ग्रीनी को आकर सचेत किया कि सड़क पर भीड़-भभ्भड़ करने के लिए उसका चालान किया जा सकता है। अतएव वह तमाशे को बन्द कर दे। फ्रीजी ग्रीनी ने दूसरे ही दिन यह खेल बन्द कर दिया। जितना शीघ्र यह नाचता-कूदता कंकाल पर्दे पर खेल दिखाने आया था, उतनी ही शीघ्रता से वह लुप्त भी हो गया। लन्दन नगर भी इस घटना को शीघ्र भूल गया।

कुछ दिन व्यतीत हुए थे कि एक दिन विचित्र घटना हुई। फ्रीजी ग्रीनी अत्यन्त हर्षातिरेक में अपने रोम-रोम उत्फुल्लित अनुभव कर रहा था। अपने आनन्द सागर में अवगाहित करने के लिए किसी भी अन्य व्यक्ति को अवसर देने के लिए चंचल हो उठा था। निदान कोई दूसरा निकट न दिखाई पड़ने पर उसने समीप में सड़क पर खड़े पुलिस को ही अनुनय कर अपनी प्रयोगशाला में कुछ दिखाने के लिए बरबस बुलाया। पुलिस को अभिप्राय का कुछ भी आभास न मिल सका। फ्रीजी ग्रीनी ने उससे कुछ स्पष्ट बात नहीं कही थी। केवल दो कदम चलकर प्रयोगशाला आने भर तक की प्रार्थना प्रत्येक प्रकार से की थी। उसने उसे भीतर आकर बैठने के लिए भी कहा परन्तु पुलिस चौकस रह कर एक हाथ में सीटी और दूसरे में दंड सँभाले द्वार पर ही खड़ा रहा। कमरे की ज्योति बुझा दी गई। अद्भुत दृश्य दिखाई पड़ा। श्वेत भित्ति पर कितनी ही चलती-फिरती ऐन्द्रजालिक मूर्तियों का दृश्य-सा उपस्थित हुआ। पुलिस ने उससे क्या समझा, कहाँ पर किस प्रकार की सूचना पहुँचाई इस सम्बन्ध में कुछ भी कह सकना आज संभव नहीं है। परन्तु यह घटना अवश्य ही चलचित्र प्रदर्शन का एक प्रथम महत्त्वपूर्ण अवसर थी जिसमें एक चित्र नहीं, बल्कि चलता फिरता दृश्य दिखाया गया था। यह फ्रीजी ग्रीनी के चलचित्र आविष्कार का अद्भुत परिणाम ही था। उसके प्रत्यक्ष दर्शनों का आज कोई प्रमाण सुलभ नहीं है। सड़क की ओर भित्ति पर चलतेफिरते एक कंकाल

का दृश्य दिखाना बंद करनेके लिये विवश होने पर फ्रीजी ग्रीनी चुप बैठा नहीं था। उसने बड़े उद्योग से चलचित्र प्रदर्शन को अधिक सफल बनाने का प्रयत्न प्रारंभ किया। पहले तो वह एक संवेदनशील बनाये कागज की गोल लिपटी पट्टी पर अपने चित्रों की क्रमिक गति उतारता। प्रति सेकेंड आठ छायाचित्र उतार सकने में उसे सफलता मिलती। परन्तु संवेदनशील कागज का गोल लिपटन अधिक वेग से न नचाया जा सकता। इससे अधिक वेग होने पर वह फट जाता। वह खींच कर एक ताल के सम्मुख लाया जाता। एक छायाचित्र उतारा जाता। एक सेकेंड के अंश मात्र समय तक ही प्रकाश के सम्मुख रखने से उसपर चित्र उतर आता। पुनः उस भाग के ताल के सम्मुख से हटने तक प्रकाश बन्द रखने के लिए व्यवधान ही सम्मुख रहता। इसी प्रकार एक के बाद दूसरी तस्वीरें खींच कर एक सेकेंड में आठ छायाचित्र उतार लिये जाते।

फ्रीजी ग्रीनी अपने संवेदनशील कागज की दुर्बलता को भारी बाधा समझ कर उसकी स्थानापन्न अन्य वस्तु ढूँढ़ने के लिए अत्यंत चिन्तातुर था। खोजते-खोजते उसे एक वस्तु मिली जिसे आज 'सेल्यूलाइड' नाम दिया जाता है। नाइट्रो सेल्यूलोज (अग्नि तूलिका) नाम के भयानक विस्फोटक पदार्थ में कपूर संयुक्त कर देने से ही उसकी दाहक आवेश-शक्ति पता नहीं कहाँ चली जाती है और वह दैनिक उपयोग की स्वच्छ चमकीली वस्तुएँ निरापद बना सकने में समर्थ होता है, वह सेल्यूलाइड पदार्थ है जिसकी प्यालियाँ, कंघियाँ, खिलौने आदि असंख्य उपयोगी वस्तुएँ बन पाती हैं। इसी पदार्थ को लेकर फ्रीजी ग्रीनी ने अत्यंत पतला पारदर्शक रूप देकर संवेदनशील कागज या छायाचित्र उतारने की काँच-पट्टिका की जगह प्रयोग करने का प्रयास किया। हालबार्न नामक स्थल में स्थित अपनी प्रयोगशाला को सेल्यूलायड की निर्माणशाला रूप में ही परिवर्तित कर दिया। अल्फ्रेड तथा एर्नेस्ट नाम के दो सहायकों के साथ निरंतर कार्यसंलग्न रह कर अंत में उसने मनोवांछित छायाचित्र पट्टिका सेल्यूलाइड से ही बना लेने में सफलता प्राप्त की। उसके द्वारा एक मित्र तथा उसके बच्चे के आगमन तथा सड़क पर सवारी तथा पैदल चलने वालों का क्रमिक गतिद्योतक छायाचित्र लेकर उससे दृश्यपट पर भी ऐसा ही दृश्य दुहराने का प्रयास किया। कर्मचारियों से भी यह मर्म छिपा रखने के लिए सेल्यूलाइड पर उतारे छायाचित्रों की शृङ्खला से रात के अंधेरे में रविवार के अवकाश के दिन ही दृश्यपट पर सचमुच वैसा दृश्य उतार सकने का प्रयोग किया। छाया चित्र-शृङ्खला को प्रदर्शन यंत्र के प्रकाश के सम्मुख आते ही ठीक वैसा दृश्य भित्ति या दृश्यपट पर उतरा दिखाई पड़ा। उसी का पुनः प्रदर्शन पुलिस के सम्मुख किया गया था।

फ्रीजी ग्रीनी का जीवन बड़ा ही उथल-पुथल तथा व्यतिक्रमपूर्ण था। वह स्वयं शिल्प-कलाविद (मिस्त्री) नहीं था। अतएव अपने आविष्कारों की कल्पना को मूर्त रूप देने के लिए दूसरे शिल्पकला-विदों से कार्य कराना पड़ता। उसमें यथेष्ट धन व्यय करना पड़ता। जो कुछ भी पूँजी प्राप्त हो सकती, फ्रीजी ग्रीनी यन्त्रों के निर्माण में व्यय करता रहता। उसको यह आशा रहती कि एक बार सफल उद्योग होते ही सारी आर्थिक कठिनाइयाँ दूर हो जायँगी। परिणाम यह हुआ कि एक के बाद दूसरी कल्पनाएँ सम्मुख आतीं। उनको मूर्त रूप देने के प्रयत्न में उसकी शक्ति या सामर्थ्य से अधिक व्यय हो जाता। सफलता की आशा कभी पूर्णतः फलवती न दिखाई पड़ती। इन दुस्साहसिक प्रयोगों का परिणाम दुखान्त ही हो सका! नगर में कितनी ही चित्रशालाएँ उसने खोल रक्खी थीं, निजी गृह भी क्रय कर रखा था। आय-व्यय का संतुलन करने में असफल ही रहा। किसी दिन न्यायालय में अभियुक्त ऋणी रूप में उसे उपस्थित होना पड़ा। कारावास भेज दिया गया। उसकी पत्नी ने बड़ी दौड़-धूप से कुछ धन एकत्र कर उसे कारावास से छुड़ाया। चित्रशालाएँ बन्दकर देनी पड़ीं, मकान बिक गया।

साख गई, दिवालिया होने का कलंक लगा। ऋण से पूर्ण मुक्ति उसे नहीं मिली।

उर्वर कल्पनाशील फ्रीजी ग्रीनी के मस्तिष्क में कितनी ही नवीन बातें आती रहतीं। चलचित्र का प्रारम्भिक सफल रूप देखकर भी वह सन्तुष्ट नहीं था। पदार्थों, व्यक्तियों आदि की लम्बाई, चौड़ाई तथा स्थूलता के यथार्थ रूप के साथ यथार्थ रंग तथा वास्तविक गति का दृश्य ही अपने चलचित्रों में दिखा सकने की आशा रखता था। भौतिक, रसायन तथा आवश्यक विज्ञानों तथा शिल्पकला की उसे अभिज्ञता थी ही नहीं, फिर भी वह अपनी कल्पना पूर्ण करने का प्रयास करता। बिना स्याही के ही विद्युत शक्ति से कागज पर छपाई कर सकने की कल्पना ही उसने नहीं की बल्कि कम्पनी बनाकर उसका संचालक बना, भागीदारों से धन संग्रह करना प्रारम्भ किया, संचालक का वेतन भी निर्धारित हो गया। कुछ धन मिला अवश्य, परन्तु न तो ऐसे किसी भी आविष्कार का सफल मूर्त रूप बना और न कम्पनियाँ खड़ी करने के लिए सभी भागीदारों से यथेष्ट धन की ही प्राप्त हुई। एक के बाद दूसरी कितनी ही योजनाएँ उसके द्वारा प्रारम्भ होतीं। एक पूरी हो न पाती, कुछ कर दिखा नहीं पाता कि दूसरी योजना और दूसरी कंपनी की बात खड़ी हो जाती। कुछ धन भी प्राप्त कर लेता। इस तरह उसकी साख बिगड़ती गई। कंगाल बना रहा। आर्थिक कठिनाइयों ने उसकी कमर तोड़ डाली परंतु फ्रीजी ग्रीनी का साहस कभी नहीं टूटता।

२१ जून १८८९ ई० को फ्रीजी ग्रीनी ने अपने चलचित्र के प्रथम सफल उपकरण का पेटेंट कराने का प्रर्थनापात्र दिया। धन की आवश्यकता पर उसने ५०० पौंड पर एक व्यवसायी के हाथ अपना वह पेटेंट बेच दिया था। प्रति पाँच वर्ष पर उसे नया कराने के लिए शुल्क जमा करना आवश्यक था, परन्तु न तो व्यवसायी ही ने चिन्ता की और न फ्रीजी ग्रीनी ने ही शुल्क जमा करने का ध्यान रक्खा। किंतु उसकी प्रशंसा कभी-कभी होने का अवसर आता। पत्रों में कोई लेख निकल जाता। कहीं युद्ध-विभाग से ही गुब्बारे पर से चलचित्र-कला का प्रदर्शन करने का आमंत्रण मिलता जिसका शत्रु की युद्धभूमि की तैयारी ज्ञात करने में उपयोग हो सके। कभी विख्यात परिषदों के बड़े अधिवेशन में उसे भाषण का अवसर भी मिल जाता। किंतु फ्रीजी ग्रीनी के दुर्भाग्य तथा बहुमुखी कल्पनाशीलता का परिणाम विषादपूर्ण निकला। एक्स किरणों से केवल एक बटन दबा देने से ही आभ्यंतरिक अंग के ठोस पदार्थ, कील आदि का छायाचित्र उतारने की विधि में भी वह संलग्न हुआ। यंत्र बना भी लिया किंतु कोई पूछ नहीं हुई। सन् १८९५ में दीर्घकालीन रुग्णता तथा असह्य वेदना सहन कर उसकी स्त्री हेलेना ४३ वर्ष की आयु में मृत हो चुकी थी। उसकी पुत्री ईथेल सयानी हो गई थी। विवाह योग्य हो गई थी। संसार अपने साधारण मार्ग से अग्रसर होता जा रहा था। पेटेंट या विशेषाधिकार के नाम पर कोई बाधक खड़ा न होने से व्यवसायी चलचित्र बनाकर उसके प्रदर्शन के व्यापारिक पहलू से लाभ उठाने को अग्रसर हो रहे थे किंतु फ्रीजी ग्रीनी निर्द्वन्द्व था। उसे वर्तमान या भावी असुविधाओं और अधिकार-रक्षा की चिन्ता नहीं थी।

फ्रीजी ग्रीनी ने कुमारी एडिथ हेरिसन से १८९७ में विवाह कर लिया था। उसके दो सप्ताह पूर्व ही फ्रीजी ग्रीनी की पुत्री ईथेल का विवाह हो चुका था। परिस्थितियाँ अपना विषम रूप दिखाती ही रहीं। फ्रीजी ग्रीनी कभी एक से ऋण लेता। उसे किसी अन्य को सहायतार्थ पहुँचा देता। किसी ऋणदाता ने एक बार अभियोग चला दिया। प्रथम बार दिवालियापन होने के समय से वह न्यायालय द्वारा नियमपूर्वक ऋणमुक्त घोषित नहीं हुआ था। ऐसी स्थिति में ऋण लेने पर वह अपराधी सिद्ध हुआ। दो मास का कारावास हुआ। घर का सामान नीलाम होने से जो कुछ बचा उसे लेकर उसकी पत्नी एडिथ तीन पुत्रों के साथ एक छोटे मकान में अन्य मुहल्ले में जाकर रहने लगी।

जिन दिनों चलचित्र का यथार्थ आविष्कारक दो मास तक कारावास काट रहा था, उन्हीं दिनों लंदन में "भारी ट्रेन डकैती" नाम से बारह मिनट में प्रदर्शित हो सकने की लम्बाई का प्रथम चलचित्र बड़ी धूम-धाम से दिखाया जा रहा था।

चलचित्र व्यवसाय में इंगलैण्ड तो फिसड्डी था, परन्तु इसका संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में बड़ा जोर बढ़ रहा था। एक समय था जब चलचित्र के प्रारंभिक प्रयत्न में सफल होने पर विलियम फ्रीजी ग्रीनी ने वास्तविक रंग, ध्वनि तथा लम्बाई, चौड़ाई और स्थूलता (त्रियामीय) के यथार्थ रूप में चलचित्रों का प्रदर्शन करने का आविष्कार सफल करने में अमेरिका के प्रसिद्ध आविष्कारक एडिसन की सहायता प्राप्त करने का उद्योग किया था। उसने अपनी योजना का वर्णन एडिसन के पास लिख भेजा था। उसने एडिसन के फोनोग्राफ को चलचित्र के साथ सम्बद्ध कर सवाक चलचित्र बनाने की बात सोची थी किन्तु वह योजना-पत्र एडिसन की विशाल प्रयोगशाला की दराजों में कहीं पड़ा-पड़ा लुप्त हो गया।

एक विचित्र घटना हुई। फ्रीजी ग्रीनी के पास न्यूयार्क (अमेरिका) के एक चलचित्र संवाद-पत्र ने सन्देश भेजा कि वह अमेरिका आकर इस बात की साक्षी दे कि १८८९ ई० में चलचित्र का पेटेंट उसने कराया था। आने-जाने का व्यय देने के अतिरिक्त एक सहस्र पौंड का शुल्क देने का भी वचन दिया गया था। बात यह थी कि अमेरिका में चलचित्र व्यवसाय फैल रहा था। कुछ व्यवसायियों ने एक संघ बना लिया था। वे एडिसन के किसी आविष्कार को क्रय कर चुके थे तथा जो कोई नया व्यवसायी चलचित्र का यन्त्र प्रयुक्त करना चाहता था, उससे अत्यधिक शुल्क वसूल किया करते थे। प्रतिद्वन्दी व्यवसायियों को भारी अड़चन हो रही थी। उन्होंने सोचा कि संघीय चलचित्र व्यवसायियों के एकाधिकार को अवैध सिद्ध किया जा सके तो उनकी बन आवे और निष्कंटक चलचित्र व्यवसाय चला कर वे संघ के भारी शुल्क से बच सकें। इसके लिए विलियम फ्रीजी ग्रीनी को १८८९ में चलचित्र का पेटेंट लेने का प्रमाण देने में समर्थ पाकर वे जीत सकते थे। अतएव न्यायालय में मामला चल रहा था। प्रतिद्वन्दी पक्ष की ओर से ही फ्रीजी ग्रीनी की इस आदर के साथ बुलाहट हुई जिससे वह एडिसन के पूर्व अपने पेटेंट की साक्षी अमेरिकीय न्यायालय में दे सके। इतने भारी मामले के लिए तो हजार पौंड कोई वस्तु नहीं थी। विजय हो जाने पर तो एडिसन के पेटेंट की बात व्यर्थ सिद्ध होती और चलचित्र व्यवसाय पर से भारी प्रतिबंध हट जाता। निदान फ्रीजी ग्रीनी अमेरिका जा पहुँचा। उसने स्पष्ट साक्षी दी और यह भी बताया कि एडिसन के पास उसने अपनी लिखित योजना भी भेजी थी। न्यायालय ने उसको सम्मान पूर्वक प्रथम चलचित्र आविष्कारक घोषित किया। यह फ्रीजी ग्रीनी के लिए भारी सम्मान की बात थी। अपना शुल्क लेकर वह इंगलैंड लौट आया।

एडिथ की विपत्तियों का अब भी अन्त न हुआ। फ्रीजी ग्रीनी ऐसे अवसर से भी लाभ न उठा सका। इंगलैण्ड में उसकी विशेष पूछ भी नहीं हो रही थी। किसी भी योजना में वह जम कर नहीं लगता। अमेरिका जाने के कुछ ही पूर्व उसने कितनी ही हवाई योजनाएँ खड़ी की थीं। कभी रेल दुर्घटना बचाने की युक्ति निकली होती तो कभी हवाई जहाज बन खड़ा होता रहता। कभी रंगीन चलचित्र की धुन सवार रहती। एक कम्पनी शिथिल पड़ कर बन्द हो रही होती, उधर दूसरी कम्पनी खड़ी करने की तैयारी हो जाती। दिवालियापन घोषित करने का आवेदन पत्र भी किसी ऋणदाता ने पुनः दे दिया था। कुर्क अमीन आकर उसके सामान नीलाम करने की तैयारी कर रहा था। उस समय फ्रीजी ग्रीनी की पत्नी बेचारी एडिथ छठे पुत्र को प्रसव कर रही थी। इस दारुण दृश्य का अवसर १९१० में उपस्थित हुआ था।

विज्ञान समाचार

फफूंदी से बनने वाला अगर

अगर एक प्राचीन परिचित सुगन्ध युक्त लकड़ी है जिसका उल्लेख चरक सुश्रुत जैसे प्राचीन ग्रन्थों में भी है; किन्तु इसकी रचना प्रकृति में कैसी होती है ? इसका ज्ञान बहुत कम वैद्यों को है, यह होती कहा है ? इसका उल्लेख कालिदास ने भी किया है।

चम्पके तीर्णलोहित्ये तस्मिन् प्राग् ज्योतिषेश्वरे।

तद्गजलानतां प्राप्तैः सह कालगुरुद्रुमैः रघु० ४ सर्ग अर्थात् भारत के पूर्वी भाग आसाम, खसिया पर्वत-माला, सिलहट, भूटान पूर्वी बंगाल, मलक्का मलाया तक इसके वृक्ष पाये जाते हैं। आसाम की तरफ इसे सासी के नाम से पुकारते हैं, और यह इस प्रान्त में बहुतायत से होता है, यह आम जंगली वृक्ष है। इसकी लड़की को काटा जाय तो इसमें कोई सुगन्धि नहीं होती, न यह कोई सुगन्धि जाति का चन्दन जैसे वृक्षों की श्रेणी का वृक्ष है। इन प्रान्तों में एक विशेष प्रकार की फफून्दी उस वृक्ष को जब लग जाती है और उस वृक्ष का तना बीमार हो जाता है तब वृक्ष की काष्ठ

अमेरिका से भी लौटने पर ऐसी गतिविधि ही रही। किसी ने उदारतापूर्वक सहायता कर उसे सरकारी प्रयोगशाला में कोई अच्छी नौकरी दिलवा दी परन्तु वहाँ भी वह अधिक समय टिक न सका। कोई व्यवसायी रंगीन चलचित्र तैयार करने की अभिरुचि रखता था। उसके कार्य में हाथ बटाने के लिए फ्रीजी ग्रीनी ने इस सरकारी नौकरी से भी त्यागपत्र दे दिया। यह बात उसकी पत्नी की निरंतर यातनाओं को और भी असह्य बनाने वाली थी। वह इससे भी अधिक कष्ट पुनः सहन के लिए विवश होना नहीं चाहती थी। अतएव अपने पति के प्रति प्रगाढ़ अनुरक्ति रखते हुए भी उसने उसको छोड़ कर एक होटल में जीविकार्जन भर कर लेने के लिए नौकरी कर लेने की बात पति से प्रकट की। फ्रीजी ग्रीनी अकेला रह गया।

फ्रीजी ग्रीनी की अवस्था साठ वर्ष की हो रही थी। इंगलैण्ड में चलचित्र व्यवसाय पनप न सका था। अमेरिका में बने चलचित्र ही दिखाये जाते रहे। इस स्थिति में सुधार के लिए १९२१ में इंगलैंड के चलचित्र व्यवसायियों की एक पंचायत-सी करने के लिए लार्ड वीवरब्रुक ने सभा आयोजित की। उन्होंने किसी भी दल या चलचित्र व्यवसाय से अपने को असम्बद्ध बता कर निष्पक्ष रूप से सब दलों को एकत्र होकर चलचित्र व्यवसाय को पनपने का अवसर देने का प्रयास किया। दलगत प्रश्न इतने उठे कि सभा में हंगामा मच गया। कोई किसी कि सुन न रहा था। लार्ड वीवरब्रुक की बात भी अनसुनी-सी हो रही थी। निदान एक व्यक्ति के मञ्च से भाषण करने की घोषणा हुई। वह फ्रीजी ग्रीनी था। सब लोग शान्त हुए। फ्रीजी ग्रीनी ने अपने उद्गार इतने अधिक व्यक्त किये, अनर्गल-सी बातें भी बक कर अपने दीर्घकालीन उपेक्षित रहने की बात को उस समय लोगों को एक बार ही सुना जाने का प्रयत्न-सा किया। उसकी आवाज बढ़ती ही गई। अन्त में वह निश्शब्द होकर पीछे धड़ाम से गिर पड़ा। शरीर से आत्मा निकल गई।

यह चलचित्र के महान् आविष्कारक का अन्त था। उसकी जेब में कुल डेढ़ शिलिंग पड़े थे। यही उसकी सब कुछ बची निधि थी। संसार में वह अकेला रह गया था। उसको बड़ी धूमधाम से समाधि प्रदान की गई। १९५१ में जब शतवर्षीय विज्ञान-उन्नति समारोह मनाया जा रहा था तो इंगलैण्ड के सभी चलचित्र व्यवसायियों ने संयुक्त प्रयत्न से "मैजिक बाक्स" (ऐन्द्रजालिक सन्दूक) नामक चलचित्र चलचित्र के महान आविष्कारक फ्रीजी ग्रीनी का जीवन चित्रित किया गया। फ्रीजी ग्रीनी ने मरने के कुछ पूर्व कहा था कि किसी दिन लोग उसका चलचित्र बनावेंगे। वह बात सच होकर रही।

रचना में विशेष परिवर्तन आ जाता है। जैसे-जैसे वह फफूंदी उस वृक्ष के भीतर प्रवेश करती जाती है उस वृक्ष की लकड़ी का वर्ण बदलता जाता है, धीरे-धीरे उस वृक्ष का वह भाग जिस अंश में उस फफूंदी का बास होता है उसमें विशेष तैलांश और राल सदृश पदार्थ की वृद्धि होती चली जाती है और लकड़ी का वह अंश उसके रेशे आदि गल कर काले ठोस वर्ण में बदलते चले जाते हैं। जितना उस वृक्ष का भाग अधिक काला होता चला जाता है वह उतना ही अधिक सुगन्धि पूर्ण हो जाता है। वास्तव में उस लकड़ी के भीतर उस फफूंदी के अधिक गहरे प्रवेश होने से जैसे-जैसे वह फफूंदी बढ़ती है वैसे-वैसे उसके जीवन व्यापार द्वारा उस वृक्ष के काष्ठोज भाग तक पहुँचने वाले पोषक रसों से उस फफूंदी प्रभाव के कारण सुगन्ध पूर्ण उद्वायी तेल तथा सर्जसर के अणुओं की रचना होती ही रहती है, जितने अधिक समय तक इस फफूँदी का प्रभाव उस वृक्ष पर होता रहता है वह वृक्ष उतना उस अंश में सुगन्ध पूर्ण हो जाता है और इस काष्ठ के जितने अंश में जितना अधिक प्रभाव हो जाता है उस काष्ठ का उतना भाग घुल मिल कर ठोस बन जाता है, इसी लिये वह अंश अन्य भाग की अपेक्षा बहुत भारी हो जाता है, इतना भारी कि उसकी वह लकड़ी जल में डूब जाती है।

अगर की इस प्रकार उत्पति का आभास कुछ पूर्वाचार्यों को भी हुआ था, यह बात उनके रखे दो नामों के ज्ञात होती है अगर का एक नाम क्रिमिजन् है अर्थात् किसी क्रिमि से उत्पन्न होने वाला, दूसरा नाम है जोंगकम् अर्थात् जोंग वर्जने धातु से जोंगक बना है जिसका अर्थ है उस वृक्ष के मूल घटकों को हटा कर उसके स्थान को ग्रहण कर लेना।

मीर मुहम्मद एक यवनानी का लेखक १७७० में हुआ, जिसने इसके सम्बन्ध में लिखा है कि अगर की लकड़ी जब सड़ती है तब इसके विकृत भाग में सुगन्धि व्याप्तमान् हो जाती है, उसे भी उस समय इस बात का आभास मिला था कि यह सुगन्धि वृक्ष की लकड़ी के सड़ने पर उत्पन्न होती है। इस बात को तो वहाँ के निवासी भी जानते हैं कि इस वृक्ष में जब कुछ खराबी उत्पन्न होती है तब कुछ समय के बाद ही उन भागों में सुगन्ध उत्पन्न होने लगती है, अबके अनुसन्धानों से यह ठीक तौर पर जान लिया है कि यह फफूंदी किस श्रेणी की है और इसका क्या नाम है। अब तो इस फफूंदी को उन वृक्षों में लगा करके इसकी वृद्धि करने की सोच रहे हैं क्योंकि इससे जो उद्वायी इत्र प्राप्त होता है वह चन्दन के तेल वत् अन्य लवेण्डरों को आधार के रूप में प्रयोग करने से उन इत्रों की गन्ध का स्थायित्व बढ़ा देता है और वह अधिक देर तक सुगन्धि देते रहते हैं।

देश विभाजन से पूर्व असाम के सिलहट जिले में अगर इत्र निकालने के अनेक कारखाने मुसलमानों द्वारा चलाये जाते थे और वहाँ से इसका इत्र काफी मात्रा में आता रहता था, किन्तु उनके चले जाने के बाद से वह सारे कारखाने बन्द हो गये, तब से इसको लकड़ी की निकासी भी कम हो गई और अब यह दशा है कि इस समय अगर की वह लकड़ी ४-५ रु० सेर बाजार में बिक रही है।

इसकी अच्छी काली लकड़ी में १·५ से लेकर २·९ प्रतिशत तक उद्वायी तेल होता है जिसे साधारण बोल चाल में अगर का इत्र कहते हैं। इसकी विलायत में अच्छी माँग है और चन्दन तेल के मुकाबले में इसकी कीमत मिलती है।

विषय सूची

Reg. NO. 32

विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

परिषद् का उद्देश्य

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद् का संगठन

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार सभ्यगण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उप-सभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमन्त्री, दो मन्त्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्य को ६) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ १०० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिए वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशन में उपस्थित रहने का तथा अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित, परिषद् की सब पुस्तकों, पत्रों, तथा विवरणों इत्यादि को बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य वृन्द समझे जायेंगे।

प्रधान संपादक—डा० *हीरालाल निगम*

सहायक संपादक—*श्री जगपति चतुर्वेदी*

आर्ट प्रिन्टर्स, जीरो रोड, इलाहाबाद—३ प्रकाशक—विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद

मई १९५४

वृष २०११

भाग ८०

अंक २

वार्षिक मूल्य चार रुपए

प्रति अंक छः आने

Approved by the Directors of Education, Uttar Pradesh
and Madhya Pradesh for use in Schools,
Colleges and Libraries

विज्ञान

विज्ञानं ब्रह्मेति व्याजानात, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० ।३।५

संख्या ८० | वृष २०११, मई १९५४ | अंक २

विज्ञान की प्रगति में वैज्ञानिकों का योगदान

श्री डेटलेव डबल्यू० ब्रोंक, सभापति राकफेलर इंस्टिट्यूट

आज के तीव्र परिवर्तनशील युग में विज्ञान की अविच्छिन्नता तथा अपने अग्रजों द्वारा प्राप्त उत्तराधिकार के मूल्यों पर ध्यान देना समीचीन है। क्योंकि उन उद्देश्यों तथा आदर्शों में एक अक्षुण्ण जीवन शक्ति है जो वैज्ञानिकों को उत्प्रेरित करती है तथा उन्हें विभिन्न एवं परिवर्तनशील परिस्थितियों में विज्ञान की प्रगति करने में समर्थ बनाती है। किन्तु इतिहास के आलेखों से हमें यह स्मृति दिलाती है कि विज्ञान की अबाध उन्नति के लिए आवश्यक है कि वैज्ञानिक विषम सामाजिक दबाओं का सामना करें। यदि हम अनियंत्रित शक्तियों द्वारा बहक जाते रहें तो अविच्छिन्न उन्नति होनी सम्भव नहीं।

विज्ञान की साँग उन्नति निश्चयात्मक रूप से होने देने के लिए हमें आवश्यक है कि अभी परिवर्तनशील संस्कृति में उसका स्थान समय-समय पर पुनर्निधारण करते रहें तथा विज्ञान की प्रगति के उपयुक्त परिस्थितियाँ पुनः निर्मित करते रहें। आज ऐसा करने की विशेष ही आवश्यकता है। विज्ञान ही मनुष्यों के जीवन तथा विचार धारा एवं राष्ट्रों के भाग्य सूत्र का रूप निर्माण करता है; अतएव अनेक ऐसे व्यक्ति जो वैज्ञानिक नहीं हैं, या तो सेवा भावना से या अधिकार प्राप्ति की लालसा से उन परिस्थितियों एवं नीतियों के निर्धारण में प्रवृत्त होते हैं जिनमें वैज्ञानिकों को अनिवार्यतः कार्य करना पड़े। आधुनिक जीवन के लिए वैज्ञानिक शोध तथा ज्ञान अनिवार्य अवयव हैं; सभ्यता के परिवर्तनशील ढांचे वैज्ञानिक कार्यकलापों की गतिविधि तथा रूप से प्रभावित होते हैं तथा बाद में उन पर अपना प्रभाव भी डालते हैं। यही बात है जिस कारण कुछ ऐसे लोग जो न तो वैज्ञानिक हैं और न किसी शोध क्षेत्र में प्रत्यक्ष भाग लेने वाले विद्वान हैं प्रशासक तथा संरक्षक वर्ग में लिए जाते हैं जो विज्ञान के

कार्यों तथा उसके प्रयोगों के नियंत्रण में प्रमुख हाथ रखते हैं। विज्ञान को समझ सकने की शक्ति का अभाव तथा विज्ञान के पनप सकने योग्य परिस्थितियों की अज्ञानता कोई शोभनीय बात नहीं है। जो परिषदें या समितियाँ वैज्ञानिक संस्थाओं का नीति-निर्धारण करती हैं तथा इस वैज्ञानिक युग में राष्ट्र का भाग्य निर्माण करती हैं उनमें वैज्ञानिकों का अत्यधिक असंतोषजनक प्रतिनिधित्व खटकने की ही बात है।

दो बातों की आवश्यकता है। शासन के उत्तरदायी आदर्शों तथा परम्पराओं की अधिक अभिज्ञता तथा उपादेयता की अनुभूति होनी चाहिए। ऐसी दयनीय स्थिति के लिए वैज्ञानिक भी अंशतः दोष के भागी कहे जा सकते हैं। शिक्षण के कार्यों तथा जनता को दी गई सूचनाओं में हम अपने शोधों तथा उनके उपयोगी व्यवहारों की बात तो बहुत अधिक बतलाते हैं, परन्तु एक भारी बौद्धिक अभियान रूप में विज्ञान को हम ने बहुत अपर्याप्त ढंग से ही अभिव्यक्त किया है। जब तक विज्ञान की इस शक्ति का यथेष्ट अनुभव न किया जाय, हमें सदा उन विषम दशाओं में पड़ते रहना पड़ेगा जो अनभिज्ञता के कारण उत्पन्न होते हैं।

जिन मार्गों से वैज्ञानिक शोध तथा शिक्षण कार्य करते हैं तथा अपनी सामाजिक देन प्रदान करते हैं, उनका सर्वोत्तम रूप में निर्धारण वैज्ञानिक ही कर सकने योग्य हैं। अतएव हमने जो दूसरी बात को ओर इंगित किया है, वह हमारे विश्वविद्यालयों तथा अनुसंधान शालाओं के संचालनकर्त्ताओं सरकारी तथा व्यक्तिगत विज्ञान परिषदों तथा शिल्प विज्ञान संस्थाओं के प्रबन्धकों में अधिक संख्याओं में वैज्ञानिकों को रखना है। सरकारी उच्च स्तर के कर्मचारियों में भी अधिक संख्या वैज्ञानिकों की होना आवश्यक है।

हमारी संस्कृति की एक आधार भूत तथा अभिनन्दनीय वृत्ति जनसेवाकांक्षी नर नारियों में हमारी निश्शुल्क संस्थाओं के लिए निस्स्वार्थ सेवा दान करने की परम्परागत अभिलाषा है। यही हमारे उत्तराधिकार तथा भावी के संरक्षक हैं। प्रजातंत्रात्मक शासन के कार्यों में निस्स्वार्थ योग दान करने की बात भी ऐसी ही है। यदि आधुनिक संस्कृति की आवश्यकताओं के लिए ऐसी परम्पराओं का उपयोग करना है तो अधिक संख्या में वैज्ञानिकों, इंजीनियरों तथा चिकित्सा शास्त्रियों को प्रबन्धक समितियों तथा सरकार के प्रशासकीय तथा विधिनिर्मायक विभागों में स्थान मिलना चाहिए।

स्कूलों तथा विश्वविद्यालयों का अधिक ध्यान वैज्ञानिक शिक्षण तथा शोध के साधनों पर रहता है किंतु उनकी प्रबन्धक समितियों में बहुत थोड़े वैज्ञानिक ही पाए जाते हैं। जो व्यक्ति हमारे राज्य नियम (विधि) का निर्माण करते हैं तथा जो देश का शासन सूत्र संचालन करते हैं, वे इस वैज्ञानिक युग की समस्याओं का सुलझाव करते हैं, परन्तु देश की प्रतिनिधि सभा (काँग्रेस) या राष्ट्रपति के मंत्रिमण्डल में आप कदाचित् ही कोई प्रशिक्षित वैज्ञानिक या इंजीनियर देख सकते हैं। मैं विधि-निर्मायकों उद्योगपतियों तथा धनपतियों की बुद्धि का आदर करता हूँ। अगणित वैज्ञानिकों से मुझे परिचय प्राप्त कर सकने का अवसर मिल सका है, उनकी बुद्धि का भी आदर करता हूँ। समाज अपने मार्ग निर्देशन में उनकी सहायता चाहता है। यह कार्य तो वैज्ञानिकों को प्रशासक वर्ग में स्थान ग्रहण करने से ही हो सकता है। केवल परामर्शदाता रहने या बाद में भूलों का संशोधन करने से कुछ नहीं बनता।

तीव्र परिवर्तन काल में जब मनुष्य के साहस की परीक्षा होती है, यह स्वाभाविक है कि लोगों में पूर्व समय की मनोकल्पित शांति स्थापित रहने की आकांक्षा दिखाई पड़े। ऐसे उथलपुथल के समयों में यह स्वाभाविक ही है कि स्त्री और पुरुष जब-तक क्रान्ति का अनुभव करें तथा सभ्यता की उन्नति संचालित रखने के लिए आवश्यक प्रयत्नों तथा त्याग के लिए विषाद करें। किन्तु भूतकाल के आलेखों से ज्ञात होता है कि ऐसा कोई समय नहीं था जब मनुष्य की शोध

भावना भीरु प्रति-क्रियावादी शक्तियों की धमकी के विरुद्ध सुरक्षित रही हो। वह भावना वीरतापूर्ण उद्योगों से ही रक्षित रह सकी तथा मनुष्य की अपनी मर्यादा तथा ज्ञानवृद्धि की शक्ति में विश्वास ही उस भावना को जीवित रख सका। मानव इतिहास में हमें ऐसा कोई समय नहीं दिखाई पड़ता जब मनुष्य ने अपनी शक्ति का उपयोग ज्ञानवृद्धि में न किया हो तथा नव अर्जित ज्ञान को अपना जीवन क्रम परिवर्तित करने में उपयोग न किया हो। परिवर्तन में ही आशा और वृद्धि है, सुरक्षा में भावना की केवल निष्क्रियता है।

एक वैज्ञानिक होने के नाते मैं बौद्धिक अभियान को वैज्ञानिक शोध तथा जिज्ञासा रूप में देखता हूँ। एक बृहद् विद्वत् समाज के सदस्य होने के नाते हमें विज्ञान में उन सभी महत्वपूर्ण ज्ञानों का समावेश मानना चाहिए जो जीवन को सम्पन्न बनाते हैं। वैसे व्यापक रूप में विज्ञान मानव-भावना का एक महान आदर्श है। इस कारण विज्ञान की तीव्र प्रगति के इस युग को हम संस्कृति का विनाश करने की ओर बढ़ते नहीं मान सकते। मेरी दृष्टि में भविष्य एक आशान्वित नव प्रभात बेला है जिसमें महानन्तर तृप्ति की घड़ी उदय होगी। यदि मैं विज्ञान को केवल मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला मानता तो ऐसे आशान्वित भविष्य की कल्पना नहीं करता। यदि विज्ञान को हम केवल अपनी वर्तमान स्थिति ही सुरक्षित रखने का साधन मानते तब तो हमारी आशा और भी न्यून होती।

जो लोग आधुनिक काल की व्याधियों का कारण विज्ञान की प्रगति को ही बतलाते हैं, उन्हें मानव-यातनाओं की कथा पुनः पढ़ना चाहिए। विज्ञान के इतिहासकार डोरोथी स्टिमसन ने उन दिनों का निम्न शब्दों में वर्णन किया है जब आज सेतीन शताब्दियों पूर्व आधुनिक विज्ञान ने अपनी मन्द प्रगति का प्रारंभ किया, "युद्ध मच रहे थे। अनियंत्रित अधिनायकों की विभीषिका फैल रही थी जनता अपनी मातृ-भूमि से निर्वासित होकर दूरस्थ देशों में जाकर शरण लेने को विवश हो रही थी। मनुष्य की व्यक्तिगत स्वतंत्रता हरण कर ली गई थी, साहसी लेखनी पर प्रतिबन्ध लगे थे, मिल्टन मुद्रणशालाओं की स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहा था। यह एक भयानक परिवर्तन का युग था।"

इस समय के रक्तपात को विज्ञान की प्रगति का श्रेय नहीं दिया जा सकता। वह तो उत्कृष्टतर मार्गों के लिये परिवर्तन उपस्थित करने की दुर्दमनीय उत्कंठा ही थी जिसने विज्ञान की प्रगति का संचार किया। उस समय के तथा वर्तमान अस्थिर युगों को ही ऐसे युग कहा जा सकता है जिनमें मानव प्रगति के लिए महत्वपूर्ण पग रक्खे गए।

उन्नति के लिए साहस की आवश्यकता होती है। यदि विज्ञान की प्रगति में हम उचित योग दान करना चाहते हैं तो हमें असीम साहस की आवश्यकता है। इसके लिये हमारी पूर्व परम्पराएं तथा हमारे धन्धों के रूप उपयुक्त हैं क्योंकि हम अनुसंधानक तथा नवीन ज्ञान के शिक्षक हैं। उसके श्रेय के लिए अन्यों को भी विवाद करते अवश्य पाया जाता है। अतएव विज्ञान में भीरुओं का स्थान नहीं है, जो शोध कार्य तथा निरपेक्ष रूप में स्वतंत्र मीमाँसा कर सकने की स्वतंत्रता रक्षित करने के लिए अनिच्छुक हों। विज्ञान की प्रगति के लिए ऐसे साहसी की नितान्त आवश्यकता है जो प्रतिक्रियावादी शक्तियों से मुठभेड़ कर सके।

हमने विज्ञानशालाओं तथा कक्षाओं से बाहर वैज्ञानिकों के कार्य-क्षेत्र के सम्बन्ध में जो बातें कहीं हैं उसके बाद हम यह भी कह सकते हैं कि हम लोग स्वयं ही विज्ञान की प्रगति में अपनी इस माँग के कारण अवरोध उत्पन्न करते हैं कि जो लोग योग्य विज्ञान शिक्षक तथा शोधकर्ता हैं वे प्रशासन क्षेत्र में जाने पर विज्ञान का परित्याग कर दें। ये दोनों कार्य परस्पर विरोधी नहीं हैं। यदि हम प्रशासक पद की व्यर्थ महत्ता न बढ़ा समझें तो ये दोनों परास्पर अनमेल नहीं हैं। दुर्भाग्य वश हमारे देश में

[शेष पृष्ठ ३८ पर]

ग्रेगर जोहान् मेण्डेल

ले०—डा० रामचरण मेहरोत्रा, रसायन विभाग, प्र० वि० वि०

विज्ञान के आरम्भिक इतिहास में प्रायः ऐसे दृष्टान्त मिलते हैं कि वैज्ञानिक के जीवन-काल में उसके कार्य्य को कोई प्रोत्साहन न मिला हो किन्तु उसकी मृत्यु के कुछ ही वर्ष बाद संसार को सहसा ही बोध होता है कि अमुक वैज्ञानिक का कार्य कैसा महत्वपूर्ण था। श्री ग्रेगर जोहान् मेण्डेल इसी श्रेणी के वैज्ञानिकों के एक अत्यन्त प्रतिभाशाली उदाहरण थे। इनकी वैज्ञानिक शिक्षा लगभग नहीं के बराबर थी। इनकी प्रयोगशाला थी—अपने गिरजाघर के बाग में एक छोटी सी क्यारी। अनुसन्धान कार्य के लिए प्रेरक शक्ति थी—प्रकृति के प्रति इनका अनुराग तथा उसके भेद जानने की उत्कण्ठा। अपनी लगन ही के कारण हर प्रकार की कठिनाइयों के बीच, वैज्ञानिक संसार में लगभग अनजाने मेण्डेल ने ऐसा महत्वपूर्ण कार्य्य किया कि आज इनकी गिनती संसार के इने-गिने वैज्ञानिकों में होती है। Heredity या आनुवंशिकता के बारे में इन्होंने जो कार्य्य किया है उससे जीव-शास्त्र का प्रत्येक विद्यार्थी भली भाँति परिचित है और मेण्डेल के नाम से सम्बन्धित नियम यह बतलाते हैं कि किस प्रकार वंश के लक्षण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में प्रकट होते हैं। इन्होंने अपना यह प्रसिद्ध कार्य्य १८६६-६७ में प्रकाशित किया था, परन्तु किसी भी वैज्ञानिक का ध्यान इस ओर आकर्षित नहीं हुआ। लगभग ३० वर्ष पश्चात् कोरेन तथा शेरमाक नामक वैज्ञानिकों ने जब इनके प्रयोगों को दुहराया, तब संसार को इनके नियमों के महत्व का ज्ञान हुआ। तब से आज तक विविध क्षेत्रों में मेण्डेल के नियमों की परीक्षा होती रही है और प्रति वर्ष मेण्डेल के कार्य को विस्तृत करते हुए सैकड़ों अनुसन्धान-लेख आज भी प्रमुख वैज्ञानिक पत्रिकाओं में छपते रहते हैं।

इस मेधावी पुरुष का जन्म २२ जुलाई, १८२२ को आस्ट्रिया में साइलेशिया की सीमा पर स्थित एक छोटे से गाँव मैहरेन में एक गरीब किसान के घर हुआ था। इनके पिता को बागवानी से विशेष रुचि थी और इस प्रकार अपनी भविष्य की प्रयोगशाला की मुख्य शिक्षा इन्हें बचपन में अपने पिता जी से ही मिली। मेण्डेल ने अपने बचपन का बहुत समय पेड़ पौधों की सेवा में बिताया। यह स्वाभाविक ही था कि आरम्भ ही से इन्हें प्रकृति के इन खिलौनों के प्रति विशेष अनुराग हो गया। परन्तु साथ ही इस कुशाग्र बुद्धि वाले बालक के मन में अनेकों प्रश्न उठने लगे। वह प्रायः अपने पिता से पूछते कि "इन फूलों के विविध रंग कहाँ से आते हैं? किसी पौधे की पत्तियाँ गोल और किसी की नोकीली क्यों होती है?" उसके पिता उसे केवल ईश्वर की लीला कह कर उसकी शंका समाधान करने का प्रयास करते, परन्तु इस जिज्ञासु बालक को संतोष न होता।

बालक की कुशाग्र बुद्धि को देख कर अपनी निर्धनता का विचार न करते हुए उसके पिता ने उसे पास ही के कस्बे ट्रोब के एक हाई स्कूल में शिक्षा के लिये भेजा। गरीबी के कारण उसे दोनों समय भर पेट खाना भी कठिनाई से मिल पाता था। उसी बीच उसके पिता के साथ एक दुर्घटना हुई कि पेड़ काटते समय उसका तना टूट कर उनके सीने पर गिर पड़ा जिससे कुचल कर वह लगभग पंगु हो गए। निस्सहाय उन्होंने अपना खेत बेच कर जो रुपया मिला उसमें से आधा जोहान को पढ़ाई के लिए

और आधा अपनी अविवाहिता पुत्री थेरेशिया को दहेज-स्वरूप दे दिया। जोहान अपने भाई बहिनों को भी कैसा प्यारा था इसका प्रमाण इसी से मिलता है कि थेरेशिया ने यह सब रुपया अपने भाई को उसकी पढ़ाई के खर्चे के लिए सौंप दिया। जोहान इस अहसान को कभी न भूल सका और जब वह कमाने योग्य हुआ तो थेरेशिया के तीन बच्चों की पढ़ाई और पालन-पोषण का कुल भार उसने अपने ऊपर लेकर इस ऋण को चुकाया।

इस प्रकार कठिनाइयों का सामना करते हुए मेण्डेल ने अपनी शिक्षा समाप्त की और २१ वर्ष की आयु में ब्रून की एक मोनैस्ट्रीय या गिरिजाघर में स्थान मिल गया। यहीं उन्हें ग्रेगर का नाम मिला। गिरजाघर के अधिकारियों ने उसकी कुशाग्र बुद्धि को देख कर उसे वियेना विश्वविद्याल में भौतिक विज्ञान की शिक्षा के लिये भेजा। ब्रून वापस आकर गिरजाघर में रहते हुए उसने एक स्कूल में अस्थायी शिक्षक का कार्य्य भी आरम्भ कर दिया। वह एक बड़ा ही सफल और अपने विद्यार्थियों में सर्वप्रिय शिक्षक था। परन्तु इस क्रियाशील व्यक्ति को केवल गिरजाघर के कार्य्य तथा शिक्षण से संतोष न मिल पाता था—सौभाग्य से इस गिरजाघर से लगा हुआ एक बाग भी था। मेण्डेल अपने अवकाश का सब समय इसी बाग में पेड़-पौधों के बीच व्यतीत करता था। इस प्रकृति-प्रेमी नवयुवक के सब पेड़ पौधे मित्र से थे और उनकी देखभाल बचपन से बुढ़ापे तक करने में उसे विशेष आनन्द की प्राप्ति होती थी। सदैव से अपने मन में उपस्थित जिज्ञासा की शान्ति के लिए लगभग १८५८ में उसने मटर के पौधों के प्रजनन पर अपने प्रयोग आरम्भ किए। विभिन्न रूप रंग तथा कद के २२ प्रकार के मटर चुन कर उसने उनको मिल जुलाकर नए प्रकार के मटर पैदा करने के प्रयोग किए और इसका विशेष रूप से अध्ययन किया कि बीजों के मिलाने जुलाने से पौधों के गुणों पर किस प्रकार प्रभाव पड़ता है। निरन्तर आठ वर्षों तक इस प्रकार प्रयोगों को करने पर वह निम्न निष्कर्षों पर पहुँचे—

१—जब दो प्रकार के पौधों को मिलाकर उगाया जाता है, तो अगली पीढ़ी के सब पौधे एक समान होते हैं। इसे प्रजनन की समता या uniformity का नियम कह सकते हैं। उदाहरण के लिए एक लाल और एक सफेद फूल का ocrss-breeding या संकरीकरण करने पर प्राप्त सब फूल भूरे रंग के होंगे।

२—जब उपर्युक्त सम-प्रजनन नियम द्वारा प्राप्त पौधों को संकरीकृत किया जाता है, तो सब पौधे एक से नहीं निकलते परन्तु प्राप्त पौधों में एक वर्ग के अनुसार कई विभागों में बँट जाते है। इसे विभक्तीकरण या segregation का नियम कह सकते हैं। उदाहरण के लिए यदि सफेद और लाल फूलों के संकरीकरण से प्राप्त भूरे फूलों को परस्पर मिलकर नए फूल उगाए जाएँ, तो प्रत्येक आठ पौधों में से दो में लाल, दो में सफेद और बाकी चार में भूरे फूल निकले। इस दूसरी पीढ़ी के लाल फूलों के सङ्करीकरण से सदैव लाल फूल होंगे और सफेद फूलों से सफेद। परन्तु भूरे फूलों के बच्चों में पहले की भाँति प्रत्येक आठ फूलों में २ लाल २ सफेद और ४ भूरे होंगे। इसी प्रकार तीसरी पीढ़ी के फूलों से मेण्डेल के विभक्तीकरण नियम के अनुसार अगले पीढ़ियों के फूल प्राप्त होंगे।

यहाँ मैंने इन नियमों को बहुत सरल रूप में व्यक्त कर दिया है और विशिष्ट अवस्थाओं में इन नियमों से विचलन भी होता है। इन सब अवस्थाओं का विस्तृत अध्ययन करके मेण्डेल ने अपने निष्कर्षों को १८६६ में ब्रून की एक वैज्ञानिक पत्रिका में छापा। जैसा ऊपर संकेत किया जा चुका है कि समकालीन किसी भी वैज्ञानिक ने उसकी गवेषणाओं के महत्व को न समझा। फिर भी उस साहसी युवक की क्रियाशीलता में कोई अन्तर न आया। साथ ही वह मधुमक्खियों की की आनुवंशिकता पर महत्वपूर्ण प्रयोग कर रहे थे। विभिन्न महाद्वीपों से रानी-मक्खियों को एकत्रित

कर उन्होंने उनके प्रजनन पर विस्तृत प्रयोग किए। अभाग्यवश उन प्रयोग फलों का अधिकांश भाग उन्होंने कहीं छपाया नहीं और संसार उनके विशेष लाभ न उठा पाया। परन्तु विद्यार्थियों को उनके इन अनुसन्धानों का वृतान्त सुनने में विशेष आनन्द मिलता था। वे अपने गोल मटोल नाटे से अध्यापक को बहुत पसन्द करते थे और बहुत ही शौक से उसकी कक्षाओं में एकत्रित होते थे।

सन् १८६८ में इन्हें अध्यापन कार्य्य बन्द करना पड़ा क्योंकि इन्हें गिरजाघर का प्रधान नियुक्त किया गया। इनके जीवन के आगामी वर्ष शान्तिपूर्वक न व्यतीत हुए क्योंकि गिरजाघर पर लगाए एक नए टैक्स का विरोध करने के कारण इन्हें सरकार से होड़ लेनी पड़ी। इसके अतिरिक्त आस्ट्रिया के अन्तर्जातीय झगड़ों के कारण भी उन्हें अपने जीवन के अन्तिम काल में अत्यन्त कष्ट मिला। इस प्रकार इनके जीवन के अन्तिम १० वर्ष शान्ति से न बीत सके और ६ जनवरी १८८४ को इस महापुरुष ने अपनी जीवन यात्रा समाप्त की। इनकी मृत्यु पर अनेकों मित्रों ने दुख प्रकट किया और इनके स्वभाव तथा चरित्र की भूरि-भूरि प्रशंसा की परन्तु उस समय किसी को यह आभास न हुआ था कि शीघ्र ही इनकी गिनती संसार के प्रमुख वैज्ञानिकों में होने लगेगी।

मेण्डेल के जीवन से हम बहुत शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। मैं केवल एक विशेष बात की ओर ध्यान दिलाऊँगा। मेण्डेल ने प्रकृति की प्रयोगशाला में बिना किसी विशेष प्रसाधनों के अपना महत्वपूर्ण कार्य्य पूरा किया था। हम नवयुवकों के लिए यह बड़ी ही शिक्षाप्रद तथा आशाजनक बात है कि हमारे कार्य्य की सफलता प्रसाधनों के ऊपर नहीं निर्भर करेगी वरन् लगन तथा परिश्रम से हम प्रतिकूल परिस्थितियों पर भी विजय प्राप्त कर सकते हैं।⁂

⁂आल इंडिया रेडियो के सौजन्य से।

विज्ञान की प्रगति में वैज्ञानिकों का योगदान

[पृष्ठ ३५ का शेष]

प्रशासक को विद्वान की अपेक्षा अधिक आदर करने की वृत्ति है।

वैज्ञानिक को केवल शिक्षक तथा शोधकर्त्ता रूप में ही देखने की परिपाटी है। इसके अनेक प्रमुख उपवाद हो चुके हैं। उदाहरणतः बेंजमिन फ्रैंकलिन है। इन लोगों के लिये शोधकार्य जीवन का एक आवश्यक तथा अटूट अवयव रहा है जिसका उन्होंने कभी स्थायी रूप से परित्याग नहीं किया अन्य कार्यों से प्रकृति के मर्म जानने की जिज्ञासा उनमें प्रेरित होती थी! उन्होंने वैज्ञानिक ज्ञान तथा आदर्शों को सामाजिक समस्याओं के समाधान में लगाकर अपने समय की सभ्यता को सम्पन्न बनाया। ऐसे रूप में फ्रैंकलिन ने भी कार्य किया जब उसने इंगलैंड से अमेरिका के उपनिवेश द्वारा युद्ध छिड़ने पर १७७६ ई० में संयुक्त राष्ट्र की कांग्रेस द्वारा नियुक्त सभी लड़ाकू जहाजों के कप्तानों को निम्न बुद्धिमत्ता पूर्वक आदेश घोषित किया था :—

"महाशयो, इस युद्ध के छिड़ने के पूर्व एक जहाज अत्यंत यशस्वी नाविक तथा अनुसंधानकर्त्ता कप्तान कुक के नियंत्रण में अज्ञात समुद्रों की खोज करने के लिए इंगलैंड से तैयार होकर चला था। यह एक ऐसा कार्य है जो स्वयं प्रशंसनीय है क्योंकि भौगोलिक ज्ञान की वृद्धि से दूर दूर के देशों के मध्य आवागमन, उपयोगी वस्तुओं के आदान प्रदान। कला तथा विज्ञान की वृद्धि होने से मानव कल्याण होगा। इसलिए आप से निवेदन है कि उपर्युक्त जहाज को आप अपने हाथ में आता देखें तो उसे शत्रु न समझें। न उसे लूटें ही। और न उसकी यात्रा में कोई बाधा पहुँचायें।"⁂

———

⁂विज्ञान संवर्द्धिनी परिषद, अमेरिका के १९५३ के वार्षिक अधिवेशन में दिया हुआ भाषण।

लोहा

ले०—श्री गोलोकबिहारी चौधरी, बी० एस-सी०, श्री कुंज, नाथनगर, भागलपुर

परिचय और इतिहास:—धातुओं में जितना हम लोहे का व्यवहार करते हैं उतना और किसी धातु का नही। लोहा हमारे जीवन से अभिन्न सा हो गया है वस्तुतः वर्तमान युग को लौह युग कहते हैं। संसार का कोई भी प्रदेश ऐसा नही है जहाँ लोहे के धातव-पत्थर न्यूनाधिक मात्रा में नहीं पाये जाते हों। यह शुद्ध धातु के रूप में नहीं पाया जाता है बल्कि बहुत से मूल पदार्थों के यौगिक और मिश्रित रूप में मिलता है।

बहुत प्राचीन काल से भारतवासी लोहे से परिचित हैं ये लोग अस्त्र-शस्त्र आदि बनाने में लोहे का प्रयोग करते आये हैं। वैदिक काल तथा उसके बाद वाले काल में भी लोग इसका व्यवहार करते आ रहे हैं। वेदों और उपनिषदों में भी इस धातु का उल्लेख है तथा यह भी निश्चय पूर्वक लिखा गया है कि इसका व्यवहार अस्त्र-शस्त्र में होता था। वैदिक माला में इसे कृष्ण आयस और ताँबें को लोहित आयस कहते हैं। वेदों के निर्माण काल के समय में मतभेद है अतएव लोहे का व्यवहार हमारे देश में कब से होता आया है, यह निश्चय-पूर्वक नही कहा जा सकता है। सभी विशेषज्ञ कहते है कि वेद कम से कम चार हजार वर्ष पुराने जरूर हैं अतः इसका व्यवहार काल यदि चार हजार वर्ष पूर्व रखा जाय तो कोई विशेष अत्युक्ति नही होगी।

रामायण, महाभारत आदि कालों में भी लोग इसका व्यवहार करते आये हैं। लड़ाई के विभिन्न अस्त्र-शस्त्र बखार तथा सिरस्त्राण आदि लोहे के ही बनते थे।

हमारे प्राचीन काल के पुरुष लोहे के रासायनिक गुणों से अवगत् थे। इसके लवणों का औषधियों में व्यवहार बहुत काल से होता आया है। वैद्यक के प्रधान आचार्य्य, चरक आयुर्वेदीय चिकित्सा शास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित सुश्रुत तथा रसायनज्ञ नागार्जुन के पुस्तकों में इस धातु के लवणों तथा उनकी उपयोगिता का काफी उल्लेख है।

प्रागैतिहासिक काल के लोहे के नमूने मध्य प्रान्त स्थित ऊरी गाँव की कब्र की खुदाई से प्राप्त हुए हैं। इसका काल ईसा से पूर्व ६०० वर्ष कूता गया है इसी तरह की ट्रिनेवेली जिले स्थित कब्रों की खुदाई में भी लौह यन्त्र प्राप्त हुए है। स्तूपों तथा अन्य पुरानी जगहों की खुदाई से प्राप्त लौह निर्मित अस्त्र-शस्त्र आदि कलकत्ते के अजायबघर की मर्यादा बढ़ा रहे हैं।

लोह धातव पत्थरों से लौह धातु निष्कासन कला तथा इसके व्यवहार में भारत अग्रणी रहा है। जिस काल में संसार के अन्य लौह-देश लौह प्रस्तुत कला से पूर्णतया अनभिज्ञ थे, उस समय भारत लौह का निर्यात करता था। उस काल में हैदराबाद का प्रस्तुत इस्पात विदेशों में दमस्कस-ब्लेड के नाम से बिकता था।

पूर्व हिन्दू काल में भी लौह का व्यवहार होता आया है जिसके चिह्न और नमूने सारे भारत में पाये जाते हैं। दिल्ली घाट और माउण्ट आबू के विराट लौह स्तम्भ, भुवनेश्वर कोमारक और जगन्नाथपुरी के मन्दिरों में व्यवहृत लौह बीम तथा अन्यान्य वस्तुएँ कड़ियाँ आदि भारत के प्राचीन गौरव की कथा मूक भाषा में अब भी हमें सुना रही हैं। प्राचीन काल में लोहे का इतना शुद्ध रूप में होना और इतनी बड़ी वस्तुओं का निर्माण वर्त-

मान समय के विशेषज्ञों के लिये महान आश्चर्य का विषय हो गया है।

किसी समय कञ्चन नगर (बङ्गाल) के प्रस्तुत चाकू और कैंची की ख्याति थी लेकिन ये अतीत काल की कथाऐं अतीत में ही विलीन हो गयीं अब हम केवल इनका स्वप्न देख कर ही सुखी होते हैं।

मुस्लिम काल के अस्त्र-शस्त्रों में भी लोहे की ही प्रधानता रही है। भाला, बरछा, ढाल, तलवार के अतिरिक्त बन्दूक और तोप लोहे के ही बनते थे। इनके नमूने विभिन्न अजायबघरों में अब भी देखे जा सकते हैं। उस समय के फारसी सौदागर कण समुद्रम निर्मित लौह ब्लेड का व्यवहार करते थे। ये अफगानिस्तान होकर इन चीजों को दमस्कस ले जाते थे। पुनः यूरोपी सौदागर इन्हें 'दमस्कस' से खरीद कर यूरोप के अन्य बाजारों में ले जाते थे। भारत के अतिरिक्त प्राचीन ग्रीक ग्रन्थों में भी लोहे के व्यवहार का उल्लेख है। लेकिन इनकी प्राप्ति तथा निष्कासन का कहीं भी जिक्र नहीं है। अब यह पूर्णतया प्रमाणित हो चुका है कि महान् स्तूपों के निर्माण के लिये पत्थरों के काटने वाले लौह यंत्र भारत-प्राप्त लौह के ही बने थे।

लौह-धातव पत्थर—शुद्ध रूप में लोहा नहीं मिलता है। यौगिक रूप से लोहा निम्न खानों में पाया जाता है। चूँकि इन्हीं से हम लौह-धातु प्रस्तुत करते हैं अतः हम इन्हें लौह-धातव पत्थर कहते हैं। निम्न-लिखित लौह-धातव पत्थर अधिकतर लौह धातु निष्कासन में व्यवहृत होते हैं।

हेमेटाइट (Hematite) लिमोनाइट (Limonite) मैगने टाइट (Magnetite) सीडराइट (Siderite) और पाइराइट (Pyrite) आदि। इनमें साधारणतया लौह करीब ७०, ६०, ७२, ४८, ४०, प्रतिशत पाये जाते हैं।

इन धातव-पत्थरों में प्रथम तीन लौह के आक्साइड, चौथा कार्बोनेट तथा पाँचवा सल्फाइड है। लौह निष्कासन में पाँचवे का व्यवहार बहुत कम होता है। अन्य धातव पत्थरों के अभाव में ही इसका व्यवहार होता है। इसके व्यवहार के लिये इटली राज्य का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

यद्यपि भारत में उच्च कोटि के लौह धातव पत्थरों का असीम भण्डार पड़ा हुआ है फिर भी भारत लौह निष्कासन में अन्य राज्यों से बहुत पीछे है। संसार में जितने लोहे का उत्पादन होता है उसका ५० % केवल अमेरिका की खानों से ही निकलता है। अन्य देशों में ब्रिटेन, रूस, फ्रान्स, स्पेन बेलजियम, स्वीडेन आदि विशेष उल्लेखनीय हैं भारत का उत्पादन दुनियाँ के उत्पादन का ०·४ प्रतिशत है।

भारत में लौह धातव पत्थरों का विवरण :—भारत में उच्च कोटि के लौह-धातव पत्थर प्रचुर परिमाण में पाये जाते हैं। विशेषज्ञों का अनुमान है कि यहाँ के भूगर्भों में ३० अरब टन से भी अधिक उच्च कोटि के धातव पत्थर हैं। राज्यों के विचार से निम्न राज्य लौह-धातव पत्थरों के लिये प्रसिद्ध है।

विहार—भारत के राज्यों में विहार राज्य धातव पत्थरों तथा लौह उत्पादन में प्रमुख है, क्षेत्र के विचार से सिंह भूमि का जिला। यहाँ की खानों में अनन्त राशि में लोहा भरा पड़ा है। इन खानों की गणना संसार के अत्यन्त धनी खानों में होती है। इन खानों में लोहा बहुधा जमीन की सतह के ऊपर ही मिल जाता है। अतः उसको खोदकर निकालने में कम खर्च होता है। अक्सर बहुत सी छोटी-छोटी पर्वत शृङ्खलाएँ पूर्णतया लौह धातव पत्थरों से ही निर्मित है। दक्षिणी कोयल नदी के उत्तरार्द्ध भाग की घाटी के आस-पास के क्षेत्र की पहाड़ियों में लोहा प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

इन पहाड़ियों में से कई तो ५००-७०० फीट से भी ऊँची हैं। सिंहभूमि के जिले का लौह धातव पत्थर अत्यन्त ही उच्च कोटि का है इसमें शुद्ध लोहे की मात्रा ६० प्रतिशत के लगभग है छिटफुट जगहों में तो इसकी मात्रा और भी अधिक है। अनुमान किया जाता है कि सिंहभूमि जिले में १ अरब टन

से भी अधिक लौह धातव पत्थर होंगे। स्थान विशेष के विचार से सिंहभूमि स्थित नोआमुंडी का क्षेत्र विशेष उल्लेखनीय है। इस क्षेत्र में समतल से करीब एक हजार फीट की ऊँचाई तक दो समानान्तर पर्वत मालाएँ चली गयी हैं जिले के अन्य क्षेत्रों में 'कोलहन' का क्षेत्र तथा इस क्षेत्रमें स्थित 'पनसितवुरु' और 'बुद्घावुरु' की खाने विशेष उल्लेखनीय है। इनके अतिरिक्त गुआ और बड़ा जगादो की खानें विशेष उल्लेखनीय हैं। बंगाल आयरन कम्पनी इन्हीं कारखानों से लोहा निकालती है। नोहामुंडी का क्षेत्र टाटा कम्पनी के आधीन है।

सिंहभूमि जिले के अतिरिक्त छोटा नागपुर के अन्य जिलों और संथाल परगने में भी निम्न अंश में लोहा पाया जाता है, लेकिन ये व्यापारिक महत्व के नहीं हैं।

उड़ीसा राज्य—इस राज्य के अन्तर्गत मयूर भंज, लोनाई और क्योंझार रियासतों में लौह-धातव पत्थर अधिक परिमाण में पाये जाते हैं! मयूरभंज क्षेत्र में गुरुमाहिसानी, बादाम पहाड़ और सुलाइयत की खानें प्रमुख हैं। बोनाई रियासत में करीब तीस मील की एक पर्वत श्रेणी गुआ तक चली गयी है! मयूरभंज की तीनों खानें टाटा कम्पनी के आधीन हैं। भूगर्भ-विज्ञों ने अनुमान किया है कि क्योंझर, बोनाई और मयूरभंज रियासतों से क्रमशः ६६, ६५ और २ करोड़ टन लोह धातव-पत्थर प्राप्त होंगे।

मध्य प्रान्त—इस राज्य के द्रुग जिले की 'राजाहारा' पहाड़ियों में हेमेटाउट जाति का लौह-धातव-पत्थर पाया जाता है। इसके अतिरिक्त बाँदा जिले के अन्तर्गत 'लोहरा' पहाड़ियों में भी लौह-धातव-मिलता है लेकिन कोयले के अभाव में लौह का उत्पादन नहीं होता।

मद्रास—इस राज्य में भी मैगनेटाउट जाति का धातव-पत्थर पाया जाता है! स्थान विशेष के विचार से सलेम और नेलोट जिले प्रमुख हैं लेकिन कोयले के अभाव में इनका भी उपयोग नहीं हो रहा है।

मैसूर—इस राज्य के अन्तर्गत कादूर जिले स्थित "कैमम‌गंडी" की खानें विशेष उल्लेखनीय हैं है जिससे मैसूर राज्य की भद्रावती कम्पनी लोहा निकालती है। इस खान के धातव-पत्थरों में ६४% शुद्ध लोहा है। उपयुक्त खान के अतिरिक्त 'बाव वुड़ाने' की खानों में भी हेमेटाइट जाति का लोहा प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

धातव-पत्थरों से लोहे-धातु का निष्कासन गृह-उद्योग के रूप में—बहुत प्राचीन काल से भारत में लौह धातु निष्कासन का काम गृहोद्योग के रूप में चला आ रहा है, जिसके ज्वलन्त प्रमाण विभिन्न लोह स्तम्भ मंदिरों में व्यवहृत लौह सामग्रियाँ स्तूपों तथा अन्यान्य भग्नावशेषो से प्राप्त लौह वस्तुऐं हमारे समक्ष हैं—इनके अतिरिक्त भारत के विभिन्न लौह-क्षेत्रों में और उत्पादन के चिह्न अब भी वर्तमान है। साथ ही साथ यहाँ पर यह भी उल्लेख करने में अत्युक्ति नहीं होगी कि शुद्धता के विचार से ये स्टील (इस्पात) अत्यन्त ही उत्कृष्ट कोटि के होते थे जैसा कि 'ऊटी' के इस्पातों के विश्लेषण से प्रत्यक्ष है।

कार्बन (मिश्रित अवस्था में)	१·३३०	प्रतिशत
(अमिश्रित अवस्था में)	०·३१२	”
सिलिकन	०·०४५	”
गंधक	०·१४१	”
आकार्बनिक	·०३६	”
शुद्ध लोहा	९८·०६२	”

नोट—प्राचीन काल में दक्षिण भारत से प्राप्त इस्पात को ऊटज (Wootaz) कहते हैं।

प्राचीन समय की लौह निष्कासन पद्धति शायद वही थी जो पद्धति वर्तमान समय में भी भारत तथा अफ्रीका के कुछ भागों में अब भी वर्त्तमान है इनकी प्रणाली बहुत सरल थी। लौह प्रधान पत्थरों को कोयले के साथ एकत्रित करके आग लगा देना! ऐसा करने से उन्हें थोड़ी मात्रा में लौह धातु प्राप्त हो

जाती थी ! कालान्तर में ये प्रणाली में उन्नति करते गये। छोटी-छोटी भट्टियाँ बनायी गईं भट्टियों तथा ईंटों की चिमनियाँ बनीं हवा देने के लिए विभिन्न प्रकार की भाथियों के प्रयोग हुए। अशुद्ध लोहे को शुद्ध बनाने तथा पानी चढ़ा कर कड़े करने के तरीके निकाले गए ! अनुभव से सहारे में आगे बढ़ते गए।

भारत में आधुनिक ढंग से लौह-उत्पादन— योरोप में व्यावसायिक क्रान्ति आयी। व्यवसाय में सुधार होने लगा। उत्पादन के साधन में वृद्धि हुई। व्यावसायिक क्रान्ति के प्रभाव से भारत वंचित नहीं रह पाया। बाहर से सस्ते दाम पर माल आने लगा और यहाँ के गृह उद्योग नष्ट हो गए। नयी नयी कम्पनियाँ लौह उत्पादन क्षेत्र में आ गयीं ! वर्त्तमान भारत में चार बड़ी और कई छोटी कम्पनियाँ स्टील बनाने में संलग्न है। इनके नाम ये हैं।

(१) टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी— जमशेदपुर।

(२) स्टील कारपोरेशन आफ बंगाल—आसन सोल।

(३) इण्डियन आइरन एण्ड स्टील कारपोरेशन (आसन सोल)—

(४) भद्रावती आइरन वर्क्स—मैसूर तथा भारतीय एलेक्ट्रिक वर्क्स—(वालीगंज) बंगाल, वेलूरस्टील वर्क्स—वेलूर (बंगाल)—जे० के० स्टील वर्क्स कानपुर और कमानी स्टील वर्क्स बम्बई छोटी कम्पनियों में प्रमुख हैं इनके अतिरिक्त विभिन्न रेल के कारखानों में इस्पात उत्पादन का कार्य होता है।

सर्व प्रथम १८३० में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के एक कर्मचारी कर्नल शीथ ने दक्खिन आर्काट के समीप एक आधुनिक ढंग का लोहे का कारखाना स्थापित किया किन्तु मद्रास प्रान्त लोहे के धंधे के लिये उपयुक्त क्षेत्र नहीं था फलतः यह प्रयत्न असफल रहा !

पुनः वैज्ञानिक ढंग और अधिक परिमाण में स्टील उत्पादन करने के प्रयत्न भारत में सन् १७७९ से आरम्भ हुए लेकिन ये विफल हुए। अन्त में सन् १८७५ में बड़कर आइरन कम्पनी नाम की एक कम्पनी कुल्टी में स्थापित हुई। इस कम्पनी को स्थापित करने का श्रेय जेजक एण्ड कम्पनी को है। इस कारखाने में केवल पिग आइरन तैयार होता था। स्टील बनाने के प्रयत्न असफल रहे क्योंकि विदेशों से आने वाला स्टील अपेक्षाकृत सस्ता पड़ता था।

सन् १८८९ में यह आधुनिक ढङ्ग से परिष्कृत की गयी और इसका नाम बङ्गाल स्टील कम्पनी रखा गया पुन सन् १९१९ से यह बंगाल आयरन कम्पनी के नाम से विख्यात है। १९२० में कम्पनी ने सिंह भूमि के पनसिरा बुरु और बुड़ाबुरु क्षेत्रों से लोहा लेकर अधिक पिग आइरन बनाना प्रारम्भ किया सन् १९१८से दि इण्डियन आयरन एण्ड स्टील नाम की एक कम्पनी का संस्थापन आसनसोल के पास हीरापुर में हुआ। इस कारखाने के लिये धातव-पत्थर कोलहन रियासत के गुआ नामक स्थान से आता है।

दक्षिण भारत में लोहे का उत्पादन सन् १९२६ से आरम्भ हुआ। दिभद्रावली आयरन वर्क्स नाम की एक कम्पनी मैसूर राज्य में कायम हुई। वर्त्तमान समय में यह मैसूर राज्य द्वारा संचालित होती है— अच्छे कोयले के अभाव में यहाँ लोहे के गलाने में लकड़ी के कोयले का ही उपयोग होता है। आजकल वहाँ लोहे के गलाने में विद्युत का उपयोग हो रहा है।

कोयला तो स्थानीय खानों से ही प्राप्त हो जाता है। पानी दामोदर नदी से प्राप्त होता है।

यह कारखाना भद्रा नदी के किनारे अवस्थित है। लोहे का धातव-पत्थर केमागंदी की खानों से आता है जो कि भद्रानदी से २६ मील की दूरी पर है। चूने का पत्थर वाडिगुड़ा नाम की खानों से आता है ! इसकी दूरी १३ मील है। लोहे के अति-

रिक्त अन्य पदार्थ भी इस कारखाने में तैयार होते हैं।

भारत का सबसे बड़ा इस्पात बनाने का कारखाना जमशेदपुर में है। दुनियाँ के बड़े कारखाने में इसकी गिनती है। एशिया का यह सबसे बड़ा कारखाना है। यह स्टील तथा पिग आयरन बनाता है। टाटा आयरन कम्पनी की स्थापना होने से भारत के औद्योगिक विकास का एक परिच्छेद आरम्भ हो गया !

भारत में ऐसे विशाल कारखाने को स्थापित करने का श्रेय श्री जमशेद जी टाटा और उनके वंशजों को है। सर्वप्रथम सन् १९०० में जमशेद जी टाटा को एक लोहे का कारखाना खोलने की प्रबल इच्छा हुई। फलस्वरूप वे इंगलैंड गए। वहाँ से लौटने पर वे संबलपुर कारखाना खोलने का प्रबन्ध करने लगे। अकस्मात उनकी मृत्यु होने के कारण उनकी इच्छा फलवती नहीं हुई। लेकिन उनके योग्य पुत्रों ने पिता जी की अपूर्ण इच्छा को पूरी करने की ठानी। फलस्वरूप स्वर्णरेखा और खारखाई नदियों के संगम पर साक्यी नाम के एक जंगली गाँव में सन् १९०७ में कारखाना स्थापित किया जिसका नाम टाटा आयरन और स्टील कम्पनी रखा गया। इस स्थान का नया नामकरण सन् १९१८ ई० में हुआ। उस समय से इसे जमशेदपुर कहते हैं। इसके निकटतम स्टेशन का नाम पहले कालीमाटी था जो अब टाटा नगर कहलाता है। इस कम्पनी को चूना और डोलोमाइट दूरसे मंगाना पड़ता है यों तो चूना पास ही में प्राप्त हो सकता है लेकिन यह उतना उत्कृष्ट कोटि का नहीं है ! कोयला झरिया की खानों से प्राप्त होता है, जो कि यहाँ से १०० मील की दूरी पर है। स्वर्णरेखा और खारखाई नदियों से पानी प्राप्त होता है। नदियाँ छोटी होने के कारण वर्षा के मौसम के बाद सूख जाती हैं। फलतः नदियों के सूखने के पूर्व ही पानी एक बड़े तालाब में जमाकर लिया जाता है। कलकत्ता और बम्बई के डाइरेक्ट लाइन पर स्थित होने के कारण इसके माल बम्बई और कलकत्ते की मण्डियों में सहज ही पहुँच जाते हैं।

लौह धातु उत्पादनः—लौह धातु प्राप्ति के लिये जिन लौह-प्रधान धातव-पत्थरों का उल्लेख किया गया है उनमें सभी लौह प्राप्ति के लिये उतने उपयुक्त नहीं हैं। लाभ के विचार से जिनसे सहज और कम-खर्च में लौह-धातु प्राप्त होती है वे ही गलाने के काम में लाये जाते हैं। गंधक युक्त लौह धातव-पत्थर लौह प्राप्ति के लिये आक्साइड का ही व्यवहार होता है ! यों तो कहीं-कहीं कार्बोनेट भी उपयोग में लाया जाता है।

लौह-निष्कासन प्रणाली द्वारा खनिज धातव पत्थरों से जो धातु प्रसूत होती है वह शुद्ध रूप में नहीं रहती है बल्कि उसमें अन्यान्य धातु के अंश न्यूनाधिक मात्रा में वर्त्तमान रहते हैं। विजातीय धातुओं में कार्बन गंधक मैंगनिज सिलिकेन का सलफर आदि मुख्य है। कार्बन के परिमाण पर ही लौह का गुण निर्भर करता है अतः कार्बन की मात्रा तथा लौह निष्कासन प्रणाली के भेद से लौह-धातु को मोटे तौर से चार वर्गों में बाँटा गया है। पिग आयरन, कास्ट आयरन, स्टील और टाट आयरन। पिग तथा कास्ट आयरन में कार्बन की मात्रा सबसे अधिक रहती है। स्टील में उससे कम और टाट आयरन में सबसे कम मात्रा में कार्बन रहता है। इसमें कार्बन की मात्रा साधारणतया निम्नलिखित अंशों में पाया जाता है।—

नाम	कार्बन की मात्रा
पिग आयरन, कास्ट आयरन	१·७ से ४·५%
टील	
"टाट आयरन"	०·१ प्रतिशत से कम

धातव—पत्थरों को गलाकर धातु बनाने में कोयले के अतिरिक्त चूने के पत्थर का व्यवहार होता है। धातव-पत्थर, कोक एक प्रकार का बनाया हुआ कोयला तथा चूने के पत्थर का मिश्रण बड़ी-बड़ी भट्टियों में गलाया जाता है। इन भट्टियों के

ब्लास्ट फरनेस (Blast furnace) कहते हैं। चूँकि इनके निम्न भागसे हवा झोंका (ब्लास्ट) दिया जाता है। लोहा गलाने की प्रतिक्रिया में आक्सीजन की आवश्यकता होती है और यह आक्सीजन हवा से प्राप्त होती है। जब भट्ठी के निम्न भाग का तापक्रम १५५०°c पहुँच जाता है तब लोहा, गल जाता है और अन्य विजातीय पदार्थ भी तरल अवस्था में परिणत होकर गाद के रूप में इसके ऊपर तैरते रहते हैं। गाद अलग करने के बाद गले हुए लोहे को साँचे में ढाल कर 'पिग-आयरन' तैयार करते हैं। ढाला हुआ लोहा जम कर भूरे काले रग का हो जाता है! इसका रंग सूअर के बच्चे, काले बच्चे से कुछ मिलता है। सूअर के बच्चे को अंग्रेजी में पिग कहते हैं। जिसके कारण इस प्रकार के ढलुए लोहे को 'पिग-आयरन' कहते हैं। 'पिग-आयरन' शुद्ध लोहा नहीं है इसमें अन्यान्य विजातीय पदार्थ मिले रहते हैं। उदाहरण के लिये साधारण 'पिग-आयरन' स्थित विजातीय पदार्थों की मात्रा दी जाती है।

कार्बन—३.५%
सिलिकन—१.८%
गन्धक—०.०८%
फास्फरस—०.१०%
मैंगनिज—०.८०%

धातव-पत्थरों तथा लौह निष्कासन प्रणाली के भेद से उल्लेखित मात्राओं में भी भेद हो जाता है!

पिग-आयरन को गलाकर दूसरे प्रकार के लौह तैयार किये जाते हैं। भारत से पिग-आयरन जापान, संयुक्त राज अमेरिका तथा ग्रेट ब्रिटेन भेजा जाता है।

नोट—गाद में कैलसियम मैगनिसियम मैंगनिज आदि धातु सिलिकेट आक्साइड तथा सल्फाइड के रूप में पाये जाते हैं।

'कास्ट-आयरन' (Cast Iron) या ढलुआ लोहा यद्यपि ढलुवे और पिग-आयरन के प्राकृतिक गढ़न में मौलिक भेद नहीं है फिर भी ढलुये लोहे को पिग-आयरन कहना भूल होगा! पिग-आयरन धातव-पत्थरों से निकाला जाता है लेकिन ढलुये लोहे की प्राप्ति के लिये अव्यवहार्य लोहे (Sarap Iron) पिग-आयरन तथा रासायिनिक पदार्थों के मिश्रण को एक विशेष प्रकार की भट्ठी में गलाया जाता है! पुनः गले हुये पदार्थों को उसी आकृति के बने हुये साँचे में ढालते हैं जो चीजें इन्हें बनानी रहती है। गृह-कार्य में ढलुये लोहे की बनाई हुई, कड़ाही, हम लोग व्यवहार करते हैं। लोहे के रेलिंग आदि इसी प्रकार बनते हैं। आवश्यकतानुसार छोटी से छोटी और बड़ी-बड़ी चीजें इससे तैयार होती हैं। इसमें दुर्गुण यह है कि यह चोट लगने पर शीघ्र ही टूट जाता है। टूटा हुआ लोहा जोड़ा नहीं जाता है; और इसे पीटकर बढ़ाया भी नहीं जा सकता है!

ढलुये लोहे भी दो प्रकार के होते हैं। एक का रङ्ग कुछ सादा और दूसरे का धूसर होता है। ये विभेद भी कार्बन के कारण ही होते हैं।

लोहे में कार्बन मिले या मुक्त अवस्था में रहते हैं। अधिक ताप के कारण कार्बन लोहे के कालाइड बन कर लोहे में मिल जाता है, और कुछ भाग ग्राफाइट के रूप में परिणत होकर मुक्त अवस्था में रहता है। ग्रफाइट की अधिकता के कारण लोहे का रंग धूसर तथा लौटकार्लाइड की अपेक्षाकृत प्रचुरता के कारण सादा हो जाता है निम्नलिखित उदाहरण से इनकी विभिन्नता सहज ही समझ में आ जायेगी :—

कार्बन की अवस्था	सादे रग का ढलुआ लोहा	धूसर रङ्ग का ढलुआ लोहा
कार्बन, कार्बाइड के रूप में (युक्त अवस्था में)	३.००%	.९०%
कार्बन, ग्राफाइट के रूप में (मुक्त अवस्था)	०.१%	२.८१%

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि पिग-आयरन और ढलुआ लोहे में विशेष भेद नहीं है। इन लोगों का गठन प्रायः समान है।

स्टील या इस्पात—वर्तमान युग इस्पात का है। साधारणतया ढलाई लोहा बहुत कड़ा होता है लेकिन इसमें यह दुर्गुण है कि यह शीघ्र टूट जाता है और यह पीट कर बढ़ाया भी नहीं जा सकता है। अतः ढलुए लोहे का व्यवहार कम होता है। विभिन्न कामों के लिये जहाँ कड़े और मजबूत लोहे की जरूरत पड़ती है वहाँ लोहे में कार्बन ही की मात्रा में तथा इसमें कोई दूसरी धातु को मिलाकर कार्योपयोगी स्टील प्रस्तुत कर लेते हैं। निकल, क्रोमियम, मेंगनिज, मौलिबडिनम, आदि धातु मिले स्टील से युक्त स्टील को क्रमशः क्रोमियम स्टील, मैंगनिज स्टील, आदि कहते हैं। उदाहरण के लिये कुछ उपयोगी स्टीलों के विश्लेषण नीचे दिये जाते हैं।

नाम	कार्बनकी मात्रा	विजातीय धातु की मात्रा
निकेल स्टील	०.२ से ०.५%	निकेल ०.५-२०%
क्रोमियम स्टील	.१५—१.३	२ प्रतिशत से कम ११% से अधिक क्रोमियम
निकल क्रोमियम स्टील	.२ से .५५%	१.० से ३.५% निकल ०.५ से१.५%क्रोमियम
मैंगनिज स्टील	०.४से०.५%	१.६ से १.९% मैंगनिज
टंगसटिन स्टील	०.५ से १.३%	१.% से २०% टंग स्टील

नोट :—मिलावट के लिये विजातीय धातुओं की सीमा निश्चित नहीं है! उपर्युक्त विवरण साधारण स्टीलों का हैं, आवश्यकतानुसार इनकी मिलावट में काफी हेर-फेर किया जाता है!

'टाट आयरन' (Wrought Iron) व्यवहार में आने वाली लौह-धातुओं में 'टाट आयरन' सर्वापेक्षा शुद्ध है। इसमें कार्बन की मात्रा ०.१ प्रतिशत से भी कम रहती है। इसके उत्पादन में पिग-आयरन तथा *अव्यवहार्य* लोहे का व्यवहार होता है। उपर्युक्त दो प्रकार के लोहे से समश्रण को एक विशेष प्रकार की भट्टी (रिवरबरेटरी फरनेस से) (Reverberatory furnace) में गलाया जाता है। जब धातु गल जाता है तब इसे लम्बे लोहे के डंडों के सहारे भली भाँति चलाया जाता है। भट्ठी की अन्तरीय दीवाल पर लौह आक्साइड का एक आवरण रहता है जिसके कारण गंधक फास्फरस सिलिकन आदि विजातीय पदार्थ आवरण के सम्पर्क में आकर आक्साइड के रूप में परिणत होकर ऊपर तैरने लगते हैं। इसे गाद या स्लैग (Slag) कहते हैं—

गाद हटा ली जाती है। इसके हटाने से ही गलित लौह अब कुछ गाढ़ा हो जाता है। अब इसे गोलाकार पिण्डों के रूप में बनाकर एक विशेष प्रकार के प्रयत्न द्वारा इसे दबाया जाता है फल स्वरूप बची हुई गाद भी दबकर बाहर निकल जाती है और धातु प्रायः शुद्ध रूप में बची रह जाती है। फिर भी इसमें थोक परिमाण में कार्बन और अन्यान्य विजातीय पदार्थ वर्तमान रहते हैं। उदाहरण के लिये एक उच्चकोटि के 'टाट-आयरन' का विश्लेषण नीचे दिया गया है।

धातु	कार्बन	गंधक	फास्फरस	मैगनिज	सिलिकन	गाद
	.०४%	.०९%	.०२%	.०५%	.०४%	१.५%

इसका व्यवहार विशेषकर चेन की कडियों हुक, बोल्ट, पाइप आदि चीजें बनाने में होता है।

इसकी विशेयता यह है भलो भाँति जोड़ा जा सकता है साथ ही इसमें अंग भी कम लगता है।

लोहे का उत्पादन :—प्रस्तुत आँकड़े से स्पष्ट है कि भारत में लोहे का उत्पादन दिनानुदिन बढ़ रहा है कि फिर भी इसकी खपत उत्पादन की चौगुनी है।

[शेष पृष्ठ ५८ पर]

भारतीय पशु-विज्ञान अनुसन्धान ज्ञानालय मुक्तेश्वर व आईज़टनगर

ले०—श्रीयुत सच्चिदानन्द दत्त व महेन्द्र प्रताप जौहरी

भारतवर्ष में परम्परा से गाय का स्थान अन्य पशुओं से अधिक ऊँचा माना गया है, और इसी कारण उसको "गोमाता" शब्द से सम्बोधित किया जाता है। धार्मिक दृष्टि से हिन्दू परिवारों में अन्य दानों की अपेक्षा गोदान को अत्यधिक महत्व दिया गया है। समय की गति के साथ यह प्रथा अब अधिकतर देहात में ही देखने में आती है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात्, गोवध को रोकने के लिये हमारे देश में प्रायः हर एक ओर से यही कहा गया कि भारतवष में गोवधबन्द हो। इसका मुख्य कारण यही है कि हम गोमाता को बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से ही नहीं देखते अपितु उसको अपने परिवार का एक अमूल्य अंग मानते हैं। देश के पशुधन को सुरक्षित रखने तथा बलिष्ठ, स्वस्थ और कार्यकुशल ढोरोंकी संख्या तथा उत्पादन शक्ति बढ़ाने के हेतु इस ज्ञानालय में जो कार्य हो रहा है, उसका संक्षिप्त विवरण हम पाठकों की जानकारी के लिये नीचे दे रहे हैं। भविष्य में भी समय समय पर एक लेखमाला द्वारा इस ज्ञानालय के अनुसन्धान कार्य तथा पशुधन पर उनका महत्व, पाठकों के लाभार्थ प्रकाशित करेंगे।

आधुनिक यंत्रों द्वारा अब भारत में कई प्रकार के कार्य पशुधन के बिना भी हो सकते हैं, परन्तु अबसे ६० वर्ष पूर्व पशुधनके बिना कार्य करना एक कठिन समस्या थी। सक्रामक रोगोंके कारण पशुओं की एक बड़ी संख्या प्रति वर्ष नष्ट हो जाती थी, और यह कहना अतियुक्त न होगा कि कभी कभी गाँव के गाँव पशुविहीन हो जाते थे। इन महामारियों को रोकनेके लिये भारत सरकार ने १८६९ ई० भारतीय पशु महामारी कमीशन (Indian Cattle Plague Commission) नियुक्त किया और इसी के फलस्वरूप भारत सरकार के आदेशानुसार बम्बई प्रान्त के राज्यपाल ने, श्री दिनशा मणिक जी पेटिट की प्रदान की हुई ५½ एकड़ भूमि पर १८८९ ई० में "राजकीय कीटाणु प्रयोगशाला" की नीव रखी।

इससे कुछ वर्ष पूर्वप्रकीटाणुशास्त्र के प्रभातकाल में लुईस पास्च्युर तथा राबर्ट काचअधिकतर पशुओं पर ही अपने वैज्ञानिक प्रयोग कर रहे थे। भारत सरकार ने पशुधनको इतना महत्व दिया के हमारे देश के वैज्ञानिक पास्च्युर की टीका प्रणाली का अध्यन करने के लिये फ्रांस भेजे, और राबर्ट काच तथा फ्राईफ़र को परामर्श के लिये भारत निमंत्रित किया।

पूना जैसी घनी बस्ती में संक्रामक रोगों पर अनुसन्धान करना असम्भव प्रतीत होने लगा, क्योंकि हर समय इन रोगों का अन्य पालतू पशुओं में फैलने का भय बना रहता था। इसके अतिरिक्त यहाँ पर शीत, जो कि संक्रामक रोगों के बिषाणु तथा प्रतिषेधकों के लिये अनिवार्य है, उपलब्ध नहीं थी अन्य देशों में संक्रामक रोगों का अनुसन्धान कार्य

एक ऐसे द्वीप या निर्जन स्थान में किया जाता था। जहाँ से इन रोगों का फैलने का भय न हो।

इस सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुये, चार वर्ष पश्चात्, यह राजकीय कीटाणु प्रयोगशाला पूना से हिमालय पर्वत में ७,७०० फीट की ऊँचाई पर, मुक्तेश्वर जो कि उत्तर प्रदेश के नैनीताल जिले में स्थित है, ले जाई गई। यह स्थान चारों ओर से छोटे-छोटे पर्वतों से घिरा हुआ है, तथा गाँव की बस्तियों से काफी दूरी पर बसा हुआ है। इस कारण संक्रामक रोगों के फैलने का भय नहीं है। मुक्तेश्वर की जलवायु में आधुनिक युग के शीत भन्डारों के बिना रक्तरस, वैक्सीन तथा विषाणु बीज हर ऋतु में प्रबल रहते हैं। पहाड़ी बैल, जो प्रतिषेधक उत्पादन तथा अनुसन्धान कार्य के लिये उत्तम हैं, अधिक संख्या में कम मूल्य पर हर समय मिल जाते हैं। यहाँ कम व्यय में कई रोगों पर काम किया जाता है। देशी ढोरों पर अनुसन्धान करने के लिये कुछ वर्ष पश्चात इस प्रयोगशाला की एक शाखा बरेली के निकट कर्गजा में खोली गई।

पशुओं की सब से घातक महामारी मानरोग (रिन्डरपेस्ट) के लिये १८९९ ई० में प्रतिषेधक रक्तरस बनाया गया तथा १९०१ से १९०६ तक अन्य छः रोगों के लिये प्रतिषेधक बनाये गये। इन प्रतिषेधकों की माँग दिन प्रति दिन बढ़ती गई। यातायात के साधनों की कमी के कारण इनको मुक्तेश्वर से, जो कि रेल स्टेशन से २४ मील की दूरी पर है, विभिन्न प्रान्तों को भेजने में व्यय तथा समय अधिक लगता था। इन कठिनाइयों को दूर करने के लिये बरेली के निकट आइजटनगर में ७५० एकड़ भूमि मोल ली गई परन्तु प्रथम विश्व युद्ध छिड़ जाने के कारण इस उपकेन्द्र की स्थापना स्थगित करनी पड़ी। १९२२ ई० में यह उपकेन्द्र चालू हुआ और कर्गना वाली शाखा इसमें मिला दी गई। इस उपकेन्द्र का नाम "जैविक पदार्थ विभाग" (बायोलाजिकल प्रोडक्टस सेक्सन) रखा गया।

१९२५ ई० में इस प्रयोगशाला का कार्यक्षेत्र विस्तृत किया गया और "राजकीय कीटाणु प्रयोगशाला" (इम्पीरियल बैक्टीरियौलजिकल लेबौरेटरी) को परिवर्तित करके "राजकीय पशु विज्ञान अनुसन्धान ज्ञानालय" (इंडियन विटर्नरी रिसर्च इंस्टीट्यूट) रखा गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् "राजकीय" शब्द को "भारतीय", शब्द में जो कि कार्यक्षेत्र के अनुसार उपयुक्त है, परिवर्तित कर दिया गया। १९३६ से १९४४ ई० तक इस ज्ञानालय में "पशु पुष्टि विज्ञान" (एनिमल न्यूट्रिशन), "मुर्गी अनुसन्धान" (पोल्ट्री रिसर्च), "पशु-प्रजनन" (एनिमल जैनेटिक्स) विभाग प्रारम्भ किये गये।
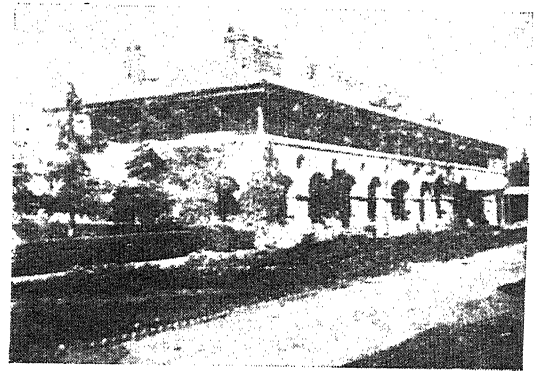
अनुसंधान ज्ञानालय, मुक्तेश्वर

इस प्रकार इस ज्ञानालय में केवल पशुओं में होने वाले रोगों पर ही अनुसन्धान कार्य नहीं होता वरन् पशुओं से सम्बन्धित प्रत्येक क्षेत्र में कार्य किया जाता है। इस ज्ञानालय का ध्येय पशुओं की कार्य-कुशलता को बढ़ाना, उन्हें स्वस्थ व बलिष्ट रखना, उनके रोगों की रोकथाम ही नहीं वरन इन रोगों का देश से उन्मूलन करना है। इन सब कार्यों को करने के लिये इस ज्ञानालय को भिन्न-भिन्न विभागों में बाँटा गया है जिनका कार्य इस प्रकार है :—

(१) *व्याधि विद्या व शाकाणु विद्या* (पैथोलोजी व वैकटीरियोलाजी): इस विभाग में कीटाणु सम्बन्धी तथा प्रतिषेधकों पर अनुसन्धान किया जाता है।

(२) *जैविक पदार्थ* (बायोलाजिकल प्रोडक्ट्स):

इस विभाग में रक्तरस, वैक्सीन आदि जैविक वस्तुयें बनती हैं।

(३) रोपजीवी विद्या (पैरासांइटोलाजी): इस विभाग का मुख्य कार्य कृमि जनित रोगों का और कृमियों के नाश करने के प्रयोगों का पता लगाना है।

(४) पशु पुष्टि विज्ञान (एनिमल न्यूट्रिशन): इस विभाग में पशु पोषण सम्बन्धी विषयों पर नई-नई खोज की जाती हैं।

(५) मुर्गी पालन अनुसन्धान (पोल्ट्री रिसर्च): इस विभाग में मुर्गीपालन व उससे सम्बन्धित वैज्ञानिक विषयों पर खोज होती है।

(६) पशु प्रजनन विद्या (एनिमल जैनेटिक्स): यह विभाग प्रजनन व्यवहार विज्ञान का अध्ययन करता है और इससे सम्बन्धित कार्यों के लिये नये नये उपयोगों की खोज करता है।
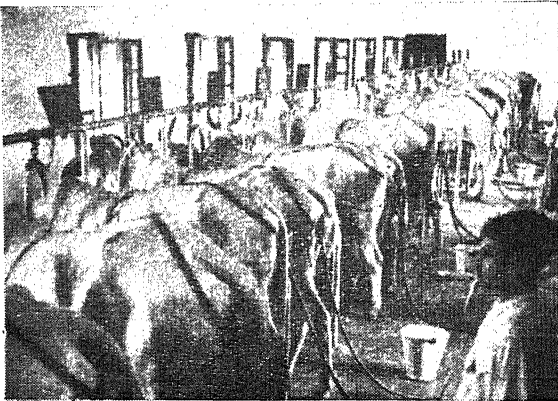
पोषण—परीक्षा भवन जहां प्रयोगार्थ पशुओं पर चारा का पोषण मूल्य निर्धारित होता है।

इन विभागों में से (१) और (३) के कुछ अंश मुक्तेश्वर में है, और शेष सब आईजटनगर में हैं। इन विभागों के अतिरिक्त दोनों स्थानों पर सहायक विभाग भी हैं। प्रत्येक विभाग का एक अध्यक्ष है, जो मुख्य संचालक (डाइरेक्टर) के प्रति उत्तरदायी होता है। मुख्य संचालक तथा अध्यक्ष स्वयं भी अनुसन्धान करते हैं, और अपने सहायक कार्यकर्त्ताओं को इस कार्य में अपने आदर्श से प्रेरित करते हैं।

मुख्य संचालक

अनुसन्धान और रक्त रस आदि जैविक वस्तुयें बनाने के अतिरिक्त यह ज्ञानालय वैज्ञानिक परामर्श और शिक्षा का कार्य भी करता है। पशु पालन तथा पशु-चिकित्सा सम्बन्धी हर एक समस्या पर इस ज्ञानालय द्वारा परामर्श दिया जाता है। यह कार्य अन्य देशों में "पशु स्वास्थ्य कार्यालय" (ब्यूरो आफ एनिमल हेल्थ) द्वारा किया जाता है। देश में, अपने क्षेत्र में एक ही ज्ञानालय होने के कारण इसका कार्य अधिक बढ़ जाता है। प्रान्तीय पशु पालन व पशु चिकित्सा विभागों को यह ज्ञानालय वैज्ञानिक विषयों पर बराबर परामर्श देता है और अपने वैज्ञानिक शास्त्रियों को पशु रोगों के निदान के लिये प्रदेशीय पशु पालन विभागों के आवेदन पर भेजता है। यह वैज्ञानिक शास्त्री गाँवों में स्वयं जाकर रोगों की रोक थाम के उपायों पर परामर्श देते हैं, इसके साथ-साथ इस ज्ञानालय में विभिन्न प्रान्तों से आये अनेकानेक अवयवों तथा चारे दाने आदि का रासायनिक विश्लेषण का कार्य भी होता है।

यहाँ पर प्रान्तों से आये हुये विद्यार्थियों को शिक्षा भी दी जाती है। इस समय चार पोस्ट ग्रैज्युएट कोर्स चल रहें हैं जो पशु चिकित्सा, पशु-पालन, मुर्गी पालन, और कृत्रिम प्रजनन प्रणाली से सम्बन्धित हैं। वर्ष भर में लगभग १२० से

१४० विद्यार्थियों को शिक्षा दी जाती है, इसके अतिरिक्त कई अन्य विषयों में भी विद्यार्थी अनुसन्धान व जानकारी प्राप्त करने के लिये, लिये जाते हैं। इस ज्ञानालय को भारतीय विश्व विद्यालय बोर्ड (इंटर युनिवर्सिटी बोर्ड) से मान्यता प्राप्त है और यहाँ कार्य करके पोस्ट ग्रेज्युएट डिग्री जैसे एम० एस-सी०, पी-एच० डी०, डी० एस-सी०, प्राप्त कर सकते हैं पर इन डिगरियों को प्राप्त करने के लिये उन विश्व विद्यालयों का स्नातक होना आवश्यकीय है। यह ज्ञानालय अपनी ओर से योग्य विद्यार्थियों को मान्यता प्रदान करती है, यह मान्यता "एसोसीयेटशीप इंडियन विटनरी इंस्टीट्यूट" कहलाती है और दो वर्ष तक अनुसन्धान कार्य करने के पश्चत मिल सकती है। अभी हाल ही में देखा गया है कि पशु पालन व पशु चिकित्सा महाविद्यालयों में विशेषज्ञों के अभाव के कारण शिक्षा क्षेत्र में कठिनाई हो रही थी, इस ज्ञानालय ने इस अभाव की पूर्त्ति के लिये एक नया क्रम ।(डिपलोमा इन ट्रौपिकल विटनरी साइन्स) शीघ्र प्रारम्भ किया।

इस ज्ञानालय की महत्ता का अनुमान देश की पशु सम्पत्ति के आंकड़ों से लगाया जा सकता है, भारत में लगभग २९ करोड़ ७७ लाख पशु हैं और ७ करोड़ ३७ लाख मुर्गियाँ हैं। अनुमान किया गया है कि इनसे होने वाली आय ५,००० करोड़ रुपये से अधिक है। हमारा देश कृषि-प्रधान है और देशवासी अधिकतर शाकाहारी हैं। इससे पशुओं का महत्व बहुत अधिक बढ़ जाता है, कृषि कार्य करने के लिये पशुओं की आवश्यकता होती है, दूध, ऊन, गोबर व मूत्र खाद के रूप में, खाल व चमड़े, हड्डी खाद व रासायनिक प्रयोगों के लिये हमें पशुओं से ही प्राप्त होते हैं। यह कहना अनुचित न होगा कि मनुष्य मात्र पशुओं से सहायता प्राप्त किये बिना जीवित नहीं रह सकता।

भारतीय पशुओं की व्यावहारिक कुशलता दूसरे देशों की अपेक्षा बहुत कम है। पर यह कुशलता अच्छे आहार, अच्छा प्रबन्ध, अच्छे गुणों के समावेश द्वारा बढ़ाई जा सकती है। पशुओं की जीवन शक्ति रोगों और भारस्वरूप कृमियों के कारण हीन हो जाती है। साथ ही साथ एक बड़ी संख्या में पशु या तो पूर्णतया बेकार या बहुत बेकार या बहुत समय तक किसी कार्य के योग्य नहीं रह जाते। इस ज्ञानालय में अनुसन्धान उपायों से पशुओं में होने वाले बहुत से रोगों को रोका जा सकता है, इसी प्रकार भोजन व प्रजनन में अनुसन्धान कार्य गायों की उन्नति करता है और इन सबसे देश की आर्थिक उन्नति होती है। यह ज्ञानालय इस प्रकार देश को समृद्धिशाली बनाने में सहायता करता है, इतना ही नहीं इस ज्ञानालय में किये गये अनुसन्धानों का प्रयोग तथा यहाँ बनाये हुये प्रतिषेधक भारत से बाहर अन्यान्य उष्ण प्रदेशों में रोगों की रोक थाम के लिये प्रचलित हैं। पशु चिकित्सा व मनुष्य में होने वाले रोगों का चिकित्सा शास्त्र में सहोदर भाई का नाता है। इससे एक क्षेत्र में किये गये अनुसंधानों को दूसरे क्षेत्र में काम में लाया जा सकता है। इस ज्ञानालय में जो अनुसन्धान कार्य किया गया है उसका आयुर्वेद पर बहुत प्रभाव हुआ है, इन कार्यों का दिग्दर्शन पाठकों को दूसरे लेख द्वारा कराया जायेगा।

खनिज भंडार और उद्योग केन्द्र-बिहार

बिहार, जहाँ अतीत में भारत की गौरवमयी सभ्यता का केन्द्र रहा है, वहाँ अब स्वतंत्र भारत का एक महत्वपूर्ण औद्योगिक केन्द्र बनता जा रहा है। इस राज्य की खनिज-गर्भी भूमि में कोयला, लोहा, अबरक, ताँबा आदि विशाल परिमाण में बिखरे पड़े हैं।

खनिजों के अतिरिक्त, चीनी, तम्बाकू, लाख और कागज के लिये भी बिहार प्रसिद्ध है। साथ ही यहाँ अनगिनत घरेलू उद्योग भी पनप रहे हैं।

इस राज्य का सबसे महत्व पूर्ण घरेलू हाथ करघा उद्योग है। इस उद्योग में एक लाख से अधिक करघों पर कोई ४ लाख व्यक्ति काम करते हैं। इन करघों पर बनी साड़ी, धोती, चादर, परदे का कपड़ा आदि बढ़िया किस्म का होता है और देश-विदेश में इनकी माँग सदा बनी रहती है।

अलसी के पौधे से रेशम

यहाँ एक ऐसा रेशमी धागा भी तैयार होता है जो रेशम से नहीं बनता। यह अलसी के रेशे से तैयार होता है। तेल निकालने के बाद अलसी के पौधे का जो कुछ बच रहता है, उसी से यह रेशमी धागा बनता है।

पहले लगभग ४ करोड़ मन अलसी का रेशा बेकार जाता था। अब इसके इस्तेमाल का तरीका निकल आने से यह चाँदी उगलता है। इस धंधे का भविष्य उज्ज्वल दिखायी देता है।

संसार में बढ़ियाँ किस्म की जितनी अबरक पैदा होती है उसका ८० प्रतिशत भाग पैदा करने का श्रेय भारत को है। और लगभग सारी की सारी यह अबरक बिहार की खानों से निकाली जाती है। इससे भारत को प्रतिवर्ष लगभग ६ करोड़ रु० की आय होती है।
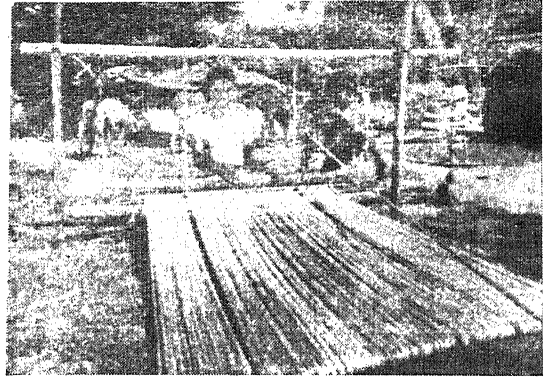
इन्हीं करघों पर बिहार का प्रसिद्ध रेशमी कपड़ा बनता है, जिसकी मांग विदेशों में भी है।

१० हजार कीड़ा से एक औंस लाख

कुसुम, पलास और बेर के पेड़ों से लाख पैदा की जाती है। कोई १० हजार कीड़े एक औंस लाख बनाते हैं। भारत के अधिकाँश लाख का उत्पादन केन्द्र छोटा नागपुर हैं, जो बिहार में है। भारत प्रति वर्ष करीबन ३६,००० लाख टन निर्यात करता है। लाख के कारण बिहार में बहुत से घरेलू उद्योग स्थापित हो गये हैं।

एशिया में रासायनिक खाद पैदा करने का सब बड़ा कारखाना—सिंदरी, बिहार ही में है। इस कारखाने पर २३ करोड़ रु० लागत बैठी है। इसकी उत्पादन क्षमता प्रति वर्ष ३,५०,००० टन 'खाद' है जिसके इस्तेमाल से प्रति वर्ष ६० लाख टन अतिरिक्त अन्न उपजाया जा सकता है। यदि इतना अन्न विदेश

से मँगाया जाय तो इसके लिए भारत को ४० करोड़ रु० खर्च करना पड़ेगा।
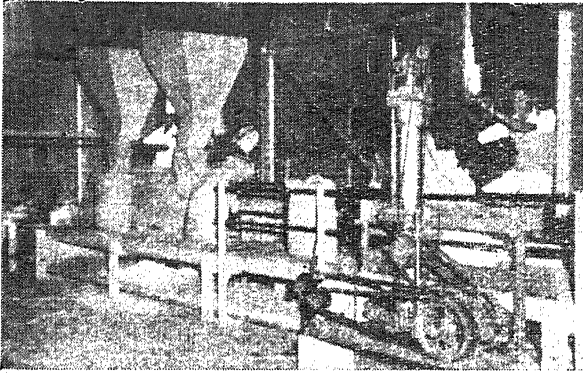
सिंदरी कारखाने में रासानिक खाद के बोरे भरे जा रहे हैं।

सिंदरी का कारखाना हमारी भूमिको हरा भरा बना देगा सिंदरी, बोकारो, और तिलैया से पैदा होने वाली बिजली से बिहार की कितनी ही आर्थिक अड़चनें दूर हो जायँगी।

गन्ने की खेती में भी बिहार किसी राज्य से पीछे नहीं है। राज्य में गन्ने की खेती और चीनी की मिलों से लगभग ४,१०,००० लोग धंधे से लगे हुए हैं। पिछले मौसम में बिहार में ७५ लाख टन चीनी पैदा हुई थी।

कागज उद्योग, बिहार का एक फलता-फूलता उद्योग है। बाँस और लकड़ी से कितने ही तरह के गत्ते बनाये जाते हैं जो बड़े-बड़े कारखानों से लेकर रेल के टिकटों तक के लिए काम आते हैं।

सीमेंट उत्पादन में भी बिहार अग्रणी है। भारत में सबसे पहले सीमेंट का कारखाना १९१४ में यहीं खोला गया था। कोयला और चूना पर्याप्त परिमाण में पास ही मिलने के कारण यह उद्योग तेजी से आगे बढ़ा है।

औद्योगिक उन्नति का द्योतक कोयला

यदि औद्योगिक उन्नति का द्योतक कोयला है तो बिहार का भविष्य बहुत उज्ज्वल है : क्योंकि भारत में जितना कोयला पैदा होता है उसका लगभग आधा बिहार की खानों से निकलता है। बिहार में कोयले का वार्षिक उत्पादन कोई १८० लाख टन है जिसका मूल्य मोटे तौर से २७ करोड़ रु० बैठता है। बिहार की कोयलेकी खानें दामोदर घाटीके आस-पास हैं।

बिहार के मानभूम जिले में लोहेकी भी विशाल खानें हैं। अनुमान है कि इन खादों में लगभग ३ अरब टन बहुत बढ़िया किस्म का कच्चा लोहा है जो कई हजार वर्षों के लिए काफी है।

बड़े पैमाने पर इस्पात बनाने के क्षेत्र में भी बिहार सबसे आगे रहा है। १९१२ में इस्पात का एक छोटा सा कारखाना साकची में खुला था जो अब फैल कर जमशेदपुर के नाम संसारमें प्रख्यात है। इस समय इस विशाल औद्योगिक केन्द्र का वार्षिक उत्पादन ८,५०,००० टन इस्पात से अधिकहै।
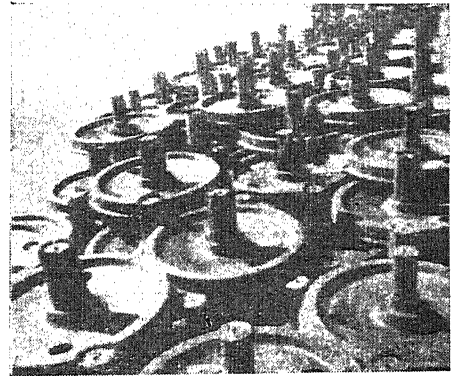
जमशेदपुर के इस्पात कारखानेमें बने रेलके पहियों का ढेर

बिहार में बोक्साइट भी प्रचुर परिमाण में पाया जाता है। इससे बहु उद्देशीय धातु अलमुनियम निकाला जाता है। इसकी खानें राँची जिले में लोहर डाँगा में हैं। यहां एक आधुनिक ढंग का कारखाना है जहाँ अलमुनियम बनता है। प्रायः २५ टन बोक्साइट में १ टन अलमुनियम निकलता है।

ताँबा निकलने का उद्योग बिहार में बहुत पुराना है। इसकी खानें सिंहभूम जिले में हैं। यहाँ ताँबे का वार्षिक उत्पादन ३,५०,००० टन तक पहुँच चुका है। यह धातु कई काम आ सकता है, किन्तु देशका प्रायः समस्त उत्पादन बरतन बनाने में ही खप जाता है।

सड़क का कानून

(श्री के० के० रायजादा)

आकाश वाणी के दिल्ली केन्द्र से ३१ मार्च को श्री कंवल किशोर रायजादा ने 'सड़क कानून' पर जो भाषण प्रसारित किया, उसका सारांश इस प्रकार है—

भारतीय राज मार्ग सुरक्षा संहिता (इंडियन हाइ वे सेफ्टी कोड) को सड़कों सम्बन्धी साधारण बुद्धि एवं शिष्टता की नियमावली कहा जा सकता है। और ये नियम सड़कों पर होने वाली दुर्घटनाओं के वास्तविक कारणों को खूब अध्ययन कर लेने के बाद बड़ी सावधानी से बनाये गये हैं। इसलिये इन नियमों के बारे में यह धारणा कदापि न रखनी चाहिये कि 'ये बेकार के कानून हैं, परेशान करने के लिए।' खासकर सड़कों के सम्बन्ध में बनाये गये प्रत्येक कानून और कायदे के लिए कोई न कोई कारण है, यह बात दूसरी है कि आप उससे अनभिज्ञ हों। और यह भी सही है कि सड़क सम्बन्धी हर कायदा-कानून हमारी ही सुरक्षा के लिए है। यही नहीं, वह हमारे परिवार वालों तथा सड़क इस्तेमाल करने वाले हर व्यक्ति की सुरक्षा के लिए बनाया गया है।

सड़क का इस्तेमाल करने वाले हर व्यक्ति के कुछ अधिकार और कुछ जिम्मेदारियाँ होती हैं, चाहे वह मोटर पर जा रहा है, या साइकिल पर या पैदल। लेकिन सड़कों के सम्बन्ध में एक बात खास ध्यान देने की यह है, कि हम अपने इन सड़क सम्बन्धी अधिकारों के पालन के लिए दूसरों पर जोर नहीं डाल सकते। यदि कोई आपके ऐसे किसी अधिकार का उल्लंघन कर रहा है, तो फिर उसे विनम्रता के साथ सहन कर लेना ही आपके लिये उचित होगा। यदि आप ऐसा नहीं करते, या बदले में आप भी अपनी जिम्मेदारी नहीं निभाते, तो इसका परिणाम कोई दुर्घटना ही हो सकता है।

उदाहरण के लिए मान लीजिये कि रात का समय है और आप मोटर से जा रहे हैं। सामने से जो मोटर आ रही है, उसने अपनी बड़ी बत्तियाँ पूरी तेजी से खोल रखी हैं, जिसके चका चौंध में आपको और आपके पीछे वाली मोटरों को साफ दिखायी नहीं देता। अब आप ही सोचें कि ऐसी हालत में आप क्या करेंगे। अगर बदले में आप भी अपनी मोटर की बड़ी बत्तियाँ पूरी खोल दें और इस प्रकार उससे बदला लेना चाहें, तो यह सही है कि उसे भी आपकी ही तरह कुछ साफ दिखायी न देगा और वह भी चौंधिया जायगा। लेकिन इसका नतीजा एक भीषण दुर्घटना हो सकती है, जिसके शिकार वह और आप खुद और शायद कुछ दूसरे लोग भी हो सकते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि सड़क का इस्तेमाल करते समय हमें यह न देखना चाहिए कि दूसरा अपनी जिम्मेदारी पूरी नहीं कर रहा है, बल्कि खुद अपनी जिम्मेदारी पर पूरा ध्यान देना चाहिये। मेरा ख्याल है कि सड़कों पर जो भी दुर्घटनाएं होती हैं, उनमें से अधिकाँश से बचा जा सकता है। इस लिए अगर कोई गलती करता है, तो उससे बदला लेने की भी भावना सड़क पर चलते हुए कभी न लाइये। अपनी जिम्मेदारी पूरे ध्यान और साव-धानी से निभाइये और दूसरे के प्रति विनम्रता की ही भावना रखिये।

लगे इशारों को समझो

मोटर, साइकिल या दूसरी गाड़ियाँ चलाने वालों के लिए जरूरी है कि वे सड़कों पर जगह जगह लगे हुए इशारों को ठीक तरह से समझें और उनका पालन करें। उन्हें ट्रैफिक-पुलिस के इशारों का भी पालन करना चाहिये। ये इशारे केवल मोटर वालों के ही लिए नहीं, बल्कि हर एक के लिए, पैदल चलने वालों के लिए भी उतने ही जरूरी हैं। पुलिस वाले से रास्ता पूछने का आम रिवाज है, लेकिन उस पुलिस वाले से, जो ट्रैफिक ड्यूटी दे रहा हो, कदापि रास्ता न पूछना चाहिये। उसे हर वक्त ट्रैफिक पर निगाह रखनी होती है। इसलिए प्रश्नों द्वारा उसे छेड़ना अनुचित है, क्योंकि उसकी निगाह जरा भी चूकने से दुर्घटना हो सकती है।

शायद आपको मालूम होगा कि सड़कों पर होने वाली दुर्घटनाओं से ज्यादातर मौत बच्चों की ही होती है। इसलिए उनका पूरा ख्याल रखा जाना चाहिए। सड़कों में कहीं-कहीं ऐसे इशारे लगे रहते हैं, जिनसे प्रकट होता है कि वहाँ आसपास कोई स्कूल है। इसलिए (आगे स्कूल है) 'स्कूल अहेड' के इशारों को देखते ही आपको होशियार हो जाना चाहिए और अपनी गाड़ी की रफ्तार धीमी कर देनी चाहिए। यदि आपके भी बच्चे हैं, सड़क के इस्तेमाल के सम्बन्ध में सारी बातें समझाते रहना चाहिए।

राहगीर या पैदल

अब मैं पैदल राहगीर के सम्बन्ध में कुछ बातें बताता हूँ। जहाँ भी फुटपाथ हो, बराबर उसी का इस्तेमाल कीजिए। उससे हटने से पहले खूब देख लीजिए कि कोई खतरा तो नहीं है। यदि साइकिल का रास्ता भी है, तो उस पर चलने की कोशिश न कीजिए। उसे साइकिल वालों के ही लिए छोड़ दीजिए। सड़क के बीच में खड़े होकर बातें न कीजिए और न मोड़ोंपर खड़े होइये। इन स्थानों में दुर्घटना होने का डर अधिक रहता है। ट्रैफिक के जो इशारे बनाये गये हैं, वे पैदल राहगीरों के लिए भी हैं, इसलिए उन्हीं के अनुसार चलिये।

सड़क के आर-पार दौड़कर न जाइये और सड़क के बीचो बीच अपना इरादा न बदलिये। यदि कोई गड़बड़ है, तो वहीं सड़क पर ही खड़े हो जाइये, कभी इधर कभी उधर, आगे-पीछे हटकर मोटर वाले को चक्कर में न डालिये।

अगर कोई गाड़ी है, तो उसके पीछे से होकर सड़क पर न जाइये, बल्कि काफी दूर से जाइये। यदि आप खड़ी गाड़ी के पीछे से गुजरेंगे, तो दूसरे ड्राइवर को, जो दूसरी तरफ से आ रहा होगा, आप न देखेंगे और सम्भव है कि उसकी मोटर आपके ऊपर से निकल जाय। इसलिए इस मामले में पूरी सावधानी बरतिये।

सड़कों पर बहुत सी दुर्घटनाओं के कारण या शिकार प्रायः साइकिल चलाने वाले ही होते हैं।

साइकिल पर चलते समय आपको जिधर जिधर मुड़ना हो उसी तरफ हाथ का इशारा करने के बाद भी जब आपको यह विश्वास हो जाय कि रास्ता साफ है, तभी उस ओर मुड़ें। आप यह न समझें कि केवल हाथ का इशारा देने मात्र से आपको सड़क पार करने का अधिकार मिल गया। यदि आपकी असावधानी से कोई दुर्घटना होती है, तो उसमें आपको ही अधिक नुकसान उठाना पड़ सकता है।

यह भी याद रखिए कि अधिक दुर्घटनाएँ उनके कारण होती हैं, जो एक साइकिल पर दो से भी अधिक चढ़े होते हैं। इससे दूसरे सभी प्रकार के यातायात में रुकावट पड़ती है। यदि आप अपनी साइकिल पर किसी दूसरे को ले जाते हैं, तो साइकिल का रोकना आपके काबू से बाहर हो जायगा।

तेज चलने वाली गाड़ी के निकट पीछे कभी साइकिल न चलाओ, क्योंकि यदि वह एकाएक रुक जाय, तो आपके चोट लग जायगी। चलती मोटर गाड़ी को भी कभी न पकड़ो। यदि मोटर

गाड़ी एका एकाएक जाय, तो इससे भी दुर्घटना हो जायगी।

वर्षा के मौसम में विशेष सावधानी रखिए। सड़क पर साइकिल फिसलने से बड़ी भयंकर दुर्घटनाएँ हो सकती हैं। ट्राम गाड़ियों की लीकों के साथ-साथ साइकिल चलाते हुए भी विशेष सावधानी रखिये।

अन्त में यह भी ध्यान रखिए कि आपकी साइकिल के पुर्जे ठीक काम कर रहे हैं। खासकर, आपकी साइकिल की गद्दी आपके लिए ठीक ऊँचाई की होनी चाहिए। घन्टी भी ठीक हो। रात में साइकिल के आगे बत्ती लगी होनी चाहिए। ध्यान रखने की एक सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि आपकी साइकिल के ब्रेक बिलकुल ठीक होने चाहिए।

स्थानीय सुरक्षा संगठन प्रति वर्ष मोटर गाड़ियों और मोटर साइकिलों के चालकों की योग्यता की जाँच करके, प्रति वर्ष उनका ध्यान इस ओर दिलाते रहते हैं। एक कहावत है कि तेज चलाने वाला अच्छा ड्राइवर नहीं होता, परन्तु अच्छा ड्राइवर वही होता है, जो गाड़ी को सावधानी से चलाये। अच्छा ड्राइवर अपने इंजन की स्थिति को देख कर चलाता है, ब्रेक को देख कर नहीं। उसे जान लेना चाहिए कि संकट आने पर उसकी गाड़ी कैसा काम करेगी। वह जानता है कि गाड़ी को उतना ही तेज चलाना चाहिए, जिससे वह फासले के अंदर उसे सुरक्षित रूप से रोक सके।

मोटर गाड़ी या मोटर साइकिल कभी होड़ से नहीं चलाये जाने चाहिए। यदि कोई आपसे आगे बढ़ जाना चाहता है, तो अपनी गाड़ी धीमी करके उसे बढ़ जाने दो। ऐसी स्थिति में कभी भी अपनी गाड़ी तेज न करो।

पहाड़ी रास्ते में चलते समय, हमेशा नीचे की तरफ आने वाले यातायात को रास्ता दिया जाना चाहिए, क्योंकि नीचे की तरफ आने वाली गाड़ियों का रुकना बड़ा कठिन होता है।

अपनी गाड़ी को तब तक कभी न मोड़ो या लौटाओ, जब तक आपको यह विश्वास न हो जाय कि यह सुरक्षित रूप से मुड़ सकती या लौट सकती है।

सुरक्षा के ध्यान से ही गाड़ियों की चाल पर रोक लगायी जाती है और सीमित चाल से अधिक तेज चलाना अवैध है और खतरनाक भी।

समय-समय पर हमेशा ही इस दृष्टि से गाड़ियों के ब्रेक और दूसरे पुर्जों की देखभाल की जानी चाहिए कि उनके कारण कोई दुर्घटना न हो।

किसी गाड़ी को सड़क पर इस तरह खड़ा न किया जाना चाहिए, जिससे अन्य गाड़ियों के आने जाने में रुकावट पड़े।

सड़क के इस महत्वपूर्ण नियम को अवश्य ध्यान में रखा जाना चाहिए कि चौराहों आदि रास्तों पर यातायात को हमेशा दाहिनी ओर ही रास्ता दिया जाय।

यह भी जरूरी है कि दुर्घटना स्थल पर हमेशा रुका जाय और यदि आप दुर्घटना से सम्बन्धित हों, तो उसकी रिपोर्ट दी जाय।

एक बार मैं आपसे अपील करता हूँ कि सड़क का इस्तेमाल करते समय आप अधिक शिष्टता और समझ से काम लें।

बुद्धकाल में आयुर्वेद

ले०—महापण्डित राहुल सांकृत्यायन

प्राचीन पाली साहित्य को देखने से आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व के हमारे इतिहास पर जिस तरह काफी प्रकाश पड़ता है, उसी तरह उस समय के आयुर्वेद की अवस्था को भी हम देख सकते हैं। अभी (ईसा से पूर्व पाँचवीं सदी) तक ग्रंथों को लिपि-बद्ध करके पुस्तक रूप में रखने की प्रणाली जारी नहीं हुई थी, प्रायः सारे ही ग्रंथ और परम्परायें श्रुति-बद्ध होती थीं। लोग दूसरों से सुन कर ग्रंथों को पढ़ते थे, इसीलिये बहुशिक्षित की जगह उस समय बहुश्रुत कहा जाता था। पता लगता है कि बुद्ध के उपदेश और शायद दूसरे समकालीन महान् आचार्यों के वचन भी उनके शिष्य कंठस्थ कर लिया करते थे। कंठस्थ या श्रुति-बद्ध किये हुए पाठ में एक दूसरे से अन्तर आना स्वाभाविक है। इसका डर बुद्ध के अनुयायियों को भी था, इसीलिये बुद्ध के निर्वाण (४८७ ई० पू०) के तीन महीने बाद ही उनके शिष्यों ने बुद्ध के उपदेशों (सूत्रों और विनय) को इकट्ठा हो कर संगायन करके पाठ ठीक किया। उसके सौ वर्ष बाद फिर दो संगीतियाँ हुई, जिनमें अंतिम अशोक के समय हुई। लेकिन, अभी भी सूत्र और विनय लिपि बद्ध नहीं हुए। यह काम बुद्ध के निर्वाण से सवा चार सौ वर्ष बाद ईसा से पूर्व प्रथम शताब्दी में सिंहल (श्री लंका) में हुआ, जब कि पहले पहल बुद्ध के उपदेश (त्रिपिटक) लिपि बद्ध किये गये। हम यह नहीं कह सकते, कि त्रिपिटक—सूत्र, विनय, अभिधर्म—में आज जो पाठ मिलते हैं, वह अक्षरशः वही हैं जो कि बुद्ध के समय में थे। तो भी उनका अधिकांश उसी समय का है, इसमें संदेह नहीं और विनयपिटक में का 'भैषज्य स्कन्धक' (आयुर्वेद-अध्याय) तो, जहाँ तक भावों का सम्बन्ध है, ईसा से पूर्व पाँचवीं, छठी शताब्दी का कहा जा सकता है।

उस समय भी चिकित्सा-शास्त्र या वैद्यक शास्त्र के अध्ययन की प्रणाली थी और सभी विद्याओं के साथ चिकित्सा-शास्त्र के अध्ययन के लिये तक्ष-शिला (पश्चिमी पाकिस्तान, रावल पिण्डी) सबसे बड़ा केन्द्र था। वहाँ जहाँ प्रसिद्ध वैद्यजीवक ने चिकित्सा शास्त्र का अध्ययन किया था, वहाँ लिच्छवि मह् ली, कौशलराज, प्रसेनजित् और मल्ल बन्धुल ने राज-नीति और युद्ध-विद्या का अध्ययन किया था। मालूम होता है उस समय तक शिष्य किसी पोथी को लेकर गुरु से आयुर्वेद या किसी दूसरे शास्त्र का अध्ययन नहीं किया करते थे। उनकी बहुतसी शिक्षा गुरुमुख से होती थी, इसलिये किसी संहिता पुस्तक के रूप में आयुर्वेद का होना कम सम्भव था। बुद्ध सर्वांगीण प्रतिभा के धनी थे, इसलिये उनके उपदेशों में विद्या के भिन्न-भिन्न अंगों का पता लगता है। यदि विनयपिटक का एक बड़ा अध्याय (स्कन्धक) भैषज्य के लिये है, तो इसका कारण भी वही है। बुद्ध साल में नौ महीने बराबर यात्रा करते रहते थे। उनकी विचरण-भूमि पश्चिम में हरियाना से पूर्व में भागलपुर और दक्षिण में विंध्य-पर्वत से उत्तर में हिमालय की तराई तक थी। पर्यटन-काल में भिक्षु बीमार भी हो जाया करते थे, इसलिये चिकित्सा की जरूरत होती थी। कितनी ओषधियाँ सामान्य तौर से भक्ष्य या अभक्ष्य समझी जाती थीं। बुद्ध के प्रधान शिष्य सारिपुत्र के कभी कभी पेट में शूल हो जाया करता था। जब मालूम हुआ, कि लहसुन खाने से वह

अच्छा होता है, तो बुद्ध ने आज्ञा दी कि औषधि के तौर पर लहसुन खाया जा सकता है। विनयपिटक के 'भैषज्य-स्कन्ध' में बहुत तरह की औषधियों का वर्णन आया है, जिससे यह मालूम होता है कि बुद्ध का ज्ञान इस विषय में काफी विशाल था।

सविस्तार जानने के लिये मेरे 'विनय-पिटक।' (हिन्दी अनुवाद के पृष्ठ २१५–२५५) को देखना चाहिये। वह इस प्रकार हैं—

(१) चर्बीवाली दवाइयाँ—रीछ की चर्बी, मछली की चर्बी, सूंस की चर्बी, शूकर की चर्बी, गदहे की चर्बी दवाई के तौर पर इस्तेमाल होती थी।

(२) मूल की दवाइयाँ—हल्दी, अदरक, बच, नागरमोथा।

(३) क्वाथ की दवाइयाँ—नीम, कुटज, पटोल, चिरायता, नक्तमाल।

(४) पत्ते की दवाइयाँ—नीम, कुटज, पटोल, तुलसी, बनकपास।

(५) फल की दवाइयाँ—बिडंग, पीपर, मिर्च, हरड़, बहेड़ा, आँवला, मैनफल।

(६) गोंद की दवाइयाँ—हींग, हिंगुपत्री, हींगुदूधी, राल।

(७) लवण—सांभर, काला नमक, सेंधा नमक, सज्जीखार, बिड।

दवाइयाँ कूटने-पीसने के लिये उस समय इमाम दस्ते नहीं थे। इसलिये ओखल-मूसल द्वारा उन्हें कूटा जाता था और छानने के लिये ऊनी या सूती वस्त्र के कपड़े की छलनी होती थी। कुछ भिक्षुओं को आँख का रोग हो गया, जिसके लिये उन्होंने निम्न अंजनों का प्रयोग विहित किया :—

(८) अंजन-अंजन (सुरमा), रसांजन, स्रोतांजन गेरू और काजल।

अंजनों को रखने के लिये हड्डी, हाथी दाँत, सींग, नरकट, बाँस, काठ या लाख की बनी हुई अंजनदानियों के रखने की भी बुद्ध ने आज्ञा दी थी, अंजन की सलाइयाँ हड्डी और शंख की भी बनती थीं। किसी-किसी रोग में धूम्र पान भी उस समय कराया जाता था। धूम्रपान का मतलब तम्बाकू पीना नहीं था, क्योंकि तम्बाकू तो १७वीं सदी के पूर्वार्द्ध में पहले पहल भारत में आया। धूम्रपान के लिये एक तरह का छोटा पाइप व्यवहृत होता था, जिसे धूमनेत्री कहते थे। सुंघनी का भी विधान बुद्ध ने किया है।

अन्य औषधियों में तैलपाक और घृतपाक वाली औषधियाँ शामिल थीं, जिन्हें तुम्बे या काष्ठ के बरतन में रक्खा जाता था। साधारण स्वस्थ भिक्षु के लिये अपने पास केवल तीन चीवर, एक कमरबन्द, सूई, भिक्षापात्र, जलछक्का, अस्तुरा आठ चीजों के ही रखने की आज्ञा थी। बिहारों (मठों) में भी बहुत सी चीजों को संग्रह करना विहित नहीं था। इसलिये औषधियों के पात्रों और उनके रखने के लिये विशेष विधान करना पड़ा। मैं अपने पहले लेख में बतला चुका हूँ, कि वृहत भारत तथा चीन आदि देशों में बौद्ध धर्म के सफल प्रचार में भिक्षुओं का वैद्य होना भी एक बड़ा सहायक था।

बातापीड़ितों की चिकित्सा के लिये स्वेदकर्म की भी उस समय व्यवस्था थी, जो कई प्रकार से किये जाते थे, जैसे एक गढ़े को खूब तपा कर उसमें वनस्पतियों के पत्ते डाल कर रोगी को बिठा के ढंक दिया जाता था। रोगी के सिर्फ एक अंग के स्वेदकर्म को संभार स्वेद कहते थे। भगोदक—वनस्पतियों का क्वाथ—बना कर उससे भी स्वेद-कर्म करते थे। उष्ण जल के भाफ से जो स्वेद-कर्म किया जाता था, उसे उदकोष्ण कहते थे।

विनय पिटक से यह भी पता लगता है कि उस समय रक्त-मोक्षण की भी परिपाटी थी, और इसके लिये आज की तरह ही सींग लगा कर शरीर से खून निकाला जाता था। एक समय किसी भिक्षु को साँप ने काट लिया। इस पर बुद्ध ने इसकी चिकित्सा के लिये चार विकटों—मल, मूत्र, राख और मिट्टी—को खिलाने को अनुमति दी। एक भिक्षु ने किसी कारण विष खा लिया था, उसे निकलवाने के लिये बुद्ध ने विष्ठा घोल कर पिलाने की अनुमति दी।

जान पड़ता है, स्थावर या जंगम विष की उस समय तक कोई अच्छी चिकित्सा ज्ञात नहीं थी, इसी लिये इन महा विकटों को पिलाया जाता था। किसी भिक्षु को घर-दिन्नक रोग हो गया, जिस पर बुद्ध ने हल से खुदी मिट्टी खिलाने की अनुमति दी। किसी भिक्षु को ग्राहावेश हो गया, जिस पर आमिषोदक (मांस-सूप) पिलाने की अनुमति दी। पांडु रोगी को उन्होंने गोमूत्र में स्वेदित व भावित हरड़ों के सेवन की अनुमति दी। शीतपित्त के रोग पर गंधक का लेप, बात रोग पर विरेचन, गुल्म रोग पर नमक—सहित छाछ पीने की आज्ञा दी।

भगवान् बुद्ध को कई वर्षों से गुल्म रोग का कष्ट रहता था। वह इतने बड़े भूभाग में विचरण करते थे, पर उस समय कोई ऐसा चिकित्सक नहीं मिला, जो इस रोग को दूर करके यश का भागी होता।

बुद्ध के जेतवन बिहार में रहते समय किसी भिक्षु की कोई आकाश गोत्र शल्य चिकित्सा कर रहा था। बुद्ध भगवान् को आया देख कर वह कुटिया से बाहर निकल आया, और भगवान् को सम्बोधित करके कहने लगा—आइये ! आपको भिक्षु का मल-मार्ग दिखावें। यह ऐसा हो रहा है जैसे गोह का मुँह। पीछे मालूम हुआ, कि भिक्षु को भगन्दर का रोग है, और वैद्य उसकी शल्य चिकित्सा कर रहा था।

विनय-पिटक के चीवर-स्कन्धक में जीवक का जीवन-चरित्र दिया हुआ है। उसके पढ़ने से उस समय की प्राचीन चिकित्सा स्थिति का अच्छा पता लगता है। जीवक ने जब अपने धर्मपिता राजकुमार अभय से किसी शिल्प को सीखने की इच्छा प्रकट की तो उसने आज्ञा दे दी और जीवक राजगृह (पटना जिला) से ७०० मील चल कर तक्षशिला पहुँचा। उसके गुरु दिशा प्रमुखाचार्य थे, उनका असली नाम क्या था? इसका पता हमें विनय-पिटक से नहीं मिलता। जीवक सात वर्ष तक वहाँ विद्या पढ़ता रहा, तब भी चिकित्सा शास्त्र का अन्त नहीं दिखाई पड़ा। आचार्य से पूछने पर उन्होंने उत्तर दिया—इस विद्याका अन्त नहीं है, अच्छा तुम कुदाल लेकर तक्षशिला के चार-चार कोस चारों तरफ घूमकर ऐसी कोई वनस्पति ले आओ, जिसका औषधि के तौर पर कोई उपयोग न हो। जीवक तक्षशिला के चारों तरफ घूमता फिरा, लेकिन उसे एक भी ऐसी वनस्पति नहीं मिली, जो अभैषज्य हो। आचार्य ने कहा—तुम्हारे लिये इतनी विद्या पर्याप्त है। इससे यह भी मालूम होता है, कि उस समय गुरु अपने शिष्यों को औषधियों का व्यावहारिक परिचय करा कर उनके गुण-धर्म बतलाते थे।

गुरु ने अपने योग्य शिष्य को पाथेय देकर घर जाने की आज्ञा दी। उस समय तक जान पड़ता है, इस विद्या को आयुर्वेद और उसके ज्ञाता को वैद्य नहीं कहा जाता था। प्रत्युत् भिषक् या चिकित्सक कहते थे।

लौटते समय साकेत (अयोध्या) पहुँचने पर जीवक का पाथेय समाप्त हो गया। अभी राजगृह (मगध) काफी दूर था, इस लिये उसे सम्बल जुटाने की चिंता हुई। पता लगा, कि साकेत की एक सेठानी को सात साल से शिरः शूल की बीमारी है। उसने उसकी चिकित्सा करने का निश्चय किया, और औषधियों से सिद्ध घृत बना कर सेठानी को नस्य दी। सेठानी भली चंगी हो गई और उसने जीवक को १६ हजार कार्षापण और दूसरी चीजें दीं। राजगृह पहुँच कर उसने अपनी प्रथम अर्जित मुद्रा को अभय राजकुमार के सामने रख दिया। राजकुमार ने ही उस फेंके हुये शिशु को लेकर पाल-पोस कर बड़ा किया था। इसीलिये जीवक को कुमारभृत्य या कौमारभृत्य कहा जाता था। अभय और दूसरों के मुख से जीवक की प्रशंसा सुन कर मगधराज बिम्बसार ने अपने भगन्दर रोग की चिकित्सा कराई और रोग मुक्त हो जीवक को अपना चिकित्सक बनाया। बनारस के एक सेठ के लड़के की आंतड़ी शल्य-कर्म द्वारा निकाल कर ठीक करने

पर जीवक को बहुत सा धन और प्रतिष्ठा मिली। फिर तो उसकी माँग सुदूर उज्जयिनी तक से आने लगी, जहाँ के राजा प्रद्योत को पांडु-रोग था, उसे जीवक ने अच्छा किया। पांडु रोग की चिकित्सा के लिये अनेक कषायों और वनस्पतियों द्वारा घृत सिद्ध करके पूरी मात्रा में उसे पिला जीवक उज्जयिनी से भाग खड़ा हुआ क्योंकि राजा प्रद्योत को घी से बड़ी घृणा थी। इस घृत की एक मात्रा से ही प्रद्योत नीरोग हो गया, और उसने जीवक को बहुत सी भेंट के साथ शिवि देश का एक दुशाला दिया। बुद्ध के अस्वस्थ होने पर जीवक ने उन्हें स्नेहपान कराया, विरेचन की दवा दी, जिसके एक चम्मच की मात्रा से दस रेचन होते थे। जीवक ने तीन चम्मच पिला कर तीस रेचन करवाये, उससे तथागत का स्वास्थ सुधर गया।

विनय-पिटक से "भैषज्य-स्कन्धक" के पढ़ने से मालूम होता है, कि उस समय हमारे देश में चिकित्सा-सम्बन्धी ज्ञान कम नहीं था। इस चिकित्सा को शायद भैषज्य-विद्या के नाम से पुकारते थे। भैषज्य-विद्या को बतलाने और द्वीप द्वीपान्तरों में उसके प्रचार में बुद्ध का जो हाथ था उसी से बुद्ध को भैषज्य गुरु कहा जाता था। छठी-सातवीं शताब्दी में जापान में भी एक हाथ में हरीतकी लिये भैषज्य गुरु की मूर्तियाँ स्थापित हो गई थीं। शायद चिकित्सा-शास्त्र के गुरु के तौर पर धन्वन्तरि के प्रसिद्ध होने से बहुत पहले भैषज्य गुरु के नाम से बुद्ध विख्यात हो चुके थे।

बौद्ध देशों में भैषज्य-स्कन्ध ने भारतीय चिकित्सा शास्त्र को फैलाने में बड़ा काम किया, सुवर्ण (सुमात्रा) जावा, थाईभूमि, कम्बोडिया (कंबुज), चीन, कोरिया, जापान, मंगोलिया, मध्य एशिया, तिब्बत, अफगानिस्तान आदि देशों में भारतीय चिकित्सा प्रणाली का बौद्ध-धर्म के साथ साथ प्रचार हुआ। कितने ही ग्रन्थ भी वहाँ की भाषाओं में अनुवादित हुये क्योंकि उस समय हर एक बड़ा विहार, चिकित्सागार भी था, परन्तु भारतीय चिकित्सा-शास्त्र के अनुवादित ग्रंथ तिब्बती भाषा में थोड़े से ही अब प्राप्य हैं, जिनमें भी सबसे अधिक भाग "अष्टांग हृदय" और उसकी टीका का मिलता है।

—*आयुर्वेद विज्ञान*

लोहा

[पृष्ठ ४५ का शेष]

वर्ष	उत्पादन		पिग आयरन
१९४७	८६३२९६	टन	....
१९४८	८५४०००	,,	२१८००० टन
१९४९	९२००००	,,	....
१९५०	९८६०००	,,	
१९५१	१०४००००	,,	

लोहे का व्यवहार :—धातुओं में लोहे का व्यवहार सर्वापेक्षा अधिक है। यदि ऐसा कहा जाय कि यह हमारे जीवन से अभिन्न है तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। पिन जैसी छोटी चीजें लेकर इंजिन और जहाज बनाने में भी लोहे का ही व्यवहार होता है। भारत अत्यन्त ही उत्कृष्ट श्रेणी का लौह का धातव पत्थर उत्पादन करता है और यह अतुल-राशि का भंडार है लेकिन फिर भी अपनी आमदनी का ३/२ हिस्सा लोहा बाहर से लिया जाता है। इसका कारण क्या है? व्यवसाय के उत्तम साधन का अभाव। इसी अभाव के कारण यहाँ से बहुत परिमाण में लोहा विदेश भेजा जाता है और उसे इस्पात बन कर पुनः यहाँ लौट आता। साधन रहित अन्य देश भी इस्पात तैयार करने का व्यवसाय लाभ-पूर्वक कर रहे हैं। और भारत के ही कच्चे माल से लाभ उठाते हैं। यदि निर्माण रोल के लिये भारत में लौह व्यवसाय की सम्यक प्रगति हुई तो इसमें सन्देह नहीं कि हमारा भारत एक दिन सर्वश्रेष्ठ लौह व्यवसायी होकर रहेगा।

पक्षियों की उत्पत्ति

श्री जगपति चतुर्वेदी

आज से तीस चालीस करोड़ वर्षों पूर्व की कथा कही जा सकती है जब सृष्टि में केवल समुद्र-खंड में ही जीवों का निवास था। धरती के तीन चौथाई भाग में लवणीय जल खंड था जिसे सागर नाम दिया जाता है। शेष एक भाग भूमि थी। स्थल और जलखंड का यह अनुपात तो आज भी बना है, परन्तु समुद्र-खंड के जीवों की ओर हमारा ध्यान भले ही न जा सके, स्थल खंड तो इतना अधिक जीवजन्तु संकुल है कि उनकी गणना करने के लिए संख्याएँ नहीं मिल सकतीं। इन संख्यातीत जीवजन्तुओं की आदि कथा जानने के प्रयत्न में वैज्ञानिकों ने धरा गर्भ में रक्षित प्रस्तरावशेषों का अध्ययन किया है। प्राचीन रूप के कितने ही स्थल-जीवी जन्तुओं के वंशों का सर्वथा लोप हो जाते रहने तथा जीवित रह सकने वाले वंशों का यथेष्ट काया-पलट होते रहने के पश्चात् आज के जीवजन्तुओं का रूप निर्मित सिद्ध होता है।

जब केवल जलजीवियों का ही सागरों में साम्राज्य था और स्थल केवल वीरान ही था, उस समय भौगर्भिक परिवर्तन हुए होंगे। सृष्टि के उस निर्माण युग में कितनी ही दिशाओं में संहार तथा निर्माण क्रियाएँ संलग्न दिखाई पड़ सकती थीं। कहीं महागर्तमेंअन्य ऊँचे स्थलों से आती रहने वाली मिट्टी भरती रहती भार की वृद्धि से अन्ततम की शक्तियाँ उस खंडको उठा देतीं। कहीं भूमि बन जानेसे समुद्र का जल खंड स्थल खंडों से घिर कर बड़ा या छोटा जलखंड बन जाता। उसके सूखते जाने पर कहीं नम भूमि में रहने का अभ्यास रखने वाले कीट उत्पन्न हो सके होंगे या किसी प्रकार इन जल खंडों या समुद्र के तटों की भूमि में जीव रहने की वृत्ति उत्पन्न कर सके होंगे। भूमि जीवी सृष्टि की उत्पत्ति इसी प्रकार हुई या उसका कुछ अन्य साधन रहा होगा इस का ठीक चित्रण आज एक कठिन प्रयास ही है परन्तु इस अनिश्चिन्ता में एक बात अवश्य निर्विवाद कही जा सकती है कि स्थल जीवियों की उत्पत्ति या प्रसार के आदि युग में आकाश में पक्षी कहीं भी नहीं दिखाई पड़ सकते थे। उस समय तक पक्षी वंश का सृष्टि में उदय ही नहीं हुआ था।

पृथ्वी की जिन शिलाओं में अधिकांश पत्थर कोयले पाए जाते हैं उन्हें आज से बीस पच्चीस करोड़ वर्षों पूर्व उत्पन्न होने का अवसर मिला था। वह धरा पर वनस्पतियों के विस्तृत प्रसार का आदिम युग था। उस काल के अधिकांश वनस्पतियों की जातियाँ लुप्त ही हो गई हैं। इस काल का नाम कारबोनिकेरस या अंगार काल कहा जाता है। इस काल में कुछ स्थल जीवी उत्पन्न हो गए थे जिनको उभय जीवी कहते हैं। इनके मध्य कहीं पर किसी उड़ने वाले जंतु का नाम मिल सकता था तो वह थी कोई दानव मक्षिका समान विलुप्त जाति की मक्खी। पत्थर कोयले की तहों में ऐसी दानव मक्षिका का आकार प्राचीन काल के विलुप्त या आज विद्यमान सभी कीटों से विशाल था। उसके पंखों का फैलाव एक छोर से दूसरे छोर तक २९ इंच था। इतने विशाल पंखों की मक्खी बेलजियम की कोयला खदानों में पाई जा सकी हैं। बाद के कालों में इसके आकार का ह्रास ही होता गया। अन्त में इसकी जाति का लोप भी हो गया। इसी के वंश के बहुत अधिक काया पलट कर उत्पन्न होने वाली शाखाओं

में विद्यमान कीटों में बड़ी मक्खी, बर्रे, भुनगे, यथार्थ दानव मक्षिका आदि को कहा जा सकता है। अमेरिका में कारबोनिफेरस काल के पश्चात् के परमियन काल में कंसा प्रान्त में १०००० नमूने पाए जा सके हैं जो पंखों पर सूक्ष्मदर्शकीय रोम तथा मूल रंगों को आज भी प्रदर्शित कर सकते हैं।

कीट वर्ग हीन जाति का जीव है। शरीर में रीढ़ का नाम भी नहीं होता। अतएव वायु में उड़ने का सर्वप्रथम श्रेय तो इन्हें प्राचीन दानव मक्षिका रूप में मिलता है। परन्तु पक्षी वर्ग से इनका वादरायण सम्बन्ध भी नहीं। पक्षियों की उत्पत्ति के लिए रीढ़ वाले जंतुओं (पृष्ठ वंशीय) की उत्पत्ति तथा विकास कथा का अनुशीलन करना पड़ सकता है। पृष्ठवंशीय उड़ाकू जंतु का जो सर्वप्रथम रूप प्रस्तरावशेष रूप में मिल सकता है उसे पक्षी कहना तो उपहास की बात ही हो सकती है, परन्तु पक्षियों की उत्पत्ति कथा में उनका नाम छोड़ना असंभव ही है। इन जंतुओं को चर्मपंखीय कहा जा सकता है जो चर्मपंख के नमूने का कुछ रूप आज के चमगीदड़ में प्रकट करते हैं।

चर्मपंखी जंतुओं को उस युग में उत्पन्न पाया जाता है जो पृथ्वी क इतिहास में मध्य जंतुक युग कहा जाता है। आज से अठारह बीस करोड़ वर्षों पूर्व इस युग का उदय हुआ होगा। दस करोड़ वर्षों की अवधि तक इस मध्यजंतुक युग का प्रसार रहा होगा जो भीमकाय सरीसृपों को उत्पन्न कर सकने से सरीसृपीय युग भी कहा जाता है। इन सरीसृपों में ही एक जाति ने आकाश में उड़ने का कृत्य पूर्ण कर दिया। इसको चर्म पंखी नाम देते हैं। यथार्थ में इसके अग्र पाद या भुजा की कनिष्ठिका उँगली ही चर्म पट्टी रूपी पंख को प्रसारित रखती थी अतएव उस उँगली की लम्बाई इसके शरीर की लंबाई के बराबर होती थी। इस कारण प्रलम्ब कनिष्ठिका भी इसे कहा जाय तो कोई अनुचित नहीं यह चर्मपंखी या प्रलम्ब कनिष्ठिक सरीसृप अपने धड़ की चमड़ी प्रवर्द्धित रख कर कनिष्ठिका उँगली के लम्बे भाग से आबद्ध रखता था। बाहु की शेष उँगलियाँ चर्म पंख से स्वतन्त्र सी रहती थीं, परन्तु चमगीदड़ में सारी उँगलियाँ छाते की कड़ी की तरह चर्मीय प्रवर्द्धित तल में आबद्ध होती हैं।

चर्म पंखी अपनी प्रवर्द्धित चमड़ी को फैलाकर पंख का काम लेता था, परन्तु वह आज के चमगीदड़ की तरह सीधे ऊपर आकाश में नहीं उड़ सकता था। उसे उड़ने के लिए किसी वृक्ष या ऊँचाई की जगह पर चढ़ना पड़ता और वहाँ से अपने चर्म पंख को फैलाकर छतरी की भाँति निश्चल ही रखे धीरे धीरे नीचे आ सकता। ऐसी उड़ानों को निस्पंद पंखीय कुदान कहा जाता है। यह अपने चर्म पंख की सहायता से वायु में देर तक मँडराता भी रहता और उड़ते कीटों को खाता रहता। इसके मुख में तीव्र दाँत होते थे। यह स्मरण रखने की बात है कि चमगीदड़ उष्ण रक्तका जन्तु है। स्तनपायी वर्ग में उसकी गणना है। परन्तु यह चर्म पंखी जन्तु सरीसृप था जिसके शरीरका रक्त शीत होता है। शीतरक्तीय जंतुओं के शरीर का रक्त बाह्य वातावरण के तापमान से प्रभावित होकर घटता बढ़ता रहता है किन्तु उष्ण रक्तीय जंतुओं के शरीर के रक्त का तापमान साधारण तथा स्थिर रहता है।

चर्मपंखीय सरीसृप का प्रसार मध्य जंतुक युग के आदि और मध्य खंडों (ट्रायासिक तथा जुरासिक) में हुआ था। इसका आकार गौरैया से लेकर तीन चार फुट फैलाव के पंख युक्त होता था। इनमें कुछ के शरीर में पूँछ होती थी जिसे वे हवा में पतवार की भाँति प्रयुक्त कर अपना शरीर संतुलित रख सकते थे। परन्तु बहुत से चर्मपंखीय सरीसृप पुच्छहीन ही होते थे। इनके अंगले तथा पिछले पैरों में आकार का विशेष विभेद नहीं था। भूमि पर वे निस्संदेह ही चारों पैरों के बल चल सकते थे। कालान्तर में कुछ चर्मपंखी इतनी सफलता प्राप्त कर सके कि अधिक समय तक वायु में समुद्रतल के ऊपर मंडराते रह कर जल जन्तुओं को आहार बना सकें। अमेरिका के कंसा प्रदेश में

नियोब्रारा खटी शिलाओं (चूने के पत्थर) में चर्म पंखियों का ऐसा प्रस्तारावशेष रक्षित मिल सका है जिसके पंख का फैलाव २४ फुट तक है। अतएव इतने वृहदाकार उड़नशील जन्तु को तो भूत तथा वर्तमान सभी उड़ाकू जंतुओं से अधिक भीमकाय कहा जा सकता है। इसका मुख पक्षी के समान दन्तहीन था तथा पिछले पैर बहुत ठिगने तथा भ्रष्ट थे। इतने विशाल पंख के उड़ाकू जन्तु की धड़ एक वन्य हंस के आकार की ही थी। अतएव ज्ञात होता है कि उड़न क्रिया की विशेषता के लिए अन्य सभी अंगों का रूप क्षुद्र बना था। ऐसी विशेषता का ही यह कदाचित परिणाम हुआ कि इसके वंश की जीवन संघर्ष में रक्षा सम्भव न हो सकी। इनका वंश खटी काल (मध्य जंतुक युग का अंतिम काल) का अन्त होने के पूर्व ही आज से सात करोड़ वर्षों पूर्व समाप्त हो गया। चर्मपंखीय सरीसृप के लोप का जो भी कारण हो परन्तु उसका मस्तिष्क विशेष विकसित था। नेत्र पक्षियों की भाँति थे। विशाल नेत्रों से निशाना साध सकने में ये तीव्र थे। योरोप में बवेरिया में इसके प्रस्तरावशेष भव्य रूप में रक्षित पाए जाते हैं।

मध्य जंतुक युग के मध्य खंड (जुरासिक काल) के अन्तिम समय में आज से ग्यारह बारह करोड़ वर्षों पूर्व संसार ने पक्षियों के आदि रूप का आविर्भाव देखा। वह किन आदिम जंतुओं का कायापलट तथा विकास होने से उत्पन्न हुआ, यह कहना कठिन है, किंतु उसका जो विचित्र रूप आज प्रस्तरावशेष रूप में रक्षित मिल सकता है, वह उसे आदि पक्षी नाम से पुकारे जाने में कोई हिचक नहीं उत्पन्न होने देता। उसका अद्भुत रूप अवश्य था। चर्मपंखी सरीसृप का शरीर नग्न (पर-हीन) था। किन्तु इस आदि पक्षी के शरीर पर पक्षियों की भाँति पर निकले थे। दुम अवश्य विचित्र थी। इसकी दुम लम्बी, सरीसृपों के समान अस्थिरचित थी। उसके दोनों ओर परों की पंक्तियाँ थी, किंतु आज के पक्षी में केवल परों की ही दुम बनी होती है। अस्थि खंड का उसमें अभाव होता है। इसको अर्द्ध सरीसृप कह सकते हैं। कुछ बातों में तो सरीसृप समान ज्ञात होता था कतु बहुत सी बातों में पक्षी समान था। अगले पर की रचना पक्षियों समान थी। उसमें पक्षी के समान लम्बे पर संयुक्त हो कर पंख का रूप देते थे।

आदि पक्षी (आर्कियोप्टेरिक्स) को भी उड़ान के लिए किसी ऊँचे स्थल पर पहले चढ़ना पड़ता था। वहाँ से कूदने पर हवा में उड़ सकने में समर्थ होता था। इस की शरीर रचना में शीघ्र-शीघ्र विकास होता गया जिससे यथार्थ पक्षियों का रूप बना। फलतः मध्यजन्तुक युग के अंतिम खंड (खटी या क्रिटेशश काल) में शक्तिशाली उड़ान शक्ति के पक्षी पाए जाते हैं। यही नहीं, जल में डूबने वाले पक्षियों का रूप भी इस काल में देखा जाता है। आदि पक्षी अपने पंख की अगली किनारी चंगुलों के साथ तीन उँगलियाँ रखे मिलता है। पंख में लगे इन चंगुलों की सहायता से वह वृक्षों तथा झाड़ियों पर चढ़ सकता था।

आदि पक्षी के केवल तीन प्रस्तरावशेष प्राप्त हो सके हैं। ये तीनों नमूने योरप में बवेरिया की सोलहोफेन नाम की पत्थर की खुली खान में प्राप्त हो सके हैं। यहाँ पर लिथो छापने वाला नर्म पत्थर पाया जाता है। उनमें ही तीनों प्रस्तारावशेष मिले हैं। दो प्रस्तरावशेषों में सूक्ष्म कंकाल हैं और साथ ही पंखों की भी सुन्दर छाप है किन्तु तीसरे नमूने में केवल एक पंख की छाप है। इन प्रस्तरावशेषों का आकार तो लगभग समान है। परन्तु ये विभिन्न प्रजातियों तथा जातियों के आदि पक्षी के नमूने हैं।

सर्वप्रथम अन्वेषित प्रस्तरावशेष को आदि पक्षी नाम दिया गया था। यह विचित्र आकार का जंतु अवश्य था जिसको सरीसृप वर्ग में घसीटा जा सकता किन्तु परों के कारण इसे पक्षी वंश का आदि जंतु घोषित किया गया। सरीसृपों तथा पक्षियों की पारस्परिक शृंखला बताने वाला उदाहरण इससे उत्तम मिलना कठिन है।

विज्ञान समाचार

मूंगफली और अरंड की खल की खाद

मूंगफली और अरंड की खलें खेतों में खाद की तरह इस्तेमाल की जा सकती हैं। इनमें क्रमशः ७ और ५ प्रतिशत नत्रजन (नाइट्रोजन) होती है। देश के विभिन्न कृषि अनुसंधान-केन्द्र इन खलों को खाद के रूप में इस्तेमाल करने के विषय में काम कर रहे हैं। उनके परीक्षणों के जो परिणाम निकले हैं वे काफी रोचक हैं। वैज्ञानिक तथा औद्योगिक परिषद, नयी दिल्ली द्वारा प्रकाशित मासिक 'विज्ञान प्रगति' के फरवरी १९५४ के अंक में इस विषय में विस्तार से चर्चा की गई है।

आदि पक्षी का आकार कौए के बराबर था। इसकी तीन विशेषताएँ थीं। जबड़े में छोटे दाँतों की पंक्ति थी। ये केवल किसी शृंगीय पट्टी के उभड़े हुए दाने या आरी के दाँतें समान भाग नहीं थे। बल्कि स्वतंत्र मूल रखने वाले पृथक-पृथक दाँते थे। दूसरी बात यह थी कि पंख में सारी उंगलियाँ सन्निविष्ट नहीं थीं। प्रथम तीन उंगलियाँ चंगुल का काम कर सकती थीं। तीसरी विशेषता उपर्युक्त रूप की दुमों की थी। दुम में नीम पत्रावली की तरह परों की व्यवस्था थी। आज कल की चिड़ियों में मोर पङ्खों के समान एक केन्द्र बिन्दु से प्रसारित परों द्वारा उसकी रचना नहीं थी। इन विशेषताओं के होते हुए भी उसके शरीर के ऊपर पक्षियों समान परों की व्यवस्था उसके पक्षी वंश का आविर्भाव करने के कृत्य में सन्देह उत्पन्न नहीं कर सकती थीं।

अमेरिका के कंसा प्रदेश की नियोब्रारा शिलाओं में खटी काल में तीन स्पष्टतः विभिन्न रूप के पक्षी प्रस्तरावशेष रूप में प्राप्त होते हैं। इनमें से दो के जबड़ों में दाँत हैं। एक तो तटचारी पक्षी था जिसका आकार अर्द्ध पंककीर (छोटे चहा) के बराबर था। उसके पंख शक्ति शाली थे। दूसरा पक्षी पनडुब्बा था। इसके अनेक कंकाल पाए गये हैं। यह पक्षी आधुनिक पेंग्विन की तरह जल जीवन का इतना अधिक अभ्यस्त हो गया था कि उड़ना भूल गया था। उसमें पंख के केवल आंतरिक चिन्ह ही रह गये थे। इसकी लम्बाई ६ फुट तक होती थी और खड़े होने पर साढ़े चार फुट ऊँचा ज्ञात हो सकता था। परन्तु आकार में ऊँचाई बताने का यह अर्थ नहीं हो सकता कि वह निस्संदेह ही खड़ा हो सकता था।

इन दोनों समुद्री पक्षियों से उस समय के पक्षी जगत का कुछ अनुभव नहीं होता। भूजीवी पक्षियों का उस काल में विद्यमान होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता। एक दाँत हीन जबड़े का पक्षी पाया जा सका है। इन पक्षियों के प्रस्तरावशेषों के दुर्लभ होने का यह कारण है कि उनकी हड्डियाँ बड़ी कृशकाय और खोखली होती हैं। बहुत ही कम अवसर हो सकते हैं जो उनके प्रस्तरावशेष रक्षित रख सकने के विशेष अनुकूल हों। पक्षियों का उड़ना भी एक ऐसी विशेषता है जो उनकी कंकाल रक्षा में बाधक है। वायु से मृतावस्था में गिर कर वे भूमि पर आ सकती हैं जहाँ उनके शव को खा जाने वाले जीवों का अभाव नहीं हो सकता। फिर भी कुछ दुर्लभ प्रस्तरावशेषों को ही पाकर वैज्ञानिकों ने उनके जन्म तथा विकास की कड़ी ग्रथित करने का उद्योग किया है।

परमानो के कृषि परीक्षण केन्द्र और परमानी तथा औरंगाबाद जिले के कुछ किसानों के खेतों में रुई पैदा करने के सिलसिले में इस तरह के परीक्षण किये गये। ३००० पौंड मूँगफली की खल से २० पौंड नाइट्रोजन प्राप्त होती है। जब इतनी खाद कपास के एक एकड़ खेत में डाली गई तो खादहीन खेत की अपेक्षा उसमें ४० प्रतिशत अधिक फसल पैदा हुई। इन्हीं स्थानों पर गेहूँ की फसल के लिये भी इस तरह के परीक्षण किये गये। एक एकड़ भूमि में १५० पौंड मूँगफली की खाद डाली गई और इससे २० से ३० प्रतिशत तक फसल अधिक प्राप्त हुई। खादहीन खेत में ३३० पौंड गेहूँ और खादमय खेत से ४३४ पौंड गेहूँ पैदा हुआ।

धान के लिये ये परीक्षण निजाम सागर योजना के येदपल्ली परीक्षण केन्द्र में किए गये। यहाँ की धरती लाल मोटे रेत वाली है। क्योंकि अरंडकी खल में फास्फोरिक एसिड मूँगफली की खल से अधिक होता है इसलिए इस धरती में उसकी खाद देना अच्छा रहता है। पर अरंड की खल में नाइट्रोजन की मात्रा कम होती है इसलिए इसे मूँगफली की खल की अपेक्षा अधिक डालना पड़ता है। इससे धरती को लाभ ही होता है। उसे अधिक वनस्पति पदार्थ मिल जाता है। ४५० पौंड मूँगफली की खल या ७५० पौंड अरंड की खल काम में लाई गई। इससे साधारण खेत की १, ८९८ पौंड पैदावार के मोकाबले पर २, १८५ पौंड धान प्राप्त हुआ।

गन्ने की फसल के सम्बन्ध में भी इन खलों के उपयोग के परीक्षण येदपल्ली केन्द्र में ही किये गये। दोनों खलों को एक-सा लाभदायक पाया गया। प्रति एकड़ २२५ पौंड नाइट्रोजन दी गई। इसमें मूँगफली की खल ४२ मन और अरंड की खल ५६ मन इस्तेमाल की गई। गन्ना एकसाली किस्म का था। खेत को १५० पौंड नाइट्रोजन प्रति एकड़ देने से लगभग ५०० मन गन्ना पैदा होता था। २२५ पौंड नाइट्रोजन देने पर बढ़कर ६२२ मन हो गया।

बाँस के कल्लों की डिब्बाबन्दी

इस समय देश में बहुत बड़ी मात्रा में बाँस के कल्ले बेकार जाते हैं। मैसूर की खाद्य-शिल्प अनुसंधान शाला ने इनको डिब्बा बन्द करके संरक्षित रखने की एक सराहनीय विधि का आविष्कार किया है।

आसाम, बंगाल, बिहार, हैदराबाद, मध्यप्रदेश, मैसूर, उड़ीसा, ट्रावनकोर आदि प्रदेशों में बाँस के बहुत बड़े-बड़े बन पाये जाते हैं। धरती के भीतर एक बड़ी जड़ होती है जिसमें से कल्ले फूटते हैं और बढ़कर बाँसों का समूह बनाते हैं। बाँसों का यह समूह कोठी कहलाता है। और बाँसों के कल्ले करैल कहलाते हैं। एक कोठी में बहुत से करैल निकलते हैं। इन करैलों में बहुत से ऐसे होते हैं जो कमजोर थात टेढ़े मेढ़े होते हैं, वे बढ़कर बाँस नहीं बनते। वैसे ही सूख जाते हैं। इन करैलों में से कुछ स्थानीय तौर पर खाने के काम में लाये जाते हैं। पर इनकी बहुत बड़ी मात्रा बेकार नष्ट हो जाती है। यह करैल इकट्ठे करके डिब्बों में संरक्षित किये जा सकते हैं और स्थानीय तौर से दूसरे मौसमों में इस्तेमाल

किये जा सकते हैं अथवा दूर के बाजारों में बेचे जा सकते हैं।

डिब्बों में संरक्षित रखने के लिए डेढ़-दो फुट ऊंचे स्वस्थ करैल इस्तेमाल किये जाते हैं। इनके ऊपर कुछ पत्तियाँ लिपटी हुई रहती हैं। इनको एक तेज चाकू से काट कर अलग कर दिया जाता है और उनसे नीचे से जो कोमल भाग निकलता है उसके आवश्यकतानुसार कतले बना लिये जाते हैं। कतलों के ऊपर यदि हरा भाग होता है तो उसे छील कर अलग कर दिया जाता है। यह पत्तियाँ मीठी चटनी बनाने के काम में भी लाई जा सकती हैं।

करैल में एक प्रकार की कड़ुवाहट होती है। उसे दूर करने के लिये उसके कतलों को आध घंटे तक दो-तीन बार पानी में उबाला जाता है। पानी को हर बार फेंक दिया जाता है।

इन कतलों को नमक के पानी में संरक्षित करके रखा जा सकता है। डिब्बे को उबाले हुए कतलों से भर दिया जाता है। उसके ऊपर लगभग $\frac{3}{4}$ इंच स्थान खाली रहने दिया जाता है।

मामूली नमक का दो प्रतिशत घोल बनाया जाता है। इस घोल को हल्का-सा खौलाया जाता है और फिर कपड़े में छान लिया जाता है। इस गर्म घोल को कतलों के डिब्बों में डालते हैं। घोल के ऊपर $\frac{1}{4}$ इंच स्थान खाली रहने दिया जाता है।

इसके बाद डिब्बों को खौलते पानी में रखा जाता है। इस प्रकार कि डिब्बे का मुँह १–१$\frac{1}{2}$ इंच पानी से ऊपर रहता है। डिब्बे को उस समय तक गर्म किया जाता है जब तक कि उसके बीच में तापमान २००° फ० नहीं हो जाता। इसके पश्चात् डिब्बे को पानी से निकाल कर तुरन्त बन्द कर दिया जाता है। यह काम कैन सीलर की सहायता से किया जा सकता है।

———

विषय-सूची

वार्षिक मूल्य ४) चार रुपया एक प्रति का ।≈) छः आना।

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

१—विज्ञान प्रवेशिका, भाग १ ।=)
२—चुम्बक ।।।=)
३—मनोरंजन रसायन २)
४—सूर्य सिद्धान्त छः भाग (भाग १,२ अप्राप्य) ८)
५—वैज्ञानिक परिमाण १)
६—समीकरण मीमांसा प्रथम भाग १।।)
    द्वितीय भाग ।।=)
७—निर्णायक (डिटमिनैंट्स) ।।।)
८—बीज ज्यामिति या भुजयुग्म रेखागणित १।)
९—वर्षा और वनस्पति ।=)
१०—सुवर्णकारी ।=)
११—विज्ञान का रजत जयन्ती अंक (अप्राप्य) १)
१२—व्यङ्ग-चित्रण २)
१३—मिट्टी के बरतन (अप्राप्य) २)
१४—वायुमंडल २)
१५—लकड़ी पर पालिश (अप्राप्य) २)
१६—कलम पेवंद २
१७—जिल्दसाजी २)
१८—तैरना १)
१९—सरल विज्ञान-सागर प्रथम भाग (अप्राप्य) ६)
२०—वायुमण्डल की सूक्ष्म हवाएँ ।।)
२१—खाद्य और स्वास्थ्य ।।)
२२—फोटोग्राफी ४)
२३—फल संरक्षण २।।)
२४—शिशु पालन ४)
२५—मधुमक्खी पालन ३)
२६—घरेलू डाक्टर ४)
२७—उपयोगी नुसखे, तरकीबें और हुनर ३।।)
२८—फसल के शत्रु ३।।)
२९—साँपों की दुनिया ४)
३०—पोर्सलीन उद्योग ।।।)
३१—राष्ट्रीय अनुसंधानशालाएँ २)
३२—गर्भस्थ शिशु की कहानी २।।)

हमारे यहाँ नीचे लिखी पुस्तकें भी मिलती हैं:—

१—साबुन-विज्ञान—श्रीश्याम नारायण कपूर ९)
२—भारतीय वैज्ञानिक—श्रीश्याम नारायण कपूर ३)
३—वैक्युमब्रेक—श्रीओंकार नाथ शर्मा २)
४—यांत्रिक चित्रकारी—श्रीओंकार नाथ शर्मा २।।)
५—विज्ञान के महारथी—जगपति चतुर्वेदी २)
६—पृथ्वी के अन्वेषण की कथाएँ-जगपति चतुर्वेदी १।।)
७—विज्ञान जगत की झाँकी—डा० परिहार २)
८—खोज के पथ पर—शुकदेव दुबे ।।)
९—जन्तु विज्ञान—(इन्टरमीडियेट कक्षा के लिये)
    श्रीचंपत स्वरूप भाग १ ४)
    भाग २ ६)
१०—वनस्पति शास्त्र—(इंटरमीडिएट कक्षा के लिए) डा० धर्म नारायण ६)

पता—विज्ञान परिषद, (म्योर सेन्ट्रल कालेज भवन) प्रयाग.

Reg. NO. 32

विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

परिषद् का उद्देश्य

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद् का संगठन

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार सभ्यगण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उप-सभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमन्त्री, दो मन्त्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्य को ६) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ १०० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिए वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशन में उपस्थित रहने का तथा अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित, परिषद् की सब पुस्तकों, पत्रों, तथा विवरणों इत्यादि को बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य वृन्द समझे जायेंगे।

प्रधान संपादक—डा० *हीरालाल निगम*
सहायक संपादक—*श्री जगपति चतुर्वेदी*

आर्ट प्रिन्टर्स, जीरो रोड, इलाहाबाद—३ प्रकाशक—विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद

विज्ञान

जून १९५४
मिथुन २०११

भाग ७९
अंक ३

वार्षिक मूल्य
चार रुपए

प्रति अंक
छः आने

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

१—विज्ञान प्रवेशिका, भाग १	।=)
२—चुम्बक	।।।=)
३—मनोरंजन रसायन	२)
४—सूर्य सिद्धान्त छः भाग (भाग १,२ अप्राप्य)	८)
५—वैज्ञानिक परिमाण	१)
६—समीकरण मीमांसा प्रथम भाग	१।।)
द्वितीय भाग	।।=)
७—निर्णायक (डिटमिनैंट्स)	।।।)
८—बीज ज्यामिति या भुजयुग्म रेखागणित	१।)
९—वर्षा और वनस्पति	।=)
१०—सुवर्णकारी	।=)
११—विज्ञान का रजत जयन्ती अंक (अप्राप्य)	१)
१२—व्यङ्ग-चित्रण	२)
१३—मिट्टी के बरतन (अप्राप्य)	२)
१४—वायुमंडल	२)
१५—लकड़ी पर पालिश (अप्राप्य)	२)
१६—कलम पेवंद	२)
१७—जिल्दसाजी	२)
१८—तैरना	१)
१९—सरल विज्ञान-सागर प्रथम भाग (अप्राप्य)	६)
२०—वायुमण्डल की सूक्ष्म हवाएँ	।।।)
२१—खाद्य और स्वास्थ्य	।।)
२२—फोटोग्राफी	४)
२३—फल संरक्षण	२।।)
२४—शिशु पालन	४)
२५—मधुमक्खी पालन	३)
२६—घरेलू डाक्टर	४)
२७—उपयोगी नुसखे, तरकीबें और हुनर	३।।)
२८—फसल के शत्रु	३।।)
२९—साँपों की दुनिया	४)
३०—पोर्सलीन उद्योग	।।।)
३१—राष्ट्रीय अनुसंधानशालाएँ	२)
३२—गर्भस्थ शिशु की कहानी	२।।)

हमारे यहाँ नीचे लिखी पुस्तकें भी मिलती हैं:—

१—साबुन-विज्ञान—श्रीश्याम नारायण कपूर	९)
२—भारतीय वैज्ञानिक—श्रीश्याम नारायणकपूर	३)
३—वैक्युमब्रेक—श्रीओंकार नाथ शर्मा	२)
४—यांत्रिक चित्रकारी—श्रीओंकार नाथ शर्मा	२।।)
५—विज्ञान के महारथी—जगपति चतुर्वेदी	२)
६—पृथ्वी के अन्वेषण की कथाएँ-जगपति चतुर्वेदी	१।।)
७—विज्ञान जगत की झाँकी—डा० परिहार	२)
८—खोज के पथ पर—शुकदेव दुबे	।।)
९—जन्तु विज्ञान—(इन्टरमीडियेट कक्षा के लिये) श्रीचंपत स्वरूप भाग १	४)
भाग २	६)
१०—वनस्पति शास्त्र—(इंटरमीडिएट कक्षा के लिए) डा० धर्म नारायण	६)

पता—विज्ञान परिषद्, (म्योर सेन्ट्रल कालेज भवन) प्रयाग

Approved by the Directors of Education, Uttar Pradesh
and Madhya Pradesh for use in Schools,
Colleges and Libraries

विज्ञान

*विज्ञानं ब्रह्मेति व्याजानात, विज्ञानाद्ध्येय खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० ।३।५*

संख्या ७९ | मिथुन २०११, जून १९५४ | अंक ३

लुई पास्च्यूर

[५ अप्रेल १९५४ की रेडियो वार्त्ता]

डा० सत्य प्रकाश

बहुत दिनों की बात है, फ्राँस में एक बार जन-मत इस बात का लिया गया कि फ्रांसीसियों की दृष्टि में उनके देश का कौन सा व्यक्ति सब से अधिक लोकप्रिय है और किसने मानव जाति की सब से अधिक सेवा की। जनता ने बहुत बड़े बहुमत से अपने वोट लुई पास्च्यूर के पक्ष में दिया। नेपोलियन को वोट पास्च्यूर से कम ही मिले। वस्तुतः फ्रांस में जो प्रतिष्ठा पास्च्यूर और मेडेमक्यूरी की है वह और किसी की नहीं। फ्रांस के ये दोनों रसायनवेत्ता संस्कृति और विज्ञान के इतिहास में अमर रहेंगे। पास्च्यूर का जन्म फ्राँस के छोटे से प्रान्त डोल में सन् १८२२ में हुआ था। उसके पिता के घर में चमड़े का काम होता था, और पिता ने नेपोलियन की सेना में भी काम किया था। लुई पास्च्यूर को अपनी बाल्यावस्था में कला और चित्रकारी में रुचि थी। उसके समय में फ्रांस में एक नई राष्ट्रीयता का जन्म हो रहा था, और पास्च्यूर भी देशभक्ति के विचारों से ओतप्रोत था। हो सकता था, कि वह अपने जीवन के लिए राजनीति का क्षेत्र चुनता, पर प्रारब्ध ने उसे तो विज्ञान की सेवाओं के लिए मनोनीत किया था। सन् १८४० में उसने ग्रेजुएट की उपाधि प्राप्त की और गणित में कुछ प्रतिभा भी प्रदर्शित की, पर पढ़ने लिखने में वह बहुत अच्छा न था। रसायन विषय में तो उसकी गिनती निम्न श्रेणी के विद्यार्थियों में ही थी। उस समय कौन कह सकता था कि जिस विद्यार्थी को रसायन में Medioco माना जा रहा है वही रसायन के एक नए क्षेत्र का प्रवर्त्तक होगा और रसायनज्ञों में शिरमौर समझा जायगा। पास्च्यूर ने बाद को सौरबों में प्रसिद्ध रसायनज्ञ ड्यूमा की अधीनता में रसायन की शिक्षा प्राप्त की। इसी समय पास्च्यूर की घनिष्ठता एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक बायो (Biot) से हो गयी

जो प्रकाश के ध्रुवीकरण के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण कार्य कर रहा था। इसी समय पास्च्यूर ने प्रकाश-सक्रिय टारटेरिक ऐसिडों की खोज की, जिसने बायो के कार्य को सुगम बना दिया और जिसने रसायन शास्त्रोंमें एक नये युगका प्रवर्तन किया। इस काम से पास्च्यूर की ख्याति बढ़ गयी और वह स्ट्रेसबर्ग में रसायन का अध्यापक हो गया। वह रसायन के कार्य में दिन भर व्यस्त रहता था। यहाँ तक कि जिस दिन उसका विवाह होने को था, उस दिन भी उसके मित्रों को विशेष सावधानी रखनी पड़ी कि वह विवाह के लिए ठीक समय पर तैयार हो जाय। उसकी पत्नी को भी पति की इस संलग्नता के कारण काफी कठिनाई उठानी पड़ती और उसे सार्वजनिक जीवन के आमोद-प्रमोदों से वंचित रहना पड़ता। पास्च्यूर को शांत वातावरण प्रिय था, जिसमें वह अनवरत रूप से अपने वैज्ञानिक प्रयोगों को करता रहे। उसकी पत्नी ने उसके कार्य में कभी बाधा नहीं पहुँचायी, वह तभी टोकती थी जब वह समझती थी कि पास्च्यूर की संलग्नता स्वास्थ्य में बाधक हो रही है।

सन् १८५४ में पास्च्यूर को प्रोफेसर का पद प्राप्त हुआ और लिले की नई सायंस फेकल्टी का वह डीन अर्थात् अध्यक्ष नियुक्त हुआ। इस समय उसका ध्यान उन कारखानों की ओर आकर्षित हुआ जहाँ शक्कर या अंगूर के रस से शराब तैयार की जाती थी। शक्कर या रस में किण्व या खमीर उठाकर शराब बनाने की सर्वत्र प्रथा है। मदिरा तैयार करने वाले कारखानों के सामने अनेक कठिनाइयाँ थीं; कहीं-कहीं तो अच्छी मदिरा तैयार हो जाती थी, पर कभी-कभी वहीं वह मदिरा फिर बुरी खट्टी बनने लगती थी। पास्च्यूर ने खमीर या किण्व को सूक्ष्म-दर्शक यंत्र से देखना आरम्भ किया। उसे पता लगा कि जिन किण्वों से अच्छी मदिरा बनती है, वे गोल आकृति के हैं और जिनसे खराब बनती है वे कुछ लम्बे हैं। उसने प्रयोगों के बाद पता लगाया कि हवा से एक दूसरे प्रकार के किण्व रस में मिल जाते हैं जो मदिरा के साथ-साथ अम्ल भी बनाते हैं। पास्च्यूर ने इन प्रयोगों के आधार पर ही बाद को यह भी घोषणा की कि हवा में भी जर्म या कीटाणु होते हैं। पास्च्यूर ने यह बताया कि जर्म जीवित अणु हैं और निर्जीव अचेतन पदार्थों से इनकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। पास्च्यूर के इन विचारों ने ही रोगों से सम्बन्ध रखने वाले जीवाणुओं की कल्पना को प्रश्रय दिया। न केवल रसायन शास्त्र में, प्रत्युत चिकित्सा शास्त्र में भी एक नये दृष्टिकोण का इस प्रकार आविर्भाव हुआ। सन् १८६४ तक पास्च्यूर की ख्याति रसायनज्ञ के रूप में विश्वव्याप्त हो गई। लार्ड लिस्टर ने पास्च्यूर के विचारों का उपयोग घावों और व्रणों की चिकित्सा में भी किया। हवा में भी रोगों का आक्रमण करने वाले जीवाणु होते हैं—यह पास्च्यूर के विचार थे, अतः घाव तब अधिक शीघ्र अच्छे होंगे यदि इन्हें हवा के सम्पर्क से बचाकर रक्खा जाय। घाव सेप्टिक न होने पावे, इसका उपाय ही यह है कि बाहर से आक्रमण करने वाले सूक्ष्म जीवाणुओं से इनकी रक्षा की जाय।

सन् १८६५ की बात है कि फ्रान्स के रेशम के व्यवसाय को अकस्मात् क्षति पहुँचने लगी। फ्रान्स की सरकार ने पास्च्यूर का ध्यान इस ओर आकर्षित किया। रेशम के कीड़ों को एक नई बीमारी आरंभ हो गई थी। पास्च्यूर ने इस बीमारी के कारणों को जानने की चेष्टा की। तीन वर्ष प्रयत्न करने के अनन्तर पास्च्यूर ने दो रोगों के जीवाणुओं की खोज कर ली, और यह भी पता लगा लिया कि इन जीवाणुओं के घातक आक्रमण से कैसे बचा जा सकता है।

पास्च्यूर ने अब बैक्टीरियोलोजी अर्थात् जीवाणु विज्ञान पर कार्य करना आरम्भ किया। १८७७ में उसने एन्थ्रेक्स बीमारी उत्पन्न करने वाले जीवाणुओं पर खोज आरम्भ की और दो वर्ष में ही इस बीमारी से सम्बन्ध रखने वाले कारणों का पता लगा लिया। इसी प्रकार मुर्गियों में एक प्रकार का उन दिनों हैजा फैल गया था। पास्च्यूर ने

इस समस्या को भी हाथ में लिया और पता लगाया कि यह रोग किन जीवाणुओं के कारण है। उसके इस आविष्कार से पक्षी पालन विभाग को इतना अधिक लाभ हुआ, कि उसका अनुमान लगाना भी कठिन है। फ्रांस को इस अकेले आविष्कार ने जितनी आर्थिक क्षति से बचाया, उतना अन्य किसी ने नहीं। एन्थ्रेक्स बीमारी भी पालतू पशुओं को हुआ करती थी और पशुओं के केवल केश-स्पर्श से इसकी छूत मनुष्यों को लग जाती थी, और इससे मृत्यु तक हो जाती थी। पास्च्यूर के अल्प परिश्रम और उत्साह के फलस्वरूप इस बीमारी से रक्षा की जा सकी। जब यह बीमारी किसी पशु को होती है, तो उसके रुधिर में इसके प्रतिरोधी रस स्वतः बनने लगते हैं, पास्च्यूर ने इस रस से मिले हुए रुधिर-रस या सीरम का प्रयोग बीमारियों के इलाज में देना उपयोगी बताया।

पास्च्यूर के ये प्रयोग बाद को पगले कुत्ते के काटे के इलाज में भी गुणकारी सिद्ध हुए। यदि कोई पागल कुत्ता किसी पुरुष को काट खाय, तो वह व्यक्ति भी धीरे धीरे पागल होने लगता है, और विष इतना फैल जाता है कि वह व्यक्ति मर जाता है। पास्च्यूर का ध्यान मानव-जाति के इस संकट की ओर आकर्षित हुआ। पास्च्यूर ने बहुत से पगले कुत्ते अपने प्रयोगों के लिए इकट्ठा किए। यह काम कितने जोखम का था, इसका अनुमान भी हम नहीं लगा सकते। बड़े साहस से पास्च्यूर ने इस रोग का पता लगाया और ऐसा सीरम तैयार किया जिसकी सुई लगने से रोग का निवारण होना संभव हुआ। पास्च्यूर के इस आविष्कार ने मानव जाति का जो उपकार किया है, उससे हम कभी उऋण नहीं हो सकते। पास्च्यूर ने पहले तो अपने प्रयोग पगले कुत्तों पर ही किए और उन्हें चंगा किया और बाद को उसने इन्हें सफलता पूर्वक मनुष्यों पर भी किया। जोसेफ माइस्टर पहला बच्चा था जिसे इस प्रयोग से चंगा किया गया। तीन सप्ताह तक सुई से दवा देने के अनन्तर यह बच्चा रोग से मुक्त हो गया।

पास्च्यूर की ख्याति देश-देशान्तरों में पहुँची। आज भी हम इस महान् विज्ञानवेत्ता का स्मरण किया करते हैं। मानवता के स्तर को इस व्यक्ति ने ऊँचा किया। इसके आविष्कारों से पीड़ित मानव जाति को एक नया आश्रय मिला। दीन हीन निर्धन व्यक्ति भी इस महान् व्यक्ति के कारण नीरोगता प्राप्त करनेकी आशा कर सकते हैं। २७ सितम्बर १८९५ को पास्च्यूर ने अपना नश्वर शरीर त्यागा, पर उसकी स्मृति सदा अमर रहेगी।*

---

* आल इण्डिया रेडियो के सौजन्य से।

प्रवासी पक्षी की बात

जगपति चतुर्वेदी

प्रवासी पक्षी की चर्चा करने से हमारा अभिप्राय चकवा-चकई की भाँति पक्षियों के जोड़े बिछुड़ने और उनमें से किसी एक के दूर पहुँच जाने का करुण क्रन्दन नहीं है अथवा दमयन्ती और यक्षिणी सरीखी विरहिणी रमणियों तक विरही पतियों के वियोग विलाप व्यक्त करने के लिये हंस दूत किंवा मेघदूत सरीखी किसी दूरगामी प्रवहमान वस्तु या प्राणी के संदेश वाहक बनने की कल्पना भी नहीं है। प्रवासी पक्षी कहने से हमारा हमारा तात्पर्य तो किसी पक्षी विशेष की नस्ल की नस्ल का ही कुछ निश्चित अवधि के लिए नवीन निर्धारित पक्षी-लोक में निवास कर पुन: किसी निर्धारित पथ से पूर्व स्थान पर वापस आ जाना तथा संतान-जनन का कार्य अग्रसर करना है। हमारे देश में भी पक्षी प्रवास करने के लिए कहीं से आते हैं या देश की सीमा के ही अन्तर्गत एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में निर्धारित समयों पर निर्धारित पथ से निर्दिष्ट स्थलों पर स्थानान्तरित होने की प्रतिवर्ष आवृति करते हैं। इसी को पक्षियों का प्रवास कह सकते हैं।

हमारी पिछली विदेशी सरकार के गोरे अधिकारी दल बादल के साथ शिमला, नैनीताल, राँची, दार्जिलिंग, पंचमढ़ी, उटकमंड आदि पहाड़ी स्थानों में जाकर ग्रीष्म ऋतु व्यतीत करते थे। मैदानी भाग के उष्ण स्थानों की गर्मी उनके लिये असह्य होने से अपेक्षाकृत निम्न तापमान के उपयुक्त स्थान हमारे प्रान्तों (आज कल के राज्य) की राजधानी बन जाते थे। हम यह कह सकते हैं कि हमारी प्रान्तीय सरकार के केन्द्रीय कार्यालय प्रवास किया करते थे। इसमें धन का अपव्यय राष्ट्रीय आन्दोलकों को खटकता था। विदेशी सरकार को उखाड़ फेकने के लिये वे इस अपव्यय की बात भी जन साधारण तक उच्च स्वर में पहुँचाते थे किन्तु पशुपक्षी-जगत में ऐसा स्थानान्तर, ऐसा प्रवास तो राष्ट्रीय पैमाने पर होता कहा जा सकता है। पूरी पलटन की पलटन, जाति की जाति अपने निवास स्थल को छोड़कर अन्यत्र पहुँच कर अपेक्षाकृत सुविधाजनक वातावरण में समय व्यतीत करती है। यह प्रवास उनकी सर्वांश या शत प्रतिशत संख्या का होता है। कोई बावेला मचाने के लिए पीछे छूट ही नहीं जाता है। शक्ति का यह अपव्यय उनका राष्ट्रीय व्रत सा है।

थोड़ा बहुत प्रवास तो वन्य पशुओं के सभी वर्ग में ऋतु की विषमता या प्रतिकूलता का सामना करने के लिये पाया जा सकता है। परन्तु पक्षियों में धरती से ऊपर उठकर गगनचारी होने की अद्भुत शक्ति है। भूतल के पग पग पर मार्ग की वाधाओं के सामने स्थल चारी जीव विवशता होने पर भी कदाचित अधिक दूर तक प्रवास कर जा सकने में अक्षम ही हों, परन्तु पक्षी तो आकाश में बाधाहीन मार्ग से विकट मार्ग को भी सुगम सा समझ दूर दूर के स्थान तक पहुँच कर ऋतु की विषमता से बच सकते हैं, अतएव प्रवास की वृत्ति उनमें चरम सीमा तक पहुँची पाई जाती है। उनकी इस दिशा में भारी सफलताओं तथा उत्कष्ट साहसपूर्ण प्रयासों का वर्णन बड़ा ही कौतूहलवर्द्धक है।

पक्षियों के प्रवास की चर्चा में सबसे पूर्व तो हम अपने हृदय में यही प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठा पाते हैं कि क्या पक्षी सचमुच प्रवास करते हैं, क्या उसका कोई संशयहीन पुष्ट प्रमाण भी है। यदि

उनका प्रवास सचमुच तथ्यही हो, तब हम इस ओर ध्यान देना चाह सकते हैं कि उनका प्रवास किन कारणों, किन आवश्यकताओं तथा किन उत्प्रेरणाओं से होता है तथा किस मात्रा में उनका प्रवास कार्य सम्पादित होता है।

पक्षियों के नवीन दल हमें अपने देश में सर्वत्र ही शरद् ऋतु प्रारम्भ होने पर दिखाई पड़ते हैं। उसके पूर्व उनका दर्शन हमारे लिये सर्वथा दुर्लभ ही होता है। वे कहाँ से और क्यों आते हैं, इसका विचार करने की हमारे किसी बन्धु को तनिक भी आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। हम तो केवल ऐसी चौपाई का पारायण भर कभी कर लेते हैं—

"जानि शरद् ऋतु खंजन आये।"

परन्तु वैज्ञानिकों ने विश्व भर को प्रयोगशाला सी मानकर पक्षियों के प्रवास का वैज्ञानिक अध्ययन प्रवर्तित किया है। कहीं पर कोई पक्षी बारहों मास न रहने वाला जान पड़ता हो तो किसी प्रकार पकड़े जाने पर उसके पैर में अल्यूमीनियम की एक अंगूठी पहना दी जाती है। उस पर शोधशाला का नाम धाम रहता है। कहीं पर अन्यत्र वही पक्षी मिलने या गोली का शिकार होने पर वह अंगूठी मूल पक्षी-शोधशाला को लौटा दी जाती है। उसे पाने वाला पक्षी के पकड़े या मारे जाने का स्थान और समय भी अंगूठी के साथ ही लिखकर वापस करता है। ऐसी विधि से उस स्थान पर अनेक स्थानों से पक्षियों के पकड़े जाने के स्थान और समय की सूचनाएँ मिल सकती हैं जो उस प्रकार के पक्षी विशेष की जातियों की गति विधि पर प्रकाश डाल सकती हैं। इसे मुद्रिका बंधन विधि कहते हैं। अल्यूमीनियम की इन नाम-धाम पट्टिका रूप की मुद्रिकाओं ने हमारे सम्मुख बहुत से प्रवासी पक्षियों की जाति का प्रवास-भेद रख दिया है। पक्षी विज्ञान के सम्बन्ध में अनेक मासिक पत्र इस सम्बन्ध की बातें प्रकाशित कर जनता को देश विदेशों में सूचित करते रहते हैं जिस से इस शोधकार्य में जन साधारण का भी सहयोग प्राप्त होता रहता है। हमारे देश में उतना अधिक वैज्ञानिक शोधकार्य नहीं हो रहा है जितना अनेक अन्य सुसंस्कृत तथा जागृत देशों में हो रहा है। परन्तु थोड़े अध्ययन से भी हमारे यहाँ संसार के अन्य भूभागों से आने वाले या यहाँ से वापस जाने वाले पक्षियों का ज्ञान प्राप्त होता जा रहा है। हम आज यह जान सके हैं कि सहस्रों मील उड़ कर पक्षियों के दल किस प्रकार अपने अद्भुत पराक्रम तथा शौर्य का परिचय देते हैं तथा अपने बुद्धि कौशल से हमें चकित कर देते हैं।

पक्षी क्यों प्रवास करते हैं? इस प्रश्न का उत्तर आज के वैज्ञानिक जिस प्रकार देते हैं वह बहुत ही तर्कसंगत तथा तथ्यपूर्ण ज्ञात होता है। मनुष्य की घनी बस्तियों से दूर तो आज भी अधिकांश पक्षी रहते ही हैं परन्तु आहार के प्रश्न के बाद जब संतान-जनन के लिए अंडे देने का प्रश्न आता है तो पक्षी या पशु सभी को हम अधिक सतर्कता का परिचय देते पाते हैं। पक्षी अपनी अंतः बुद्धि या किसी प्रेरणा से अन्डों की रक्षा का स्थान अधिक से अधिक निर्जन, अबाध सा ढूँढ़ते हैं। इसके लिए हम एक सूत्र यह कह सकते हैं कि उत्तरा खंडों में यह सुविधा अधिक है। दूसरी बात यह ज्ञात होती है कि अधिक से अधिक शीत स्थान में पक्षी अपना जीवन जहाँ चला सकता है वहाँ ही अंडे देना चाहता है किंतु जब शीत ऋतु में हिमपात या तापमान की भारी न्यूनता से चारा नहीं मिलता, पानी तक जम जाता है तो प्रवास ही एक दवा है।

प्रकृति को परिवर्तित कर सकना या उसके उलट फेरों के क्रम का वेग अवरुद्ध करना पक्षी के लिए एक असम्भव ही बात है। अतएव वह अपनी प्रवृत्ति तथा आवश्यकता के अनुसार स्थान-परिवर्तन क्रिया सामूहिक रूप से प्रति वर्ष करने का साहस करता दिखाई पड़ता है। शीत वातावरण का गहरा प्रेम उन्हें उन स्थानों पर पहुँचने के लिए उत्प्रेरित करता है जहाँ उनकी सहन शक्ति के अनुकूल स्थान तथा वातावरण मिल सकते हैं। अतएव हम स्पष्ट

समझ सकते हैं कि सूर्य के उत्तरायण रहने पर अर्थात् उत्तरी गोलार्द्ध में वसन्त तथा ग्रीष्म ऋतुओं का प्रभाव होने पर बहुत से पक्षी ध्रुव की दिशाओं की ओर के क्षेत्रों में पहुँचते हैं। जब ऋतु का पासा पलटता है, सूर्य का मार्ग दक्षिणायण होने लगता है तो दक्षिणी ध्रुवों के भाग अपने क्षेत्र में वसन्त विहार का आनन्द अनुभव करने का अवसर पाते हैं, भूमध्य रेखा से दक्षिण के स्थल सूर्य की किरणें अधिक प्राप्त करने लगते हैं। यह उत्तरी गोलार्द्ध के लिए शरद, शिशिर, आदि ऋतुओं का काल होता है। शीत का प्रकोप उत्तरी ध्रुव से सरक कर नीचे के अक्षांशों तक अधिकाधिक होने लगता है। उष्ण कटिबन्ध अर्थात् भूमध्य रेखा के निकट के स्थानों में ये ऋतु-परिवर्तन उतने अधिक अनुभूत नहीं हो सकते, परन्तु भूमध्य रेखा के दूर के स्थानों, शीतोष्ण तथा शीतोष्ण कटिबन्धों में तो वातावरण तथा तापमान में इतना घोर परिवर्तन हो जाता है कि जीव जगत को जीवन-यापन के साधनों तथा अपनी रक्षा के लिए विशेष प्रयत्न करना पड़ता है। अनेक पशु या कीट घोर शीत के वार्षिक प्रकोप का आगमन देख अर्द्धमूर्च्छित अवस्था में विवरों, कन्दराओं या किसी रूप के ढंके स्थानों में समाधि लगाकर निराहार ही पड़े रहने का उपक्रम कर लेते हैं परन्तु पक्षी इतना दुर्बल, अशक्त प्राणी नहीं है, उसका शरीर उष्ण रक्तीय ही नहीं होता, प्रत्युत दुग्धपायी उष्ण रक्तीय पशुओं से भी कुछ अधिक तापमान का रक्त रखता तथा उष्णता-रक्षक परों की बाहरी ओढ़नी से भी आच्छादित रखता है, किन्तु अपनी इतनी सुविधाएँ देखकर भी उसे भूतल तथा वृक्षावली, वनस्थली आदि को वह आहार तथा तरल जलहीन पाता है, अतएव उसे पराक्रम दिखा कर अपना स्थान ही बदल देना पड़ता है।

हिमालय पर्वत में ऋतुपरिवर्तन के विभिन्न परिणाम होते हैं। अंचल से लेकर हिमाच्छन्न शिखर तक विभिन्न ऊँचाई की पेटियाँ ग्रीष्म में जहाँ ऊपर से ऊपर तक चढ़ गई होती हैं, वहाँ शीत ऋतु के आगमन से वे अपेक्षाकृत अधिक निम्न ऊँचाइयों तक उतर आती हैं। हिमरेखा बहुत नीचे पहुँच जाती है। अतएव पक्षियों को स्थान परिवर्तन या स्थानीय प्रवास सा करना पड़ता है। विशाल हिमालय श्रेणी की विभिन्न ऊँचाइयों की पेटियाँ विभिन्न प्रवृत्ति तथा सहन शक्तियों के पक्षी वर्गों का आश्रय-स्थल बनकर एक वृहद् प्राकृतिक पक्षीशाला का रूप धारण किए रहती है परन्तु पक्षी जगत केवल हिमालय की इन विभिन्न तापमान तथा वातावरण की सीमित क्षेत्रीय पट्टियों से ही संतोष नहीं कर सकता। इसलिए वह बाहर के विशाल जगत में ध्रुव तक के विभिन्न वातावरणों की पेटियों में विहार करते पाया जाता है। हम उन स्थानों में स्थान परिवर्तन की कथा जिस रूप में पा सकते हैं, उसके ठीक विपरीत ही दक्षिणी गोलार्द्ध में पाई जाती है। इन सब स्थलों में एक सिद्धान्त सीधे रूप में यह कहा जा सकता है कि शीत ऋतु के आगमन पर पक्षी ध्रुवों तथा शीतोष्ण कटिबंधों के क्षेत्र से अपेक्षाकृत उच्च तापमान के स्थानों में भूमध्य रेखा की दिशा में प्रवास करते हैं तथा बसंत आगमन पर भूमध्य रेखा से अपेक्षाकृत दूर के स्थानों में वापस जाते हैं। परन्तु उत्तरी गोलार्द्ध में शीत आगमन का समय होता है तथा उत्तरी गोलार्द्ध में शीत ऋतु के संचार का समय दक्षिणी गोलार्द्ध में बसंत तथा ग्रीष्म ऋतु के आगमन का प्रवर्तन करता है।

ऋतु-परिवर्तन की इस क्रीड़ा का आनन्द विश्व भर में एक ही पक्षी को सब से अधिक लेते कहा जा सकता है जिस का आजीवन प्रण यह होता है कि ध्रुवीय क्षेत्र में ही निवास करेगा अतएव इन क्षेत्रों में सूर्य के उत्तरायण होने के समय तो वह वर्ष का अर्द्ध भाग उत्तरी ध्रुवीय क्षेत्र में व्यतीत करता है। परन्तु सूर्य के दक्षिणायण होने पर एक सीधी उड़ान में ११००० मील की दूरी पार कर दक्षिणी ध्रुवीय क्षेत्र में आ पहुँचता है और वर्ष का शेष अर्द्धभाग दक्षिण ध्रुव के बसंत तथा ग्रीष्म काल में व्यतीत करता है।

यह पक्षी ध्रुवीय कुररी है। क्या इससे अधिक साहसी अन्य प्राणी हो सकता है ?

संसार में भारी जनसंख्या वृद्धि एक टेढ़ी समस्या हो गई है। उसके निराकरण के लिए कृत्रिम संतति निरोध के आन्दोलन चल रहे हैं। अनेक उपाय तथा औषधियाँ प्रयुक्त करने की सलाह दी जाती है। इस समस्या का कारण संसार में खाद्य की कमी कही जा सकती है। ऐसी ही समस्या पशुपक्षियों के सम्मुख भी हो सकती है। पशुओं की समस्या या उसके निराकरण की बात तो हम नहीं जानते, परन्तु पक्षी जगत इसकी अत्यन्त प्रभावपूर्ण व्यवस्था रखता जान पड़ता है। हम प्रवास में बहुसंख्यक पक्षियों की नस्ल की नस्ल उड़कर दूर के स्थानों तक पहुँचते तथा कुछ निर्धारित अवधि में ऋतु की विषमता दूर होने पर फिर वापस आते देखते हैं। इन सामूहिक यात्राओं में उनकी संख्या स्वभावतः ही न्यून हो जाती है। प्रवास की यात्रा के श्रम तथा अनेक विघ्न बाधाओं से उनमें से अपेक्षाकृत दुर्बल या दुर्भाग्य ग्रस्त सदस्य मृत हो जाते हैं। क्या इससे यह अनुमान हो किया जाय कि पक्षी जगत में प्रकृति की प्रेरणा या उनकी व्यवस्था से ही ऐसा क्रम होता है जिससे केवल अपेक्षाकृत वीर पराक्रमी तथा पुष्टकाय सदस्य ही जीवन संघर्ष में जीवित रहकर भविष्य की उत्तम संतान उत्पन्न कर सकें ? उद्देश्य कुछ भी हो। परन्तु उनकी संख्या-न्यूनता तो घटित ही होती है और भोजन की समस्या जटिल नहीं होने पाती। हम कहीं कुछ पक्षियों को प्रवास न कर बारहमासी रूप में रहते देखकर अपनी सन्तान को उत्पन्न होते ही कहीं दूर भगा आते देखते हैं। इसका यह उद्देश्य हो सकता है कि सीमित क्षेत्र में ही उनकी संतानें भी बढ़ती जायँ तो ऐसा न हो कि चारा या आहार की उन्हें स्वयं ही न्यूनता का अनुभव हो। अतएव नवीन क्षेत्र पर अधिकार कर उनकी संतान आहार का साधन प्राप्त कर नस्ल को जीवित रखती है। ऐसी व्यवस्थाओं को हम कुछ उदाहरणों से ही अनुमानित कर सकते हैं। उनकी ठीक प्रामाणिकता के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता।

पक्षियों में प्रवास के यथार्थ कारण जो भी हों, किन्तु उनकी यथार्थ घटना का तो रूप असंदिग्ध ही है। ध्रुवीय कुररी तो दूर की बात है, अपने देश में ही हम एक ऐसे पक्षी को पाते हैं जिसे प्रवास की दृष्टि से ध्रुवीय कुररी का छोटा बन्धु कहा जा सकता है। काष्ठ कुक्कुट या कठ मुर्ग नाम का एक पक्षी होता है। उसे इतनी सामर्थ्य कदाचित नहीं होती कि ध्रुवों के शीत वातावरण में ही रहे तथा ग्यारह सहस्र मील दूरी का मार्ग तै कर पुनः दूसरे ध्रुव पर जा कर निवास करे, परन्तु कुछ इसी ढंग की क्रिया वह छोटे पैमाने पर करता है। वह हिमालय के उच्च खंड में उस समय तक निवास करता है जब तक उसकी रुचि के अनुकूल ऊँचाई तक हिम रेखा नहीं पहुँच जाती। परन्तु उस क्षेत्र में हिम का प्रसार होने लग जाता है। हिम रेखा पर्याप्त नीचे उतरने लगती है तो वह हिमालय में निम्न पथगामी बनना नहीं चाहता। वह कदाचित ऊपर ऊँचाई के तल पर रहने के अपने गर्व को भग्न नहीं होने देता, अतएव एक उड़ान में ही उड़कर दक्षिण में नीलगिरि पर्वत पर पहुँचता है। ध्रुवीय कुररी उत्तर से धावा बोल कर सीधी उड़ान में ध्रुव के दूसरे छोर पर पहुँचता है। उत्तरी ध्रुव से उड़कर दक्षिणी ध्रुव तक पहुँचने में कहीं मार्ग में उसके पाए जाने या उतर कर विश्राम लेने का प्रमाण नहीं मिलता। अतएव यही कहना पड़ता है कि यह वीर पक्षी अतुल साहस दिखा कर ११००० मील की उड़ान एक बार में ही तय करता है। काष्ठ कुक्कुट भी हिमालय तथा नीलगिरि के मध्य के स्थान में नहीं पाया जाता अतएव यह मान लिया जाय कि वह सीधे नीलगिरि तक १५०० मील दूर का आकाश मार्ग एक उड़ान में ही पार करता है। एक दूसरा पक्षी चित्रित कस्तूरिका भी ऐसी लम्बी उड़ान कदाचित करता है और नीलगिरि तथा सीलोन तक जाता है।

प्रवास के लिये पक्षी भू खंड की लम्बी दूरी ही

नहीं पार करते। महासागरों की सहस्रों मील दूरी भी उनके लिए खेल ही है। स्वर्णिम पाणविक नामक पक्षी दो हजार मील तक का महासागरी मार्ग पार कर हमारे देश में प्रवास करने आता है। इसका जन्म पश्चिमी अलास्का तथा उत्तरी पूर्वी साइबेरिया में होता है। वहाँ से यह शीत का भयंकर प्रकोप होने पर २००० मील पार कर भारत में शीत काल व्यतीत करने के लिए प्रवास करता है। पंककीर नाम का पक्षी केवल जापान में जन्म धारण करता है तथा शीतकाल पूर्वी आस्ट्रेलिया तथा टस्मानियाँ में जाकर व्यतीत करता है। इसे मध्य क ३००० मील का महासमुद्री मार्ग अविश्राम एका उड़ान में ही पार करना पड़ता होगा।

समुद्री मार्गों में जल के उथले भागों में चट्टानें होने पर जहाजों को सावधान करने या मार्ग निर्देश के लिए प्रकाश स्तम्भ बने होते हैं। प्रवासी पक्षियों के दल का दल उससे भ्रमित होकर टकरा कर मृत हो जाता था। उनके आश्रय लेने को कोई स्थान नहीं होता था, परन्तु अब कुछ व्यवस्था ऐसी की जाती है जिससे क्लान्त पक्षी उनके मंच पर कुछ विश्राम कर मृत्यु से बच सकते हों।

पक्षियों के प्रवास-पथ की बात उठा कर हमने यह व्यक्त किया है कि वह उत्तरी ध्रुव से भूमध्य रेखा की ओर शीत ऋतु में आश्रय लेने के लिए होता है। परन्तु हम सदा उत्तरापथ से हीं पक्षियों को प्रवास करते नहीं पाते। वे पूर्व पश्चिम दिशाओं में भी उड़कर अपेक्षाकृत सुविधाजनक या उपयुक्त तापक्रम के स्थानों में ऋतुपरिवर्तन के काल को व्यतीत करके पहुँचते हैं। उद्देश्य वही होता है कि अंडे तो शीत स्थान में दिये जायँ परन्तु घोर शीत के प्रकोप पर अपेक्षाकृत उष्ण वातावरण में प्रवास कर समय व्यतीत किया जाय।

हमारे देश में अनेक पक्षी शीत ऋतु में प्रवास करने पहुँचते हैं। खंजन, चंडूल (भारद्वाज), चहा (पंककीर), हंस, सारस, चक्रवाक, चुपका प्रवासी पक्षी हैं। उत्तर के हिम या शीत प्रधान देशों से अपेक्षाकृत उष्ण भूभाग में शीत काल व्यतीत करने के लिए ही अनेक पक्षी, दल के दल बना कर उड़ते भारत में पहुँचते हैं। हम हिम पूर्ण उच्च शृंगों या पर्वतमाला को दुर्गम समझते हैं। नीचे दर्रों या ब्रह्म पुत्र, सिंध आदि की घाटियों द्वारा भारत के प्रांगण में उत्तरा खंड से मनुष्य के कठिनाई से पहुँचने की बात जानते हैं। वायुयानों को भी ऊपर की पतली हवा के कारण उपयुक्त श्वास-उपकरण के बिना उड़ने में कठिनाई हो सकती है। क्या पक्षी भी ऐसी कठिनाई या असुविधा अनुभव करते हैं और नीचे दर्रे या घाटियों का मार्ग चक्कर काट कर ढूँढ़ते हैं? इन प्रश्नों का प्रत्यक्ष उत्तर हमें पर्वतारोहियों के देखे प्रत्यक्ष प्रमाणों से मिल जाता है। ऊँचे पर्वतीय दर्रों पर हिम नदी के ऊपरी तल पर पक्षियों के शव हमें बताते हैं कि उन्होंने उन दुर्गम पथों से ही उत्तरा खंड से उड़ान की। यही नहीं, १६०००,२०००० फीट तक की ऊँचाइयों पर तो पक्षियों के झुंड के झुंड उड़ते और पर्वतमाला पार करते पाए गए हैं। कुछ पर्यवेक्षकों ने एवरेस्ट की ऊँचाई तक भी पक्षियों के उड़ने के प्रमाण प्राप्त किए हैं। इन स्थितियों में यह प्रमाणित होता है कि अपने प्रवास में पक्षी समुद्र की विशाल दूरियों, पर्वत की उच्चतम चोटियों तथा हिम नदी की भारी बाधाओं को भी पार कर सीधी लम्बी उड़ानें उड़ कर अपने गंतव्य स्थल पर पहुँचते तथा प्रवास काल व्यतीत कर फिर गहन पथों को पार कर वापस भी जाते हैं। यह जंतु जगत में वीरता तथा साहस के चरम सीमा के उदाहरण हैं।

प्रवास के लिए पक्षियों की दैनिक उड़ान अवधि औसत रूप से ६ से लेकर ११ घंटे तक की होती है। दिन या रात में अपनी वृत्ति के अनुसार उड़ने वाले पक्षी इतनी उड़ान के पश्चात् प्रायः विश्राम करते हैं। इस प्रयत्न में हम उनकी उड़ान की गति आश्चर्यजनक पाते हैं। वायुयानों की उड़ानों से उनके वेग की परीक्षा भली भाँति की जा सकती है।

[शेष पृष्ठ ७६ पर]

मेघ

(CLOUDS)[1]

[लेखक—प्रो॰ जनार्दन प्रसाद श्रीवास्तव एम॰ ए॰, एम॰ एस-सी॰]

मेघ क्या है ?

धरातल से कुछ ऊँचाई पर लटकती हुई जल-वाष्प की द्रवीभूत राशि को हम मेघ कहते हैं। वायु-मण्डल को यह जलवाष्प धरातल पर स्थित नदियों, झीलों, सागरों एवं अन्य जलाशयों के वाष्पीकरण से मिलती है। मेघ और कुहरे में इसके अतिरिक्त और कोई भी अन्तर नहीं है, कि कुहरा धरातल के निकट होता है और मेघ धरातल से काफी ऊँचाई पर होते हैं।

मेघों की उत्पत्ति

कुहरे के समान मेघ की उत्पत्ति भी किसी वायु-राशि के सर्वत्र एक साथ (en masse) ठंडे होने से होती है। मेघों की रचना के लिए वायु अनेक रीतियों से ठंडी होती है, उदाहरण के लिए :—

१—वायु-मण्डल के धूलिकणों से विकरण (Radiation) द्वारा ताप का क्षीण होना यह तभी सम्भव है जब वायु बिल्कुल शान्त हो।

२—शीतल और उष्ण वायु का मिलना :—जब दो असमान तापक्रम की वायु-राशियाँ परस्पर मिलती हैं तब द्रवी-भवन (Condensation) होता है।

३—वायु का ऊपर उठना :—जब वायु ऊपर उठती है, तब दबाव के घटने से वह फैलती है, फैलने से उसका ताप-क्रम घटता है। जब ताप-क्रम ओसाङ्क पर पहुँचता है तब द्रवीभवन होता है।

मेघों के मुख्य प्रकार

मेघ मुख्यतः चार प्रकार के होते हैं :—

(१) स्तरित (Stratus).
(२) कुंतल (Cirrus).
(३) वर्षुक (Nimbus).
(४) कुञ्ज (Cumulus).

किन्तु ऐसा शायद ही कभी होता हो कि इनमें से किसी एक प्रकार के बादल आकाश में हों। प्रायः इन प्रकारों के मिश्रण पाये जाते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय समझौते द्वारा इन चार मुख्य मुख्य प्रकारों के दस मिश्रण स्वीकार किए गए हैं।

(१) स्तरित मेघ

(Stratus clouds)

अन्य मेघों की तुलना में ये सबसे नीचे पाये जाते हैं। ये धरातल से कुछ ऊँचे से लेकर २५०० फुट की ऊँचाई तक पाये जाते हैं। जैसा कि इनके नाम से स्पष्ट है, ये स्तरों के रूप में होते हैं। इनकी संरचना सर्वत्र एक सी होती है और कुहरे से मिलती जुलती है। प्रायः ये अन्य मेघों के नीचे रहते हैं। बहुधा इनकी उत्पत्ति विकिरण द्वारा ताप के क्षीण होने से होती है।

ये मेघ प्रायः स्थानीय होते हैं और इनके खंडित होते ही नीला आकाश दृष्टिगोचर होता है।

(२) कुन्तल मेघ

(Cirrus clouds)

ये मेघ सबसे अधिक ऊँचाई पर बनते हैं। ये

---

[1] लेखक की रचना 'अवनि उदधि और अन्तरिक्ष' से उद्धृत।

प्रायः ५ मील से ८ मील की ऊँचाई तक पाये जाते हैं। ये छोटे-छोटे हिम-कणों से बनते हैं और इनमें जलवाष्प की मात्रा कम होती है। बहुधा इन मेघों का मध्य भाग सफेद रंग का होता है जिससे रेशे जैसी रेखाएँ बाहर निकली हुई दिखलाई देती हैं। ये बादल कोमल होते हैं और दूर से चिड़ियों के पंख जैसे दिखाई पड़ते हैं। दिन में ये मेघ शुभ्र श्वेत वर्ण के होते हैं किंतु सूर्यास्त के समय इनमें अनेक ज्वलन्त (Brillianlt) वर्ण दिखाई देते हैं।

(३) वर्षुक मेघ
(Nimbus clouds)

जैसा इनके नाम से प्रकट है इनसे वर्षा बहुत होती है। ये बादल धरातल के बहुत निकट होते हैं। बहुधा ये १००० फुट से लेकर ८,००० फुट की ऊँचाई तक पाये जाते हैं। ये बादल काले घने, एक सी संरचना के और आकृति हीन होते हैं।

इन बादलों का नवीन नाम वर्षुक स्तरित (nimbo stratus) मेघ है। इस श्रेणी के बहुत नीचे और खंडित बादलों को छिन्न वर्षा मेघ (Fracto-Stratus) कहते हैं। नाविक इसे स्काड (Scud) कहते हैं।

(४) कुञ्ज मेघ (Cumulus clouds) अथवा **ऊर्ण मेघ** (Wool-pack clouds)

ये बादल स्वयं काफी ऊँचे होते हैं और धरातल से काफी ऊँचाई पर पाये जाते हैं। इनकी निम्नतम सीमा अथवा आधार क्षैतिज एवं सपाट होता है किन्तु इनका ऊपरी भाग गुम्बज की भाँति गोलाकार होता है और उसमें गोभी के फूल के सदृश वर्द्धन होते हैं। बहुधा बहुत से कुञ्ज मेघ आपस में मिलकर दूर से ऐसे दिखाई पड़ते हैं जैसे रेल के इंजन से निकलता हुआ धुआँ। ये बादल घने होते हैं और इन बादलों से वर्षा भी होती है। ये अधिकतर वायु के ऊपर उठने से बनते हैं। इन मेघों के विषय में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

'If woolly fleeces, spread the heavenlyway, Be sure, no rain disturbs the summer day'.

जब कुञ्ज मेघ विदीर्ण होकर छोटे-छोटे पतले टुकड़ों के रूप में प्रवाहित होने लगते हैं तब इन्हें हम 'छिन्न कुञ्ज' (Fracto Cumulus) कहते हैं।

मेघों का अन्तर्राष्ट्रीय वर्गीकरणः—

(International classification of Clouds : —)

अन्तर्राष्ट्रीय घन वातकीय महासभा (International Meteorological congress) ने मेघों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है:—

(१) कुन्तल (cirrus) ये मेघ कोमल और कम घने होते हैं। इनकी आकृति छितरे हुए रेशों जैसी होती है। ये बादल आपस में गुँथे नहीं रहते, वरन एक दूसरे से पृथक रहते हैं। ये प्रायः छायाहीन और सफेद वर्ण के होते हैं। दूर से ये चिड़ियों के पंख जैसे लगते हैं। ये ३०,००० से ४०,००० फुट तक की ऊँचाई पर पाए जाते हैं।

(२) कुन्तल-स्तरित (Cirro stratus)—ये पतले स्तर के सफेद बादल होते हैं। कभी-कभी ये समस्त आसमान को पूर्णतः आच्छादित कर लेते हैं जिससे वह दूधिया (Milky) हो जाता है। इसी दशा में हम उन्हें कुन्तल-नीहारिका (cirro-nebula) कहते हैं। कभी-कभी ये उलझे हुए जाले (web) जैसे प्रतीत होते हैं। इन बादलों से सूर्य अथवा चन्द्रमा की रूप-रेखा अस्पष्ट नहीं होती परन्तु उसके प्रभा-मंडल (Haloes) बन जाते हैं। ये मेघ २००० फुट से लेकर ३३०००० फुट तक की ऊँचाई पर पाये जाते हैं।

(३) कुन्तल-कुंज (cirro-cumulus) ये मेघ प्रायः दो रूपों में पाये जाते हैं। (१) छोटी-छोटी गोलाकार राशियों में तथा (२) छोटी-छोटी सफेद छाया-हीन अथवा अल्प छायामय पट्टियों में। दोनों ही दशाओं में ये पंक्तियों या समूह में पाये जाते हैं। सूर्य के प्रकाश में ये चमक उठते हैं। ये मेघ २३०००

फुट से लेकर ३३००० फुट तक की ऊँचाई पर पाये जाते हैं।

(४) उच्च स्तरित (Alto-stratus)—ये मेघ भूरे अथवा नीले वर्ण के मोटे स्तरों में होते हैं। इनमें सूर्य अथवा चन्द्रमा वैसे ही दिखलाई पड़ते हैं जैसे धुंधले काँच में, किन्तु इनके प्रभा-मण्डल (Halols) नहीं दिखाई देते। ये १०,००० फुट से लेकर २०००० फुट की ऊँचाई पर पाये जाते हैं।

(५) उच्च-कुञ्ज (Alto cumulus):— ये सफेद अथवा भूरे रंग के अंशतः छायादार विशाल-काय पुञ्ज हैं। बहुधा ये परस्पर गुंथे रहते हैं जिससे इनके किनारे स्पष्ट नहीं दिखाई देते। कभी-कभी ये पतले स्तरों में भी पाये जाते हैं। ये मेघ १३,००० फुट से लेकर २०,००० फुट की ऊँचाई तक पाये जाते हैं।

(६) स्तरित कुञ्ज (Strato cumulus)—ये बादल काले रंग की विशाल गोलाकार राशियों से बने होते हैं। बहुधा ये सम्पूर्ण आकाश को ढंक लेते हैं। जाड़ों में ऐसा बहुत होता है। ये ३,००० फुट से लेकर १३,००० फुट तक की ऊँचाई पर पाये जाते हैं।

(७) वर्षुक-मेघ (Nimbus)—ये काले रंग के आकृति-हीन मोटे स्तर होते हैं। इनके किनारे कटे-फटे होते हैं। प्रायः इनसे जल और हिम की वृष्टि होती है। ये ६०० फुट की ऊँचाई से लेकर १०,००० फुट तक की ऊँचाई पर पाये जाते हैं।

(८) कुञ्ज मेघ (Cumulus)—ये बादल काफी घने होते हैं। इनका ऊपरी भाग गुम्बज के समान गोलाकार होता है और उसमें गोभी के फूल की भांति वर्धन होते हैं। इनकी निचली सीमा अथवा आधार क्षैतिज एवं सपाट होता है। इनके आधार और शीर्ष का अन्तर ३ किलोमीटर तक पाया गया है। इससे इनके लम्बवत विकास के महत्व पर प्रकाश पड़ता है। इनका आधार धरातल से ३००० फुट से लेकर १०,००० फुट तक की ऊँचाई पर पाया जाता है। इनके विषय में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है।

'If wooly fleeces spread the heavenly way
Be sure, no rain disturbs the summer day

(यदि आकाश में ऊनी गुच्छे फैल जाते हैं तो निश्चित जानो ग्रीष्म दिवस को वर्षा बाधा नहीं पहुँचावेगी)

(९) कुञ्ज वर्षुक मेघ :—(Cumulo nimbus):—इन्हें गर्जन मेघ (Thunder clouds) की भी संज्ञा दी गई है। ये काफी भारी होते हैं। इनकी आकृति पहाड़ों जैसी होती है। इनके आधार और शीर्ष का अंतर ७ किलोमीटर तक पाया जाता है जिससे प्रकट है कि इनमें लम्बवत विकास बहुत होता है। इनके ऊपरी भाग में बहुधा रेशेदार पर्त बन जाते हैं जिन्हें हम मिथ्या कुन्तल (False cirrus) कह सकते हैं। इन बादलों के नीचे वर्षुक मेघ सदृश बादल पाये जाते हैं। इसके विषय में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है।—

'A round topped cloud with flattened base'
Carries rainfall in its face'

(१०) स्तरित मेघ (Stratus clouds)—जैसा कि इनके नाम से प्रकट है—ये मेघ स्तरों के रूप में होते हैं। इनकी संरचना सर्वत्र एक सी होती है। ये कुहरे से मिलते जुलते हैं। इनमें और कुहरे में केवल यह अन्तर है कि कुहरा पृथ्वी का संस्पर्श करता है और ये पृथ्वी से उठे रहते हैं। ये मेघ प्रायः स्थानीय होते हैं और इनके खण्डित होते ही नीला आकाश दृष्टि-गोचर होता है। ये धरातल से लेकर २५०० फुट की ऊँचाई तक पाये जाते हैं।

(५) मेघों का भारतीय वर्गीकरण

भारतीय घन वातिकीय विभाग (Indian Meteorological Department) ने बादलों का वर्गीकरण कुलों और जातियों में किया है जो इस प्रकार हैं :—

कुल क—उच्च मेघ

औसत ऊपरी समतल—१२ किलोमीटर
औसत निचला समतल—७ किलोमीटर

(१) जाति-कुन्तल मेघ—(Cirrus)
(२) जाति-कुन्तल स्तरित मेघ–(Cirro stratus)
(३) जाति-कुन्तल कुञ्ज मेघ–(Cirro cumulus)

कुल ख—मध्य मेघ

औसत ऊपरी समतल—७ किलोमीटर
औसत निचला समतल—३ किलोमीटर
(४) जाति-उच्च कुञ्ज मेघ—(Alto cumulus)
(५) जाति-उच्च स्तरित मेघ—(Alto stratus)

कुल ग—निम्न मेघ

औसत ऊपरी समतल ४ किलो मीटर
औसत निचला समतल, धरातल के निकट
६—जाति-स्तरित कुञ्ज मेघ (Strato Cumulus.)
७—जाति-स्तरित मेघ (Stratus)
८—जाति-वर्षक स्तरित मेघ(Nimbo stratus)

कुल घ—लम्बवत् विकास के बादल

औसत ऊपरी समतल-परिवर्तन-शील; कुञ्ज वर्षुक मेघ (Cumulo nimbus) में इसकी ऊँचाई १०-१२ किलो मीटर हो सकती है।

औसत निचला समतल ०·५ किलोमीटर

९—जाति-कुञ्ज मेघ (Cumulus),

१०—जाति-कुञ्जवर्षुक मेघ (Cumulo nimbus)

मेघों की सम्पूर्ण जातियों का वर्णन संक्षेप में उपर्युक्त अंतर्राष्ट्रीय वर्गीकरण के अंतर्गत हो चुका है। भारतीय वर्गीकरण में एक एक नवीन शब्द वर्षुक स्तरित (Nimbo stratus) मेघ आया है। वास्तव में यह वर्षुक (Nimbus) मेघ का ही नवीन नाम है। वर्षुक मेघ की व्याख्या अंतर्राष्ट्रीय वर्गीकरण में की जा चुकी है।

प्रवासी पक्षी की बात

[पृष्ठ ७२ का शेष]

प्रवास के मार्ग में भी कुछ विशेषता देखी जाती है। कोई पक्षी अपने दल के साथ एक मार्ग से शीत काल के प्रवास में पहुँचता है तथा बसंत आगमन पर पुनः उसी मार्ग से वापस जाता है। अतएव बीच के स्थानों में वह रुकने की अवस्था में केवल आने और जाने के अल्पकाल में ही दिखाई पड़ सकता है। परन्तु जहाँ उसे शीत ऋतु व्यतीत करनी है, वहाँ वह शीत ऋतु भर देखा जा सकता है। किन्तु कुछ पक्षी शीत ऋतु निवास स्थल पर आते तो एक मार्ग से हैं और लौटते दूसरे मार्ग से हैं। अतएव कुछ स्थानों में उनकी आगमन यात्रा में ही उनका दर्शन होता है तथा कुछ स्थानों में केवल लौटानी यात्रा में ही उन्हें देखना सम्भव होता है। जो लोग शीत प्रधान स्थानों, पर्वतीय चोटियों में रहते हैं उन्हें इसके विपरीत अवस्था दिखाई पड़ सकती है। शीत ऋतु कहीं अन्यत्र काट आने पर बसन्त तथा ग्रीष्म में उन्हें ये पक्षी उनके प्रदेश में देखने को मिल सकते हैं। जो स्थान इस प्रकार के हैं, वहाँ प्रयोग या पर्यवेक्षण द्वारा यह देखा जा सका है कि बहुत से पक्षियों का दल अपनी पुरानी भूमि पर ही नहीं लौटता बल्कि व्यक्तिगत निवास के पुराने स्थल पर बिता कर उस पक्षी को दूसरे वर्ष ठीक समय पर आते देखा जाता है। यथार्थ में ये घटनाएँ ऐसी हैं जिसका स्पष्टीकरण या कारणों पर प्रकाश डालना एक कठिन समस्या है। यही नहीं, ग्रीष्म निवास के पश्चात् नवजात कुछ सप्ताहों तक के बच्चों का दल प्रवास-यात्रा में सबका अगुआ बना कर तो शोधकर्त्ताओं को भी यह बताने में स्तब्ध कर देता है कि उन्हें प्रवास का निश्चित क्षेत्र तथा मार्ग किस प्रकार ज्ञात होता है जहाँ सारा दल जाता रहता है।

जान बायड डनलप*

(साइकिल तथा मोटर गाड़ियों की हवा भरी ट्यूब रबर नली युक्त पहियों का आविष्कारक)

आयरलैण्ड एक उत्साही साहसी पुरुषों का देश है। हम यहाँ के निवासियों को संसार भर के देशों में जा बसा देख सकते हैं। ऐसे देश के वासियों के नाना भूभागों में जाकर बसने का दृश्य हमें कदाचित एकांगी कृत्य ही ज्ञात हो परन्तु जहाँ इस देश के निवासियों को विदेशों में प्रश्रय प्राप्त करने का दृश्य देखा जाता है, वहाँ समय समय पर अनेक देशों के निवासियों को आयरलैण्ड की भूमि ने प्रश्रय प्रदान किया है। इतिहास हमें बता सकता है कि किस किस देश से किन किन समयों पर मनुष्यों के दल इस देश में प्रश्रय पाने के लिए आ सके। इन स्थान परिवर्तनों के कुछ कारण भी रहे होंगे। धार्मिक या राजनैतिक उथल-पुथल, प्राकृतिक उपद्रव या आर्थिक अर्घता एवं उत्पादन के साधनों के अपेक्षाकृत अभाव आदि ऐसे कारण हैं जो मनुष्यों को अपना स्थान छोड़कर अन्यत्र जा बसने के लिए विवश करते हैं। हम आयरलैण्ड के उत्तर या दक्षिण के किसी भी नगर में या कस्बे में इस प्रकार के शरणार्थियों या किसी विदेशी जातिका उपनिवेश या विदेशी जाति के कुछ लोगों का निवास पा सकते हैं।

फ्रांस में जब धार्मिक असहिष्णुता का प्राबल्य हुआ तो कट्टर पंथी ईसाइयों के प्रपीडन से फ्रांस के प्रोटेस्टेंट (सुधारवादी) जिन्हें "ह्यूगनाट" नाम से पुकारा जाता है, हजारों की संख्या में आयरलैण्ड में आ बसे थे। इसी तरह धार्मिक असहिष्णुता के प्रपीडन से विवश होकर इंगलैण्ड के "क्वेकर" और रूस के यहूदी भी आयरलैण्ड पहुँचे किन्तु इन सब से अधिक स्काटलैण्ड ने अपने देशवासियों को अधिक संख्या में आयरलैण्ड में बसने के लिए भेजा। आयरलैण्ड जल प्रणाली को पार कर आयरलैण्ड में एक बड़ा उपनिवेश स्थापित करने के लिए एक बड़ा दल जेम्स प्रथम ने अपने तत्वावधान में भेजा था। उन व्यक्तियों की सन्तान आज भी आयरलैण्ड के अलस्टर नामक उत्तरी खंड में पाई जाती है। कुछ लोग दक्षिण भी जाकर बस गए थे। उनमें से कितने ही विशेष सम्पन्न हो गए थे। आयरलैण्ड का वस्त्र व्यवसाय कुछ दिनों तक तो इन स्काटलैण्ड प्रवासियों के ही हाथ में पूर्णतः था। उन्होंने अपनी जातीय प्रकृति सुरक्षित रक्खी तथा अपनी धार्मिक प्रथा पर अडिग ही रहे, परन्तु आयरलैण्ड में बस जाने के कारण उन्होंने उसे अपनी नई मातृभूमि अंगीकृत किया। विदेशी भी होने की भावना उन्होंने सर्वथा ही भुला दी। एक ऐसे प्रवासी व्यक्तियों में स्काटलैण्ड के रक्त युक्त किन्तु आयरलैण्ड के प्रति अनुरक्ति युक्त व्यक्ति जान बायड डनलप नाम का था जिसका जन्म १८४० में आयर शायर, स्काटलैंड में हुआ था किन्तु आयरलैण्ड में आकर बस गया था।

स्काटलैण्ड में डनलप परिवार के लोग कितनी हो पीढ़ियों से कृषक रहते आए थे। उनके खेत दूर तक फैले थे। जान बायड डनलप कृशकाय बालक ही था। अतएव उसे कृषिकार्य के अधिक उपयुक्त न देखकर माता पिता ने अध्ययन में लगाया। बालक डनलप प्रतिभाशाली था। पशुओं तथा चिकित्सा में उसकी विशेष अभिरुचि थी किन्तु उसे संगीत से भी कम प्रेम नहीं था। वह बेला बजाने में कुशलता प्राप्त कर सका। शिल्प तथा विज्ञान की तो उसमें स्वाभाविक प्रतिभा थी। अवकाश प्राप्त होने पर वह

* "आविष्कारकों की कहानी" (किताब महल, इलाहाबाद) से।

अपनी प्रवृत्ति उसी ओर करता। इस होनहार बालक ने १६ वर्ष की अवस्था में एडिनबरा में पशु चिकित्सक की उपाधि प्राप्त की। १८६७ ई० में जब वह २७ वर्ष का था, आयरलैण्ड प्रवास कर वहीं बस गया और बेलफास्ट में एक पशु चिकित्सक हो गया।

प्रवासी व्यक्तियों में साहस और उद्यम का अभाव नहीं हो सकता अतएव स्काटलैंड के अन्य उद्यमी प्रवासियों की तरह जान बायड डनलप भी एक सफल व्यक्ति सिद्ध हुआ। बीस वर्ष के अन्दर सारे आयरलैंड में उसने व्यापक रूप से पशु चिकित्सा विज्ञान का प्रचार कर दिया। वह एक कोरा पशु चिकित्सक ही नहीं था। उसमें प्रतिभा तथा शोधशक्ति का अभाव नहीं था अतएव उसने पशु चिकित्सा के लिए कितनी ही विशेष औषधियाँ आविस्कृत कीं। उन दिनों पशुओं का विशेष महत्व था। यातायात के यान्त्रिक साधनों का उदय तथा विकास नहीं हो पाया था अतएव घोड़े को कृषि तथा आवागमन दोनों में ही विशेष सहायक पाया जाता था। ग्रामीण क्षेत्रों में तो एक मात्र घोड़ा ही आवागमन का सहारा था। अतएव उनकी नाल-बन्दी के लिए भी जान बायड ने विशेष उन्नति की।

आज साइकिल, मोटर साइकिल तथा मोटर गाड़ियों को संसार भर के देशों में प्रचारित पाया जाता है। ग्राम ग्राम, नगर नगर। साइकिल या मोटर गाड़ी से कोई अपरिचित नहीं पाया जा सकता किन्तु ऐसा ही समय पहले नहीं था। लोगों को कभी साइकिल का प्रारम्भिक आविष्कार देखने पर उसके भावी प्रचार की इतनी सफलता का तनिक भी अनुमान नहीं हो सकता था। हम साइकिलों के पूर्व रूपों पर भी विचार करते हैं तो उसके प्राचीनतम आविष्कृत रूप से आज के रूप का मेल खाता नहीं दिखाई पड़ता। सभी आविष्कारों में ऐसा ही होता है। पहले आविष्कार की भावना आविष्कारक के हृदय में आने के बाद कोई बहुत मामूली बेढंगी रूप की बनी वस्तु उसकी कल्पना या भावना को सत्य सिद्ध करने का प्रयत्न करती है। एक बार वह संचालित हो जाने पर धीरे धीरे परिष्कृत तथा उन्नत रूप धारण करती है। परन्तु कालान्तर में उसका इतना व्यावहारिक तथा उत्कृष्ट रूप हो जाता है कि प्रारम्भ के आविष्कृत रूपों की हमें कल्पना भी नहीं हो पाती।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में साइकिल का प्रचार हो चला था, परन्तु इससे थोड़ी दूर की यात्रा करना ही संभव हो सका। कुछ थोड़ी सुविधा होती और कुछ समय बच जाता, परन्तु इस सवारी पर हृष्ट पुष्ट और साहसी व्यक्ति ही बैठ सकते थे। किसी का तो रूप बड़ा बेडौल होता और कोई बच्चों का खेल ही कहा जा सकता। एक पहिया तो माथे के बराबर ऊँचा और दूसरा हाथ भर भी ऊँचा न हो, ऐसे किसी नमूने को देख कर हम समझ ही नहीं सकते कि उसका क्या उपयोग होता होगा। लकड़ी के पहिए या किसी गोल ढाँचे पर लकड़ी या लोहे का हाल चढ़ाए पहिए की गाड़ी पर आज भी हमें सवारी करने का अवसर मिल सकता है। इक्के में हम आज नगरों में पहिए के चारों ओर किनारों पर ठोस रबर की मोटी गद्दी देखते हैं। वह रबर का हाल कहा जा सकता है। पुराने ढाँचों में इसकी जगह अब भी लोहे का हाल लगा होता है। वैसे इक्के पर जो धक्का लगता है वह सवारी कर अनुभव करने की ही बात है। परन्तु यदि लकड़ी या लोहे के हाल युक्त तीन या दो पहिए की साइकिल की कल्पना करें तो यह अनुभव करना कुछ कठिन नहीं हो सकता कि उस पर सवारी का कितना कड़ुवा अनुभव होता होगा। ऐसी ही साइकिलों का कोई नमूना सचमुच ही सवारी की हड्डी हड्डी हिला देने के कारण ही हड्डी तोड़ या अस्थि-भंजक (बोन शेकर) साइकिल नाम पा सका था। यह सब बातें आज अनेक आविष्कारकों के प्रयत्नों के पश्चात् केवल पुरानी कथा मात्र रह गई हैं।

एक दिन सन् १८१३ ई० में जर्मनी के मैनहीम नगर की सड़क पर एक विचित्र दृश्य देखा जा

सकता था। एक सीध में दो पहिए जुटे थे। उनके बीच पहियों के आश्रय पर एक लकड़ी का ढाँचा लगा था। उसी में बीच में कोई गद्दी भी बैठने के लिये थी। एक आदमी उन पहियों के बीच ढाँचे की गद्दी पर बैठा दोनों पैर ढाँचे के दोनों ओर भूमि पर ढके था। अपना बोझ कुछ कुछ ढाँचे पर साध कर पैरों को बारी बारी से भूमि पर आगे बढ़ा कर रखता। यह ठेला साइकिल कही जा सकती है जिस का अविष्कारक जर्मनी के वेडेन प्रदेश का उपयुक्त व्यक्ति था। वह कार्ल्स रूहे (बेडेन) का निवासी था और अपनी विचित्र ठेला साइकिल का प्रदर्शन करने मैनहीभ नगर पहुँचा था। वह कार्ल्स रूहे से स्ट्रास वर्ग तक भी भूमि पर पैर टेकते, कूदते तथा अपनी ठेला साइकिल को ढकेलते ही चार घंटे में जा सका। पैदल जाने में इससे चौगुना समय लगा होता। परन्तु लकड़ी के हाल युक्त ठेले साइकिल का यह आविष्कारक कुछ यश या लाभ न प्राप्त कर सका। उसका लम्बा नाम कार्लफ्रीडरिच क्रिश्चियन लुडविग फ्रेरर डैस वान सौएर ब्रोन था जिसको संक्षेप में ड्रैस कहा जा सकता है। ड्रैस तो अज्ञात ही मरा, परन्तु उसके आविष्कार का अनेक देशों में लोगों ने अनुकरण किया।

ड्रैस ने सोचा था कि पैदल चलने पर मनुष्य अपने पग बढ़ाने में अपने शरीर का सारा बोझ एक पैर से दूसरे पैर पर डाल कर अत्यधिक शक्ति व्यय करता है। अतएव यह संभव हो सकता है। कि उसका बोझ एक ही सीध में बराबर रहे और वह आगे बढ़ सकता हो तो श्रम कम पड़े। इसी समस्या का निराकरण करने के लिये उसने भूमि पर ही पैरों को रख कर ठेलने वाला ढाँचा बनाया। उसने अपने छोटे देश बेडेन के लिये ही पेटेंट प्राप्त किया था किन्तु बाहर के लोग निश्चिन्त होकर उसके यंत्र के नमूने की नकल कर सकते थे। इसलिये कुछ वैसे ही नमूने या कुछ सुधार रूप के यंत्र बन सके।

इंगलैंड में १८३९ ई० में किर्क पैट्रिक मेकमिलन नाम के लुहारा ने दो पहियों की एक साइकिल बनाई जिसमें भूमि पर ही पैर रखकर ठेलने की आवश्यकता नहीं थी। पिछले पहिए में दो छड़ लगी थी जिसे साइकिल पर बैठने वाला व्यक्ति अपने पैर से आगे पीछे कर सकता था जिससे पहिया घूम सके। इस लुहार ने तीन वर्ष परिश्रम कर अपने नमूने में सुधार किया। १८४२ में उसकी बनाई साइकिल चलाने योग्य हुई। उस पर उसने अपने निवास स्थान के निकट डम्फ्रीज से ग्लासगो तक यात्रा की। यह कुल ४० मील की यात्रा उसने दो दिन में की। रास्ते में एक जगह उसकी साइकिल के सामने एक बच्चा आ गया किन्तु कुशल हुई कि किसी को कोई हानि न हुई, परन्तु जनता कीशान्ति में व्याघात के अपराध में उस पर ५ शिलिंग का दंड हुआ।

कर्क पैट्रिक मेकमिलन की साइकिल को केवल मनुष्य की शक्ति से ही भूमि पर आवागमन का प्रथम यान्त्रिक साधन कहा जाना उचित है। किन्तु उसको भी अपने आविष्कार से व्यावसायिक लाभ उठाने का अवसर नहीं मिल सका। वह एक निर्धन रह कर ही मृत हुआ।

साइकिल का जन्म होने पर धीरे धीरे जिन लोगों ने सुधार किए उनकी पृथक ही कहानी है। मेकमिलन के नमूने की साइकिल में ही जर्मनी के बवेरिया प्रान्तस्थ श्वीनफर्ट नामक स्थान के फिलिप हीनरिच फिशर नाम के मिस्त्री ने आगे के पहिए में पैडल लगाने की युक्ति। कुछ साइकिल चलाने के ही प्रेमी व्यक्तियों ने कुछ और सुधार करने की दृष्टि से अगला पहिया बहुत ही विशालकाय तथा पिछला पहिया छोटा बनाया जिसमें अगले पहिए का पैडल एक बार घुमने से चक्के की भारी गोलाई साइकिल को अधिक दूर तक ले जासके। कम से कम परिश्रम से अधिक से अधिक तेज चलाने की चिन्ता का ही यह परिणाम हो सकता था। बाद में कुछ अन्य आविष्कारकों ने ढाँचे के बीच में पैडल, दाँतेदार चक्के, चेन आदि का जो उत्तम आविष्कार

कर साइकिल का आधुनिक रूप दिया हम उनकी चर्चा यहाँ पर नहीं कर सकते।

जान बायड डनलप के समय में मेकमिलन द्वारा आविष्कृत साइकिल का प्रचार था। कुछ मनचले व्यक्ति ही उसे चलाने का आनन्द लेते। कभी कभी ऐसी गाड़ियों की दौड़ भी देखने का अवसर मिलता। साधारण जनता नए रूप के इन यात्रा-साधनों को कुछ वेग से चलने का कौतूहल पूर्वक अवलोकन करती। दृढ़ अस्थियों का व्यक्ति ही इन साइकिलों की सवारी करने का साहस करता। जान डनलप ने कभी भी ऐसी सवारी करने का अनुभव नहीं किया था। रोगी पशुओं को देखने जाने के लिए टूटी फूटी सड़कों पर वह घोड़ा गाड़ी की ही सवारी का उपयोग करता। रास्ते में कहीं पर कोई गड्ढा या रोड़ा मिल जाने से जोर से झटका खाना एक स्मरणीय बात होती, परन्तु उससे छुटकारा पाने के लिए दूसरा मार्ग पैदल चलना ही हो सकता था।

जान डनलप को विज्ञान के शोधों की अभिरुचि तो अवश्य थी। परन्तु साइकिल से इस शोध बुद्धि का क्या प्रयोजन हो सकता था, इसे हमें अनुमान करने का अवसर कदाचित नहीं मिल सकता। परन्तु जान डनलप का १० वर्ष का एक पुत्र जोन्नी नामक था। वह बड़ा प्रियपात्र था। अपने पुत्र का मनोरंजन करने के लिये जान डनलप ने एक साइकिल भी खरीद दी थी। पाठशाला में अन्य परिपुष्ट बालक अपनी पेशियों के श्रम से साइकिल की दौड़ में निस्सन्देह ही जोन्नी से आगे निकल जाते। इस स्नेहभाजन पुत्र की एप्रार्थना पिता को सुननी पड़ी। उन साइकिलों की दौड़ होने वाली थी जो पाठशाला के बालक चलाया करते। पहिए में लकड़ी या लोहे के हाल की चिन्ता न कभी वे अपनी चढ़ती हुई आयु के उत्साह में मार्ग की कठिनाई, साइकिल के धक्के, कठोर श्रम आदि सभी असुविधाओं से संघर्ष कर भी अपने बाहुबल और जाँघों की दृढ़ पेशियों की शक्ति का प्रमाण इन साइकिलों की दौड़ दिखाने में करते। बेचारा दस वर्ष का बालक ऐसी प्रतियोगिता में कैसे टिक सकता था। साइकिल में सुधार भी क्या हो सकता था। वह तो बड़े परिश्रम से मन्द गति से चलने के लिये बनी ही थी किन्तु जान डनलप को अपने पुत्र का आग्रह रखने के के लिये दौड़ में विजयी हो सकने की युक्ति करने का वचन देना ही पड़ा। बालक डनलप दौड़ का स्वप्न देखता ही समय बिता सका। परन्तु पिता के सम्मुख एक बड़ी टेढ़ी समस्या खड़ी दिखाई पड़ी। पुत्र के प्रेम के लिये वह कोई युक्ति कहाँ से ढूँढ़ निकाले, कौनसी ईजाद कर दे कि छकड़ा साइकिल भी वायुयान सी दौड़ दिखाने का दृश्य उपस्थित करे।

उन्नीसवीं शताब्दी तक योरप में सड़कों की दशा बड़ी ही असंतोषजनक थी। सड़कों का विषम तल गाड़ी के पहियों की ऊँची नीची स्थिति कर गाड़ी को बड़ा झटका पहुँचता। कोई लम्बी यात्रा करना एक कठोर साधना का ही कार्य समझा जाता था। जान डनलप अपने बालकपन से इस परिस्थिति को देखता आ रहा था। वह कभी-कभी सोचा करता कि गाड़ी के भयानक झटके को किस तरह शान्त किया जाय। अपने चिकित्सा के व्यवसाय में कहीं यात्रा का अवसर मिलने पर उसे इस अनिवार्य कठिनाई का सामना करना पड़ता। कभी-कभी उसने सोचा कि पहिए की आरा (स्पोक्स) को जिसे हम धुरे के स्थान से पहिए की गोलाई तक भुजा रूप में फैली सी देखते हैं, किसी युक्ति से लचकदार या चपटी अथवा कुंडलित कमानी रूप में बनाया जाय तो गाड़ी के चलने पर चक्के के ऊँचे नीचे पड़ने से धक्के का सारा बल उन आरों की लचक में ही शोषित हो सकता है किन्तु ऐसी व्यावहारिक युक्ति न हो सकने से उसने सोचा कि पहिए की गोलाई के छोर या हाल को ही धक्के के शोषण का आधार बनाने का प्रयत्न किया जाय। पहिया अपनी गोलाई के छोर या हाल के तल पर ही भूमि या सड़क का स्पर्श करता है अतएव धक्का उत्पन्न करने के स्थल को ही धक्के की समस्या दूर करने का केन्द्र बनाया जाय।

डनलप के विचारों को कभी व्यावहारिक रूप देने का अवसर नहीं मिला था। अपने दैनिक जीवन की व्यस्तता में वह अवकाश नहीं पाता था किन्तु ४७ वर्ष की आयु में अपनी नौकरी से अवकाश प्राप्त करने का समय निकट आया तो वह ऐसे विचारों को प्रयोग की कसौटी पर कस सकता था। इसी अवस्था में उसके दस वर्ष के पुत्र ने एक दिन में ही अपनी छकड़ा साइकिल के वेग को तीव्र कर देने की प्रार्थना उससे की थी।

आज हम तुरन्त सोच बैठते हैं कि नली रूप में रबड़ लेकर उसमें हवा भर देना और पहिए में ऊपरी छोर पर काठ या लोहे के हाल की जगह लगा देना बड़ी सुगम युक्ति है जिससे पहिए में धक्के का शोषण उसी स्थल पर कराया जा सके। केवल ऊपरी घर्षण की रक्षा के लिए हवा भरी नली के ऊपर टायर रूप का कोई गोल आवरण यथेष्ट हो सकता है किन्तु १८८७ ई० के लिए यह कल्पना के भी बाहर बात थी। इसका प्रयोग तो एक नूतन आविष्कार कहा जा सकता था। जान डनलप ने ऐसे ही आविष्कार का श्रेय प्राप्त किया। अपने उद्यान में रबड़ की नली बनाई। उसका ठीक नाप का भाग काट कर दोनों छोर जोड़ दिए। एक नली गोल अंगूठी की तरह बन गई। दो नलियों से ऐसी दो खोखली अंगूठी सी बनीं। भीतर वायु भरने के लिए उनमें एक-एक पतली नलिका भी जुटी रखी गई। इनके मार्ग से पम्प द्वारा हवा भर दी गई। छोटी नलिका का मुख बन्द कर हवा को बन्दी सा बना दिया गया। हम ऐसी नली को आज साइकिलों, मोटरों में प्रयोग कर ट्यूब नाम देते हैं।

राबर्ट डबल्यू० टामसन नाम के एक व्यक्ति ने १८४५ ई० में हवा भर कर रबर की नली का उपयोग पहिए में करने की युक्ति अवश्य की थी और उसे हवाई पहिया नाम दिया था। किन्तु वह समय ऐसे पहिए के उपयोग के लिए अनुकूल नहीं था। साइकिलों का उस समय प्रचार नहीं हो रहा था। इसलिए उसकी इस सुन्दर भावना से किसी ने लाभ नहीं उठाया। वह बात सर्वथा भुला ही दी गई थी। वैसा ही मौलिक विचार जान बायड डनलप ने १८८७ में कार्य रूप में परिणत किया जिसका सद्यः फल देखने का संसार को अवसर मिल सका।

जान डनलप ने रबर की वायुपूर्ण नली के ऊपर केनवेस का पर्दा रख कर भूमि की रगड़ से बचत की युक्ति कर ली और उसे अपने प्रिय पुत्र की साइकिल के पहिए में मढ़ दिया। उसने अपने जीवन संस्मरण में इस घटना का निम्न प्रकार उल्लेख किया है:—

"मैंने लगभग १६ इंच व्यास की एक काष्ठ निर्मित चकत्ती बनाई और फिर रबर की एक पतली चद्दर खरीदी। उससे मैंने एक खोखली नली बनाई और उसके अंदर एक हवा भरने की नलिका प्रविष्ट की।......हवा भरने की नलिका के मार्ग मैंने अपने पुत्र के फुटबाल पम्प से हवा भर दी और उसे उसी तरह बाँध दिया जैसे फुटबाल बाँधा जाता है। तब अपने पुत्र की तीन पहिए वाली साइकिल का अगला पथ निर्देशक पहिया तथा हवा भरी हुई नली युक्त चकत्ती को दूकान के अन्दर रक्खा। मैंने साधारण रूप से ही अपने सहायक जान काल्डवेल से पूछा कि इन पहियों में से किसको वह तीव्र गति का समझता है। उसने उत्तर दिया "निस्संदेह ही छोटा टायर" इस पर मैंने ठोस रबर का हाल लगे हुए त्रिचक्रीय साइकिल के पहिए को मैदान में आगे लुढ़का कर फेंका। वह आँगन में पूरी लम्बाई तक न जा सका। तब मैंने बड़ी, हवा भरी नली वाली चकत्ती को लुढ़काया। यह आँगन की पूरी लम्बाई पार कर गयी और सामने के द्वार से टक्कर भी खा सकी। काल्डवेल ने कहा कि मैंने हवा भरी नली की चकत्ती को लुढ़काते समय अधिक बल लगाया होगा उसने स्वयं दोनों पहिए को स्वयं फेंक कर ऐसा ही परिणाम देखा।......मेरे पुत्र ने इस प्रयोग को देखा।

जॉन्नी की माँग पूरी करने के लिए जान डनलप ने अपनी धारणा का व्यावहारिक रूप हवा भरी हुई

नली को हाल के स्थान पर करने में दिया। ऐसे रूप के हाल को वायुपूर्ण नली युक्त होने से न्यूमेटिक टायर (वायुबंध रबड़ नलिका) कहते हैं। जोन्नी ने ऐसे न्युमेटिक टायर की सहायता से अपने साथियों को दौड़ की होड में पछाड़ देने का अद्भुत कृत्य कर दिखाया।

जोन्नी की त्रिचक्रीय साइकिल के दो पहियों में हवा भरी नली युक्त टायर लगाने की व्यवस्था की गई थी। किसी लचकदार लकड़ी की दो कमानियाँ बनाकर उसको छोरों पर जोड़कर गोला अंगूठीनुमा रूप दिया गया। पूर्व की भाँति रबर की पतली चादर से नली बनाकर इस चन्द्र या अंगूठी नुमा गोले पर मढ़ दिया गया। ऊपर से केनवेस की ओढ़नी बाँध दी गई। हवा भरने की नली से रबर की नली में हवा भर दी गई और उसका मुँह बन्द कर दिया गया। ऊपर से रबर की परत से इसे आच्छादित कर दिया गया। ऐसे दो चन्द्र बनाकर हाल की भाँति त्रिचक्रीय पहिये को पिछले दोनों पहिये पर लगा दिए गए। अगले पहिए पर ऐसी युक्ति होने में कुछ कठिनाई थी। निकट के पुर्जों से वह रगड़ खाकर कट जाती। २८ फरवरी १८८८ को रात को यह प्रनोग पूर्ण हुआ।

डनलप ने अपने संस्मरण में लिखा है, "जोन्नी, अपनी साइकिल की गति देखने का उत्सुक था, इस कारण रात के दस बजे वह उस पर चढ़ निकला। पूर्ण चंद्र विकसित था। निर्मल रात्रि थी। मैंने उसको किसी भी नई सड़क पर साइकिल चलाने का आदेश दिया जो उसे मार्ग में मिल सकती है। संयोगवश उस दिन ११ बजे चन्द्र ग्रहण था। अतएव वह लौट आया। चन्द्रमा का ग्रहण मिटने पर वह फिर बाहर निकला और दूर तक साइकिल दौड़ा आया।"

जोन्नी ने अपनी साइकिल की जो चाल देखी वह उसे अत्यन्त हर्षदायक प्रतीत हुई। पहले कभी इतनी तीव्र गति से वह अपनी साइकिल नहीं चला सका था। वह प्रतीक्षा करता रहा कि किसी प्रकार प्रातः हो और वह अपनी साइकिल की चाल से दूसरे सयाने साथियों को पराजित करे। वह अब हवा की सवारी ही कर रहा था।

यह सब कुछ तो था, परन्तु सड़क पर जहाँ इस नई विधि का पहिया सन्तोषजनक परिणाम दिखा सकता है, वहाँ अन्यत्र क्या दशा होगी उसमें कितना टिकाऊपन है। ये प्रश्न जान डनलप के मस्तिष्क में चक्कर काटते पाए जा सकते थे। प्रातः काल उसने जब ध्यान-पूर्वक टायरों की परीक्षा की तो उन पर कहीं एक खुरच भी नहीं दिखाई पड़ी। बालक की अभिलाषा पूर्ण करने के लिए जान डनलप ने साइकिल केपहिए में युगान्तर उपस्थित कर दिया। उसका प्रत्यक्ष फल कुछ समय में ही संसार को देखने को मिला।

अपने प्रयोग की सफलता देखकर जान डनलप ने पहला कार्य यह किया कि उसका अधिकार सुरक्षित करने के लिए पेटेंट की व्यवस्था हो। इसके लिए संक्षेप में आविष्कार का रूप उल्लिखित करने की आवश्यकता थी। एक मित्र ने ऐसा वर्णन लिखने में सहायता की। डनलप ने उसका उल्लेख इस प्रकार किया है। "इंडिया रबर, और कपड़ा या किसी भी उपयुक्त पदार्थ से बना एक खोखला टायर या ट्यूब, इस टायर या ट्यूब में दबाव या अन्य विधि से हवा भरना तथा उसे पहिया या पहियों से ऐसी युक्ति से आवद्ध कर देना जो सब से अधिक उपयुक्त जान पड़े।" इस विवरण का शीर्षक निम्न दिया गया, "दो पहिए, तीन पहिए की साइकिल या सड़क पर चलने वाली अन्य गाड़ियों के पहिए में टायर का परिष्कृत रूप।"

अविष्कार हो जाने और पेटेंट प्राप्त कर लेने पर भी जब व्यावसायिक पहलू सामने आया तो विशेष कठिनाई प्रतीत हुई। कोई भी व्यवसायी नई त्रिचक्रीय (ट्राइ साइकिल या तीन पहिए की गाड़ी) के लिए वायु नलियों बनाना स्वीकार नहीं करता। वे कहते कि यह धारणा इतनी अव्यावहारिक है जितनी उन्हें कभी सुनने को भी नहीं मिली। जब

उनसे कहा गया कि डनलप ने स्वयं ही ऐसी नलियाँ बनाईं तथा उनका उपयोग हो रहा है तब कहीं उन्होंने दो रबर की नलियाँ बना देना स्वीकार किया जिन पर रबर का आच्छादन भी हो।

नये यंत्र से जोन्नी को अत्यन्त आह्लाद हुआ। उसके पिता ने जब इस नई त्रिचक्रीय पर अपने पुत्र को चढ़कर बेलफास्ट के प्रमुख साइकिल निर्माताओं से होड़ करने की दौड़ में भाग लेने का आदेश दिया तब तो जोन्नी की प्रसन्नता का कुछ ठिकाना ही नहीं रहा। एल्डिन तथा सिंक्लेयर नाम के दो व्यक्ति प्रमुख साइकिल निर्माता थे। उनको नई त्रिचक्रीय की सफलता का कुछ वर्णन सुनने को मिल गया था। प्रतियोगिता में यदि यह नई त्रिचक्रीय बाजी मार ले जाय तो इस नमूने की साइकिल बनाने का अधिकार वे लेना चाहते थे।

एक दिन एक सर्वोत्तम त्रिचक्रीय पर चढ़कर ये दोनों व्यक्ति डनलप के इहाते में पहुँचे। जोन्नी अपनी नई त्रिचक्रीय पर आरूढ़ हुआ तथा नगर की नव निर्मित सब से लंबी सड़क पर उसे दौड़ा ले चला। पीछे-पीछे एल्डिन और सिंक्लेयर भी आते रहे। डनलप ने अपने संस्मरण में उस घटना का वर्णन करते हुये लिखा है, "जब वे आधा मील जा चुके थे, वे वापस आ गए और इहाते में प्रवेश कर एल्डिन ने, जो दौड़ों में भाग लिया करता था, कहा," जोन्नी तुमने मुझे वहाँ यथेष्ट तमाशा दिखाया। मैंने देखा कि एल्डिन कुछ व्यग्र हो रहा था।"

न्यूमेटिक टायर की परख के लिए कितनी ही अल्प दौड़ें हुईं। एल्डिन उनके परिणाम से अत्यधिक संतुष्ट था। उसने न्यूमेटिक टायर की भव्य रूप से विज्ञप्ति एक साइकिल सम्बन्धी पत्र में प्रकाशित की। उसमें घोषित किया गया कि इन नए टायरों की साइकिल पूर्ण सुरक्षित है। झटके धक्के का तो नाम नहीं है। इन विज्ञापनों में एल्डिन ने अपनी दूकान को उन नवीन साइकिलों का एक मात्र निर्माता बताया। यह विज्ञापन आइरिश साइकलिस्ट में छपाया गया था। सम्पादक ने अपनी टिप्पणी जिस प्रकार दी, वह पढ़कर एक हँसी की रेखा मुख पर दौड़ आ सकती है। टिप्पणी में लिखा था :—

"हम नई न्यूमेटिक सेफटी (सुरक्षित साइकिल) का आगमन देख रहे हैं। "न्यूमेटिक" यह कुछ वायु के सम्बन्ध की बात है, बिल्कुल ठीक भी है। हम लोग नए विचारों का पूर्ण प्रसार चाहेंगे। कैसी सुन्दर धारणा है। हम वायु के झोंके से चालित घोड़ों की बात सुनते हैं। कदाचित यह "न्यूमेटिक" भी वायु के झोंके से प्रचालित साइकिल ही है। इस हवाई रचना को देख लेने के बाद हम अपने पाठकों को अधिक बातें बताएँगे।"

जहाँ न्यूमेटिक का अभिप्राय समझना शिक्षित वर्ग के लिए भी एक पहेली थी, वहाँ जान डनलप ने एल्डिन महाशय से साझा कर लिया था तथा उन्हें बारह द्विचक्री तथा छः त्रिचक्री (बाइसिकिल) साइकिलों के बनाने के लिए निर्देश तथा सहायता प्रदान की थी, जिन में हवा भरी रबर नली (न्यूमेटिक टायर) की व्यवस्था युक्त पहिए लगे थे।

साइकिलों में पहले नीची बैठक रक्खी जाती थी। उसका नाम "सेफटी साइकिल" पड़ा था, परन्तु अगले पहिए को बहुत ऊँचा और पिछले को नीचा रखने की व्यवस्था वाली साइकिल में आगे के पहिए पर बैठक होने से बहुत ऊँचाई पर बैठना पड़ता था। अंग्रेजी सिक्के में एक आने के समकक्ष पेनी (या बहुबचन में पेंस) सिक्का होता है। पैसे के समकक्ष फार्दिंग मूल्य में तो चौथाई होता है। आकार में भी पेनी का चौथाई होता है। इस बड़े छोटे आकार की तुलना में अगला पहिया बहुत बड़ा और पिछला छोटा होने से उसे साइकिल का ही नाम पेनी फार्दिंग पड़ा था। यह उन सिक्कों के आकार की तुलना में उपमा थी जो उस वर्ग की साइकिल के लिए प्रसिद्ध हुई। एल्डिन महाशय ने पेनी-फार्दिंग की जगह सेफटी नमूने की साइकिल में न्यूमेटिक टायर लगा कर बेचना प्रारंभ किया था। विज्ञापन में भी सेफटी शब्द से यह प्रकट किया गया था कि इन साइकिलों में पहिए छोटे बड़े नहीं हैं तथा उनमें

बैठक (सीट) या आसन बेतुका ऊँचा नहीं है। यह सेफटी कालान्तर में इतनी साधारण हो गई कि उसका यह विशेषण उड़ गया और पेनी फार्दिंग तो पुरानी साइकिल के स्मरण के लिए नाम रह गया। एल्डिन की शिल्पशाला में निर्मित हुई, न्यूमेटिक टायर युक्त सर्वप्रथम सेफटी साइकिल ३००० मील तक चलाई गई किन्तु उसका टायर न तो कभी कटा फटा और न पृथक ही करने की आवश्यकता हुई। डनलप ने जिस टायर को अपने हाथों निर्मित किया था, एडिनबरा के रायल स्काटिश म्यूजियम में आज भी रक्खा देखा जा सकता है।

विलियम ह्यूम नाम का एक प्रसिद्ध व्यक्ति साइकिल चलाने का प्रेमी था परन्तु एक बार उसे दुर्घटना का सामना करना पड़ा जिससे उसका साइकिल पर चढ़ना छूट गया। पेनी फार्दिंग साइकिलों की दौड़ में भाग लेने पर एक बार उसे गिरने से बहुत चोट आई। तब से उसने साइकिल की दौड़ों को छोड़ सा ही दिया था परन्तु जब उसने सुरक्षा का नाम सुना और सेफटी साइकिलों के न्यूमेटिक टायर सज्जित होने की बात ज्ञात कर सका तो एक बार फिर साइकिलों की दौड़ में लौट आने की लालसा उत्पन्न हुई। मई १८८९ में ऐसी पहली दौड़ होनी थी। ह्यूम ने दो चार बार सेफटी नाम की साइकिल पर चढ़ने का अभ्यास किया और एल्डन से न्युमेटिक टायर युक्त एक सुन्दर सेफटी साइकिल निर्मित कराने का वचन प्राप्त किया। आयरलैण्ड के सर्वोत्तम साइकिल आरोहियों ने इस प्रतियोगिता में भाग लिया। सब की साइकिलों में ठोस रबर की हाल लगी थी। केवल ह्यूम की साइकिल न्यूमेटिक टायर की थी। कुल चार प्रतिद्वन्दी थे। ह्यूम उनमें सर्वप्रथम आ सका। यह घटना न्यूमेटिक टायर युक्त साइकिलों के प्रचार में भारी सहायक सिद्ध हुई।

डनलप ने अपने संस्मरण में लिखा है, "जब ह्यूम मैदान में उतरा तो सब दर्शकों की आँखें छोटी सेफटी साइकिल पर थी। पहले फेरे में लोगों को मैंने यह कहते सुना, वह छोटी भी उतनी तीव्र गति से ही चल रही है जितनी बड़ी चल रही हैं। दूसरों ने कहा, 'लेकिन वह किस शक्ति से चल रही है?' अन्तिम फेरे में मैंने एक को यह कहते सुना, "इस साइकिल में कोई प्रेत है।"

'पहली दौड़ की समाप्ति पर मैं मैदान में आमंत्रित किया गया और आविष्कार के रूप का वर्णन करने का आदेश मिला.........चारों ओर से मेरी शाबाशी हो रही थी, भारी भीड़ हर्षध्वनि से मेरा स्वागत कर रही थी।'

जब डनलप लौटकर अपने मञ्च के स्थान पर गया तो किसी ने उसका परिचय डबलिन के प्रसिद्ध खिलाड़ी विलियम हार्वी डू क्रोस महाशय से कराया। डु क्रोस महाशय ने उससे प्रार्थना कीकि वह ह्यूम की साइकिल उसके हाथ बेंच दे। डनलप ने उत्तर दिया कि वह एल्डिन महाशय की वस्तु है। किन्तु डुक्रोस ने जब एडलिन से यह प्रार्थना की तो एडलिन ने उत्तर दिया, "मैं ह्यूम से उसे वापस माँगना न चाहूँगा।" डुक्रोस ने अपने स्कन्ध कंपित किए और डबलिन की गाड़ी पकड़ने के लिए स्टेशन को प्रस्थान किया।

डनलप को क्या पता था कि डु क्रोस नाम का यह व्यक्ति अपना क्या महत्व रखता है किन्तु इस साक्षात्कार का बड़ा ही सुन्दर परिणाम हुआ। विलियम हार्वी डु क्रोस फ्रांस से भगोड़े बन कर आए ह्यूगनाट्स में से एक परिवार का वंशज था। वह एक विलक्षण पुरुष था। वह कागज का एक प्रसिद्ध तथा सफल व्यापारी था। परन्तु साथ ही वह प्रसिद्ध खिलाड़ी भी था। किसी भी खेल की प्रतियोगिता में भाग लेने से वह न चूकता। कोई भी खेल ऐसी नहीं थी जिसकी प्रतियोगिता का पुरस्कार उसने न प्राप्त किया हो। उसके छः पुत्र थे। वे सब भी योग्य खिलाड़ी की भाँति शिक्षित हुए थे। वे कुशल साइकिल आरोही भी थे और साइकिल की अनेक दौड़ों में विजय प्राप्त कर चुके थे किन्तु उस दिन ह्यूम की 'शैतानी' साइकिल के

सम्मुख बेलफास्ट में वे पराजित हो चुके थे। यह ग्लानि की ही बात थी, जिनके कारण डु क्रोस ने न्यूमेटिक टायर वाली साइकिल की याचना डनलप तथा एल्डिन से की थी। वह विस्मित होकर ही बेलफास्ट लौटा था। उसके पुत्रों की पराजय उसके विस्मय और रोष का कारण थी। किन्तु उसने अपने हृदय में कोई विचार भी बैठा लिया था जिसका एक अद्भुत परिणाम निकला।

यश और धन प्राप्त डु क्रोस को छोटे डील डोल का देखा जा सकता था। खेलों में विजय प्राप्त होने में उसका नाटा डील डौल बाधक नहीं सिद्ध होता। मुख पर लंबी मूंछें लहराती रहतीं तथा उसकी सौम्य मुद्रा दीख पड़ती परन्तु उसके हृदय में लौह इच्छा शक्ति अंतर्हित थी। बेलफास्ट की प्रतियोगिता में उसके पुत्रों की हार ने जो उसे मर्माहत किया उससे उसने न्यूमेटिक टायर की जीत देखी। इस विषय में उसने कुछ करने का संकल्प किया।

डु क्रोस ने बेलफास्ट से एक न्यूमेटिक टायर मांग कर इसकी अपने मैदान में परीक्षा की। उसने डबलिन के दो धनिक व्यवसायियों को बुला कर मन्त्रणा की। इन तीनों ने बेलफास्ट जाकर डनलप से सम्पर्क स्थापित किया। तथा उसके आविष्कार से लाभ उठाने के लिए एक भारी कम्पनी स्थापित करने का प्रस्ताव रक्खा। डनलप के पास उत्तरी आयरलैंड से कितने ही व्यापारी पहले भी मिल चुके थे, उसके पास स्वयं भी इतना धन था कि कोई बड़ी कम्पनी खड़ी कर सके परन्तु डु क्रोस के प्रस्ताव को उसने स्वीकार कर लिया।

शर्तनामे की बातें कुछ विवादों के पश्चात् निश्चित हो जाने पर डनलप ने अपना पेटेंट कम्पनी को प्रदान किया और उसके बदले में उसे कम्पनी के शेयर दिए गए। सब कुछ लिखा पढ़ी ठीक होकर कार्य प्रारम्भ हुआ। ऐसे अवसर पर डनलप ने अनुभव किया कि उसे साइकिल पर चढ़ना सीख लेना चाहिए अतएव पचास वर्ष की आयु में उसने साइकिल पर चढ़ना सीखा।

एक साधारण पूँजी से १८८९ में डबलिन में कम्पनी की स्थापना हुई। न्यूमेटिक टायर का विकास होने लगा। साइकिल को इतना निरापद बना देने का विश्वास किया गया कि कम्पनी ने अपने टायरों के विज्ञापन में यह कहना प्रारंभ किया कि महिलाओं तथा दुर्बल स्नायु के व्यक्तियों के लिए तो वह अनिवार्य है। विलियम डू क्रोस तथा उसके पुत्र आर्थर ने सारे योरप का भ्रमण किया तथा साइकिल के सम्बन्ध के इस नए आविष्कार के विपक्ष की भावनाओं का निराकरण किया। उन्होंने स्थान-स्थान पर कम्पनी की शाखाएँ तथा टायर निर्माण करने के कारखाने खोलने प्रारंभ किए। डनलप बाइसिकिल को वे सर्वत्र प्रदर्शन करते। एक स्थान पर उन्हें पेनी फार्दिंग साइकिल के भी समर्थक मिले जिन्होंने डनलप साइकिल का इतना विरोध किया कि प्रदर्शन के समय ढेले फेंके अपशब्द कहे तथा साइकिल की दूकान पर ताला डलवाने के लिए स्थिति पैदा की।

कम्पनी के कार्य प्रारम्भ करने के कुछ वर्षों पश्चात उसका पुनर्संगठन कर पचास लाख तक पूँजी पहुँचा दी गई। न्यूमेटिक टायर की उपयोगिता सिद्ध हो चुकी थी, प्रचार बढ़ गया था। इसके कारण साइकिल एक मनोरंजन की सामग्री ही नहीं बनी रही, बल्कि एक नष्ट उद्योग का ही उदय हुआ। सड़क पर यातायात का एक नवीन, सर्वथा सुलभ और सस्ता साधन उत्पन्न हुआ। मोटर गाड़ियों का भी शीघ्र ही प्रचार हो चला। यह एक पशु चिकित्सक डाक्टर के अपने पुत्र को प्रसन्न करने के लिए आविष्कार का ही फल था कि मोटर गाड़ियों को न्यूमेटिक टायर युक्त अत्यधिक प्रसारित देखा जा सका। किन्तु डनलप स्वयं अधिक धन लाभ न कर सका। उसे कुछ वर्षों पश्चात् ही कम्पनी से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लेना पड़ा। शेष जीवन में उसने कम्पनी के कार्यों में कोई अभिरुचि नहीं रक्खी। डनलप की मृत्यु ८१ वर्ष की अवस्था में १९२१ में हुई।

[शेष पृष्ठ ८६ पर देखिये]

पृथ्वी की आन्तरिक रचना

होशिला प्रसाद तिवारी एम० एस०-सी० (भूगर्भ शास्त्र)

मानव पृथ्वी की आन्तरिक रचना का आँखों देखा वर्णन करने में यह विज्ञान-युग भी असमर्थ है। परन्तु इस वसुन्धरा के अन्दर से उत्पन्न कुछ क्रियाओं के आधार पर मनुष्य ने कुछ फलों का निर्णय किया है, उदाहरणार्थ, ज्वालामुखी के उद्गार से यह सिद्ध होता है कि पृथ्वी के अन्दर ताप की अधिकता है तथा धरातल पर पाई जाने वाली वस्तुओं से विभिन्न पदार्थ पृथ्वी के अन्दर उपस्थित हैं। गणित के सिद्धान्तों के आधार पर भी बहुत से भौतिक गुणों की यथार्थता सिद्ध हुई है। गुरूत्वाकर्षण के आधार पर वैज्ञानिकों ने गणना की है कि पृथ्वी का साधारण घनत्व ५·५३ है परन्तु धरातल पर पाई जाने वाली चट्टानों का घनत्व २.७ है, इससे सिद्ध होता है कि धरातल के अन्दर पाई जाने वाली चट्टानों का घनत्व ५.५३ से अधिक है। अतः सम्भवतः पृथ्वी के केन्द्र की ओर पाईजाने वाली चट्टानें लौह तथा गिलट जैसे भारी पदार्थों की बनी हुई हैं। इस घनत्व की अधिकता का एक और दूसरा

आज डनलप के आविष्कार का फल साइकिलों, मोटर गाड़ियों तथा वायुयानों के प्रचार में हम देखते हैं। वायुयान के नाम पर विस्मय हो सकता है। परन्तु प्रत्यक्ष प्रभाव हम सहज ही समझ सकते हैं। न्यूमेटिक टायरों के कारण ही तीव्र से तीव्र गति की मोटर गाड़ियों का विकास हो सकता जिनमें उत्तमोत्तम मोटर (इंजिन) को आविष्कृत कर प्रयोग करने में ही गति में बृद्धि होती। उन परिष्कृत मोटरों (इंजिनों) के आविष्कृत हुए बिना वायुयान का जन्म लेना कठिन ही होता। दूसरे भूमि पर चलने के लिए भी वायुयानों में न्यूमेटिक टायरों का प्रयोग करना ही पड़ता है। अतएव वायु यान के जन्म और विकास में भी न्यूमेटिक टायर का हाथ मानना उचित हीं है।

आज संसार में मोटर गाड़ियों और साइकिलों की संख्या के आँकड़े लिए जायँ तो हमारी बुद्धि उसे देख चकित तो सकती है। संसार में सब से अधिक संख्या में साइकिलों का देश जर्मनी है। वहाँ एक करोड़ अस्सी लाख साइकिलें चलती हैं। जापान में ७० लाख, इटली में ५० लाख, डेनमार्क में २० लाख तथा ब्रिटेन में एक करोड़ २० लाख साइकिलें चलती हैं। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में तो मोटर गाड़ियों की संख्या तीन करोड़ पचास लाख है। इस प्रकार पूरे संसार में साइकिलों की संख्या लगभग सात करोड़ पचास लाख होगी। जोन्हो ने त्रिचक्री साइकिल को जिस दिन न्यूमेटिक टायर युक्त बनवाकर पहले पहल सवारी की, उस दिन से आज संसार में इतनी अधिक संख्या में साइकिल की सवारी न्यूमेटिक टायरों का ही प्रत्यक्ष फल है आज विद्यालय के छात्र और शिक्षक बाजार के व्यापारी, दफ्तरों के बाबू और चपरासी, डाकखाने के डाकिया, तथा मध्यवित्त के अगणित नागरिक इस सस्ती, सुगम, तीव्र गामी साइकिल का प्रयोग दिन रात कर कभी टायर क्रय करते समय डनलप का नाम मुख पर लाते हैं, किन्तु उनके ध्यान में नहीं आता कि साइकिल का वर्तमान रूप प्राप्त होने में इस नाम का कितना महत्व पूर्ण भाग है।

कारण भी हो सकता है जो निम्नांकित है :—ऊपर की चट्टानों के गुरुतर दबाव के कारण अन्दर की चट्टानों के आयतन में विशेष अधिक संकोच हो गया है। फलतः वे भारी हैं। इसके अतिरिक्त भी पृथ्वी की आन्तरिक रचना के विषय में वैज्ञानिकों में मतान्तर है जिसका वर्णन नीचे दिया जाता है।

१—कुछ वैज्ञानिकों के मतानुसार सम्पूर्ण पृथ्वी समान गुणों वाले पदार्थों की बनी हुई है और ये पदार्थ केन्द्र के निकट पिघली हुई दशा में वर्तमान हैं।

२—प्रसिद्ध वैज्ञानिक "डाना" के मतानुसार पृथ्वी के केन्द्र के निकट लौह निर्मित चट्टानें पाई जाती हैं परन्तु उससे बाहर की ओर एल्यूमिनियम जैसी हल्की धातुओं के सिलिकेट की चट्टानें मिलती हैं। "बीचर्ट" ने भी 'डाना' के विचारों को स्वीकार किया है परन्तु उसे और विस्तृत रूप में। 'बीचर्ट' का कथन है कि धरातल पर से करीब १५०० मील की गहराई तक पृथ्वी बहुत ही कठोर चट्टानों द्वारा निर्मित है तथा इस भू-भाग का घनत्व ३.४ है। इसके नीचे वाला भाग क्रमशः मुलायम है परन्तु उसका घनत्व ऊपर वाले से अधिक करीब ८.४ के निकट है।

३—"गोल्डस्केमिडट" के सिद्धांत के अनुसार चार भूभाग स्पष्ट हैं : (१) ऊपर वाला सिलिकेट प्रस्तर, जिसकी गहराई १२० मील तक है तथा जिसमें पाई जाने वाली चट्टानों का घनत्व २.८ के निकट है। (२) यह सिलिकेट प्रस्तर के नीचे करीब १२०० मील की गहराई तक पाया जाता है, इस भूभाग में क्षारीय तत्वों की अधिकता होती है जिन्हें 'इक्लोगाइट' प्रस्तर कहते हैं। इन चट्टानों का घनत्व ३.६ से लेकर नीचे की ओर ४ के निकट तक पाया जाता है। (३) 'इक्लोगाइट' प्रस्तर के निकट करीब २९०० मील की गहराई तक विभिन्न क्षारीय तत्वों के साथ गंधक तथा आक्सीजन के मिश्रित यौगिकों द्वारा निर्मित चट्टानें पाई जाती हैं, जिनका घनत्व ५.६ के निकट है। (४) केन्द्र के निकट लौह तथा गिलट द्वारा बनी हुई चट्टानें पाई जाती हैं जिनका घनत्व ८ के निकट है।

जिस प्रकार से एक्स-रे द्वारा शरीर के अन्दर के अवयवों का समुचित ज्ञान बिना चीर-फाड़ के ही हो जाता है, उसी प्रकार भूकम्प के धक्कों की सहायता से पृथ्वी की आन्तरिक रचना का पता चल जाता है। भूकम्प की धारायें समान घनत्व वाली ऊपर की पर्त में सब जगह एक प्रकार का प्रभाव डालती हैं। इसके अतिरिक्त प्रारम्भिक तथा उसके बाद की द्वितीय धारायें विशेष अधिक गहराई तक पहुँच जाने पर जब बाहर की ओर गमन करती हैं तो जिस स्थान पर अन्दर का घनत्व बाहर के घनत्व से अधिक होना आरम्भ होता है वहाँ पर वे अन्दर की ओर परावर्तित हो जाती हैं। इस प्रकार से पृथ्वी के धरातल पर कुछ अंश ऐसा पाया जाता है जहाँ पर भूकम्प का किसी प्रकार का प्रभाव ज्ञात नहीं हो पाता है। ऐसे भागों को अंध भाग कहते हैं। डाक्टर "विलियमसन" के अनुसार भूकम्प के प्रभाव के आधार पर निम्नांकित भूभाग पृथ्वी के अन्तःकरण के हो सकते हैं :—

१. बाहर का वह भाग जो धरातल पर से करीब ४० मील की गहराई तक पाया जाता है। इस भाग में पाये जाने वाले प्रस्तर ग्रैनाइट कहलाते हैं जिनका घनत्व ३.४ से लेकर ४ तक होता है।

२. दूसरा वह भू-भाग जो ४० मील की गहराई से लेकर १००० मील की गहराई तक पाया जाता है। इस भाग में पाये जाने वाले पत्थरों का घनत्व ३.५ से लेकर ४.५ तक होता है तथा वे 'पेरीडोटाइट' कहलाते हैं।

३. तीसरे भाग में पाये जाने वाले पत्थरों को "पोलेसाइट" कहते हैं, जो १००० मील से लेकर १८७५ मील की गहराई तक पाये जाते हैं। जिनका घनत्व ४.५ से लेकर ९.५ तक होता है।

४. चौथे भाग को लौह तथा गिलट निर्मित भाग कहते हैं। जो १८७५ मील से लेकर ४०००

केन्द्रीय नमक गवेषणाशाला का उद्घाटन

भारत की राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं और गवेषणाशालाओं के क्रम में यह १२ वीं गवेषणाशाला है।

लगभग १५ सौ मील लम्बा समुद्री किनारा, राजस्थान तथा कच्छरण के स्रोत और मण्डी की सेंधा नमक की खानें—भारत में नमक के ये स्रोत हैं। इतने विशाल साधनों के होते हुए भारत संसार के नमक उत्पादक देशों में एक ऊँचा स्थान प्राप्त कर सकता है। खाने के लिए तो नमक एक आवश्यक पदार्थ है ही, साथ ही यह सोड़ा एश, कास्टिक सोडा, क्लोराइन और सोडियम सल्फेट जैसी रासायनिक वस्तुएं तैयार करने के काम भी आता है। इसके अलावा, यह डिब्बे बन्द माँस-मछलियों, दुग्धशाला की बनी वस्तुओं आदि जैसे खाद्य उद्योगों में भी काम आता है। कुछ फसलों के लिए, इसका खाद के रूप में भी उपयोग होता है।

कितने ही समय से भारत बाहर से नमक मंगाता रहा है। विभाजन के बाद नमक की कमी इसलिए और भी अधिक हो गयी कि पंजाब के विशाल भंडार और सिंध में समुद्री नमक का कारखाना पाकिस्तान में चला गया। १९४७ में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश के अनेक भागों में नमक की कमी की समस्या सामने आयी। सरकार ने श्री एच० एम० पटेल की अध्यक्षता में, जो उस समय मन्त्रिमण्डलीय सचिव थे, नमक की कमी पूरी करने के उपायों के बार में जाँच करने और रिपोर्ट देने के लिये एक अन्तर्विभागीय समिति कायम की। समिति ने सरकार के आगे अनेक प्रस्ताव पेश किये

मील की गहराई तक पाया जाता है तथा जिसका घनत्व ९.५ से लेकर १०.६ तक होता है।

उपरोक्त सभी विचारों से केवल एक यही निष्कर्ष निकलता है कि मानव की सभी शक्तियाँ जो विज्ञान के सहारे इतनी बढ़ी हुई हैं मनुष्य को पृथ्वी के अन्तः करण तक पहुँचा सकने में असमर्थ हैं। परन्तु कुछ ऐसी स्पष्ट बातें हैं जिनके आधार पर वास्तविकता का भी पता बिना देखे चल जाता है। पृथ्वी के अन्दर की ओर ताप क्रमशः बढ़ता जाता है जिसके लिये प्रत्यक्ष उदाहरण विशेष गहरी खानें हैं। और यह बढ़ाव ६० सें० प्रति मील की दर से होता है। अतएव पृथ्वी के केन्द्र के निकट जो धरातल करीब ४००० मील दूर हैं वहाँ पर ताप इतना अधिक हो सकता है कि वहाँ पर वर्त्तमान पदार्थ पिघली हुई दशा में होगा। ज्वालामुखी के विस्फोट से तो पता चलता है कि पृथ्वी के ऊपरी आवरण के नीचे ही पिघला हुआ लावा वर्त्तमान है। इसके अतिरिक्त भौतिक चुम्बकीय गुणों से भी यह बात स्पष्ट है कि पृथ्वी का अन्तः करण लौह निर्मित्त एक बहुत ही विशाल चुम्बकीय क्षेत्र है। परन्तु ज्वर-भाटे के प्रभाव से पृथ्वी का अन्तः करण रहित है इससे सिद्ध है कि केन्द्र के निकट पृथ्वी ठोस रूप में है। और यदि द्रव रूप में है तो उसकी सकर्षनीयता (elasticity) इस्पात के समान है। 'केलविन' के मतानुसार एक कच्चा अंडा जिसके अन्दर द्रव होता है दो हथेलियों के बीच नहीं घूम पाता है परन्तु जब उसे उबाल देते हैं जिससे उसके भीतर का द्रव पदार्थ ठोस हो जाता है उस समय वही अंडा हथेलियों के बीच सुगमता पूर्वक घूमता है। अतएव अपनी धुरी पर घूमती हुई इस पृथ्वी के अन्दर भी ठोस पदार्थ ही वर्तमान है इसके अतिरिक्त क्षितिज के समानान्तर चलने वाली भूकम्प की धारायें द्रव से होकर पार चली जाती हैं, परन्तु वे केन्द्र से होकर नहीं जा पाती हैं। अतः इससे सिद्ध होता है कि केन्द्र के निकट द्रव पदार्थ नहीं पाया जाता है तथा भूकम्प की विभिन्न लहरों के द्वारा यह सिद्ध है कि पृथ्वी के अन्दर की ओर पाई जाने वाली चट्टानों का घनत्व धरातल के निकट की चट्टानों के घनत्व से अधिक होता है।

और यह सिफारिश भी की कि नमक के उत्पादन, किस्म और उपयोग सम्बन्धी समस्याओं की जाँच करने के लिए एक नमक विशेषज्ञ समिति कायम की जाय। अप्रैल १९४८ में, भारत सरकार ने भारतीय नमक उद्योग का आधार दृढ़ करने के निमित्त सरकार को आवश्यक उपाय बताने के लिए श्री पी० ए० नारीलवाला की अध्यक्षता में एक नमक विशेषज्ञ समिति कायम की।

भारत के अनेक कारखानों की जाँच पड़ताल करने के बाद समिति इस निर्णय पर पहुँची कि यदि नमक की किस्म सुधारनी है और यदि नमक कारखाना आर्थिक लाभ की दृष्टि से और अच्छाई से चलाना है, तो गवेषणा की ओर ध्यान देना होगा, प्रदर्शन यूनिट के तौर पर काम करने के लिये, मुख्य नमक उत्पादन केन्द्रों में नमूने के कारखाने खोले जाय और नमक की किस्म सुधारने और उत्पादन बढ़ाने के तरीके खोजने के लिए गवेषणा केन्द्र कायम किये जाँय।

नमक गवेषणा समिति

वैज्ञानिक एवं औद्योगिक गवेषणा परिषद् ने १९४० में नमक गवेषणा की आवश्यकता स्वीकार की और डा० शान्ति स्वरूप भटनागर के अनुरोध पर, नमक गवेषणा समिति कायम की गयी। इस समिति को बाद में रासायनिक समिति (हेवी केमीकल्स कमिटी) के साथ मिला दिया गया। परन्तु यह समिति जुलाई १९४८ में डा० माता प्रसाद की अध्यक्षता में फिर से कायम की गयी। भारत सरकार ने नवम्बर १९४६ में नमक आयुक्त (साल्ट कमिश्नर) की देख रेख में वडाला (बम्बई) में जो नमक गवेषणा केन्द्र और नमक फारम खोले थे वे समिति की देख रेख में कार्य कर रहे हैं।

सितम्बर १९५१ में, निर्माण, उत्पादन तथा पूर्ति मन्त्रालय के तत्कालीन सचिव श्री सी० सी० देसाई ने यह प्रस्ताव किया कि वैज्ञानिक एवं गवेषणा शाला के अन्तर्गत, समुद्री नमक, झीलों के नमक और जमीन के खारे नमक के खारे पानी के बारे में गवेषणा करने के लिए केन्द्रीय नमक गवेषणा शाला कायम की जाय। यह भी सुझाया गया कि यह शाला सौराष्ट्र में किसी केन्द्र में खोली जाय।

इसी बीच सौराष्ट्र सरकार ने इस शर्त पर सौराष्ट्र में शाला के लिये भवन देने का प्रस्ताव किया, कि शाला सौराष्ट्र में ही खोली जाय। साथ ही यह भी कहा कि यदि शाला के लिए उपयुक्त मकान न मिले, तो यह उसके बनाने का खर्च देने को भी तैयार है। परिषद् ने सौराष्ट्र सरकार का यह प्रस्ताव मान लिया।

नमक गवेषणा शाला के योजना अधिकारी ने शाला के स्थान के लिए सौराष्ट्र के उत्तरी किनारे और दक्षिणी किनारे, दोनों ही जगह प्रारम्भिक पर्यवेक्षण किया। भावनगर, जो कि सौराष्ट्र में उच्च शिक्षा का केन्द्र है, इसके लिए उपयुक्त समझा गया। सौराष्ट्र सरकार ने भी शाला के मकान के लिए राज होटल नमक भवन, २ बंगले और परीक्षणात्मक नमक फार्म के लिये १२३ एकड़ जमीन देने का प्रस्ताव किया। सौराष्ट्र सरकार द्वारा दी जाने वाली सुविधाओं को ध्यान में रख कर, परिषद् ने भावनगर में ही शाला खोलने का निश्चय किया। नमक गवेषणा समिति और नमक विशेषज्ञ समिति के सिफारिशों के अनुसार सांभर में नमक गवेषणा प्रयोगशाला और मद्रास, तिरवांकुर-कोचीन और उड़ीसा में गवेषणा केन्द्र और नमूने के नमक फार्म खोलने के प्रयत्न किये जा रहे हैं।

शाला का काम

नमक गवेषणा शाला का मुख्य काम नमक की किस्म सुधारने और घरेलू तथा औद्योगिक इस्तेमाल के लिए नमक का उत्पादन बढ़ाने के तरीके निकालना है। समुद्र और खारे पानी की झीलों से, नमक के अलावा, दूसरे महत्वपूर्ण रासायनिक तत्व भी मिलते हैं। इनसे दूसरी चीजें तैयार करने के बारे में शाला में गवेषणा की जायगी।

शाला का दूसरा महत्वपूर्ण काम नमक की बनी चीजों की किस्म निर्धारित करने के लिए जाँच के की विधि निकालना होगा।

शाला में एक पुस्तकालय, गवेषणा, सूचना सेवा और एक कारखाने की व्यवस्था होगी। शाला की देख रेख में एक नमक फार्म भी चलेगा।

अणुशक्ति के शान्तिकालीन प्रयोग

अणुशक्ति को शान्तिकालीन कार्यों में प्रयुक्त करने की दिशा में इतनी तेजी से प्रगति हो रही है कि उसे देख कर कभी-कभी वे लोग भी चकित रह जाते हैं जो अणु-केन्द्र विखण्डन सम्बन्धी भौतिक विज्ञान के कार्य में संलग्न हैं। एक वर्ष पूर्व इस सम्बन्ध में जो अनेक भविष्यवाणियाँ की गई थीं उनमें से बहुत सी तो आज सच्ची भी हो गई हैं।

उदाहरण के तौर पर, १९५३ में अमेरिकी अणु-शक्ति कमीशन के भूतपूर्व अध्यक्ष गौर्डन डीन ने "रिपोर्ट आन दि एटम" नामक अपनी पुस्तक में बताया था कि सम्भवतः आगामी १० वर्षों में अणु-शक्ति से चलने वाला रेल-इंजिन तैयार हो सकेगा। आज ऐसे इंजिन की डिजाइन तैयार हो चुकी है और ऐसा इंजिन बनाना स्पष्टतः क्रियात्मक समझा जाने लगा है।

अणुशक्ति का दूसरा महत्वपूर्ण उपयोग जिस का सामान्य प्रत्याशित समय से बहुत पहले विकास कर लिया गया है, जहाज के चलाने में अणुशक्ति का प्रयोग है। अमेरिकी पनडुब्बी "नौटिलस" प्रथम जलयान है जिसमें अणुशक्ति से चलने वाला इंजिन लगा है। इसे इस वर्ष के प्रारम्भ में समुद्र में उतारा गया था। 'नौटिलस' के संचालन से जो अनुभव हासिल होगा, वह अन्ततः यात्री-जहाजों में अणुशक्ति के प्रयोग में बहुत उपयोगी सिद्ध होगा।

अणुशक्ति से बिजली

अणुशक्ति से बिजली उत्पन्न करने की दिशा में भी बहुत तेजी से प्रगति हुई। कुछ वर्ष पहले तक भी इतनी चमत्कारपूर्ण प्रगति होने की आशा नहीं थी। अब अमेरिका में शीघ्र ही अणुशक्ति के एक बहुत बड़े बिजलीघर का निर्माण शुरू होने वाला है। वहाँ ६० हजार किलोवाट बिजली उत्पन्न की जायेगी, जो एक लाख की आबादी वाले शहर के लिये काफी होगी। ग्रेट ब्रिटेन में पहले ही से इस प्रकार का एक कारखाना बनाया जा रहा है।

गत वर्ष एक ऐसी आणविक भट्ठी के सम्बन्ध में घोषणा की गई थी जिसमें जितना ईंधन खर्च होता है उससे कहीं अधिक नया ईंधन उत्पन्न होता जाता है। अभी यह भट्ठी परीक्षणावस्था में है और वैज्ञानिकों का विश्वास है कि इसे चार वर्ष अथवा इससे कुछ अधिक समय के बाद ही इस रूप में तैयार किया जा सकेगा कि उसमें जितना ईंधन शुरू में डाला गया होगा उतना ही नया पैदा हो जाये।

आणविक ईंधन

किन्तु अन्ततोगत्वा इसका अभिप्राय यही है कि यूरेनियम के प्रत्येक टुकड़े को आणविक ईंधन के रूप में प्रयुक्त किया जा सकता है। इस समय संसार में यूरेनियम के जिन भण्डारों का पता लग गया है उनसे प्रकट होता है कि आणविक ईंधन की सुरक्षित मात्रा भूमि से प्राप्त होने वाले कोयले, तेल अथवा गैस के रूप में प्राप्त होने वाले ईंधनों से कम से कम २५ गुना अधिक है। इस प्रकार आणविक ईंधन संसार के भावी शक्तिस्रोतों की दृष्टि से सबसे बड़ा साधन है।

अणु के शान्तिकालीन प्रयोगों के लिए सबसे नया तथा चमत्कारपूर्ण आविष्कार आणविक बैटरी का है, जो सीधे ही अणुशक्ति को बिजली में परिणत कर देती है। वैज्ञानिक इस नई बैटरी से बहुत बड़ी-बड़ी आशाएँ लगा रहे हैं। सिद्धान्त के रूप में इसे वैकम-क्लीनर, रेडियो, वस्त्र धोने की मशीनें, बिजली के चूल्हे तथा बिजली से चलने

वाले अन्य यन्त्रों के लिए विद्युत्शक्ति के आत्म-निर्भर साधन के रूप में प्रयुक्त किया जा सकेगा।

रेडियो-आइसोटोप्स

इस समय तक, अणु का सबसे महत्वपूर्ण तथा व्यापक प्रयोग रेडियो-आइसोटोप्स के रूप में हुआ है। ये लोहा, कोबाल्ट अथवा गन्धक जैसे सामान्य पदार्थ ही होते हैं जिनको आणविक भट्ठी में रेडियो-सक्रिय बनाया जाता है और उसके फलस्वरूप उनमें से किरणें निकलती हैं और उनसे उनका पता चल जाता है। यदि किसी वस्तु में मनुष्य, पशु या कीड़े के शरीर में, बढ़ते हुए पौधे में या किसी मशीन की निर्माण-विधि में आइसोटोप्श को प्रविष्ट कर दिया जाये तो इस बात का पता लगाया जा सकता है कि वह कहाँ पहुँच गया है, उसका क्या हुआ और उस का प्रभाव क्या हुआ।

अब तक औषधियों के क्षेत्र में रेडियो-आइसोटोप्स के अत्यन्त चमत्कारपूर्ण परिणाम देखने में आये हैं। निदान के साधनों के रूप में, केन्सर के उपचार तथा निदान के लिए रेडियो-आइसोटोप्स के बहुत से प्रयोग किये जाने लगे हैं। जब इन्हें रसौलियों का पता लगाने के लिए प्रयुक्त किया जाता है तब इतनी कम मात्रा में प्रयुक्त किया जाता है कि उससे शरीर की आन्तरिक प्रक्रियाओं को कोई हानि न पहुँचे। हर प्रकार के आणविक विकिरण से सूक्ष्म कोषों को हानि पहुँच सकती है, किन्तु उसके इस गुण से लाभ उठा कर रोगग्रस्त कोष-समूह को ही नष्ट किया जाता है।

रोग का पता लगाने के लिए सब से उपयोगी रेडियो आइसोटोप्स रेडियो-आयोडीन तथा रेडियो फास्फोरस हैं। केन्सर तथा ल्यूकेमिया के उपचार में रेडियो-फास्फोरस का प्रयोग किया जाता है।

रेडियो-कोबाल्ट बाह्य विकिरण प्राप्त करने के लिए एक्सरे मशीन अथवा रेडियम के समान अत्यन्त महत्वपूर्ण रेडियो-आइसोटोप्स सिद्ध हुए हैं। ये रेडियम से बहुत अधिक सस्ते होते हैं और प्रयोग के लिहाज से एक्सरे की अपेक्षा बहुत सरल भी हैं।

कृषि-क्षेत्र में उपयोगिता

कृषि क्षेत्र में आइसोटोप्स सम्बन्धी अनुसन्धान से किसानों को पता चल गया है कि किस प्रकार रासायनिक खाद का अधिक अच्छा उपयोग लिया जा सकता है। पौधों की खाद में रेडियो-आइसोटोप्स का प्रयोग करके अनुसन्धानकर्ता यह निश्चित करने में समर्थ हो गये हैं कि पौधों की वृद्धि के लिए किस प्रकार खाद डालनी चाहिए, किस समय वह पौधे के लिए अत्यन्त उपयोगी होती है, विविध प्रकार की मिट्टियों के लिए कैसी रासायनिक खाद उत्तम रहती है और पौधे किस प्रकार मिट्टी से रासायनिक खाद प्राप्त करके अपना पोषण करते हैं।

दूसरे परीक्षणों में, रेडियो-सक्रिय कोबाल्ट के विकिरण से जई के ऐसे नमूने तैयार किये गये हैं जिनको रतुआ नहीं लग सकता। इसी प्रकार मक्का की कई किस्में तैयार की गई हैं। इस समय वैज्ञानिक भारतीय मक्का की एक ऐसी किस्म तैयार करने का यत्न कर रहे हैं जिसके पत्तों को कीड़ा न लगे। फसलों को नष्ट करने वाले कीड़ों को मारने के लिए रेडियो-आइसोटोप्स का अनेक प्रकार से प्रयोग किया जा रहा है।

खाद्य-सामग्री को सुरक्षित रखने के कार्य में अणुशक्ति का प्रयोग करने के सम्बन्ध में भी अमेरिका में इस समय परीक्षण हो रहे हैं। वैज्ञानिकों का विश्वास है कि बिना पकाये अथवा बिना डिब्बों में बन्द किये ही खाद्य सामग्री को सुरक्षित रखा जा सकेगा और शीतकारी यन्त्रों की आवश्यकता भी नहीं पड़ेगी।

विविध उपयोग

विविध औद्योगिक प्रक्रियाओं में भी रेडियो-आइसोटोप्स का प्रयोग निरन्तर बढ़ता जा रहा है।

(शेष पृ० ९४ पर)

भारतीय विज्ञान काँग्रेस के शारीरवृत्त शाखा के सभापति का भाषण; १९५४

प्रगतिशील विज्ञान लोकहितकर है। फिलहाल मामूली शारीरवृत्त दूसरे विज्ञानों के साथ सम्बन्ध स्थापन कर नये दृष्टि मार्ग से विभिन्न समस्याओं का समाधान करता है। यह मानव की प्रचेष्टाओं पर बहुत प्रभाव उत्पादन कर सकता है। शारीरवृत्त शास्त्र मानव देह की स्वस्थ व बीमार दोनों अवस्थाओं में उपकारी है। यह हमें कई क्रियाओं के सिद्धान्त पर आलोकपात करता है। जो कोई योजना मानव जीवन के सम्पर्क में आती है, उन सभी में इस विज्ञान के सिद्धान्त बहुत सी आवश्यक बातें बताते हैं।

चिकित्सा-शास्त्र के अध्ययन में शारीरवृत्त का स्थान काफी महत्वपूर्ण है। अफसोस यह है कि चिकित्सा-शास्त्र की कई प्रणालियाँ इसके नये सिद्धांत के साथ परिचित नहीं हैं। शारीरवृत्त का ज्ञान न होने से चिकित्सा शास्त्र की अग्रगति बहुत जल्द रुद्ध हो जायगी। अपने देश के चिकित्सा शास्त्रों का हमारे ऊपर उत्तरदायित्व बहुत भारी है। इसकी अन्तर्निहित शक्ति का पूर्ण विकास हमें करना चाहिये। इसे नये विज्ञान सम्मत दृष्टि मार्ग से संजीवित करना है और नये विज्ञान की खोजों से इस विज्ञान को औरों के समपर्याय में लाना चाहिये। हमारे देश में पैदा होने वाली दवाओं के भेषजतत्व के बारे में सम्यक ज्ञान होना चाहिये। ये गवेषणाएँ चिकित्सक रासायनिक व शारीरवृत्त-विदों की पूर्ण व पारस्परिक सहयोगिता से मानवज्ञान को अच्छी तरह समृद्ध कर सकती हैं। जब तक भेषजों की शरीर पर प्रतिक्रियाओं का पूर्ण ज्ञान नहीं प्राप्त होता, इन भेषजों का चिकित्सा के कार्य में प्रयोग नहीं किया जा सकता। इसलिये जीवनधारण की प्रक्रिया कोष ज्ञान, बिपकीय, टिसू, कोष व एंजाइम का ज्ञान आवश्यक है। प्राण-रसायन, प्राण-पदार्थ विद्या व कोष-रसायन के ज्ञान का प्रयोग बहुत लाभदायक सिद्ध होता है। मसलन कोई-कोई भेषज कोष की सतह पर काम करते हैं, और सब कोष के अन्दर प्रवेश कर। कोई कोई भेषज ऐसी प्रक्रियाओं पर काम करती हैं जो (Exergonic) हैं, और कोई-कोई (Endergonic) हैं। कोष तत्व की विभिन्न शाखाओं का समष्टीकृतज्ञान भेषज के काम करने की प्रक्रिया समझने के लिये अत्यावश्यक है।

नीरोग मनुष्य के विषय में ज्ञान लाभ शारीरवृत्त से होता है। स्वास्थ्य व कर्मक्षमता की पुष्टि के साथ निकट सम्बन्ध है। पुष्टि का अभाव जाति पर बहुत बड़ा भार-सा है। किसी भी उपाय से इसे दूर करना है। यह अभाव प्रबल (acute) या साधारण (Subacute) हो सकता है। प्रबल पुष्टि हीनता के लक्षण निर्णय करना चाहिये, नहीं तो विपरीत परिणाम हो सकता है। जब पुष्टि का थोड़ा सा अभाव होता है, उसके लक्षणों को पहचानना बहुत मुश्किल है। उसमें से बहुत से लक्षण ऐसे हैं कि वे स्वस्थ मानव के से लगते हैं। इसलिये इसका निरीक्षण विचार बहुत होशियारी से करना है। (calorie व प्रोटीन की थोड़ी कमती पर हमें नजर रखना है, क्योंकि इसके मूल कारण को दूर करना बहुत कठिन है। हमारे देश में प्रोटीन वाले खाद्य का अभाव बहुत अधिक है।

जब भोजन अपरिमित होता है, शरीर प्रक्रिया ऐसे बदल बदल जाती है कि (calorie) की थोड़ी कमती पूरी हो जाती है। जिन व्यवहारगत वैशिष्टों से इस (calorie) के अभाव की पूर्ति होती है, वे

जाति के लिये बहुत महत्व रखते हैं। जब (calorie) का अभाव थोड़ा होता है, हमेशा यह देख जाता है कि काम करने की इच्छा व अनुप्रेरणा कम हो जाती है और लोग शारीरिक व मानसिक, हर किस्म के कामों से दूर भागते हैं। इससे नतीजा यह होता है कि खाद्य उत्पादन कम होगा, जिससे और भी पुष्टि का अभाव होगा—फलतः विषमचक्र का उद्भव होना स्वाभाविक है। पुष्टि के अभाव से रोग प्रतिरोध करने की शक्ति और आरोग्य लाभ करने की शक्ति का अभाव होता है। यथेष्ट ज्ञान के अभाव से भारत के हरेक किस्म की जनता के लिये कितने (calorie) की जरूरत है, इसका निर्णय हो नहीं सकता। हमें उचित है कि (काम करने की शक्ति-रहित) आम जनता से, न लेकर जिन लोगों की काम करने की शक्ति ज्यादा है, उनके लिये जितने (colorie) की जरूरत है, उतनी (calorie) आम जनता को भी देनी चाहिये।

कई प्रदेशों में खाद्य में प्रोटीन का हिस्सा कम है। थोड़ा प्रोटीन जो हमारे देश में पैदा होते हैं वह भी आम जनता की क्रय शक्ति के अभाव से उसे नहीं मिलता है—नतीजा यह है कि हर आदमी को प्रोटीन का अभाव अधिक हानिकारक नहीं है, पर किसी-किसी में यह अभाव बहुत प्रबल होता है, जैसे कि बचपन में, गर्भवती स्त्रियों में और उन औरतों में जो बच्चों को दूध पिलाती हैं; यही कारण है कि इन लोगों में मृत्यु-संख्या ज्यादा है। इनके लिये विशेष होशियारी की जरूरत है।

अगर हमें पुष्टि की योजना करनी है तो पुष्टि-विद के ज्ञान को आम जनता के खाद्य-अभ्यास, कृषि और अर्थनैतिक अवस्थाओं के साथ पूरी सहानुभूति रहनी चाहिये। योजना तभी अच्छी होगी जब जनता की तन्दुरुस्ती व कर्मदक्षता पूरी होगी और जिस खाद्य की योजना की गई है, वे आम जनता की पहुँच के अन्दर हों और उनकी खर्च से मेल भी रखते हैं।

अन्न ही हमारा प्रधान खाद्य है। चावल को छोड़कर और सभी अन्न भारत में काफी पैदा होते हैं। इससे जो जनता चावल पर निर्भर करती है, और जनसंख्या भी ज्यादा है, वहाँ पुष्टि की समस्या बहुत गहरी है। खाद्य का घाटा मिटाने के लिये चावल के बदले में दूसरे अन्न का थोड़ा उपयोग करना जरूरी है। और यह भी फिलहाल शहर में हो सकता है। पर इस बात का ख्याल रखना चाहिये कि चावल कोई खराब चीज नहीं, क्योंकि चावल का प्रोटीन जल्द पच जाता है; उसका मनुष्य के लिये जैव मूल्य (Biological value) ३.६ है। उन्नत कृषि-ज्ञान से अन्न की ऊपज बहुत बढ़ाई जा सकती है। हमें सोचना है कि किन तरीकों से चावल की हानि होती है जैसे कि धान से चावल बनाते समय, चावल गुदाम में मौजूद करते समय और अन्न पकाते समय। मशीन में चावल की बहुत पालीश करने से प्रायः ७% उम्दा पुष्टिकर चीज निकल जाती है। सीझा चावल बनाने पर पुष्टिकर चीज की रक्षा होती है और चावल के कण भी थोड़े निकलते हैं। चावल धोने से और माड़ फेंकने से बहुत पुष्टिकर चीज निकल जाती है। जब आम जनता पुष्टि के बारे में सचेत होगी, तब ये सब बर-बादी बन्द होगी।

और थोड़ा प्रोटीन खाने से अन्न की पुष्टिकरी शक्ति बहुत बढ़ जायगी। इसलिये दाल व सेम आदि चीजों की खेती करनी है। प्राणी एक सजीव मशीन सा है जो प्राण शक्ति से ऐसी चीजों को जो कि लोगों के खाने के लायक नहीं, उसे उम्दा चीजों में बदलते हैं जैसे कि दूध, अंडा, मछली, मास आदि। खाद्य की अन्तर्निहित शक्ति कैसे इन्हें उम्दा चीजों में बदलती है, यह विचार करने से खाद्य की ऊपज के सबसे सरल तरीकों का पता चल जायगा जितने खाद्य प्राणी खा लेते हैं, उसका एक तिहाई हिस्सा दूध के रूप में हमें मिल सकता है। बत्तख व मुर्गी के अंडे के खाद्य का १२% मिल जाता है। जानवर या पक्षी के वृद्धि काल में उनके खाद्य का सबसे ज्यादा हिस्सा मांस के रूप में मिलता है।

प्रजनन की शक्ति बढ़ाने से जैसे कि साल में एक बार से ज्यादा बच्चा दे सकती है तो माँस भी ज्यादा मिलेगा।

खाद्य की समस्या के साथ जनसंख्या की वृद्धि की समस्या का विचार करना है। जिस देश में खाद्य की ऊपज कम है और जनसंख्या भी ज्यादा है, उसमें जनसंख्या अगर और भी बढ़ जाय तो, यह बड़ा खतरनाक होगा। इस समस्या का हल जन्म-नियंत्रण से हो सकता है, पर विज्ञान संमत तरीका होना चाहिये। लेकिन इससे ज्यादा जरूरी तो यह है कि कृषि व शिल्प का प्रसार बढ़ाया जाय। भारत में जनवृद्धि का एक कारण यह है कि मृत्यु संख्या कम हो गई है। जिससे जनता में काम करने के लायक आदमी की संख्या बढ़ जायगी और ऊपज भी बढ़ेगी।

जाति की इस संभाव्य कर्म शक्ति का पूर्ण उपयोग लेना है तो शारीर वृत्त के ज्ञान का पूरा इस्तेमाल करना चाहिये। शारीरवृत्त का ज्ञान उद्योग धंधे के प्रसार के लिये उपयोगी है और खतरा से बचाता है। उपज में जो बाधा है, उसे दूर करने के लिये शारीरवृत्त ने बताया है कि कारखानानों में किन-किन दशाओं में काम करने से कर्म शक्ति का सबसे पूर्ण विकास होता है और भी किन तरीकों से श्रमिक लोग अच्छी जिंदगी बसर कर सकते हैं। फैक्टरी के बाहर वे कैसे रहते हैं इसका भी असर फैक्टरी के अन्दर के काम पर काफी पड़ता है।

काम करने की अन्तर्निहित शक्ति का पूर्ण विकास तभी हो सकता है जब शारीर वृत्त के ज्ञान को काम में लगाने से सहन शीलता, शक्ति व प्रयोग नैपुण्य बढ़ाया जाय। आबहवा का असर जैसे कि ताप, हवा आदि से बचकर आराम करना हो तो फिर शारीरवृत्त का ज्ञान ही कर सकता है। हम कैसी पोशाक पहनेंगे, कैसे मकानों में रहते हैं, किन जानवरों से काम लेते हैं, इन सबों की उन्नति शारीर वृत्त के ज्ञान से होगी।

बहुत तेज चलने वाले हवाई जहाज पर चढ़ते समय हमारी देह जो सख्त अस्वाभाविक परिस्थिति में आ पड़े उसे दूर करने का तरीका शारीर वृत्त की गवेषणा से सम्भव हुआ है। हम ऐसे देखते हैं कि मानव समाज की बहुत कर्म प्रचेष्टायें शारीर वृत्त की देन हैं। इसलिये यह मालूम होता है कि शारीर वृत्त की शिक्षा पर नजर देनी चाहिये।

हर देश में विज्ञान का एक महान् आदर्श है। भारत में विज्ञान का आदर्श बहुत बरसों तक यही रहेगा कि कैसे अपने देश का अज्ञान, भूख, बीमारी, पुष्टिहीनता से बचा सकते और जनता की कर्मदक्षता व सम्पद, स्वास्थ्य व जीवन का आनन्द लाभ करने का तरीका बता सकते हैं। भारत में शारीर वृत्त ने इसी को अपना आदर्श मान लिया है।

अणुशक्ति के शान्तिकालीन प्रयोग

(पृष्ठ ९१ का शेष)

इनकी सहायता से इंजिन की घिसाई के सम्बन्ध में विविध प्रकार के तेलों की उपयोगिता का पता लगाया जा सकता है; यह मालूम किया जा सकता है कि किस प्रकार क्षय होता है; उस प्रक्रिया का अध्ययन किया जा सकता है जिसके द्वारा कोयले तथा तेल से कृत्रिम पेट्रोलियम बनाया जा सकता है; और कागज, रबड़, प्लास्टिक और पतली धातु की मोटाई मालूम की जा सकती है।

वैसे तो अणुशक्ति के सम्बन्ध में किसी प्रकार की भविष्यवाणी करना बहुत कठिन प्रतीत होता है, किन्तु गत वर्षों में अणुशक्ति के शान्तकालीन प्रयोगों के सम्बन्ध में जो चमत्कार पूर्ण प्रगतियाँ हुई हैं उन को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि भविष्य में अणुशक्ति से मानव जाति को अकल्पनीय और अमित लाभ पहुँच सकते हैं।

छतरी से उतरने वाले डाक्टर

आसाम में सफल कार्य

(लेखकः—स्क्वाड्रन लीडर सी० ई० जे० एलेक्जेंडर)

युद्ध में एक विशिष्ट आक्रांता सेना के रूप में छतरी सेना का विकास तथा उपयोग करना रूस की सूझ थी और उसी ने सबसे पहले इस सूझ को क्रियात्मक रूप दिया। समय के साथ-साथ इसका और विकास होता गया और युद्ध भूमि में सेना की देख भाल और चिकित्सा के लिए छतरी से उतरने वाले डाक्टरी दस्ते बनाए गए। भारतीय सशस्त्र सेना इस बात में अन्य देशों से पिछड़ी नहीं रही। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जल्दी ही शाही वायु सेना ने छतरी से उतरने वाला डाक्टरी दल बनाया और १९५१ में भारतीय वायु सेना में भी एक ऐसा दल तैयार कर लिया गया। उसके बाद अब तक और दल भी बनाए जा चुके हैं।

भारतीय वायु सेना के छतरी से उतरने वाले डाक्टरी दल का मुख्य कार्य दुर्गम क्षेत्रों में हवाई दुर्घटनाओं के शिकार हुए व्यक्तियों को डाक्टरी सहायता पहुँचाना है। प्रत्येक दल में वायु सेना का एक डाक्टरी अफसर और चार सहायक होते हैं। अन्य आवश्यक सामग्री के अतिरिक्त उनके पास जो डाक्टरी साज सामान होता है वह कुछ दिनों तक के लिए काफी होता है। आवश्यक दवाएँ, मरहम पट्टी का सामान, खून देने के औजार, चीर फाड़ के औजार आदि जरूरी चीजें उनके पास रहती हैं। दल के सभी सदस्य स्वयं सेवक होते हैं। यह एक युद्ध कालीन सिद्धान्त है कि कठिन कार्य सबसे अच्छी तरह तभी पूरे होते हैं जब करने वाले पर कोई दबाव न हो और वह स्वेच्छा से कर रहा हो। इन स्वयं सेवकों का अच्छी तरह डाक्टरी परीक्षण कर लिया जाता है और यह देख लिया जाता है कि वे स्वास्थ्य सम्बन्धी निर्धारित परीक्षाओं में ठीक उतरते या नहीं, तब इन्हें आवश्यक प्रशिक्षण दिया जाता है। डकोटा विमान सात बार उतरने, जिसमें एक बार रात को भी उतारा जाता है, और पूरी तरह अन्य प्रशिक्षण लेने के बाद शिक्षार्थी छतरी की सहायता से उतरने में पटु हो जाता है। डाक्टरी अफसरों को चीर फाड़, खून देने आदि का व्यावहारिक प्रशिक्षण दिया जाता है।

भारतीय वायु सेना के छतरी से उतरने वाले डाक्टरी दल का सब से पहला काम आसाम में एक विमान दुर्घटना के आहतों को डाक्टरी सहायता पहुँचाना था। दूसरी बार भी आसाम में ही सहायता पहुँचानी पड़ी, जब कि स्थलीय पर्यवेक्षण कम्पनी का एक इंजीनियर अफसर आदिम जातियों के एक तीर से आहत हो गया था। इस मामले में सहायता के लिए छतरी से उतरने वाला जो डाक्टरी दल पहुँचा उसमें मैं भी था।

पिछले साल वह पर्यवेक्षण दल जब आसाम की अभोर पहाड़ियों से गुजर रहा था तो उसका इंजीनियर अफसर पीठ पर एक तीर लगने से घायल हो गया। वह स्थान ऐसा था कि वहाँ से डाक्टरी सहायता के लिए निकटतम स्थान पर पहुँचने में भी कम से कम १४ दिन लगते थे। अफसर ने होश खोने से पहले ही सुबन्सारी इलाके के पोलिटिकल अफसर के पास बेतार के तार से खबर पहुँचवा

दी। चार दिन बाद सूचना वायु सेना के अधिकारियों के पास पहुँची और मेरे दल को सहायता के लिए जाने का आदेश मिला। हमारा दल यथाशीघ्र आसाम के एक हवाई अड्डे पर पहुँच गया।

आवश्यकता इस बात की थी कि आहत अफसर के पास जल्दी से जल्दी पहुँचें। पहली उड़ान में धुंध और बदली के कारण वापस लौट आना पड़ा। उसी दिन दूसरा प्रयत्न भी असफल रहा। अगले दिन मौसम साफ था। उड़ान में हमने उस पर्यवेक्षण दल के खेमे का पता लगा लिया लेकिन वहाँ ३०० से ८०० फीट तक की ऊँचाई पर बादल छाया हुआ था। हमारा विमान एक घण्टे तक चक्कर काटता रहा लेकिन वह बादल साफ नहीं हुआ। उधर, नीचे से पर्यवेक्षण दल के लोग बे तार के तार द्वारा हमें बता रहे थे कि रोगी की दशा बहुत ही चिन्ताजनक होती जा रही है। बादल के कारण उतरना असंभव था, इसलिए हमने लौटने का निश्चय किया। कुछ मील जाकर हम फिर वापस लौटे लेकिन उस समय बादल और भी घना हो गया था। दोपहर को फिर प्रयत्न किया गया। इस बार मौसम साफ था।

पहले हमने सामग्री की एक पेटी छतरी के सहारे नीचे फेंकी। उसके बाद एक व्यक्ति कूदा। विमान आगे बढ़ जाने से पता नहीं लग सका कि वह व्यक्ति साफ जगह पर उतरा या नहीं। अब मेरी बारी थी। मैं कूद पड़ा लेकिन मैंने देखा कि मैं बाँसों के एक जंगल में उतर रहा था। बहुत प्रयत्न किया किन्तु बन न सका और वहीं जा गिरा। मुझे स्वयं आश्चर्य हुआ कि मेरे शरीर पर एक खरोंच भी न आयी। एक हृष्ट पुष्ट बंदूक धारी जल्दी ही मेरे पास आ पहुँचा और मेरा हाथ पकड़ कर मुझे उस दुर्गम और कठिन स्थान से बाहर निकाल ले गया। सभी लोग ठीक तरह से उतर आए थे।

रोगी की हालत काफी खराब थी। तीर उसके फेफड़े को छेदती हुई ८वीं और ९वीं पसली के बीच जा धँसा था। वह हिल डुल नहीं सकता था और उसे असह्य पीड़ा हो रही थी। उसे बुखार भी था। बहुत समझाने बुझाने के बाद उसने दूध लिया। डाक्टरी सहायकों ने सेवा में दिन-रात एक कर दिया। इलाका तरह तरह की मक्खियों और कीड़ों से भरा था। वर्षा भी यदा कदा अपना भयंकर रूप दिखा जाती थी।

बेतार के तार द्वारा रोगी के सम्बन्ध में समाचार भेजा जाता रहा और आवश्यक सामग्री मँगाई जाती रही। इलाज चलता रहा। कभी कभी तो रोगी की हालत से हमें निराशा होने लगती थी। १० दिन के बाद उसे उठाकर किसी दूसरी अच्छी जगह ले जाने की व्यवस्था की गयी। दुभाषिये के जरिए गाँव वालों की सहायता ली गई। रोगी को कपड़े के स्ट्रेचर पर ले जाया गया। रास्ते की कठिनाइयों को पार करते हुए, थके हुए, हम लोग चलते गए। रास्ता पहाड़ी, संकरा, कँटीला और खतरनाक था। हम ऐसी जगह की तलाश में थे जहाँ विमान उतर सके। चौदह दिन की खोज के बाद ऐसा स्थान मिला जहाँ छोटे विमान के उतरने का स्थान बनाया जा सकता था।

हम सब लोगों ने स्थानीय लोगों की सहायता लेकर विमान उतरने का स्थान बनाना शुरू कर दिया। उधर रोगी की हालत भी सुधर रही थी और उसका हौसला बढ़ता जा रहा था। उतरने के बीस दिन बाद हम लोगों को इस कठिन क्षेत्र से छुटकारा मिला। रोगी को एक सैन्य अस्पताल में दाखिल कर दिया और कुछ दिन बाद वह बिल्कुल ठीक हो गया।

इस प्रकार उस दुर्गम और कठिन पहाड़ी तथा जंगली इलाके में हमारा कार्य सफल हुआ और एक जान बचा कर भारतीय वायु सेना के छतरी से उतरने वाले डाक्टरी दल ने अपनी उपयोगिता सिद्ध कर दी।

सरल विज्ञान ग्रंथावली

लेखक—जगपति चतुर्वेदी, सहा० सम्पा०, 'विज्ञान'

सरल विज्ञान ग्रन्थावली हिन्दी में लोकप्रिय वैज्ञानिक साहित्य सरल रूप में प्रस्तुत करने का एक नवीन तथा अभूतपूर्व प्रयास है। सभी पुस्तकें केवल एक लेखक द्वारा लिखी हुई हैं। लगभग १५० या २०० पृष्ठों तथा बहुसंख्यक चित्रों के साथ प्रत्येक का मूल्य २) है।

भौतिक विज्ञान

बिजली की लीला—बिजली के वैज्ञानिक मर्म, तार टेलीफोन, विद्युत्प्रकाश, एक्सरे रेडियो आदि की कहानी।

परमाणु के चमत्कार—परमाणु सम्बन्धी वैज्ञानिक खोजों तथा परमाणु बम, उद्जन बम आदि के मर्म की कहानी।

भूगर्भ वि०, पुरा-जीवविज्ञान, पुरा-वनस्पति विज्ञान

विलुप्त जन्तु—प्रस्तरावशेषों के आधार पर पचास करोड़ वर्षों तक पुराने जन्तुओं के वंश लोप होने की कहानी।

भूगर्भ विज्ञान—धरती के निर्माण तथा अंतः और वाह्य अंगों के रूप परिवर्तन की विलक्षण कहानी।

विलुप्त वनस्पति—प्राचीन काल के प्रस्तरावशेषों के आधार पर पचास कोटि वर्षों तक पुराने वनस्पति वंशों की कहानी।

कोयला की कहानी—पत्थर कोयले की उत्पत्ति तथा वैज्ञानिक शोध और उपयोग की कहानी।

ज्वालामुखी—धरती के आंतरिक भाग में ज्वाला उत्पन्न होने के कारण तथा संसार के ज्वालामुखियों की कहानी।

रसायन

तत्वों की खोज में—रासायनिक तत्वों के अनुसंधान तथा उनके अन्वेषक वैज्ञानिकों की मनोरंजक कहानी।

साधारण

वैज्ञानिक आविष्कार—भाग १, २—पुरानी तथा नई वैज्ञानिक खोजों की विशद कहानियाँ

आविष्कारकों की कहानी—युगान्तरकारी आविष्कारकों तथा वैज्ञानिकों की कथा।

वनस्पति विज्ञान

वनस्पति की कहानी—वनस्पतियों के जन्म, वृद्धि, क्रियाकलाप, तथा भेद प्रभेदों की कहानी।

चिकित्सा विज्ञान, कीटाणु विज्ञान

जीने के लिए—रोगों और कीटाणुओं का मर्म ज्ञात करने वाले वैज्ञानिकों की मार्मिक कहानी।

कीटाणुओं की कहानी—रोग उत्पन्न करने वाले तथा अन्य सूक्ष्मदर्शकीय कीटाणुओं और परम कीटाणुओं की कहानी।

पेनिसिलिन की कहानी—रसायन चिकित्सा तथा पेनिसिलिन के आविष्कार, की कहानी

शल्य विज्ञान की कहानी—शरीर में चीरफाड़ करने के प्राचीन तथा नवीन ज्ञान की कहानी।

जीव-जन्तु विज्ञान

समुद्र जीव जन्तु—समुद्र के अंदर रहने वाले अद्भुत रंग-रूपों के जंतुओं का वर्णन।

अद्भुत जन्तु—अद्भुत रङ्ग रूप के जन्तुओं की कहानी।

विलक्षण जन्तु—विचित्र आकार प्रकार के जन्तुओं का वर्णन।

पक्षी ग्रंथावली—पक्षियों के रङ्ग रूप, जीवन-क्रम, निवास सन्तानोत्पादन, स्वभाव भेद तथा पहचान का वर्णन

१—शिकारी पक्षी
२—जलचर पक्षी
३—वन वाटिका के पक्षी
४—वन उपवन के पक्षी
५—उथले जल के पक्षी

विज्ञान परिषद्, प्रयाग

Reg. NO. 372

विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

परिषद् का उद्देश्य

१—१६७० वि० या १६१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद् का संगठन

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार सभ्यगण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उप-सभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमन्त्री, दो मन्त्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्य को ६) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ १०० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिए वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशन में उपस्थित रहने का तथा अपना मत देने का, उनके चुनाव पश्चात् प्रकाशित, परिषद् की सब पुस्तकों, पत्रों, तथा विवरणों इत्यादि को बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य वृन्द समझे जायेंगे।

प्रधान संपादक—डा० *हीरालाल निगम*
सहायक संपादक—*श्री जगपति चतुर्वेदी*

आर्ट प्रिन्टर्स, जीरो रोड, इलाहाबाद—३ प्रकाशक—विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद

विज्ञान

जुलाई १९५४
कर्क २०११

भाग ७९
अंक ४

वार्षिक मूल्य
चार रुपए

प्रति अंक
छः आने

सरल विज्ञान ग्रंथावली

लेखक—जगपति चतुर्वेदी, सहा० सम्पा०, 'विज्ञान'

सरल विज्ञान ग्रन्थावली हिन्दी में लोकप्रिय वैज्ञानिक साहित्य सरल रूप में प्रस्तुत करने का एक नवीन तथा अभूतपूर्व प्रयास है। सभी पुस्तकें केवल एक लेखक द्वारा लिखी हुई हैं। लगभग १५० या २०० पृष्ठों तथा बहुसंख्यक चित्रों के साथ प्रत्येक का मूल्य २) है।

भौतिक विज्ञान

बिजली की लीला—बिजली के वैज्ञानिक मर्म, तार टेलीफोन, विद्युत्प्रकाश, एक्सरे रेडियो आदि की कहानी।

परमाणु के चमत्कार—परमाणु सम्बन्धी वैज्ञानिक खोजों तथा परमाणु बम, उदजन बम आदि के मर्म की कहानी।

भूगर्भ वि०, पुरा-जीवविज्ञान, पुरा-वनस्पति विज्ञान

विलुप्त जन्तु—प्रस्तरावशेषों के आधार पर पचास करोड़ वर्षों तक पुराने जन्तुओं के वंश लोप होने की कहानी।

भूगर्भ विज्ञान—धरती के निर्माण तथा अंतः और वाह्य अंगों के रूप परिवर्तन की विलक्षण कहानी।

विलुप्त वनस्पति—प्राचीन काल के प्रस्तरावशेषों के आधार पर पचास कोटि वर्षों तक पुराने वनस्पति वंशों की कहानी।

कोयले की कहानी—पत्थर कोयले की उत्पत्ति तथा वैज्ञानिक शोध और उपयोग की कहानी।

ज्वालामुखी—धरती के आंतरिक भाग में ज्वाला उत्पन्न होने के कारण तथा संसार के ज्वालामुखियों की कहानी।

रसायन

तत्वों की खोज में—रासायनिक तत्वों के अनुसंधान तथा उनके अन्वेषक वैज्ञानिकों की मनोरंजक कहानी।

साधारण

वैज्ञानिक आविष्कार—भाग १, २—पुरानी तथा नई वैज्ञानिक खोजों की विशद कहानियाँ।

आविष्कारकों की कहानी—युगान्तरकारी आविष्कारकों तथा वैज्ञानिकों की कथा।

वनस्पति विज्ञान

वनस्पति की कहानी—वनस्पति के जन्म, वृद्धि, क्रियाकलाप, तथा भेद प्रभेदों की कहानी।

चिकित्सा विज्ञान, कीटाणु विज्ञान

जीने के लिए—रोगों और कीटाणुओं का मर्म ज्ञात करने वाले वैज्ञानिकों की मार्मिक कहानी।

कीटाणुओं की कहानी—रोग उत्पन्न करने वाले तथा अन्य सूक्ष्मदर्शकीय कीटाणुओं और परम कीटाणुओं की कहानी।

पेनिसिलिन की कहानी—रसायन चिकित्सा तथा पेनिसिलिन के आविष्कार, की कहानी।

शल्य विज्ञान की कहानी—शरीर में चीरफाड़ करने के प्राचीन तथा नवीन ज्ञान की कहानी।

जीव-जन्तु विज्ञान

समुद्री जीव-जन्तु—समुद्र के अन्दर रहने वाले अद्भुत रंग-रूपों के जंतुओं का वर्णन।

अद्भुत जन्तु—अद्भुत रङ्ग रूप के जन्तुओं की कहानी।

विलक्षण जन्तु—विचित्र आकार प्रकार के जन्तुओं का वर्णन।

पक्षी ग्रन्थावली—पक्षियों के रङ्ग रूप, जीवन-क्रम, निवास सन्तानोत्पादन, स्वभाव भेद तथा पहचान का वर्णन।

१—शिकारी पक्षी
२—जलचर पक्षी
३—वन वाटिका के पक्षी
४—वन उपवन के पक्षी
५—उथले जल के पक्षी

विज्ञान परिषद्, प्रयाग

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्तिविज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० ।३।५।

भाग ७६ | कर्क २०११; जुलाई १९५४ | संख्या ४

पेनिसिलिन की कहानी

डा० राम दास तिवारी, डी० एस-सी०

पेनिसिलिन एक औषधि है जो इस दृष्टि से अद्वितीय है कि यह मानव-शरीर द्वारा इतनी मात्रा में ग्रहण की जा सकती है जितनी इतने ही प्रभाव के किसी अन्य रासायनिक पदार्थों की अवस्था में घातक हो सकती है। मनुष्य के लिए अनिष्टकर, सर्वाधिक घातक कीटाणुओं में से कुछ का विनाश एवं वृद्धि अवरुद्ध करने का गुण इसमें होता है। इसका महत्व इस तथ्य से प्रकट हो सकता है कि जहाँ १९१४-१८ के विश्व व्यापी महायुद्ध में युद्धगत आहतों में से आठ प्रतिशत की मृत्यु हुई, वहाँ पिछले महायुद्ध में यह संख्या ४ प्रतिशत से भी ऊपर नहीं गई। इस संख्या अपकर्ष का कारण इस नवीन औषधि पेनिसिलिन की सुलभता थी। इससे पूर्ववर्ती महायुद्ध के समय चिकित्सक को जहाँ विकृत व्रण (सेप्टिक वुन्ड्स) असहाय और किंकर्तव्यविमूढ़ रखते, वहाँ आधुनिक युद्ध में मोर्चे के चिकित्सक को पेनिसिलिन सुलभ थी जिससे रोगी की उचित सेवा होती, और वह स्वस्थता प्राप्त कर कार्यरत हो सकता।

पेनिसिलिन की कहानी में तीन ऐतिहासिक घटनाएँ हैं, प्रथम सन् १९२९ ई० में फ्लेमिंग द्वारा इसका अन्वेषण था, द्वितीय सन् १९३२ ई० में रायस्ट्रिक द्वारा इसके रासायनिक गुणों पर प्रकाश डालना था, और तृतीय सन् १९४० में फ्लोरी द्वारा इसकी रोग-निवारक महत्ता की अत्यन्त उत्तेजक घोषणा थी। यह कौतूहल की बात है कि पेनिसिलिन के अन्वेषण में, जो अत्यन्त स्तब्धकारी तथा साथ ही विशेष महत्वपूर्ण भी है, अनेक स्थितियों में सौभाग्य ने बड़ा महान स्थान प्राप्त किया। इस प्रकार का यह केवल एकाकी उदाहरण नहीं है। वैज्ञानिक गवेषणा का इतिहास ऐसे उदाहरणों से ओत-प्रोत है कि बिल्कुल असाधारण तथा अचिन्त्य दिशा में विस्मयजनक प्रगति की जा सकती है।

पेनिसिलिन की कहानी सन् १९२९ ई० में लन्दन के सेन्ट मेरी चिकित्सालय की कीटाणु वैज्ञानिक प्रयोगशाला में प्रो० फ्लेमिंग से प्रारम्भ होती है। वह एक विशेष प्रकार के कीटाणु का कृत्रिम रूप से पालन कर रहे थे। इस स्थिति पर यह जान लेना आवश्यक है कि इनका अध्ययन करने के लिए कीटाणु-वैज्ञानिक को उन्हें ऐसे उपयुक्त आहार पर, जिसे माध्यम कहते हैं, तथा समुचित परिस्थिति में पोषित करना पड़ता है कि वे संख्या-वृद्धि कर उपनिवेश सृजित कर सकें। अगर (एक समुद्री वनस्पति से उत्पन्न क्रिया रस) एक ऐसा पदार्थ है जिनमें वे भली-भाँति उत्पन्न होते हैं। एक उल्लेखनीय आवश्यक बात यह है कि कीटाणु-वैज्ञानिक को इसकी सावधानी रखनी पड़ती है कि पोषित किए जाने वाले अभीप्सित कीटाणु के अतिरिक्त किसी भी अन्य जीवाणु से वह कृत्रिम पोषित उपनिवेश संपर्क-भ्रष्ट न होने पावे। प्रो० फ्लेमिंग एक विशेष प्रकार के कीटाणु-दल को अगर में कृत्रिम रूप से पोषित कर रहे थे और उन्होंने देखा कि उनका एक अगर-घोल भ्रष्ट हो गया है। उनको साधारणतः सावधानी से रखने पर भी कुछ अन्य अनभीप्सित सूक्ष्मदर्शकीय जन्तु ने उनके माध्यम को संपर्कभ्रष्ट कर दिया है और अगर-घोल के तल पर एक सूक्ष्म नील-हरित फंगी उत्पन्न हुआ दिखाई पड़ता है। यदि फ्लेमिंग सरीखा असाधारण प्रकार का सतर्क तथा अत्यन्त दीक्षित द्रष्टा न होता तो यह प्रयोग निष्फल घोषित किया जाकर कीटाणु-पोषणपात्र तुरन्त ही फेंक दिया गया होता, किन्तु इस पोषणपात्र का ध्यान पूर्वक अध्ययन करने से एक विचित्रता व्यक्त हुई जो किसी साधारण प्रयोगकर्त्ता की दृष्टि को धोखा दे जाती। कीटाणु के जिस विशेष प्रकार का उपनिवेश वे पोषित कर रहे थे, वह फंगी के उत्पत्ति-स्थान के चहुधा लुप्त ह गई थी। स्पष्टतया यह एक ऐसा उदाहरण था जिसमें एक विशेष कीटाणु की विद्यमानता ने दूसरे प्रकार के सूक्ष्म दर्शकीय जन्तु की वृद्धि का अवरोध किया था। पारिभाषिक भाषा में यह कीटाणवीय-अवरोध कहा जा सकता है। पोषणपात्र की ध्यानपूर्वक परीक्षा, और उल्लिखित फंगी के संज्ञा-ज्ञान से उसका वर्गीकरण पेनिसिलियम नोटेटम वर्ग में किया गया। यह भी देखा गया कि फंगी ने पोषण-पदार्थ में एक रासायनिक पदार्थ निःसृत किया जो कतिपय रोगजनक कीटाणुओं की वृद्धि का अवरोधक था। कीटाणु की मृत्यु का कारण यह फंगी नहीं था, प्रत्युत फंगी द्वारा निःसृत रासायनिक तत्व था, जिसे प्रोफेसर फ्लेमिंग ने 'पेनिसिलिन' नाम से संबोधित किया।

बाद में यह पता चला कि यद्यपि फंगी, पेनिसिलियम नोटेटम, द्वारा निःसृत पदार्थ पेनिसिलिन, अनेक प्रकार के कीटाणुओं को, और विशेष कर व्रण-विकृति के रोगोत्पादकों को, विनाश करने में समर्थ था, यह जीव के शरीर के लिए अनिष्टकर नहीं था। इस प्रकार यह पदार्थ परोपजीवी-हंता तो था किन्तु जीवहंता नहीं था। यह ऐसी अवस्था थी जो इसके रासायनिक चिकित्सा के साधन रूप में उपयुक्त होने के सर्वथा ही अनुकूल थी, क्योंकि इसके पूर्व के ज्ञात पदार्थों में से अधिकांशतः ऐसे थे जो कीटाणु-द्रोही सिद्ध होते तो साथ ही शरीर के तत्वों के द्रोही भी प्रकट होते तथापि इस अवसर पर इस सौभाग्य-वशात् अन्वेषित औषधि का महत्व पूर्णतया अनुभव नहीं किया जा सका और पेनिसिलिन सम्बन्धी कार्य पूर्णतया एक दशक तक स्थगित-सा ही रहा। इस प्रकार हम देखते हैं कि किस प्रकार सौभाग्य और संयोगवशात् पेनिसिलिन का प्रादुर्भाव हुआ।

सन् १९३८ ई० में आक्सफोर्ड में सर विलियम डन चिकित्साविज्ञान विद्यालय में प्रो० फ्लोरी और चेन द्वारा पेनिसिलिन के इतिहास में दूसरी महत्वपूर्ण प्रगति हुई। वे इस बात की गवेषणा कर रहे थे कि कीटाणु-द्रोह की समस्या क्या है, एक कीटाणु

दूसरे कीटाणु पर क्यों तथा कैसे आक्रमण करता है। यह सौभाग्य की ही बात है पेनिसिलियम नोटेटम पर शोध कार्य बहुत पूर्व स्थिति में ही प्रारंभ हो गया था। इन दोनों कर्मियों के अतिरिक्त अन्य मेधावी शोधकों के एक दल ने इस समस्या के विभिन्न अंगों पर कार्य प्रारंभ किया। इन गवेषणाओं के फलस्वरूप निम्नांकित निष्कर्ष पर पहुँचा जा सका:—

(१) १५ करोड़ में एक भाग के अनुपात के घोलित द्रव में विद्यमान शुद्ध पेनिसिलिन व्रण-विकृति के रोग के कीटाणुओं की वृद्धि अवरुद्ध करने में सक्षम है।

(२) मेनिंगाइटिज तथा प्रमेह रोगों के उत्पादक कीटाणु तो व्रण-विकृति रोग-जनक कीटाणुओं की अपेक्षा (पेनिसिलिन के प्रति) दुगुने संवेदनशील (प्रभावाधीन) हैं।

(३) पेनिसिलिन प्रस्तुत करने की तत्कालीन ज्ञात पद्धति से शेष रह जानेवाली अशुद्धता के पदार्थ भी कुप्रभाव हीन थे।

इन तीन महत्वपूर्ण निष्कर्षों से यह विदित हो सका कि मानव-कल्याण के लिए औषधि रूप में इसके उपयोग के अतिरिक्त पेनिसिलिन का उपयोग युद्धगत आहतों के लिए भी हो सकेगा। अतएव पेनिसिलिन के बड़े पैमाने पर उद्योग का कार्य प्रारंभ किया गया। इङ्गलैंड के जर्मनी द्वारा बम वर्षा के आधीन होने के कारण निर्माण-कार्य में विघ्न पड़ने के भय से निर्माण का अधिकांश कार्य अमेरिका में किया गया। गवेषणा का प्रगति-मार्ग तीन मुख्य दिशाओं में रक्खा गया:—

(१) पेनिसिलिन का भारी मात्रा में निर्माण।

(२) यह ज्ञात करना कि किस प्रकार के कीटाणु पेनिसिलिन के प्रभावान्तर्गत थे और किस प्रकार के नहीं थे।

(३) पेनिसिलिन का विशुद्धीकरण, इसकी रासायनिक रचना का निर्धारण तथा इसका कृत्रिम रूप से निर्माण।

पहले कार्य ने यह समस्या खड़ी की कि भारी कारखाने के पैमाने पर इसका किस प्रकार निर्माण किया जाय। प्रयोगशाला के पैमाने पर, विज्ञ रसायन-शास्त्रियों द्वारा शीशियों में धीमी प्रगति की निर्माण विधि से इसका निर्देश मिलना कठिन ही था कि किस प्रकार अनुभवहीन कारखाने के श्रमिकों द्वारा यह भारी पैमाने में निर्माण किया जा सके। कारखाने के श्रमिकों के सामने यह समस्या रहती है कि किस प्रकार न्यूनतम समय में न्यूनतम व्यय से अधिकतम मात्रा में निर्माण ऐसी अविरल पद्धति से होता रहे जो मूर्ख-साध्य सा हो। इसके लिए वनस्पति विज्ञान, रसायन विज्ञान, कीटाणु विज्ञान एवं रासायनिक इञ्जीनियरी विज्ञान सम्बन्धी प्रचुर मात्रा में गवेषणा की महती आवश्यकता थी। अनेक क्षेत्रों में बहुसंख्यक कार्यकर्ताओं के सामूहिक प्रयत्नों के परिणाम-स्वरूप पेनिसिलिन-उत्पादक फंगी या भुकुड़ी की उत्पादन विधि विकसित हो सकी। यह चीनी के साधारण घोल में सुचारु रूप से उत्पन्न होती है जिसमें कुछ रासायनिक लवण भी सम्मिलित होते हैं तथा पूर्ण पदार्थ एक सप्ताह तक २५° शतांश तापमान पर रक्खा जाता है। सम्पन्न पद्धति को वायुगत कीटाणुओं तथा फंगियों से संपर्क-वर्जित रक्खा जाता है। इस आधारभूत सार में पेनिसिलिन का संचार हुआ रहता है। उससे कतिपय दुर्बोध वैज्ञानिक पद्धतियों के उपयोग से पेनिसिलिन का रस प्रस्तुत होता है। इन पद्धतियों में ईथर, क्लोरोफार्म, या अनिल एसिटेट समान जल में घुलनशील घोल माध्यमों का उपयोग किया जाता है और आवश्यकतानुसार अम्लता या क्षारता की मात्रा घटा-बढ़ा ली जाती है। उपरिवर्णित विधि की रूपरेखा पढ़ने में बड़ी सरल है, परन्तु यथार्थ व्यवहार में में कितनी ही कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इस प्रकार साधारण चिकित्सा-कार्य के लिए उपयुक्त ३०% से ८०% तक शुद्धता का पेनिसिलिन विभिन्न कोटियों का प्रस्तुत किया जाता है। मस्तिष्क-व्यवच्छेद के विशेष उपयोग के लिए रवादार शत-

प्रतिशत शुद्ध पेनिसिलिन भी तैयार की जा सकती हैं किन्तु वह बहुत मूल्यवान होती है।

उपरिवर्णित दूसरा कार्य यह ज्ञात करना था कि कौन से कीटाणु पेनिसिलिन द्वारा प्रभावित होते हैं और कौन नहीं होते। यह ज्ञात हो सका कि स्ट्रेप्टोकोकी तथा स्टेफिलोकोकी कीटाणु जो क्रमशः व्रण-विकृति तथा गैस गैंगरीनी रोग उत्पन्न करते हैं, इसमें सर्वाधिक प्रभावशील हैं और ऐंथरेक्स, न्युमोनिया, डिपथेरिया जननेन्द्रिय रोग, तथा मेनिंगाइटिज रोगों के कीटाणु भी इससे अधिक प्रभावशील हैं, परन्तु क्षय, टायफाइड और प्लेग के कीटाणु के प्रति पेनिसिलिन असंवेदनशील या अप्रभावशील है। साधारण विधिवत बिल्कुल प्रारंभिक प्रयोग चूहियों पर औषधि की उचित मात्रा तथा शक्ति का निर्धारण करने के लिए किया गया। तत्पश्चात् इसका प्रयोग मानव रोगियों पर प्रारंभ हुआ और पिछले कई वर्षों से पत्रों के पृष्ठ उन संवादों से रंगे मिलते हैं जो पेनिसिलिन की अभूत पूर्व शक्ति का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। इसके प्रभावोत्पादन की प्रणाली के सम्बन्ध में पहले विचार किया गया था कि पेनिसिलिन कीटाणु का हनन नहीं करती, बल्कि उनकी वृद्धि को ही अवरुद्ध करती है। बाद में यह ज्ञात हुआ कि कीटाणुओं का साक्षात् संहार होता है। इसकी पुष्टि हुई है कि ये दोनों बातें सत्य हैं। इसकी कीटाणु सम्बन्धी क्रिया इतनी प्रबल होती है कि एक ग्राम का ५ करोड़वाँ भाग $\left(\frac{१}{५००००००००}\right)$ बीस करोड़ कीटाणुओं को मारने के लिए यथेष्ट है। केवल संयुक्त राज्य, अमेरिका के पेनिसिलिन की मात्रा के मासिक उत्पादन की निम्नांकित तालिका से पेनिसिलिन की बढ़ती महत्ता का अनुमान हो सकता है:—

१९४३—	१६०	करोड़ टन
१९४४—	१३८००	,, ,,
१९४५—	५७०००	,, ,,
१९४६—	८००००	,, ,,
१९४७—	१०००००	,, ,,

यह शत प्रतिशत शुद्ध पेनिसिलिन उत्पादन का परिणाम है कि रसायनवेत्ताओं का ध्यान इसकी आणविक रचना के निर्धारण की ओर जा सका है। इसे सफलता पूर्वक ज्ञात करने में वे समर्थ हो सके हैं। इस संबंध में यह उल्लेख करना आवश्यक है कि औषधि निर्माण विद्या ने शुद्ध पेनिसिलिन के उत्पादन में महत्वपूर्ण भाग लिया है।

टेलीफोन

[ऑलइंडिया रेडियो से १४-६-५३ को प्रसारित]

डा० सत्य प्रकाश

आप अपने कार्यालय में बैठे काम कर रहे हैं। आपके पास ही छोटी सी मेज पर काली-काली डिब्बा नुमा कोई चीज रक्खी हुई है। आप अपने काम में व्यस्त हैं। इतने में ही टन-टन-टन-टन आपको घंटी की आवाज सुनाई पड़ती है। यह घंटी बजती रहेगी जब तक उस डिब्बेनुमा चीज पर से आप भोंपू को उठा नहीं लेते। यह भोंपू सुनने और बोलने दोनों का काम देता है। एक सिरा इस का आपने कान के पास रक्खा और दूसरा अपने मुख के पास। और आप बोल उठे—"मैं हूँ सुरेश, कहिए आप कौन साहेब बोल रहे हैं" और फिर आप इस तरह बात-चीत करने लगते हैं कि मानों कोई व्यक्ति आपके सामने ही बैठा हुआ है। आप जिससे बात कर रहे थे वह व्यक्ति तो आप से सात मील दूर किसी कारखाने से बोल रहा था। आपने बात-चीत समाप्त की। भोंपू को फिर डिब्बे पर रख दिया, फिर टन-टन-टन-टन की आवाज हुई। आपने भोंपू कान में लगाया। किसी ने आप से कहा,—"आप कहाँ से बोल रहे हैं—५-८-८-४ से, आपके नाम दिल्ली में ट्रंक कॉल है। जल्दी कीजिए, बात कीजिए, दिल्ली है दिल्ली' आपने-अपने दिल्ली वाले मिस्टर मोहन लाल से बात करनी आरंभ कर दी। आप बैठे हैं प्रयाग में। आपके मित्र मोहन लाल जी हैं दिल्ली में, और आप इस तरह हँस-हँस कर बात कर रहे हैं, मानों मोहन लाल जी को आप की बातें ही नहीं, बल्कि हँसी भी सुनाई पड़ रही है। यह सब चमत्कार किस चीज का है। अब आप जान गए होंगे कि यह सब टेलीफोन का चमत्कार है। इसकी सहायता से हम सैकड़ों मील दूर बैठे हुए व्यक्ति से भी तत्क्षण बात कर सकते हैं।

आपने बिजली के तार देखे होंगे जो आपके कमरे में पंखा चलाते हैं, और बल्ब जलाते हैं। अगर आप कभी रेल में चढ़ कर कहीं गए हों, तो आपने देखा होगा कि रेल की पटरी के एक ओर खंभों पर लगे हुए तार भी साथ-साथ चल रहे हैं। यही तार हैं, जिनके भीतर जाती हुई बिजली आपके मुख से निकले शब्दों को भी दूर-दूर ले जा सकती है।

टेलीफोन का आविष्कार आज से ७७ वर्ष पूर्व हुआ था। आपने शायद एलेक्जेण्डर ग्रेहम बेल का नाम सुना हो। बेल १८४७ में एडिनबरा में पैदा हुआ था पर यह बाद को कैनेडा आया, और अन्त में संयुक्त राज्य अमरीका के बोस्टन नगर में बस गया। यहाँ इसने अपने सहायक टॉमस वाटसन की सहायता से संगीतमय टेलीग्राफ बनाने का प्रयत्न किया। उसका अभिप्राय यह था कि पियानो के पर्दे पर अँगुलियाँ किसी एक कमरे में चलायी जाँय पर संगीत का स्वर दूर किसी दूसरे कमरे में सुनायी पड़े। उसने इस संबंध में अनेक प्रयोग किए। सन् १८७४ में उसे एक तार पर ही कई संकेत भेजने में सफलता प्राप्त हुई। आप यह तो जानते ही होंगे, कि यह वह समय था जब टेलीग्राफ का तो आविष्कार हो गया था, पर टेलीफोन का नहीं हुआ था। कूक, व्हीटस्टन और मोर्स के प्रयत्नों से १८३५ से १८४० तक टेलीग्राफ की अर्थात् तार द्वारा समाचार भेजने की कला काफी विकसित हो चुकी थी। १८७५ की बात है कि वाटसन और बेल अपने प्रयोग कर

रहे थे कि बेल के अपने कमरे में कमानी या स्प्रिंग की वह ध्वनि सुनाई पड़ी जो वाटसन ने अपने कमरे में उत्पन्न की थी। बेल को आश्चर्य हुआ और वह दौड़ा-दौड़ा वाटसन के पास आया। उसने यह जानने का यत्न किया कि एक कमरे से दूसरे कमरे में बिजली के तार द्वारा यह ध्वनि कैसे पहुँची। उसे यह विश्वास हो गया कि यदि साधारण ध्वनि तार की बिजली द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचायी जा सकती है, तो अवश्य ही मनुष्य के मुख से निकले हुए सार्थक शब्द भी दूर-दूर भेजे जा सकते हैं। बेल ने संगीतमय टेलीग्राफ के प्रश्न को तो वहीं छोड़ दिया, और टेलीफोन के आविष्कार को सफल बनाने में जुट गया। टेलीफोन के इतिहास में १० मार्च १८७६ का दिन सदा स्मरणीय रहेगा। इस दिन टेलीफोन तैयार करने में बेल को सफलता प्राप्त हो गयी।

वैज्ञानिक अपने प्रयोगों को छोटी सी प्रयोगशाला में करता है, पर जब तक ये प्रयोग बड़े अनुमाप या पैमाने पर नहीं किए जा सकते, तब तक इनसे जनता को लाभ नहीं होता। वैज्ञानिक के पास इतना धन नहीं होता, और न इतने साधन होते हैं कि वह अपने प्रयोगों को कारखाने का रूप दे दे। पूंजीपतियों को जब तक यह विश्वास नहीं हो जाता कि किसी आविष्कार से सचमुच उन्हें आर्थिक लाभ होगा, तब तक वे अपना रुपया किसी नए काम में नहीं फँसाना चाहते। बेल ने अपना छोटा प्रयोग तो सफल कर लिया, पर इस प्रयोग का बड़े अनुमाप पर व्यवहार कैसे हो। टेलीफोन बनाने के अपने समस्त पेटेंट उसने वेस्टर्न यूनियन टेलीग्राफ कम्पनी को २०००० पौंड में बेचना चाहा, पर इस कम्पनी को इस आविष्कार के महत्व में विश्वास न हुआ। इसी कम्पनी ने कुछ वर्ष बाद ही आविष्कार को लाखों डॉलर खर्च करके खरीदना चाहा। बेल का टेलीफोन यन्त्र इङ्गलैंड में सितम्बर १८७६ में पहली बार ग्लासगो की बृटिश एसोसियेशन की मीटिंग में प्रदर्शित हुआ।

बेल ने जो टेलीफोन बनाया था, उसमें ध्वनि बहुत धीमी सुनाई पड़ती थी, और इसलिए इसके द्वारा शब्द बहुत दूरी तक नहीं भेजे जा सकते थे। बेल के यंत्र में एक चुम्बकवेष्ठन, स्प्रिंग और आवाज के लिए भोंपू था और यह आवाज चमड़े के एक पर्दे पर पड़ती थी। यह पर्दा आवाज से स्पन्दित या झंकृत होता था। आवाज को प्रबल बनाने के संबंध में थॉमसन एडिसन ने प्रयोग प्रारम्भ किए, उसने पर्दे के पीछे मृदु कार्बन का एक बटन रक्खा। इस कार्बन बटन का संपर्क बिजली के तारों से था। पर्दे पर ध्वनि के पड़ने पर जो स्पन्दन होते थे, उनके उतार चढ़ाव के साथ कार्बन बटन में होकर जाने वाली बिजली की धारा में भी न्यूनता और अधिकता होती थी। इस प्रकार की स्पन्दित या झंकृत धारा "प्रेषक स्थान" से जिसे ट्रान्समिटिंग स्टेशन कह सकते हैं, दूरस्थ "ग्राहक स्थान" या रिसीविंग स्टेशन पर पहुँचती थी। वहाँ भी कार्बन का बटन और उससे लगा हुआ पर्दा होता था। धारा के स्पन्दन के साथ साथ कार्बन का बटन स्पन्दित होता था, और इस स्पन्दन से पर्दा भी स्पन्दित हो उठता था। प्रेषक स्थल पर जैसे शब्द बोले जाते थे, वैसे ही शब्द ग्राहक स्थल पर फिर बन जाते थे। इन शब्दों को सुन कर ऐसा भास होता था, मानों कि बोलने वाले के शब्द आपको सीधे ही सुनाई पड़ रहे हैं।

वस्तुतः आजकल जो टेलीफोन हैं, उनमें रिसीवर और ट्रान्समिटर अर्थात् ग्राहक और प्रेषक यन्त्र साथ साथ होते हैं। टेलीफोन के जिस भाग को आप मुँह के पास रखते हैं, वह ट्रान्समिटर है, और जिसको कान के पास रखते हैं, वह रिसीवर है। यदि टेलीफोन में ट्रान्समिटर और रिसीवर दोनों न होते, तो आप इच्छानुसार किसी दूरस्थ व्यक्ति से बातचीत न कर सकते। बातचीत तो तभी कहलाती है, जब आप कुछ कहें और कुछ सुनें।

आपके घर के टेलीफोन का संबंध उन सब घरों से होना चाहिए जिन जिन के घरों में टेलीफोन है, जिससे आप जिससे चाहें, बातचीत कर सकें। टेली-

फोन रखने वाला हर एक व्यक्ति भी अपनी इच्छानुसार हर एक टेलीफोन वाले से बात करना चाहेगा। आपके नगर में एक ही समय पर अनेक व्यक्ति टेलीफोन पर बात कर रहे होंगे। आपके घर से हर एक टेलीफोन वाले के घर तक अलग अलग तार लगाने पड़ें तो तारों की संख्या लाखों तक पहुँच जाय।

आपने देखा होगा कि टेलीफोन के मुख पर घड़ी की तरह का एक चक्र या डायल लगा हुआ है जिसमें शून्य से लेकर ९ तक की गिनतियाँ अलग अलग लिखी हुई हैं। अगर आपको ५७३ नम्बर वाले टेलीफोन से बातचीत करनी है, तो आपने पाँच अंक के छेद में अंगुली लगा कर डायल को कोने तक घुमाया और फिर डायल छोड़ दिया। अब सात अंक के छेद में अंगुली डाल कर डायल कोने तक घुमाया और फिर इसे छोड़ दिया, और फिर ३ अंक के छेद में अंगुली डाल कर कोने तक घुमाया और छोड़ दिया। इतना करने पर आपको सुनाई पड़ेगा कि ५७३ नम्बर वाले के स्थान पर घंटी बजने लगी है। उस टेलीफोन से आपके टेलीफोन का अब संबंध हो गया है। जब किसी आदमी ने ५७३ नम्बर के टेलीफोन का भोंपू (जिसमें रिसीवर और ट्रान्समिटर दोनों हैं) उठाया और अपने कान और मुँह के सामने रक्खा, घंटी का बजना बन्द हो जायगा, और अब आप बातचीत कर सकते हैं। डायल की यही विशेषता है कि आप शून्य से लेकर ९ तक की गिनतियों द्वारा किसी भी नम्बर वाले से अपना संबंध फौरन स्थापित कर सकते हैं, और एक ही समय पर आपके नगर में अनेक व्यक्ति आपस में बातचीत कर सकते हैं।

कुछ नगरों में इस प्रकार औटिमेटिक अर्थात् अपने आप चालू होने वाले डायलों का विधान नहीं है। हर एक नगर में टेलीफोन का एक केन्द्रीय कार्यालय होता है। इस केन्द्रीय कार्यालय में रात दिन बराबर कोई न कोई व्यक्ति आपकी सेवा के लिए उपस्थित रहता है। जहाँ "औटोमेटिक सिस्टम" नहीं है, वहाँ आपको टेलीफोन पर इस व्यक्ति को बताना होगा कि आप किस नम्बर से बातचीत करना चाहते हैं। कार्यालय का वह व्यक्ति (जो बहुधा महिला होती है) आपके फोन का सम्बन्ध उस नम्बर से कर देगा, और फिर आप बातचीत आरम्भ कर सकते हैं। यहाँ यह समझाना कठिन है कि आपस में टेलीफोनों का सम्बन्ध किस प्रकार कर दिया जाता है और नगर के अनेक टेलीफोनों में एक समय पर ही कैसे बात चीत होती रहती है। बहुत कम ऐसा होता है कि आपको सुनाई पड़ेगा, कि "लाइन इन्गेज्ड" है। वह तभी होता है, जब कि जिससे आप बातचीत करना चाहते हैं, वह उसी समय किसी अन्य से बातचीत कर रहा हो। कार्यालय में नम्बरों द्वारा सम्बन्ध स्थापित करने की जहाँ व्यवस्था होती है उसे एक्सचेंज कहते हैं। यहाँ पर कई "सिलेक्टर" होते हैं, जिनकी सहायता से यह काम किया जाता है।

टेलीफोन ने हमें इस युग में वह सुविधायें प्राप्त करा दी हैं, जिनकी हम पहले कल्पना भी नहीं कर सकते थे। आपके पड़ोस में आग लगी, तो आपने टेलीफोन द्वारा आग बुझाने वाले फायर ब्रिगेड स्टेशन को तत्काल सूचना दे दी। यदि आप अपने नगर के स्टेशन पर आ गए हैं, तो घर पर आपने फोन कर दिया, और मोटर आपके लिए स्टेशन आ जाएगी। रेल का कर्मचारी प्रत्येक क्षण यह बता सकता है कि पड़ोस के स्टेशन से या किसी भी स्टेशन से रेल चल दी या नहीं और यह कितनी लेट है। नगरों में जो काम कई नौकरों द्वारा सूचना भेज कर भी नहीं कर सकते थे, अब आसानी से आप कर सकते हैं। आपके कार्यालय के बाबुओं को लखनऊ या दिल्ली के अफसर से कोई महत्व पूर्ण आदेश लेना है, तो टेलीफोन पर बात चीत करलें। यदि दूर किसी नगर में आपके प्रियजन पर कोई विपदा आयी या मृत्यु हुई, तो आपको फौरन संवाद मिल सकता है। यही नहीं, टेलीफोन के कार्यालय में यह भी व्यवस्था रहती है, कि एक

[शेषांश पृष्ठ १३ पर]

भूमि के अपरदन की समस्या[1]

श्री० जनार्दन प्रसाद श्रीवास्तव एम० ए०, एम० एस-सी०, एफ० एन० जी० एस०,
अध्यक्ष भूगोल विभाग, टी० डी० डिग्री कॉलिज, जौनपुर

विषय प्रवेश

प्रति वर्ष जब वर्षा ऋतु आती है—हमें समाचार-पत्रों से विदित होता है, कि देश के विभिन्न भागों में बाढ़ आई है, जिससे सहस्त्रों गाँव डूब गये हैं, लाखों व्यक्ति बेघरबार हो गये हैं और करोड़ों की सम्पत्ति नष्ट हो गई है। बरसात समाप्त होते ही हम इस भयानक दैवी-प्रकोप को भूल जाते हैं और साल भर सोते रहते हैं। जब दुबारा बरसात आती है, तब वही संकट पुनः उपस्थित होता है। यही क्रम चलता रहता है। काश, हम इस बात पर विचार करते कि वर्तमान समय में बाढ़ प्रतिवर्ष क्यों आने लगी है और तब फिर हम उन कारणों के स्थायी उन्मूलन की व्यवस्था करते। बाढ़ का एक प्रमुख कारण है—अपरदन अथवा (Erosion) द्वारा भूमि का नष्ट होना। यहाँ पर हम भूमि के अपरदन की समस्या पर विचार करेंगे।

भूमि क्या है ?

भूमि का अर्थ है पृथ्वी की पर्पटी का सबसे ऊपर वाला स्तर, जिसमें पेड़-पौधों के जीवन के लिये आवश्यक खनिज एवं रासायनिक पदार्थ तथा अन्य प्रकार की पौष्टिक भोजन-सामग्री रहती है। इसकी गहराई कुछ ही इंच होती है।

यदि पृथ्वी का यह बहुमूल्य स्तर, जिसे हमने भूमि की संज्ञा दी है, एक बार नष्ट हो जाता है, तो उसके पुनःस्थापन के लिये अनेकों वर्ष लग जाते हैं और कभी-कभी तो उसका पुनःस्थापन होता ही नहीं अर्थात् वह सदा के लिये नष्ट हो जाता है।

अपरदन का अर्थ और उसके साधन

वर्षा के कारण भूमि का कुछ भाग घिसकर बह जाता है। यही अपरदन है। वायु द्वारा भी भूमि के कण हटते रहते हैं। हिमनदियों द्वारा भी यह क्रिया होती है, किन्तु यह स्पष्ट है कि हमारे देश में भूमि के अपरदन का प्रधान साधन जल ही है।

अपरदन की समस्या का महत्व

भारत जैसे कृषि-प्रधान देश में भूमि का महत्व हीरा-मोती से भी बढ़कर है। विशेषकर आधुनिक काल में जब देश के भोजन की समस्या इतनी जटिल हो रही है—इसका महत्व और भी बढ़ जाता है।

भूमि के अपरदन से केवल पृथ्वी का स्तर नष्ट नहीं होता। वरन् मानवमात्र के जीवन का स्तर गिर जाता है। विज्ञान द्वारा अस्थायी रूप से उपज बढ़ाई जा सकती है, किन्तु जहाँ एक बार भूमि का अपरदन आरम्भ हुआ—फिर वह उस समय तक नहीं रुकता जब तक समस्त भूमि पूर्णरूपेण नष्ट नहीं हो जाती। निश्चय ही, मरुस्थल में कोई भी राष्ट्र उन्नति नहीं कर सकता। यही कारण है, कि भूमि के अपरदन

---

[1] लेखक द्वारा तिलकधारी महाविद्यालय जौनपुर की भूगोल समिति में 'भूमि के अपरदन की समस्या' पर दी गई भाषण-श्रृंखला (Series of talks) में से प्रथम।

को सर्पी-मृत्यु (Creeping Death) कहा गया है, जो उचित है।

इस समस्या की महत्ता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है, कि इस समय भारतवर्ष में लगभग पन्द्रह करोड़ एकड़ भूमि अपरदन से प्रभावित है।

अपरदन का वेग

अपरदन का वेग भूमि की संरचना, ढाल और वर्षा की मात्रा पर निर्भर है। यदि भूमि कोमल अथवा घुलनशील पदार्थों से बनी हुई हो अथवा उसके कण असम्बद्ध हों, तो अपरदन अधिक होता है। दूसरी ओर कठोर एवं अघुलनशील शिलाओं में तथा परस्पर सम्बद्ध कणों द्वारा निर्मित भूमि में अपरदन की मात्रा अपेक्षाकृत कम होती है। समतल भूमि की अपेक्षा ढालू भूमि में अपरदन अधिक होता है। ढाल जितना ही अधिक होता है, अपरदन भी उतना ही अधिक होता है। अपरदन का प्रमुख साधन जल है, अतएव यह भी स्पष्ट है, कि साधारणतः उन क्षेत्रों में जहाँ वर्षा अधिक होगी, अपरदन अधिक होगा।

अपरदन के प्रकार

भूमि का अपरदन दो प्रकार से होता है। कभी-कभी ऐसा होता है, कि वर्षा के कारण भूमि का सबसे ऊपर का पर्त घिसकर बह जाता है। फिर दूसरे पर्त की भी यही दशा होती है और यह क्रम चला करता है। इस प्रकार पतले स्तरों के रूप में भूमि के नष्ट होने को हम 'स्तर-अपरदन' (Sheet Erosion) कहते हैं।

बहुधा ऐसा होता है कि वर्षा द्वारा प्राप्त जल भूपृष्ठ पर नाले के रूप में बहने लगता है। तदनन्तर उसमें दायीं और बाँयीं ओर से नालियां मिलती हैं। इस प्रकार, कालान्तर में, नाले-नालियों का एक जाल-सा बिछ जाता है। नाले-नालियों के पथ अथवा खड्ड को जलदरी अथवा (Gully) की संज्ञा दी गई है। इस प्रकार के अपरदन को जिसमें जलदरियां (Gullies) अस्तित्व में आजाती हैं, हम जलदरी-अपरदन या (Gully Erosion) कहते हैं। इस प्रकार का अपरदन जहाँ एक बार आरम्भ हुआ, फिर उस समय तक नहीं रुकता जब तक कि समस्त क्षेत्र जलदरियां से पट नहीं जाता और भूमि कृषि के लिये सर्वथा व्यर्थ नहीं हो जाती। कानपुर से झाँसी जाते समय कालपी के निकट रेल की खिड़की से जलदरियाँ ही जलदरियाँ दिखलाई देती हैं।

बनस्पति का महत्व

बनस्पति अपरदन से भूमि की रक्षा करती है। यदि पृथ्वी के ऊपर बनस्पति का आवरण न होता तो वर्षाजल तीव्र वेग और शक्ति के साथ पृथ्वी पर टकराता। फल यह होता कि अपरदन की क्रिया बड़े वेग से चलती। किन्तु बनस्पति के आवरण के कारण वर्षा के जल का वेग और बल दोनों ही क्षीण हो जाते हैं। इस प्रकार बनस्पति भूमि को अधिक मात्रा में नष्ट होने से बचाती है। यही नहीं, अन्य रीतियों से भी वह इस दिशा में सहायक होती है। उदाहरण के लिये—पेड़-पौधे वर्षाजल का शोषण करते हैं। उनके माध्यम द्वारा यह जल जड़ों तक पहुँचता है और फिर झरनों या नालों के रूप में पुनः प्रकट होता है। बाढ़ के बल और वेग को भी जलप्रवाह के पथ के पेड़-पौधे कम कर देते हैं।

उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट है कि बनस्पति का नष्ट होना भयानक विपत्ति का आमंत्रण है। इससे केवल बाढ़ ही नहीं आती, वरन् पृष्ठ की बहुमूल्य भूमि भी जिनपर पेड़-पौधों का जीवन-निर्भर है, नष्ट हो जाती है।

भूमि के अपरदन के कारण

अब हम भूमि के अपरदन के प्रमुख कारणों की विवेचना करेंगे:—

(१) बनों का विनाश—इसका उल्लेख तो किया ही जा चुका है, कि बनस्पति के नष्ट हो जाने से भूमि के अपरदन का परिमाण और वेग बढ़ जाता है।

(२) जानवरों द्वारा घास एवं पेड़-पौधों का अतिभक्षण (Overgrazing)—बनस्पति को किसी भी रूप में नष्ट होने देने का अर्थ है—भूमि के अपरदन को निमन्त्रित करना। भारतवर्ष की जलवायु ऐसी है कि यहाँ पर वर्षा-ऋतु केवल चार महीने की होती है—फिर दीर्घकाल तक वर्षा नहीं होती—अतएव घास के दुबारा उगने का प्रश्न ही नहीं उठता। अप्रैल-मई के महीनों में तो घास मिलना समस्या बन जाती है। इसके अतिरिक्त भेड़-बकरियाँ पौष्टिक एवं अच्छे गुणों वाली घास को आरम्भ में ही समाप्त कर देती हैं। बाद में बहुत ही निकृष्ट श्रेणी की घास बच रहती है और उन पर ही जानवरों को निर्भर होना पड़ता है।

इस सम्बन्ध में इस तथ्य का उल्लेख अनुचित न होगा कि जहाँ भारतवर्ष संसार के समस्त स्थल क्षेत्र का केवल तीसवाँ अंश है, वहाँ संसार के ७० करोड़ घास पर निर्भर रहनेवाले जानवरों में से २० करोड़ से अधिक भारत में ही विद्यमान हैं।

(३) कृषि की स्थानान्तरण प्रणाली (Shifting Cultivation)—आसाम और बंगाल के कुछ भागों में अब भी इस दोषपूर्ण प्रणाली से कृषि होती है। इस प्रकार की खेती में कृषक प्रति वर्ष कृषि के लिये बन का एक नवीन भाग चुन लेता है। फिर वह आग लगाकर वहाँ की बनस्पति नष्ट कर देता है। बनस्पति की राख से भूमि की उर्वरता बढ़ जाती है। दूसरे वर्ष वह स्थल त्याग दिया जाता है और बन का दूसरा भाग खेती के लिये चुन लिया जाता है। फिर आग लगाकर वहाँ की भी बनस्पति नष्ट कर दी जाती है। यही क्रम चलता रहता है। इस प्रकार कृषि के स्थानान्तरण से बहुमूल्य बन नष्ट होते जा रहे हैं और भूमि के अपरदन की समस्या दिनों दिन भयंकर और जटिल होती जा रही है।

(४) ढाल का दोष पूर्ण प्रयोग—ढाल के अनुरूप खेती के पौदों की पंक्तियों की व्यवस्था करने से भी अपरदन बढ़ जाता है। भारतवर्ष के अनेक क्षेत्रों में आलू की खेती इसी प्रकार होती है। इससे बहुमूल्य भूमि बड़े वेग से नष्ट होती जा रही है। ढालू क्षेत्रों में खेती करने के लिये उत्तल (Terrace) बनाना आवश्यक है और पौदों की पंक्तियों को ढाल के प्रति समकोण बनाना चाहिये। ऐसी दशा में अपरदन कम होता है।

अपरदन का प्रभाव

अब हम अपरदन के प्रभाव का विचार करेंगे:—

(१) बाढ़—बनों के नष्ट हो जाने से भूमि का अपरदन बढ़ जाता है। बनस्पति का आवरण वर्षा-जल के वेग और बल को क्षीण कर देता है, जिससे भूमि अपेक्षाकृत कम नष्ट होती है। इसके अतिरिक्त बनस्पति वर्षा-जल का शोषण करती है। पेड़ों के माध्यम द्वारा वर्षा-जल पृथ्वी के अन्दर जाता है। बनस्पति के नष्ट हो जाने से समस्त वर्षा-जल निर्विघ्न-रूप से प्रवाहित होता है और इस प्रकार जल की मात्रा बढ़ जाने से बाढ़ आना स्वाभाविक ही है। विगत महायुद्ध के दिनों में विदेशी शासकों ने युद्ध की सामग्री बनाने के लिये हिमालय-प्रदेश से मनमानी लकड़ी कटवायी और उसका फल हम आज भोग रहे हैं। पहले कभी ऐसी बाढ़ नहीं आया करती थी, जैसी अब प्रति वर्ष आती है।

(२) वर्षा की मात्रा कम हो जाना—वृक्ष सूर्य-किरणों के पथ में बाधक होते हैं, जिससे पृथ्वी पर पहुँचने वाले ताप की मात्रा घट जाती है। वृक्षों के नष्ट हो जाने से सूर्य की किरणें सीधे पृथ्वी पर पड़ती हैं और उसे गरम करती हैं। पर पृथ्वी के गरम होने से पृष्ठ की वायु हल्की होकर ऊपर उठती है। यह वायु वायुमण्डल के वाष्पमय बादलों को दूर हटा देती है और इस प्रकार वर्षा की मात्रा घट जाती है।

(३) भूमिगतजल (Underground Water) होना—जैसा कि उल्लेख हो चुका है वर्षा-जल

पेड़ों के माध्यम द्वारा ही पृथ्वी के अन्दर प्रविष्ट होता है। बनस्पति के नष्ट हो जाने से यह क्रिया बन्द हो जाती है। पृष्ठभूमि के घिस जाने से नीचे की अभेद्य और कठोर शिलायें ऊपर आ जाती हैं, जिनमें जल का पारण सम्भव नहीं है। अतएव, भूमिगत जल का समतल क्रमशः नीचा होता जाता है। इसका फल यह होता है कि कुएँ दिनों दिन सूखते जाते हैं। झरनों का भी यही भविष्य होता है।

(४) बन के पक्षियों और जीवों का क्षीण होना—जब बन ही न रहेंगे, तो उसके जीव और पक्षी किस प्रकार रह सकते हैं? नवीन वातावरण उनके लिये घातक सिद्ध होता है। राष्ट्र की सम्पत्ति और समृद्धि में बन जीवों और पक्षियों का महत्व-पूर्ण स्थान है। इनका नष्ट हो जाना देश के लिये कल्याणकारी नहीं है।

(५) वायु द्वारा अपरदन—वायु अपरदित भूमि के कणों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाती है। उदाहरणार्थ शिवालिक पर्वत के क्षेत्र में वनों के नष्ट हो जाने से भूमि का अपरदन बहुत हुआ है। वायु वहाँ की अपरदित भूमि के कणों को जलन्धर के दोआब में परिवाहित करती रहती है। इसका फल यह है कि जलन्धर के दोआब की बहुमूल्य कृष्य भूमि की उर्वरता परिवाहित रेत के कारण क्रमशः क्षीण होती जा रही है।

(६) मरुस्थल का प्रसार—वायु की क्रिया का दूसरा भयंकर स्वरूप है—मरुस्थल का प्रस्तार। राजपूताना के मरुस्थल के कण वायु द्वारा सीमावर्ती क्षेत्रों में परिवाहित होते रहते हैं और इस प्रकार धीरे-धीरे मरुस्थल फैल रहा है। राजपूताना का मरुस्थल प्रति वर्ष १०० वर्ग मील बढ़ रहा है। उत्तर प्रदेश के मथुरा और आगरा जिले बुरी तरह से प्रभावित हैं और यदि मरुस्थल के प्रसार को रोका नहीं गया, तो कोई आश्चर्य नहीं, कि वे भी कुछ सहस्र वर्षों में मरुस्थल में परिणत हो जायँ।

(७) जलाशयों में रेत का एकत्र होना—यदि नदी के ऊपरी प्रदेश में अपरदन अधिक होता है, तो नदी अपने साथ अपरदित भूमि को बहा ले आती है। यदि नदी के पथ में बाँध और जलाशय होते हैं, तो यह रेत जलाशय में इकट्ठी होती रहती है। इससे जलाशय क्रमशः उथले होते रहते हैं और इस प्रकार जल पूर्ति (Water Supply) की मात्रा घट जाती है। ऐसी दशा में उन्हें कुछ वर्षों के कालान्तर में साफ करना आवश्यक होता है।

(८) सिंचाई और जल-विद्युत पर प्रभाव—नदियों में वर्षा ऋतु में बाढ़ आ जाने का दूसरा भयंकर परिणाम यह होता है कि वर्ष के शेष भाग में उनमें पानी की मात्रा घट जाती है। इससे नहरों और विद्युत-उत्पादन दोनों पर प्रभाव पड़ता है। नहरों में पानी कम हो जाने से सिंचाई ठीक तरह से नहीं हो पाती। जल की मात्रा के कम हो जाने से विद्युत-उत्पादन की मात्रा घट जाती है।

(९) यातायात के साधनों पर प्रभाव—बाढ़ से यातायात के साधनों को बड़ी हानि पहुँचती है। सड़कों का खराब हो जाना और रेल की पटरियों का प्रभावित होना तो साधारण सी बात है, कभी-कभी बाढ़ के वेग से पुल नष्ट हो जाते हैं, बाँध टूट जाते हैं। इसी वर्ष बाढ़ के कारण आजमगढ़ के बाँध में अनेक दरारें पड़ गईं।

(१०) जीवन यापन के स्तर का गिरना—हमारे देश के निवासियों के जीवन-निर्वाह का स्तर संसार के अन्य उन्नत देशों की तुलना में वैसे ही लगभग सबसे नीचा है। हमारी राष्ट्रीय सरकार इसे ऊपर उठाने के लिये सतत प्रयत्न कर रही है। उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि जीवन स्तर को नीचा करने में भूमि के अपरदन का भी महत्वपूर्ण हाथ है। चरागाहों का नष्ट होना और कृषि की उपज का घटना अपरदन के ही दुष्परिणाम हैं। घास के घट जाने से गाय-भैंसों का स्वास्थ्य प्रभावित होता है और वे कम दूध देती हैं। बनों के नष्ट हो जाने से

बहुमूल्य लकड़ियाँ, जीव एवं पक्षी तथा भैषजीय जड़ी-बूटियाँ सदा के लिये लुप्त हो जाती हैं। मनुष्य और जानवर दोनों को ही पर्याप्त भोजन नहीं मिलता। अतएव जीवन-यापन के स्तर का गिरना स्वाभाविक ही है।

उपाय

अब प्रश्न यह है कि भूमि के अपरदन को कैसे रोका जाय। अपरदन के लिये ये उपाय अपेक्षित हैं:—

(१) वनस्पति का पुनः स्थापन—जहाँ कहीं भी वनस्पति नष्ट हुई हो, उसे तुरन्त वहाँ स्थापित किया जाय। बनों से जितने वृक्ष काटे जायँ, उतने ही नवीन वृक्ष लगा दिये जायँ। इस सम्बन्ध में श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी का 'बन महोत्सव' का कार्य-क्रम नितान्त स्तुत्य है और सही दिशा में सही कदम है।

(२) जहाँ पर भी ढाल हों वहाँ खेती के लिये उत्तल (Terraces) बनाये जायँ।

(३) बाढ़ रोकने के लिये बाँध बनाये जायँ। इन बाँधों में संचित जल अनेक प्रकार से उपयोग में लाया जा सकता है।

(४) अपरदन द्वारा जो भूमि नष्ट हो रही है, उसे पुनर्प्राप्त (Reclaim) किया जाय। जलदरियों (Gullies) के पाटने के लिये मशीनों का प्रयोग भी अभीष्ट है।

(५) कृषि की दोषपूर्ण प्रणालियाँ त्याग दी जायँ—उदाहरण के लिये स्थानान्तरण की खेती Shifting Cultivation तुरन्त रोक दी जाय।

भारतवर्ष में भूमि के अपरदन की दशा

अब हम भारतवर्ष में भूमि के अपरदन की दशा का अध्यय करेंगे। इस दृष्टि से भारतवर्ष को तीन भागों में बाँटा जा सकता है :—

(१) हिमालय प्रदेश
(२) सिन्ध-गंगा का मैदान
(३) प्रायद्वीपीय भारत

(१) हिमालय प्रदेश

इसके पुनः तीन विभाग किये जा सकते हैं—(अ) पूर्वी हिमालय (आ) मध्य हिमालय तथा (इ) पश्चिमी हिमालय।

(अ) पूर्वी हिमालय

पूर्वी हिमालय के प्रदेश में भूमि के अपरदन के मुख्य कारण ये हैं :—

(१) वनस्पति का नष्ट होना—इसका एक फल यह है कि यहाँ से प्रवाहित होनेवाली नदियों में बाढ़ बहुत आती है।

(२) स्थानान्तरण की खेती (Shifting Cultivation) जो आज भी आसाम और बंगाल के कुछ भागों में प्रचलित है।

(३) वर्षा का आधिक्य—जिससे अपरदन अधिक होता है।

(आ) मध्य हिमालय

उत्तर प्रदेश के उत्तरी भाग की दशा इतनी बुरी नहीं है, जितनी पूर्वी हिमालय प्रदेश की। यहाँ पेड़ इतनी लापरवाही से नहीं काटे गये हैं। खेती के लिये ढालों पर उत्तल (Terraces) बनाये गये हैं। काठ-गोदाम से नैनीताल जाते समय ऐसे अनेक उत्तल दृष्टिगोचर होते हैं।

(इ) पश्चिमी हिमालय

यहाँ की शुष्क जलवायु आंशिक रूप से भूमि के अपरदन के लिये उत्तरदायी है। दीर्घकाल तक वर्षा न होने से तथा वर्षा की मात्रा कम होने से भूमि की पेड़-पौदों को बद्ध करने की शक्ति नष्ट हो जाती है। कम वर्षा का एक दूसरा परिणाम है—भेड़-बकरियों द्वारा घास का अतिभक्षण। इसके अतिरिक्त यहाँ भी असावधानी से वनस्पति नष्ट की गई है। इन्हीं सब कारणों से यहाँ भूमि का अपरदन बहुत होता है।

(२) सिन्ध-गंगा का मैदान

यहाँ पर प्रवाहित होनेवाली प्रायः सभी नदियाँ हिमालय पर्वत के निकलती हैं। इसका उल्लेख तो हो ही चुका है कि हिमालय-प्रदेश में बिना सोच-विचार

किये लापरवाही के साथ जंगल काटे गये हैं। इसका फल यह होता है कि इन नदियों में प्रतिवर्ष भयानक बाढ़ आती है।

पञ्जाब की नहरों में वायु के परिवाहन द्वारा बहुत सी रेत एकत्र होती रहती है—जिससे उनकी गहराई क्रमशः घटती रहती है।

(३) प्रायद्वीपीय भारत

इस क्षेत्र में स्तर-अपरदन (Sheet Erosion) अधिक महत्वपूर्ण है। कहीं-कहीं पर भेड़-बकरियों के अतिभक्षण Overgrazing) द्वारा वनस्पति नष्ट होगई है। किन्तु सन्तोष का विषय यह है कि यहाँ सिंचित क्षेत्रों (Irrigated Areas) में काफी बाँध बनाये गये हैं तथा नील-गिरि के चाय के प्रदेश में उत्तलों (Terraces) की सुन्दर व्यवस्था है।

टेलीफोन—पृष्ठ ७ का शेष अंश

विशेष नम्बर द्वारा आप सम्बन्ध कीजिए, और फौरन आपको बताया जायगा, कि इस समय घड़ी में क्या बजा है। आपको घड़ी रखने की आवश्यकता नहीं होगी। इस सेवा के लिए टेलीफोन कार्यालय कोई अतिरिक्त दाम न लेगा।

टेलीफोन के साथ इस वर्तमान युग में रेडियो टेलीफोनी का भी विकास हुआ है। इसकी सहायता से आप देश-विदेश से भी अपना सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। लन्दन में बैठा हुआ अपना राजदूत आपके प्रधान मन्त्री से दिल्ली में बातचीत कर सकता है और उचित परामर्श ले सकता है। शान्ति और युद्ध दोनों के समय ये रेडियो टेलीफोन आपके परम सहायक हैं।

आधुनिक वैज्ञानिक युग की टेलीफोन एक महत्वपूर्ण देन है, और मानव समाज का इससे बड़ा हित हुआ है।

तपवीर कीटाणु—पृष्ठ १६ का शेषांश

फेंकने का उद्योग तो मूर्खता कही जाती है। तापवीर कीटाणु अपनी परीक्षा देने के लिए ही तो ताप की वृद्धि करते नहीं कहे जा सकते। किन्तु स्वाभाविक वृत्ति से अपनी संख्या-वृद्धि में भी उच्च तापमान उत्पन्न करने के पूर्व उन्हें उसके परिणाम का पूर्व ज्ञान कदापि नहीं रहता। उनकी अग्नि लीला तो एक सहज क्रिया कही जा सकती है। परन्तु इस कांड में उनका सदा पूर्णतः लोप हो जाना कोई आवश्यक नहीं होता। प्रायः घास या पुआल का ढेर भीतर से झुलस कर काला हो कर ही रह जाता है और बाहर के अंशों की घास इन भयानक प्रभावों में न पड़ के कारण बद्ध ओषजन-जीवी कीटाणुओं को आश्रय देती ही रहती है। वह अवशिष्ट अंश कहीं अन्यत्र दूसरी ढेर में पहुँच कर वहाँ इन तापवीर बद्ध ओषजन जीवियों की सजग क्रियाशीलता तथा दूसरे शब्दों में अग्नि-क्रिया के पुनरावर्तन का अवसर देता है।

तापवीर कीटाणु

कीटाणुओं के अनेक प्रकारों की चर्चा हम सुनते हैं। बहुत से इतने कठोर कलेवर धारण करने वाले भी हमें ज्ञात होते हैं जो असह्य ताप में भी अपना अस्तित्व बनाए रखने में सफल हो जाते हैं। कोई संकट पड़ने की भाँति ताप की अधिकता को सहन करने की शक्ति होना तो एक प्राण-रक्षा की व्यवस्था ही कही जा सकती है, परन्तु कुछ कीटाणु ऐसे विकट स्वभाव के भी होते हैं जो अपनी सहज क्रिया से घोर ताप उत्पन्न कर उसकी भयंकर आग से ही खेल करते हैं, इस बात का सहज विश्वास नहीं हो सकता। ऐसे ही विचित्र गुणों से युक्त कीटाणुओं का ज्ञान वैज्ञानिकों ने प्रयोग द्वारा प्रत्यक्ष करने में सफलता प्राप्त की है। घास-फूस की सूखी ढेरी भारी ढूहे रूप में बनाकर सुरक्षित रक्खी जाती है जिससे चारा का अभाव होने पर पशुओं को सुविधापूर्वक उसे खिलाया जा सके। सैनिक पशुगृहों, गोशालाओं या सामूहिक खेती के मैदानों में ऐसे विशालकाय ढूहे पुआल या लंबी घास के बनाकर रख दिए जाते हैं, परन्तु जो घास छप्पर रूप में बनाने पर किसी स्थान को वर्षा के जल से भीगने न देने के लिए प्रयुक्त हो सकती है, उसी को ऊपर से ढक रखने तथा नीचे पानी न रुकने देने के लिए विशेष व्यस्था रखनी पड़ती है। यदि घास बिल्कुल सूखी पड़ी रहे तो उसमें कोई विकृति नहीं होने पाती, किन्तु उसके अन्दर पानी या आर्द्रता का प्रवेश हो तो बड़े भयंकर परिणाम हो सकते हैं। सारी घास या पुआल की ढेरी नमी के कारण भीतर से जल-भुन या झुलस सी जाती है। यहाँ पर हम घास की सड़ान की बात नहीं कर रहे हैं। बल्कि उसके तीव्र ताप के कारण अध-जला या पूर्ण दग्ध हो जाने की बात कर रहे हैं। रसायनवेत्ता इन विकृतियों की व्याख्या कर कहते थे कि कुछ रासायनिक परिवर्तन होकर ऐसे परिणाम उत्पन्न करते हैं। वे इस क्रिया कीव्याख्या या रसायन के नियमों से किसी प्रकार कर संतोष करते रहे हैं। परन्तु आज का कीटाणु-शास्त्री यह सिद्ध करने में सफल हो सका है कि आर्द्रता या नमी पहुँची घास के भारी भंडार को दग्ध करने वाली क्रिया कीटाणुओं की ही करतूतें हैं।

कीटाणु विज्ञान के शोध कार्य की उधेड़बुन करने वाले विद्वानों का कथन है कि आज के कीटाणु विज्ञान सम्बन्धी शोधकर्ताओं में से लगभग ९८ प्रतिशत तो रोगोत्पादक कीटाणुओं या रोगाणुओं के शोध कार्य में संलग्न पाए जाते हैं तथा शेष दो प्रतिशत शोधकर्त्ता ही कीटाणु विज्ञान के उन पक्षों को लेते हैं, जिनका सम्बंध रोग से नहीं होता। हम इन शोधकर्ताओं के अतिरिक्त आधुनिक चिकित्सकों की भारी संख्या भी रोगोत्पादक कीटाणुओं की उधेड़बुन में व्यस्त पाते हैं। परन्तु कीटाणुओं का हाथ कुछ अन्य रचनात्मक या विध्वंस के कार्यों में भी हो सकता है। इसकी खोज या चर्चा करने वाले विरले ही हैं। सच पूछिए तो कीटाणु शब्द उच्चारण करते ही रोग की बात सिर में चक्कर मारने लगती है। सर्वत्र रोगों के कीटाणुओं द्वारा उत्पादन की विज्ञप्ति ही देखी जाती है परन्तु कुछ दाल वाले पौधों की जड़ में नोषजन को मात्रा वायु से खींच कर ठोस कणों रूप में स्थापित करने वाले विलक्षण कीटाणु भी होते हैं। इस बात की चर्चा तो कहीं कहीं ही पढ़ने को मिलती है किन्तु इस पक्ष को भी छोड़कर हम केवल शुद्ध वैज्ञानिक शोध के पक्ष को

* "कीटाणुओं की कहानी से"।

लेकर कीटाणु की एक विलक्षण क्रिया की यहाँ चर्चा कर रहे हैं।

पुआल या घास के भारी ढूहे में कभी-कभी आग लग जाया करती है। उसके कितने ही कारण हो सकते हैं। कभी तो मनुष्य की असावधानी या दूसरों को हानि पहुँचाने के लिए उसके पुआल के भंडार में आग लगा देने की कुटिल वृत्ति से आग लग जाया करती है। इस दहन क्रिया का उत्तरदायी मनुष्य ही होता है जिसके जाने या अनजाने हस्तक्षेप से सारा ढूहा भस्म हो जाता है। मनुष्य की आँख नहीं देख पाती होगी, परन्तु इस दहन क्रिया में साधारण स्थिति में अमर से ही रह सकने वाले असंख्य प्राणी विदग्ध हो जाते हैं। देखने में तो ढूहे में निष्प्राण, सूखी घास मात्र होती है जो प्राणियों से सर्वथा विहीन मानी जा सकती है परन्तु उस सूखी स्थिति में अगणित सूक्ष्मदर्शकीय प्राणी विद्यमान रहते हैं जिन्हें कीटाणु, परमकीटाणु आदि नाम दिया जाता है। यह बात अवश्य है कि घास या पुआल के सूखे होने से वे सूक्ष्मदर्शकीय प्राणी सुप्त या निष्क्रिय से ही पड़े रहते हैं। वे अपना शरीर विभाजन कर संतान-वृद्धि का उपयुक्त वातावरण नहीं पाते। यही उनकी निष्क्रियता समझिए। जब मनुष्य के हाथों घास के ढेर में आग लग जाती होगी तो किसी अज्ञात कारण से ही अपनी मृत्यु होते देख ये सूक्ष्मदर्शकीय प्राणी क्या कहते होंगे। यदि वे कुछ मनोभावना रखते होते तथा ऐसी दग्ध क्रिया में मनुष्य का किसी प्रकार हाथ होने का उन्हें ज्ञान हो पाता तो मनुष्य के प्रति उनकी भावना क्या हो सकती थी ? परन्तु इन बातों की स्थिति एक प्रकार से कल्पना जगत में मानी जा सकती है।

मनुष्य का जाने या अनजाने रूप में हाथ न लगा हो तब भी पुआल के भारी ढेर में आग लग जाने का दृश्य उपस्थित हो जाता है। कारण यह हो सकता है कि दैवयोग से आकाशमार्ग से कहीं से स्फुलिंग उड़ता हुआ उस ढेर में आ गिरता है अथवा विद्युतपात होने से अग्निलीला देखी जाती है। ऐसी किसी भी दुर्घटना का परिणाम घास या पुआल के साथ असंख्य कीटाणुओं का प्राणान्त ही होता है। दुर्घटना का कारण चाहे मनुष्य के हाथों चाहे किसी अन्य साधन से आई हुई आग या चिनगारी का पुआल या घास के ढेर में पड़ना होता है किन्तु कुछ दग्ध क्रिया किसी वाह्य साधन से न होकर आन्तरिक कारणों से ही होती है जो विशेष विचारणीय है।

आन्तरिक कारणों द्वारा ही घास या पुआल के भारी भंडार में आग लगाने का कृत्य प्रारम्भ में सूक्ष्मदर्शकीय प्राणियों अथा आर्द्रता द्वारा उपस्थित होता है। यदि पुआल या घास वास्तविक रूप से सूखी है तो स्वतः अग्निकांड उपस्थित होने में सूक्ष्म-दर्शकीय प्राणी असमर्थ ही होंगे। यदि आर्द्रता भी हो और घास या पुआल सूक्ष्मदर्शकीय प्राणी विहीन हो तब भी आग लगने का भय न होगा किन्तु कीटाणु (सूक्ष्मदर्शकीय प्राणी) तो उसमें होते ही हैं। उनको पुआल में अर्द्रता होने पर किसी प्रकार अवरुद्ध न किया जाय तो निस्संदेह ही ढेरी में आग लगकर रहेगी जिससे घास का प्राणदायी तत्व नष्ट हो जायगा। इस क्रिया का मूल कारण सूक्ष्म दर्शक प्राणियों की अपार वृद्धि अर्थात् क्रियाशीलता ही होगी। प्रारंभ में थोड़े रूप में ही कीटाणुओं द्वारा ताप-वृद्धि प्रारम्भ होती है। परन्तु धीरे-धीरे तापवृद्धि होकर अग्निकांड का दृश्य उपस्थित होकर ही रहता है। इसे रोक सकना एक असंभव कार्य ही कहा जा सकता है। हमें घास फूस या पुआल के भारी ढेर में भीतर ही भीतर ऐसी कोई भयानक क्रिया होना बड़े ही विस्मय की बात ज्ञात हो सकती है।

घास या पुआल को मनुष्य तो खाने योग्य नहीं समझता किन्तु पशुओं के लिए उसी में यथेष्ट खाद्य सामग्री होती है जिसे शर्करा कर्बोज, (कार्बो हाइड्रेट) तथा प्रोटीन नामक खाद्य तत्वों का मिश्रण कहा जा सकता है। इन पदार्थों की मात्रा का अनुपात भिन्न होने से ही मनुष्य इनका आहार नहीं कर पाता, परन्तु पशु उसे ही ग्राह्य समझ उसे खाकर बलिष्ट बनते हैं। इन पोषक पदार्थों की यथेष्ट मात्रा तथा

आर्द्रता आंतरिक भाग में रहने पर ही कीटाणुओं की भारी संख्यावृद्धि या क्रियाशीलता प्रारम्भ होती है। हम अपने शरीर का तापमान बढ़ा देख कर ज्वर रोग का नाम देते हैं। वह किसी न किसी प्रकार के रोगोत्पादक कीटाणुओं का अपना शरीर थोड़े-थोड़े समय पर दो में विभक्त कर नए कीटाणुओं को जन्म देने से ही उत्पन्न होता है। हम केवल परिणाम देख कर ही रोग का कुछ नाम दे देते हैं परन्तु कीटाणु के एक नियम पूर्वक संतान बढ़ाने द्वारा ही हमारे शरीर में तापमान बढ़ने का तथ्य लोगों को भूल सा जाता है। घास, पुआल आदि में तापमान बढ़ाने में प्रारम्भ में कुछ साधारण रूप में कई प्रकार के कीटाणु ही सक्रिय या संतानवृद्धि में संलग्न होते होंगे। यथार्थ में प्रारम्भिक क्रिया का ज्ञान होना एक कठिन बात ही है। यह देखा जाता है कि थोड़ी मात्रा में पुआल या घास में ऐसी क्रिया उत्पन्न करना असंभव ही होता है।

जहाँ घास या पुआल का बहुत भारी ढेर है उसमें बीच की स्थिति हम अनुमानित कर सकते हैं। ढेर के बीच के भाग में भारी दबाव होने से रही-सही हवा उन बहुत ही सूक्ष्म अंतरालों में पड़ी रह सकती है जो एक में एक सटे तथा दबाव में पड़े तिनकों के के मध्य कुछ रह पाती है। यह तो स्पष्ट ही है कि उस घोर दबाव के आंतरिक भाग में जो कुछ भी हवा पड़ी रह सकती है, उसकी जगह फिर नई हवा पहुँचाना सर्वथा कठिन हो सकता है। अतएव एक बार सूक्ष्म मात्रा में दबी पड़ी हुई हवा किसी प्रकार व्यय हो जाय तो उसका स्थान लेने के लिए बाहर से हवा कभी भी नहीं पहुँच सकती। इस स्थिति का ज्ञान हमारे सूक्ष्मदर्शकीय प्राणियों की विकट क्रिया समझने में विशेष सहायक हो सकता है।

पुआल के आर्द्र भंडार का आंतरिक कृत्य वृहद् भंडारों में किस प्रकार होता होगा, इसका प्रारम्भिक चित्र जान सकने या थोड़ी मात्रा के पुआल में उत्पन्न कर सकने में कठिन से कठिन होने पर भी यह अनुमान किया गया है कि सभी प्रकार के वे कीटाणु अपनी क्रियाशीलता करते होंगे जो ओषजन की खुली मात्रा ही ग्रहण कर जीवित रहने के कारण मुक्त ओषजन-जीवी कहलाते हैं। इनकी यथेष्ट संतान-वृद्धि या क्रियाशीलता का यह परिणाम होता है कि घास या पुआल के आर्द्र रूप के बहुत बड़े ढेर में भीतरी भाग में भारी दबाव के होते हुए भी जो थोड़ी बहुत ओषजन विद्यमान रहती है, वह कीटाणुओं की बढ़ती हुई संख्या द्वारा समाप्त हो जाती है। दूसरे शब्दों में आप यह भी कह सकते हैं कि खुले रूप में वायु पीकर जी सकने वाले (मुक्त ओषजन जीवी) कीटाणु या किसी भी प्रकार के सूक्ष्मदर्शकीय प्राणी उस समय तक अपनी क्रियाशीलता अर्थात संख्यावृद्धि जारी रख सकते हैं जब तक आन्तरिक भाग में कुछ भी ओषजन की मात्रा रह गई हो। जब ओषजन की सब मात्रा उसके द्वारा समाप्त कर दी गई हो तब आगे की संख्या-वृद्धि अर्थात अपना शरीर-विभाजन कर एक से दो बनते जाने और इस प्रकार भीतरी भाग का तापमान और भी अधिक करने की बात क्या कहें, खुली ओषजन के अभाव में तो उस समय तक उत्पन्न सूक्ष्मदर्शकीय प्राणियों के ही प्राण के लाले पड़ जाते हैं। आप यह बात निस्संकोच कह सकते हैं कि उनकी मृत्यु की घड़ी निकट आ पहुँचती है या मुक्त ओषजनजीवी कीटाणु या सूक्ष्मदर्शकीय प्राणी लोक में मानों कोई प्राणान्तक रोग या निराहार-दैवयोग आ पहुँचता है। निराहार का अर्थ तो हम यह समझ कर सहज ही लगा सकते हैं कि पुआल या घास की आर्द्र मात्रा में पोषक द्रव्य रहने पर भी जब उन्हें ओषजन नहीं मिलती तो उनके लिए पोषक द्रव्य को भी ग्रहण करना सम्भव नहीं हो सकता अतएव उन्हें निराहार ही मृत्यु-मुख के निकट जाना पड़ता है। पुआल या घास पर जो प्रभाव पड़ सकता है उसकी हम कल्पना कर सकते हैं। सूक्ष्मदर्शकीय जीवाणुओं (या संक्षेप में सूक्ष्मदर्शकाणुओं) की क्रियाशीलता से जो ताप उत्पन्न होता है वह बाहर हवा

में फैल उठने का अवसर नहीं पा सकता तथा उसे बाहर पहुँचा सकने वाला कोई चालक पदार्थ भी नहीं होता। वहाँ तो घोर दबाव के भीतरी भाग पर चारों ओर से पुआल या घास ही आच्छादित रहती है जो ताप की गति अवरुद्ध रखने वाली (निरोधक) वस्तु ही होती है। अतएव ताप बीच में ही बँधा पड़ा रह जाता है।

किंवदन्ती है कि बैंगन किसी को विशेष हानिकारक है तो वही किसी अन्य व्यक्ति के-रोगी होने पर रोग से छूटते ही प्रथम पाचक, निर्दोष आहार (पथ्य) हो सकता है। इस उक्ति का अर्थ आपको स्पष्ट यदि न भी हो तो कीटाणु जगत का एक ऐसा विरोधाभास का विकट उदाहरण तो इसका अर्थ खोलकर आपके सामने रख ही देगा। जो स्थिति एक प्रकार या वर्ग के सूक्ष्म दर्शकाणुओं (सूक्ष्मदर्शकीय प्राणियों) के लिए भयावह है, ओषजन की खुली मात्रा रह सकने के लिए उन सूक्ष्मदर्शकाणु प्राणी वर्गों के लिए जीवन चलाने योग्य नहीं उस स्थिति में इन वर्गों का दम घुटने सा दृश्य उपस्थित होने पर हम एक प्रकार के ऐसे कीटाणुओं का उदय देखते हैं, जो उलटे पथ के अनुगामी कहे जा सकते हैं। ओषजन और खाद्य-द्रव्य की तो उन्हें भी आवश्यकता होती है। अतएव पूर्णतया विपरीत पथगामी तो कहना कठिन ही है, परन्तु इतना अवश्य है कि मुक्त ओषजन-जीवी, खुली वायु से ओषजन प्राप्त करने वाले सूक्ष्म दर्शकीय प्राणी, की भाँति खुले रूप की ओषजन ग्रहण कर सकने में असमर्थ होते हैं। वे केवल कहीं पदार्थ में बँधे या संयुक्त पड़ी ओषजन को ही अपने प्रयास से निकाल कर ग्रहण कर सकने में समर्थ होते हैं। मत्स्य-जगत में तो हम यह स्पष्ट ही देखते हैं कि ओषजन जीवन के लिए आवश्यक होने पर भी उनको खुले वायु मण्डल में आते ही अपने प्राण पखेरू छोड़ देने पड़ते हैं। जीवन का साधन ओषजन सामने या चारों ओर विद्यमान होने पर भी वे अभ्यस्त जीवन-व्यापार से भिन्न नहीं जा सकते। उनके गलफड़े खुली हवा से ओषजन ग्रहण करने में अक्षम होते हैं। वे तो पानी के अन्दर ही रह कर अपने गलफड़ों से पानी से थोड़ी मात्रा में ओषजन खींच कर ही जीवन चलाने के अभ्यस्त होते हैं? इसी प्रकार यह द्वितीय प्रकार का सूक्ष्मदर्शकों से दिखाई पड़ सकने वाला सूक्ष्म जाति का प्राणी (सूक्ष्मदर्शकाणु) होता है। यह बँधे पदार्थों से ओषजन खींच कर जीवन काय चलाता है। पानी के अन्दर भी पदार्थ सड़-गल कर इन्हें पोषण द्रव्य दे सकते हों तो इनका जीवन कार्य चल सकता है। इनको बद्ध ओषजन जीवी सूक्ष्मदर्शकीय प्राणी ही कहा जा सकता है। जब पुआल या घास के आर्द्र किन्तु भारी भण्डार में गहरे दबाव के प्रभाव में भीतरी भाग में पहले वर्ग के सूक्ष्मदर्शकाणु आपकी यथेष्ट संख्या-वृद्धि कर ओषजन की सभी मुक्त मात्रा पी चुके होते हैं और पोषक द्रव्य या पुआल में ओषजन केवल संयुक्त रूप में ही रह गई होती है तो ये बद्ध ओषजन-जीवी अवतरित होते हैं। यह प्रश्न स्वभावतया ही उठ सकता है कि ओषजन की खुली मात्रा समाप्त हो जाने पर केवल खुली वायु से ही ओषजन ग्रहण कर सकने वाले कीटाणुओं या अन्य सूक्ष्मदर्शकीय प्राणियों की वृद्धि रुक जाती है अतएव विषम स्थिति उत्पन्न होने से केवल बद्ध ओषजन-जीवी अर्थात वस्तुओं में बँधी या संयुक्त रूप में पड़ी ओषजन पीने वाले सूक्ष्म दर्शकीय प्राणी ही जीवन के उपयुक्त यह वातावरण पाते हैं। परन्तु वातावरण ऐसे ही कीटाणुओं या सूक्ष्मदर्शकाणुओं के लिए भले ही अनुकूल हो, वे ऐसे वातावरण में कहाँ से आ टपकते हैं? इसका तो बड़ा सरल उत्तर है। पुआल की आर्द्रता में पहले वर्ग के मुक्त ओषजन-जीवियों ने जब अपनी संख्या-वृद्धि प्रारम्भ की तो वे अन्य वर्गीय कीटाणु भी पहले से ही विद्यमान थे जो अपने लिए विषम स्थिति समझ कर केवल दुबके पड़े थे। वे जीवित तो पड़े रह सकते थे। परन्तु पनपना या सक्रिय होना सम्भव नहीं था। अतएव

जब इन बद्ध ओषजन जीवियों को दबे पड़े रहने पर उपयुक्त अवसर प्राप्त हुआ तो तुरन्त ही संख्या वृद्धि करने में संलग्न हो गए। अब इनके उत्कर्ष की बारी आई और मुक्त ओषजन-जीवी अपना अपकर्ष काल अनुभव कर अपनी शक्ति के अनुसार जीवित किन्तु दुबके पड़े रहने या मृत हो जाने का अवसर समझने लगे। यह सूक्ष्मदर्शकीय प्राणियों के जगत की विचित्र क्रिया है।

जब मुक्त ओषजन-जीवी का कार्य-क्षेत्र बन्द हो गया होता है तो बद्ध ओषजन जीवी अपनी वृद्धि करते चले जाते हैं। उनकी क्रियाशीलता से पहले के कीटाणुओं द्वारा उत्पन्न ताप में और भी वृद्धि होने लगती है। बद्ध ओषजन-जीवी ज्यों-ज्यों तीव्र गति से संख्या-वृद्धि करते जाते हैं, त्यों-त्यों पुआल के भारी भण्डार के आन्तरिक भाग का तापमान अधिकाधिक होता जाता है। ये बद्ध ओषजन-जीवी बढ़ते हुए तापमान में अपनी ओर भी अधिक संख्या-वृद्धि करने में समर्थ होता है। यह कैसा विचित्र व्यापार होता है। एक ओर तो ये बंधे रूप में ओषजन ग्रहण करने वाले होते हैं। दूसरी ओर ताप के ही प्रेमी या ताप से ही उत्प्रेरणा प्राप्त करने वाले होते हैं। ये अग्नि-सहिष्णु सूक्ष्मदर्शकाणु तापवीर कीटाणु होते हैं।

हम सभी योद्धाओं को एक समान बल रखने वाला नहीं पा सकते। वीर योद्धाओं में भी कुछ तो अपेक्षाकृत दुबले हो सकते हैं और कुछ अपेक्षाकृत अधिक बलिष्ठ हो सकते हैं। यही बात हम तापवीरों के सम्बन्ध में भी कल्पना कर सकते हैं। तापवीर हैं तो सही, किन्तु कुछ सीमित तापमान तक ही सहन शक्ति या उत्प्रेरण प्राप्त करने की शक्ति हैं तो उनको आगे बढ़ते नहीं देखा जा सकता, परन्तु कुछ बद्ध ओषजन-जीवी ऐसे उग्र तथा अग्नि-साधक हो सकते हैं कि वे साधारण रूप के बढ़े तापमान में भी क्रियाशील न हो पाते हों। उनकी क्रियाशीलता प्रचंड तापमान होने पर ही प्रारम्भ हो सकती हो। अतएव एक क्रमिक रूप के सूक्ष्म दर्शकाणुओं की स्थिति ध्यान में रक्खी जा सकती है जिनमें पहले साधारण रूप के मुक्त ओषजन-जीवी माने जा सकते हैं। उनके द्वारा तापमान बढ़ाने पर बद्ध ओषजन-जीवियों में भी साधारण तापप्रिय या तापवीर हो ताप-वृद्धि को आगे बढ़ाते हों। उनकी क्रिया समाप्त या शिथिल होने पर उग्र ताप प्रिय बद्ध ओषजन जीवी आते हों और अपनी संख्या-वृद्धि या क्रियाशीलता से उग्र तापमान करते हों। उनसे भी उग्रतर बद्ध ओषजन-जीवी वर्गों की क्रियाशृंखला के पश्चात अन्त में उग्रतम तापप्रिय बद्ध ओषजन-जीवी का जब आगमन होता है तो स्थिति अनियंत्रित सी हो जाती है। चरम सीमा के तापवीरों की क्रियाशीलता ने जो भयंकर तापमान उत्पन्न करने में सफलता प्राप्त की वह पुआल या घास को पूर्णतया विदग्ध करने वाला उच्च तापमान होता है। फलतः भयंकर आग की लपटें उठती हैं। कीटाणुओं की अपनी अपनी वृत्तियों के अनुसार अनुकूल परिस्थितियाँ आते जाने से सहज सन्तान-वृद्धि या संख्या-वृद्धि की क्रिया से ही आग का आगमन होता है। पुआल भस्म हो जाता है। उसके पोषक द्रव्य भी नष्ट हो जाते हैं। साथ ही इस नाट्य लीला के उग्र प्रवर्तक कीटाणु भी लुप्त होकर अपनी तापवीरता की इतिश्री कर देते हैं।

कीटाणुओं के साधन से अग्निकांड की बात पर विचार करने से हमें विलक्षण तथ्य ज्ञात होते हैं। खुली वायु का अभाव होने तथा ताप की कुछ वृद्धि हो चुकने पर जो बद्धओषजन-जीवी कीटाणु या सूक्ष्मदर्शकाणु का पहला वर्ग क्रियाशील होता है इसकी कर्तृत्व शक्ति की चरम सीमा होने पर एक निश्चित ऊँचाई का तापमान हो गया होता है। उस सीमा के तापमान में आने से कीटाणु बढ़ नहीं सकते। इनसे अधिक ताप-वीर कीटाणु उस दर्जे के तापमान पर क्रियाशील होने की शक्ति रखकर उच्चतर तापमान की एक सीमा तक पहुँचते हैं। उनके भी बाद दूसरे तीसरे वर्ग अधिकाधिक उच्चतर ताप-

मान से अपनी क्रियाशीलता प्रारम्भ कर और भी ऊँचे दर्जे तक तापमान पहुँचा देते हैं। इसी प्रकार क्रमशः एक के बाद दूसरा अधिक तापवीर कीटाणु वर्ग आकर अंतिम रूप का तापवीर कीटाणु को क्रियाशील होने का अवसर देता है तो सर्वाधिक तापवीर कीटाणु के द्वारा चरम सीमा की संख्या वृद्धि होने से अत्यंत उत्तप्तावस्था में कीटाणु की शक्ति से अधिक तापमान-वृद्धि की आवश्यकता नहीं रह जाती। वह स्थिति तो आग उत्पन्न करने की रासायनिक क्रिया की ही हो जाती है। इतनी भारी गर्मी में भयंकर दबाव में पड़े पुआल या घास का आंतरिक मान झुलस कर काला पड़ने लगता है। यदि उस स्थिति को बचाने का प्रयत्न करने के लिए पुआल के भारी ढेर को उलटा पलटा जाय तब तो और भी भयंकर अवस्था हो जाती है। जो भीतरी भाग भारी तापमान के प्रभाव में पड़कर झुलस सा रहा था वह वायु का सर्वथा अभाव सा होने से काला पड़ कर ही रह जाता था। किन्तु जब छेड़ कर हटाया या बाहर किया गया तब तो आग लग सकने में जो एक मात्र कमी रह गई थी, वही हवा उसे प्राप्त हो जाती है और हवा के संयोग से आग की लपटें उत्पन्न होकर भयंकर अग्निकांड उत्पन्न कर देती हैं। भीतरी भाग का पानी तो कीटाणुओं द्वारा उत्पन्न ताप से पहले ही लुप्त हो गया होता है। परन्तु ऊपर से कुछ पानी छोड़ा जाय तो वह भी थोड़ी देर में सूख जाता है, आग बुझ नहीं सकती।

कीटाणुओं के साधन से उत्पन्न अग्नि को बुझाने या एक बार पुआल के भारी ढेर में आर्द्रता होने से उनकी क्रियाशीलता प्रारंभ हो जाने पर आग के कांड को रोकना असंभव कार्य है, परन्तु एक उपाय यह हो सकता है कि कीटाणुओं को भारी तापमान उत्पन्न करने का अवसर ही न दिया जाया। इसका एक मार्ग यह है कि पुआल का ढेर या तो छोटा रखा जाय जिस में भारी दबाव का प्रभाव ही न हो या बड़ा ढेर हो तो उसके अंदर खुली जगह या बाहर से संबंध रखने वाली दिल सी बना दी जाय तो आर्द्रता से मुक्त ओषजन-जीवी भले ही क्रियाशील रहें, परन्तु बराबर उन्हीं का वर्ग ही खुली हवा पाता रह कर संख्या-वृद्धि करता रहता है जिनसे एक सीमित तापमान ही उठ सकता है और वह भी बाहर से वायु के प्रवेश से बाहर प्रसारित हो कर समाप्त होता जा सकता है। खुली हवा का प्रवेश होते रहने से बद्ध ओषजन-जीवी पनप ही नहीं सकते और केवल बद्ध-ओषजन जीवी ही तापवीर हो सकने के कारण ऊँचा तापमान उठ ही नहीं सकता।

जिस पुआल के भारी ढेर में छेद बना कर भीतर हवा न पहुँचाई जा सकती हो और वह बिल्कुल सूखा भी न रक्खा जा सकता हो उसकी रक्षा का एक मात्र उपाय यह है कि उसमें यथेष्ट लवण मिलाया जाय। आर्द्रता के स्थल में यथेष्ट लवण भी पहुँचने से जो लवण मिश्रित जल बनता है उसमें बद्ध ओषजन जीवी क्रियाशील नहीं हो सकते। कोई भी बद्ध ओषजन-जीवी आर्द्र पुआल के अंदर लवण-जल के अंदर क्रियाशील न हो सकने का यह कारण है कि कोई भी बद्ध ओषजन-जीवी तापवीर कीटाणु लवणप्रिय नहीं ज्ञात होता। यदि इन अवस्थाओं में पुआल की रक्षा की जाय तभी उच्चतम तापमान उत्पन्न होने की नौबत नहीं आ सकती।

जिन देशों में सूर्य की धूप कम होती है उन देशों में घास को शरद ऋतु में हिमाच्छादित होने या चारा का अभाव होने पर पशुओं को खिलाने के लिए बिल्कुल सूखी अवस्था में रखना कठिन ही होता है। अतएव उन देशों में घास के छोटे ढेर ही बनाए जाते हैं। किन्तु जहाँ पर्याप्त धूप होती है वहाँ घास खूब अच्छी तरह सुखा कर ऊँचे स्थल पर रखना ही उत्तम विधि होती है।

कीटाणुओं की अपनी क्रियाशीलता द्वारा ही उच्चतर तापमान उत्पन्न करते जा कर आग लग जाने तक की अवस्था उत्पन्न करना हमें उनकी गति विधि पर विशेष ध्यान देने के लिए विवश करता है। जिस डाल पर व्यक्ति बैठा हो उसी को काट

[शेषांश पृष्ठ ४३ पर]

उड़न-तश्तरियाँ और उनका रहस्य

श्री कृष्णचन्द्र दुबे, एम० एस-सी० भौमिक विज्ञान विभाग, विश्वविद्यालय, सागर

"नई दिल्ली के ऊपर आकाश में एक चुरुट (सिगार) से आकार की बन्दूक के कारतूस की तरह नुकीली, लगभग १०० फीट लम्बी एक वस्तु जिसके सिरे पर धुएँ की फुहार थी, करीब २० मिनट तक देखी गई। यह रहस्यमय वस्तु लगभग ५,००० फीट की ऊँचाई पर थी और अनुमानतः इसकी गति २,००० मील प्रति घंटा रही होगी। दो जेट-वायुयानों ने तुरन्त ही इसका पता लगाने के विचार से इसका पीछा किया। एक क्षण तक तो वह दिखीं परन्तु दूसरे ही क्षण वह अदृश्य थी·········कहाँ ?

उपरोक्त विवरण ६ अप्रैल सन् १९५२ के 'संडे डिसपैच' नामक समाचारपत्र से लिया गया है। यह कोई मनगढ़न्त अथवा कपोल-कल्पित खबर नहीं थी। सारे विश्व से इस प्रकार की असाधारण और रहस्यमय वस्तुएँ आकाश में विचरण करते देखी गयी हैं। अभी तक उनके रहस्य का उद्‌घाटन नहीं हुआ है। इनके आकार के आधार पर उन्हें 'उड़न तश्तरियाँ', फ्लाइन्ग-सासर, कहा गया है। दिल्ली के सिवाय भी भारत में अन्य स्थानों में इस प्रकार की तश्तरियाँ देखी गई हैं।

जब पहले पहल इन 'तश्तरियों' की आकाश में उपस्थिति की सूचना दी गई तो सर्वसाधारण और वैज्ञानिक जगत ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। इसका मुख्य कारण था कि ये सूचनाएँ अधिकतर किसानों और मजदूरों ने दी। पर जब ऐसे महत्वपूर्ण व्यक्तियों और ख्यातिप्राप्त वैज्ञानिकों ने, जिनके कथन को सरलता से टाला नहीं जा सकता, इस विचित्र वस्तु को देखा है और सूचना दी है, तो सारे जगत में, उनके रहस्य को जानने की इच्छा जाग्रत हो उठी है।

यह तो प्रायः अब एक सर्वमान्य सत्य है कि उड़न-तश्तरियाँ आकाश में उपस्थित हैं। इस पर शायद अब कोई मतभेद नहीं है। परन्तु इनका वास्तविक रूप क्या है, वे क्या हैं, उनका प्रादुर्भाव कहाँ से हुआ और वे क्यों हैं—इन प्रश्नों पर बड़ा विवाद है, बहुत मतभेद है। और यह मतभेद होना स्वाभाविक भी है। क्योंकि जब हम किसी वस्तु के सत्य को नहीं जानते और उस पर केवल अनुमान करते हैं, तो अनुमानों में विभिन्नता तो होगी ही। इन तश्तरियों का आकार अक्सर तश्तरी के समान देखा गया है, और इसीसे इन्हें उड़न-तश्तरियाँ कहा भी गया है, परन्तु और भी कई आकारों में य 'तश्तरियाँ' देखी गई हैं। घूमते हुए गोलों के आकार में, अथवा सिगार के समान लंबाकार में भी ये वस्तुएँ देखी गई हैं। तश्तरियों से धुएँ की फुहारें निकलती देखी गईं। इस धुएँ का रंग नीला और केसरी होता है। यह धुँआ या तो 'तश्तरी' के चारों ओर रहता है अथवा सिगार के आकार की 'तश्तरी' के सिरे पर रहता है। 'तश्तरियों' के रंग में भी भिन्नता पाई गई है। रंग की भिन्नता तो 'तश्तरियों' की विभिन्न ऊँचाई के कारण भी हो सकती है। धुएँ की फुहार का कारण उनकी तीव्र गति हो सकती है। तीव्र गति के कारण वायु से जो घर्षण होता है—वह धुए के आकार का दिखाई देता है। इनका व्यास भी दो फीट से लेकर सौ फीट या इससे अधिक पाया गया है और इनकी लम्बाई भी सौ फीट से कई सौ फीट की अनुमानित है। 'तश्तरियों' की

गति समान नहीं होती। वे एक स्थान पर स्थिर हैं, ऊपर-नीचे और अगल-बगल २,००० मील प्रतिघंटे की चाल से जा सकती हैं। सामान्यतः उनकी गति २०० मील प्रति घंटा से लेकर २००० मील प्रतिघंटा रहती है।

हमारे वातावरण में इन विचित्र वस्तुओं की उपस्थिति पर कई मत हैं। सर्वप्रथम, यह विचार है कि ये 'तश्तरियाँ' किसी अन्य ग्रह से आई हैं। जहाँ तक हमारा ज्ञान अपने पड़ोसी ग्रहों के बारे में है, केवल मंगल पर ही जीवन की उपस्थिति संभव है। मंगल ग्रह की तथाकथित 'नहरें' और इनके आसपास के धरातल के रंग का परिवर्त्तन तथा अन्य तथ्यों के आधार पर उस ग्रह में जीव का होना संभव माना गया है। मंगल में जीव पृथ्वी में जीव से पहिले उत्पन्न हो गया होगा ;और यदि ऐसा है तो यह संभव है कि मंगल-वासी हमसे विज्ञान और सभ्यता के अधिक ऊंचे स्तर पर होंगे। हम सभी जानते हैं कि हमारे वैज्ञानिकों के मस्तिष्क में चंद्रमा तक जाने का प्रयास चल रहा है। हमारा वैज्ञानिक-जगत 'अन्तर-ग्रह-यात्रा' पर गंभीरता से अन्वेषण कर रहा है। पर अभी तक हम केवल विचार और उत्कल्पनाओं के आगे नहीं पहुँच सके हैं। मंगल-वासी जो वैज्ञानिक स्तर पर हमसे ऊंचे हैं, उन्होंने शायद यह अंतर-ग्रह-यात्रा सफल कर ली हो और यह ज्ञान प्राप्त करके कि मंगल के पड़ोसी ग्रहों में पृथ्वी ही यात्रा के उपयुक्त है, वे इन 'उड़न तश्तरियों' में हमारी पृथ्वी पर विचरण कर रहे हैं। अमेरिका के वैज्ञानिक मेजर की होने, जो इन 'तश्तरियों' के अनुसंधान में लगे हैं, यह बताया है कि हम किस प्रकार दूसरे ग्रहों पर जा सकते हैं। सबसे पहिले शून्याकाश में एक बड़ा वायुयान छोड़ा जावेगा और इससे संबन्धित छोटे-छोटे यान सपरसैना अथवा 'पतरोल' यान रहेंगे। ये छोटे यान उस ग्रह का पर्यवेक्षण करेंगे। यदि उस ग्रह के 'निवासी' हमारे द्वारा भेजे गये इन यानों को देखें और इनका पीछा करें, तो स्वाभाविक ही ये उस खतरे से भागेंगे। फिर, यदि पृथ्वीवासी मंगल पर जाने की चेष्टा करें तो वे अपना आधार मंगल की परिक्रमा करने वाले चंद्रमा पर बनाएंगे। ऐसा करने में बार-बार पृथ्वी पर आना-जाना बच जायगा। मंगल-वासियों ने भी अपना आधार-स्थान हमारे चन्द्रमा पर बनाया हो और ये 'उड़न-तश्तरियाँ' उनके पतरोल-यान हों जो पृथ्वी का पर्यवेक्षण कर रहे हों। पीछा करने से 'तश्तरियाँ' उसी प्रकार भागती हैं जैसे हमारे यान मंगल से भागते। इस विचार को इस अवलोकन से पुष्टि मिलती है कि तश्तरियाँ उसी समय अधिक दिखाई देती हैं, जब मंगल-ग्रह परिधि में पृथ्वी के सबसे समीप रहता है।

एक अन्य विचार है कि हमारे किसी पड़ोसी ग्रह से न होकर, ये तश्तरियाँ किसी अन्य सौर-जगत से आती हों। पर यह विचार बिल्कुल तथ्यहीन है। यदि प्रकाश की गति से भी चला जावे तो अन्य तारों से पृथ्वी पर पहुँचने में वर्षों लग जावेंगे। सापेक्षवाद-सिद्धांत के अनुसार कोई भी भौतिक-पदार्थ प्रकाश के गतिवेग से यात्रा नहीं कर सकता।

तीसरा दृष्टि-कोण है कि ये तश्तरियाँ किसी अन्य ग्रह की न होकर हमारे यहाँ के ही नियंत्रित—यान है जो प्रयोग के रूप में छोड़े जा रहे हैं और इनका रहस्य बहुत ही गुप्त और सुरक्षित है। पर यह विचार कुछ उचित नहीं जान पड़ता। कारण कि हम देख रहे हैं कि कोई भी वैज्ञानिक-खोज कितनी भी गुप्त क्यों ही न रखी जावे, किसी न किसी प्रकार प्रकट हो जाती है। ऐटम-बम और हायड्रोजन बम और इसी प्रकार के अन्य गुप्त-रहस्यों का किसी न किसी प्रकार पता लग ही जाता है। फिर यह रहस्य अभी तक न खुला। यहाँ एक मनोरंजक बात कहना अनुचित न होगा। सोवियत रूस से अथवा चीन से इस प्रकार की कोई खबर सुनने में नहीं आई कि वहाँ भी 'उड़न-तश्तरियाँ' देखी गईं। तो क्या ये कम्यूनिस्टों का कोई आविष्कार हो सकती है? अथवा यदि मंगल के निवासी पृथ्वी-वासियों को इस प्रकार भयभीत कर रहे हैं तो साम्यवादियों के प्रति उनका यह पक्षपात क्यों!

उड़न-तश्तरियों पर चौथा विचार है कि वे उल्का हैं अथवा उल्का के भाग हैं। यह विचार तो बड़ा ही आधारहीन है। यदि ये 'तश्तरियाँ' उल्का हैं तो वे आकाश में स्थिर कैसे रहती हैं अथवा ऊपर व अगल-बगल कैसे चलती हैं? यह तो गुरुत्वाकर्षण नियम के विपरीत हुआ। दूसरे, 'तश्तरियों' के आकार का कोई उल्का हो भी तो वह वायु से घर्षण के फलस्वरूप काफी आवाज उत्पन्न करेगा। 'तश्तरियाँ' तो बिल्कुल शांत हैं। उल्का का रंग 'उड़न-तश्तरियों' के रंग के सामान नहीं रहता।

यह एक आश्चर्य की बात है कि इस प्रकार की वस्तुओं का वर्णन अठारहवीं शताब्दी में भी मिलता है। यदि यह सच है तो फिर यह विचार, कि 'तश्तरियाँ' हमारे वैज्ञानिक जगत की खोज हैं अथवा नियंत्रित-यान हैं, बिल्कुल निर्मूल हो जाता है।

इस प्रकार वैज्ञानिक जगत 'उड़न-तश्तरियों' के बारे में कोई निश्चित मत नहीं दे सका है। ब्रिटेन के हवाई मंडल की एक विज्ञप्ति में कहा गया है—"विशेषज्ञ कोई निश्चित मत प्रगट करने में असमर्थ हैं।' कैनेडा, संयुक्तराष्ट्र अमेरिका व दक्षिणी अमेरिका, आस्ट्रेलिया आदि देशों में 'उड़न-तश्तरियों' पर अन्वेषण चल रहा है। कैनेडा में तो तश्तरियों की उपस्थिति बताने वाली एक अन्वेषणशाला स्थापित की गई है। यहाँ पर हर समय चालक तैयार रहते हैं और नवीनतम यंत्र गामा-किरणों का पता लगाते रहते हैं, चुंबकीय-परिवर्त्तन, वातावरण में आकर्षण, उच्च सीमा अयनीकरण इत्यादि की सूचना ये यंत्र सदैव देते रहते हैं। शाही वायु सेना, दक्षिणी, अफ्रिका के वैज्ञानिकों से इस प्रश्न पर रहस्य आदान-प्रदान कर रही है। डाक्टर आर० एच० स्टॉय जो केपटाउन में ('रायल एस्ट्रानॉमर') राजकीय खगोलशास्त्री हैं, कहते हैं—"मेरा स्वयं का मत है कि ये कुछ ऐसी वस्तु है जो अभी तक ठीक-ठीक प्रकार से समझाई नहीं गई गई है।"

पर 'उड़न तश्तरियाँ' जो भी हों, हमें उनसे भय की कोई बात नहीं है। और क्यों न हम यह कहें कि यदि वे मंगलवासी हैं और हम पर आक्रमण करेंगे तो हम पृथ्वीवासी यह गुटबन्दी छोड़कर और पूर्व गुट—पश्चिम गुट; साम्यवादी देश—प्रजातंत्र देश के सारे मतभेद छोड़कर एक हो जावेंगे। ये उड़न-तश्तरियाँ यदि आक्रमण करेंगी भी तो हमारा लाभ ही होगा—हम एकता के सूत्र में बँध जायेंगे।

———

संज्ञाहर औषधियाँ—पृष्ठ २७ का शेष अंश

रहता है, किन्तु श्वास न आने से दर्शक को बड़ी घबड़ाहट हो सकती है। यह औषधि जीवन को अवरुद्ध नहीं करती, फिर भी इस निरापद औषधि का प्रयोग नागरिकों में उतना प्रचारित नहीं पाया जाता। सेना में इसे बेधड़क सभी रोगियों पर प्रयुक्त कर शल्य क्रिया को वेदना-शून्य बनाया जाता है। लगभग ८० प्रतिशत आहत सैनिकों के लिए गम्भीर संज्ञाहर औषधि की आवश्यकता नहीं होती, तुरन्त क्रियाशील संज्ञाहर औषधि ही काम देती है। संज्ञा-शून्यता शीघ्र ही दूर भी की जा सकती है। अतएव यह सैनिक शल्य कर्मों में एक अत्यन्त उत्तम संज्ञाहर औषधि सिद्ध हुई है। युद्ध स्थल में अन्य संज्ञाहर औषधियों का प्रयोग नहीं किया जाता। इसे ले जाना भी सुगम होता है। केवल छोटी-छोटी नालियों में बन्द इसके चूर्ण दूसरी वस्तु निर्मल जल ही आवश्यक के साथ है। वह भी बन्द नलियों में स्रवित रूप का रक्खा रहता है। बस, सुईयुक्त पिचकारी की देर होती है। सैनिक इसके प्रयोग से आतंक का ही अनुभव करता है। इस औषधि के आविष्कर्ता ने शल्य कर्म के लिए अनुपम सहायक साधन उत्पन्न कर कितना लोक कल्याण किया है।

—जगपति चतुर्वेदी

संज्ञाहर औषधियाँ

श्रम या थकावट दूर करने के लिए बहुतेरे लोग मादक या अर्द्ध मादक द्रव्यों का सेवन करते हैं। पालकी ढोने वाले श्रमिक ताड़ी या मद्यपान किए बिना लंबा मार्ग दूर करने में कदाचित क्लेश का अनुभव करते हैं। स्त्रियाँ खेत निराते, छत कूटते, या चक्की से आटा पीसते समय गायन द्वारा ही श्रम को हल्का बना समझती है। इन बातों की वैज्ञानिकता क्या है, यह तो कहना कठिन ही है। कदाचित हानिकर वस्तु भी केवल व्यसन होने के कारण ही ग्रहण करने में व्यक्ति को कुछ सुख सा अनुभव होता है। उसके न मिलने से वह थकावट का अनुभव करता प्रतीत होता है परन्तु वैज्ञानिक यही बताते हैं कि मादक वस्तुएँ स्वास्थ्य के लिए लाभकर कभी भी नहीं हो सकतीं। यह बात ठीक होते हुए भी आवश्यकता वश चिकित्सकों को मादक द्रव्यों का प्रयोग करना पड़ता है। सुश्रुत के समय में भी कदाचित शल्यकर्म के क्लेश को अनुभव न होने देने के लिए शल्य क्रिया के पूर्व मद्य पिलाया जाता था। आज भी हम अफीम के रूपान्तरित रूप मार्फिया का शरीर में टीका लगाकर अंग को ज्ञान शून्य कर शल्य कर्म करने की विधि देखते हैं। दन्त चिकित्सक मसूड़ों में मार्फिया को सुई से प्रविष्ट कराकर उन्हें सुन्न या संज्ञाशून्य कर सहज ही विकृत दाँत उखाड़ लेता है। रोगी को कुछ जान भी नहीं पड़ता।

पुराने समय में मादक या कुछ हल्के विषों द्वारा संज्ञाशून्यता के कृत्य होते होंगे। आज हम भाँग का लोगों द्वारा प्रयोग देखते हैं। कहा जाता है कि मध्यकाल में इस्लाम धर्म के प्रचार करने वाले कुछ दल धर्मविरोधियों या काफिरों को धर्म-परिवर्तन स्वीकार न करने पर तलवार के घाट उतार देते थे। कदाचित उन्हें ऐसा कठोर कार्य करने के लिए कुछ मादकता उत्पन्न करने लिए भाँग का माजूम दिया जाता था। इसको शायद हशीश नाम दिया जाता था। अतएव जो जोशीले धर्म-प्रचारक हशीश खाकर अपनी तलवार के बल पर धर्म स्वीकार कराने अन्यथा तलवार का आघात करने के लिए सन्नद्ध रहते उन्हें हशीश के नाम पर ही शायद कोई नाम दिया जाता। कालान्तर में किसी का बध करने वाले या हत्यारे को व्यक्त करने के लिए हशीश खाने वालों के तुल्य ही बताकर शायद एसेसिन कहा जाने लगा। अँग्रेजी में हत्यारे के लिए असेसिन शब्द शायद इसी तरह बना।

यदि उपरोक्त बात सही है तो उसे भाँग की मादकता का दुरुपयोग ही कहा जा सकता है। वही बात अफीम के सम्बन्ध में कही जा सकती है। अफीम तो बहुत पुरानी मादक वस्तु है। भाव प्रकाश में उसे खसफल क्षीर, अफूक तथा अहिफेनक पर्याय नामों से पुकारा गया है :—

उक्तं खसफलक्षीरमाफूकमहिफेनकम्। २२०॥
भाव प्रकाश प्र० ५

यह खसफल पोस्त की डोंडी ही है। पोस्त के बीज को खस बीज और खाखसतिल नाम दिया गया है।

उच्यन्ते खसबीजानि ते खाखसतिला आदि॥

खस या पोस्त को तिलभेद या खस तिल नाम दिया गया है। उसी की डोंडी को हरे रहते ही चीर-चीर कर रस बहा कर बाहर जम जाने दिया जाता है जिसे अफीम नाम दिया जाता है। यह एक प्रकार से प्राकृतिक पदार्थ ही हुआ परन्तु इसका दुरुपयोग कर मनुष्य अपने धन और स्वास्थ्य को नष्ट करता सकुचाता नहीं था। भारत में इसका प्रचार यथेष्ट था ही, परन्तु चीन में तो एक प्रकार से अफीम खाना

राष्ट्रीय व्यसन ही बन गया था। अँग्रेजों से चीनियों का बाक्सर युद्ध अफीम के ही प्रश्न पर हुआ था। यह हर्ष की ही बात है कि नई सरकारों ने राष्ट्र की दुर्बलता कोअनुभव कर अफीम का प्रचार सर्वथा बंद कर दिया। हमारे देश में भी यह अत्यंत नियंत्रित अवस्था में ही है। चिकित्सकों ने इस मादक द्रव्य से लाभ उठाने का प्रयत्न किया था। रोमन काल में शल्य-चिकित्सक रोगी को मद्य के साथ ही अफीम या अन्य औषधियाँ संयुक्त कर संज्ञाहरण या मूर्च्छा उत्पन्न करने के लिए पिला देते थे जिससे शल्य कर्म के समय उसे कष्ट का अनुभव न हो। फाँसी के तख्ते पर लटकने वाले अपराधियों को भी वेदना का अनुभव कम होने के लिए दयार्द्र अधिकारी ऐसी मादक वस्तुएँ पिला देते थे। कदाचित सूली पर चढ़ने पर जब हजरत ईसा मसीह वेदना से आर्त्तनाद करने लगे तो किसी दयार्द्र सैनिक ने उन्हें इसी प्रकार का कुछ मादक पेय पिलाकर उनकी वेदना कम करने का प्रयत्न किया था

मानव कष्टों तथा वेदनाओं को दूर करने के लिए हम औषधियों का ही प्रयोग होने की बात नहीं सुनते, प्रयुत्त तान्त्रिक भी सम्मुख दिखाई पड़ते हैं जिनमें मेस्मर का नाम सम्मोहन विद्या के लिए संसार में प्रख्यात है। मेस्मर की कथा लिख कर पृष्ठों को स्याही से रंजित करना कोई उत्साहप्रद कार्य नहीं प्रतीत होता, परन्तु युग का वह भी एक रूप था, इसकी स्मृति कभी भूली नहीं जा सकती। कान्स्टैंस झील के निकट किसी गाँव में फ्रीडरिश ऐंटन मेस्मर नाम का कोई व्यक्ति १७३३ ई० में उत्पन्न हुआ था। वीना में अध्ययन कर उसने चिकित्सक का उपाधि प्राप्त की तथा जन्तु-चुम्बकत्व का अध्ययन करने में कितने ही समय तक संलग्न रहा। एक दिन पेरिस नगरी में उसकी भव्य सम्मोहनशाला स्थापित दिखाई पड़ी। लोग इस देव मन्दिर में प्रवेश पाने तथा इस देव मूर्ति का दर्शन करने टूट पड़ते। सड़कों पर स्थान नहीं मिलता। इस मन्दिर का आराध्य देव निर्धारित समय पर चुपके से पिछली खिड़की से सम्मोहन-शाला या अपने देव-मन्दिर में प्रवेश करता जिससे दर्शक मंडली उसे देखने की उत्सुकता में उसे भीड़ के मारे कुचल ही न दें। एक बार तो सचमुच दबकर नाली में लुढ़क भी गया। लोगों में कितनी अपार श्रद्धा थी! कोई लंगड़ा है। कोई लूला है। किसी को कुछ रोग है, किसी को कुछ व्याधि है। किसी को शारीरिक कष्ट है। किसी को मानसिक कष्ट है। किसी को सन्तान नहीं होती, आदि आदि। कष्ट चाहे जैसा हो सबकी चिकित्सा मेस्मर के जादू या सम्मोहन विद्या में थी। वह सम्मोहन शाला में मंच पर खड़े होकर ज्यों ही हाथ हिलाता चारों ओर घोर नीरवता छा जाती। वातावरण में निष्ठा, धार्मिकता, विश्वास का इतना प्रसार हो जाता कि कहीं तिनका भी नहीं हिलता। किन्तु फ्रांस की राजक्रान्ति ने आकर इस सम्मोहन आश्रम को उखाड़ दिया। मेस्मर कठिनाई से जान बचाकर भगा। उसके कितने ही मित्र सहायक बध किए गए। मेस्मर भागकर शेष जीवन अज्ञात रूप में अपने ग्राम में व्यतीत कर मृत हुआ परन्तु उसका सम्मोहन अस्त्र मेस्मेरिज्म या मेस्मरवाद के नाम से जीवित ही रह गया। आज भी कितने लोग ऐसे हैं जो सम्मोहन विद्या में अटूट विश्वास करते हैं। उनके लिए विज्ञान कौन सा उपदेश दे!

कार्लाइल ने मेस्मर के सम्बन्ध में ठीक ही लिखा है :—

"कान्स्टैन्स नामक पुराने नगर के निकट बोडेंसी पुष्करिणी के तट पर उसे टहलते तथा विचारमग्न पड़ा रहने दो। क्योंकि इस प्रकार इस विचित्रतम नवीन रूप में पुरातन तथा पुनः प्रस्फुटित होता है कि मनुष्य वह वस्तु है जिसे हम विचित्र प्राणी तथा मनुष्य के ऊपर विचित्र शक्ति रखने वाला कहते हैं। तथा सर्वाङ्गतः उसमें ऐसा जीवन है तथा उसके चहुधा ऐसा जगत है जैसे उसके शरीर-वैज्ञानिकों स्नायुसंस्थानों, भौतिकता तथा आदिभौतकता आदि के साथ विजयिनी विश्लेषण शक्ति पूर्णतया सब नाम भी नहीं ले सकती; व्याख्या करनी तो दूर की

ही बात रही। उसी में तन्त्रवादी भी सभी युगों में आ-आकर अपच अंश ग्रहण करते रहेंगे।"

तान्त्रिक सम्मोहन विद्या की बात जाने दीजिए परन्तु वैज्ञानिक सम्मोहन या संज्ञाहरण औषधियों का प्रयोग तो नवीन युग के चिकित्सा विज्ञान के लिए अपरिहार्य वस्तु ही हो गई है। उसका आधुनिक रूप में किस प्रकार अवतरण हुआ इस कथा को जानने के लिए हमें लार्ड सिम्पसन का परिचय प्राप्त करना चाहिए। कहा जाता है कि सिम्पसन के जन्म के समय उसकी माता को असह्य प्रसव वेदना हुई थी। उसको होश सँभालने पर भर्त्सना या उलाहना की बातें सुननी पड़ती, मानो नवजात शिशु अपनी जननी को हठात् वेदना पहुँचाने में कोई दोषी हो। यह तो प्रकृति का व्यापार है जिसमें निरीह शिशु कर ही क्या सकता है ? उसे तो माता तथा प्रकृति दोनों की ही अनुकम्पा होने पर ही भूमिष्ठ होने तथा संसार को देखने का अवसर प्राप्त हो सकता है। फिर भी निमित्त कारण ही सही, परन्तु सिम्पसन को बातें सुननी पड़ती। वह सोचता कि क्या भावी माताओं के कष्ट को न्यून करने, प्रसव वेदना को मिटाने का कोई उपाय संभव है।

क्लोरोफार्म एक दवा ज्ञात हुई जो मनुष्य में मूर्छा उत्पन्न कर सकती है। सिम्प्सन ने पहले इस औषधि का प्रयोग कुत्तों पर किया। उसको सुँघा कर वह मूर्च्छित कर देता। घण्टों के पश्चात् उसे पुनः होश आता। एक बार सिम्पसन ने इस विचित्र औषधि का प्रयोग मित्रमण्डली में करना चाहा। सब आमन्त्रित किए गए। मेज सजा दी गई किन्तु भोजनशाला में विचित्र कांड हो गया। पाक शास्त्री रसोइए बेहोश होकर लुढ़क पड़े। क्लोरोफार्म की शीशी पाकशाला में खुली पड़ी रह गई थी। उसका प्रभाव फैलने पर रसोइए मूर्च्छित हो पड़े। जब मित्र मंडली आकर भोजन आदि से छुट्टी पा गई तो सबको क्लोरोफार्म के पात्र खोलकर सूँघने के लिए कहा गया। थोड़ी देर में ही सारी मण्डली इधर-उधर लुढ़कती बेहोश हो गई। कई घण्टों तक मधुर स्वप्न देखते रहने के पश्चात् उन सबकी मूर्च्छा दूर हुई।

सिम्पसन ने क्लोरोफार्म को माताओं की प्रसव-पीड़ा अनुभव न होने देने के लिए अच्छा अस्त्र समझा उसका प्रयोग करने का जब उसने विचार प्रकट किया तो ईसाई धर्म संघ का प्रबल कोप उबल पड़ा। सभी धर्मप्रचारक धर्माचार्य चिल्लाने लगे कि प्रसव पीड़ा तो स्त्री का प्राकृतिक धर्म है। ईश्वरीय व्यवस्था में यह व्याघात घोर अपराध है। प्रसव पीड़ा के दूर करने के लिए क्लोरोफार्म या किसी कृत्रिम औषधि का प्रयोग नास्तिकता तथा घोर अधार्मिकता है। सिम्पसन के वश की यह बात नहीं थी कि रूढ़िवादियों को विवेक प्रदान करता। निदान क्लोरोफार्म का प्रयोग कर लाभ उठाने से निरीह माताएं वंचित रहने लगीं। निदान इङ्गलैंड की साम्राज्ञी विक्टोरिया का प्रसव काल आया। साम्राज्ञी कई संतान उत्पन्न कर चुकी थीं, परन्तु अवस्था अधिक होते जाने से उस बार उन्हें घोर प्रसव-वेदना हो रही थी। उन्हें क्लोरोफार्म की बात ज्ञात हुई। ईसाई धर्मसंघ की भी बात उन्हें सुना दी गई परन्तु उन्होंने तुरन्त सिम्पसन की बुलाहट की। क्लोरोफार्म का प्रयोग किया गया। ईसाई धर्मसमाज देखकर सन्न रह गया। जब सम्राज्ञी इस उपचार से प्रसव पीड़ा से बच सकती हैं तो जन-साधारण को क्लोरोफार्म के प्रयोग में क्या हिचक हो सकती थी। वैज्ञानिक पथ ने रूढ़िवादिता को इस प्रकार अन्त में पराजित कर दिखाया।

अमेरिका में विलियम ग्रीन मार्टन नाम का एक युवक चिकित्सक १८४६ ई० में अपने साझीदार होरेस बेल्स के साथ किसी रोगी का दाँत निकालने में पीड़ा न होने देने के लिए हंसाने वाली गैस का प्रयोग कर रहा था। दुर्भाग्य वश पहला रोगी मृत हो गया। इस दुर्घटना से उस के साझीदार का साहस तो टूट गया, परन्तु ग्रीन मार्टन ने किसी दूसरी अन्य वस्तु को संज्ञा-नाश के लिए प्रयुक्त करने का उद्योग किया। ईथर नामक द्रव उसके हाथ लगा। उसका

प्रयोग कुत्ते पर कर उसने निरापद रूप से मूर्च्छा उत्पन्न होते देखा। कुछ अन्य जंतुओं पर भी प्रयोग में कोई बाधा या उपद्रव न होते देख उसने एक फेरी-वाले विक्रेता का दाँत ईथर द्वारा मूर्च्छा उत्पन्न कर निकाला। पूछने पर यह ज्ञात हुआ कि रोगी को दाँत निकलवाने में कोई भी कष्ट नहीं हुआ। यह मार्टन की एक सफलता थी।

अपने प्रयोग का अन्य चिकित्सकों में प्रचार करने के लिए मार्टन ने शिकागो के एक प्रसिद्ध अस्पताल के मुख्य शल्य-चिकित्सक से सम्पर्क स्थापित किया तथा उसे ईथर के प्रभाव की बातें समझाने का प्रयत्न किया। उस शल्य-चिकित्सक ने इस नवीन संज्ञाहर या मूर्च्छोत्पादक औषधि के प्रयोग के लिए अपनी स्वीकृति दी। १६ अक्टूबर १८४६ को अस्पताल के एक रोगी की शल्य क्रिया में इस नवीन मूर्च्छोत्पादक औषधि की उपयोगिता परखने का निश्चय किया गया। सब कुछ तैयारी तो हो चुकी, परन्तु मार्टन अपने संज्ञाहर औषधि तैयार करने वाले उपकरण लेकर निर्धारित समय पर अस्पताल में न पहुँचा। उसका तैयार किया उपकरण बड़े बेमौके टूट गया था। किसी प्रकार उसे पुनः बना कर दौड़ते-दौड़ते वह कुछ विलम्ब से पहुँच सका। रोगी पर इस संज्ञाहर औषधि का प्रयोग किया गया। उसे कुछ पता भी न चला और शल्य कर्म निर्विघ्न समाप्त हो गया। यह शल्य क्रिया में संज्ञाहर औषधि द्वारा वेदना अनुभव न होने-देने का एक सुन्दर उदाहरण था। शल्य विज्ञान जगत में इस पद्धति ने युगान्तर उपस्थित कर दिया। उसी वर्ष २१ दिसंबर को इंगलैंड में लंदन के युनिवर्सिटी कालेज अस्पताल में संज्ञा-हरण औषधि देकर पहला शल्य कर्म किया गया।

शल्यकर्म में रोगी के लिए ऐसी संज्ञाहरण औषधि होनी चाहिए जो उपयोग में सरल हो, सुरक्षित हो, उपयोग करने में क्लेशकर न हो, शल्य-चिकित्सक का शस्त्र चलने के समय उसमें मूर्च्छा उत्पन्न कर दें, परन्तु बाद में कोई कुप्रभाव न हो। मूर्च्छा उत्पन्न करने या पुनः चेतना उत्पन्न करने में कम से कम असुविधा हो। क्लोरोफार्म का जब उपयोग किया गया तो वह उस समय की एक बड़ी बात थी। कभी-कभी उसका बहुत शीघ्र प्रभाव हो जाता और कभी-कभी चिकित्सक के ज्ञात हुए बिना ही घातक अवस्था भी हो सकती थी। एक बात और भी थी जिसका अनुभव उन दिनों नहीं किया जा सका किन्तु आज उसके कुभाव के स्पष्ट प्रमाण ज्ञात हैं। बहुत से रोगियों पर क्लोरोफार्म का प्रयोग करने से भयंकर परिणाम होता है। कुछ समय में यकृत पर इसका बड़ा बुरा प्रभाव दिखाई पड़ता है। यकृत सिकुड़कर छोटा तथा धुंधला हो जाता है। उसके गहरे भूरे पित्त के रंग की जगह हल्का रंग हो जाता है जो उसके विक्षत होने का प्रमाण होता है। कुछ रोगियों के यकृत पर यह कुप्रभाव नहीं भी हो पाता परन्तु क्लोरोफार्म सुँघाने के पहले यह बात नहीं ज्ञात हो सकती कि अमुक रोगी के शरीर में यकृत पर वह कुप्रभाव उत्पन्न करेगा और अमुक रोगी के यकृत को अछूता ही छोड़ देगा अतएव क्लोरोफार्म के प्रयोग से रोगी के शरीर पर इस प्रकार का आजीवन दुष्परिणाम भयानक है किन्तु संज्ञाहर औषधियों के उत्तम रूप ज्ञात होने के पूर्व इसने भी अच्छा चमत्कार दिखाया। इसका स्थान द्रव ईथर ने लेकर शल्य विज्ञान की बड़ी सहायता की। इसका शल्य विज्ञान में प्रयोग करने का श्रेय मार्टन तथा लांग, दोनों ही व्यक्तियों या उनमें से किसी एक को दिया जाता है। किसने पहले यह प्रयोग किया और किसने पीछे किया, इन बातों के विवाद से हमें शल्य विज्ञान में संज्ञा हर औषधियों की महत्ता का विकास समझने में कोई सहायता नहीं प्राप्त नहीं होती। हमें तो इतना ही जान लेना बस है कि इनके पूर्व वलेरियस कोर्डस नामक व्यक्ति ने तीन सौ वर्षों पहले द्रव ईथर नाम की वस्तु अविष्कृत की थी। उसको चिकित्सा विज्ञान में उन दोनों व्यक्तियों में से किसी ने इतने समयों बाद प्रयुक्त किया किन्तु आज भी इससे अधिक उत्तम कोई अन्य संज्ञाहर औषधि नहीं ज्ञात हो सकी है

जिसे आदर्श रूप का संज्ञाहर साधन कहा जा सके किन्तु कुछ थोड़ी विशेषता या उत्तमता वाली अन्य संज्ञाहर औषधियाँ अवश्य ज्ञात कर प्रयुक्त हो रही हैं जिन्हें जनसाधारण कभी भी केवल बुद्धि से प्रयुक्त नहीं कर सकता। वे तो विशेषज्ञों के हाथ प्रयुक्त होने वाली वस्तुएं हैं। द्रव ईथर में भी कुछ दोष हैं। यह उड़नशील वस्तु है अतएव फेफड़े का क्षोभ तथा मवाद उत्पन्न करता है। मिचली वमन करने की इच्छा उत्पन्न करता है। इस कारण रोगी इसके प्रयोग से घबड़ाते हैं। बल्कि ऐसा भी होता है कि जो सयाने रोगी इसकी बात सोचकर यह घबड़ा गए होते हैं, उन पर इस मानसिक वृत्ति के कारण इस संज्ञाहर औषधि के प्रयोग पर अधिक उग्र प्रतिक्रिया होती है। परन्तु अबोध बालकों पर प्रयोग करने से कोई प्रतिक्रिया नहीं देखी जाती। फिर भी यह व्यावहारिक तथा उत्तम संज्ञाहर औषधि है। साधारण धात्रियाँ या नवसिखुए चिकित्सा-छात्र भी इसका बेधड़क प्रयोग कर लेते हैं।

अन्य संज्ञाहर औषधियों में नाइट्रस आक्साइड या हँसाने वाली गैस, में यह दोष है कि इसमें ओषजन की मात्रा न्यून ही शरीर में पहुँचने दी जाती है, जिससे बेहोशी आ सके। एथिलीनी को तो तुरन्त क्रियाशील तथा प्रभाव में सुखद पाया जाता है, परन्तु यह भारी विस्फोटक वस्तु है। साइक्लो-प्रोपेन उतनी विस्फोटक भी नहीं और विशेषज्ञ के हाथों बड़ी ही सतर्कता से प्रयुक्त करने पर सबसे उत्तम संज्ञाहर औषधि है. इसमें बड़ी विशेषता यह है कि ज्ञानशून्यता उत्पन्न कर भी यह फेफड़े में यथेष्ट मात्रा में ओषजन जाने देती है। डी. विनील नाम का एक विशेष प्रकार का ईथर भी निकला है जो एक या दो श्वास में ही मूर्च्छा उत्पन्न कर देता है। किन्तु इनमें से कोई भी आदर्श, निरापद संज्ञाहर नहीं है।

कोलतार से जहाँ सहस्रों विचित्र वस्तुएं, रंग, सुगन्धि, औषधियाँ आदि उत्पन्न होती हैं, वहाँ संज्ञाहर औषधिएँ भी बन सकी हैं। मद्यसार से भी अवर्टीन (टाइब्रो मेथानोल) नामक एक संज्ञाहर वस्तु निर्मित होती है। केवल जल में घोलकर इसे उदर के निम्न भाग में सुई द्वारा अंतर्प्रविष्ट (इंजेक्ट) कराया जाता है। इसका संज्ञाहर प्रभाव दो ढाई घंटे तक रहता है। रोगी चुपचाप निद्रा में पड़ जाता है। उसे कुछ भी सुध-बुध नहीं रहती अतएव शल्य कर्म की वेदना तनिक भी अनुभव नहीं होती। एक दोष अवश्य है कि जब एक बार इस तरह की कोई भी औषधि सुई द्वारा शरीर में अंतर्प्रविष्ट कर दी गई, तब फिर उसकी प्रभाव मात्रा नियंत्रित नहीं की जा सकती। प्रकृति भिन्न-भिन्न होती है। किसी पर किसी औषधि का न्यून प्रभाव होता है। तथा किसी पर अधिक प्रभाव होता है। फिर भी इस औषधि का व्यापक रूप से प्रयोग कर लाभ उठाया जाता है। मार्फिया को सुई द्वारा शरीर में प्रविष्ट कराने पर तो सुई के बाहर निकालने के पूर्व ही मूर्च्छा का प्रभाव प्रारम्भ हो जाता है। अतएव विशेष कष्टों की अवस्था, असह्य उदर पीड़ा आदि में, इसका प्रयोग कर रोगी को शान्ति पहुँचाई जाती है।

पेंटोथल नाम की एक औषधि यथार्थ में बड़ा लम्बा नाम रखती है। थियोपेंटो बार्बिटल वैज्ञानिक नाम है, परन्तु संक्षेप में उसे पेंटोथल कह लेते हैं। सोडियम लवण भी इसे कहा जाता है। इसका अविष्कार डा० लुण्डी ने मेयो क्लिनिक में किया। उसने सहस्रों रोगियों पर इसका प्रयोग कर सिद्ध किया कि यह यह निरापद औषधि है। जो शल्य कर्म बहुत लम्बे न हों तथा जिनके लिए बहुत गहरी मूर्च्छा उत्पन्न करने की आवश्यकता न हो, उनमें पेंटोथल का प्रयोग व्यापक हो गया है। किसी फोड़े का मुँह खोलने, हड्डी बैठाने, आदि के लिए यह बड़ी उपयोगी है। कुछ चिकित्सक गम्भीर शल्य कर्मों में भी इस संज्ञाहर औषधि का प्रयोग कर लेते हैं। इस औषधि में एक दोष है। यह श्वास क्रिया का अवरोध करती है। यदि कुछ अधिक मात्रा में दे दी जाय तो श्वास क्रिया बिल्कुल ही अवरुद्ध हो जाती है, किन्तु हृदय की गति संचालित ही रहती है। रोगी जीवित

[शेष पृष्ठ २२ पर]

जन्तु और वनस्पति

वनस्पतियों तथा जन्तुओं का प्रगाढ़ सम्बंध है। इनका पारस्परिक सम्बन्ध चोली-दामन के साथ की उक्ति को यथार्थतः चरितार्थ करता है। हम परतंत्रता की भावना से कितनी भी घृणा करें, जीवन व्यापार में तो सृष्टि के विधान से विवश होकर वनस्पतियों के आश्रित हैं। जब मनुष्य जन्तुओं का शिरमौर होकर भी ऐसी असहाय अवस्था में है तो अन्य जन्तुओं की क्या बात उठाई जाय। परन्तु ये कल्पना की ही बातें नहीं हैं। हमें प्रत्यक्ष न दिखाई पड़ने पर भी, अपना परावलंबन थोड़ा विचार कर ही प्रकट हो सकता है। हम शाकाहारी हों या मांसाहारी, अन्य जन्तु भी निरामिषभोजी हो या आमिषभोजी, उनको अन्ततोगत्वा वनस्पति पर अवलंबित पाया जा सकता है। जो शाकाहारी या निरामिषभोजी हैं वे सीधे वानस्पतिक पदार्थों, फल फूलों, अन्नों आदि को खाकर जीवित रहते हैं। केवल दुग्धपान करने वाले भी दुग्धदायी पशु पर अवलंबित होंगे, वे पशु वनस्पति खाकर ही दूध उत्पन्न कर सकते हैं। मांस-भोजी भी जिन जन्तुओं को आहार बनाते हैं वे जन्तु या तो स्वयं ही वनस्पति का आहार करते पाए जाएंगे या उनके आहार बनने वाले अन्य जन्तु वनस्पतिभोजी होंगे किन्तु हम यहाँ पर इतनी दूर की मीमांसा में नहीं जाना चाहते। हम तो केवल इतना ही प्रदर्शित करना चाहते हैं कि उपयुक्त तथ्यों को छोड़ कर भी जन्तुओं तथा वनस्पतियों में पारस्परिक संबंध या सहायता की भावना अनेक रूपों में देखी जाती है। भोजन को छोड़कर भी वनस्पति दूषित वायु को ग्रहण कर जन्तु जगत के लिए शुद्ध वायु या ओषजन सुलभ बनाते हैं। पशु-पक्षी भी अपने मल-मूत्र या शरीर के क्षय होने से खाद सुलभ कर वनस्पतियों को पनपने का अवसर देते हैं, परन्तु इसके आगे भी बढ़ कर हम जन्तुओं को वनस्पतियों की संतान-वृद्धि के लिए परागण या परागसंक्रमण में सहायता पहुँचाते हैं। बदले में वनस्पति भी जन्तुओं का विशेष हित कर दिखलाते हैं। परागण या पराग संक्रमण वनस्पति जगत की गर्भाधान क्रिया होती है जिसमें नर के जनन-कोष या पराग का मादा के जनन-कोष या रजोबिन्दु से संयोग होकर नई वानस्पतिक सृष्टि का उद्भव होता है।

वनस्पतियों में नर तथा मादा का विधान पुष्प क्षेत्र में ज्ञात होता है। पुष्पों में मधु होता है। परागकण भी होते हैं। परागकणों को पुष्प के अंदर से निकले भव्य दंडों के ऊपर क्षुद्र पोटलियों रूप में अवद्ध पाया जाता है। जीव-जन्तु पुष्प के निचले मूल भाग के अंतराल में मधु की खोज करने पहुँचते हैं। उनको पुष्प मधुदान करता है। मधु का वह स्वयं कभी पान नहीं करता। यह सदाव्रत की भाँति निश्शुल्क वितरण करते रहने के लिए ही होता है किन्तु इतनी कुशलता अवश्य करनी पड़ती है कि मधु के लोभी जंतु संकीर्णस्थल में मधु लेने की दौड़ में उन दंडों की पराग-पोटली से संथर्क कर सकें जिनको परागाशय कहा जाता है। उधर मादा पुष्प में भी मधु वितरण होता रहता है। नर पुष्प से मधु लेने की साधारण क्रिया में अनायास ही कीटपतंग या अन्य मधुलोभी जंतु अपने शरीर के रोग, पंख, पैर आदि में परागकण या नर के जननकोष को लिपटा लेते हैं। वे ही कण दूसरी बार मादा पुष्प की मधुशाला में जाने पर उन जंतुओं द्वारा ही मादा पुष्प की कोख (कुक्षि) या गर्भाशय में गिर जाता है। इस प्रकार पुष्प गर्भाधान क्रिया भी सम्पन्न करा लेता है और जीव-जन्तुओं को बिना श्रम पड़े मधु भी मिलता रहता है। पुष्प भी इन क्रियाओं में

कीटपतंगों तथा जंतुओं को आकृष्ट करने के विधान रखते हैं, कुछ विशेष कीटों को मधु ग्रहण कराने के भी अभ्यस्त कहीं देखे जाते हैं तथा कुछ स्थितियों में इन कीटों, जंतुओं आदि को कुछ अन्य लाभ भी करा देने की वृत्ति प्रकट करते हैं। इन विषयों की चर्चा बड़ी ही मनोरंजक है।

काव्यों में हम यह वर्णन पाते हैं कि मधुकर या भ्रमर किसी विशेष पुष्प वर्ग पर ही मधुपान करने जाता है, कुछ अन्य कीटों तथा मधु-मक्षिकाओं की बात भी ऐसी हो सकती है, परन्तु वे तथ्य किसी समय कुछ प्रत्यक्षदर्शियों को ज्ञात होने पर भी कुछ विशेष बातें प्रकट न कर सके। उनके लक्ष्य का मर्म कुछ भी ज्ञात न हो सका। ये केवल मनोभाव या घृणा तथा प्रेम की कथाएँ भर ही रह गईं। परन्तु आज के विज्ञान-जगत ने सूक्ष्म अवलोकन कर इन प्राकृतिक घटनाओं का मर्म जानने का प्रयत्न किया है। आज का वैज्ञानिक जानता है कि वे घटनाए वनस्पति जगत् के जीवन के लिए कितनी महत्वपूर्ण हैं। साथ ही कितने ही कीटपतंग के जीवन का भी मुख्य आधार बनती हैं।

वनस्पति तथा कीट के सहयोग का एक उत्तम उदाहरण अमेरिका के युक्का वनस्पति तथा प्रोन्यूब पतिंगा में पाया जाता है। युक्का पुष्प केवल प्रोन्यूबा पतिंगे के माध्यम से ही पराग संक्रमित या परागित हो सकता है किन्तु साथ ही प्रोन्यूबा पतिंगे की इल्ली केवल इस वनस्पति के घंटीनुमा पुष्प पर ही पोषित हो सकती है। प्रोन्यूबा पतिंगा की मादा जब गर्भान्वित हो जाती है किसी युक्का पुष्प पर जाती है तथा अपने मुख से उसके पराग की एक गोली बना लेती है, फिर दूसरे युक्का पुष्प पर उड़ जाती है। वहाँ वह पराग के गोले को उस पुष्प के योनि छत्र या कुक्षि में डाल देती है। उसी पुष्प के गर्भाशय में अपने अंडे भी एक अंड रक्षक थैली में सुरक्षित कर रख देती है। इस प्रकार पुष्प परागित होता है। बीज विकसित होने लगता है, उधर साथ ही उसके अंडों से उत्पन्न इल्ली भी विकसित होती रहती है। इल्ली का आहार युक्का के बीज हैं परन्तु इससे युक्का वनस्पति को कोई हानि नहीं होती। प्रोन्यूबा पतिंगे को इल्ली के खाते रहने पर भी इतने बीज पकने को शेष रह जाते हैं कि नई उत्पत्ति कर सकें। ऐसे स्थान में सुरक्षित रह कर और यथेष्ट भोजन द्वारा पुष्ट होकर इल्ली दूसरे वर्ष उस समय बाहर निकलती है जब पुनः युक्का पुष्प विकसित होकर प्रोन्यूबा की नई सन्तान उत्पत्ति करने तथा अपने वंश की वृद्धि के लिए यह अनुपम पारस्परिक सहयोग पुनः संचालित रखने के लिए उद्यत रहते हैं। अतएव यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि युक्का पुष्प अपने परागण में सहायता करने वाले प्रोन्यूबा पतिंगे को अस्थायी प्रश्रय तथा खाद्य द्रव्य देकर अपना ऋण चुका देता है।

अंजीर के परागण में एक कीट के सहयोग की घटना बड़ी विचित्र है। गूलर तथा अंजीर में फूल नहीं दिखाई पड़ता इसीलिए जनश्रुति है कि कोई व्यक्ति गूलर का फूल कभी पा जाय तो उसे अपनी तिजोरी में रख लेने पर अपना धन कभी न्यून होते नहीं देख सकता। किसी व्यक्ति को बहुत दिनों तक न देख सकने पर लोग उसे गूलर का फूल होना कह उठते हैं किन्तु वैज्ञानिक इस विषय में कुछ दूसरी बात ही कहते हैं। गूलर तथा अंजीर में फूल सदा ही निकलते हैं, परन्तु बाहर न होकर भीतर की ओर ही होते हैं। महुआ का फूल रसदार तथा मोटी तह का होता है। उसी तरह गूलर तथा अंजीर का फूल भी होता है जो बन्द-सा दिखाई पड़ता है। महुआ में फल बाद में दिखाई पड़ता है, परन्तु गूलर में ऐसे फल नहीं निकलते। बल्कि फूल ही की मोटी गूदी की तह के अन्दर छोटे-छोटे रेशों के समान दंडों में बीज तैयार होते हैं। उनके ही स्थान पर पहले पुष्पों की शृंखला बनी रहती है। परागण की क्रिया भी इसी कारण बाहरी छिलके या मोटी गूदी की तह के भीतर पर्दे में होती है। इस मोटी गूदी के आवरण को सब लोग फल नाम देते हैं।

यथार्थ में इसके भीतर फूल तथा फल छोटे आकार के बहुसंख्यक होते हैं।

अंजीर की दो जातियाँ एशिया माइनर में होती हैं। एक तो वन्य जाति होती है जिसमें बहुसंख्यक फल लगते हैं किन्तु दूसरी जाति बगीचों में हाथ से लगाए अंजीरों की होती है जिसमें पहले फलों का सदा अभाव रहता था। उसी अंजीर की जंगली जाति में तो फल आवें और बगीचों में सँवार कर लगाई अंजीर में फलों का नाम भी न होता। यह एक बड़े विस्मय की ही बात थी। बात यह है कि वन्य अंजीर में एक फल के अन्दर ही नर तथा मादा फूल होते हैं। परन्तु कृषिजन्य अंजीर में केवल मादा फूल होता है। फल के भीतर ही परागण की व्यवस्था होती तो वे पुष्ट होते तथा पकते, परन्तु परागण न हो सकने से वे असमय ही सूख कर गिर जाते। इस समस्या को स्मर्ना के कृषकों ने बहुत दिनों पूर्व ही सुलझा लिया था और अपने कृषि जन्य अंजीरों में फल उत्पन्न कराते आ रहे हैं किन्तु इसकी वैज्ञानिक व्याख्या सोम्स लौबेक ने १८८२ में तथा सिर्च और रेवोसिनी ने १९११ में की।

वन्य अंजीर के फलोत्पादन की क्रिया समझ लेना उचित है। इसमें अन्दर एक खोखली पुष्पन धुरी होती है। उसमें बाहर की ओर एक द्वार होता है जो संकोचन प्रसारण द्वारा बन्द होता तथा खुलता है। अंजीर का फल ही मधुर गुद्दी युक्त पोली पुष्पन धुरी है। उसी में हमें भीतरी तल पर छोटे-छोटे फूलों के दंड मिलते हैं जिनके मूल में मीठे गूदे की तह होती है। इसे ही खाया जाता है। इस थाली रूप पुष्पन धुरी में चार प्रकार के पुष्प हो सकते हैं (१) नर पुष्प (२) जननशील मादा पुष्प (३) वंध्या मादा पुष्प तथा (४) गौल या कीट पोषक पुष्प।

वन्य अंजीर में वर्ष में तीन प्रकार फूलों का उदय होता है। पहला वसंती पुष्पन होता है जिस में ऊपरी छिद्र के नीचे नर पुष्प तथा गौल पुष्प या कीटपोषक पुष्प होते हैं। अंजीर को परागण करने वाले कीट या वरट की कुछ मादाएं वहाँ पहुँचती हैं और कीटपोषक या गौल पुष्प में एक-एक अंडा देती हैं। वहीं पर अंडों से बाल कीट या वरट उत्पन्न होते हैं। इन बाल वरटों में कुछ नर वरट होते हैं। वे पक्षहीन तथा पीले भूरे रंग के होते हैं, वे मादा वरटों को गर्भान्वित कर स्वयं मृत हो जाते हैं। मादा वरट पक्षधारी होती हैं। वे पकती हुई अंजीरों से बाहर निकलने लगती है परन्तु मार्ग में नर पुष्प पड़ते हैं, इसलिए उनके पराग कण उसके शरीर में चिपके जाते हैं। बाहर आकर भी ये दूर तक नहीं उड़ सकती। अन्य पुष्पों की खोज निकट करती रहती हैं।

जब ग्रीष्मीय अंजीरें विकसित होती हैं तो उनमें न तो नर पुष्प होते हैं और न गौल (कीट या वरट पोषक) पुष्प। केवल मादा पुष्प ही होते हैं। मादा वरट उन अंजीरों के भीतर प्रविष्ट होकर परागकणों का स्त्री पुष्पों से संयोग कराने का अवसर देती है। परन्तु गौल पुष्प न होने से स्वयं अंडे नहीं दे सकती। ये अंजीरे इन कीटों से परागित होकर पकती हैं और मनुष्य के लिए भोज्य पदार्थ बनती हैं।

तीसरी बार अंजीरों में पुनः फूल आते हैं जिन में केवल गौल या वरट पोषक पुष्प ही होते हैं। उनमें मादा वरट अंडे देती है। शीतकाल में यहाँ ही निवास कर वसंत में मादा वरट नर वरटों द्वारा गर्भान्वित होती है।

स्मर्ना के कृषकों ने कृषिजन्य अंजीरों के फल आने के समय वन्य अंजीरों को निकट टांग देने की विधि की। उन वन्य अंजीरों के फल से मादा वरट बाहर आकर कृषिजन्य अंजीरों के फल के अन्दर प्रविष्ट होती। उसके द्वारा उनके मादा फूल परागित हो जाते, परन्तु गौल पुष्प भीतर न होने से वह अंडे देने का स्थल न पाती और बाहर निकल आती। यही विधि आज अमेरिका के कैलिफोर्निया प्रदेश के कृषकों द्वारा प्रयुक्त होती है जिस में कृषिजन्य अंजीरों

के पास ही वन्य अर्जीरों के भी लाभकर परागण की समुचित व्यवस्था कर दी जाती है। यह कैसा विलक्षण नैसर्गिक कृत्य है।

पुष्पों के परागण में वायु तथा जलधारा की सहायता भी प्राप्त होती है, परन्तु कीड़े पतिंगे या अन्य उड़ाकू जन्तु भी न्यून भाग नहीं लेते। परागण में सहायक ऐसे जन्तुओं में अत्यन्त क्षुद्राकार पक्षी का भी हाथ विशेष होता है। पंख को नोच फेंकने पर इस पक्षी का आकार तो मधुमक्खी के बराबर ही होता है, परन्तु शरीर के ऊपर पक्षियों की भाँति परों का परिधान तथा चंचु इसे पक्षी वर्ग में होने का तनिक भी सन्देह उत्पन्न नहीं होने दे सकते। इनको मधुपक्षी या मधुपायी पक्षी कह सकते हैं। शक्कर खोरा (शींजिरिका) तथा फुलचुही (पुष्प प्रिय) पक्षी तो हमारे देश में भी होते हैं जो मुख्यतया पुष्प मधुपायी वृत्ति रखते हैं, परन्तु इनका आकार अपेक्षा-कृत बड़ा होता है, इनके अतिरिक्त अन्य बहुत से बड़े आकार के साधारण पक्षी भी मधुपान करने का कुछ स्वभाव रखने से परागण में भी सहायता प्रदान करते होंगे, परन्तु मधु-पक्षी तो अमेरिका की ओर का ही पक्षी है, जिसका आकार चोंच से दुम की छोर तक केवल ढाई इंच लम्बा होता है। इसकी पाँच सौ से अधिक जातियाँ ज्ञात की जा सकी हैं। इनमें से अधिकांश भूमध्य रेखा के निकटवर्ती ऐंडी पर्वत के समीप पाई जाती हैं। पेरू में भी ऊँचे पर्वतों तक पर ये पक्षी पाए जाते हैं। वे मिस्टीं ज्वालामुखी के हिमाच्छादित शिखर की पृष्ठभूमि में देदीप्यमान रत्न की भाँति कीट-पतिंगों के समूह के समान उड़ते रहते हैं। वायु-मंडल में इनका वहाँ अखंड राज्य-सा दिखाई पड़ता है। उड़ने की कला में अत्यन्त दक्ष होते हैं। इतनी तीव्र गति की उड़ान करते रहते हैं कि उनको देख सकना कठिन-सा होता है। वे आकाश में डालों से लटके फूलों का मधु बड़ी ही कुशलता से ग्रहण करते रहते हैं। पतिंगों की भाँति द्रुत गति से अपने पंख हिलाते रहने से इन्हें पंख स्पंदक पक्षी भी नाम दिया जा सकता है।

मधु-पक्षियों का आहार पुष्पों का मधु तथा उन मधुओं के लोभ में एकत्र कीट होता है। मधु-मक्खियों की भाँति मधु-पक्षियों का शरीर भी मधुपान के समय पराग से वेष्ठित हो जाता है। अन्यत्र मादा पुष्प के ऊपर पुनः मधुपान करने बैठने पर वे परागकण उसके शरीर से थोड़े बहुत गिर कर मादा पुष्प का परागण करने में समर्थ होते हैं। कुछ विशेष वनस्पतियों का परागण करने में ये क्षुद्राकार पक्षी विशेष सहायक होते हैं।

मधुपक्षी (पंखस्पंदक पक्षी) की जीभ लम्बी तथा नलिकावत होती है। चोंच भी पतली तथा लम्बोतरी होती है। इस कारण लम्बी नालिका समान पुष्पों की तली में रक्षित मधु को ग्रहण करने में ये विशेष समर्थ होते हैं। एक पंखस्पंदक पक्षी की चोंच तो हँसिया या अर्द्ध चन्द्र समान मुड़ी होती है अतएव अर्द्ध चन्द्र चन्चु मधुपक्षी (सिकिलबिल) कुछ विशेष पुष्पों का मधु ही ग्रहण करने में समर्थ होता है। एक मधुपक्षी तलवार या असि समान चंचु रखने से असिचचु पंखस्पंदक या मधुपक्षी कहा जा सकता है। इसकी चोंच पाँच इन्च लम्बी होती है, शरीर की लम्बाई इससे छोटी ही होती है। यह लम्बी तुरही के आकार के पुष्पों का मधु ही पीता है।

पंखस्पंदक पक्षी पुष्पों के सम्मुख अक्लान्त रूप से अधिक काल तक अपने पङ्ख स्पंदित कर उड़ते रह सकते हैं। अतएव पुष्प के अन्दर से मधु चूसने या आस पास उड़ते कीटों को पकड़ सकने में उन्हें कोई असुविधा नहीं हो सकती। कहा तो यहाँ तक जाता है कि ये पक्षी उड़ते हुए ही जोड़ा खा सकते हैं। पुष्पों की विकट स्थिति में ये उनसे उलटे लटके रह कर भी क्षुद्र कीटों का आखेट कर सकते हैं। इनका मधुपान तथा कीटों के आखेट का समय दिन को कड़कड़ाती धूप में है किन्तु एक मधुपायी भुनगा भी इनके रूप से मिलता जुलता पाया जाता है जो सन्ध्या प्रातः ही आहार की खोज में पुष्पों के निकट मँडराता है। जहाँ पङ्खस्पंदक पक्षियों का अभाव

होता है। वहाँ इस भुनगे को ही कितने लोग मधुपक्षी या पङ्खस्पंदक पक्षी समझ बैठने की भूल करते हैं। किन्तु पक्षी का रूप दिखाई पड़ने के लिए मुख के आगे एक शुन्ड भी होता है जो पुष्पों के अन्दर प्रविष्ट होकर मधु प्राप्त करता है परन्तु इसके अतिरिक्त कीटों की भाँति दो लम्बे बाल भी मूँछ समान आगे होते हैं जो झींगुरों के मुच्छीय रोम सदृश दिखाई पड़ते हैं। इससे इनकी कीट जाति तुरन्त ज्ञात हो जाती है। किन्तु इस मधुपायी कीट या भुनगे की गति आश्चर्यजनक होती है। यह प्रति घंटे में ११ मील से अधिक उड़ सकता है। इसके पङ्ख प्रति सेकन्ड पचासी बार कंपित होते हैं तथा साढ़े पाँच गज दूरी पार कर सकते हैं।

कीटों में मधुमक्षिका को परागण में सब से अधिक सहायक कहा जा सकता है। ये अनजाने ही परागकणों को पिछले पैरों से लिपटा कर अन्य पुष्पों तक पहुँचाती है। मधु का भण्डार अधिक संचित करने के लिए इसे दिन भर बड़ा प्रयत्नशील रहना पड़ता है। इसमें यह वृत्ति है कि एक बार मधुसंचय करने निकलने पर केवल एक ही प्रकार के पुष्पों पर बैठती है। कदाचित मधु का एक प्रकार ही होने के लिए वह ऐसा करती है, परन्तु इस से पुष्पों का बड़ा लाभ हो जाता है। उस जाति के नर पुष्पों के परागकण सजातीय मादा पुष्पों पर पहुँच कर सफलता पूर्वक परागण करते हैं। अन्यथा अन्य पुष्पों पर तुरन्त जा बैठने से परागकणों का कुछ उपयोग न हो। वे व्यर्थ ही जायँ; उधर मादा पुष्प अपरागित ही रह कर वंशक्षय करे।

एक मधुमक्षिका पुष्पभेदक कहलाती है। जो जो पुष्प अपनी लंबोतरी नली के कारण मधुपायी भुनगे की लंबी सूँड़ द्वारा ही प्राप्त हो सकने की सुविधा रखते हैं उनके मधुभंडार तक मधुमक्षिका अपनी पहुँच नहीं देखती अतएव बाहर से उस पुष्प भाग में छेद कर मधु चुरा लेती है। इस प्रकार प्रकृति द्वारा परागण के जो विधान उसे प्राप्त होते हैं, वे इस पुष्पभेदक मधुमक्षिका द्वारा व्यर्थ जाते हैं।

जंतुओं तथा वनस्पतियों के आहार विधान में हम यह विभेद देखते हैं कि जन्तु तो वनस्पति-जन्य या अन्य जन्तु-जन्य पदार्थों को आहार बनाते हैं और वनस्पति हवा, मिट्टी, पानी आदि से ही अपना आहार प्राप्त कर लेते हैं, परन्तु इस विधान के कुछ अपवाद भी वनस्पतियों में पाए जाते हैं। कीट-भक्षक वनस्पति इन्हीं का नाम है। कीटभक्षक वनस्पतियों की पाँच सौ से भी अधिक जातियाँ हैं। उष्ण कटिबंधीय देशों में घट वनस्पति भी ऐसी ही वृत्ति रखता है। नीचे की ओर लटकती पत्तियों के सिरे से सूत्र निकले होते हैं जिनमें चटक रंगों के घट लटके पड़े रहते हैं। प्रत्येक घट में ऊपर एक सूक्ष्मता पूर्वक मढ़ा द्वार होता है। तथा मुख के चारों ओर कुछ मढ़ी हुई दृढ़ किनारी होती है। मुख की मुड़ी किनारी पर मधु उत्पन्न होता है जिसे ग्रहण करने के लिए लोभी कीट उड़कर पहुँचते हैं। उनके बैठते ही मुख का तल बहुत फिसलन युक्त हो जाता है और वे घट के पेंदे में गिर कर वहाँ के स्रवित प्रचुर द्रव भंडार में निमग्न हो जाते हैं। उनके शरीर सड़ने पर घट वनस्पति को खाद्य रूप के कुछ दुर्लभ रासायनिक अवयव इस तरह प्राप्त होते हैं।

कुछ घट वनस्पति अठारह इंच तक लम्बे होते हैं और वर्षा के जल से उनके घट के पेंदे का रस इतना अधिक हो गया होता है कि छोटी चिड़िया उसमें डूब मरे। किन्तु घट वनस्पति के इस विकराल मृत्यु पाश के अंदर ही एक छोटा मच्छड़ निर्भय होकर सीधे घुस जाता है तथा उस द्रव में अंडे देकर तुरन्त बाहर उड़ आता है। उसके अंडों से उत्पन्न इल्लियाँ घट विष से अप्रभावित रहती हैं। उस जल विष में डूबकर सड़ते कीटों के शरीर के ऊपर उत्पन्न सूक्ष्मदर्शकीय जंतुओं का आहार प्राप्त कर वे पुष्ट होती रहती हैं। पंखदार हो जाने पर उड़कर बाहर निकल आती हैं। केवल एक जाति का मच्छड़ ही घट वनस्पति में अंडे देने की क्रिया कर दिखाता है।

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

१—विज्ञान प्रवेशिका, भाग १—श्रीरामदास गौड़ और प्रो० सालिगराम भार्गव ।=)
२—चुम्बक—प्रो० सालिगराम भार्गव ॥=)
३—मनोरञ्जन रसायन—प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव २)
४—सूर्य सिद्धान्त—श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव छः भाग मूल्य ८)। इस लेखक को १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है।
५—वैज्ञानिक परिमाण—डा० निहालकरण सेठी १)
६—समीकरण मीमांसा—पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १।) द्वितीय भाग ॥=)
७—निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स) प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री ॥)
८—बीज ज्योमिति या भुजयुग्म रेखागणित—डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी०, १।)
९—वर्षा और वनस्पति—श्री शंकरराव जोशी ; ।=)
१०—सुवर्णकारी—ले० श्री० गङ्गाशंकर पचौली; ।=)
११—व्यङ्ग-चित्रण—ले० एल० ए० डाउस्ट; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी एम० ए०; २)
१२—मिट्टी के बरतन—प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा; (अप्राप्य)
१३—वायुमंडल—डाक्टर के० बी० माथुर, २)
१४—लकड़ी पर पालिश—डा० गोरखप्रसाद और श्री रामरतन भटनागर, एम० ए०, ५) (अप्राप्य)
१५—कलम पेवंद—ले० श्री शंकरराव जोशी; २)
१६—जिल्दसाजी—श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए० २)
१७—तैरना—डा० गोरखप्रसाद, १)
१८—सरल विज्ञान-सागर प्रथम भाग—सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद। मूल्य ६) (अप्राप्य)
१९—वायुमण्डल की सूक्ष्म हवाएं—डा० सन्तप्रसाद टंडन, डी० फिल ॥)
२०—खाद्य और स्वास्थ्य—डा० ओंकारनाथ परती, मूल्य ॥)
२१—फोटोग्राफी—लेखक श्री डा० गोरख प्रसाद डी० एस-सी० (एडिन), ४)
२२—फल संरक्षण—डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और श्री वीरेन्द्रनारायण सिंह २॥)
२३—शिशु पालन—लेखक श्री मुरलीधर बौड़ाई। मूल्य ४)
२४—मधुमक्खी पालन—दयाराम जुगड़ान; ३)
२५—घरेलू डाक्टर—डाक्टर जी० घोष, डा० उमाशङ्कर प्रसाद, डा० गोरखप्रसाद, ४)
२६—उपयोगी नुसखे, तरकीबें और हुनर—डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश, ३॥)
२७—फसल के शत्रु—श्री शङ्कर राव जोशी ३॥)
२८—साँपों की दुनिया—श्री रमेश वेदी ४)
२९—पोर्सलीन उद्योग—प्रो० हीरेन्द्र नाथ बोस ॥)
३०—राष्ट्रीय अनुसंधानशालाएँ—२)
३१—गर्भस्थ शिशु की कहानी—प्रो० नरेन्द्र २॥)

अन्य पुस्तकें

१—साबुन-विज्ञान	६)
२—भारतीय वैज्ञानिक	३)
३—वैक्युमब्रेक	२)
४—यांत्रिक चित्रकारी	२॥)
५—विज्ञान के महारथी (जगपति चतुर्वेदी)	२)
६—पृथ्वी के अन्वेषण की कथाएँ (,,)	१॥)
७—विज्ञान जगत की झाँकी (प्रो० नारायण सिंह परिहार)	२)
८—खोज के पथ पर (शुकदेव दुबे)	॥)

पता—विज्ञान परिषद्, (म्योर सेन्ट्रल कालेज भवन) प्रयाग

Reg NO 372

Approved by the Directors of Education, Uttar Pradesh
and Madhya Pradesh for use in Schools;
Colleges and Libraries

विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

परिषद् का उद्देश्य

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद् का संगठन

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार सभ्यगण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उपसभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमन्त्री, दो मन्त्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्य को ६) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ १०० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिए वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशन में उपस्थित रहने का तथा अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित, परिषद् की सब पुस्तकों, पत्रों, तथा विवरणों इत्यादि को बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य वृन्द समझे जायेंगे।

प्रधान संपादक—डा० हीरालाल निगम
सहायक संपादक—श्री जगपति चतुर्वेदी

नागरी प्रेस दारागंज, प्रयाग प्रकाशक—विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

अगस्त १९५४ भाग ७९

सिंह २०११ अंक ५

वार्षिक मूल्य चार रुपए

प्रति अंक छः आने

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्तिविज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ० ।३।५।

भाग ७६ | सिंह २०११; अगस्त १९५४ | संख्या ५

पक्षी-जगत

जगपति चतुर्वेदी

पशु-पक्षी जगत से तो हमारा निकट का सम्पर्क है, परन्तु उनकी ओर विशेष ध्यान न देने से हम उनके सम्बन्ध में अधिक जानकारी नहीं रख पाते। अनेक रूप में सहायक बना कर या केवल शोभा या मनोरंजन के लिए भी पाल कर पशु-पक्षियों का उपयोग तो प्राचीन काल से होता आ रहा होगा, परन्तु केवल ज्ञानवर्द्धन के लिए उनके आकार प्रकार, विभेद, रहन-सहन आदि का अध्ययन पूर्व काल में कदाचित अधिक न हो सका होगा। हमारे देश में प्राचीन साहित्य में कदाचित कोई ऐसी पुस्तक नहीं रची गई थी, जिसका उद्देश्य इनका ही वैज्ञानिक अध्ययन रहा हो। कुछ चिकित्सा की पुस्तकों तथा साहित्य-ग्रन्थों में इनके नामोल्लेख हमें अवश्य प्राप्त हो जाते हैं। सुश्रुत, भाव प्रकाश आदि में मांस वर्ग के वर्णन में हमें पशु-पक्षियों की कुछ विशेष चर्चा तथा वर्गीकरण देखने का अवसर प्राप्त होता है।

आज के विज्ञान ने अन्य क्षेत्रों में जहाँ विशेष सफलता प्राप्त की है, वहाँ पशु-पक्षियों के अध्ययन का स्तर भी विशेष ऊँचा हुआ है तथा वैज्ञानिक आधारों पर वर्गीकरण तथा नामकरण कर एक निश्चित विज्ञान का ही रूप दिया जा चुका है, परन्तु हमारे प्राचीन साहित्यकारों को इतने ऊँचे स्तर पर ऐसे विज्ञानों का रूप नहीं मिल सकता था। अतएव उस समय के ज्ञान के स्तर तथा धारणाओं के ही अनुसार पशु-पक्षियों का भी वर्गीकरण करने का उल्लेख हमें गौण रूप में उपर्युक्त चिकित्सा ग्रन्थों में प्राप्त होता है। पशु-पक्षियों के शरीर की विचित्रता, रूप, रंग आदि का कोई विशेष वैज्ञानिक आधार न पाकर केवल उनकी सुलभता, निवास आदि के भेद से हम कुल पशु-पक्षियों के दो भेद उल्लिखित पाते हैं। (१) जांगल तथा (२) आनूप।

मांस वर्गो द्विधा ज्ञेयो जाङ्गलानूप भेदतः।

भाव प्रकाश सर्ग, ११, श्लोक १०

अर्थात मांस वर्ग दो प्रकार के होते हैं। एक तो जांगल अर्थात् जंगली जीवों के मांस और दूसरा आनूप अर्थात् जल में या जल के समीप रहने वाले जीवों के मांस। इस मांस वर्ग से ही हम पशु-पक्षियों का भी दो विभाग समझ सकते हैं।

जांगल और आनूप भेदों की भी व्याख्या होने पर हमें निम्न वर्णन प्राप्त होता है। भाव प्रकाश में जांगल के आठ भेद और आनूप के पाँच भेद बताए गए हैं। उन भेदों को हम निम्न श्लोकों के रूप में ही व्यक्त पाते हैं :—

मांस वर्गेऽत्र जङ्घाला विलस्थाश्च गुहाशयाः।
तथा पर्णमृगा ज्ञेया विष्किराः प्रतुदस्तथा ॥३॥
प्रसहा अथ च ग्राम्या अष्टौ जाङ्गल जातयः ॥४॥
भा० प्र०, सर्ग ११

अर्थात् मांस वर्ग में जाङ्गल की आठ जातियाँ हैं :—(१) जङ्घाल (जाँघ के बल चलने वाले) (२) बिलस्थ (बिल में रहने वाले) (३) गुहाशय (गुफा में सोने वाले) (४) पर्णमृग (वृक्षों पर चढ़ने वाले) (५) विष्किर (कुरेद कर खाने वाले) (६) प्रतुद (चोंच से पदार्थ नोच कर खाने वाले) (७) प्रसह (जबर्दस्ती छीन कर खाने वाले) तथा (८) ग्राम्य (गाँव में रहने वाले)।

आनूप के भेद निम्न हैं :—

कूलेचरा प्लवश्चादि कोशस्था पादिनस्तथा।
मत्स्या एते समाख्याता पञ्चधाऽऽनूप जातयः ॥
भा० प्र० सर्ग १६

अर्थात् आनूप जन्तुओं की पाँच जातियाँ निम्न प्रकार है :—(१) कूलेचर (नदी आदि के तट (कूल) पर चरने वाले) (२) प्लव (जल के ऊपर तैरने वाले) (३) कोशस्थ (ढकने के मध्य रहने वाले) (४) पादी (पाँव वाले जल-जन्तु) तथा (५) मत्स्य (मछली)।

जब हम इन नामों का पुनः विशेष विवरण पढ़ते हैं तो हमें अनेक प्रकार के जन्तुओं का एक स्थान पर संक्षिप्त विभाजन देख कर कौतूहल होता है। हम इन जन्तुओं को नाना प्रकार के रूपों में देखते हैं। इनमें रहने, खाने-पीने, चलने आदि के सम्बन्ध में हमें विभेद स्पष्टतया दिखाई पड़ सकते हैं, परन्तु हम कभी उनका कोई अध्ययन या वर्गीकरण कर पशु-पक्षी वर्गों का नाम देने का प्रयत्न नहीं करते। प्राचीन शास्त्रकारों ने ऐसे क्षेत्र में भी कुछ बुद्धि लगा कर वर्गीकरण करने का जो साधारण प्रयत्न किया है, वह हमें आज के विशद वैज्ञानिक वर्गीकरणों और नामकरणों के सामने अत्यन्त हास्यास्पद तथा भ्रान्त अवश्य ज्ञात हो सकता है, परन्तु इन प्राचीन चर्चाओं को प्रारम्भिक प्रयत्न समझ कर हमें कौतूहल का अनुभव होना चाहिए। पशु-पक्षियों के विभेदों के इस प्राचीन रूप को कुछ जंतुओं तथा पक्षियों के नाम के साथ इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है :—

जांगल के भेद-प्रभेद

१—जङ्घाल

(१) हरिण—फीके ताँबे के रंग का हिरन।
(२) एण—काला या काला भूरा हिरन।
(४) ऋष्य—नीले रंग का हिरन।
(५) पृषत्—चित्तल या चितकबरा हिरन।
(६) न्यंकु—बारह सिंगा।
(७) शम्बर—साबर हिरन।
(८) राजीव—शरीर पर लम्बी-लम्बी रेखाओं युक्त हिरन (जेब्रा)
(६) मुण्डी—मुण्डा (शृङ्गहीन) हिरन।

२—बिलेशया

(१) गोधा—गोह।
(२) शश—खरगोश या शशक।
(३) भुजंग—साँप।
(४) आखु—चूहा।
(५) शल्लकी—साही।

३—गुहाशया

(१) सिंह (२) बाघ (व्याघ्र) (३) भेड़िया (वृक)
(४) भालू (ऋक्ष) (५) लकड़बग्घा (तरक्षु)
(६) चीता या चित्र व्याघ्र (द्वीपी) (७) नेवला (वभ्रु) (८) गीदड़ (जम्बूक)
(६) बिल्ली (मार्जार)

४—पर्णमृग

(१) वानर (२) वन बिलाव (वृक्ष विडाल) (३) गिलहरी (वृक्षमर्कत या रूषी) आदि

५—विष्किर

(१) बटेर या जंगली गौरैया (वर्तका) (२) लवा (लाव) (३) गौर वर्ण के तीतर की भाँति या कोई पक्षी (वर्त्तीर) (४) गौर वर्ण का तीतर (कपिंजल) (५) तीतर (तित्तिर) (६) गौरैया (कुलिंग) और (७) मुर्गा (कुक्कुट) आदि।

६—प्रतुद

(१) धुएँ के रंग का जलकौआ (कालकण्ठक)

(२) हरियल (हारीत) (३) पडुखी (कपोत का एक भेद) (४) कठफोर (शतपत्रक) (५) कबूतर (पारावत) (६) खिडरिच (खंजन या खंजरीट) (७) कोयल (पिक) आदि।

७—प्रसह

(१) कौवा (काक) (२) गीध (गृध) (३) उल्लू (उलूक) (४) चील (चिल्ल) (५) बाज (शशघातक) (६) नीलकंठ (चाष) (७) गीध का एक भेद (भास) तथा कुरर आदि।

८—ग्राम्य

(१) बकरा (छाग) (२) भेड़ा (मेष) (३) बैल (वृष) (४) घोड़ा (अश्व)

जाँगल जन्तुओं के विभागों में हम पशु-पक्षी मिश्रित रूप में ही पाते हैं। इनमें विष्किर या चोंच या पैर से फैला कर खाने वाले, प्रतुद या चोंच से निकाल कर खाने वाले तथा प्रसह या बलपूर्वक छीन कर खाने वाले तीन वर्ग पक्षियों के ही बताए गए हैं। जल के ऊपर या तट के निकट रहने वाले जंतुओं के विभाग में भी पक्षियों का स्थान है। अतएव उनका स्थान प्राचीन साहित्यकारों की दृष्टि में समझ सकने के लिए हम आनूप वर्ग के जंतुओं का भी विभागानुसार नाम दे रहे हैं। इन नामों की हम नवीन वैज्ञानिक विभाजनों में उचित स्थानों पर प्रयोग कर नए शब्दों के बनाने की असुविधा से बच सकते हैं।

आनूप जन्तुओं के भेद

१—कूलेचर

(१) भैंसा (लुलाय) (२) गेंडा (गण्ड) (३) सुअर (वाराह) (४) चँवरी गाय (चमरी) और (५) हाथी आदि।

२—प्लव

(१) हंस (२) सारस (३) कारण्ड (४) बगला (बक) (५) क्रौंच (६) शारिका (७) नन्दी मुखी, (८) बत्तख (कादम्ब) (९) बगुली (बलाका) आदि।

(इन नामों से यथार्थतः किन पक्षियों का अभिप्राय है, इसकी चर्चा पक्षियों के विशेष वर्णन में देने का प्रयत्न किया जायगा।)

३—कोशस्थ

(१) शंख (२) क्षुद्रशंख (३ सितुही (शुक्ति) (४) घोंघा (शबूक) (५) केकड़ा (कर्कट) आदि

४—पादिन—

(१) कुंभीर एक हिंस्र जल-जंतु (२) कछुआ (कूर्म) (३) नाक (४) जलसिंह (गोधा) (५) मगर (६) सेकुची (शंकु) (७) घड़ियाल (घंटिक) (८) सूंस (शिशुमार) आदि।

पाँचवा भेद स्पष्टतः मत्स्य वर्ग का ही है, जिसमें अनेक प्रकार की मछलियाँ उल्लिखित हैं। इन में हम कितने ही भेदों का विशेष वर्णन पाते हैं। रोहू (रोहित), शिलिन्द (शिलीन्ध्र), मोई (मोचिका), बुआरी (पाठीन) सींगी (शृंगी) हिलसा (इल्लीस), गरई (गरघ्री) आदि के नाम हैं। पक्षियों के वर्ग से अन्य वर्गों का कुछ विशेष भेद है। केवल इस बात को ध्यान में रखकर वर्गीकरण करने का विशेष प्रयत्न हम नहीं पाते। साधारण निवास, पहचान, स्वभाव तथा सुलभता को देख कर हम इन विभागों को एक बहुत ही स्थूल रूप का अध्ययन नहीं कह सकते हैं।

पक्षी विज्ञान के अल्प ज्ञान का दोषारोपण अन्य विज्ञानों की भाँति ही प्राचीनों पर भले ही लगाया जाय, किन्तु पक्षी-जगत के प्रति आकर्षण प्राचीन

काल में भी न्यून नहीं पाया जा सकता। यदि हम काव्य, साहित्य आदि में मानव-प्रयत्नों में कल्पना की उड़ानों के साथ ही साथ चिड़ियों की उडानों एवं मनोहारी वर्णनों का संकलन करने लगें तो विशाल साहित्य एकत्र हो सकता है तथा हम पक्षियों के संबंध में कुछ परिचय तथा ज्ञान प्राप्त करने के उद्योग से पथच्युत हो कर भ्रम जाल में पड़े रह सकते हैं। प्राचीन काव्यों में जो कुछ कवियों ने पक्षियों के सम्बन्ध में लिखा उनमें कुछ ने तो अवश्य ही स्वयं पक्षियों का दर्शन कर मनोहारी दृश्य अंकित किया होगा, परन्तु पश्चातगामी अन्य लेखकों तथा मध्य युग के समस्त कवियों या लेखकों को तो हम पक्षी-जगत से स्वयं परिचय प्राप्त करने के स्थान पर उनके सम्बन्ध में पूर्व वर्ती साहित्यकारों की वर्णन सामग्री से ही उत्प्रेरित हो कर इस सम्बन्ध में कुछ लिखते या नवीन कल्पनाएँ करते पा सकते हैं। परन्तु हमारा मुख्य विवेच्य विषय यहाँ पर यह नहीं है कि प्राचीन या मध्यकालीन अथवा आधुनिक साहित्यकारों ने भी अपने काव्यों या साहित्यिक रचनाओं में पक्षी-जगत के सम्बन्ध में कितना सत्य अंश वर्णित किया है, प्रत्युत हमारा ध्यान तो इन बातों की चर्चा में केवल इस दृष्टि से गया कि पक्षी जगत के प्रति पहले भी लोगों में आकर्षण अवश्य ही रहा होगा। फलतः कुछ वैज्ञानिक विवेचन करने के पूर्व स्वभावतः मदन पाल निघंटु की निम्न पक्षी नामावली हमारे सम्मुख आ जाती है:—

पक्षी विहङ्गमः पत्री शकुन्तिर्विहगः खगः।
अण्डजो विः पत्ररथः पतत्री शकुनिर्द्विजः ॥४७॥

अर्थात् पक्षी, विहंगम, पत्री, शकुन्ति, विहग, खग, अंडज, विः, पत्ररथ, पतत्री, शकुनि और द्विज पक्षियों के पर्याय नाम हैं।

भाव प्रकाश में पक्षियों के पर्याय नाम पठनीय हैं।

पक्षी खगो विहङ्गश्च विहगोपि विहङ्गमः।
शकुनिर्विः पतत्री च विष्किरो विकिरोऽण्डजः ॥५५॥

अर्थात् पक्षी, खग, विहंग, विहग, विहंगम, शकुनि, वि, पतत्री, विष्किर, विकिर तथा अंड ज, पक्षियों के पर्याय शब्द हैं।

कुछ पक्षियों के विशेष वंशों के नाम भी पर्याय-वाची शब्दों के अनेक रूपों में हमें विशद रूप से इन ग्रंथों में वर्णित मिलते हैं। यथा स्थान उनका उल्लेख किया जा सकता है। इन विविध रूपों में एक-एक पक्षी का नामोल्लेख अतिशय कौतूहल की भावना ही प्रकट करता है। किन्तु आज के विज्ञान ने जो विशेष उच्च रूप का पक्षी-विभाजन प्रस्तुत किया है, उसकी गंभीर चर्चा न कर हम कौतूहल वर्द्धन के लिए साधारण रूप में हृदयंगम हो सकने वाले वर्णनों तथा साधारण परिचय और पहचान की चर्चा करने का ही प्रयत्न करेंगे। अधिकांश पक्षियों का साधारण परिचय तथा पहिचान के पश्चात् ही वैज्ञानिक विभाजनों का ज्ञान प्राप्त करना या अन्य विवेचन में पड़ना समीचीन हो सकता है।

हम पहले सरल रूप में पक्षियों की जाति पर एक विहंगम दृष्टि डालना चाहते हैं। विहंगम दृष्टि डालने, का मुहावरा ही हमारे सामने पक्षी का वह रूप प्रकट करता है जो वह अन्य सभी जन्तुओं से पृथक ही आकाश क्षेत्र में अस्तित्व रख कर प्रकट करता है। व्योम मंडल में विहार कर सकने वाले प्राणी अपनी सहज शक्ति से केवल विहग या पक्षी ही हो सकते हैं जो आकाश में निम्न तल का दृश्य देखने के लिए स्वभावतया ही स्थान ग्रहण कर एक ही दृष्टि में दूर तक के क्षेत्र का एक समय ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। अतएव किसी बात के अनेक पहलुओं पर साधारण दृष्टि एक साथ ही डाल सकने को विहंगम दृष्टि डालना कहते हैं।

पक्षी शब्द भी उनकी भारी विशेषता यह बतलाता है कि वे पक्ष (पंख) धारण करने वाले विशेष जंतु हैं। अन्य जन्तुओं में शरीर के ऊपरी आवरण रूप में चर्म के ऊपर बाल उगे होते हैं या छिछड़े की

भित्ति बनी होती है, परन्तु पक्षियों के सारे शरीर पर हम क्षुद्र पंखों का ही आवरण मंडित पाते हैं। जिस विशाल क्षेत्र में मनुष्य की भी अवशता इस प्रकार प्रकट होती है कि स्वयं अपनी शारीरिक शक्ति से, किसी यान्त्रिक उपकरण की सहायता बिना गति संभव नहीं, उसी विशाल गगन मंडल में गगनचारी नाम सार्थक करने वाले पक्षी अपनी विलक्षण गति तथा पहुँच से हमें स्तब्ध करते हैं। इसके मूल कारणों पर दृष्टि जाते ही हमारा उनकी सूक्ष्म शारीरिक रचना पर ध्यान जाता है।

पक्षियों के कंकाल में अस्थि की रचना उल्लेखनीय है। अन्य प्राणियों की भाँति पक्षियों की अस्थि भारी नहीं होती। उसकी व्यवस्था इस प्रकार होती है कि जहाँ अन्य जंतुओं की अस्थि का आंतरिक भाग मज्जा से पूरित होने के कारण उसे भारी बनाता है वहाँ चिड़ियों की अधिकांश अस्थियाँ मज्जा हीन तथा खोखली होती हैं। किसी भी ठोस धातु की छड़ के स्थान पर उतनी ही धातु की निर्मित खोखली नली अधिक पुष्ट होगी अतएव पक्षियों की हड्डियाँ खोखली होने से अत्यंत हल्की किन्तु साथ ही भरपूर पुष्ट होती है जो उसके शरीर धर्म का पालन करने में सर्वथा समर्थ होती हैं। किन्तु इस रूप की निर्मित अस्थियों से बने पक्षियों के शरीर का विशेष महत्व होता है। वे दृढ़ता तथा हल्केपनके मेल के कारण आकाश में उड़ने में भारी सुगमता का अनुभव करते हैं। एक हंस के शरीर की अस्थियों का जितना भार हो सकता है, वह समान आकार के खरगोश की अस्थियों के भार से उस अवस्था में आधा होता है, जब खरगोश की अस्थियों से मज्जा निकाल कर भार की तुलना की गई हो। इसका कारण यही है कि पक्षियों की अधिकांश हड्डियाँ खोखली होती हैं। उन में हवा का कोष भी प्रायः विद्यमान होता है। अधिकांश हड्डियों, विशेषतया वक्षस्थलीय अस्थियों की विशेष बनावट तथा वक्षस्थल की अत्यंत पुष्ट पेशियों के कारण ही पक्षी उड़ सकते हैं। यह अनुमान किया गया है कि यदि मनुष्य को हवा में उड़ा सकने योग्य विशाल पंख होते तो उसके भार को उठा सकने की शक्ति पैदा करने के लिए वक्ष स्थल की पेशियाँ चार फीट मोटी होनी आवश्यक होतीं। अस्थियों की विचित्र रचना तथा उपयुक्त पेशियों की प्रबल पुष्टता के अतिरिक्त पक्षी का शरीर भी इस आकार का होता है जो वायु का न्यूनतम अवरोध कर गतिशील होसके। आधुनिक मोटर गाड़ियों को इसी के अनुरूप रूप देने के लिए आगे तथा पीछे की ओर न्यूनतम आकार का रख कर मध्य में कुछ चौड़ा रक्खा जाता है जिस में आगे के नोकीले से भाग से सहज ही वायु का प्रवाह पीछे हो कर उसे आगे निकल जाने दे।

पक्षियों की एक अन्य भारी विशेषता भी होती है। वे अंडज तो होते हैं, परन्तु उनको उष्ण-रक्तीय जंतु में भी विशेष स्थान प्राप्त है। अन्य अंडज जन्तु शीत-रक्तीय प्राणी होते हैं अर्थात् उनके शरीर का रक्त अपना तापमान बाह्य वातावरण से प्रभावित कर न्यून या अधिक करता रहता है। शीत ऋतु में उनके शरीर का तापमान गिर जाता है, किन्तु उष्ण ऋतु में बाहरी वातावरण गर्म होने से उनका रक्त भी तापमान बढ़ा देता है। उष्ण-रक्तीय जंतुओं में यह स्थिति नहीं होती। उनका रक्त बाह्य परिस्थितियों से प्रभावित होने के स्थान पर बराबर एक स्थिर तापमान ही रखने की व्यवस्था रखता है। स्तनपायी जन्तु इसी प्रकार की व्यवस्था रखते हैं। उनके शरीर के रक्त का तापमान रक्षित रहने पर ही उनका जीवन निर्भर करता है, यदि शीत या उष्णता से उनके शरीर के रक्त का तापमान घट या बढ़ जाय तो उनके प्राणों के लाले पड़ जाते हैं। अतएव हमें इस वर्ग में होने से शीत ऋतु में उष्णता की रक्षा करने वाले परिधानों तथा स्थलों की आवश्यकता होती है। परन्तु पक्षी तो हमसे भी ऊँचे पद पर हैं। उनके शरीर का रक्त अन्य सभी उष्ण-रक्तीय जतुओं से कुछ अंश ऊँचा तापमान रखता है। फलतः १००° से लेकर

११२° फार्नहीट तक पक्षियों के रक्त का तापमान पाया जाता है। उनके शरीर के आवरण रूप में क्षुद्र पंखों (पतत्र) की परत चमड़े के ऊपर बालों के स्थान पर सर्वत्र मढ़ी होती है जो ताप अवरोधक होती है।

ताप निरोधक क्षुद्र पक्षीय आवरण की सहायता से पक्षी महान विषम ऋतुओं का सामना करने में समर्थ हो सकते हैं। जब तक उन्हें यथेष्ट मात्रा में खाद्य पदार्थ मिलता रहे जो उनके शरीर रूपी इंजिन की भट्टी में पत्थर के कोयलेकी भाँति जल कर शक्ति उत्पन्न करता रहे, तब तक पक्षी चरम सीमा के ऋतु विपर्ययों को सहन कर ले जाते हैं, चाहे पचासों अंश तक तापमान की वृद्धि हो कर वायुमंडल तपने लगा हो, चाहे पचासों अंश नीचे तापमान गिरने से घोर शीत का ही साम्राज्य स्थापित हो गया हो। परन्तु पक्षी यथेष्ट भोजन पाकर अपना शारीरिक तापमान स्थिर रख कर विषम वातावरणों को सहज ही पार कर ले जाते हैं। इसके लिए प्रकृति ने उनको पाचन शक्ति दुग्धपायी जन्तुओं से अधिक बलिष्ठ बनाई है। उनमें स्वेद (पसीना) उत्पन्न करने की ग्रन्थियों का भी अभाव होता है। इधर शारीरिक कठोर श्रम का फल अतिशय उष्णता हो और उधर उष्ण कटिबन्ध की घोर गर्मी हो तो उस अवसर पर शरीर की रक्षा कठिन ही हो सकती है। परन्तु पक्षी इसको सहन कर लेता है। उनके शरीर के श्रम से उत्पन्न हुई उष्णता फेफड़े तथा वायु-नलिकाओं द्वारा वहिष्कृत हो जाती है। पक्षियों के शरीर के अनेक भागों तथा अस्थियों के खोखले भाग में वायु-कोष होना पक्षी की एक विशेषता है। इनका कार्य आंतरिक स्वेदन क्रिया की वृद्धि करना है। रक्त से जलवाष्प वहिष्कृत हो कर इन वायु-कोषों में जाती है और उनसे फेफड़े में पहुँच कर फेफड़ों द्वारा बाहर निकल जाती है। वायु-कोष अप्रत्यक्ष रूप से फेफड़े द्वारा सम्बन्ध स्थापित किए रहता है।

पक्षियों में हम क्षुद्रपक्षों या शरीर भर में व्याप्त छोटे-छोटे पंखों को एक विशेष रूप में लगे पाते हैं। वे हमें देखने पर तो ऊपर से सम्पूर्ण शरीर ढके ज्ञात होते हैं, परन्तु ऊपर से देखने पर कोई अरहर या ईख का खेत पूर्ण भरा दिखाई पड़ने पर भी नीचे भूमि पर उसके विपरीत कुछ पंक्तियों में ही जड़ तथा तने (डंठल) खड़े पाए जा सकते हैं। उसी प्रकार ऊपर तो फैल कर क्षुद्र पंख पूर्ण ढका तल ही प्रकट करते हैं, परन्तु ऊपरी तल के नीचे उनके निम्न भाग डंठलवत ही कुछ विशेष पंक्तियों में लगे होते हैं। उनकी पंक्तियाँ ऐसे विशेष रूपों की होती हैं कि एक वंश या अनुवंश की विभिन्न श्रेणियों की भी पृथक-पृथक पहचान की जा सकती है। श्रेणी भर में समान व्यवस्था होती है।

पक्षी को द्विपद भी कहा जाता है। द्विपद तो मनुष्य भी है। किन्तु साथ ही दो हाथ भी होते हैं। पक्षी में हम हाथ के स्थान पर डैनों को लिया समझ सकते हैं, जो चमगीदड़ में उँगलियों के नाखून युक्त रूप को अपने चमड़े के फैले हुए डैने सरीखे अंग में मढ़ा दिखा सकता है। विकास होने पर हाथ का वह अवशिष्ट रूप भी परिवर्तित हो कर डैने का सर्वथा पृथक रूप रंग बन सका होगा, परन्तु पैरों पर भी ध्यान जाने पर कुछ विस्मय-जनक बात का आभास मिलता है। हमारे पैर के घुटने पीछे की ओर नहीं मुड़ पाते, बल्कि आगे की ओर ही मुड़ कर हमें उठने-बैठने में समर्थ बनाते हैं, परन्तु पक्षियों के पैर में हमें दिखाई पड़ने वाले रूप में चंगुलों या पंजों से ऊपर एक ही जोड़ मिलता है जो आगे की ओर न मुड़कर पीछे की ओर मुड़ता है। इस विरोधाभास का क्या कारण हो सकता है? पक्षियों के शरीर का अध्ययन कर यह ज्ञात किया गया है कि पंजे या चंगुल से पक्षी के धड़ के भाग तक पैर रूप में दिखाई पड़ने वाले अवयव में मध्य भाग में जो संधि होती है, वह यथार्थ में घुटने के अनुरूप अंग नहीं है, प्रत्युत वह टखना या एड़ी के ऊपर का पहला जोड़ है, जिसमें पंजे तुरन्त निकट न हो कर लंबोतरे भाग के सिरे पर होते हैं। यथार्थ में बीच के जोड़ से पंजे तक का भाग वही होता है, जितना हम अपने

जूतों के अन्दर ढँका रखते हैं। यह लंबे रूप में ही पक्षियों के अन्दर होने से हमें देखने में धोखा होता है। घुटने के अनुरूप संधि तो उनमें पैर तथा धड़ के जोड़ पर होती है तथा पैर का शेष ऊपरी भाग धड़ के अन्दर पेशियों में ढँका हुआ होता है।

पक्षियों के डाल पर बैठने या शिकार दबोचने की क्रिया में हड्डियों से पेशियों को बाँधने वाली नस या (कंडरा) का विशेष स्थान होता है। पैर की बीच की संधि को ऊपर की पेशी बाँधने वाली नस (कंडरा) इस प्रकार पार कर चंगुल तक पहुँचती है कि जब पक्षी का पैर पीछे झुकता है तो वह छोटी बन सिकुड़ जाती है। फलतः चंगुल भी सिकुड़ कर एकत्र हो जाते हैं। डाल पर सोते पक्षी का पैर इस प्रकार चंगुलों द्वारा डाल को दृढ़ता से पकड़े रहता है। जब चील शिकार पर झपट्टा मारती है तो वह शिकार पर जोर से बैठ ही जाती है, जिससे उसके चंगुल उसके शरीर में धँस कर बलपूर्वक पकड़ने के लिए सिमट जाते हैं। किसी मुर्गी के चलते समय पैर उठाने पर पंजे फैलने और नीचे रखने पर सिमटते हुए ऐसा ही दृश्य उपस्थित करते हैं।

पक्षियों को आकाश में रहने के लिए यथेष्ट शक्ति-संपन्न शरीर प्राप्त हुआ है। उनके बल को देख कर ही उनके नाम शक् धातु (बली होना) से बने शब्द शकुन्त, शकुनक, शकुन तथा शकुन्ति आदि हैं। हमें स्मरण रखना चाहिए कि इन्हीं ध्वनियों का शक् शब्द इन्द्र के लिए भी प्रयुक्त होता है जो शक्ति का आगार समझा जाता है। अतएव शकुनि आदि नामों से हमें सहज ही उनके बल का बोध होता है। वायुमंडल के विशाल क्षेत्र में विहरण कर सकने की स्वतन्त्रता प्राप्त होने से "यथेष्ठचारिन" नाम भी पक्षी को प्राप्त होना स्वाभाविक ही है। अपनी दूर तक तीव्र गति के ही कारण वे ऊंचे स्थानों तक पहुँच कर अंडे देकर अपनी सन्तान वृद्धि ही नहीं कर सकते, बल्कि अत्यन्त दूर के स्थानों तक भी यात्रा कर ऋतु-विपर्यय से चारा मिलने की कठिनाई दूर करने में तथा अंडे देकर सन्तान वृद्धि करने में समर्थ हो सकते हैं। इस प्रकार किसी स्थान पर घोर शीत तथा हिम का प्रसार होने लगने पर, वे एक रात में ही कहीं दूर जाकर हरे भरे स्थान में बसेरा ले सकते हैं। घोर विषम स्थलों तथा महासागरों को भी पार कर हम पक्षियों के स्थानान्तरित होने का दृश्य देख कर स्तब्ध हो जाते हैं।

उड़ने के वेग की कल्पना कर पक्षियों को वातगामी नाम देना केवल सार्थक ही नहीं है, प्रत्युत विमानों के साथ एक दिशा में उड़ कर १०० मील प्रति घंटे तक की गति भी विरले विशेष पक्षियों द्वारा देखने का प्रत्यक्ष अवसर प्राप्त हो सका है। अन्य साधारण पक्षियों में क्षुद्र पक्षियों को २०-३७ मील, काक को ३१-४५ मील, बत्तख को ४४-५९ मील तथा बतासी चिड़िया को ४०-५१ मील प्रति घंटे उड़ते पाया जा सका है।

संतान वृद्धि के लिए अंडे देने और सेने के लिए घोंसला बनाने के कारण पक्षियों का नाम नीड़िन, कुलायस्थ, वृक्ष गृह, तरुशायी या घोंसले में उत्पन्न होने के कारण नीडज या नीडोद्भव भी रक्खा गया है। अपने अंडों की रक्षा के लिए वे इतने ऊँचे वृक्षों पर घोंसले बनाते हैं जहाँ जल्दी कोई शत्रु न पहुँच सके। परन्तु वृक्ष पर ही नहीं वे नदी नालों के निर्जन तटों में साधारण विवर में वृक्षों पर अत्यंत कुशलता से तिनके के पतले टुकड़ों से बने हुए बया के घोंसलों तक, का उदाहरण उपस्थित करते हैं। यह अवश्य है कि इन कृत्यों का कारण उनकी विशेष बुद्धि नहीं मानी जाती, बल्कि सहज बुद्धि या अंत-प्रेरणा ही है। ये यथार्थतः अध्ययन के विषय हैं।

पक्षियों की ज्ञानेन्द्रियों में श्रवण तथा दृष्टि शक्ति अत्यन्त विकसित होती है, परन्तु गंध शक्ति का अभाव ही होता है, स्वाद की शक्ति भी बहुत न्यून होती है। दृष्टि शक्ति तो इस कारण विशेष उल्लेखनीय है कि आवश्यकता के अनुसार वे अपने नेत्र दूर की वस्तु देखते-देखते ही पल मात्र में उसे इस रूप में भी पलट सकते हैं कि सूक्ष्म-सूक्ष्म वस्तु पर

दृष्टि डाल सकें। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं। कि एक पक्षी एक क्षण जहाँ अपना नेत्र दूर दर्शक यंत्र रूप में उपयुक्त करता रहता है, वहाँ एक क्षण में किसी सूक्ष्म वस्तु के देखने की आवश्यकता होने पर अपने नेत्र को सूक्ष्मदर्शक बना सकता है। गृध्र को बड़ी दूर तक देख सकने की शक्ति मिली बताई जाती है तथा चील को बहुत ऊँचाई पर से भी छोटी वस्तु भी देख सकने में समर्थ पाया जा सकता है परन्तु इस तरह के अपेक्षाकृत न्यून या अधिक दोनों प्रकार की दृश्य शक्तियुक्त सभी पक्षियों को माना जा सकता है। किन्तु दृश्य शक्ति की इतनी विभिन्नता तथा कुशलता के होते भी बुद्धि के संबन्ध में वैज्ञानिकों का मत बहुत संतोषजनक नहीं है। पक्षी अपने शिशु के भयाक्रान्त होने पर उसकी रक्षा के लिए कुछ कौशल करते दिखाई अवश्य पड़ते हैं परन्तु उसे तर्क या विवेक शक्ति नहीं कहा जा सकता। वह तो सहज बुद्धि या स्वाभाविक प्रेरणा ही कही जा सकती है। असाधारण तथा नवीन परिस्थिति में कुछ सोच सकने का गुण उनमें नहीं होता।

पक्षियों की वाणी के सम्बन्ध में भी लोगों की धारणा कुछ कल्पना-प्रचुर पाई जाती है। पशु भाषा भी होती है, इसका कहना तो कठिन ही है। परन्तु केवल ध्वनियों के संकेत से बहुत ही स्थूल भावनाएँ प्रकट करना ही यदि भाषा कही जा सके तो उसे पशुभाषा की श्रेणी में माना जा सकता है। तोता, मैना आदि जिह्वा का व्यायाम कर मनुष्य के शब्दों के अनुरूप कुछ वाक्य, पद या, शब्द दुहरा लेते हैं, परन्तु इतना निश्चित है कि वे अर्थ द्योतन में अपनी बुद्धि का प्रवेश नहीं रखते। इसी कारण तो तोता रटंत का मुहावरा निर्बुद्धि या नासमझी पूर्वक कोई बात केवल दुहरा लेने या याद करने के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है। एक स्थल पर कोई तोता या मैना किसी नाविक या समुद्र तट वासी ने पाल रक्खा था। साधारण बंदरगाह की तरह स्थान बना कर घोड़ा गाड़ियों द्वारा सामान किनारों तक पहुँचाया जा कर जहाजों या समुद्री नावों पर लादा जाता था।

इसके लिए घोड़ा गाड़ी उल्टी दिशा में कर नाव के निकट कर लेने के लिए घोड़े को पीछे हटा कर धीरे-धीरे गाड़ी ठीक स्थिति में कर ली जाती जिससे सामान सहज ही लद सके। प्रायः घोड़े को 'पीछे हट', 'पीछे हट' कह कर गाड़ी तट के ठीक छोर तक की जाती। एक बार गाड़ी को तट के पास ही उल्टी दिशा में रख कर गाड़ीवान कहीं काम से चला गया था। वहीं पर तोता भी टँगा था। उसने उस नित्य की सुनी आवाज को रट कर 'पीछे हट पीछे हट' उच्चारण कर सकने के लिए अपनी जीभ को साध लिया था। अपनी पशु भावना से उसने गाड़ीवान की अनुपस्थिति में 'पीछे हट' की टेर लगाई, घोड़ा थोड़ा पीछे हटा, बार-बार की रट पर वह थोड़ा-थोड़ा पीछे हटते-हटते ठीक तट के छोर तक आ पहुँचा, परन्तु तोते ने अपने रटे पदों को फिर भी दुहराना जारी रक्खा। घोड़ा अपनी स्थिति या दुष्परिणाम की चिन्ता न कर तोते के शब्द को अपने स्वामी का ही शब्द समझ कर फिर पीछे हटा और गाड़ी के साथ पानी में गिर कर डूब गया। यह दुर्घटना तोता रटंत का परिणाम थी।

पशु पक्षी मनुष्य के स्तर पर बुद्धि का विकास तो नहीं दिखा सकते, परन्तु कुछ गुणों में उनको मनुष्य से भी ऊपर माना जा सकता है। पक्षियों में उड़ने की शक्ति तो एक अपूर्व कौशल है ही, उनका साहस तथा अध्यवसाय भी हमारे लिए विस्मय का ही कारण हो सकता है। देशान्तरगामी चिड़ियाँ ऐसे उदाहरण को प्रस्तुत करती हैं। उनकी विशेष चर्चा तो हम यहाँ नहीं कर सकते, परन्तु हमारे सामने प्रति वर्ष मैदानी भागों में ग्रीष्म तथा वर्षा ऋतु में अनुपस्थित रह कर शरद ऋतु के आगमन पर खंजन पक्षियों का आगमन होता है, तुलसीदास ने लिखा भी है:—

जानि शरद ऋतु खंजन आए।

किन्तु यह खंजन पक्षी कोई विरला उदाहरण नहीं है, जो पक्षियों का देशान्तर-गमन प्रकट करता

हो। संसार में सहस्रों पक्षी बिषम ऋतुओं में स्थान परिवर्तन के अद्भुत उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। खंजन पक्षी तो उत्तरा खंड से आता ही है। अन्य अनेक पक्षी बैकाल झील (साइबेरिया) तक से हमारे देश में शरद् ऋतु काटने चले आते हैं।

केवल यही बात नहीं है कि अत्यंत दूरस्थ शीत-प्रदेशों से ही अपेक्षाकृत उष्ण भागों में पक्षियों के जाने और पुनः अन्य ऋतुओं में अधिक उष्ण भूभागों से भाग कर अपेक्षाकृत शीत देशों में जाने के उदाहरण ही मिलते हैं। बल्कि एक ही स्थान पर पर्वतश्रेणियों की विभिन्न ऊँचाइयों में विभिन्न तापमान तथा वातावरण होने तथा उन स्थितियों में ऋतु परिवर्तन से भारी अन्तर आ उपस्थित होने से एक उँचाई के क्षेत्र से दूसरी अधिक सुविधाजनक, उँचाई तक के क्षेत्र या पर्वतीय स्थान से सर्वथा मैदानी भाग में स्थान परिवर्तन के भी उदाहरण पक्षियों द्वारा प्राप्त होते हैं। जिस प्रकार हमारे देश की उष्ण स्थली तथा तिब्बत रूस आदि की शीत प्रधान भूमि में महान अंतर है उसी प्रकार एक ही उत्तुंग पर्वत माला में ऐसे विविध रूप के तापमान के उदाहरण प्राप्त होते हैं। यह भी ध्यान में रखने की बात है कि तापमान की विषमता से हरियाली तथा वातावरण में भी विभेद उपस्थित होता है। विभिन्न उँचाइयों के विभिन्न क्षेत्र में विशेष वर्ग के वनस्पति ही उगते हैं तथा उन पर जीवन आधारित रखने वाले कीट भी विशेष वर्गों के होते हैं, अतएव वनस्पति तथा कीट पतंग आदि के आधार पर रहने वाले पक्षी भी विभिन्न तलों पर विभिन्न रूप के होते हैं।

हिमालय सरीखे ऊँचे पर्वत पर नीचे के तल या तराई में हम जहाँ उष्ण कटिबंध का वातावरण पा सकते हैं, वहाँ ऊपर के तलों तक जाने पर अर्द्ध उष्ण, शीतोष्ण तथा शीत वातावरण के बाद अत्यंत शीत, ध्रुव-प्रदेशीय वातावरण भी अंत में पा सकते हैं। इसका कारण यह है कि धरातल पर तो भूमध्य रेखा के निकट के स्थलों में सूर्य की सीधी किरणों पड़ने से उष्ण कटिबंध तथा क्रमशः ध्रुव प्रदेशों की ओर जाने पर अधिकाधिक तिरछी किरणों के पड़ने से ताप की मात्रा न्यून होती जाने से वातावरण या जलवायु में घोर अंतर पड़ने लगाता है, परन्तु पर्वतीय प्रदेश में तापमान का अंतर उँचाई बढ़ने से ही पड़ने लगता है। इसी कारण उष्ण कटिबंध या उसके निकट के प्रदेशों में भी अत्यंत ऊँचे पर्वतों पर सदा हिम-प्रसार वाले तल पाए जाते हैं। प्रत्येक हजार फीट की ऊँचाई पर लगभग सवातीन अंश फार्नहीट तापमान न्यून होता जाता है। फलतः समुद्र तल पर जहाँ ८०° फार्नहीट तापमान होगा वहाँ ६००० फीट की ऊँचाई पर २० अंश न्यून हो कर ६०° ही रह जायगा। किन्तु हिमालय की सर्वोच्च शिखर एवेरेस्ट पर तो वह शून्य अंश से भी १३ अंश नीचे पहुँच कर घोर शीत का वातावरण उपस्थित करेगा।

इस प्रकार के परिवर्तन के कारण भिन्न भिन्न उँचाइयों के तल पर भिन्न भिन्न तापमान का खंड होने से हम उन्हें भिन्न भिन्न प्राणियों के क्षेत्र या मंडल रूप में जानते हैं। ये प्राणियों के क्षेत्र तो इतने स्पष्ट होते हैं कि उन में पशु पक्षी का प्रकार देख कर यह कहना विशेषज्ञों के लिए संभव हो सकता है कि वे कितनी उँचाइयों के क्षेत्र हो सकते हैं। इस प्रकार भूमध्य रेखा से ध्रुव प्रदेश के अत्यंत विस्तृत स्थलों में हमें जो पक्षियों की विभिन्नता देख या जान सकने का सुभीता नहीं प्राप्त हो सकता, वह हमें पर्वतों पर थोड़ी उँचाइयों के परिवर्तन पर देखने का सहज अवसर प्राप्त हो सकता है। यदि हम भूमध्य रेखा के निकट या उष्ण कटिबंध के समीप के प्रदेश में अत्यन्त उच्च पर्वतमालिकाओं को इस कारण विभिन्न कटिबंधों में रह सकने वाली चिड़ियों का एक सहज दृश्य प्राकृतिक चिड़िया-खाना ही कहें तो कोई भारी आश्चर्य की बात नहीं।

प्रकृति में परिवर्तन होता है। पर्वत-शृंखला के उत्तुंग शृंगों तक सब की पहुँच नहीं हो सकती है। पता नहीं, इतनी भारी उँचाइयों पर पशु पक्षी

किस रूप रंग के हों। परन्तु सृष्टि का क्रम बदलता है। ग्रीष्म के बाद वर्षा, तदनन्तर शरद ऋतु आती है। ग्रीष्म तथा वर्षा ऋतु में हिम जमने की रेखा जितनी ऊँचाई पर हो कर ऊपर की पर्वतमाला को हिमाच्छादित रखती है, वह हिम रेखा ऋतु परिवर्तन के कारण शरद ऋतु में अपेक्षाकृत अधिक न्यून तल तक आ पहुँचती है। यह १५०००-१८००० फीट की उँचाई से उतर कर आठ या नौ हजार फीट तक की ऊँचाई तक आ जाती है। पक्षी भी, जो साहस कर अत्यंत निर्जन उत्तंग शृंगों तक अपना अवास किए रहते हैं, सब ओर हिम प्रसार होता देख नीचे के तलकी ओर अपना अभियान प्रारंभ करते हैं। यह हमें ध्यान में रखना है कि पक्षियों के भिन्न भिन्न उँचाइयों के क्षेत्र के विशेष मंडल होते है। उन विभिन्न मंडलों या श्रेणियों के पक्षियों को अपेक्षाकृत शीत उष्ण वायुमंडल के विशेष क्षेत्रों में ही रहने का अभ्यास होता है, इस लिए उन मंडलों या श्रेणियों को हम क्रमशः न्यून उँचाईयों के विभिन्न क्षेत्रों में उतरते देखते हैं। फलतः कुछ तो पर्वतमाला में पहले से कुछ कम उँचाई के हिमशून्य क्षेत्र में आते हैं' तथा कुछ पहाड़ों में से उतर कर अपेक्षाकृत उष्ण मैदानी स्थलों में आ पहुँचते हैं। ऐसे भी उदाहारण पाए जाते हैं कि एक विशेष ऊँचाई की पर्वतमाला के वातावरण में रहने का अभ्यस्त पक्षी हिमालय की उस उँचाई के क्षेत्र को हिमव्याप्त देखकर आवास योग्य नहीं पाता तो एक ही उड़ान में भारत खंड के डेढ़ हजार मील लंबे भाग को पार कर सीधे दक्षिण में नील गिरी के पर्वत तथा अन्य पहाड़ियों पर जा पहुँचता है। ये पक्षी बीच के क्षेत्र में प्रायः नहीं देखे जाते अतएव उनकी एक उड़ान में ही हिमालय से नीलगिरि तक की एक उड़ान का ही अनुमान करना पड़ता है।

एक प्रसिद्ध विज्ञान वेत्ता का सिद्धान्त है कि उष्ण-रक्तीय जंतुओं में हम उष्ण प्रदेश में रहने वाले जीव-जन्तुओं की अपेक्षा अपेक्षाकृत शीत प्रदेश में निवास करने वाले जीव जंतुओं को बड़े आकार का बनते पाते हैं। अतएव जो उष्ण-रक्तीय जंतु उष्ण कटिबंध में रहता है उसी का बन्धु जंतु शीत कटिबन्ध में रहने पर आकार में उसकी अपेक्षा बड़ा होगा। पर्वतमालाओं में भी हम इसी प्रकार एक ही वंश या जाति प्रजाति के जंतु या पक्षी को निम्न ऊँचाई पर रहने वाले की अपेक्षा ऊँचे भाग में निवास करने वाले को अपेक्षाकृत अधिक बड़ा आकार धारण करते पाएंगे। पहाड़ी मैना पहाड़ी तोता तो अपने बड़े आकार को हमारे घरों में पिंजड़े में बन्द रह कर प्रकट करते हैं। पर्वतों की विभिन्न उँचाइयों पर जीवन धारण कर सकने की विभिन्न स्थितियाँ होती हैं। आकार बढ़ने के स्थान पर पक्षियों में एक बात और भी पाई जाती है। उँचाई बढ़ती जाने पर वायुमंडल का दबाव भी न्यून होता जाता है। समुद्र तल पर वायुमंडल का जितना दबाव पाया जा सकता है, उसका आधा दबाव ही १८००० फीट की उँचाई पर वायुमंडल में पाया जाता है। अतएव उँचाई बढ़ती जाने पर पतली वायु ही श्वास लेने को मिल सकती है। इस कारण पक्षियों के फेफड़े बड़े आकार के बन जाते हैं जिससे वे पतली वायु की असुविधा अधिक मात्रा में वायु ग्रहण कर सकने की सामर्थ्य से दूर कर सकते हों। किन्तु अधिक उँचाई पर रह सकने के लिए उनमें अन्य कोई विशेष परिवर्तन आवश्यक नहीं होता।

वातावरण का जंतुओं के रंग पर भी गहरा प्रभाव पड़ता है। जो क्षेत्र आर्द्र या घोर वनस्थली बने घोर वर्षा के प्रभाव में होते हैं, वहाँ जंतुओं का रंग अधिक गहरा होता है। परन्तु अनावृष्टि के स्थल मरु भूमि होने पर केवल धूमिल पीला या बलुआ (पीलापन लिए लाल) रंग के ही जीव-जंतु होते हैं। यह बात केवल पशु संसार के लिए ही नहीं कही जा सकती बल्कि इन क्षेत्रों का समस्त पक्षी वर्ग भी ऐसे ही प्रभावों में होता है। यह कह सकना तो बड़ा कठिन है कि इस सत्य के यथार्थ भेद क्या हैं, परन्तु जान पड़ता है कि प्राणी की त्वचा एवं

बाह्य आवरण में रंग उत्पन्न करने वाले तत्व वर्षा के आधिक्य में आर्द्रता की प्रचुरता में ही विशेष वृद्धि पा सकते हैं। यह भी विश्वास किया जाता है कि दृश्य प्रकाश से परे की परा-कासनी नाम की अदृश्य किरणें वायु-मंडल में जलवाष्प विद्यमान रहने से दुर्बल शक्ति होकर रंगों की वृद्धि होने देती हैं। रंग तो प्रकाश की उन किरणों के ही रूप हैं जो हमें दृष्टिगोचर हो सकती हैं।

इन विभिन्न स्थितियों में पक्षियों के रूप रंग का विविध रूप होने का अनुमान कर हम संसार के पक्षी-जगत को विभिन्न क्षेत्रों में विभाजित समझ सकते हैं। विशाल हिमाचल-शृंखला की पेटी भारत वर्ष तथा दक्षिणी एशिया के देशों को एशिया के अवशिष्ट उत्तरी विस्तृत भाग तथा योरप से पृथक कर उत्तरावर्त्ती भागों का एक क्षेत्र प्रकट करती है। इसे उत्तरा खंड कहने में कुछ अनुचित नहीं जान पड़ता। इसी में तिब्बत, मध्यएशिया, योरप, उत्तरी अफ्रीका तथा साइबेरिया आदि सम्मिलित माने जाते हैं। यह जन्तु-भौगोलिक क्षेत्र पुराध्रुवीय खंड (पेलियार्कटिक) या उत्तराखंड नाम से ज्ञात है जहाँ शीत, अनावृष्टि, हिमपात, झंझावात आदि का अतिरेक है। इसके विपरीत दक्षिणी क्षेत्र को प्राच्य खंड (ओरियंटल) या पौर्वात्य जन्तु भौगोलिक क्षेत्र कहते हैं। हम यह भी अनुमान कर सकते हैं कि मानसून के विविधरूप में न्यून या अधिक प्रभाव दिखाने पर निकट निकट के क्षेत्र में ही इन विभिन्न क्षेत्रों के पक्षी वर्तमान हो सकते हैं। जैसे दक्षिण में पच्छिमी घाट में ४५०० फीट की उँचाई पर स्थित अतिवृष्टि के स्थान, महाबालेश्वर में प्रति वर्ष जहाँ वर्षा ऋतु में औसत रूप से ३०० इंच वर्षा होती है। वहाँ दस पांच मील दूर भीतर पठारी भागों में २०००, फीट उँचाई के स्थान में ६० तथा ३० इंच औसत वर्षा के स्थान हैं। इन विषमताओं के स्थान में पक्षियों के विविध रूप रंग प्रचुर रूप में अपनी विभिन्नता प्रकट करने का अवसर पाते हैं। अरब सागर की मानसून पच्छिमी घाट की पर्वत शृंखला से टकरा कर जहाँ ऊँचे स्थल पर या तटवर्ती स्थान में वर्षा की अधिकता करती है, वहाँ ऊँची शृंखला के पच्छिम के स्थल खंड में निकटवर्ती तथा नीचे स्थानों में वर्षा की अत्यन्त न्यूनता देखी जा सकती है। अतएव उँचाई की विभिन्नता तथा वृष्टि में विषमता के मिश्रित कारणों से पक्षी जगत का विचित्र ही प्रतिनिधित्व उन स्थलों में पाने का अवसर मिलता है।

पक्षियों की विविधता के लिए विभिन्न वातावरण के स्थल विद्यमान होने से हम भारतवर्ष को एक प्रकार से सौभाग्यशाली देश मान सकते हैं। एक ओर तो ऊँची पर्वतमलाएं, हिमाच्छादित उत्तुंग शृंग, पर्वतों के ऊँचे तल पर ही अति घोर वृष्टि के चेरापूंजी (आसाम) महाबालेश्वर (बम्बई) तथा अन्य खंड हैं तो दूसरी ओर घोर उष्णता के स्थान, घोर अनावृष्टि के मरुस्थल भी देश के अंतर्गत ही विद्यमान हैं। हिमालय की ऊँची चोटी तथा लंबी शृंखला से समुद्री मानसूनों को दक्षिण वर्ती ही रह कर वर्षा करने का अवसर प्राप्त होता है, वहाँ ऊँची हिममय चोटियों को हम ध्रुवीय प्रदेशों के तुल्य वातावरण उपस्थित करने में समर्थ देखने के अतिरिक्त उत्तरा खंड अर्थात् साइबेरिया, मध्यएशिया, तिब्बत आदि की घोर शीतमय हवाओं को दक्षिण आकर इधर भी हिम तथा शीत मय मैदानी भाग बनाने से सर्वथा वंचित रखते पाते हैं। यही कारण हैं कि प्राच्य खंड की विविधता मय पक्षियों के नमूनों तथा कंकालों और रक्षित चर्म मूर्तियों से संसार के जन्तुआलय तथा संग्रहालय पटे पड़े हैं, जो वैज्ञानिकों के गहन अध्ययन के विषय बनते हैं। परन्तु घोर दुर्भाग्य है कि अपने देश की विस्तृत जीवंत प्राकृतिक जन्तुशाला में अपनी अज्ञता वश हम प्रवेश नहीं पाते तथा उनकी विविधता का ज्ञान प्राप्त कर आनन्द लाभ करने का सुअवसर नहीं प्राप्त करते। पक्षियों के परिदर्शन तथा पक्षी विज्ञान की अभिज्ञता के प्रति हमारी उदासीनता अवश्य महान खेद का विषय है।

संसार के पक्षियों पर विहंगम दृष्टि डालने पर किसी भी पहलू की बात लेने पर हमें कुछ मनोरंजक तथ्य प्राप्त होते हैं। आकार की ही बात लेने पर हमारा ध्यान प्राचीन साहित्य में वर्णित गरुड़ की ओर जाता है। गरुड़ या जटायु को गृद्ध बंश का ही कोई पक्षी माने या कोई विलुप्त वंश माने जो विष्णु का वाहन बन सका था। किसी भी रूप में सवारी के काम आ सकने वाला पक्षी तो वृहदाकार तथा शक्ति-शाली पेशियों तथा पंखों वाला ही हो सकता है, किन्तु गरुड़ के यथार्थ आकार, रूप आदि को बता सकने वाली कोई प्रामाणीक बात तो हमारे पास उपलब्ध है नहीं, यदि साहित्यिक वर्णनों, उक्तियों परिकल्पनाओं या धार्मिक आस्थाओं का ही विश्वास किया जाय तब तो हमें हंस पक्षी को भी वीणावादिनी सरस्वती को वहन करते मानना पड़ेगा। किन्तु हंस की भी बात के अतिरिक्त उल्लू भी देव वाहन उल्लिखित होने से इतने बड़े आकार का मानना पड़ेगा जो सवारी के काम आसकता हो। परन्तु इतने वृहद आकार के गरुड़, हंस या उल्लू की स्थिति हमें कहीं ज्ञात नहीं है। हाँ, अफ्रिका का शुतुरमुर्ग इतने भारी आकार का अवश्य पाया जाता है, जो मनुष्य को अपनी पीठ पर बैठा कर चल सकता है। परन्तु वह भी बेचारा भूतल पर दौड़ ही सकता है। उसके पूर्वजों ने ही उड़ने की शक्ति खो दी। आज वह उड़न शक्ति हीन ही पक्षी है। परन्तु उसे सब से वृहदाकार पक्षी माना जाता है। वह आठ फीट ऊंचा होता है, उसका अंडा ही डेढ़ सेर का होता है। बच्चा तो प्रति मास एक फीट ऊंचा होता जाता है। एक ओर शुतुरमुर्ग जहाँ इतना बड़ा आकार रखता है और लगभग ४ मन का होता है, वहाँ मणिकंठ मकरंदपायी (हमिंग बर्ड) पक्षी चौथाई तोला भार का ही होता है। उसकी तुलना में तो शुतुरमुर्ग का चार मन भार पाँच सहस्र गुना अधिक हुआ, किन्तु मकरंदपायी पक्षियों में भी क्यूबा द्वीप में निवास करने वाला मकरंदपायी लघुतम आकार का होता है। उसे संसार का सब से छोटा पक्षी कह सकते हैं। भारत में तो हम सारस-पक्षी तथा हिमालय, जटायु, गृध्र या उकाब को सब से बड़े भारतीय पक्षी और शकरखोरा (पुष्पप्रिय) पक्षी को सब से छोटा भारतीय पक्षी कह सकते हैं। जटायु गृध्र या कूर्चल भास (दाढी युक्त गिद्ध) का डील-डौल जहाँ मनुष्य की ऊँचाई का होता है और डैने का फैलाव ८ फीट तक होता है वहाँ शकरखोरा अंगूठे बराबर ही होता है।

पक्षियों के आकार प्रकार की विचित्रता भी कितनी विविध होती है। एक ओर तो हमें पंगु सा ज्ञात होने वाला चमगीदड़ दिखाई पड़ता है तो दूसरी ओर अत्यंत लंबे पैरों तथा लंबी गर्दन का सारस पक्षी मिलता है। चंचुओं के विविध आकार तथा रंग रूप तो एक विलक्षण कहानी ही प्रकट करते हैं। कहीं बीज पीस डालने वाला स्थूल किन्तु क्षुद्राकार ही चंचु तूती का होता है, तो वहीं शकरखोरा की अत्यंत पतली तथा लम्बी चोंच है जो उसमें से भी केवल लंबी जीभ निकाल कर फूलों के मकरंद तक पहुँचाने में ही सहायक होती है। किन्तु कठफोरवा का काठ काट फेंकने वाला पुष्ट तथा पैना चंचु उल्लेखनीय ही है। श्येन तथा उलूक के अंकुशनुमा टेढ़े मुड़े चंचु तोते के कुतरने वाले तीव्र चंचु तथा बगले, सारस आदि के लंबे चंचु अपनी विचित्रता ही रखते हैं। कोई पक्षी पानी में तैराकी कर या डुबकी लगा कर ही संतोष करता है तो कोई जलाशयों के तट पर या भूमि पर ही चारा पाने का स्वभाव रखता है। किन्तु पक्षी नाम को यथार्थ में वे पक्षी ही सार्थक करते हैं जो आठ दस फुट लम्बे डैने से भारी उड़ान भर कर क्षुद्र विमान सा ही, बन जाते हैं या छोटा आकार होने पर भी ऊची, लम्बी तथा अधिक समय तक उड़ान की शक्ति रख कर हमें स्तब्ध कर देते हैं।

पक्षियों की ऊँची उड़ान या पहुँच पर ध्यान जाता है तो हम देखते हैं कि एवरिस्ट की ऊँचाई तक के आकाश में उनके उड़ने का उदाहरण मिलता है, परन्तु यह बात नहीं है कि केवल ऊँची जगह में रहने का विशेष अभ्यास कर उस विषमता के अनुकूल अपने अंग परिवर्तित करने वाले पक्षी ही ऊँचाई की कठिनाई

दूर कर सकते हैं। बल्कि अन्य पक्षी भी ऐसा कोई अभ्यास या विशेष अंगों का परिवर्तन न किए होने पर भी विशेष रूप से उड़ाने या पहुँचाने पर जीवन रक्षा कर उड़ान भरते पाए जाते हैं। यह तो एक अद्भुत घटना ही कही जा सकती हैं। मनुष्य जहाँ प्राकृतिक शक्तियों के सम्मुख कठिनाइयाँ उठा सकने की स्वाभाविक शक्ति से रहित सा है, वहाँ पक्षी अपने शरीर से ऐसे पराक्रम तथा साहस का कार्य कैसे कर दिखाते हैं।

कहा जाता है कि कौआ सौ वर्ष की आयु रखता है। अन्य पक्षियों के सम्बन्ध में भी कुछ ऐसी धारणाएँ पाई जाती हैं। परन्तु शोधकर्ताओं ने भिन्न-भिन्न पक्षियों की आयु पाले हुए रूप में ज्ञात करने का प्रयत्न किया है जो निम्न प्रकार है। किन्तु स्वाभाविक रूप में पक्षियों की आयु क्या होती होगी इसकी परीक्षा कुछ कठिन ही है। यह बात तो ठीक ज्ञात होती है कि एक ही जाति प्रजाति या वंश के पक्षियों में बड़े आकार का पक्षी अपनी ही जाति के छोटे आकार के पक्षी से अपेक्षा-कृत अधिक आयु रखता है। परन्तु पक्षी-वर्ग का सामूहिक रूप से ही अध्ययन करने पर यह सिद्ध नहीं होता कि किसी भी जाति का पक्षी केवल अपने आकार की दृष्टि से अन्य जातियों या वंशों के अपेक्षा-कृत लघुतर आकार के सभी पक्षियों से अधिक आयु अनिवार्यतः रखता है। इन बातों को ध्यान में रख कर हम पक्षियों की आयु की चर्चा करते हैं। बन्दी रूप में रक्खा हुआ शुतुर मुर्ग ४० वर्ष तक जीवित पाया गया है। द्रोण काक (रैवेन) ५० या ६९ वर्ष तक जीवित रहने का उदाहरण रख सका है। गौरैया के समान आकार के एक प्रजाति का पक्षी २५ वर्षों तक जीवित रह सका है। परन्तु साधारणतया औसत आयु ५ से ८ वर्षों तक ही होती है। गृध्र की आयु ५२ वर्ष, प्रावारकर्ण या (सींग की तरह ऊँचे उठे कानो वाला) उलूक की आयु ८ वर्ष, हंस की आयु २५ वर्ष, कबूतर की आयु २२ से २५ वर्ष तक तथा मोर की आयु २० वर्ष की पाई गई है। वन्य अवस्था में भी पक्षियों को कुछ चिन्ह लगाकर आयु का अध्ययन करने का प्रयत्न किया है। परन्तु कुछ संतोषजनक फल नहीं निकल सका है। ऐसे रूप में पीतचंचु गंगा चिल्ली (हेरिंग गल) पक्षी २६ वर्ष, कांचन या पीलक (ओरियोल) ८ वर्ष, तथा शल्य पुच्छ या शंकु हंसक १३ वर्ष, धूमिल वक (खैरा बगला) १३ वर्ष तथा कस्तूरी पक्षी (ब्लैकबर्ड) १० वर्ष की आयु प्रकट कर सके हैं।

समस्त जन्तु जगत को आज का वैज्ञानिक पहले दो बड़े खंडों में विभक्त करता है। एक पृष्ठवंशीय या रीढ़ वाले जानवर दूसरा अपृष्ठवंशीय या बिना रीढ़ वाले जानवर। पृष्ठ वंशियों को पाँच रूप का पाया जाता है जिन्हें जन्तु वर्ग कह सकते हैं। (१) दुग्धपायी या दूध पीने वाले (२) पक्षी (३) सरीसृप (४) मंडूक की भाँति जल थल गामी या उभयकर जन्तु तथा (५) मत्स्य। इन जन्तु वर्गों में द्वितीय पक्षी तथा तृतीय सरीसृप या रेंगने वाले जन्तु (साँप, कछुवा, गोह, मगर आदि) हैं। प्राचीन प्रस्तरावशेषों की खोज कर वैज्ञानिक शोधकर्ताओं ने प्राचीन काल में एक ऐसे जन्तु की विद्यमानता ज्ञात की है जो पक्षी और सरीसृप दोनों का ही एक अग्रज ज्ञात होता है। इसे अग्रज पक्षी या आर्ष पक्षी (पुरा-पक्षी) नाम दिया गया। धरती की तरह कोमल तली में सुरक्षित होने का अवसर होने से ऐसे अद्भुत जन्तु के प्रस्तरावशेष का दर्शन हो सका है। इस अग्रज पक्षी में डैने हैं तथा पर लगी पूछ है। परन्तु पर पूछ में दोनों ओर मढ़ी सी है मानो किसी सरीसृप की पूछ ही हो। यही नहीं, एक और भी भारी विशेषता है कि मुख में स्पष्टतया दाँत लगे हैं। मुख में सरीसृप की तरह दाँत परन्तु उड़ने के लिए डैने लगे होने से हमें इसे अग्रज पक्षी कहने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती। आज के पक्षियों में अस्थियों के भाग एक दूसरे से जुड़ कर अडिग ठोस भाग बन गए होते हैं। परन्तु अन्य जन्तुओं में ऐसे जोड़ नहीं होते। इस जन्तु के प्रस्तरावशेष में अंगूठा सर्वथा पृथक ही है इस प्रकार के दो प्रस्तरावशेष संसार भर में मिल सके हैं।

हम पक्षी को सरीसृपों या अन्य पृष्ठवंशीय

जन्तुओं के एक ही प्राचीन पूर्वज से उत्पन्न माने या न माने किन्तु विकास वादी ऐसी कल्पनाओं को अत्यंत समीचीन वतलाते हैं, परन्तु इस उधेड़ बुन में न पड़ कर हम कुछ पक्षी रूप में जन्तु वर्ग के वैज्ञानिक विभाजन पर एक दृष्टि डालना चाहते हैं। पक्षी वर्ग को पुनः कुछ अंतः रचना तथा रंग रूप आदि के सादृश्य की दृष्टि से विभाजित कर उन विभागों को वंशनाम दिया गया है। अन्य जन्तु वर्गों के भी वंश रूप में विभाजन होते हैं। पुनः एक एक वंश प्रजाति रूप में बंटा होता है और प्रजाति भी अंत में प्रजाति-भेद या जाति को प्रजाति के खंड रूप में माना जाता है। इसे अंग्रेजी का स्पिशीज शब्द प्रकट करता है। एक जाति की परिभाषा वैज्ञानिकों ने यह की है कि उसके सब प्राणी केवल कुछ बातों में साम्य ही न रखते हों, प्रत्युत नर मादा केवल उसी विभाग या समुदाय के सदस्यों में से ही अपना जोड़ा पाकर उसी प्रकार के अन्य जन्तुओं की उत्पत्ति कर सकते हों। किसी अन्य समुदाय के जन्तुओं में से जोड़ा न बन सकने का गुण एक विभाजन का पुष्ट आधार कहा जा सकता है। हम देखते हैं कि समस्त प्राणी इस प्रकार के पुष्ट आधार के जाति रूप के विभाजन में बँट कर भी लाखों जातियाँ प्रकट करते हैं। पक्षी वर्ग की जातियों की संख्या हजारों में बताई जाती है। अमेरिका के राष्ट्रीय जन्तु विज्ञान संग्रहलय के एक वैज्ञानिक ने पक्षियों की जातियाँ संसार भर में ८६०० बताई है, किन्तु अन्य वैज्ञानिक १३:०० से लेकर १८०२० तक ऐसे प्रभेद बताते हैं। इन संख्याओं के अंतर का भारी कारण है। पक्षी जगत के इतने अधिक भेद हैं कि यथार्थ जाति का निर्णय कठिन होता है। एक ही जाति के कुछ रूप रंग या स्थानीय प्रभाव के कारण भेद होने से एक नया भेद ही प्रतीत हो सकता है। अतएव हमें यह सुनकर आश्चर्य नहीं हो सकता कि जातियों तथा उनके भी उपभेदों की संख्या एक वैज्ञानिक की दृष्टि में २८००० तक पहुँचती है।

नामों के सम्बन्ध में भारी कठिनाई है। स्थानीय नाम विभिन्न होते हैं भिन्न-भिन्न क्षेत्रों, राज्यों, जिलों आदि में कुछ स्थानीय पत्र या परिषदें पक्षियों का नामकरण प्रकट करने के लिए हों और वे किसी एक नामावली के अनुरूप वर्णित पक्षियों का वर्णन स्थानीय पक्षियों से मिला कर नामों की तुलना करें तो कुछ समय में हिन्दी से सर्व-ग्राह्य प्रामाणिक सुबोध नामावली बन सकती है।

———

परम कीटाणु—(पृष्ठ २१ का शेष अंश)

जीव जगत की सूक्ष्म सृष्टि हैं, जिनका पहले स्वतन्त्र रूप ही रहा होगा, किन्तु किसी प्रकार उनमें एक असीम रूप की परोपजीवी वृत्ति उत्पन्न हुई और उन्होंने शारीरिक अंग के बहुत कुछ झमेले को फेंक कर केवल नितान्त आवश्यक भाग ही रक्खा और दूसरे आश्रयदाता वनस्पति या जन्तु के ऊपर ही अपना जीवन पूर्णतः आधारित रक्खा। यह कथन कुछ अपेक्षाकृत बड़े आकार के परम कीटाणु का अध्ययन करने वाले वैज्ञानिक तो उचित कह सकते हैं, जो विद्युताणु सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से अपने सूक्ष्म परम कीटाणु का कुछ आकार प्रकार देख सुन पाते हैं, परन्तु अत्यन्त सूक्ष्म परम कीटाणु के वानस्पतिक विभाग के शोधकर्त्ता तो इन बातों पर विश्वास करने का कुछ भी आधार नहीं पाते। वे वानस्पतिक परम कीटाणु की इतनी सूक्ष्म स्थिति तक किसी स्वतन्त्र रूप के क्षुद्र प्राणी द्वारा पहुँचने की कुछ कल्पना भी नहीं कर सकते। जो भी हो। आज इस सम्बन्ध की अनेक कल्पनाएँ ही हमारी चर्चा का विषय बन सकती हैं। यथार्थ ज्ञान खोजियों के भावी प्रयत्न पर ही निर्भर हैं।

———

परम कीटाणु*

परासूक्ष्मदर्शकीय या परम कीटाणु (वाइरूसेज़) हमारे नेत्रों को अदृश्य होते हैं। कीटाणु एक इंच के दस हजारवें भाग से लेकर पचास हजारवें भाग तक व्यास के होते हैं। किसी उत्तम सूक्ष्मदर्शक यंत्र की प्रबल शक्ति से ही उन्हें देखा जा सकता है जिसमें उनका आकार उनके व्यास का एक हजार गुना बड़ा दिखाया गया हो। किन्तु परम कीटाणु इन से भी छोटे होते हैं। वैज्ञानिक उनकी उधेड़ बुन में अब भी पड़े हैं। गुणों में तो वे कीटाणु के समान जान पड़ते हैं, परन्तु आकार में अत्यंत सूक्ष्मता सूक्ष्मदर्शक यंत्र की शक्ति को भी पराजित कर देती है। अब विद्युत शक्ति से चालित विद्युताणवीय सूक्ष्मदर्शक यंत्र (एलेकट्रन माइक्रासकोप) की प्रबल शक्ति ज्ञात होने पर उससे परम कीटाणुओं का दर्शन करना प्रारम्भ किया जा सका है। कुछ परम कीटाणुओं का छाया चित्र (फोटो) विद्युताणु सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा लिया जा सकता है। परम कीटाणु प्राणधारी पदार्थ हैं या नहीं, यह विवादास्पद है, वे इतने सूक्ष्माकार होते हैं कि विज्ञान को ज्ञात साधनों में छानने के साधनों से सबसे सूक्ष्म चिकनी मिट्टी का छनना होता है। परम कीटाणु उसे भी पार कर जाते हैं। जब कीटाणुओं को किसी द्रव माध्यम में पोषित किया जाता है तो कीटाणुओं को द्रव माध्यम से पृथक करने के लिए चिकनी मिट्टी के छन्ने में छान लिया जाता है जिसको द्रव तो पार कर बाहर निकल जाता है और कीटाणु उसका भेदन करने में असमर्थ होने से ऊपर ही रह जाते हैं। परन्तु परम कीटाणु इस सूक्ष्म छनने को भी पार कर जाते हैं। अतएव उन्हें छननशील परम कीटाणु भी कहा जाता है।

परम कीटाणु (वाइरूसेज़) अत्यंत सूक्ष्म प्राणियों के रूप में हो सकते हैं। विद्युताणु सूक्ष्मदर्शक यंत्र के आविष्कृत होने के पूर्व तक किसी को भी इनका दर्शन न हो सका था। इस विद्युताणवीय प्रबल सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा भी उनकी अत्यंत स्पष्ट रूपरेखा नहीं ज्ञात होती। यह भी सम्भव हो सकता है कि वे प्राणी वर्ग के न हों। कदाचित वे हमारे खाद्य द्रव्यों या शरीर के मुख्य यौगिक, प्रोटीन के/अणु ही हों जो जीवित जीवन रस (प्रोटोप्लाज्म) के संसर्ग में आकर जीवित तन्तु का रूप धारण कर लेते हों। वे प्राणी या वनस्पति के अंग से बाहर पोषित नहीं होते।

कीटाणु को जिस प्रकार कृत्रिम रूप से किसी माध्यम में प्रयोग शाला में पोषित करना तथा उसका अध्ययन करना सम्भव होता है, उस प्रकार ही हम परम कीटाणुओं को प्रयोग शाला में पोषित करने या अध्ययन करने का अवसर नहीं पा सकते। इस कारण परम कीटाणुओं द्वारा उत्पन्न होने वाल रोगों की छान-बीन करना एक कठिन कार्य है। परम कीटाणु द्वारा उत्पन्न होने वाले रोगों में मुख्य रोग निम्न हैं :—

पागल जन्तुओं के काटने का विष, मम्प, मसूरिका या चेचक (स्माल पाक्स) चिकेन पाक्स, मीजिल्स, जर्मन मीजिल, शैशव पक्षाघात (इनफैंटाइल पेरेलिसिस) तथा पीत ज्वर (येलो फिवर)। अधिकांश परम कीटाणु रोगी के मस्तिष्क पर प्रहार करते हैं, अतएव बड़े भीषण होते हैं।

एक प्राणी परम कीटाणु तथा कीटाणु के मध्यवर्ती ज्ञात होते हैं। उनमें परम कीटाणु की भाँति यह गुण होता है कि वे अपने आश्रयदाता प्राणी के शरीर के अतिरिक्त कहीं पर अन्यत्र किसी

---

* "कीटाणुओं की कहानी" से

माध्यम में पाले नहीं जा सकते। उनका आकार कीटाणु सदृश किन्तु उससे छोटा होता है। इनका नाम मध्यकीटाणु या रिकेटसीया प्रसिद्ध है। ज्ञात होता है कि डंक मारने वाले कीटों से इस वर्ग के प्राणी का सम्बन्ध है। उनसे टाइफस तथा राकी पर्वतीय ज्वर उत्पन्न होता है।

इन रोगों में जीव या वनस्पति के कोषों पर परम कीटाणु का प्रहार होता है। विद्युताणु सूक्ष्म-दर्शक यंत्र के बिना भी यह ज्ञात किया गया कि इन रोगों में एक रुग्ण जन्तु या वनस्पति के शरीर या अंग का रस निकाल कर दूसरे जन्तु या वनस्पति में प्रवेश कराया जाता तो वह दूसरा जन्तु या वनस्पति भी उसी रोग से आक्रान्त हो जाता। अतएव जब कोई कीटाणु इस कार्य या फल को उत्पन्न करता न दिखाई पड़ा तो उस रस को सूक्ष्म-तम छनने में छान लेने की सुविधा होना इस बात को सिद्ध कर सका कि रोग उत्पन्न करने वाला कोई पदार्थ अत्यंत ही सूक्ष्माकार हो सकता है। इसी रोगोत्पादक साधन को हम वाइरूसेज या परम कीटाणु नाम से पुकारते हैं।

यदि किसी विष को किसी जन्तु या वनस्पति के अन्दर प्रवेश कराया जाय तो उसका घातक प्रभाव होने से जन्तु या वनस्पति का अनिष्ट होगा या अंत ही हो जायगा। उस विष की जन्तु या वनस्पति के आंतरिक तन्तुओं पर प्रतिक्रिया होगी जिससे उसकी व्यवस्था भंग हो जायगी और शरीरांत हो सकेगा, परन्तु हम विष की वृद्धि हुई नहीं पा सकते। मार्फिया को किसी जन्तु के शरीर में पहुँचावें तो किसी भी दशा में जन्तु के शरीर में प्रविष्ट कराई मार्फिया से अधिक मात्रा कभी भी प्राप्त नहीं हो सकती। किन्तु यदि जन्तुओं का प्राणान्त करने वाले कुछ रोगों के सम्बन्ध में ऐसी परीक्षा करें कि अदृश्य रूप के परम कीटाणु एक जंतु से दूसरे जंतु के शरीर में पहुँचाए जायँ तो उस परम कीटाणु की दूसरे जंतु के शरीर में वृद्धि होगी। प्रथम जंतु के शरीर से लिया हुआ रक्त दूसरे जंतु में कुछ समय में अधिक मात्रा में वैसे ही घातक रस या परम कीटाणु की वृद्धि कर सका होगा। उदाहरणार्थ ढोरों का भारी शत्रु एक खुर पका या पैर और मुख (फुट ऐंड माउथ) रोग है। वह परम कीटाणु के प्रकोप का फल होता है। इस रोग से आक्रान्त या मृत ढोर के रक्त का टीका दूसरे ढोर में भी लगाया जाय तो खुरपके रोग के अदृश्य परम कीटाणु शरीर भर में फैले मिल सकेंगे।

इस प्रकार के उदाहरणों से परम कीटाणु को अन्य कीटाणुओं की भाँति अपनी वृद्धि करते पाया जाता है। परम कीटाणु का मर्म समझना तो कठिन समस्या है, परन्तु यह कहा जा सकता है कि गाय के शीतला रोग (काऊ पाक्स या गो-शीतला) रोग के परम कीटाणु का व्यास एक सेंटीमीटर का पचास हजारवाँ भाग तथा खुरपके रोग के परम कीटाणु का व्यास एक सेंटीमीटर का दस लाखवाँ भाग होता होगा। प्रोटीन के अणु खुरपके रोग के कीटाणु से भी बहुत छोटे होते हैं। कुछ वैज्ञानिकों का अनुमान है कि परम कीटाणु कोई एक प्रोटीन अणु ही होंगे। यदि आकार का ध्यान किया जाय तो अंडे की सफेदी में हमें बड़े से बड़ा प्रोटीन अणु जिस आकार का मिल सकता है उस प्रकार के सात अणुओं के संयुक्त रूप के आकार के बराबर एक खुरपका परम कीटाणु हो सकता है। हम दस हजार गुना आकार वृद्धि के चित्र में मानव वीर्य के मुख तथा क्षय रोग के कीटाणु की तुलना में प्रोटीन के बड़े से बड़े अणु तथा एक परम कीटाणु का तुलनात्मक रूप देख सकते हैं।

परम कीटाणु अर्थ का बोध कराने वाला अंतर्राष्ट्रीय शब्द वाइरस लैटिन शब्द है। उसका अर्थ 'विष' होता है। जब लोगों को कीटाणु जगत का कुछ मर्म ज्ञात नहीं था तो इस शब्द को साधारण प्रयोग में १८९२ ई० तक कोई रोगोत्पादक विष का प्रकट करते मानते थे। उस शब्द को कीटाणु शब्द की ही भाँति कोई भी रोगोत्पादक माध्यम प्रकट करने

वाला मानते थे। किन्तु आइवानोवस्की नाम के वैज्ञानिक ने १८९२ में ज्ञात किया कि रोग उत्पन्न करने वाला एक ऐसा माध्यम होता है, जो इतना छोटा होता है कि सूक्ष्मदर्शक यंत्र से भी न देखा जा सके और ऐसे सूक्ष्मतम छनने में भी छन कर ऊपर रुका न रह सके, जिनमें कीटाणु छन कर बाहर ऊपर ही रुके रह जाते हों। फलतः एक ऐसा उपादान प्राप्त हो सका जो तम्बाकू में एक रोग उत्पन्न कर देता, जिसे तम्बाकू का चित्ती रोग कह सकते हैं।

इस खोजके पश्चात् वाइरूसेज (परम कीटाणु) शब्द का प्रयोग ऐसे वर्ग के रोगों के सीमित अर्थ में होने लगा जो विभिन्न रूप के होने पर भी कुछ साम्य गुण रखते थे। सन् १९३५ ई० तक, जब परम कीटाणु का गंभीर अध्ययन प्रारंभ हो सका था, ये साम्य गुण कुछ निषेधात्मक रूप के ही कहे जा सकते थे। उदाहरणार्थ परम कीटाणुओं (वाइरूसेज) को देखा नहीं जा सकता था। कीटाणु को रोक रखने के छननों में इन्हें छान कर गिरने से रोका नहीं जा सकता था। कृत्रिम पोषण माध्यम में इनको कीटाणुओं की भाँति पोषित नहीं किया जा सकता था। जीवित कोष विहीन अन्य माध्यमों में भी इन्हें पाला नहीं जा सकता था। अतएव रोग उत्पन्न करने का दृश्य उपस्थित करने के अतिरिक्त गवेषणा का विषय बनने का कोई भी आधार उपस्थित नहीं करते थे। किन्तु आज परिस्थिति बदल गई है। नए शिल्प का उदय हुआ है। उन्नत उपकरणों के विशद उपयोग ज्ञात हुए हैं। भौतिक शास्त्रियों के पथ में सूक्ष्म शोध विधियाँ आ गई हैं, अतएव जहाँ परम कीटाणु (वाइरूसेज) का ज्ञान केवल निषेधात्मक गुणों या लक्षणों के रूप में ही था, वहाँ अब उनको अध्ययन का विषय बन सकने के आधार प्राप्त हो सके हैं। अतएव अत्यंत सूक्ष्म परम कीटाणु अपने अंततम का मर्म भेदन करने के लिए आधुनिक शोध विधियों एवं उपकरणों के बल पर विवश किए जाने लगे हैं। किन्तु हम उन्हें आज भी कृत्रिम खाद्य द्रव्य में पोषित करने में असमर्थ हैं तथा उनकी रचना या संतानोत्पादन विधि नहीं जान सके हैं।

आज का साधारण नागरिक भी वाइरूसेज (परम कीटाणु) का नाम ले पड़ता है, वह इस शब्द का कुछ ठीक अभिप्राय या मर्म न समझ कर भी यह जानने लगा है कि कुछ बीमारी के साधनों में ही इसका भी स्थान है। अतएव संसार में परम कीटाणु की दिन-दिन अधिकाधिक चर्चा ही बढ़ती जा रही है।

हम कुछ परम कीटाणुओं के उपद्रवों की चर्चा कर रहे हैं। गोल्ड कोस्ट प्रदेश में कोको वृक्षों का संहार एक प्रकार के परम कीटाणु कर रहे थे, जिन्हें अंकुर फूल उठने का रोग कहते। पाँच वर्षों में कोको उत्पादन में ३० प्रतिशत का ह्रास हो गया। इस रोग का ज्ञान प्राप्त होने से लेकर ११३९ ई० तक प्रति वर्ष दस लाख वृक्ष नष्ट होते रहे। १९३९ से १९४५ तक तो प्रति वर्ष पचास लाख वृक्ष नष्ट होते रहे। १९४५ से १९४८ तक वृक्षों के नष्ट होने की वार्षिक संख्या डेढ़ लाख तक पहुँच गई। इस प्रगति से तो २० वर्ष में गोल्ड कोस्ट का कोको प्रोद्योग सर्वथा नष्ट हो जा सकता है।

आलू के रोग की भी ऐसी ही भीषण कथा है। एक रोग के कारण इंगलैंड, स्काटलैंड तथा उत्तरी आयरलैंड में प्रति वर्ष ढाई लाख टन आलू का व्यवसाय होता है। यह निम्न तल की भूमि में आलू में परम कीटाणु का प्रहार होने का परिणाम है। हिसाब लगाया गया है कि केवल एक आलू का परम कीटाणु संसार भर के आलू की उपज का दस प्रतिशत नष्ट करता है। शिशु पक्षाघात (पोलियामाइलाइटिज या इन्फैन्टाइल पेरेलिसिस) का पाश्चात्य देशों में आधुनिक वर्षों में प्रकोप पाया जाता है। यह अमेरिका में संक्रामक रूप धारण कर गया है। १९४७ में इंगलैंड में भी इसका प्रकोप प्रारम्भ हुआ था।

परम कीटाणुओं के अध्ययन का कारण आर्थिक प्रश्नों के अतिरिक्त एक और भी है। संसार में

जीवित तथा निर्जीव सृष्टि की अस्पष्ट सीमा रेखाओं के मध्य परम कीटाणु अवस्थित ज्ञात होते हैं, अतएव इनके प्राणि रसायनिक तथा प्राणिभौतिक अध्ययनों से जीवन के रहस्य का कुछ भेद ज्ञात होने की आशा की जा सकती है। इस कारण चिकित्सा अथवा औद्योगिक हितों के अतिरिक्त जीवन समस्या के मर्म भेदन में भी परम कीटाणुओं के वृहद् अणुओं के अध्ययन की ओर विज्ञानवेत्ता प्रवृत्त होते हैं।

स्टैनली नाम के वैज्ञानिक ने १६३५ ई० में तम्बाकू की चित्ती से परम कीटाणु (वाइरूसेज) को पृथक करने में सफलता प्राप्त की थी। तब से परम कीटाणुओं द्वारा रोग उत्पन्न होने के मर्म के अतिरिक्त भी इनके ज्ञान के सम्बन्ध में विशेष प्रगति हो सकी है।

आश्रयदाता के तन्तुओं से अनेक परम कीटाणुओं को पृथक कर दिखाने में सफलता प्राप्त हो सकी है। उनको शुद्ध रूप में प्रस्तुत कर लिया गया है तथा उनके वानस्पतिक तथा जान्तव, दो विभेदों में से जान्तव को तो नहीं, किन्तु कुछ वानस्पतिक परम कीटाणुओं को मणिभ (रवे) रूप में निर्मित करने में भी सफलता मिल सकी है। परम कीटाणुओं को पृथक कर सकने एवं विद्युताणु सूक्ष्मदर्शक यंत्र के आविष्कार के कारण हमें अंततः यह देख सकने में सफलता प्राप्त हो सकी है कि उनमें से कुछ के रूप, आकार प्रकार ठीक किस प्रकार के हैं। उनके मणिभों को अन्य वस्तुओं के मणिभों की तुलना में अध्ययन करने में विद्युताणु सूक्ष्मदर्शक यंत्र तथ एक्स किरणों के चित्रों द्वारा यथेष्ट सहायता मिलने की आशा है। कुछ परम कीटाणुओं की यथेष्ट शुद्ध मात्रा सुलभ होने से उनकी रासायनिक रचना का ज्ञान हो सकना भी संभव ज्ञात होता है।

यह हमें ज्ञात होना चाहिए कि अभी तक केवल कतिपय परम कीटाणुओं को ही पृथक रूप में प्राप्त करने में सफलता मिल सकी है। उनको शुद्ध करने में कठोर साधनों की आवश्यकता होती है, अतएव उन प्रक्रियाओं के सामने टिक सकने के लिए परम कीटाणु स्थिर होना चाहिए अर्थात् रसायनिक पदार्थों, उच्च ताप तथा ओषजनीकरण आदि विधियों द्वारा उन्हें शीघ्र विनष्ट होने वाला नहीं होना चाहिए। आश्रयदाता जीव में वह यथेष्ट मात्रा में केन्द्रित रूप में विद्यमान भी होना चाहिए। वानस्पतिक परम कीटाणुओं को अन्य प्रभावशील वनस्पतियों में कृत्रिम साधनों द्वारा पहुँचाना संभव हो सका है। इस कारण इनके सम्बन्ध में ही पृथक्करण तथा मणिभ निर्माण की खोज ठीक रूप से व्यावहारिक हो सकी है। कहा नहीं जा सकता कि भविष्य में वे साधन कब प्राप्त हो सकेंगे, जब जान्तव परम कीटाणुओं को भी ऐसे प्रभाव के अंतर्गत लाया जा सके।

सूक्ष्मदर्शक यंत्र में दृश्य प्रकाश की आवश्यकता होती है। अतएव परम कीटाणु उसके क्षेत्र से बाह्यवर्ती सिद्ध होते हैं। परन्तु आज विद्युताणु सूक्ष्मदर्शक यंत्र अपनी विकट दृष्टि शक्ति से हमें परम कीटाणुओं को दृश्यमान बना सकने में समर्थ हो सका है इसलिए परम कीटाणुओं का जो पूर्व नाम परासूक्ष्मदर्शकीय था, वह आज निराधार या निरर्थक ही हो गया है। वनस्पति, जन्तु तथा कीटाणुओं को प्रभावित करने वाले अनेक परम कीटाणुओं का आकार प्रकार आज विद्युताणु सूक्ष्म दर्शक यंत्र की दिव्य दृष्टि प्रकट कर देता है। इस दृश्य पद्धति में सबसे बड़ी सुविधा यह है कि आकार की नाप प्रत्यक्ष ही की जाती है। किसी सूत्र से उसकी गणना करने की आवश्यकता नहीं होती। किन्तु एक असुविधा भी है कि किरणों को शुष्क बना लेना पड़ता है, जिसके लिए उसे वायुशून्य (वैकुअम) में रखना पड़ता है और उन पर विद्युताणु का प्रहार किया जाता है। इन कारणों से परम कीटाणु कण रूपविकृत हो सकते हैं।

तम्बाकू की चित्ती का परम कीटाणु ही सर्व प्रथम ज्ञात होने वाला परम कीटाणु था तथा उसे ही सर्व प्रथम १६३५ में पृथक करना संभव भी हो सका था। फलतः विद्युताणु सूक्ष्मदर्शक यंत्र की दृष्टि भी

पहले पहल इसी पर डाली गई। उसमें दंडनुमा रूप ज्ञात हो सका। बाद में अन्य प्रकार के परम कीटाणुओं की खोज की गई। वनस्पतियों तथा जन्तुओं के अधिकांश परम कीटाणु गोलाकृति दिखाई पड़े।

विद्युताणु सूक्ष्मदर्शक यंत्र का विकास होने पर उससे चित्र लेने की विधि में भी उन्नति की जा सकी। उसमें एक उपाय परम कीटाणु पर धातु का पानी चढ़ाना था। क्रोमियम, सोना तथा निकल इसके लिए उत्तम धातु सिद्ध हुए, परन्तु सोना सर्वोत्तम साधन ज्ञात हुआ। किसी काँच पात्र में वायुशून्य स्थान बना कर टंगस्टन की बत्ती पर सूक्ष्म धातु तार को लपेट कर उससे एक ताल आवद्ध रक्खा जाता, जिस पर परम कीटाणु कणों को रक्खा जाता। इसमें बिजली की धारा बहा कर परम कीटाणु कणों पर सोने का पानी चढ़ा दिया जाता।

विद्युताणु सूक्ष्मदर्शक यंत्र से लिए परम कीटाणु के छाया चित्र (फोटो) में कुछ विचित्र बातें दिखाई पड़ीं। यह बात ज्ञात हो सकी थी कि तम्बाकू की चित्ती में परम कीटाणु दंड की आकृति (लंबे आकार) के होते हैं, परन्तु इस चित्र ने बताया कि उनमें एक सिर और एक दुम भी होती है। उनका यह रूप स्पष्टतः चित्र में देखा जा सकता है।

तम्बाकू की चित्ती का परम कीटाणु सिर से लटकती हुई दुम या टेनिस के खेल के रेकेट या गदा की आकृति का होता है। परन्तु अन्य वानस्पतिक परम कीटाणु भी इस रूप के होते हैं परन्तु कीटों पर प्रहार करने वाले कुछ परम कीटाणु इस प्रकार के होते हैं जो दंड या छड़ी के आकार के ही होते हैं, यद्यपि उनका लम्बा आकार वानस्पतिक परम कीटाणुओं से मोटा होता है। कुछ कीटों, विशेष कर पतिंगों तथा तितली की इल्लियों (उत्पन्न होने के समय से कुछ दिनों तक रहने वाले पंखहीन रूप) पर परम कीटाणुओं सहज प्रहार होता है। इस रोग को बहुफलक (बहुपहल) रोग कहते हैं क्योंकि इन इल्लियों का रोगाक्रान्त रक्त सहस्रों बहुफलकीय (अनेक तल या पहलों युक्त) रवों समान पदार्थों से ओतप्रोत होता है। पहले इन रूपों को ही इस रोग का कारण माना जाता था, परन्तु अब यह ज्ञात हो सका है कि वे रूप उस रोग के कारण नहीं, प्रत्युत परिणाम होते हैं, किन्तु उनका ठीक महत्व नहीं ज्ञात हो सका है। जर्मनी में शोध कार्य द्वारा ज्ञात हो सका है कि इन बहुपहल आकार के पदार्थ के अंदर परम कीटाणु विद्यमान होते हैं। दुर्बल क्षारीय पदार्थों में उन्हें घुला कर ज्ञात किया जा सका है कि वे परम कीटाणु उनमें होते हैं, जिनका प्रत्यक्ष दर्शन घुलित पदार्थ पर विद्युताणु सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा चित्र से स्पष्ट हो सकता है। उन परम कीटाणुओं को प्रश्रय देने वाले क्षुद्र आखात स्पष्ट देखे जा सकते हैं। रेशम के कीड़े तथा जिप्सी माथ (बौने पतिंगे) में बहुपहल रोग के परम कीटाणु दंडाकृति परम कीटाणु एकाकी नहीं पाए जाते, प्रत्युत गुच्छ रूप में विद्यमान होते हैं। इस संघट्ट का कारण बता सकना कठिन ही है, किन्तु उन गुच्छों से एकाकी परम कीटाणु पृथक किए जा सकते हैं।

कुछ एकाकी परम कीटाणुओं के रवेके विचित्र चित्र विद्युताणु सूक्ष्म दर्शक यंत्र द्वारा लिए जा सके हैं। तम्बाकू के नेक्रोसिस परम कीटाणु पतली पट्टियों के रूप में मणिभ बनाते हैं। शलजम की पीली चित्ती के परम कीटाणु के मणिभ बहु भुजीय अंगूठियों द्वारा जाल का आभास देते हैं। विद्युताणु सूक्ष्मदर्शक यंत्र के चित्र द्वारा ज्ञात होता है कि वे मणिभ अत्यंत पतले स्तर के ही होते हैं, जिनकी रचना थोड़े अणुओं के समुच्चय से ही होती है।

सभी परम कीटाणु रोगोत्पादक होते हैं। एक रोगग्रस्त जीव से दूसरे स्वस्थ आश्रय दाता जीव तक किसी न किसी माध्यम द्वारा फैल सकते हैं। अनेक परम कीटाणुओं को फैलाने वाले साधन कुछ कीट होते हैं। येलो फिवर (पीतज्वर) का प्रसार मच्छड़ द्वारा मनुष्य में होना बहुत प्रसिद्ध है। पीतज्वर के परम कीटाणु इस रोगी के शरीर से मच्छड़ के शरीर में उसके रक्त चूसने पर पहुँचते हैं। पुनः वह मच्छड़ किसी स्वस्थ व्यक्ति को काटता

है तो रोग के परम कीटाणु उस स्वस्थ व्यक्ति में भी प्रवेश कर उसे रोगाक्रान्त करते हैं। मच्छड़ द्वारा मलेरिया ज्वर भी इसी प्रकार फैलता है, परन्तु पीत ज्वर तथा उसमें अंतर है। मलेरिया ऐसे क्षुद्र देही जीव से उत्पन्न होता है जो कीटाणु से भी बड़ा होता है, जिसे प्रोटोजोआ जंतु नाम दिया जाता है, परन्तु पीतज्वर का कारण तो कीटाणु से सूक्ष्म, परम कीटाणु होता है। रोग के प्रसार के मध्यस्थ मच्छड़ के शरीर में मलेरिया का प्रोटोजोआ (एक कोषीय जंतु) अपने शरीर का रूपान्तर भी करता है, परन्तु पीतज्वर या इस प्रकार के अन्य रोगों के परम कीटाणुओं के सम्बंध में वैज्ञानिकों का प्रायः विश्वास है कि मध्यस्थ मच्छड़ या अन्य कीटों के अंदर परम कीटाणु अपना रूपान्तर या संख्यावृद्धि नहीं करता।

यह बात देखी जाती है कि वानस्पतिक परम कीटाणु जान्तव परम कीटाणु की अपेक्षा अधिक रूप में मध्यस्थ कीटों द्वारा प्रसारित होते हैं। वानस्पतिक परम कीटाणु का उसके संवाहक मध्यस्थ कीटाणु से संबंध विचित्र ज्ञात होता है, किन्तु परम कीटाणु का रूपान्तर न होने से यह केवल साधारण संवाह्य क्रिया ही ज्ञात होती है। किन्तु कुछ वैज्ञानिकों का विचार है कि परम कीटाणु के संवाही मध्यस्थ कीट के शरीर के अंदर संख्या वृद्धि भी होती है।

मध्यस्थ कीटों से संवाहित अधिकांश परम कीटाणु ऐसे कीटों द्वारा ही प्रसारित होते हैं जो रक्त चूसने वाले होते हैं। इन परम कीटाणुओं के दो प्रकार हो सकते हैं। एक तो वे जिन्हें कीट एक बार परम कीटाणु रक्त के साथ चूस कर फिर दुबारा भी परम कीटाणु युक्त रक्त चूसने का अवसर न पावें तो थोड़े समय में ही उनके शरीर में से परम कीटाणुओं का लोप हो जाता है, परन्तु दूसरे प्रकार के वे परम कीटाणु होते हैं जो दीर्घकाल तक एक बार चूसे जाने पर रक्षित बनाए रखे जा सकते हैं। इस दूसरे प्रकार के परम कीटाणु अवश्य ही अनिष्टकारी फल उत्पन्न करते होंगे। पहले प्रकार को शीघ्र लोपी और दूसरे को दीर्घलोपी परम कीटाणु कह सकते हैं। शीघ्र लोपी (नान परसिस्टेंट) तथा दीर्घ लोपी (परसिस्टेंट) भेदों को हम दूसरे रूप में भी समझ सकते हैं। यदि प्रथम भेद का परम कीटाणु किसी कीट द्वारा एक पौधे पर प्रवेश पावे तो उसको प्रभावित करेगा परन्तु उसके बाद अन्य पौधों पर कीट का प्रहार होने पर भी उनका कुछ प्रभाव न होगा। इसके विपरीत दीर्घ लोपी परम कीटाणु को कीट द्वारा प्रथम वनस्पति पर प्रहार का कुछ भी प्रभाव न पड़ेगा, परन्तु बाद में अन्य वनस्पतियों पर प्रहार होने का अवश्य प्रभाव पड़ेगा। यह दीर्घ लोपी परम कीटाणु के गुण का ही परिणाम होगा।

शलजम की पीली चित्ती के परम कीटाणु की विचित्र कथा है। उसे उपयुक्त दोनों भेदों में से किसी में भी नहीं रक्खा जा सकता। इसको संवाहन करने वाले कीट चूसने का गुण रखने वाले नहीं होते बल्कि काटने वाले होते हैं। प्रयोगों द्वारा देखा गया है कि इस प्रकार के कितने ही कीट इस परम कीटाणु का संवहन कर सकते हैं। परन्तु एक प्रयोग में देखा गया की एक तितली की इल्ली भी पत्ता काट खाने वाली या काटने वाली होती है, परन्तु उसके द्वारा शलजम की पीली चित्ती के परम कीटाणु संवाहित नहीं हो पाते। इस परम कीटाणु के संवाहक कीटों के शरीर का विच्छेद कर निरीक्षण किया गया तो उनमें लसिका ग्रंथि (थूक उत्पन्न करने वाली गिल्टी का अभाव मिला या उनका केवल नाम मात्र ही रूप था। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि अन्य सभी परम कीटाणुओं को थूक की सहायता से ही कीट अपने शरीर के अंदर ग्रहण करते हैं, परन्तु शलजम की पीली चित्ती के परम कीटाणुओं को संवाहन कर सकने वाले कीट लसिका (थूक) विहीन होते हैं। इल्लियों में लसिका उत्पन्न करने की ग्रंथि होती है, इसी कारण वे शलजम की पीत वर्णीय चित्ती के परम कीटाणुओं का संवहन कर सकने में सर्वथा असमर्थ होती हैं। यह परम कीटाणु जगत की एक विचित्र ही लीला है, जिसका उद्घाटन परम कीटाणु

विज्ञान के शोधकर्त्ता वैज्ञानिक कर सके हैं। ऐसा विरोधाभास सूक्ष्म कीटाणु जगत की विचित्रता ही प्रकट कर हमें स्तब्ध करता हैं। इसी तरह की कितनी ही विचित्रताएँ विज्ञान के अनेक क्षेत्रों में शोधकों के गम्भीर मनन से प्राप्त हो सकती हैं।

परम कीटाणुओं का आकार इतना अधिक सूक्ष्म होता है कि उनके सम्बन्ध में यथार्थ ज्ञान का होना एक जटिल समस्या ही है। यह तो विज्ञान के प्रबल साधनों का ही फल है कि हम उनके सम्बन्ध में कुछ जानने लगे हैं। विद्युताणु सूक्ष्मदर्शक यंत्र हमें उनका कुछ ज्ञान अवश्य कराता है, किन्तु इतना प्रबल साधन भी परम कीटाणु सरीखे सूक्ष्म जीव जगतों का पूर्ण मर्म नहीं बता पाता। उदाहरणार्थ, यह बता सकना भी सरल कार्य नहीं कि कीटों के माध्यम से परम कीटाणु किन रूपों में संवाहित होते हैं तथा उन पर क्या-क्या प्रभाव मध्यस्थ कीट द्वारा पड़ सकते हैं। इस सम्बन्ध में कितनी ही विभिन्न कल्पनाएँ तथा धारणाएँ सुनाई पडती हैं जिन में यथार्थ बात को जान सकना कठिन ही है।

परम कीटाणु क्या हैं, किस प्रकार उत्पन्न होते हैं या उनकी किस प्रकार संतानवृद्धि होती है, इनका कुछ स्पष्ट ज्ञान अभी प्राप्त नहीं हो सका। कीटाणुओं में एक कोष के विभाजन द्वारा संतान उत्पन्न होती है, परन्तु परम कीटाणु का भी कोष विभाजन होकर ही संतानोत्पादन होता है, इस बात का कोई प्रमाण विद्युताणु सूक्ष्म दर्शक यंत्र भी नहीं दे सका है।

कुछ वैज्ञानिकों का यह कथन है कि परम कीटाणु को संवाहक मध्यस्थ कीट केवल अपने अंग से लिपटा कर अन्य वनस्पति के सम्पर्क में पहुँच कर केवल उस पर डाल भर देते हैं, विशेष युक्तिसंगत बात नहीं ज्ञात होती। शीघ्रलोपी तथा दीर्घलोपी भेदों पर विचार करने से हम इस बात की छान-बीन कर सकते हैं। जो दीर्घलोपी परम कीटाणु है उसका संवाहक मध्यस्थ कीट कवल भार वाहक श्रमिक की भाँति ही उसे ढोकर अन्यत्र पहुँचाता होता तो प्रथम वनस्पति के संसर्ग में ही उसका संवाहित भंडार समाप्त हो जाता, परन्तु वह तो कई दिनों तक परम कीटाणु को इस प्रकार रक्षित रखता रहता है, जो अनेक वनस्पतियों के सम्पर्क में आने पर उन पर उसको पहुँचा सके। केवल भारवाहक कीट ऐसा नहीं कर सकता। परम कीटाणु अवश्य ही उसके अंग के भीतर प्रवेश पाकर सुरक्षित या वृद्धि पाता रहता होगा। इसी कारण वह छूत के रोग की भाँति परम कीटाणु का प्रभाव कुछ अवधि व्यतीत हो चुकने पर भी अनेक वनस्पतियों पर कर सकता होगा। इन समस्याओं पर भविष्य में वैज्ञानिकों द्वारा अवश्य प्रकाश पड़ने की आशा की जा सकती है।

यह देखा गया है कि कीटों के द्वारा ग्रहण किया परम कीटाणु उनकी पाचन प्रणाली में प्रविष्ट कर पाचन रस से अप्रभावित रहता है तथा उनके मल में प्रबल अनिष्टकारी रूप में ही परम कीटाणु रूप में प्राप्त किया जा सकता है। इल्लियों द्वारा जिस परम कीटाणु का प्रसार नहीं होता उसको भी उनके उदर में पहुँच कर मल द्वारा अनिष्टकारी रूप में बहिष्कृत होते पाया जाता है।

कुछ जान्तव परम कीटाणुओं में मध्यस्थ कीट के शरीर में संख्या वृद्धि के प्रमाण मिलते हैं। उदाहरणार्थ एक परम कीटाणु घोड़ों पर मच्छड़ों की मध्यस्थता से प्रहार करता है। उन परम कीटाणुओं को मच्छड़ के शरीर में संख्या वृद्धि करते पाया जाता है। इस परम कीटाणु को मच्छड़ के निर्मल तथा जीवित तन्तु में कृत्रिम रूप से पोषित करना सम्भव हो सका है। किन्तु वानस्पतिक परम कीटाणुओं के सम्बन्ध में ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता, जिससे उनकी संख्या वृद्धि मध्यस्थ जन्तु में होती मानी जाय।

कुछ वैज्ञानिकों का कथन है कि परम कीटाणु

[शेष पृष्ठ १४ पर]

पुरातन-साहित्य और भौमिकी

श्री पुष्कर सिंह, बी० एस-सी० (आनर्स), एम० एस-सी०

आज संसार में विज्ञान का एक छत्र साम्राज्य है। समस्त विश्व के मानव-गण विज्ञान मन्दिर में सुख-शांति की खोज में अथक परिश्रम कर रहे हैं। प्राच्य भारत इस विज्ञान मन्दिर का अखंड पुजारी था। भारतीय संस्कृति और साहित्य का विश्व में बोलबाला था। भारत सम्पूर्ण विद्याओं का आदिम-स्रोत, समस्त आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक विद्याओं का केन्द्र कहा जाता था। पाश्चात्यों द्वारा अर्वाचीन विज्ञान के अन्वेषणों से विस्मित होकर भारतीय अपने पूर्वकालीन वैज्ञानिक प्रमाणों को नगण्य समझते हैं, पर यह धारणा वास्तविक नहीं है। भारत विश्व गुरु था, अब भी है, और रहेगा। यदि संसार में ऐसा कोई देश है, जिसमें विज्ञान के सूर्य का सर्व प्रथम आभास हुआ, जिसमें ज्ञान-महोदधि की उत्ताल तरंगें अनादिकाल से सुदूर कोनों को भी आप्लावित करती रही हैं, तो वह पुण्य-भूमि भारत वर्ष है। संगीत, चित्रकला, मूर्ति-निर्माण कला, वास्तु-शास्त्र, वैद्यक-शास्त्र, अस्त्रविद्या, फलित-ज्योतिष आदि में और कोई देश भारत के आगे नहीं बढ़ा है। अन्य विज्ञानों के समान भू-गर्भ विज्ञान (भौमिकी) भी वैदिक काल में पूर्ण विकसित था। इसके पक्ष में पुरातन-साहित्य में विवरित विज्ञान के बारे में भाष्य-कार निम्न विचार प्रगट करते हैं :—श्री जकोलियट अपने "भारत में बाइबिल" नामक ग्रन्थ में वैदिक विचारों के बारे में लिखते हैं, "यह एक आश्चर्य जनक बात है! हिन्दू (ईश्वरोक्ति) धर्म ग्रन्थों में से एक-मात्र वेद ही ऐसा है, जिसके विचार वर्तमान विज्ञान के साथ पूर्णतया एकलय हैं, क्योंकि उस (वेद) में भी विज्ञान के अनुसार जगत की क्रमिक रचना का विवरण है।"

योगी अरविन्द के प्रसिद्ध ग्रन्थ "ईश्वरीय ज्ञान वेद" के प्रथमावृत्ति में वैदिक विचारों का सारांश इस तरह है—"वेदों में सृष्टि-विद्या-तत्व का भी कुछ कम आविर्भाव नहीं है।······आधुनिक पदार्थ-विज्ञान की सत्यताएँ भी वैदिक मन्त्रों में प्रकट होती हैं।" आचार्य सत्यव्रत जी अपने "त्रयी चतुष्टय" नामक संग्रह ग्रन्थ में वेदों के भाष्यकारों के सम्बन्ध में लिखते हैं—"उस समय जब कि फोटोग्राफी, फोनोग्राफी, गैसलाइट, टेलीग्राफ, टेलीफोन, रेलवे और हवाई जहाजों का भारत में प्रचार न था, किस प्रकार भारत के वेद भाष्य कर्त्ता उन मन्त्रों के यथार्थ रहस्यों को समझ सकते थे, जिनमें इन वस्तुओं के संकेत हों। हमारी सम्मत्ति है कि वैदिककाल में हमारे भारत देश ने पर्याप्त उन्नति कर ली थी। उस समय भूगर्भ-विद्या, ज्यौतिष, और रसायन-विद्या के आधिदैविक और शरीर-विद्या, मनोविज्ञान तथा ब्रह्म-विद्या को आध्यात्मिक विद्या कहा जाता था।"

"विज्ञान की परिभाषा"—आर्य साहित्य में विज्ञान का अर्थ ज्ञान है और उपनिषदों के अनुसार ज्ञान और विज्ञान में कोई भेद नहीं है। वेदों और उप-निषदों में विज्ञान की अनेक परिभाषाएँ मिलती हैं; उनमें से चुनी हुई कुछ खास परिभाषाएँ यहाँ दी जाती हैं—

विज्ञानं निर्मलं सूक्ष्मं निर्विकल्पं यदव्ययम्।
अज्ञानमितरत्सर्वम्.................. ...॥

अर्थात "निर्मल, सूक्ष्म, निर्विकल्प और अव्यय (सदैव विकार रहित एक स्वरूप) जो ज्ञान है, वही विज्ञान है और इतर ज्ञान सबके सब अज्ञान हैं।"

तैत्तरीयोपनिषद में उल्लिखित "विज्ञान" पत्रिका का टेक इस तरह है—

"विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्,
विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति,
विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति।" (३/५)

विज्ञान (जीवात्मा) ही ब्रह्म है, यह निश्चय पूर्वक जानो। ये समस्त प्राणी विज्ञान से ही उत्पन्न हैं। (सजीव चेतन प्राणियों से ही प्राणियों की उत्पत्ति प्रत्यक्ष देखी जाती है) इस विज्ञान से ही जीते हैं तथा अन्त में यहाँ से प्रयाण करते समय विज्ञान में ही प्रविष्ट हो जाते हैं। अब विज्ञान किस दृष्टि से ग्राह्य-प्रणाली केन्द्रित रखता है, यह बात भी किसी विज्ञान की परिभाषा में आनी चाहिये। इसके लिये श्री० जे० जी० क्राउथर के अनुसार "प्रस्तुत वातावरण पर प्रभुत्व करने वाली क्रिया-प्रणाली" को विज्ञान कहते हैं। श्री रेमंड अपने विचार निम्न रूप में व्यक्त करते हैं,—"कुछ सिद्धांतों के द्वारा आगमनात्मक विधि से परिज्ञात तर्क पूर्ण और संबद्ध ज्ञान-प्रणाली का नाम विज्ञान है।' अभिप्राय यह कि विज्ञान से विशिष्ट ज्ञान, सर्वाङ्गीण परिणाम, प्रयोग और अवलोकन का सम्पूर्ण आभास मिलता है। अब हम प्रस्तुत लेख में प्रागैतिहासिक काल में भौमिकी का क्या स्थान था, पृथ्वी की उत्पत्ति कब और कैसे हुई, किस प्रकार पर्वतमालाओं तथा महासागरों का निर्माण हुआ, और किस रूप में पृथ्वी पर जीवन के चिन्ह दृष्टिगोचर हुए और किस प्रकार जीवन का विकास हुआ, उसे आधुनिक विज्ञान के साथ समानता दिखाकर संक्षिप्त में विवरण देते हैं।

पृथ्वी की उत्पत्ति :—प्राचीन महर्षियों ने अपने अनुभवानुकूल सृष्टि-निर्माता को किसी विशेष सर्व-व्यापी अनन्त चैतन्य शक्ति के रूप में माना है। उस आदि-शक्ति को ईश्वर और मनुष्य की चेतना शक्ति को आत्मा कहा गया है। उपनिषद में यह स्पष्टतः लिखा है—"बहुस्यां प्रजायेय"—मैं अनेक बन जाऊँ, मैं अपने को अनेक रूपों में व्यक्त सकूँ। ईश्वर के अस्तित्व को शंकाप्रद न रखते हुए यह भी कहा गया है—"सदैव सोम्य इदमग्रं आसीत"—पहले केवल सत (अर्थात ईश्वर) ही था। वृहदारण्यकोपनिषद के अनुसार पृथ्वी जल से उत्पन्न हुई है या जल का ही विकार है अतः जल रूप ही है; इसी प्रकार जल अग्नि से उत्पन्न हुआ अथवा जल का ही रूपान्तर है, अतः जलरूप ही है; अग्नि भी वायु से उत्पन्न अथवा प्रकट हुई है इसलिये वायुरूप ही है; वायु आकाश से प्रादुर्भूत अथवा अभिव्यक्त हुआ, अतः आकाशरूप है; और अन्त में आकाश ईश्वर से उत्पन्न हुआ अथवा ईश्वर की ही अभिव्यक्ति है। अतः ईश्वर से अभिन्न है। इस प्रकार सब पदार्थों की उत्पत्ति और ईश्वर के साथ एकता सिद्ध की जा सकती है। इसे हम गणित के ढंग से संक्षेप में इस तरह रख सकते हैं—

पृथ्वी = जल; जल = अग्नि; अग्नि = वायु; वायु = आकाश; आकाश = ईश्वर।

∴ तदभिन्नभिन्नस्य तदभिन्नत्वनियमः

(युक्लिड के प्रथम स्वंयसिद्ध नियम "जो वस्तुएं किसी एक वस्तु के बराबर होती हैं वे आपस में भी बराबर होती हैं।" के अनुसार ईश्वर = विश्व; अर्थात् दोनों समान ही नहीं हैं! किन्तु दोनों सर्व प्रकार से एक हैं।

इसी प्रकार उपनिषद सिद्धांत में पृथ्वी की उत्पत्ति के बारे में कथा है—'प्रलय में भगवान शेषशय्या पर योगनिद्रा का आश्रय किये हुए थे। उनके शरीर से आद्याशक्ति प्रकट हुई। उसी से इस ब्रह्मांड के ब्रह्मा, विष्णु, महेश प्रकट हुए। शक्ति शिवरूप में ब्रह्मा के पास गयी। उसे उन्होंने चारों ओर से देखा, फलतः वे चतुर्मुख हो गये। विष्णु ने उसे दूर से लौटा दिया। सौ बार शरीर बदलने पर शिव ने उसे स्वीकार कर लिया

शक्ति स्थिर हो गयी; किन्तु ब्रह्मा सृष्टि न कर सके—पृथ्वी जो नहीं थी। भगवान विष्णु ने कर्णमल से दो दैत्य उत्पन्न किये। वे दोनों रुष्ट होकर ब्रह्मा जी को मारने दौड़े।—भगवान विष्णु ने उन्हें मार डाला। उन दैत्यों के मेद से मेदिनी—पृथ्वी बनी।

उनकी अस्थियाँ पर्वत बनी। पृथ्वी को स्थिर करने के लिये भगवान ने कच्छप रूप धारण किया।"

श्रीमद्भागवत् में उल्लिखित है—"एक समय यह पृथ्वी प्रलयकाल में जल में डूब गयी। उस समय पृथ्वी के उद्धारक बाराह रूप भगवान भयंकर दाढ़ निकाले अपनी नासिका से पृथ्वी का पता लगाने के लिये सूंघते सूंघते (पृथ्वी का गुण गंध है) जल में घुसे। पाताल में पहुँच बाराह जी ने अपने तीखे दाँतों से उस पृथ्वी को उभाड़कर दाढ़ पर धरा और इस प्रकार दाढ़ पर उसे लेकर जल से बाहर निकले। तब भगवान बाराह ने पृथ्वी को ऊपर लाकर उसे अपने आधार पर स्थापित किया।"

पाश्चात्य में गैललियों ने अपने दूरदर्शक यंत्र की चहुँधा प्रतिभा से पृथ्वी की उत्पत्ति का श्रीगणेश किया। सन् १७७५ में सुविख्यात जर्मन दार्शनिक इमैन्युएल कान्ट ने ब्रह्मांडवाद का प्रतिपादन किया। उन्होंने अपने ग्रन्थ के उपसंहार में कहा है—"इस संसार में मुझे दो वस्तुओं को देखकर भय लगता है। उनमें एक है "नक्षत्रखचित आकाश" और दूसरा है "विवेक की अनुभूति"। वे कहते हैं कि अँधेरी रात में जब मैं नक्षत्रखचित आकाश की ओर देखता हूँ तो मेरा मन कहता है कि "कौन हो तुम महाशक्तिमान् पुरुष, जो इस अगणित सृष्टिमय विश्व ब्रह्मांड का संचालन कर रहे हो? जिस प्रकार बालक गेंद से खेलते हैं, उसी प्रकार खेल खेल में तुम अखिल ब्रह्मांडों को अपने अपने कक्ष में दौड़ा रहे हो। तुम कितने महान हो, कितने विराट हो! और तुम्हारे सामने मैं कितना क्षुद्रादिक्षुद्र हूँ, कीटादपि कीट हूँ। यह सोचते ही मन विस्मयाविष्ट हो जाता है, और भय लगता है।"

श्री जेम्स जीन्स और हेरॉल्ड जेफ्रिज का कथन है कि सूर्य पहले बहुत ही बृहदाकार था। सूर्य के साथ एक दूसरे तारे के संघर्षण से इसमें विस्फोट हुआ। यह वेला अस्थिर होने के कारण विभिन्न अंशों में विभक्त हो गया। इन्ही भग्न अंशों को ग्रह कहा जाता है। सन् १६४४ में ज्योतिर्विद् हॉयल ने "सुपरनोव्हा विस्फोट" उपकल्पना का प्रतिपादन किया। इनके अनुसार सारे नक्षत्र आकाशगंगा से उत्पन्न हुए हैं। श्री हेलेन और मिलने के "क्वान्टम वाद" के अनुसार विश्व-निर्माण क्वान्टा से हुआ है। रूसी वैज्ञानिक श्री० ओ० वाय० स्मिट के अनुसार सौर जगत की उत्पत्ति ब्रह्मांड रज से हुई है। इस तरह विश्वोत्पत्ति—जगदुत्पत्ति का विषय प्राचीन विचारकों और अर्वाचीन वैज्ञानिकों के मत में पूर्णतया संगत न होते हुए भी जटिलतम नहीं है, क्योंकि विषय की महानता उन्हें "ईश्वर ने इसी तरह रचा" (God created thus) के परिणाम पर पहुँचाती है।

पृथ्वी के दूसरे समीपस्थ आकाशीय-पिण्ड, चन्द्रमा की उत्पत्ति का विषय और भी रहस्यपूर्ण है। पुराणों में चन्द्रमा की उत्पत्ति समुद्र से कहा गया है। अमृत मन्थन के समय क्षीर-समुद्र से चन्द्रमा निकले थे। जगज्जननी लक्ष्मीजी के इसी से वे भाई हैं और इसी से हम आप सब के वे "चन्दा मामा" भी हैं। भौमिकी के अनुसार भी चन्द्रमा की उत्पत्ति पृथ्वी ही से हुई है और इसी से वे पृथ्वी के लड़के हैं। वर्तमान वैज्ञानिकों के अनुसार चन्द्रमा की उत्पत्ति अनुनाद-क्रिया के फलस्वरूप प्रशान्त महासागर से हुई है। अतः पौराणिक धारणा और अर्वाचीन वैज्ञानिक विचार एक संगत हैं।

वेदों में काल गणना :—वैदिक काल-गणना और भौमिकी घड़ी प्रायः एक ही समय का गवेषण कर रहे हैं। वैदिककाल-गणना प्राचीन मनीषियों की देन है और भौमिकी घड़ी तेजोद्गिरण की देन है। काल-गणना का विविध प्रमाण हमें श्रीमद्भागवत् के निम्न श्लोकों में मिलता है—

कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम्।
द्विव्यैर्द्वादशभिर्वर्षैः सावधानं निरूपितम्॥
चत्वारि त्रीणि द्वौ चैकं कृतादिषु यथाक्रमम्।
संख्यातानि सहस्राणि द्विगुणानि शतानि च॥

संध्यांशयोरन्तरेण यः कालः शतसंख्ययोः।
तमेवाहुर्युगं तज्ज्ञा यत्र धर्मो विधीयते॥
त्रिलोक्या युगसाहस्रं बहिराब्रह्मणो दिनम्।
तावत्येव निशा तात यन्निमीलति विश्वसृक्॥
निशावसान आरब्धो लोककल्पोऽनुवर्तते।
यावद्दिनं भगवतो मनून् भुञ्जंश्चतुर्दश॥
स्वं स्वं कालं मनुर्भुङ्क्ते साधिकां ह्येक सप्ततिम्।
(३। ११। १९-२०, २२-२४)

सूर्य सिद्धान्त के अनुसार आज (सं० २०११ सन् १९५४ तक) इस श्वेत वाराह कल्प के १,९७,२९,४९,०५५ वर्ष बीत चुके हैं तथा २,३४,७०,५०,९४५ वर्ष शेष हैं। इसके अनुसार ४, ३२, ००० सौर वर्षों का कलियुग होता है तिगुने द्वापर, त्रेता और सत्ययुग यथा क्रम से दुगुने, और चौगुने होते हैं अर्थात् द्वापर में ८, ६४,००० वर्ष होते हैं, त्रेता में १२, ९६,००० वर्ष और सत्युग में १७, २८,००० वर्ष होते हैं। इस प्रकार कुल मिलाकर ४३, २०,००० वर्षों का एक महायुग या चतुर्युग होता है। प्रत्येक युग के आगे और पीछे एक-एक सन्धिकाल उस युग के दशमांश के बराबर होता है। इस सन्धिकाल को "प्रदोषकाल' कहते हैं। एक सहस्र चतुर्युग ब्रह्मा के एक दिन और रात के बराबर होता है। इस एक दिन-रात को कल्प कहते हैं। प्रत्येक कल्प में मानव-जाति के आदि-पुरुष चौदह मनुओं के काल विभाग अर्थात् मन्वन्तर होते हैं। एक एक मनु इकहत्तर-इकहत्तर चतुर्युगों की (सन्धिकाल के अतिरिक्त) अध्यक्षता करते हैं। इस तरह सृष्टि को प्रारंभ हुए १ अरब, ९७ करोड़, २९ लाख, ४९ हजार ५५ वर्ष होते हैं।

वर्तमान वैज्ञानिक प्रयासों में तेजोद्गिरण विधि, वैदिक काल-गणना के समीचीन है। पृथ्वी की आयु जानने का प्रथम वैज्ञानिक प्रयास जेम्स हटन ने किया। प्रो० जॉली ने समुद्र की क्षारता पर आधारित कर अपने वाद का प्रतिपादन किया। उन्होंने समुद्र जल की बढ़ती हुई क्षारता से पृथ्वी की आयु दस कोटि वर्ष निश्चित की। प्रो० एस० न्यू० कोम्ब सृष्टि को एक करोड़ वर्षों से मानते हैं (पापुलर ऐस्ट्रानमी)। अस्थितत्त्ववेत्ता डाक्टर विलियम तथा डाक्टर स्मिथ एडवर्ड ने पृथ्वी की उष्णता निश्चित कर उसकी आयु दस करोड़ वर्ष आँकी। तेजोद्गर पदार्थों के अन्वेषण तथा उनसे निस्सृत रश्मियों ने पृथ्वी की आयु को आँकने के लिये सुलभ राह का उद्घाटन किया। इन पदार्थों के अगुवा (यूरेनियम) किरणातु के वियोजन दर को हम अनुसंधान शाला में जीगर काउण्टर या गणन-सूचिनाल नामक यंत्र से नाप सकते हैं। अतः किरणातु वियोजन तेजोद्गिरण विधि के अनुसार सृष्टि की आयु ३,३,०,०,०००,००० वर्ष मानी जाती है।

पृथ्वी के अन्तर्भाग की संरचना का विवरण भी हमारे पुरातन-साहित्य में मिलता है। गीता में अग्नियज्ञ से भूपिण्ड की सृष्टि मानी है।

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्ट कामधुक॥(३.१०)

इस संवत्सरात्मक अग्नियज्ञ से ही भूपिण्ड की सृष्टि हुई है एवं इसी से भूपिण्ड पर प्रतिष्ठित प्रजा की उत्पत्ति हुई है। भूपिण्ड अग्निमय है। "अग्निर्भूस्थान" (या० नि०) यह आप्त सिद्धान्त प्रसिद्ध है। अर्वाचीन भौमिकीविद् भी इसमें सहमत हैं, क्योंकि उनके अनुसार ज्यों ज्यों हम पृथ्वी के अन्तर्भाग में प्रविष्ट करते हैं त्यों-त्यों उष्णता बढ़ती जाती है। प्रायः ६० फुट में १° फैरनहीट बढ़ती है और पृथ्वी का अन्तरिक्ष यज्ञ की वेदी के समान है। वह अग्नितत्व मर्त्य-अमृत भेद से दो भागों में विभक्त है। अमृताग्नि प्राणाग्नि है। यही देवता है। भूताग्नि से पिण्ड बनता है—प्राणाग्नि महिमामंडल का अधिष्ठाता है। आपः, फेन, मृत, सिकता, शर्करा, अश्मा, अयः, हिरण्य इन आठ भूतधातुओं से पृथ्वी पिण्ड का स्वरूप निष्पन्न हुआ है। वर्तमान भौमिकी में पृथ्वी की बनावट इन्हीं अष्ट मूल धातुओं से निर्मित है।

महाद्वीपीय-ऊढ़—सरल भाषा में महाद्वीपीय-ऊढ़ को महाद्वीपों की यात्रा भी कह सकते हैं। एक अवैज्ञानिक मनुष्य को इनकी यात्रा बुद्धि के परे प्रतीत होगी। लेकिन हमारे पुरातन-मनीषियों में यह विलक्षण बुद्धि-ग्राह्य थी। श्रीमद्भागवत में विवरण है कि राजा प्रियव्रत ने अपने सात पुत्रों को सात महाद्वीप बटवारे में दी। राजा प्रियव्रत पृथ्वी-पिता थे। उन्होंने अपने रथ के पहिये से पृथ्वी पर सात गढ़े किये, जो सात समुद्र हुए। इसी कारण पृथ्वी के, जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक और पुष्कर ये सातों द्वीप हुए।

वर्तमान विज्ञान के अनुसार श्री अल्फ्रेड वेगेनर महाद्वीपीय-ऊढ़ के जनक कहलाते हैं। वेगेनर के अनुसार कालान्तर में वेला-प्रवाह के प्रभाव से पृथ्वी के अंग विदीर्ण हो गये। एक प्रवाह पश्चिम की ओर हुआ, जिसके अन्तर्गत उत्तरी-दक्षिणी अमेरिका थे। दूसरा प्रवाह भूमध्यरेखा की ओर हुआ, जिससे आफ्रिका आदि प्रभावित हुए। भारतीय वैज्ञानिकों में प्रो० बीरबल साहनी ने अपने पुरा-वनस्पति के प्रमाणों से वेगेनर को प्रोत्साहन दिया। प्रो० बी० साहनी के अनुसार, महाद्वीपीय-ऊढ़ महाद्वीपों के एक दूसरे से अलग होना ही नहीं, परन्तु एक दूसरे की तरफ सरकना भी है। इसके प्रमाण में उन्होंने जिह्वापर्णी और जाइगेन्टापटेरिस वनस्पतियों के कपोत पुञ्छन से दिया है।

इस लेख को लिखने में मैंने "कल्याण" की सहायता ली है, जिसके लिये मैं लेखकों का आभारी हूँ।

(शेष अगले अंक में)
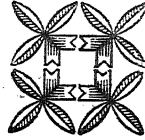
एल्यूमीनियम

श्री गोलोक बिहारी चौधरी, बी० एस-सी०, नाथ नगर, भागलपुर

एल्यूमीनियम से हम लोग पूर्णतया परिचित हैं। महलों से लेकर झोपड़ियों तक इस धातु के बने बर्तनों का व्यवहार होता है। इसके हल्केपन गुण तथा सस्ते होने के कारण यह जनसाधारण का अत्यधिक प्रिय बन गया है। साथ ही खटाई आदि का कोई प्रभाव नहीं पड़ने के कारण घरेलू कामों में इसका व्यवहार दिनो-दिन बढ़ता जा रहा है।

इस धातु के आविष्कार हुए करीब सवा सौ वर्ष हुए हैं। जर्मनी के रसायन शास्त्र के विशेषज्ञ व्हुलरने इसे सर्वप्रथम सन् १८२७ में अन्य धातुओं से अलग किया।

सन् १८८६ तक इसका उत्पादन और व्यवहार बहुत कम रहा। सन् १८८० में दुर्लभता के कारण मात्र ८० पाउँड एल्यूमीनियम का उत्पादन हुआ था। तब यह सोने से भी मँहगा था। किसी समय इसका भाव ३५०) प्रति पाउँड था और अब १० आना पाउंड है। अब इसका उत्पादन और व्यवहार बहुत बढ़ गया है। यदि इसे बीसवीं शताब्दी की धातु कही जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। विशेष गुणों के कारण जीवन तथा व्यवसाय के विभिन्न क्षेत्रों में इसका व्यवहार इतनी तेजी से बढ़ रहा है कि बीसवीं शताब्दी का उत्तरार्ध भाग एल्यूमीनियम युग कहा जायगा। उत्पादन के विचार से संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, रूस, फ्रांस, ब्रिटेन आदि देशों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनका उत्पादन दुनियाँ के उत्पादन का क्रमशः ४८, २२, १०, ८, और ५ प्रतिशत है। उत्पादन के क्रम में भारत का स्थान नवाँ है। विगत युद्ध के बाद मित्र राष्ट्रों ने जर्मनी और जापान के उत्पादन सीमित कर दिया है। यह साधारणतया बोक्साइट नामक क्ले (Clay) जैसे खनिज से प्राप्त होता है। यों तो इसके और भी धातव-पत्थर हैं जैसे :—गिवसाइट, डाइस्पोर, कोरंडम, एल्यूमाइट, क्रायोलाइट आदि जिनमें क्रमशः ६५, ८५, १००, ३७ २४, प्रतिशत एल्यूमीनियम पाये जाते हैं, लेकिन एल्यूमीनियम की प्राप्ति के विचार से बोक्साइट ही प्रधान है। वास्तव में बॉक्साइट, गिवसाइट और डाइस्पोर तथा अन्य विजातीय पदार्थों का मिश्रण है, जिसमें Alumina 55 से 60 प्रतिशत तक पाया जाता है। प्रकृति में जितना एल्यूमीनियम का बाहुल्य है, उतना और भी किसी धातु का नहीं। जैसा कि नीचे दिये हुए कुछ मुख्य धातुओं की प्राकृतिक बाहुल्य-निष्पति से ज्ञात होता है।

सोना	१.	गुणा
चाँदी	२०.	"
शीशा	४०००	"
जस्ता	८०००	"
ताँबा	१६०००	"
निकल	४६०००	"
लोहा	६०००,०००.	"
एल्यूमीनियम	१६०००.०००.	"

(उपर्युक्त उदाहरण में सोना को बाहुल्य की इकाई माना गया है।)

ताँबे जैसा यह शुद्ध रूपों में कभी नहीं पाया जाता है।

(*टिटेनिया*) :—इसके धातव-पत्थर (चूर्ण) में एल्यूमीनियम के अतिरिक्त अन्य विजातीय पदार्थ भी पाये जाते हैं, जिनमें सिलिका, लौह ऑक्साइड

टिटेनियम ऑक्साइड और जल पाये जाते हैं। कभी-कभी चूना, मैगनिसियम और मैंगनिज ऑक्साइड भी पाये जाते हैं। उदाहरण के लिये कुछ 'बॉक्साइड' के विश्लेषण नीचे दिये गये हैं :—

बॉक्साइट	भारत	फ्रांस	सं० रा० अमेरिका
एल्युमिना	५५.%	५७-६०%	५६.५६%
लौह आक्साइड	१०%	२०-२५%	३-४%
सिलिका	२%	३-५%	५-१२%
जल	१८%	११-१५%	२७-३०%
टिटेनियम आ-क्साइड (टिटेनिया)	८-११%	२-३%	———

बॉक्साइट 'क्ले' (चिकनी मिट्टी) के रूप में चूर्ण अवस्था में ही और साधारणतया भूपृष्ठों पर या सतहों से कम गहराई में पाया जाता है। अन्य धातव पत्थरों जैसा चट्टानों को तोड़ कर या गहरे खानों से यह नहीं निकाला जाता है। इसकी उत्पत्ति एल्यूमिनियम से युक्त विभिन्न प्रकार के चट्टानों (आग्नेय, परतदार तथा परिवर्तित) पर प्राकृतिक साधनों की क्रिया स्वरूप हुई है। इन प्राकृतिक क्षयकारक साधनों का प्रभाव अनन्त काल से इन चट्टानों पर पड़ता आया है, जिसके कारण इन चट्टानों का क्षय हो गया और इस प्रकार बॉक्साइट की उत्पत्ति हुई। विशेषज्ञों का अन्दाज है कि भारत के भूपृष्ठों में करीब पचीस करोड़ टन बॉक्साइट होंगे जिनमें करीब चार करोड़ टन उच्च कोटि के हैं!

यहाँ पर यह भी उल्लेख कर देना अनुचित नहीं होगा कि भारत के बॉक्साइट में अन्य देशों की अपेक्षा टिटेनिया का होना अपना विशेष महत्व रखता है। क्योंकि इसका उपयोग अन्य धातुओं में भी होता है। लेकिन भारत का व्यापार अविकसित रहने के कारण इसका उत्पादन अन्य देशों की अपेक्षा बहुत कम होता है।

बाक्साइट के उत्पादन के आँकड़े (दस लाख टनो में)

सन्	फ्रांस	सं० रा० अमेरिका,	डचगिनि,	ब्रि० गिनी,	हंगरी	इटाली	जर्मनी	भारत
४३	१.	६.	१.६	२.	२.	.२	.८८	.८२ (.०१४)
४६	.५	१	.६	१	१	.०६	—	.०२ (.०१२)

यों तो भारत में मध्य प्रान्त की बालाघाट और कटनी की खानें बॉक्साइट के उत्पादन के लिये अधिक प्रसिद्ध हैं, फिर भी अन्य राज्यों में भी यह बहुतायत से पाया जाता है। भारत के विभिन्न राज्यों में बॉक्साइट का विस्तार निम्न प्रकार से है।

बिहार राज्य :—बिहार राज्य में यह विशेष कर छोटा नागपुर के पठारों में पाया जाता है। स्थान विशेष के विचार से पलामू जिले के अन्तर्गत नेटर-हाट और जमीसपत और राँची जिले के लोहर डगा के आसपास वाले पठार इसके लिये प्रसिद्ध हैं। यहाँ के बॉक्साइट की विशेषता यह है कि इसमें *टिटेनियम ऑक्साइड* की मात्रा अन्य राज्यों के बाक्साइटों की अपेक्षा अधिक है।

उदाहरण के लिये दुधमटिया के बॉक्साइट में ५०-६०% एल्युमिना तथा १०-१७% तक टिटेनिया पाये जाते हैं।

बम्बई राज्य :—इस राज्य के अन्तर्गत बेलगाँव जिले के पास वाले क्षेत्र विशेष उल्लेखनीय हैं। नौगा पहाड़ी वाले क्षेत्र की खानों में ५-२५ फीट तक की मोटी बॉक्साइट की तह पाई जाती है। अनुमान किया जाता है कि इस खान से कम से कम ७५ हजार टन अच्छे बॉक्साइट और ४० लाख टन

साधारण बॉक्साइट (४९ प्रतिशत एल्युमिना) प्राप्त होंगे। इसी जिले के अन्तर्गत अन्य पहाड़ियों की चोटियाँ भी बॉक्साइट से ढँकी हैं। कहीं-कहीं तो इसकी तह बीस-बीस फीट मोटी है और यह उच्च कोटि के हैं।

कोलाहपूर के अन्तर्गत रत्नगिरी के उत्तर पश्चिम वाले पठार पर उच्च कोटि का बॉक्साइट (एल्युमिना ५०-६०%, टिटेनिया ८%) पाया जाता है। अनुमान किया जाता है कि इस स्थान से करीब १ करोड़ टन बॉक्साइट प्राप्त होगा। इसी राज्य के अन्तर्गत पनहलादुर्ग पर तथा इसके समीप वाले भागों में भी पाया जाता है। विश्लेषण से पता चलता है कि पनहलादुर्ग का बॉक्साइट भारत में सबसे अच्छा है, लेकिन यह यहाँ अधिक परिमाण में प्राप्त नहीं है।

बॉक्साइट के उत्पादन में केरा जिला स्थित कपाद्धमंज नामक खान अपना विशेष स्थान रखता है। भारत में बॉक्साइट के उत्पादन का प्रमुख स्थान यहीं है। सन् १९२४-२९ तक इसके उत्पादन का वार्षिक औसत ८९७१ टन और १९३७ में ५५९२ टन था। यहाँ पर बॉक्साइट जमीन की सतह पर ही पाया जाता है। इसका व्यवहार विशेष कर मिट्टी के तेल को साफ करने में होता आया है। यहाँ से प्राप्त बॉक्साइट उच्चकोटि का होता है। जिसमें एल्युमिना ५५. ४% टिटेनिया ६.७% सिलिका १.२% लौह ऑक्साइड ७.% पाये जाते हैं। बम्बई राज्यान्तर्गत थाना जिले में भी अच्छी जाति का बॉक्साइट पाया जाता है। स्थान विशेष के विचार से बौमद्रुग बौम्बासाद्रुग और डुंगार के पठार इसके लिए प्रसिद्ध हैं।

विन्ध्य प्रदेश :—रीवां राज्य के अन्तर्गत अमर कण्टक पठार पर भी बॉक्साइट काफी परिमाण में पाया जाता है। यह क्षेत्र मध्य प्रदेश के विलासपूर जिले तक विस्तृत है। उच्च कोटि के बॉक्साइट मीरा और लिलवानी पहाड़ियों पर भी पाये गये हैं।

मध्य प्रदेश :—बॉक्साइट के उत्पादन के विचार से भारत में मध्य प्रदेश स्थित जबलपुर जिला अपना विशेष स्थान रखता है। यहाँ यह प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। बॉक्साइट अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि का होता है। साथ ही साथ यहाँ की खानें प्रायः सभी रेलवे लाइन के समीप हैं जिससे ये सहज ही कम खर्च में बाहर भेजे जा सकते हैं। स्थान विशेष विचार से महगाँव, धनगाँव, सरस्वाही, तिकरिया, भरवारा (कटनी), बड़गाँव, तिकुरी और लफैग-स्टाफ की पहाड़ी उत्पादन के प्रमुख क्षेत्र हैं। अनुमान किया जाता है कि यहाँ के क्षेत्रों में सवा करोड़ टन से भी अधिक बॉक्साइट होंगे, जिनमें करीब ६० लाख टन उच्च कोटि के होंगे। जबलपुर क्षेत्र के औसत कोटि के बॉक्साइट का विश्लेशण यह है। एल्युमिना—६०%, टिटैनिया—८%, सिलिका २.५% लौह ऑक्साइड—३-४% यौगिक रूप में जल २६% जलवाष्प—५%। उच्चकोटि के बॉक्साइट में ६०-६५% तक एल्युमिना पाया गया है। १९२८-३३ और १९३०-३५ पंच वर्षों में जबलपुर के क्षेत्रों का औसत वार्षिक उत्पादन क्रमशः २३१२ और ७१२५ टन रहा है।

बालाघाट जिले के लौहार, बैहार, तोसा की उच्च भूमि, बाजीरी, पच्छमा आदि क्षेत्र भी कम महत्व के नहीं हैं। इन क्षेत्रों में उत्कृष्ट कोटि के बॉक्साइट पाये जाते हैं।

बिलासपुर जिले के अन्तर्गत अमर कंटक और काला हण्डी रियासतों में भी बॉक्साइट उपलब्ध होता है।

मद्रास :—सलेम जिले की पर्वत-श्रेणियों में भी विभिन्न कोटि के बॉक्साइट पाये जाते हैं, जिसमें एल्युमिना ४५-५० प्रतिशत तक पाया जाता है। विशेषज्ञों का अन्दाज है कि इन क्षेत्रों में ६०-७० लाख टन बॉक्साइट होंगे, जिनमें करीब एक तिहाई उत्कृष्ट कोटि के होंगे।

मैसूर :—इस राज्य के बाबाबुदान पहाड़ी सिलसिले के छिटपुट क्षेत्रों में उच्चकोटि के बॉक्साइड

पाये जाते हैं। अनुमान किया जाता है कि इन क्षेत्रों में एक लाख टन से भी अधिक ५५ प्रतिशत एल्युमिना वाला बॉक्साइट पाया जायेगा।

काश्मीर :– इस राज्य में भी बॉक्साइट पाया जाता है। यहाँ के बॉक्साइट में यह विशेषता है कि यह अपेक्षा कृत बहुत कड़ा होता है, लेकिन इसमें एल्युमिना का अंश ७०-८० प्रतिशत तक होता है। यहाँ के क्षेत्रों में जम्मू वाले पाँच क्षेत्र छाकर, संगर मार्ग, सलाल, पनहासी और सुखवाल गली (जंगल गली) विशेष उल्लेखनीय हैं। विश्लेषण से पता चलता है कि इन क्षेत्रों के बॉक्साइट में ७५-८० प्रतिशत एल्युमिना तथा १-५ प्रतिशत सिलिका वर्तमान हैं। विशेषज्ञों की राय में इन क्षेत्रों से करीब १८ लाख टन बॉक्साइट प्राप्त होंगे।

ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि साधारणतया बॉक्साइट का उत्पाद एल्युमीनियम की प्राप्ति के लिये ही होता है, लेकिन यह बात हमारे देश के लिये लागू नहीं है; फिर भी शुद्ध बॉक्साइट व्यापार के लिए बहुत उपयोगी है।

चीनी के कारखाने में गन्ने के रस को साफ करने तथा मिट्टी के तेल के कारखाने में तेल को शुद्ध करने में इसका व्यवहार होता है। फिटकिरी बनाने तथा भट्ठियों के लिए ईंट प्रस्तुत करने में तो यह अनिवार्य सा ही है। टिटैनियम उत्पादन का तो यह एक मुख्य सहारा है। लोहे आदि धातुओं पर लगे जंग को छुड़ाने में व्यवहृत होने वाला 'एमरी पेपर' इसी धातु से बनते हैं। जल्दी जमने वाले सिमेन्ट और शीशे के कारखानों में भी इसका व्यवहार होता है। बॉक्साइट से एल्यूमीनियम धातु प्रस्तुत करने में अन्य प्रसाधनों के अतिरिक्त काफी बिजली की जरूरत पड़ती है। प्राप्य साधनों से बिजली प्राप्त करने में काफी खर्चा बैठ जाता है, फलतः एल्यूमीनियम धातु तैयार करने का व्यापार पनप नहीं रहा है जैसा कि निम्नलिखित आँकड़े से स्पष्ट होता है।

भारत का एल्यूमीनियम उत्पादन और आयात—

१९४६	३००० टनों में	आयात टनों में १०३३०
१९४७	३२२७ „ „	७५२०
१९४८	३३६७ „ „	७०५३
१९४९	३४६१ „ „	८३००
१९५०	३५६१ „ „	—

भारत में एल्यूमीनियम धातु प्रस्तुत करने के दो कारखाने हैं। दि इन्डियन एल्यूमीनियम कम्पनी लिमिटेड और एल्यूमीनियम ऑफ इंडिया।

दि इंडियन एल्यूमीनियम कम्पनी छोटामुरी (जिला राँची में) अवस्थित है। लोहरडगा खान से बॉक्साइट लेकर यह विभिन्न यांत्रिक और रासायनिक क्रियाओं द्वारा बनाने में इसे एल्युमिना में परिवर्तित करता है। एल्युमिना से एल्यूमीनियम बनाने में बिजली की जरूरत पड़ती है, जिसके लिये इस एल्युमिना को ट्रावनकोर स्थित अल्वाई के कारखाने में भेजना पड़ता है और पुनः यहाँ से प्रस्तुत धातु को चदरा या गोलाकार चकत्ती बनाने के लिये बेलूर (बंगाल) लाना पड़ता है। उपर्युक्त वर्णन से साफ पता चलता है कि इस व्यवसाय को कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। लोहरडगा की खान से खनिज मूरी लाया जाता है - मूरी में प्रस्तुत वस्तु हजारों मील दूर ट्रावनकोर जाता है। वहाँ से पुनः हजार मील लौटकर बेलूर मिल में लौट आता है। इस प्रकार दो तीन हजार मील चक्कर लगाने के बाद बॉक्साइट से धातु के चदरे आदि बनते हैं, फलतः धातु की कीमत बढ़ जाती है। बेलूर का वार्षिक उत्पादन करीब ३ हजार टन है। इसका उत्पादन १९४३ के मार्च से आरंभ हुआ है।

एल्यूमीनियम कारपोरेशन ऑफ इण्डिया का उत्पादन १९४४ से आरंभ हुआ है। यह कम्पनी भी बॉक्साइट लोहरडगा की खानों से प्राप्त करती है। खनिज से एल्युमिना, एल्युमिना से धातु तथा धातु से चदरा आदि बनाने के कारखाने जे० के० नगर आशनसोल (बंगाल) में ही हैं। इसका वार्षिक उत्पादन करीब ४०० टन है।

एक टन एल्युमिनियम धातु प्रस्तुत करने में भारतीय कम्पनियों को निम्नलिखित चीजों की उल्लिखित मात्रा में जरूरत पड़ती हैः—

उत्पादन	मात्रा	प्राप्ति का स्थान
बाक्साइट	४-५ टन	बिहार की खानों से
कोयला	४-५ टन	
चूना	·५ टन	मध्य भारत में
सोडे का क्षार	·२५ टन	विदेशों से
क्रायोलाइट	·०४ टन	
पिच	·२५ ,,	कोयले की खानों से
पेट्रोलियम-कोक	·५ ,,	डिगबोई (आसाम)
एल्यूमीनियम क्लोराइड	·०५ ,,	विदेश से
कड़ा 'कोक'	·५ ,,	कोयले की खानों से
कुडा आयल	·२५ ,,	आसाम से

बिजली की शक्ति २१००० टन- युनिट (किलोवाट)

उपर्युक्त विवरण से प्रत्यक्ष है कि एल्युमीनियम के उत्पादन में बॉक्साइट कोयला और कोयले से प्राप्त अन्य चीजों के अतिरिक्त विद्युत् शक्ति की भी अधिक जरूरत पड़ती है। उत्कृष्ट बॉक्साइट रहते हुए भी हमलोगों के यहाँ सस्ते दाम में विद्युत शक्ति उपलब्ध नहीं होने के कारण यहाँ का एल्यूमीनियम विदेशी एल्यूमीनियम की अपेक्षा महगा पड़ता है। विश्व में सर्वाधिक एल्यूमीनियम कनाडा में होता है। वहाँ का बॉक्साइट साधारण कोटि का है, लेकिन वहाँ कोयला तथा बिजली सस्ती पड़ती है। जिसके कारण वहाँ का माल दुनियाँ के बाजारों में सस्ता बिकता है। आशा की जाती है कि दामोदर घाटी योजना के कर्यान्वित होने पर हमलोगों के यहाँ भी कम दाम में बिजली की शक्ति प्राप्त हो सकेगी और तब हमारा माल दुनियाँ के बाजारों में सस्ते भावों में बिकेगा।

इसके *गुण और व्यवहार* :—व्यवसायोपयोगी मिलावट में काम आने वाली धातुओं में एल्यूमीनियम सबसे हल्की धातु है। टेन्साइल शक्ति कम होने के कारण इसके शुद्ध रूप में इञ्जिनियरिंग के कामों में व्यवहार नहीं होता। फिर भी अन्य धातुओं के साथ मिलाकर इसकी मजबूती बढ़ाई जा सकती है। हवाई जहाजों में तथा उन स्थानों में जहाँ हल्की तथा मजबूत धातुओं के बने बीम, रौफ्टर, स्लेट आदि चीजों की आवश्यकता होती है, वहाँ alloy एल्यूमीनियम का ही व्यवहार होता है। एल्यूमीनियम का ताँबे या सिलिकन के साथ अच्छा संकर धातु (alloy) बनता है। कभी कभी विशेष प्रकार के संकर धातु बनाने के लिये इसके साथ अन्य दो या तीन धातुएँ मिलाई जाती हैं। मिलाने के लिये उपर्युक्त धातुओं में ताँबा, मैग्निसियम, मैगनिज, सिलिकन, निकल, वेनाडियम, टंगसटिन आदि प्रसिद्ध हैं।

आयत के आँकड़े से साफ पता चलता है कि इसकी खपत दिनानुदिन बढ़ती जाती है। यह धातु विशेष कर चद्दरे, पत्तर और गोलाकार चकत्तियों के रूप में यहाँ आयात होती है। निर्यात करने वाले देशों में कनाडा, यू० एस० ए०, ब्रिटेन, जापान आदि प्रमुख हैं। आगत चद्दरे, पत्तर आदि से गृहकार्योपयोगी बर्तन बनाने के कारखाने कलकत्ता, मद्रास, अमृतसर, गुजरानवाला, बनारस आदि जगहों में हैं।

विभिन्न व्यवसायों में इस धातु का व्यवहार निम्नांकित अनुपात में होता है :—

(१) यातायात के प्रसाधनों के निर्माण में रेल, मोटर, हवाई जहाज आदि)	२९ प्रतिशत
(२) बिजली के कण्डक्टर आदि बनाने में	१४ ,,
(३) मशीन निर्माण तथा बिजली के अन्य प्रसाधनों में	१५ ,,
(४) मकान निर्माण कार्य में	८ ,,
(५) रासायनिक द्रव्यों के बनाने में	५ ,,
(६) लोहे और स्टील के व्यवसाय में	५ ,,
(७) भोजन तथा अन्यपेय सम्बन्धी व्यवसायों में	६ ,
(८) ढलाई के काम में	४ ,,
(९) अन्यान्य	४ ,,

आशा की जाती है राष्ट्र के नव निर्माण में इस धातु का अधिकाधिक उपयोग होगा।

विज्ञान समाचार

राजस्थान की जवाई नदी योजना

यदि आज से दो वर्ष पहले जोधपुर के पाली जिले की ६० वर्षीय किसान वृद्धा से कोई कहता कि एक दिन वह भी आगया जब वेगवती जवाई नदी उसके खेतों को नष्ट नहीं कर पायेगी तो वह कभी इसका विश्वास न करती। किन्तु आज वह जादू का खेल देख रही है—जवाई का जल नियंत्रित और धीमी, गति से उसके खेतों को सींच रहा है।

इस क्षेत्र में अब रबी की सारी फसलें पैदा हो सकती हैं। गेहूँ और ईख तो अभी ही पैदा होने लगा है। अगले साल कपास भी बोयी जा सकेगी और फलों के बाग भी लगाये जा सकेंगे। जालौर और सिरोही के सैकड़ों किसान इस योजना से लाभ उठा रहे हैं। अभी तक १५ हजार एकड़ 'बरनी' जमीन खेती योग्य बनायी जा चुकी है। १६५६ के अन्त तक ४६ हजार एकड़ भूमि में सिंचाई हो सकेगी।

वैसे यह योजना लगभग ५० वर्ष पुरानी है पर सिरोही दरबार की ओर से गम्भीर आपत्ति होने के कारण आगे न बढ़ सकी। १६४७ में अकाल की स्थिति होने की वजह से लोगों को काम देने के लिए इस बांध का श्रीगणेश किया गया। फिर भी बिजली घर बनाने की योजना, जिससे ४ हजार किलोवाट बिजली पैदा हो सकती थी, इसलिए छोड़ दी गयी कि सारा का सारा पानी सिंचाई के काम आ सके।

योजना क्या है ?

जवाई नदी योजना पर ३ करोड़ रु० खर्च का अनुमान है। इसमें एक जलाशय, कंकरीट का एक बांध, दो मिट्टी के बांध, इधर-उधर दो दीवारें और बहुत सी नहरें बनाना शामिल है।

अहरिनपुरा की पहाड़ियों का वर्षा का जल जोधपुर से १०० मील दक्षिण १० वर्गमील के जलाशय में एकत्र होना शुरू हो गया है और कंकरीट की नहरों से इधर-उधर पहुँचाया जाने लगा है।

मुख्य बाँध

मुख्य बांध जो चूने का बनाया जा रहा है, पूरा होने वाला है। बांध, मुख्य रूप से बाढ़ रोकने का काम करेगा। इसके बनने पर ६ अरब ५० करोड़ घन फुट पानी जमा हो सकेगा। १२० मील लम्बी नहरों द्वारा वर्षा के अभाव में इस जल से सिंचाई की जायगी। बांध की ऊँचाई ११४ फुट और लम्बाई ३,०३० फुट होगी। इसमें १ करोड़ १४ लाख घन फुट चूना पत्थर काम आयेगा।

मिट्टी के बांध

मुख्य बांध के उत्तर और दक्षिण की ओर दो कच्चे बांध हैं, जिनका आगे का पत्थर और पीछे का भाग मिट्टी का है। इन बांधों के कारण जलाशय का पानी दोनों ओर से भी नहीं बह सकेगा। इसी प्रकार दोनों ओर की दीवारें भी, जो ३॥ से ४ हजार फुट लम्बी होंगी, पानी को निकलने से रोकेंगी।

नहरें

बांध से निकलने वाली मुख्य नहर कंकरीट की बनायी जा रही है। यह १४ मील लम्बी है और इसका ⅚ भाग तैयार हो चुका है। इसमें ४०० क्यूसेक्स पानी जा सकता है। इसके अलावा ४ नहरें हैं। इनके तथा इनसे निकलने वाले रजबहों आदि की कुल लम्बाई १२० मील होगी। इन नहरों के क्षेत्र में १ लाख १० हजार एकड़ जमीन आती है जिसमें से हर साल ४६ हजार एकड़ में सिंचाई हो सकेगी। दूरस्थ सिरोही जिले की सिंचाई के लिए एक और नहर निकालने का प्रश्न विचाराधीन है।

इस योजना में मशीनों सहित सारा का सारा सामान देशी ही लगाया गया है। आज यह स्थानीय लोगों को काम धन्धा दे रहा है और कल राजस्थान के किसान को सिंचाई के लिए जल देगा।

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

१—विज्ञान प्रवेशिका, भाग १—श्रीरामदास गौड़ और प्रो० सालिगराम भार्गव ।=)

२—चुम्बक—प्रो० सालिगराम भार्गव ।।।=)

३ मनोरञ्जन रसायन—प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव २)

४—सूर्य सिद्धान्त—श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव छः भाग मूल्य ८)। इस लेखक को १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है।

५—वैज्ञानिक परिमाण—डा० निहालकरण सेठी १)

६—समीकरण मीमांसा—पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १।।) द्वितीय भाग ।।=)

७—निर्णायक (डिटर्मिनैंट्स) प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री ।।)

८—बीज ज्योमिति या भुजयुग्म रेखागणित—डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी०, १।)

९—वर्षा और वनस्पति—श्री शंकरराव जोशी ; ।=)

१०—सुवर्णकारी—ले० श्री० गङ्गाशंकर पचौली; ।=)

११—व्यङ्ग-चित्रण—ले० एल० ए० डाउस्ट; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी एम० ए०; २)

१२—मिट्टी के बरतन—प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा ; (अप्राप्य)

१३—वायुमंडल—डाक्टर के० बी० माथुर, २)

१४—लकड़ी पर पालिश—डा० गोरखप्रसाद और श्री रामरतन भटनागर, एम० ए०, ५) (अप्राप्य)

१५—कलम पेवंद—ले० श्री शंकरराव जोशी; २)

१६—जिल्दसाजी—श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए० २)

१७—तैरना—डा० गोरखप्रसाद, १)

१८—सरल विज्ञान-सागर प्रथम भाग—सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद मूल्य ६) (अप्राप्य)

१९—वायुमण्डल की सूक्ष्म हवाएं—डा० सन्तप्रसाद टंडन, डी० फिल० ।।)

२०—खाद्य और स्वास्थ्य—डा० ओंकारनाथ परती, मूल्य ।।।)

२१—फोटोग्राफी—लेखक श्री डा० गोरख प्रसाद डी० एस-सी० (एडिन), ४)

२२—फल संरक्षण—डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और श्री वीरेन्द्रनारायण सिंह २।।)

२३—शिशु पालन—लेखक श्री मुरलीधर बौड़ाई। मूल्य ४)

२४—मधुमक्खी पालन—दयाराम जुगड़ान; ३)

२५—घरेलू डाक्टर—डाक्टर जी० घोष, डा० उमाशङ्कर प्रसाद, डा० गोरखप्रसाद, ४)

२६—उपयोगी नुसखे, तरकीबें और हुनर—डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश, ३।।)

२७—फसल के शत्रु—श्री शङ्कर राव जोशी ३।।)

२८—साँपों की दुनिया—श्री रमेश वेदी ४)

२९—पोर्सलेन उद्योग—प्रो० हीरेन्द्र नाथ बोस ।।।)

३०—राष्ट्रीय अनुसंधानशालाएँ—२)

३१—गर्भस्थ शिशु की कहानी—प्रो० नरेन्द्र २।।)

अन्य पुस्तकें

१—साबुन-विज्ञान	६)
२—भारतीय वैज्ञानिक	३)
३ वैक्युमब्रेक	२)
४—यांत्रिक चित्रकारी	२।।)
५—विज्ञान के महारथी (जगपति चतुर्वेदी)	२)
६—पृथ्वी के अन्वेषण की कथाएँ (,,)	१।।)
७—विज्ञान जगत की झाँकी (प्रो० नारायण सिंह परिहार)	२)
८—खोज के पथपर (शुकदेव दुबे)	।।)

Reg. NO 372

विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

परिषद् का उद्देश्य

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय ।

परिषद् का संगठन

२—परिषद् में सभ्य होंगे । निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार सभ्यगण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उप-सभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमन्त्री, दो मन्त्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी ।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्य को ६) वार्षिक चन्दा देना होगा । प्रवेश शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा ।

२३—एक साथ १०० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिए वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है ।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशन में उपस्थित रहने का तथा अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित, परिषद् की सब पुस्तकों, पत्रों, तथा विवरणों इत्यादि को बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा । पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी ।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य वृन्द समझे जावेंगे ।

प्रधान संपादक—डा० हीरालाल निगम
सहायक संपादक—श्री जगपति चतुर्वेदी

नागरी प्रेस दारागंज, प्रयाग

प्रकाशक—विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद

विज्ञान

विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुख-पत्र

सितम्बर १९५४ भाग ७९
कन्या २०११ अंक ६

वार्षिक मूल्य चार रुपए
प्रति अंक छः आने

सरल विज्ञान ग्रंथावली

लेखक—जगपति चतुर्वेदी, सहा० सम्पा०, 'विज्ञान'

सरल विज्ञान ग्रन्थावली हिन्दी में लोकप्रिय वैज्ञानिक साहित्य सरल रूप में प्रस्तुत करने का एक नवीन तथा अभूतपूर्व प्रयास है। सभी पुस्तकें केवल एक लेखक द्वारा लिखी हुई हैं। लगभग १५० या २०० पृष्ठों तथा बहुसंख्यक चित्रों के साथ प्रत्येक का मूल्य २) है।

भौतिक विज्ञान

बिजली की लीला—बिजली के वैज्ञानिक मर्म, तार टेलीफोन, विद्युत्प्रकाश, एक्सरे रेडियो आदि की कहानी।

परमाणु के चमत्कार—परमाणु सम्बन्धी वैज्ञानिक खोजों तथा परमाणु बम, उदजन बम आदि के मर्म की कहानी।

भूगर्भ वि०, पुरा-जीवविज्ञान, पुरा-वनस्पति विज्ञान

विलुप्त जन्तु—प्रस्तरावशेषों के आधार पर पचास करोड़ वर्षों तक पुराने जन्तुओं के वंश लोप होने की कहानी।

भूगर्भ विज्ञान—धरती के निर्माण तथा अंतः और वाह्य अंगों के रूप परिवर्तन की विलक्षण कहानी।

विलुप्त वनस्पति—प्राचीन काल के प्रस्तरावशेषों के आधार पर पचास कोटि वर्षों तक पुराने वनस्पति वंशों की कहानी।

कोयले की कहानी—पत्थर कोयले की उत्पत्ति तथा वैज्ञानिक शोध और उपयोग की कहानी।

ज्वालामुखी—धरती के आंतरिक भाग में ज्वाला उत्पन्न होने के कारण तथा संसार के ज्वालामुखियों की कहानी।

रसायन

तत्वों की खोज में—रासायनिक तत्वों के अनुसंधान तथा उनके अन्वेषक वैज्ञानिकों की मनोरंजक कहानी।

साधारण

वैज्ञानिक आविष्कार—भाग १, २—पुरानी तथा नई वैज्ञानिक खोजों की विशद कहानियाँ।

आविष्कारकों की कहानी—युगान्तरकारी आविष्कारकों तथा वैज्ञानिकों की कथा।

वनस्पति विज्ञान

वनस्पति की कहानी—वनस्पति के जन्म, वृद्धि, क्रियाकलाप, तथा भेद प्रभेदों की कहानी।

चिकित्सा विज्ञान, कीटाणु विज्ञान

जीने के लिए—रोगों और कीटाणुओं का मर्म ज्ञात करने वाले वैज्ञानिकों की मार्मिक कहानी।

कीटाणुओं की कहानी—रोग उत्पन्न करने वाले तथा अन्य सूक्ष्मदर्शकीय कीटाणुओं और परम कीटाणुओं की कहानी।

पेनिसिलिन की कहानी—रसायन चिकित्सा तथा पेनिसिलिन के आविष्कार, की कहानी।

शल्य विज्ञान की कहानी—शरीर में चीरफाड़ करने के प्राचीन तथा नवीन ज्ञान की कहानी।

जीव-जन्तु विज्ञान

समुद्री जीव-जन्तु—समुद्र के अन्दर रहने वाले अद्भुत रंग रूपों के जंतुओं का वर्णन।

अद्भुत जन्तु—अद्भुत रङ्ग रूप के जन्तुओं की कहानी।

विलक्षण जन्तु—विचित्र आकार प्रकार के जन्तुओं का वर्णन।

पक्षी ग्रन्थावली—पक्षियों के रङ्ग रूप, जीवन क्रम, निवास सन्तानोत्पादन, स्वभाव भेद तथा पहचान का वर्णन।

१—शिकारी पक्षी	२)
२—जलचर पक्षी	२)
३—वन वाटिका के पक्षी	२)
४—वन उपवन के पक्षी	२)
५—उथले जल के पक्षी	२)

विज्ञान परिषद्, प्रयाग

विज्ञान

विज्ञान परिषद्, प्रयाग का मुख-पत्र

*विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ० ।३।५।*

भाग ७९ | कन्या २०११; सितम्बर १९५४ | संख्या ६

प्राचीन संसार का शल्य विज्ञान

जगपति चतुर्वेदी

शल्य विज्ञान अर्थात् चीर फाड़ द्वारा शरीर का अवांछित या दूषित अंश पृथक करने या किसी अन्य उद्देश्य से भी अस्त्र-शस्त्र द्वारा शरीर में कृत्रिम रूप से परिवर्तन करने की पद्धति संसार में प्राचीन-काल में भी किसी न किसी रूप में रही होगी। बहुत अधिक प्राचीन-काल के स्पष्ट प्रमाण या शल्य विज्ञान के यथार्थ रूप को जान सकना कदाचित कठिन ही हो। परन्तु कुछ सुलभ वर्णनों अथवा अप्रत्यक्ष आधारों पर विभिन्न देशों में विभिन्न कालों में हमें शल्य विज्ञान का जो रूप प्राप्त हो सकता है उसकी कुछ झाँकी दिलाने का हम यहाँ प्रयत्न करेंगे। अत्यन्त ही प्राचीन काल के विज्ञान का हमें परिचय प्राप्त करने का अवसर भले ही प्राप्त न हो सकता हो, परन्तु शल्य विज्ञान के संबन्ध में एक प्रकार का प्रमाण तो ऐसा प्राप्त होता है कि हम उसका काल सभ्यता की उस आदिम अवस्था को कह सकते हैं जिसे धातुओं का ज्ञान प्राप्त हो सकने के भी पूर्व का नव प्रस्तर युग नाम दिया जाता है। यह युग वह था जब हमें किसी भी जाति की संज्ञा से सभ्यता का विकास होने का उल्लेख करने का अवसर प्राप्त नहीं हो सकता। जातियाँ तो उस समय नाम धारण कर सकी होंगी जब उन्हें आरंभिक रूप के भी धातु-उपकरणों का ज्ञान होकर कृषि, व्यवसाय आदि का कुछ ऐसा रूप बनाने का अवसर मिल सका होगा कि उनके अवशेषों या उल्लेखों से हम उस काल या देश की उन्नति का कुछ परिचय प्राप्त कर सकें। अतएव नव-प्रस्तर युग की शल्यक्रिया का उल्लेख हमारे लिए अत्यंत ही कौतूहलवर्द्धक हो सकता है। यह कितने आश्चर्य की बात है कि पैने तथा सूक्ष्म शस्त्रों को कौन कहे, साधारण, कुन्द धातु उपकरणों के बना सकने का भी ज्ञान प्राप्त न हो सकने पर भी मानव ने किसी विधि से शल्यक्रिया का प्रचार ही कर संतोष न किया, बल्कि अनजाने रूप से उसका प्रमाण भी पर्वत-गुहाओं में छोड़ा।

नवप्रस्तर युग की इस प्राचीन शल्य क्रिया को सिर में फस्द लगाना या कपाल-भेदन क्रिया कह सकते हैं। ज्ञान का प्रकाश अत्यन्त धूमिल रूप में भी उदित न हो सकने से उस प्राचीन समय के मानव को प्रकृति की घटनाओं या परिवर्तनों को तो कुछ अदृश्य शक्तियाँ, देवी देवताओं, प्रेतों आदि का ही कृत्य विश्वास करने की कल्पना की जा सकती है। अतएव शरीर के रुग्ण होने पर भी वह कुछ ऐसी ही कल्पना कर अनिष्टकारी प्रेतात्मा का परिणाम समझना होगा। अर्थात् उसकी दृष्टि में शरीर पर किसी रोग का प्रकोप होना रुग्णता का कारण नहीं था। बल्कि कोई दुष्ट प्रेतात्मा रोगी के भेजे में प्रविष्ट हो गई होगी। अतएव इस अंध विश्वास के परिणाम स्वरूप रोग से मुक्ति पाने का एक मात्र मार्ग कपाल की अस्थि में द्वार बनाकर उस दुष्ट प्रेतात्मा को भाग जाने का अवसर देना था। अतएव उस युग के मानवों में से किसी भूखंड के गुफा निवासियों में से अधिक कल्पनाप्रवर अथवा बुद्धिमान होने का दावा करने वाले कुछ व्यक्तियों ने सिर फोड़ने की परिपाटी या एक धार्मिक कृत्य का सूत्रपात किया होगा। आज सिर में कुछ गर्मी अनुभव होने पर कपाल के ऊपर थोड़ा स्थान बाल शून्य करा देने के लिए हज्जाम की सहायता लेने वाले मनचले व्यक्ति दिखाई पड़ते हैं, परन्तु उन दिनों रोग रूपी दुष्ट प्रेतात्मा से छुट्टी पाने के लिए रोगाक्रान्त व्यक्ति अपने समाज के अधिक चतुर व्यक्ति या चिकित्सा नाम से ज्ञात किसी समाज नेता के पास पहुँचते जिसे हम आज की भाषा में शल्यकर्मी कह सकते हैं। वह सिर पर चकमक पत्थर के नोकीले धार के किसी शस्त्र से प्रहार कर कुछ भाग के चमड़े और माँस खंड को नष्ट कर उनकी तहों के नीचे हड्डी के भाग पर चोट करता और उसी नोकीले चकमक पत्थर के शस्त्र से चोट कर सिर की हड्डी का एक गोल भाग काट कर बाहर करता। उस बेचारे रोगी पर इस शल्य क्रिया के समय क्या बीतती रहती। सिर की हड्डी से चर्म और मांस पिंड का भाग हटाकर अस्थि खंड की चकत्ती भी काट चुकने तक वह जीवित भी रहता या नहीं, इसकी बहुत अधिक चिन्ता उस आदिम काल के शल्यकर्मी को नहीं रहती। वह तो रोगी की रक्षा की अपेक्षा प्रेतात्मा को भगा कर समाज की रक्षा करने का अधिक उत्सुक रहता।

फलतः उस रोगी के जीवित या मृत रहने की बात छोड़ कर भी उसके सिर के भाग की काट निकाली हड्डी की चकत्ती दुष्ट प्रेतात्मा भगाने का मार्ग खोलने के कारण अत्यन्त शुभ समझी जाती और यह विश्वास किया जाता कि उस चकत्ती को जो व्यक्ति यन्त्र या ताबीज रूप में धारण करे उसे पुनः वह दुष्ट प्रेतात्मा रूपी रोग त्रस्त नहीं कर सकता। अतएव हम उस सुदूर काल की इन घटनाओं तथा अंधविश्वासों के परिणाम स्वरूप नव प्रस्तर युग के चकमक हथियारों के साथ मानव-कपाल ऐसे छिद्रों युक्त पुरानी गुफाओं में प्राप्त करने के साथ ही साथ उन खोपड़ियों से काट निकाली चकत्ती को भी बड़े आदर के साथ ताबीज रूप में प्रयुक्त करने के लिए उन्हीं अवशेषों के साथ पड़ा हुआ पाते हैं। परन्तु ये किसी दुर्घटना के ही परिणाम नहीं थे। बल्कि चिकित्सा के परिणाम थे। उस शल्य कार्य से रोगी सदा ही मृत ही नहीं हो जाता था बल्कि जीवित भी रह जाता था। इसका प्रमाण प्रस्तुत करने के लिए हमें उन गुफाओं में ऐसी खोपड़ियाँ भी मिलती हैं जिनमें एक से अधिक छिद्र बनाए मिलते हैं या शल्य कर्म के पश्चात् रोगी के जीवन काल में ही उनमें छिद्र कुछ भर आया भी दिखाई पड़ता हैं। इससे ज्ञात होता है कि रोगी पर एक बार से अधिक कपाल भेदन का शल्य कर्म हुआ होगा अथवा पहले शल्य कर्म के पश्चात वह अवश्य जीवित रह सका होगा जिससे सिर की हड्डी का छिद्र कुछ भर आ सका या पुनः उसके रुग्ण होने पर दुबारा कपाल भेदन क्रिया का अवसर प्राप्त हो सका। उस युग के चित्रकारों ने अपनी गुफाओं में ऐसे शल्य कर्मों को दीवालों पर खचित भी किया है जिससे आज हमें उनकी इस शल्य क्रिया या धार्मिक कृत्य का ज्ञान हो

पाता है। ये घटनाएँ आज से कितने ही सहस्रों वर्ष पूर्व घटित हुई होंगी।

नवप्रस्तर युग का मनुष्य केवल कपाल-भेदन क्रिया का ही अभ्यास नहीं रखता था। प्रस्तुत टूटी हुई हड्डियों के जोड़ों का भी ज्ञान था। इसके प्रमाण के लिए हमें नवप्रस्तर युग के अवशेष में मनुष्य की ऐसी टूटी हड्डियाँ मिलती हैं जिन्हें ५५ प्रतिशत तक जुट जाने में सफल पाया जाता है। टूटी हुई हड्डियों को ३० प्रतिशत तक जुटा सकने में ही आज के सौ वर्षों पूर्व तक के आधुनिक शल्य विज्ञान को सफलता मिल सकी थी, अतएव अत्यंत प्राचीनकाल में ५५ प्रतिशत तक जोड़ मिल जाने की घटना नवप्रस्तर युग के शल्य चिकित्सक के लिए अत्यंत प्रशंसा की बात कही जा सकती है किन्तु आज यह बता सकना संभव नहीं है कि उस प्राचीनकाल का शल्य कर्मी कौन-सी विधियाँ प्रयुक्त करता था जिससे टूटी हड्डियाँ जोड़ी जाती थीं। हमें अप्रत्यक्ष रूप से संकेत देने के लिए आज की कुछ असभ्य जातियाँ हड्डियों के जोड़ने की कुछ पुरानी विधियाँ प्रदर्शित करती जान पड़ती हैं। अमेरिका के मूलवासी, रेड इंडियन टूटी हड्डी के ऊपर छाल की खपाचिया बाँधते हैं। छाल से घाव बाँध दिया जाता है जो हड्डी जोड़ने में सफल होता पाया जा सकता है। आस्ट्रेलिया के मूलवासी एक दूसरी विधि का उपयोग करते हैं। वे रोगी की टूटी हड्डी के अंग पर गीली मिट्टी का लेपकर देते हैं। जब चिकनी गीली मिट्टी धूप में सूख जाती है तो वह घाव के ऊपर खपाची की तरह अवलंब डालकर हड्डी जुटने में सहायता करती है। आज का शल्य चिकित्सक भी कुछ ऐसी ही युक्तियाँ करता है, परन्तु गीली मिट्टी की जगह वह ऐसे वैज्ञानिक लेप को लगाता है जो प्लास्टर आफ पेरिस नाम से ज्ञात है। यह पानी डाले जाने पर आर्द्र होकर कुछ समय बाद फिर सूखकर कड़ी खोल रूप में बन जाता है और हड्डियाँ को स्थानान्तरित नहीं होने देता। हड्डी के टूटे स्थान पर धातु की खपाची का बंधन भी भीतर रहता है अतएव भीतरी तथा बाहरी अवलंबों से हड्डी कुछ दिनों में सीधी जुट जाती है। नवप्रस्तर युग के शल्य कर्मी की विधि आज के रेड इंडियन या मूल आस्ट्रेलिया वासियों की साधारण पद्धतियों के अनुरूप ही कोई पद्धति ऐसी रही तभी तो टूटी हड्डी जोड़कर रोगी को स्वास्थ्य लाभ करा सकती होगी।

नवप्रस्तर युग के शल्य चिकित्सक द्वारा कपाल भेदन का प्रमाण या चित्राँकन रूप में वर्णन हमें प्राप्त होता है, परन्तु हड्डी को छोड़कर केवल माँस-पेशियों में ही शल्य-कर्म की कुशलता उसे प्राप्त थी या नहीं, यह बता सकना बड़ा कठिन है। माँस पिंड का कोई भी अवशेष नहीं रह सकता अतएव हमें उसके शल्य कर्म का भी प्रमाण नहीं मिल सकता, परन्तु आधुनिक युग की अर्द्धसभ्य कही जाने वाली कुछ प्राचीन जातियाँ अपने कतिपय चिकित्सा विधानों से हमें पूर्वकाल की विधियों की कुछ झाँकी दे सकती हैं। सिर के भाग में रोग रूप की दुष्ट आत्मा को खोपड़ी तोड़ कर दूर भगाने की भाँति रक्त माँस के भाग में भी रोग के कारण को कोई अनिष्टकर प्रेतात्मा कहा जा सकता था अतएव उसे पृथक करने के लिए माँस पिंड काट फेंकने या रक्त बहा देने की परिपाटी हो सकती थी। दक्षिण अमेरिका के मूल निवासी रेड इंडियनों में हम विचित्र पद्धतियाँ प्रचलित पाते हैं। किसी घाव का मुँह बन्द करना होता है तो वे चींटे पकड़ लाकर उस पर लगा देते हैं तथा उसका शरीर मसल कर क्षुब्ध करते हैं। क्षोभ के कारण चींटा बड़े जोर से अपना मुँह गड़ा कर घाव के दोनों छोरों को सटा लेता है। फिर उसका धड़ अलग कर देने से केवल मुँह एक ऐसी चिमटी का काम दे जाता है जो घाव के मुँह को जुटाए रख सके। हम कह नहीं सकते कि नव प्रस्तर युग का मनुष्य भी इसी तरह की कोई युक्ति करता था या नहीं।

माँस पिंड के घावों की बात छोड़कर रक्त की चर्चा करने पर यह ज्ञात होता है कि किसी न किसी

विधि से शरीर की रक्तवाहिनियाँ से रक्त निकालने का उपक्रम कर यह सन्तोष किया जाता था कि दूषित अंश या रोग रूप का प्रेत बाहर कर दिया दिया गया है। रक्त बहाने की बिधि तो यूनानी चिकित्सा में हिपोक्रेटीज द्वारा भी वर्णित पायी जाती है। सुश्रुत ने भी भारतीय चिकित्सा में इसका वर्णन किया है। किन्तु रक्त बहाने के कारणों पर भिन्न-भिन्न कालों तथा देशों में भिन्न-भिन्न विचार रहे होंगे। अत्यन्त प्राचीनकाल का पुरुष जहाँ दुष्ट प्रेतात्मा भगा देने की बात सोचता होगा वहाँ कालान्तर में अन्य चिकित्सकों ने दूषित अंश बाहर निकाल फेंकने की बात प्रदर्शित की होगी।

रक्त निकालने के अनेक साधन हो सकते थे। उनमें जोंक और सिगी (शृङ्ग यंत्र) का वर्णन सुश्रुत संहिता में भी पाया जाता है। दक्षिण अमेरिका के रेड इंडियन लोगों में शल्य चिकित्सक कुशल धनुर्धर होता है। वह निकट की दूरी से रोगी की बाँह में रक्तवाहिनी पर तीर मारता है। यदि पहला निशाना ही लग कर रक्तवाहिनी से रक्त बहा देता है तो बड़ा शुभ माना जाता है और रोगी के शीघ्र स्वस्थ हो जाने की आशा की जाती है। यदि पहले निशाने में रक्त नहीं बहने लगता तो शल्य चिकित्सक फिर दूसरे तीसरे निशाने का प्रयत्न करता है, परन्तु रोग मुक्ति की आशा उन प्रयत्नों की संख्या वृद्धि के ही अनुरूप कम बताई जाती है।

दक्षिण अमेरिका में ही आमेजन में कुछ मूल वासियों में रोग ग्रस्त अंगभंग करने की परिपाटी है। किन्तु पहले रक्त बहा कर देख लिया जाता है। जब रक्त बहाने पर भी रोग से छुट्टी मिलती नहीं दिखाई पड़ती तो प्रभावित अंग काट फेंके जाने का विधान होता है। प्राचीन इंका जाति में चकमक पत्थर का नोकीला खंड छाल द्वारा एक छड़ी में बाँध देने की परिपाटी थी। यह शस्त्र कुल्हाड़ी की तरह प्रयुक्त कर इंका शल्य चिकित्सक अंग काट फेंकता। मान लीजिए कि सिर दर्द हो रहा है तो वह पथरीले हथियार से ही वह भौंहों के मध्य चोट कर रक्त बहा देता। इस तरह सिर दर्द के मिटाने का विश्वास किया जाता, परन्तु ऐसे यातनामय चिकित्सा विधान का अनुसरण करने के पूर्व ही रोगी कदाचित वैद्य के द्वार तक आते ही आते अपने रोग को अच्छा हुआ समझ लेता।

रक्त बहाने की जोंक विधि को बहुत पुराना कहा जा सकता है। इसका प्रचार तो आज भी अनेक देशों के ग्रामीण क्षेत्रों में पाया जा सकता है। हमारे देश में भी इसकी सहायता से दूषित रक्त बहाने की चिकित्सा से रोग मुक्त होने का विश्वास करने वाले रोगी और चिकित्सक अभी तक पाए जा सकते हैं। आस्ट्रेलिया और अफ्रिका की अर्द्ध सभ्य जातियों तथा बलगेरिया, युगोस्लाविया आदि के दूरस्थ ग्रामों में ऐसी पद्धति अब भी प्रचलित पाई जा सकती है। कभी किसी को जोंक ने पकड़ पर रस चूस लिया होगा। अतएव रक्त विकार की कल्पना कर उसकी चिकित्सा रूप में जोंक से रक्त चुसवाने का प्रचार हो चला होगा।

रोगग्रस्त अंग को उष्ण पाषाण खंड या शलाका से दग्ध करना भी एक रोगहारी विधि समझी जाती रही है। अग्निशलाका का विवरण सुश्रुत ने भी दिया है। नव प्रस्तर युग का मानव कदाचित दहकते पत्थर खंडों से ही दागकर रोगी अंग को रोग मुक्त करता होगा। रेडइंडियन आज भी पेशियों के दर्द, कमर दर्द आदि में उष्ण पत्थर से दागने का प्रयोग करते हैं। इस तरह की दग्ध-क्रिया से फफोले पड़ जाते हैं और दर्द मिट जाता है। वास्तव में गर्मी पहुँचाने से लाभ प्रतीत होता है। परन्तु दग्ध-क्रिया की पराकाष्ठा तिब्बत में इस प्रकार पहुँची है कि उसे सुनकर ही रोंगटे खड़े हो सकते हैं। तिब्बत का शल्य चिकित्सक पत्थर के ढोंके को गर्म कर दागने के स्थान पर सलाइयाँ तपा कर दागने का कार्य करते हैं पेशियों का दर्द मिटाने के लिए एक कड़ाही ली जाती है। जिसमें अलकतरा या तेल उबलता रहता है। उसमें से दहकते द्रव पदार्थ

[शेष पृष्ठ १४ पर]

जीव-उत्पति और विकास

पुष्कर सिंह बी० एस-सी० (आनर्स), एम० एस-सी०

वेद और वेद-सम्मत शास्त्र-समूह एकमत होकर बताते हैं कि उद्भिज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज, ये चारों प्रकार के जीव-योनियों के सृष्टि का प्रारंभ महर्षि कश्यप से ही हुआ है। महर्षि कश्यप लोकपिता हैं। वृक्षादि की उद्भिज सृष्टि है; रोग को उत्पन्न करनेवाली तथा निरोगता उत्पन्न करने वाली—जैसे जूँ, खटमल इत्यादि को स्वेदज् सृष्टि कहते हैं; अण्डे में उत्पन्न होने वाली अण्डज सृष्टि, अण्डज ये हैं :—

अण्डजः पक्षिणः सर्पा नक्रा मत्स्याश्च कच्छपाः।
यानि चैवंप्रकाराणि स्थल जान्यौद कानि च॥

अण्डज सृष्टि के जन्तुओं में पक्षी, सांप, मगर मछलियां, कछुए आदि जो भी स्थल, जल और आकाश में विचरण करने वाले प्राणी हैं, उनसे चतुर्थांश सृष्टि ओत-प्रोत—व्याप्त है—जैसे पक्षी, मछली, सर्प आदि की सृष्टि और चौथी सृष्टि का नाम जरायुज सृष्टि है—जैसे मृग, गाय, घोड़ा, हाथी और मनुष्य आदि। जीव उद्भिज योनि से स्वेदज योनि में, स्वेदज योनि से अण्डज योनि में, अण्डज योनि से जरायुज योनि में क्रमशः पहुँचता है। मनुष्य योनि अन्य उच्च योनियों का माध्यम है। मनुष्य योनि से जीव उन्नति करता हुआ नाना योनियों में जा सकता है। मनुष्य योनि जागृत की योनि है; पशु-पक्षी कृमि कीटादि की योनि स्वप्न योनि है; वृक्ष वनस्पतियों की योनि सुषुप्ति योनि है और पत्थर आदि की योनि तुर्यायोनी है। श्री मद्भागवत में जीव-विकास का वर्णन इस तरह है—प्रचेतस के पुत्र दक्ष की साठ कन्याएं थीं। दक्ष ने इन कन्याओं में से दस धर्म को; तेरह कश्यप को; सत्ताइस चन्द्रमा को; दो-दो भूत, अंगिरा तथा कृशाश्व को और शेष चार तार्क्ष्य नामक कश्यप ही को दिया। तार्क्ष्य नामवाले कश्यप की चार स्त्रियाँ विनता, कद्रु, पतंगी और यामिनी नामक थीं; जिनमें पतंगी ने पक्षियों को, यामिनी ने शलभों को, सुपर्ण ने गरुड़ और सूर्य के सारथि अरुण को तथा कद्रू ने अनेक नागों को उत्पन्न किया।

तार्क्ष्यस्य विनता कद्रूः पतङ्गी यामिनी इति।
पतङ्ग्यसूत पतगान यामिनी शलभानथ॥
सुपर्णाऽसूत गरुडं साक्षाद् यज्ञेशवाहनम्।
सूर्य सूतमनूरूंच कद्रूर्नागाननेकशः॥

अब महर्षि जो लोकपिता हैं, उनकी स्त्रियों के नाम सुनो—

अथ कश्यपपत्नीनां यत्प्रसूतमिदं जगत।
अदितिर्दितिर्दनुः काष्ठा अरिष्टा सुरसा इला॥
मुनि क्रोधवशाः ताम्रा सुरभिः सरमा तिमिः।
तिमेर्यादोगणा आसन् श्वापदाः सुरमा सुताः॥
सुरभेर्म हिषा हिषा गावो ये चान्ये द्विशफा नृप।
ताम्रायाः श्येन गृध्राद्या मुनेरासरसां गणाः॥
दन्दशूकादयः सर्पा राजन् क्रोधवशात्मजाः।
इलाया भूरुहाः सर्वे यातुधानाश्च सौरसाः॥
अरिष्टायाश्च गन्धर्वाः काष्टाया द्विशफेतराः।
सुता दनोरेकषष्टिस्तेषां प्राधानिकान् शृणु॥
द्विमूर्द्धा शम्बरोऽरिष्टो ह्यग्रीवो विभावसुः।

उनके नाम अदिति, दिति, दनु, काष्ठा, अरिष्टा, सुरसा, इला, मुनि, क्रोधवशा, ताम्रा, सुरभि, सरमा और तिमि हैं। इनमें तिमि से समस्त जल जन्तु उत्पन्न हुए हैं, सरमा के पुत्र व्याघ्र इत्यादि हिंसा करनेवाले जीव हैं। सुरभि के पुत्र गाय, भैंस तथा और जितने दो खुरवाले जीव हैं, वे सब हैं। हे राजन्! ताम्रा के पुत्र बाज और गृध्र इत्यादि हैं,

मुनि की सन्तान अप्सराओं के समूह हैं। क्रोधवशा के पुत्र डसनेवाले सर्प इत्यादि हैं। इला के पुत्र सब वृक्ष हैं, सुरसा के पुत्र यातुधान नामक सब राक्षस हैं। अरिष्टा के पुत्र गंधर्व हैं, काष्ठा के पुत्र एक खुरवाले घोड़ा इत्यादि हैं। दनु के इकसठ पुत्र हुए। अतः कश्यप से ही सारे विश्व के प्राणियों का विकास हुआ। कश्यप का प्रादुर्भाव जल से हुआ। ये वर्तमान वैज्ञानिक सिद्धान्त के अनुरूप अमीबा (कामरूपी) हैं। श्री भागवत के छठवें स्कन्ध के नवें अध्याय में लिखा है—"विश्वरूप पुरोहित के तीन सिर थे—(१) सोमपीय (सोम पीने वाला) (२) सुरापीय (सुरा पीने वाला) और (३) अन्नाद (अन्न खाने वाला)। इन्द्र ने विश्वरूप के तीनों सिर काट डाले। उस समय उसका सोमरस पीने वाला जो मुख था उसका चातक पक्षी, सुरापीय नामक मुख का कलविंक पक्षी और अन्नाद नामक मुख का तीतर पक्षी हुआ।

वर्तमान विज्ञान के अनुसार सम्पूर्ण सृष्टि जलमग्न थी। धीरे-धीरे कार्बनिक क्रिया के कारण उसमें जीवन की झांकी मिली। जीवन की वास्तविक इकाइयां आमिनों अम्ल तथा अम्ल प्रोटीन्स हैं। इसके प्रमाण में हम आचार्य वर्नाल के एक भाषण (Guthrie Lecture) फरवरी १९५१ के "विज्ञान" अंक से देते हैं :—

"पृथ्वी में जीवन आरंभ होने से पूर्व की अवस्था की यदि कल्पना की जाय तो मानाना होगा कि उस समय के वातावरण में ओषजन का अभाव था क्योंकि ओषजन स्वयं उद्भिज जीवन की देन है। पृथ्वी तल पर पिघला हुआ सैकित, जल और कार्बोनेट्स तथा वातावरण में उद्जन, अमोनियां तथा वाष्प थे। कालान्तर में जैसे ही पृथ्वी ठंडी होती गई, वातावरण का ओषदीकरण होता गया तो एक अवस्था मुख्यतया पृथ्वी में जल और वातावरण में नत्रजन तथा कार्बन-द्वि-ओषिद विद्यमान रहे, फलतः समुद्र में अमोनिया, कार्बन-द्वि-ओषिद और उद्जन-सल्फाइड बने। ऐसी स्थिति में सूर्य से आने वाली पराकासनी रश्मियों की शक्ति से संभवतः यह संभव हो सका कि समुद्र की इन चीजों के सघंटभवन तथा लिप्तीकरण द्वारा अमिनों अम्ल का निर्माण हो। इस प्रकार जीवित पदार्थ के निर्माण का प्रथम चरण सम्पन्न होना मानना चाहिये क्योंकि यही अम्ल प्रोटीन्स "जीवन की वास्तविक इकाइयां हैं।" यह एक आश्चर्यजनक बात है कि किस तरह निर्जीव पदार्थों से "जीवन को स्वर्ण आभा" मिली। यह एक असाध्य समस्या है। वस्तुतः यह वैज्ञानिकों की हार की निशानी है। मनुष्य अपने को प्रकृति का सम्राट कहता है; परन्तु कहा जाता है उसकी ज्योतिर्चेतना उसकी अद्भुत जिज्ञासा, उसका परावैभव, जब काल की एक थपेड़ उसकी जीवन लीला का अंत कर देता है। उसके जीवन के रंग मंच के पर्दे को सदा के लिये बंद कर देता है। और अंत में जब पाठक अपने जिज्ञासा के अनुभूत यह प्रश्न करता है "क्या अभी भी प्रकृति की गोद में जीवनोद्गार की झलक मिलती है?" उत्तर में कहता है "कौन बता सकता है?" (Who can tell ?) हाइडेन हेन ने जीवन को एक ईश्वरप्रदत्त वस्तु मानी क्योंकि निर्जीव पदार्थ से सजीव की रचना का उनके पास कोई प्रमाण ही न था। लेखक "जीवन की प्रथम झलक" के लिये हाइडेन हेन के समर्थक हैं। मेरे ख्याल में जीव ईश्वर की रचना में उसी तरह व्याप्त है जिस तरह से प्रकृति में "इथर"। चेतना के प्रभाव के बिना जड़ पदार्थों में चेतना आ ही नहीं सकती, विज्ञान का यह नियम २+२=४ की भाँति सत्य है। इस तरह पृथ्वी में "जीवन का संचार" होने के बाद उसमें "उद्भिज या वानस्पतिक समुदाय और "पशु जगत" या जड़ और चेतन में विभाजन हुआ। इसके बाद इनमें उत्तरोत्तर विकास होता गया जिसे हम चित्र के द्वारा यहाँ उद्धृत करते हैं :—

पृष्ठवंशी
मनुष्य
हाथी
पक्षी
सर्प
ओक
देवदार
गुलाब
पशु जगत
विषम
उद्भिज समुदाय
अपृष्ठवंशी
शुक्ता
फलक-
क्लोमा
फर्न या
पर्णाङ्ग
अश्ववार
पशु जगत
सरल
वनस्पति जगत
स्पंज
समुद्री ल्युट्स
कामरूपी
आध्यकाः
पशु जगत
आदिम
उद्भिज समुदाय
?
प्रथम
जीवन
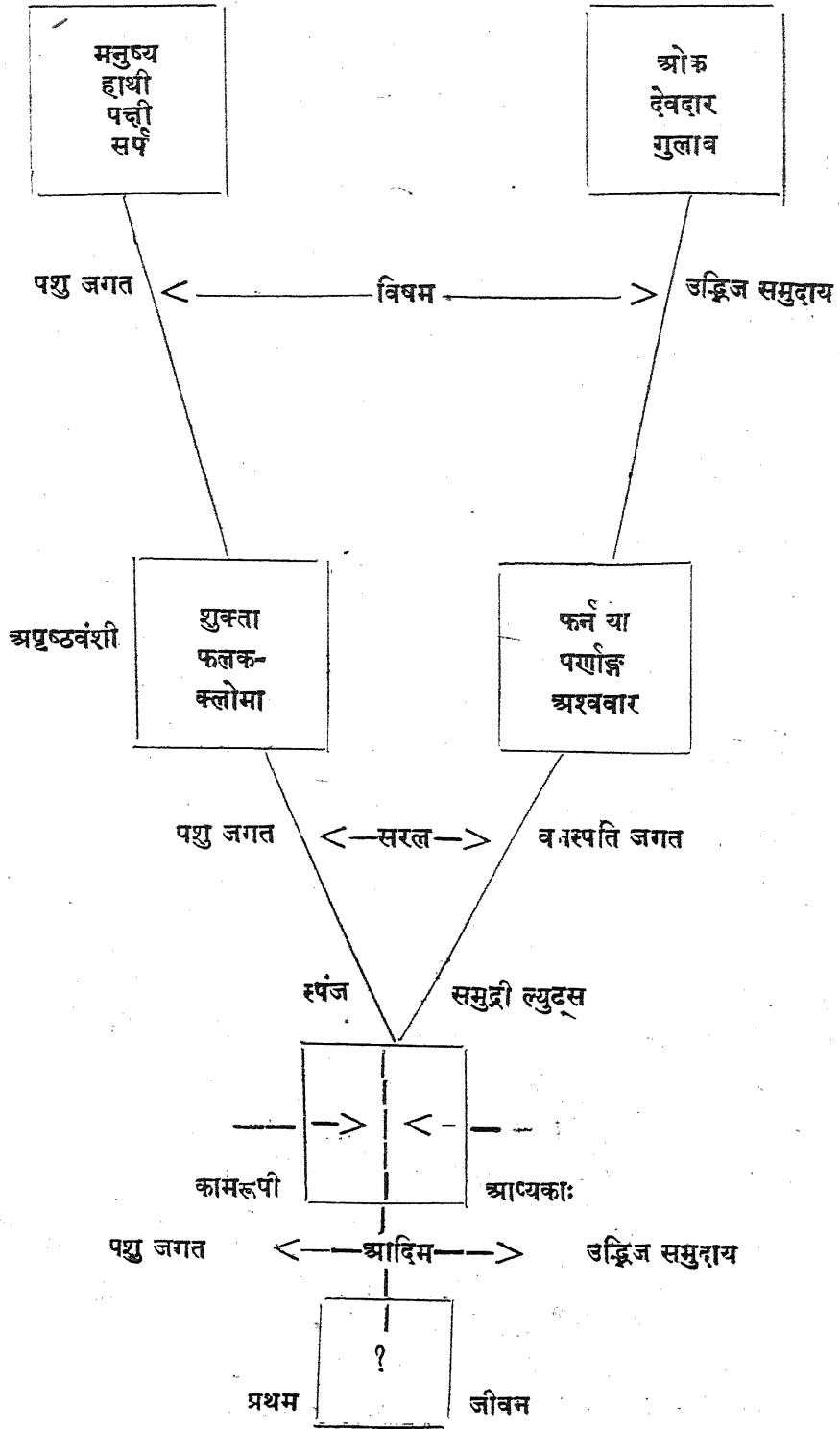
जीव विकास-क्रम को ध्यान में रखते हुए भगवान के अवतार महत्वपूर्ण हैं। ग्रन्थकारों के अनुसार सत्त्वमूर्ति भगवान के पाँच अवतार पौराणिक हैं:—(१) मत्स्य अवतार (२) कच्छप अवतार (३) वाराह अवतार (४) नृसिंह अवतार और (५) वामन अवतार।

वर्तमान विज्ञान के अनुसार भी जीवों का क्रमिक-विकास पौराणिक अवतार के अनुरूप हैं। आदिकाल में चेतना पहिले जलमय क्षेत्रों में ही प्रारम्भ हुई। किन्तु आदिकाल की चेतन वस्तुएँ इतनी सुकोमल थीं कि उनका कोई अवशेष नहीं पाया जाता है। इसके कुछ समय बाद अधिक नियमित रूप से पौधों और प्राणियों या उद्भिज समुदाय और पशु जगत या जड़ और चेतन का विकास हुआ।

वनस्पति जगत, आदिकाल में कोमल तथा कोषभित्तियों के अभाव के कारण विकास-क्रम में धीरे-धीरे विकसित हुआ। विकास-क्रम के प्रथम-चरण सूत्रिजों (थैलोफाइटा) में रम्भ का अभाव था। हरितिजों में रम्भ अविकसित रूप में तथा पर्णिजों में रम्भ प्रणाली निश्चित रूप से दृढ़ हो चुकी थी। ये सब वर्गीकरण में अपत्रीवर्ग में आते हैं। इसके पश्चात बीजिजों में पर्णिजों की खण्डनालों के स्थान पर कई वाहक नालों का विकास हुआ।

केम्ब्रियन युग में अपृष्ठवंशी जीवों का संचार हुआ। कालान्तर में उनसे पृष्ठवंशी जीवों का विकास हुआ। पृष्ठवंशी जीवों में, पौराणिक अवतार के समान, निम्न पाँच क्रमिक विकास इस तरह से है—(१) मत्स्य (२) उभयगामी (३) सरीसृप (५) पक्षिण (५) स्तनिनः। ये पाँचों के एम्ब्रीयो समान ही होते हैं।

पुराकल्प के प्रारम्भिक तीन काल—केम्ब्रियन, अवर-प्रवालादि और प्रवालादि—में समुद्र में बिना रीढ़ के जन्तु पनपते रहे। किन्तु अवर-प्रवालादि युग में पहले-पहल मत्स्य ने पृष्ठवंशी जीवों का श्रीगणेश किया। यह भगवान के मत्स्य अवतार के समान है। प्रवालादि युग से ये समुद्री जीव उत्तरोत्तर विकसित होते गये। इस समय तक ये अपने चिकने चर्म-छिद्रों से श्वासोच्छ्वसन किया करते थे। मत्स्य-युग में कुछ जीवों में फेफड़े का प्रादुर्भाव हुआ, जिससे वे उन्मुक्त पवन का सेवन करने में समर्थ हो सके। फेफड़े के आविर्भाव से वे जीव जल और थल दोनों में निवास कर सके। इसे उभय-चरा जीवियों का युग कहा जा सकता है। इन उभयचर जीवों का प्रवर्तक मेंढक हुआ। पुराण में इसे कच्छप अवतार कहा है। इन प्राणियों का सबसे अधिक विकास अंगार-युग, गिरि-युग और रक्ताश्म युग में हुआ। अंगार युग के पश्चात वे सम्पूर्ण रूप से जल और थल में रह सके। इस वातावरण के लिये उनकी शारीरिक रचना में दो मुख्य परिवर्तन आवश्यक था—(१) अण्डों के आकार में वृद्धि तथा तादाद में कमी और (२) अण्डों के बाह्य भाग में एक पतला कवच, जिससे वे धूप में सूखने से बच सके। इन्हीं परिवर्तनों ने सरीसृपों को उदय होने का अवसर प्रदान किया। यह उस समय सम्भव हो सका जब अण्डों में योक थैली का अभ्युदय हुआ। इसके ज्वलन्त उदाहरण सरीसृप और पक्षीगण हैं। योक थैली से गर्भ पिन्ड का पोषण हुआ और शेष तत्व एलेन्टायन्स नामक थैली में इकट्ठा होने लगे। योक थैली, रक्त-नाल और श्वासोच्छ्वसन की नलियों से सम्बान्धित रहता है। इस प्रकार के सरीसृपीय अण्डे, मत्स्य के अण्डे या उभयचरा के अण्डे से निम्न होते हैं, जिसमें शिशु के उत्थान के पहले लम्बी अवधि तक सेने (Incubation) की जरूरत पड़ती है। सरीसृप में स्वेद् सरीसृप थलचर हो सके और उभयगामी प्राणियों को सम्पूर्ण रूप से स्थानान्तर कर सके। मध्यकल्प सरीसृपों का युग कहलाता है। महासरट युग में सरीसृप दो भिन्न वर्गों में विकसित हुए—(१) पहली श्रेणी में कुछ सरीसृपों में पंख निकल गये तथा सरीसृपीय दाँत का अभाव हो सका। इसका प्रमाण सोलेनहाफन स्तर में पाया गया

Archeopteryx आद्य-पक्षी है। (२) दूसरी श्रेणी में कुछ सरीसृपों का स्तनपायी प्राणियों में विकास हुआ। इनके चर्म से चिकनई निकल गई, परन्तु स्वेद् ग्रन्थि और अण्डे का बाह्य-कवच वैसा ही रहा। स्तनपायी जीवियों को विकास क्रम में तीन भिन्न वर्गों में रख सकते हैं—

(१) मोनोट्रीमेस—इनमें विकास-क्रम के पुराने गुण विद्यमान हैं। इनमें स्तन-ग्रन्थि और रोयें पुरातन हैं। इस वर्ग के दो जाति के प्राणि आस्ट्रेलिया में पाये जाते हैं। बत्तक-चोंचीय ओरनीथोरीन्कस और काँटेदार, चींटी खाने वाला इकीड्ना। ये दोनों वर्ग के प्राणी अण्डा देते हैं। किंतु शिशु को भी दूध भी पिलाते हैं। इस वर्ग में हम वाराह-अवतार को रख सकते हैं।

(२) शिशुधानी-वर्ग—मोनोट्रीमेस वर्ग से शिशुधानी वर्ग का विकास होता है। इनके बच्चे सदा अविकसित होते हैं तथा इनके बच्चे का पोषण गर्भपोष और योक थैली से होता है। आस्ट्रेलिया में पाया जाने वाला कंगारू इसका प्रमाण है। पौराणिक अवतार में नृसिंह-अवतार इस वर्ग में आता है। नृसिंह अवतार सिंह और नर का द्योतक है।

(३) *गर्भपोषीय जीव*—इस वर्ग के बच्चे अधिक समय तक गर्भ में रहते हैं तथा गर्भपोष के द्वारा अपने माँ के खून से पनपते हैं। ये पूर्ण रूप से विकसित रहते हैं। वामन अवतार को हम इस वर्ग में रख सकते हैं। इसे हम सारिणी रूप में यहाँ उद्धृत कर सकते हैं।

कल्प	मत्स्य	उभयगामी	सरीसृप	स्तनिनः
नूतन-कल्प	......	......	......	स्तनपायी और पिंडज—गर्भपोष और रोयें वाले
मध्य कल्प	......	......	पक्षिण	
पुरा कल्प: गिरि-युग				
अंगार-युग				
मत्स्य-युग	......	फेफड़ा		
प्रवालादि-युग	पृष्ठवंशी			
अवर-प्रवालादि-युग	समुद्री अपृष्ठवंशी			
आद्य-युग	?			

विकास-क्रम की शृङ्खला-श्रेणी में मनुष्य अधिक विकसित है। मनुष्य योनि में भी महिला और कठिन प्रश्न है कि उसका विकास किस प्राणी से हुआ? गल्प कथा के अनुसार कहा जाता है कि निर्माण-कर्त्ता को निर्माण करते समय स्त्री ध्यानच्युत हो गई तथा निमित्त-उपादान भी चूक गया। तब उसने चन्द्रमा का वर्तुल, वायु की चंचलता, मोर का गर्व, खरगोश की डरपोकता, व्यघ्र का डरावना रूप तथा टहनियों की कोमलता तथा चिपटता को लेकर स्त्री का निर्माण किया। मीमांसा शास्त्र में सिद्ध है कि सृष्टि के प्रारंभ से ही स्त्री धारा एवं पुरुष धारा—ये दो स्वतंत्र धाराएँ चलीं। यथा कर्म-मीमांसा दर्शन में—

"द्वे धारे स्वतन्त्ररूपत्वात्" (धर्मपाद, सूत्र ५५)

भगवान मनु ने भी कहा है—

द्विधा कृत्वाऽऽत्मनो देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत्।
अर्द्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत् प्रभुः॥

सृष्टि के प्रारम्भ में परमात्मा ने अपने को दो भागों में विभक्त किया, वे आधे में पुरुष और आधे में नारी हो गये।

भगवान ने भगवद्गीता में भी कहा है—

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्धयनादी उभावपि।

इन दोनों में कौन भाग पुरुष और कौन सा भाग स्त्री बना। इस विषय में देवी भागवत में कहा है—

स्वेच्छामयः स्वेच्छायायं द्विधारूपो बभूवह।
स्त्री रूपो वामभागांशों दक्षिणांशः पुमान स्मृतः॥

स्वेच्छामय भगवान स्वेच्छा से दो रूप हो गये, वाम भाग के अंश से स्त्री और दक्षिण भाग के अंश से पुरुष बने।

जीव-विद्या के वर्तमान प्रवर्तक डार्विन हैं। डार्विन ने "ओरिजिन आफ स्पेसीज" और "डिसेन्ट आफ मैन"—इन दो पुस्तकों के द्वारा विकासवाद का प्रवाह बहाया। इसमें उसने "बलिष्ठ की विजय" अर्थात् जो सबसे अधिक बलवान है, उसी को जीने का अधिकार है, दूसरे को नहीं—यह सिद्धान्त निकाला। इसके साथ ही "जीवो जीवनम्" या "जबरदस्त के दो हिस्से" का ही समर्थन किया। उन्होंने कहा कि मनुष्य जीवन का ध्येय "मैं सुखी तो जग सुखी" है। डार्विन ने इस सिद्धांत के पुष्टीकरण के लिये" मानव चित्त को चाहे जैसे सांचे में ढाला जा सकता है" सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। प्रकृति तो सदा ही अधोगामिनी है, इसलिये प्राकृत मनुष्यों ने स्वच्छन्द बिहार के लिये इसे अपनाया। डार्विन के इस विकास-वाद का कुछ लोगों ने विरोध किया है। डार्विन का विकासवाद निर्मूल है और विज्ञान के विरुद्ध है। (प्रोफेसर विलियम वाटसन)। विज्ञान इस बात का स्पष्ट साक्षी है कि "मनुष्य अवनत दशा से उन्नत दशा की ओर चलने के स्थान में उलटा अवनति की ओर जा रहा है। मनुष्य की आरंभिक दशा उत्तम थी" (सिडनी कालेट)। "आदि सृष्टि अमैथुनी होती है और इस अमैथनी सृष्टि में उत्तम और सुडौल शरीर बनते हैं (जस्टिस टी० एल० स्टैंज)। थोड़े में हम कह सकते हैं कि वर्तमान वैज्ञानिक "अमीबा" (कामरूपी) ज्ञान से 'अथ श्री' करके मानव ज्ञान के ४८ क्रोमोसोम्स का वर्णन करते हुए जीव विज्ञान की 'इति श्री' कर देते हैं।

वैदिक ग्रन्थों की निरपेक्ष सत्यताएँ इस लेख से भासित होती हैं। वर्तमान भौमिकी के अनुसार इस पृथ्वी पर मनुष्य का अस्तित्व लगभग पच्चास सहस्र वर्ष पूर्व बताया जाता है। पुरातत्त्व वेत्ताओं के अनुसार पांच या छै हजार वर्ष पूर्व मनुष्य आदिम और असभ्य था। फलितार्थ यह कि आर्य जाति में ज्ञान राशि नहीं था। यह सर्वमान्य नहीं है। मनो-वैज्ञानिक जोन्स बोसन के अनुसार "ज्ञान का विकास नहीं होता, प्रत्युत्त ह्रास सी होता है"—जब ज्ञान का ह्रास ही होता है, तब आदिज्ञान सम्पूर्ण होना चाहिये। अतः जोन्स बोसन के अनुसार आर्यों में ज्ञान राशि रक्षित थीं। अतः वैदिक ग्रन्थ, वर्तमान विज्ञान के के प्रतिरूप, सम्पूर्ण तरह से उल्लिखित और विकसित हैं।

———

अणुशक्ति मानव की सेवा में

इ० आदीरोविच (भौतिक एवं गणित विज्ञान के डाक्टर)

भविष्य के इतिहासकार २७ जून, १९५४ का उल्लेख इस रूप में करेंगे कि इस दिन सोवियत संघ ने विश्व के अणुशक्तिचालित प्रथम विद्युत स्टेशन को चालू किया था। अब यह स्टेशन पार्श्ववर्त्ती इलाकों के उद्योग एवं कृषिको विद्युतशक्ति प्रदान करता है। पहली बार औद्योगिक कारखाने में प्रयुक्त टर्बाईन न ईंधन से प्राप्त रासायनिक शक्ति अथवा जलप्रपात से उपलब्ध यांत्रिक शक्ति द्वारा वरन् मानव द्वारा विमुक्त आणविक केन्द्र की शक्ति द्वारा परिचालित होती है। हमारे देश में औद्योगिक पैमाने पर आणविक शक्ति के शांति-पूर्ण उपयोग का श्री गणेश होना सर्वथा युक्तिसंगत है।

मानव ने शनैः शनैः प्रकृति के शक्ति-स्रोतों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया है। वह जल और वायु, तेल तथा कोयले से अपनी सेवा कराता है। और भी स्पष्ट रूप में यह कहा जा सकता है कि मानव सूर्य से भी अपनी सेवा कराता है क्योंकि विद्युत् स्टेशनों और वाष्पीय इंजनों के बायलरों तथा अंतरदह्यमान इञ्जिनों के बेलनों में रविरश्मियों की शक्ति विमुक्त होती है जो वनस्पति में करोड़ों वर्षों से संचित थी। समुद्रों एवं महा समुद्रों की सतह से जल को वाष्पीभूत करके सूर्य निरंतर नदियों के जलविद्युत् स्रोतों को समृद्ध बनाता रहता है। वायुमंडल के विभिन्न स्तरों को असमान रूप में उत्तप्त करके सूर्य हवा पैदा करता है। पृथ्वी के समस्त सामान्य शक्ति स्रोतों का निर्माण सूर्य ने किया है।

आज हम नूतन शक्तियों—आणविक केन्द्र की शक्तियों का आविर्भाव देख रहे हैं। यद्यपि बहरहाल उसका पैमाना छोटा है लेकिन भविष्य उसी का है। आणविक केन्द्र को वशीभूत करने की तुलना सामाजिक विकास की युगांतरकारी प्रमुख घटना—आग पर काबू करने से की जा सकती है।

फ्रेडरिक एंगेल्स के शब्दों में "घर्षण द्वारा आग प्राप्त कर मानव ने पहली बार प्रकृति की एक शक्ति पर प्रभुत्व स्थापित किया और इस प्रकार अन्ततः पशुजगत् से बाहर चला आया।" प्रोमेथियस की सुन्दर पौराणिक कहानी इसी चीज को हमें काव्य के रूप में बताती है। आग बनाने की जानकारी प्राप्त करने से मानव के लिए दाह्य वस्तुओं की रासायनिक शक्ति का उपयोग करना सम्भव हो गया है। दसियों हजार वर्षों के बाद ताप की शक्ल में प्रागैतिहासिक ढंग से इसका प्रयोग बन्द करने तथा काम को उन्नत बनाने के लिए यांत्रिक शक्ति के रूप में इसे परिवर्तित करने के वास्ते कदम उठाया गया। इस तरह थर्मल यंत्रों का युग, वाष्प एवं अंतरदह्यमान इञ्जिनों का युग शुरू हुआ। विद्युत यंत्रविद्या ने भी शक्ति के किसी नये सीधे स्रोत का आविष्कार नहीं किया क्योंकि हम प्रकृति में विद्युत् शक्ति का संचित-कोष नहीं पाते। लेकिन वैद्युतिक प्रक्रियाओं को हस्तामलकवत कर लेने से ईंधन की रासायनिक शक्ति तथा जल एवं वायु की यांत्रिक शक्ति के उपयोग का असाधारण रूप में विस्तार हो गया है: लोगों ने तारों के द्वारा हजारों कीलोमीटर तक विद्युतशक्ति प्रेषित करना सीख लिया है।

इस प्रकार विद्युतशक्ति का समस्त पूर्ववर्त्ती इतिहास यह बताता है कि रासायनिक एवं यांत्रिक शक्ति प्रयुक्त करने की पद्धतियाँ किस तरह सर्वाङ्ग-पूर्ण बतायी गयी हैं। हमारे युग की घटनाएँ नये एवं

गुणात्मक दौर का, प्रकृति की एक और शक्ति के ऊपर मानव के प्रभुत्व के श्री गणेश का द्योतक हैं जो इस प्रकार की अन्य चीजों की अपेक्षा कहीं अधिक अपरिमित रुप में शक्तिशाली हैं।

एक कीलोग्राम युरेनियम से दो करोड़ कीलोवाट घण्टे पैदा होते हैं जो २५०० टन सर्वोत्कृष्ट कोयले से निकलते हैं। फिर भी युरेनियम का विस्फोट अणुशक्ति की दिशा में पहला कदम है जब कि अणुकेन्द्र में संचित शक्ति का सिर्फ हजारवां भाग प्राप्त किया जाता है। विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि अणु-शक्ति न सिर्फ युरेनियम, प्लटोनियम और उद्जन में वरन् हमारे चतुर्दिक सभी पदार्थों में है और इसके अक्षय स्रोत हैं। नाली के पत्थर के अन्दर इतनी अधिक शक्ति निहित है कि यदि इसको विमुक्त किया जाए तो इससे इतनी अधिक शक्ति प्राप्त होगी जितनी नीपर का जलविद्युत् स्टेशन दस वर्षों में तैयार करेगा।

वैज्ञानिक एवं प्राविधिक दृष्टि से आणविक प्रक्रियाओं की पूरी जानकारी प्राप्त करना मानवमस्तिष्क की भव्य विजय है। इसे प्राप्त करने के लिए उन घटनाओं के नियम का पता लगाना आवश्यक था जो आणविक केन्द्रों में एक मिलीमीटर के दस लाखवें हिस्से के दस लाखवें भाग के बराबर दूरी में हो रही हैं। इन प्रक्रियाओं के विषय में पूर्ण जानकारी प्राप्त करना तथा उन्हें कारगर ढंग से प्रभावित करना सीखना आवश्यक था। उस समस्या को सफलता पूर्वक हल करना इस बात का एक और प्रमाण है कि मानव के ज्ञान की सम्भावनाएँ असीम हैं, कि आदर्शवादियों एवं अनीश्वरवादियों की दलीलों के वावजूद मानव मस्तिष्क उन क्षेत्रों का भेद न करने की क्षमता रखता है जो इन्द्रियतीत हैं।

अब हम जानते हैं कि आणविक केन्द्र अपार-शक्तियों के संघर्ष का क्षेत्र है। केन्द्र में सकारात्मक विद्युत्मय कण अथवा प्रोटीन तथा विद्युत्रहित कण अथवा न्यूट्रोन हैं। प्रोटीनों के बीच में काम करने वाली वैद्युतिक विकर्षक शक्ति केन्द्र को विचूर्ण करने की ओर उन्मुख होती हैं। इसके विपरीत आणविक आकर्षण की शक्तियाँ कणों को एक साथ पकड़े रहती हैं, और केन्द्र को अक्षुण्ण रखने में मदद पहुँचाती हैं। युरानियम प्रथम आणविक ईंधन इसलिए बना कि ऐसी परिस्थितियाँ पैदा करने में जिसके अंतर्गत वैद्युतिक विकर्षण आणविक आकर्षण पर काबू पाता है वह सर्वाधिक सुलभ सिद्ध हुआ है। केन्द्र समूह विघटित हो जाते हैं और उनके टुकड़े भयंकर गति से उड़कर अलग हो जाते हैं। आणविक प्रतिक्रिया निर्देशक यंत्र (युरानियम की ढेर) जिसमें औद्योगिक उद्देश्य के लिए आणविक शक्ति पैदा की जाती है, यह सब मौडरेटर, अर्थात् ग्रैफाईट या अन्य द्रव्यों के अंदर होता है।

जब वे ग्रैफाईट के परत से गुजरते हैं तो केन्द्रों के विघटन से बने कणसमूह धीमे पड़ जाते हैं और अपनी शक्ति मौडरेटर को दे देते हैं जो उत्तप्त हो जाता है। इस तरह जो ताप पैदा होता है वह पानी अथवा और किसी तरल पदार्थ का उत्तप्त कर वाष्प के रूप में परिणत करने तथा वाष्प को चरमबिन्दु तक गर्म करने में जाता है। प्रकारान्तर से वाष्प टर्बाईन को चालू कर देता है जो बिजली के जेनरेटर से जुड़ा होता है। इस प्रकार आणविक शक्ति वैद्युतिक शक्ति में परिणत होने के पश्चात् कल-कारखानों, खदानों, सामूहिक कृषिशालाओं तथा मशीन और ट्रैक्टर स्टेशनों तक पहुँचायी जाती है।

आणविक केन्द्र की शक्तिशाली ताकतों पर विजय पाने से हमारे शक्तिस्रोतों में भारी वृद्धि हुई है। थर्मल तथा जलविद्युत स्टेशनों को कौन कहे अब हमारे यहाँ आणविक विद्युत् स्टेशन स्थापित हो रहे हैं। जब सोवियत जनता ने सोवियत संघ की मंत्रिपरिषद की यह विज्ञप्ति पढ़ी कि सोवियत संघ में ५००० कीलोवाट की क्षमता प्रथम अणुशक्ति परि-चालित विद्युत् स्टेशन चालू किया गया है तो गर्व से उनकी छाती फूल गयी। आज हमारे वैज्ञानिक और इंजीनियर ५०,००० और १००,००० कीलोवाट क्षमता रखनेवाले अणुचालित विद्युत् स्टेशनों की डिजाईन बनाने और उन्हें खड़ा करने में लगे हैं।

इस सम्बन्ध में यह उल्लेख करना मनोरंजक है कि १००,००० कीलोवाट क्षमता रखनेवाले अणुचालित विद्युत् स्टेशन में प्रतिदिन मोटामोटी २०० से २५०.ग्राम युरानियम की खपत होगी जबकि उतनी ही क्षमता के थर्मल स्टेशन में प्रतिदिन हजारों टन कोयले लगेंगे। चूँकि सामान्य ईंधन की तुलना में आणविक ईंधन की खपत नगण्य होती है इसलिए हमारे देश में हर जगह आणविक विद्युत् स्टेशनों का निर्माण सम्भव हो जाता है। उन क्षेत्रों के लिए जो ईंधन अथवा जल के स्रोत से अति दूर हैं यह विशेष रूप में महत्वपूर्ण है।

आणविक केन्द्र की शक्ति पर काबू पाना न सिर्फ विद्युत्शक्ति विज्ञान के महान् विकास का द्योतक है वरन् समस्त इञ्जीनियरिंग में क्रमिक गुणात्मक परिवर्त्तन का भी साधन है। आणविक ईंधन का प्रयोग करने से कालान्तर में यातायात के क्षेत्र में क्रांति हो जाएगी। बहुत सी ऐसी समस्याएँ जिनका समाधान अन्तरदह्यमान इञ्जिन अथवा जेट इञ्जिन द्वारा नहीं हो सकता, साध्य हो जाएंगी। आणविक प्रतिक्रिया वाहक यंत्र का प्रयोग करके वायुयान बिना रुके असीम उड़ान भर सकेंगे। आणविक ईंधन की खपत इतनी नगण्य होने से समुद्र, रेल तथा यातायात के अन्य रूपों में इसका प्रयोग करने के लिए महती सम्भावनाएँ उन्मुक्त हो जाती हैं।

कालान्तर में विश्व ब्रह्मांड के असीम विस्तार भी मानव के लिए सुगम हो जायँगे। अन्तरग्रहीय उड़ानों में अब तक जिस वस्तु ने व्यवधान डाला है वह है पर्याप्त रूप में कारगर शक्तिस्रोत का अभाव, आणविक ईंधन ने इस समस्या का समाधान कर दिया है। इस समय मुख्यतः इस कारण कठिनाइयां पैदा हो रही हैं कि आणविक उत्पादन की प्रक्रियाओं में जब असाधारण रूप में उच्च तापमान पैदा होता है तो उसे रोकने की क्षमता रखनेवाले पदार्थ नहीं हैं। समय बतायेगा कि इस कठिनाईपर किस तरह विजय प्राप्त होती है। यह सम्भव है कि हम अपने जीवन में प्रथम अन्तरग्रहीय वायुयान को उड़ान भरते देखें।

भविष्य में आणविक ईंधन की बदौलत कोयला और तेल जलाने की जरूरत नहीं पड़ेगी जो रासायनिक उद्योग की बहुत सी शाखाओं के लिए अत्यन्त मूल्यवान एवं महत्वपूर्ण कच्चे माल हैं। व्यापक रूप में नूतन, आणविक रसायन विज्ञान का विकास होगा, केन्द्र के पुनर्संघटन से अणु के तत्वों में अत्यन्त गम्भीर परिवर्त्तन होगा। एक तत्व दूसरे तत्व में रूपांतरित हो जाएगा। उदाहरणार्थ नाईट्रोजन आक्सिजन में और पारा सोने में बदल जाएगा। दूसरे शब्दों में आधुनिक विज्ञान तत्वों को रूपांतरित करने लगेगा जिसके विषय में मध्ययुग के रसायनविद् स्वप्न देखा करते थे और जो हाल तक असम्भव काम समझा जाता था।

आणविक ढेर में कृत्रिम रूप से पैदा किये गये अणु रेडियो-सक्रिय होते हैं। तथा रेडियोसक्रिय निर्गततत्व जैसा कि सभी जानते हैं कीटाणुओं का नाश करता है, सांघातिक फोड़ों को खत्म करता है, तथा भौतिक पदार्थ के जीव विज्ञान, रसायन विज्ञान एवं पदार्थ विज्ञान सम्बन्धी तत्वों में परिवर्त्तन करता है। प्राकृतिक रेडियोसक्रिय पदार्थ अत्यन्त विरल एवं व्ययसाध्य हैं परन्तु आणविक प्रतिक्रियावाहक यंत्र लाखों टन रेडियम के बराबर सस्ते, कृत्रिम, रेडियोसक्रिय तत्व पैदा कर सकते हैं।

आणविक पदार्थ विज्ञान घ ों को जीवाणुओं से मुक्त करने, खाद्यपदार्थ को शुद्ध करने, संक्रामक रोगों का उन्मूलन करने में मदद करेगा और कारगर रेडियोथेरापी का निर्माण करेगा। उष्णता विकरण के अपार स्रोत, आणविक प्रतिक्रियावाहक यंत्रों की बदौलत उद्योग की नयी शाखाओं, अर्थात् धातु प्लास्टिक तथा अन्य द्रव्यों की रेडियोसक्रिय टेकनोलोजी का उदय एवं विकास होगा।

ये हैं आणविक पदार्थ विज्ञान के प्रयोग की सम्भावनाएँ जिनका अनुमान लगाया जा सकता है, तथा इस विज्ञान के विकास के दौरान में ये सम्भावनाएं निस्सन्देह और भी व्यापक एवं वैविध्यपूर्ण हो जाएंगी।

आणविक शक्ति का श्रीगणेश मानवजाति के लिए महान् वरदान के रूप में नहीं लेकिन विनाश की दानवी शक्ति के रूप में हुआ है। इसने अपना कदम रखते ही दो शहरों और एक लाख की आबादी को ध्वस्त कर दिया। आज अतलांतक की दूसरी तरफ अपने को वैज्ञानिक कहनेवाले ऐसे लोग हैं जो समाचार पत्रों और पत्रिकाओं में लेख लिख कर और भी ज्यादा विनाश एवं नरसंहार करने के लिए मौके की तलाश में हैं। दूसरे लोग त्रस्त होकर चिल्लाते हैं कि विज्ञान हानिकारक है, यह अपने साथ मानवजाति का सर्वनाश लाता है। प्रथम अणुचालित विद्युत् स्टेशन चालू करने के सम्बन्ध में सोवियत सरकार की विज्ञप्ति यह बताती है कि सोवियत जनता के हाथ में अणु शक्ति विनाश नहीं वरन् निर्माण का साधन है, कि इसमें कोई खास "विध्वंसक" तत्व नहीं है।

सोवियत संघ में इस अद्भुत एवं सौम्य शक्ति का प्रयोग व्यावहारिक रूप में कम्युनिज्म के निर्माण में हो रहा है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उत्पादक शक्तियों का अभूतपूर्व विकास अपेक्षित है। और अणुशक्ति ही इस समस्या को तेजी से हल करने में मदद देगी। इस नयी एवं प्रचंड शक्ति से नदियों की धारा को पलट देना, शुष्क विस्तृत भूभाग को निवास योग्य एवं समृद्धिशाली बनाना, चिरतुषार को पिघला देना, पृथ्वी के अंतस्तल से खनिज सम्पत्ति को निकाल लाना सम्भव हो जायगा। शक्ति के प्राचुर्य के कारण भारी शारीरिक श्रम अनावश्यक हो जाएगा और मानव का सृजनात्मक कार्य के लिए मुक्त करने में सहायक होगा।

अणुशक्ति परिचालित प्रथम विद्युत् स्टेशन का चालू होना इस बात की पक्की गारंटी है कि आणविक शक्ति के विशाल, प्रायः अक्षय स्रोतों का उद्योग शांति पूर्ण उद्देश्यों के लिए, मानव जाति के हित एवं सुखसमृद्धि के वास्ते होगा।

—:○—

प्राचीन संसार का शल्य विज्ञान—(पृ० ४ का शेषांश)

को शल्य चिकित्सक एक लकड़ी के चम्मच या उपकरण से निकालता है और रोगी की पीठ और पेट के विभिन्न स्थानों पर उबलता द्रव उँडेल देता है। इस तरह जब अगणित फफोले पड़ जाते हैं तब वह चिकित्सा और आगे बढ़ाने का दूसरा उपाय करता है। वह गन्धक तथा शोरे के मिश्रण की एक बोरी लेकर रोगी के शरीर पर छोटी-छोटी ढेरियाँ में रखता है। एक जलता हुआ लुकाड़ा लेकर वह इन ढेरियों में बदन के ऊपर ही आग लगा देता है। इनके भभक उठने से रोगी एक दहकते पदार्थ का दृश्य उपस्थित करता है। रोगी का रोग कभी फिर याद आता है या नहीं किन्तु इस भारी यातना के पश्चात् वह चिकित्सक का पुनः दर्शन करने का साहस बहुत अधिक दिनों पर ही कर सकता होगा।

त्वचा पर नश्तर मार कर रक्त बहते रहने देने की विधि भी दुष्ट प्रेतात्मा को रुग्ण अंग से निकाल भगाने के लिए प्रयुक्त की जाने का प्राचीन समय में प्रचार रहा होगा। ऐसी प्रथा आज भी जहाँ-तहाँ पाई जाती है। इस यातना को बहुत से रोगी तो इसी कारण स्वीकार कर लेते होंगे कि कहीं अन्य लोग उसे का पुरुष न समझ लें या उसका उपहास न उड़ाया जाय अथवा अनिष्टकर प्रेतात्मा के भागने का ही विश्वास इन्हें इस कष्ट का सामना करने का धैर्य प्रदान करता रहा होगा।

कोयला

श्री भारत भूषण रायजादा, एम० एस-सी०

यंत्रप्रधान आधुनिक जगत में अगर कोयले को 'काला हीरा' कहा जाय तो इसमें आश्चर्य ही क्या ! यह सच है कि आजकल राष्ट्रों की सम्पत्ति और उनकी प्रगति का निर्णय जितना उसके कोयला-कोषों द्वारा हो सकता है उतना उसके किसी भी और खनिज द्वारा नहीं। निर्माण और प्रगति के इस भाग में यह उचित ही है कि हम अपने देश की इस बहुमूल्य सम्पत्ति का पूरा लेखा-जोखा लें और उसके सदुपयोग के उपाय ढूँढ़ निकालें।

कोयला-उत्पादन की दृष्टि से भारत का स्थान संसार में आठवाँ है। यद्यपि इतने बड़े देश के लिए किसी भी क्षेत्र में आठवें स्थान पर ही होना श्रेयस्कर नहीं है, फिर भी यह संतोष की बात है कि भारत में जितना कोयला मिल सकता है यदि उसी की उचित व्यवस्था की जाय तो वह स्वयं सम्पन्न हो सकता है।

भारत में प्रतिवर्ष तीन करोड़ टन कोयला निकाला जाता है। एशिया महाद्वीप का कुल कोयला-उत्पादन लगभग तेरह करोड़ तीन लाख टन है। अमरीका तथा भारत, संसार में कोयला-उत्पादन में श्रेष्ठ माने जाते हैं। विश्व की सबसे मोटी कोयले की तह २१५ फीट मोटी है। यह अमरीका में है, इसके बाद कुछ तहें भारत में हैं। यह तहें गोदावरी और गंगा के बीच में हैं। अब तक चार अरब अट्ठानबे करोड़ सत्तर लाख टन कोयला-कोषों का पता लग चुका है। अनुमान है कि भारत की कोयला सम्पत्ति २००० फीट की गहराई तक लगभग ६५ अरब टन होगी।

भारत के कोयले का ९८% गोंडवाना श्रृंखला में मिलता है। अन्य स्रोतों से केवल २% कोयला प्राप्त होता है। गोंडवाना की यह श्रृंखला, बंगाल, बिहार, उड़ीसा, मध्यभारत, मध्यप्रदेश तथा हैदराबाद तक फैली हुई है। अन्य स्रोतों में आसाम तथा राजस्थान की कुछ खाने हैं। हैदराबाद से १४६ मील दूर सिंगरानी से भी कुछ कोयला पाया जाता है।

भारत में लगभग १०० कोयले की खाने हैं और उनसे उत्पादित ३ करोड़ टन कोयले में से ५५% बिहार से, २८% बंगाल से, ६% मध्यप्रदेश से, ५% अन्य पूर्वी प्रदेशों से तथा ४% हैदराबाद से प्राप्त होता है। भारतीय कोयला-उत्पादन का ९/१० भाग बिहार तथा पश्चिमी बंगाल में स्थित कोयले की खानों से प्राप्त होता है। कोयले की प्रमुख खानें रानीगंज तथा झरिया में हैं जिनसे पूर्ण उत्पादन का ७२% कोयला मिलता है।

वाणिज्य दृष्टिकोण से कोयले का उत्पादन सन् १७७४ में रानीगंज की कोयले की खानों से प्रारम्भ हुआ। भारतीय कोयले की अधिकांश खानें निजि उद्योगपतियों के पास हैं, और भारत सरकार के पास केवल ११ खानें हैं जिनके उत्पादन का अधिकांश भाग भारतीय रेलों को चला जाता है।

केन्द्रीय सरकार का 'प्राकृतिक साधनों तथा वैज्ञानिक अनुसंधान' मंत्रालय, 'भारतीय खानों' तथा भूगर्भ निरीक्षण विभाग, का प्रचालन करता है। इन विभागों का विशेष कार्य भूगर्भ मानचित्र तैयार करना तथा भारतीय खनिजों की वृद्धि की ओर ध्यान देना है।

भारतीय पंचवर्षीय योजना में खनिजों के उत्पादन एवं वृद्धि पर अधिक ध्यान दिया गया है। इसके अंतर्गत पूर्व स्थापित 'भारतीय भूगर्भ निरीक्षण विभाग', 'भारतीय खान-विभाग' तथा राष्ट्रीय

प्रयोगशालाओं में कोयले के अतिरिक्त अन्य खनिजों के गुणात्मक तथा परिमाणात्मक गुणों पर निरंतर कार्य हो रहा है।

अब तक भारतीय खनिजों का प्रयोग केवल निर्यात के लिए ही होता था, परन्तु अब इस पर अधिक जोर दिया जा रहा है कि भारतीय खनिजों को राष्ट्रीय सम्पत्ति समझा जाय और राष्ट्र निर्माण में जो इनका सर्वोत्तम उपयोग हो सके उसी पर अधिक ध्यान दिया जाय।

सन् १९४८ में 'खान-विभाग' की संस्थापना हुई जिसका कार्य भारतीय खानों का निरीक्षण करना, ऐसी योजनाएँ बनाना जिनसे अधिक से अधिक उत्पादन हो सके तथा सरकार को निर्यात, उत्पादन आदि विषयों पर समय-समय पर राय देना है। योजना आयोग ने १९५१ में एक विधान बनाने का सुझाव दिया था जिसके आधीन कोयले के उत्पादन, वितरण तथा मूल्य पर नियंत्रण हो सके तथा खानों में काम करनेवाले मजदूरों की भलाई का पूरा ध्यान रखा जा सके।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से कोयले का अध्ययन बड़ा ही मनोरंजक तथा महत्त्वपूर्ण है। इसी के लिए 'वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान आयोग' ने १९४९ में झरिया के निकट दिग्वादी में एक 'ईंधन अनुसंधानशाला' खोली है। इस अनुसंधानशाला में कोयले से शुष्कांगार (कोक) तैयार करने, इसके निम्न तापमान पर कार्बनीकरण करने, रंजक, औषधि, नम्या (प्लास्टिक), विस्फोटक पदार्थ आदि बनाने तथा द्रव ईंधन तैयार करने पर प्रयोग हो रहे हैं।

बहुत पुराने कोयले में एक प्रस्तरिलित पेड़ की जड़ मिली है जिसकी आयु का अनुमान २००० वर्ष है। इसी जाति का पेड़ चीन में अब भी हरी-भरी दशा में पाया जाता है।

कोयले के भौतिक तथा रासायनिक गुणों के आधार पर तीन मुख्य विभाजन किये जा सकते हैं—

(१) लिगनाइट अथवा भूरा कोयला जिसमें ५५ से ६०% कार्बन होता है। यह देखने में चिकना तथा चमकदार होता है, और मोमबत्ती की लौ के समान जलता है। इससे मोम तथा गैस तैयार की जाती है। इसमें वाष्पशील (उड़ने वाले) पदार्थ सबसे अधिक होते हैं जिनसे कारण यह जलने पर धुँआ अधिक देता है।

(२) दूसरे प्रकार का कोयला जिसे जतुक्य कोयला (बिटूमिनस कोयला) कहते हैं बहुधा लिगनाइट के साथ भी मिल जाता है। इसमें ६५ से ८५% कार्बन होता है। यह जल्दी ही जल जाता है। इसका प्रयोग शुष्कांगार (कोक) तथा गैस आदि बनाने में किया जाता है। इसमें जतुकी (शिलाजीत, बिटूमिन) नहीं होती, केवल स्वरूप के कारण ही इसे यह नाम दे दिया गया है।

(३) तीसरे प्रकार का कोयला अंगाराश्म (एन्थ्रेसाइट) कहलाता है। इसमें ७५ से ९५% कार्बन होता है। यह टूटने पर चमकदार तथा अधिक काला दीख पड़ता है। यह देर में जलता है परन्तु गर्मी अधिक देता है इसमें वाष्पशील पदार्थ बहुत कम होते हैं जिसके कारण यह धुआँ कम देता है।

एक टन कोयले का रासायनिक विश्लेषण करने पर उससे लगभग ७½ पौंड द्रव गैस, ४९२ पौंड गैस, १५९८ पौंड शुष्कांगार (कोक) रंजक, ग्रीज तथा अन्य पदार्थ प्राप्त हो सकते हैं। इनसे विस्फोटक पदार्थ कृत्रिम खाद, कृत्रिम बर्फ आदि पदार्थ बन सकते हैं। गैस का प्रयोग खाना बनाने तथा रोशनी करने में किया जाता है। इनके अतिरिक्त १ टन कोयले से लगभग १७५ पौंड डामर (कोलतार) भी प्राप्त होता है। इसके भिन्न तापक्रमों पर वाष्पीकरण से बहुत-से उपयोगी पदार्थ प्राप्त होते हैं। सर्व प्रथम बेन्जीन तथा टॉल्वीन मिलते हैं फिर कार्बोलिक एसिड गैस तथा नेपथलीन प्राप्त होते हैं। फिर क्रीजोट मिलता है, और अंत में अंगारेन (एन्थ्रेसीन) की प्राप्ति होती है। इन पदार्थों से लगभग ३०० हमारे दैनिक काम में आने वाले पदार्थ मिलते हैं

(शेष पृ० २५ पर)

पक्षियों की बुद्धि

पशु-पक्षियों में कितनी बुद्धि होती है, यह एक पेचीदा प्रश्न है। जब हम सृष्टि में जीवों के विकास-क्रम पर विचार करते हैं तो हमें दिखाई पड़ता है कि करोड़ों वर्ष पूर्व जब आदि सृष्टि हुई होगी तो क्षुद्र कीट ही अवतरित हो सके होंगे जिनका प्रस्तरावशेष रूप में भी चिन्ह बच सकना कठिन था। धीरे-धीरे कुछ कठोर अंगों के कीट जब विकसित हो सके होंगे तो उनके प्रस्तरावशेष या गतिविधि के कुछ प्रमाण प्राप्त हो सकते थे। किन्तु यह सब सृष्टि ऐसे ही जन्तुओं की रही होगी जिन्हें कीट वर्ग कहा जा सकता है। इनमें कोई अस्थिकंकाल न होता था। रीढ़ की हड्डियाँ अस्थिकंकाल के स्तंभरूप में होती हैं। अतएव इन जन्तुओं में रीढ़ या पृष्ठवंश का अभाव होने से अपृठवंशी या बिना रीढ़ के जन्तु नाम पड़ता है।

जब सृष्टि में उन जन्तुओं ने जन्म धारण किया, जिनका शरीर एक अस्थिकंकाल पर अवलंबित रहता और वह कंकाल पृष्ठवंश (रीढ़) के आधार पर बना होता तो वह सारी सृष्टि पृष्ठवंशी कहलाई। आज उसके नाना रूप संसार में पटे पड़े हैं। मछलियाँ भी हैं, मेढ़क भी हैं। गिरगिट छिपकली, गोह, मगर, साँप आदि भी हैं, पक्षी भी हैं तथा अन्त में माता की कोख से प्रायः सदेह उत्पन्न होकर स्तन का दूध पीने वाले जन्तु भी हैं जिनको स्तनपायी कहते हैं। मछलियाँ जलजन्तु कहलाती हैं। मेढक उभयजीवी हैं। इन दोनों के पश्चात् साँप, कछुए, गोह, मगर आदि को सरीसृप नाम से कुछ उच्चवर्ग का कह सकते हैं। पक्षी इनसे भी कुछ ऊँचे पद के माने जा सकते हैं। स्तनपायी सबसे ऊँचे स्थान पर सृष्टि-क्रम में पद ग्रहण करते हैं। यह आज के विज्ञान द्वारा ज्ञात सृष्टि के जीवों का क्रमागत पद है। इनकी रचना भी कदाचित् क्रमानुसार इसी विधि से उदित या विकसित हुई होगी। किस मूल से कौन-सी शाखा निकली, कब निकली और कैसे निकली, ये विषय यहाँ पर वर्णित नहीं किए जाएँगे। वे विकास-वाद के प्रसंग हैं।

सृष्टि के विकास-क्रम में यह ज्ञात होता है कि सरीसृपों का जिस प्रारंभिक जन्तु वृक्ष से उदय हुआ उसी प्रारंभिक रूप से पक्षी भी किसी पृथक शाखा रूप में उत्पन्न हुए। दुग्धपायी भी कालान्तर में उसी मूल वृक्ष से किसी समय क्षीण रूप में जन्म धारण कर पहले अज्ञात से रहे होंगे। बाद में उनमें इतना अधिक विकास होता गया कि सारी धरती पर वे प्रधान रूप में छा गए। हम यह सकते हैं कि जहाँ तक बुद्धि का प्रश्न है, उसका बटवारा या उत्कृष्टता का क्रम विकास-क्रम के अनुरूप ही होगा। अर्थात् अत्यन्त हीन पद के कीट वर्ग अत्यन्त निर्बुद्धि ही होंगे। मत्स्य, उभचारी उनसे कुछ सुधरी दशा में होकर अल्प मात्रा में बुद्धि कदाचित् पा सके हों। सरीसृप उससे कुछ अधिक मात्रा में बुद्धि रखते होंगे। फलतः पक्षी इन सबसे अधिक मात्रा में बुद्धि रखकर दुग्धपायी जन्तुओं से होड़ ले सकने योग्य स्थिति कदाचित् रखते हों। परन्तु ऐसा व्यवस्थित क्रम बुद्धि के बटवारे में नहीं ज्ञात होता। चीटियाँ अत्ययंत हीन वर्ग के अपृष्ठवंशी जन्तुओं में हैं। परन्तु बुद्धि की परीक्षा में वे अच्छा अङ्क पा सकती हैं। पक्षी के सम्बन्ध में कुछ स्पष्ट सम्मति प्रकट करने के स्थान पर बुद्धि परखने के कुछ प्रसिद्ध उदाहरणों की चर्चा करना अधिक युक्तिसङ्गत बात हो सकती है।

डैविड लैक नामक वैज्ञानिक ने चटक (राबिन) पक्षी के सम्बन्ध में एक प्रयोग कर देखा कि चटक

पक्षी की भूसी भरी हुई खाल पर एक जीवित चटक आक्रमण करता है तो उसका चोट करने का लक्ष्य वक्षस्थल का लाल भाग होता है। रक्त वर्ण को हटा देने पर भी जीवित चटक उस प्रतिमूर्ति पर ही आक्रमण करता जिसका रूप चटक समान बनाकर रक्खा गया। साधारणतया किसी भी छोटे-मोटे पक्षी के उड़ भागने पर जीवित चटक उसका पीछा करता है। यदि चटक की खाल या प्रतिमूर्ति पर जीवित चटक को आक्रमण करने का अवसर नहीं दिया जाता तो केवल दो जीवित चटकों के पारस्परिक संघर्ष को देखने से यह कुछ पता नहीं चल सकता था कि वे संघर्ष में क्या-क्या पृथक् प्रतिक्रियाएँ प्रकट करते हैं।

यह कहा जा सकता है कि पक्षी रंग, रूप तथा स्थिति को देखकर अपना व्यवहार निर्धारित करता है, परन्तु इन तीनों बातों का विचार एक साथ नहीं पाया जाता। एक पर्यवेक्षक ने समुद्रकाक या तरंगिका (पेट्रेल) की जाति के पक्षी को अपने घोंसले में एक फूटे अन्डे के नोकीले कठोर आवरण के खंड पर अन्डा सेने की भाँति ऊपर से छाप कर बैठे देखा, जिसके अन्दर का शिशु-निर्मायक पीत द्रव सूख गया था। कितनी अधिक असुविधा तथा मूर्खता की बात थी किन्तु केवल इतनी सी बात थी कि वह टूटा-फूटा निरर्थक अन्डा घोंसले के ठीक स्थान पर पड़ा हुआ था, अतएव मादा उसे छापकर बैठी पड़ी थी। यदि कोई समूचा अन्डा निकट ही कुछ इन्च दूर रख दिया जाता तब भी वह पक्षी उस समूचे अन्डे पर जाकर नहीं बैठता, बल्कि इस खंडित अन्डे के स्थान पर ही उसे छापे पड़ा रहता। अनेक पक्षियों के साथ ऐसे प्रयोग को देख लिया गया है कि वे निकट के स्थान पर ही अन्य अन्डे की ओर ध्यान भी नहीं ले जाते।

पक्षियों के इस अविवेक से लाभ उठाकर किसी कारण कोयल अपना अन्डा उनके द्वारा सेये और पाले जाने का कृत्य पूर्ण कराती है। घोंसले के अन्दर ही उन पक्षियों के वास्तविक अन्डों को तनिक दूर हटा कर कोयल उसके स्थान पर अपना अन्डा रख देती है। बस ये पक्षी उस अन्डे को ही अपना मान कर सेते हैं। यही नहीं, कोयल का शिशु उत्पन्न हो जाने पर अपने रूप से उन्हें चौंका नहीं देता। वह धीरे-धीरे उन पालक माता-पिताओं से अपना आकार बड़ा कर लेता है। फिर भी वे पक्षी उस कोयल के स्कंध पर बैठ कर चारा चुगाते रहते हैं।

पक्षियों की बुद्धि की तुलना हमें अपनी बुद्धि के माप से नहीं करनी चाहिए। हमारा मस्तिष्क अत्यधिक प्रारम्भिक रूप से धीरे-धीरे विकसित होता आने के पश्चात् आज इस स्थिति को पहुँचा है। आज यह कहने का कोई आधार नहीं कि मस्तिष्क का और भी अधिक विकास भविष्य में न हो सकेगा। इस दृष्टि से पक्षियों का मानसिक उपकरण प्रकृति के विकासात्मक साधनों से परिस्थितिं की पृष्ठभूमि में रचित हुआ है। वे हमारी अपेक्षा अधिक हीन मानसिक उपकरण ही रखते हैं। यह बात अवश्य है कि कुछ दिशाओं में उनमें विचित्र इन्द्रियग्राह्यता तथा अंतर्भावना हो।

पक्षियों के कार्यकलाप उनके जीवन की जीवंत आवश्यकताओं के अनुरूप होते हैं। अतएव यह अनुमान हो सकता है कि उनका निर्धारण पक्षियों के मस्तिष्क में होता होगा। उनमें यथेष्ट चेतना रहती होगी। कदाचित् पक्षी यह सोचकर घोंसला बनाते हैं कि उन्हें अन्डा देने के लिए स्थान की आवश्यकता पड़ेगी, प्रवास इसलिए करते हैं कि उनको आगामी ऋतु-वैषम्य का पहले से ही अनुमान रहता है। और जल्दी अपेक्षाकृत उष्ण स्थल में पहुँच जाना चाहते हैं। कदाचित् गायन इसलिए ही करते हैं कि उन्हें यह ज्ञात रहता है कि मादा उससे मुग्ध हो सकती है और उसे आसक्त कर प्रणय निर्वाह कर सन्तान वृद्धि का क्रम अग्रसर करना है। किन्तु ऐसी धारणाएँ निर्मूल सिद्ध होती हैं। पक्षी उस अवस्था में भी घोंसले बनाता या प्रणय गीत गाता पाया जा सकता है जब माता-पिता के सम्पर्क बिना ही अल्प आयु

से वह मनुष्य के हाथों द्वारा ही पला हो तथा अपनी जाति के किसी पक्षी या उसके किसी कृत्य को देख सकने का उसे अवसर न मिल सका हो। या माता-पिता या हमजोलियों द्वारा किसी भी बात की सीख मिलने की सम्भावना न हो। उन्हें हमजोलियाँ द्वारा या माता-पिता द्वारा सीख सकने की क्षमता भी नहीं होती, यह बात तो दूसरी है। इन सब बातों से ज्ञात होता है कि उनके कार्यकलाप कोई लक्ष्य बनाकर नहीं होते।

कुछ भी हो, जन्तुओं की जातियाँ जीवित रह सकने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि कार्य-कलाप किसी उद्देश्य की पूर्ति करें। किन्तु इसके लिए यह आवश्यक नहीं कि लक्ष्य की बात जन्तु द्वारा मस्तिष्क में अनुभव की जाय अथवा जन्तु अपने मस्तिष्क में उसकी संयोजना करे। प्रकृति का साधारण विधान यह है कि जन्तुओं के मस्तिष्क इस तरह के निर्मित हों कि किसी निश्चित परिस्थिति में ऐसी अंतःप्रेरणा उत्पन्न हो उठे जिससे वे उस विशेष परिस्थिति के अनुरूप कार्य करने लगने में प्रवृत्त हो जायँ। यह क्रिया अनजाने रूप में ही उनके द्वारा ठीक इसी प्रकार होती है जैसे हमारे शरीर संचालन में शरीर के अंतर्गत अनैच्छिक पेशियाँ तथा ग्रंथियाँ स्वतः ही योगदान किया करती हैं। भोजन आमाशय में पहुँचते ही आमाशय की ग्रन्थियों द्वारा किसी अंतर्व्यवस्था से ही हमारी चेतना से परे पाचक रस की रचना हो जाती है, खाद्य द्रव्य पचने लगता है। रक्त नलिकाएँ भी हमसे चेतन्य रूप में आदेश लिए बिना ही किसी अन्तर्भूत व्यवस्था या प्रेरणा से प्रेरित होकर शरीर भर में परिभ्रमण कर जीवन-रक्षित रखती हैं। यही क्रम पशुपक्षियों के बाह्य कार्यों के सम्बन्ध में भी होता है जिसे उनकी बुद्धि नहीं, बल्कि अन्तःप्रेरणा का परिणाम कहना चाहिए।

पक्षियों की अन्तःप्रेरणा द्वारा कार्यों की मीमांसा की जा सकती है। जन्तु अपने वातावरण के साथ छिप सकने की व्यवस्था रखते पाए जाते हैं। यह प्रकृति का साधारण नियम है। बहुत से जन्तु ऐसी व्यवस्था निरर्थक रूप में भी रख सकते हैं। दुबक कर छिपने की बात लीजिए। अल्पवय पक्षी इस युक्ति से अपना शरीर ऊपरी वातावरण में छिपा सकते हैं जिससे शत्रु उनको देख न सके और वे अपनी जान बचा ले जायँ। प्रकृति के अंचल में तो यह विधान ठीक है। प्रायः उनके शरीर का रंग वातावरणों के अनुरूप होता है। परन्तु मनुष्य के सम्मुख कृत्रिम वातावरण, गलीचे, कटी घास के कृतिम क्षेत्र में भी वे उसी प्रकार दुबक कर अपना शरीर छिपाने का उप-क्रम करते हैं जब गलीचे या घास के क्षेत्र का रङ्ग स्पष्टतः उनके शरीर के रंग से सर्वथा विभिन्न होता है। उसके मध्य उनका शरीर किसी प्रकार छिपा नहीं ज्ञात हो सकता। यहाँ उनकी केवल अन्तर्भावना ही दुबकने के लिए प्रेरित करती है। गलीचे या घास के रंग में अपने शरीर का रंग न छिप सकने का विवेक उनमें नहीं हो सकता। कुछ पक्षी शत्रु की दृष्टि से बचने के लिए अपने पंख फैलाकर भूमि पर लेट जाते हैं मानों कोई आहत पक्षी हो। शत्रु का भय दूर होते ही वे पुनः उड़ भागते हैं। यह भी उनकी अन्तर्भावना का साधारण कृत्य होता है। विवेक का उसमें प्रवेश नहीं होता। इसकी प्रवृत्ति उनमें जन्मजात होती है।

पक्षियों की निर्बुद्धि का नमूना सीढ़ी में लगे आड़े डंडों या इसी प्रकार रक्खी अनेक बल्लियों में से किसी पर घोंसला बनाने का प्रयत्न करना है। वे यह नहीं समझ सकते कि घोंसला बनाने के लिए वह उपयुक्त स्थल नहीं है और निरर्थक प्रयत्न कर एक के बाद एक सीढ़ी के सभी डण्डों पर घोंसला बना लेना चाहते हैं। यह तो साधारण बात हुई। परन्तु हम बहुत चतुर कहे जाने वाले पक्षी चोर कौवा (चौरिकाक) की बात लेते हैं। इसकी बुद्धिमत्ता प्रदर्शन करने वाली कितनी ही बातों का उल्लेख पाया जाता है परन्तु यह अपना घोंसला बनाने के प्रयत्न में यह नहीं जान पाता कि उसको व्यर्थ अथक परिश्रम पड़ रहा है उसे उप-युक्त स्थल न होने पर अपना उद्योग स्थगित कर कहीं अन्यत्र घोंसला बनाने का विवेक नहीं होता। यह पक्षी कोटरों में (वृक्ष के तने या डाल के छेदों में)

अंडे देता है। उसके अन्दर अपना घोंसला बनाने के लिए ऊपर से लकड़ियाँ डालता जाता है जिससे आधार स्थल उपयुक्त बन सके। कभी-कभी ऐसा होता है कि कोटर का मुँह तो छोटा ही दिखाई पड़ता है, परन्तु नीचे का छिद्र मामूली न होकर भारी छिद्र या गर्त्त सरीखा होता है। चोर कौवा तो ऊपर से लकड़ी गिराता जाता है और पेंदे में कोई मंच बन जाने की आशा करता है, परन्तु वहाँ नीचे की ओर छिद्र वैसे ही बड़ा रहता है जैसे किसी कच्चे कुएँ के निचले भाग के भस जाने से नीचे की ओर विशाल गर्त्त सा बन गया हो। ऊपर से गिराई जाने वाली लकड़ी का कहीं पता नहीं चलता परन्तु मूर्ख चोर कौवा निरंतर उसे भरने के प्रयत्न में असफल होकर भी उद्योग नहीं छोड़ता। एक बार एक छेद उसने जब चुन लिया है तो फिर कितनी भी बाधाएँ पड़ें उस स्थान पर ही उसे अंडे देना है। कितने ही दिनों तक निरंतर लकड़ी गिराते जाने पर उसकी भारी राशि नीचे एकत्र हो जाती है। जहाँ इतने दिनों तक परिश्रम करने में उसे असीम क्लान्तता का अनुभव करना पड़ता है, वहाँ बुद्धि से काम लेने पर किसी अन्य कोटर को ढूँढ कर कुछ घंटों में ही वहाँ अपना घोंसला तैयार करने की निरर्थकता का उसे अनुभव हो जाना चाहिए था। यह अनुभव न कर सकने का केवल यही कारण है कि घोंसला बनाने के कार्य में वे बुद्धि का उपयोग नहीं करते और न आवश्यकता हो होती है। प्रकृति उनके मस्तिष्क में हमारी अनैच्छिक पेशियों तथा उनका नियंत्रण करने वाले मस्तिष्क की भाँति अंतर्भावना उत्पन्न कर देती है। उस भावना से आँख मूँद कर स्वतः कार्य किए जाते हैं। साधारण रूप में जीवन कार्य चलाने के लिए पक्षियों या पशुओं की वे अंतर्भावनाएँ यथेष्ट कार्यकर होती हैं। पक्षियों की अंतर्भावना के ही परिणामस्वरूप हमें कितने ही पक्षियों के बड़े कुशलता के कार्य देखने को मिल सकते हैं। बया का सुन्दरतापूर्वक पतले पत्रसूत्रों से बुनकर बनाया घोंसला ऐसी कुशलता के कार्य का अद्भुत नमूना कहा जा सकता है। पत्तियों को सीने, सीने के लिए किसी नर्म रेशे को किसी वनस्पति से प्राप्त करने, फिर उसमें गाँठ देकर सिलाई खुलने न देने की व्यवस्था कर भी घोंसला बनाते पक्षी हमें मिलते हैं। किसी काष्ठखंड की कूची सी बना कर कोयले के चूर्ण को अपनी लसिका में सिंचित कर घोंसले को भीतर से रंग लेने वाले चित्रक पक्षी भी मिलते हैं। नृत्यशाला सजाकर उसमें नृत्य करने वाले पक्षी दम्पति भी मिलते हैं, परन्तु जिस प्रकार हमारे अनजाने मस्तिष्क का कोई भाग हमारी अंतर्क्रियाओं का नियंत्रण करता है, अद्भुत रूप से शारीरिक यंत्र को सँभाले रखने का विधान रखता है, उसी प्रकार पक्षियों के ये सभी कौशल-प्रदर्शन अथवा आवश्यकता-पूर्ति के दैनिक या असाधारण कार्य केवल प्रकृतिदत्त अंतर्भावना से स्वतः चालित होते रहते हैं। पक्षी ऊहापोह में कभी नहीं पड़ता। वह तो इन अंतर्भावनाओं का दास बनकर ही एक मार्ग का अवलंब कर ये सब कार्य संचालित करता जाता है। इन कार्यों का स्तर चाहे जितना ऊँचा है, कौशल चाहे जितना अधिक प्रतीत हो, परन्तु वे बुद्धिजन्य न होकर पक्षियों की अंतर्भावना के फल होते हैं। यही कारण है कि चोर कौआ को हम अंतर्भावना से प्रेरित होकर आँख बंद किए ही वृक्ष कोटर को भरते जाने का उद्योग सप्ताहों करते पा सकते हैं। वह विशेष परिस्थिति में अपना विवेक प्रयुक्त कर निरथक श्रम से बचने का मार्ग निकाल सकने में सर्वथा अक्षम होता है।

कर्कमैन नामक वैज्ञानिक ने एक विलक्षण प्रयोग किया था। कालशीर्ष गंगाचिल्ली (डोमड़ा) पक्षी में जब सन्तानोत्पादन भावना जागृत हो उठती है तो उसके सम्मुख पत्थर का ढोंका फेंकने पर भी उसे अंडे की भाँति सेने का उपक्रम करते पाया जाता है। कोई टिन का खाली डिब्बा ही फेंक कर उसके निकट कर दिया जाय तो वह उसे ही छाप कर अंडे की तरह सेने बैठ जाता है। इस

कृत्य में वह उल्लास का अनुभव करता है। प्रकृति ने अंतर्भावना प्रदत्त की है उसका अंध अनुगमन का ही यह परिणाम होता है। अंडे सेए जाने के लिए यह प्रकृतिदत्त अंतर्भावना उनकी जातियों को रक्षित करने के लिए कितनी आवश्यक है, परन्तु पक्षी अपने अंडे इस बात को समझ कर नहीं सेता कि उससे उसके वंश की रक्षा होती है। बल्कि पशुबुद्धि या अंतर्भावना से स्वतः अंडे पर बैठने या शिशु उत्पन्न होने पर उसे चारा चुगाने में प्रवृत्त होता है। ऐसी अंतर्भावना का अंध अनुगमन दक्षिणी ध्रुव प्रदेशीय पक्षी पेंग्विन में भी काल शीर्ष गंगाचिल्ली (डोमड़ा) की भाँति पाया जाता है। वह जननोत्तेजना के काल में अंडे के स्थान पर कोई वस्तु भी मिल जाने पर उसे सेने लग सकता है। अंडा न हो तो वह कोई हिमखंड ही लेकर सेने बैठ जाता है। यह कैसा विस्मय का व्यापार है। ऐसे उदाहरणों से कितना अधिक स्पष्ट हो जाता है कि पक्षियों में विवेक की भावना का अभाव ही होता है। उनके सारे कार्यकलाप केवल प्राकृतिक प्रेरणा अर्थात् अंतर्भावना से घड़ी की सुई की भाँति कतिपय निश्चित विधानों के अनुरूप संचालित होते रहते हैं। यदि ऐसा न होता तो टूटे अंडे के निरर्थक भाग, पत्थर के ढोंके, टिन के खाली डिब्बे या हिमखंड तक अंडे के स्थान पर पक्षियों द्वारा सेये जाने का उदाहरण देखने का हमें अवसर कभी भी न मिल सकता।

शाद्वल तुलिका (सीडो पिपिट) तुषार चटक (हेज स्पैरो) तथा काक आदि पक्षी कोयल की प्रवंचना के शिकार बनते हैं। कोयल अपने अंडे उन पक्षियों के घोंसले में रखती है। उन अंडों का कोई विरोध नहीं होता। उन पक्षियों के अंडों के स्थान पर कोयल के अंडे भलीभाँति सेए जाते हैं। यह तथ्य पक्षियों की वृत्ति समझ लेने पर स्पष्ट हो जाता है। जिन अंतर्भावनाओं से पक्षी पत्थर, टिन, बर्फ आदि के ढोंके सेने के लिए प्रवृत्त हो सकता है, उन्हीं अन्तर्भावनाओं के वश वे कोयल के बलात् पहुँचाए अंडे भी होते हैं और निकट ही पड़े हुए अपने अंडों की पहचान नहीं कर पाते या अंडों के बाहर फेंक दिए जाने पर कुछ क्षोभ का अनुभव नहीं करते किन्तु इतना ही नहीं, कोयल भी अपने अंडे इन पक्षियों के घोंसले में रख आने का जो कृत्य करती है, वह उन्हीं प्रकार की किन्हीं अंतर्भावनाओं से प्रेरित होता है जिस प्रकार की अंतर्भावनाओं से दूसरे पक्षी उन्हें सेते हैं। कोयल को बुद्धि रखने का श्रेय नहीं दिया जा सकता। जिस प्रकार अन्य पक्षी नहीं समझ पाते कि वे अपना अंडा सेते या अन्य पक्षी का, उसी प्रकार कोयल भी अपने अंडे यह विचार कर वहाँ नहीं रखती कि उसके सेने के परिश्रम से बचे और दूसरे पक्षी सेकर उसके शिशु का पालन करें, बल्कि अज्ञात रूप से प्रेरित होकर वह अंतर्भावना वश वहाँ रख आती है। यही कारण है कि पक्षी जगत में हमें भयंकर दृश्य भी देखने को मिलते हैं। कोयल के अंडे से जो शिशु उत्पन्न होता है वह पोषित होकर शाद्वल तुलिका, तुषार चटक आदि के नर-मादाओं की अपेक्षा चार गुना या पाँच गुना तक बड़ा हो जाता है, परन्तु उसे उस समय भी ये पक्षी कोई पराया पक्षी नहीं समझते। शिशु कोयल पक्षी इन पालक पक्षियों के शिशु टाँग पकड़ कर बाहर फेंक देता है। पालक पक्षी इन नृशंस कृत्यों का मर्म नहीं समझ पाते। अपने नेत्रों के सम्मुख थोड़ी दूर पर उनका आत्मज शिशु चिल्ला-चिल्ला कर यमपुरी का यात्री बनता रहता है, परन्तु उसे उठाकर घोंसले में रख लेने का ध्यान इन पक्षियों को नहीं आता। वे उसके निकट भी नहीं फटकते।

जिस प्राणी में बुद्धि होगी वह अपने शिशु की ऐसी उपेक्षा कर अन्य शिशु का पोषण करने में प्रवृत्त नहीं हो सकता, परन्तु ऐसे उदाहरण पक्षियों की बुद्धिहीनता स्पष्ट प्रदर्शित करते हैं। कोई माता अपने गर्भजात शिशु को सड़क पर विलखता पड़ा रहने दे और अन्य मानव सन्तान को लाड़-प्यार कर पालती रहे तो हमें जितना अधिक विस्मय हो सकता है वैसा ही विस्मय हमें इस पक्षी जगत के कृत्यों पर भी होता परन्तु उनमें केवल अन्तर्भावना के अन्ध-

अनुगमन से ऐसे दृश्य उपस्थित होते हैं। ये पक्षी अपना या पराया शिशु नहीं देखते, बल्कि यही देखते हैं कि उनके घोंसले में निर्दिष्ट स्थल पर कौन-सा शिशु है। उसी का उन्हें पोषण करना है। उस स्थान या स्थिति में पड़े शिशु की रक्षा और पोषण की अन्तर्भावना ही उन्हें मिली होती है। इसके आगे वे कुछ तर्क-वितर्क कर किस प्रकार अपना पराया समझें।

पक्षियों को कुछ सीख सकने में सर्वथा अक्षम नहीं कहा जा सकता परन्तु सीख सकने की मात्रा बहुत ही न्यून होती है। उनका अधिकांश जीवन व्यापार बिना सिखाये ही चलता है। उड़ना उनके जीवन का सबसे महत्वपूर्ण कृत्य है। परन्तु उसे भी उन्हें माता-पिता से सीख कर वायु में उड़ने की आवश्यकता नहीं पड़ती। माता-पिता पक्षी तो उनके उड़ने की अवस्था समझ कर घोंसले से नीचे ढकेल भर देते हैं। शिशु पक्षी पहले कुछ किंकर्तव्यविमूढ़ से ज्ञात होते हैं। परन्तु क्षण भर बाद ही किसी प्रकार पंख फटफटा कर अपना शरीर वायु में सँभाल लेते हैं और प्रकृतिदत्त अन्तर्भावना से ही स्वयंभू उड़ाकू बनकर शेष जीवन वायु विहरण कर व्यतीत करते रहते हैं।

प्रत्येक पक्षी जाति का विभिन्न स्वभाव होता है। कोई सदा भागदौड़ करता रहता है, कोई कुछ शान्त और गम्भीर होता है। किसी में भीरुता होती है तो कोई बिल्कुल निडर होता है। एक ही जाति के विभिन्न पक्षियों की प्रकृति में अन्तर भी एक साधरण बात है। एक ही जाति की कोई मादा अंडे के निकट किसी आगन्तुक के आते ही उड़ भागती है, दूसरी ऐसी भी हो सकती है कि निकट से उसका भली भाँति अवलोकन करते रहने पर भी उसे घबराहट नहीं होती। रक्तकण्ठ मञ्जूक (रेड थ्रोटेटे ड्राइवर) अंडे पर से आगन्तुक के आगे तुरन्त भाग उठने वाला पक्षी है। परन्तु एक पर्यवेक्षक ने इसी जाति के एक मादा को ऐसा देखा जो बरबस पैर से भगाये जाने पर ही अंडे से दूर हट सकी।

सौन्दर्य वृद्धि या विचित्रताओं के दृश्य भी पक्षी जगत में उल्लेखनीय हैं। एक अमेरिकीय शलभाश (फ्लाईकैचर) पक्षी अपने घोंसले में एक साँप की केंचुल सजाता है। यह कल्पना की जा सकती है कि यह व्यवस्था वह आक्रामकों को दूर रहने के लिए ही रखता होगा जो वहाँ साँप होने की आशंका कर भयभीत हो जायँ। परन्तु यूथिक बाज़ (बुजर्ड) तथा सुपर्ण (चील) आदि शिकारी पक्षी अपने घोंसले में हरी पत्तियों युक्त टहनियाँ लाकर रखते और उन्हें समय-समय पर बदलते दिखाई पड़ते हैं। अनेक पाणविक (प्लोवर) पक्षी घोंघे तथा चमकीले कङ्कड़ अपने हल्के आखातनुमा भूस्थित घोंसले के किनारों पर जमाते पाटते जाते हैं। यह छोटा गड्ढा ही उनके लिए अंडा देने का घोंसला होता है। किसी आदिकालीन सौन्दर्य वृत्ति का अवशेष ही उनकी अन्तर्भावना में रहकर ऐसे कृत्य करने में उन्हें प्रवृत्त करता होगा। इसी के फलस्वरूप दध्यक (मैगपाई), काक, तथा चोर कौवा (जैकडा) को सुन्दर चमकीली वस्तुएँ ला-लाकर घोंसले में संचित करते देखा जाता है। ये भावनाएँ न्यूनाधिक भी होती हैं। एक पाणविक पक्षी की जाति में ही कुछ पक्षी तो अपने घोंसले की अत्यधिक सौन्दर्य वृद्धि करते हैं, कुछ बिल्कुल ही न्यून करते किन्तु अधिकांश साधारण रूप में सजाते हैं।

पक्षी जननकाल में अपने जोड़े को आकृष्ट करने के लिए अनेक रूप के गायन, नृत्य, भावभंगी या कुछ वस्तुओं के आदान-प्रदान की क्रिया करते हैं। दक्षिण ध्रुव देशीय पक्षी पेंग्विन हिमाच्छादित प्रदेश में रहता है। अतएव अंडा देने के लिए घोंसला बनाने का आधार केवल पत्थर के ढोकों को पाता है। नर पेंग्विन उन्हें एकत्र कर मादा के लिए एक घिरौंदा-सा बना देता है। यह जनन-कार्य का प्रारंभ सा होता है। परन्तु इसके भी पूर्व पेंग्विन को पहले जोड़ा निश्चय करना पड़ता है। इसके लिए नर आमंत्रण स्वरूप एक पत्थर का ढोंका मादा के सम्मुख लाकर देता है। कदाचित कुछ अनुनय-विनय के पश्चात् इस प्रेम

भेंट को स्वीकार कर मादा उसको अपने जनन-कार्य में साथी बनाती है किन्तु यह भी देखा गया है कि जननोत्तेजक वृत्ति में होने पर जोड़ा न बना सकने पर पेंग्विन किसी कुत्ते या मनुष्य को ही पथरीले ढोंके की प्रेम-भेंट समर्पण करने का नृत्य कर दिखाता है। उसकी बुद्धिहीनता का यह ज्वलंत उदाहरण है।

नर पेंग्विन को प्रायः सैकड़ों गज की दूरी से परिश्रमपूर्वक मुख में रखकर पथरीले ढोंके घोंसला बनाने के लिए एकत्र करने पड़ते हैं। यह श्रमसाध्य कार्य है। कभी-कभी ऐसा होता है कि कोई नर पेंग्विन परिश्रम से बचने के लिए किसी पड़ोसी के ही एकत्र किये ढोंकों में से कोई ढोंका चुरा लाता है। जब इसका पता लग जाता है तो इस चोरी के लिए सारा पेंग्विन दल हंगामा मचा देता है और वह चोर सारे दल द्वारा दंडित होता है।

पेंग्विन पक्षी जिस भू क्षेत्र में रहते हैं, वहाँ पहले के युगों में अन्य जन्तु भी रहते होंगे, परन्तु तुषार युग के आगमन से कदाचित् जीवन कठिन हो गया और अन्य सभी जन्तु भाग कर जीवन रक्षा करने लगे या वहीं नष्ट हो गये परन्तु यह पक्षी न तो उड़ या दौड़कर भाग सकता था और न बहुत लम्बी जल यात्रा ही कर सकता था। अतएव वहीं पड़ा रहकर अपने वंश की रक्षा करने का प्रयत्न करने लगा। इस जीवन-सङ्घर्ष में पेंग्विन जीवित रहने में कठिनाई से सफल हो सका। इस जीवन-सङ्घर्ष में विजयी हो सकने में एक कारण कदाचित् अपने शिशु के प्रति माता पेंग्विन का अगाध प्रेम है। माता पेंग्विन अपने शिशु के लिए अपार वात्सल्य प्रेम रखने के कारण उसकी रक्षा के लिए अपना प्राण हथेली पर रखकर आपदाओं का सामना करती है। पर्यवेक्षकों ने देखा है कि इस अटूट स्नेह के ही कारण माता पेंग्विन अपनी संतान को दो वर्ष की आयु से, लगभग पूर्ण वयस्क हो जाने तक मुख में चारा चुगाया करती पाई जाती है।

पक्षियों के सम्बन्ध में यह विश्वास किया जाता है कि वे दुर्बल स्मरण-शक्ति ही रखते हैं। किसी दूसरे पक्षी के पहचानने की जहाँ तक बात है वह केवल छः या सात दिन तक स्मरण रखना भी कठिन हो सकता है। अधेड़ पक्षी तो इतनी अवधि तक भी स्मृति नहीं रख सकते। शिशु पक्षी अवश्य ही अपने माता-पिता को उस अवधि से अधिक तक स्मरण रख सकते हैं। एक लोमहर्षक उदाहरण विशेष उल्लेखनीय है। एक गङ्गाचिल्ली (डोमड़ा) पक्षी का शिशु भूल गया। कुछ दिनों बाद उसने अपने घोंसले से प्रवेश करने का प्रयत्न किया किन्तु माता ने उसका विरोध किया और बाद में उसे खा गई। इसका कारण केवल यह था कि अपने शिशु को पहचान सकने की स्मरण-शक्ति उस अवधि तक उसमें नहीं रह गई थी। एक अन्य तथ्य भी स्मरणीय है। पेंग्विन जल में निरन्तर मछली को आहार बनाते हैं। मछली को पानी से झपट कर तो खा जाते हैं किन्तु कोई मछली भूमि पर पड़ी हो तो उसे खाने की बुद्धि उनमें नहीं होती। वे स्मरण नहीं रख पाते कि भूमि पर पड़ी वही मछली उनका एकमात्र आहार है।

अबोध मानव शिशु अपनी परछाईं देखकर कभी-कभी भय खाते देखे जाते हैं। ऐसी भ्रांति पक्षियों में भी पाई जाती है। एक पर्यवेक्षक ने एक पक्षी को शीशे लगी खिड़की तक उड़ जाते देखा। खिड़की के शीशे में उसे अपनी परछाईं दीख पड़ी। बस क्या था, बार-बार उस प्रतिद्वन्द्वी पक्षी को सामने समझ कर शीशे पर चोंच मार-मारकर प्रहार करने लगा। जब खिड़की पर से परदा हटा दिया गया और पक्षी को शीशे में अपना प्रतिबिम्ब देख सकना सम्भव हुआ तभी वह शान्त हुआ।

कुछ उदाहरण ऐसे हैं जो पक्षियों की अपेक्षा चीटियों और मछलियों को अधिक बुद्धिमान सिद्ध करते हैं। चक्रव्यूह या भूलभुलैया-सा बनाकर जन्तुओं को ठीक मार्ग ढूँढ़ने की शिक्षा दी जाती है। मान लीजिये एक नली है, उसमें से फिर अगल-बगल

दो नलियाँ फूटकर दो ओर जाती है। एक केचुआ नली में चलना प्रारंभ करता है। जहाँ से शाखा नलियाँ फूटी हैं, उसे दो मार्ग मिलते हैं। वह उन दोनों में से किसी एक में जा सकता है। कुछ ऐसा प्रबन्ध रक्खा जाता है कि किसी एक ओर की शाखा नली में जाने पर केचुये को उसको अन्तिम छोर पर बिजली की धारा का धक्का पहुँचाया जाय। मान लीजिये दाईं ओर जाने पर बार-बार केचुए को बिजली का धक्का खाने को मिलता है। परन्तु बाईं ओर ऐसी बाधा नहीं है। अतएव कुछ बार धोखा खा लेने के बाद केचुआ केवल बाईं ओर जाना सीख जाता है। इसी तरह छः भुलावे के मार्ग की भूलभुलैया में ठीक मार्ग पकड़ने की परीक्षा में कबूतरों को सात बार प्रयत्न कराने पर कुछ सफलता मिली किन्तु चीटियाँ उसे सहज ही पार करने में सफल हो सकीं। ऐसी परीक्षाओं में अधिकांश पक्षी निबुद्धि सिद्ध होते हैं। मुर्गी के बच्चे को मछली से भी कम सफलता प्राप्त करते पाया गया।

पक्षियों की दृष्टि शक्ति तीव्र कही जाती है। वे विभिन्न ढाँचों को पहचान सकने में समर्थ जान पड़ती हैं। मुर्गी के बच्चे को वर्ग, वृत्त तथा त्रिभुज में अन्तर जान सकने में चूहे की अपेक्षा अधिक सफल पाया जा सका। रंग की भी कुछ विभिन्नता पहचान सकने में सफल दिखाई पड़ते हैं। विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि पक्षियों को गिनती कर सकने में समर्थ पाया जा सका है। आज की कुछ असभ्य मानव जातियों में पाँच तक गिनती करने की क्षमता का अभाव पाया जाता है, परन्तु पक्षी गिनती करने में उनसे आगे निकले सिद्ध होते हैं।

एक परीक्षण में मुर्गियों को सिखलाया गया है कि दाने की पंक्ति में से प्रत्येक तीसरे दाने को चुग ले। शेष दो दाने चिपका कर रखे होते। ऐसी सीख दे लेने के बाद जब बिना चिपकाये ही सब दानों की पंक्ति बनाई जाती तो पंक्तियों में से केवल तीसरे दानों को वे खा जाती। ऐसी शिक्षा किसी शिशु को ट्राफी या छोटी मिठाइयों के सम्बन्ध में दे सकने में सफलता प्राप्त करने की आशा नहीं की जा सकती।

मुनरो फाक्स नाम के प्रसिद्ध जन्तु विज्ञानवेत्ता ने एक परीक्षण का उल्लेख किया है जिसमें द्रोणकाक तथा तोते एकाकी रूप में दाना चुगाये जाते तो वे छः दानों तक को चुन कर खा जाते, किन्तु सातवाँ न छूते, क्योंकि उन्हें ज्ञात था कि पंक्ति में सातवाँ दाना चिपका कर रक्खा है। इस तरह के वे सात तक गिन सकते थे। इससे भी अद्भुत दृश्य देखा गया। कबूतरों को केवल पाँच दाने चुग लेने का अभ्यास कराया गया। इससे न्यून या अधिक दाना उन्हें नहीं चुगने दिया जाता। इतना सीख लेने पर एक गेहूँ के भंडार के निकट तीन दाने छींट दिये गये। एक कबूतर ने तीनों दाने चुग लिए। फिर वह गेहूँ की ढेरी में गया और वहाँ से दो दाना चुग लिया। पाँच का योग उसने पूरा कर लिया। यह विस्मय की बात ही थी। ꕥ

ꕥ ['बन-उपबन के पक्षी' किताब महल, इलाहाबाद]

विज्ञान समाचार

लकड़ी के बुरादे और छीलन का उद्योग

मैडिसन (विस्कौन्सिन) : औद्योगिक अनुसन्धान के फलस्वरूप, अमेरिकी वैज्ञानिक लकड़ी के बुरादे और काठ-कबाड़ से नई-नई उपयोगी वस्तुएँ तैयार कर रहे हैं और जिन चीजों के बारे में यह समस्या रहती है कि उन्हें कहाँ और कैसे संभाला जाये, उनसे नये नये कारोबार शुरू किये जा रहे हैं।

लकड़ी की पतली परतों को सरेस से एक साथ मिला कर तथा अन्य नई विधियों के जरिये वैज्ञानिक घटिया किस्म की लकड़ी को समुद्रों में चलने वाले मजबूत जहाजों, कोमल वाद्ययन्त्रों, फाउंटेनपैन के खोलों और टैलिफोन रिसीवरों के निर्माण में इस्तेमाल करके उन धातुओं की बचत करते जा रहे हैं जिनकी दूसरे कार्यों के लिए बहुत अधिक आवश्यकता है।

कोयला—(पृष्ठ १६ का शेषांश)

जिनसे बनी १५०० वस्तुओं में ७५% रंजक पदार्थ तथा २५% औषधियाँ, भिन्न-भिन्न प्रकार के इत्र तथा विस्फोटक पदार्थ होते हैं।

बेन्जीन का प्रयोग रबड़ उद्योग में, कपड़े साफ करने में होता है। इसी के आधार पर एक विस्फोटक पदार्थ टी० एन० टी० तैयार किया गया है। नेफ्थलीन से गर्म कपड़ों में रखने वाली सफेद गोलियाँ तथा नाना प्रकार के रंग तैयार होते हैं। अंगारिन (एंथ्रेसीन) से एक प्रकार का लाल रंग बनाया जाता है। कार्बोलिक एसिड का प्रयोग एस्प्रीन बनाने में होता है। इनके अतिरिक्त डामर से प्राप्त स्याही कृत्रिम सिल्क, साबुन आदि भी उल्लेखनीय हैं।

कोयले से सर्वप्रथम पेंसिल तथा शुष्कांगार ब्रिटेन में तैयार किये गए थे। डामर से सर्वप्रथम रंजक बनाने वाले सर एस० डब्ल्यू० एच० पर्किन थे, जिन्होंने सन् १८५६ में प्रथम बार रंग बनाया। केन्द्रीय ईंधन अनुसंधानशाला में निम्न श्रेणी के कोयले से एक प्रकार का संश्लित तेल बनाने का प्रयास किया जा रहा है। कोयले को तेल में डालकर वैज्ञानिक रीति से एक प्रकार का ईंधन तैयर किया गया है जो साधारण ईंधन से कहीं अधिक उपयोगी होगा। कोयले को साफ करने तथा उससे विभिन्न उपयोगी पदार्थ तैयार करने में अब काफी प्रगति हो चुकी है।

केन्द्रीय सरकार ने कोयला उत्पादन को काफी प्रोत्साहन दिया है और कोयले के अधिकांश भाग को जनता की सेवा में प्रयोग करने की घोषणा की है। भारतीय कोयले का तिहाई भाग भारतीय रेलों में व्यय हो जाता है शेष का चौथा भाग अन्य उद्योगों में काम आ जाता है। केवल $\frac{1}{10}$ भाग घरेलू धंधों के लिए बचता है।

अभी हाल ही में कोयला उद्योग में दो बड़े ही महत्वपूर्ण कार्य हुए जिनमें पहला कोयले के निर्यात पर योरप में हुई कोयले की कमी के बाद नियन्त्रण था। १९५१ में २६०००००० टन कोयले का निर्यात हुआ। और दूसरा कार्य ८ जनवरी, १९५२ को एक विधान बना जिसके अधीन कोयले की सुरक्षा तथा संचय, कानूनबद्ध हो गया और केन्द्रीय सरकार का अधिकार कोयले की खानों पर हो गया।

भारतीय सरकार के 'औद्योगिक नीति प्रस्ताव' के अनुसार 'कोयला,' राष्ट्र के उन उद्योगों में से एक है जिस पर राष्ट्र की अन्य महत्वपूर्ण योजनाओं की नींव रखी जा सकती है।*

*आकाशवाणी के इलाहाबाद केन्द्र से प्रसारित

अमेरिकी अनुसन्धान के परिणामों का स्वतन्त्र संसार के बहुत से देशों के वैज्ञानिकों द्वारा दिलचस्पी के साथ अध्ययन किया जा रहा है। हाल में जिन सिद्धान्तों को लेकर नये कार्य किये गये हैं, उनके बारे में देहरादून (उत्तरप्रदेश) की वन-अनुसन्धानशाला और कालेज को बराबर सूचना प्राप्त होती रहती है। देहरादून की संस्था भारत की परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुए इन विधियों का लाभ उठाने के लिए प्रयत्नशील है।

यह अनुसन्धान मुख्यतः इस दृष्टि से किया जा रहा है कि लकड़ी काटने और चीरने से जो बहुत सा बेकार बुरादा या छीलन जमा हो जाता है, उसका किस प्रकार सदुपयोग किया जाये। जिस किसी भी पेड़ को काटा जाता है, उसका दो-तिहाई अंश बेकार हो जाता है और जिस किसी लट्ठे को चीरा जाता है, उसमें से लगभग १५ प्रतिशत सिर्फ बुरादे के रूप में निकल जाता है। वनों के प्रबन्धक और संरक्षक बहुत समय से यह कह रहे हैं कि इन कारणों से संसार के बड़े-बड़े जंगल शीघ्र ही समाप्त हो जायेंगे।

बहरहाल, आज लकड़ी के बुरादे, लकड़ी के छोटे-छोटे टुकड़ों तथा फेनोलिक रेजिन (एक रासायनिक मिश्रण) को मिलाकर सस्ता प्लास्टिक तैयार किया जाता है। यह प्लास्टिक फाउन्टेनपैन के खोल, टैलिफोन रिसीवर तथा अन्य बहुत सी चीजें बनाने के काम आता है।

लकड़ी के इन छोटे-छोटे टुकड़ों, बुरादे तथा अन्य बेकार अंश से उपयोगी चीजें ही तैयार नहीं की जातीं, बल्कि उनसे और भी बड़े फायदे उठाये जाते हैं। एक पीढ़ी पहले जिस लकड़ी को बढ़ई बेकार समझकर फेंक देते, उसी को आज पहले से भी अधिक मजबूत बना दिया जाता है।

यह कार्य लकड़ी की पतली परतों को एक साथ मिलाकर किया जाता है और इन परतों को मिलाने के लिए नई प्रकार की सरेसें इस्तेमाल की जाती हैं। इनमें 'गौल्प्रेस १०' एक खास किस्म की सरेस है, जो सामान्य तापमान में लकड़ी को १० मिनट के अन्दर जोड़ देती है। इस पर पानी का कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता और इससे जोड़ी गई लकड़ी दूसरी लकड़ियों से बहुत ज्यादा मजबूत होती है। अब घटिया किस्म की लकड़ी के छोटे-छोटे टुकड़ों को लेकर उससे सीधा या घुमावदार कैसा भी मजबूत शहतीर तैयार किया जा सकता सकता है। इस लकड़ी से सस्ते और मजबूत जहाज तैयार किये जा सकते हैं।

मकान बनाने में धातु और लकड़ी को भी मिलाकर इस्तेमाल किया जा सकता है। कंक्रीट और इस्पात के क्षेत्रों में हुई प्रगतियों के बावजूद, भविष्य में बहुत सी इमारतों के फर्श, दीवारें और छतें इसी ढंग से तैयार हुआ करेंगी।

बेकार लकड़ी से एक और चीज भी तैयार की गई है। इसे 'पेपरेग' कहते हैं। यह इतना सख्त होता है कि इसे धातु काटने वाले औजारों से ही काटा जाता है। 'पेपरेग' का प्रयोग हवाईजहाजों के पंखे, हवाईजहाजों की कुर्सियाँ तथा बड़े माल-वाही विमानों के फर्श तक बनाने में किया जाता है।

लकड़ी को आज जिन बहुत से कार्यों में इस्तेमाल किया जा रहा है, वह सब रासायनिक विधियों के कारण ही सम्भव हुआ है। रासायनिक विधियों का प्रयोग किये जाने से लकड़ी न तो फूलती-सिकुड़ती है और न उस पर दीमक, आग आदि का ही कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के तौर पर, यदि लकड़ी के सलीपर पर रासायनिक द्रव्य छिड़क दिया जाये तो उसकी आयु सम्भवतः ६ वर्ष और बढ़ जायेगी।

और मोटरगाड़ियों के इस युग में, एक नई प्रगति यह हुई है कि अब घोड़ों की नाल लकड़ी की लुगदी से बने कागज और सीमेंट को मिलाकर बनाई जाने लगी है।

भारत के चमड़ा-उद्योग का भविष्य

एक सरकारी अनुसन्धान संस्था में चमड़े के बारे में खोजबीन करने वाले भारतीय टैक्निशियनों के प्रयत्नों से इस देश को निर्यात-व्यापार द्वारा विदेशों से भारी आय का एक नया साधन प्राप्त हो जायेगा। बकरे की खाल को कमाने की अमेरिकी विधि को अपनाने और उसमें अनेक सुधार कर लेने के परिणामस्वरूप भारत शीघ्र ही ऐसी स्थिति में हो जायेगा, जब कि वह बकरों की बिना कमाई हुई सस्ती खालों के स्थान पर बकरे-बकरियों का मंहगा और चमकाया हुआ चमड़ा बाहर भेज सकेगा।

चूँकि भारत में प्रतिवर्ष बकरे-बकरियों की २,२६,००,००० खालें सुखाई जाती हैं (इनमें से १ करोड़ ७० लाख खालें अमेरिका भेजी जाती हैं) इसलिए चमड़ा-उद्योग की दृष्टि से भारत में विकास की बड़ी गुंजाइश है। यदि भारत संसार के लिए अन्य देशों के मुकाबले में चमड़े की बढ़िया चीजें तैयार कर सके तो उसका परिणाम यह होगा कि भारत के बहुत से कारीगर काम पर लग जायेंगे और देश को बड़ी भारी आय होने लगेगी।

७० साल पहले अमेरिकी रसायन-शास्त्री औगस्टस शुट्ज ने एक ऐसी विधि का आविष्कार किया था जिससे रुपहले, सुनहरे तथा अन्य रंगों में छोटी आयु के बकरे का चमकाया हुआ चमड़ा तैयार करना और उसे व्यवहार में लाना सम्भव हो गया।

यहाँ की 'केन्द्रीय चर्म अनुसंधान संस्था' ने चमड़ा कमाने के लिए मूल शुट्ज विधि को ही अपनाया है और भारत की परिस्थितियों के अनुसार उसमें आवश्यक सुधार कर लिये हैं. 'केन्द्रीय चर्म अनुसंधान संस्था' एक बहुत बड़ी इमारत में है—चमड़े के बारे में खोजबीन करने वाली संसार की किसी अन्य संस्था के पास इतनी बड़ी इमारत नहीं है।

नई विधि उन सात विधियों में से है जिनका विकास इस संस्था द्वारा किया गया है। संस्था ने चमड़ा कमाने वालों के लिए पुस्तिका प्रकाशित की है, जिसमें इन विधियों के बारे में सब बातें समझा दी गई हैं। जो लोग स्वयं संस्था में पहुँच कर इन विधियों को मालूम करना चाहते हों, उनके लिए वहाँ इन विधियों के प्रदर्शन की व्यवस्था कर दी जाती है।

शुट्ज-विधि के अन्तर्गत बकरे की खाल को हैंडबैग जूतों तथा अन्य खूबसूरत चीजों में इस्तेमाल होने वाले चमड़े में परिवर्तित करने के लिए ४० से अधिक प्रक्रियाओं में से गुजारना पड़ता है। इस विधि की सफलता का कारण यही नहीं कि इससे बहुत अच्छा चमड़ा तैयार हो जाता है. बल्कि इसका एक कारण यह भी है कि इसमें बहुत कम लागत बैठती है।

'ग्लेज्ड किड लैदर' नाम से प्रसिद्ध चमड़े को तैयार करने के लिए बकरे की खाल की आवश्यकता होती है। संसार में सबसे अधिक बकरे-बकरियाँ भारत और दक्षिण अफ्रीका में पाये जाते हैं। ये देश दूसरे देशों को काफी बड़ी मात्रा में बकरे की खालें मुहैया कर सकते हैं। अमेरिका में इस चमड़े के उद्योग का जो उल्लेखनीय विकास हुआ है उसका एक बड़ा कारण यह है कि उसे भारत और दक्षिण अफ्रीका से खालें प्राप्त हो जाती हैं।

किन्तु खाल को खूबसूरत चमड़े में तब्दील करना और फिर चमड़े की बढ़िया चीजें तैयार करना कोई सरल काम नहीं है। और इस बात को अनुसंधान संस्था के निर्देशक श्री बी० एम० दास से बेहतर और कोई नहीं जानता। श्री दास पिछले ३० सालों से इस काम को कर रहे हैं और उन्होंने जर्मनी, इङ्गलैंड तथा अमेरिका में जाकर इस बारे में शिक्षा प्राप्त की है।

अधिकांश आधुनिक विकास-कार्यों की भांति,

इस कार्य के लिए भी मशीनें आवश्यक हैं। चमड़ा कमाने का काम करने वाले भारतीय इस समस्या को फिलहाल मौजूदा मशीनों के सम्मिलित प्रयोग द्वारा ही हल कर सकते हैं। यदि किसी इलाके के सभी चमड़ा कमाने वाले आपस में यह निश्चय कर लें कि उनके पास रंग करने और चमड़ा चमकाने की जो थोड़ी सी मशीनें हैं उनका इस्तेमाल वे मिलजुल कर करेंगे तो प्रगति की दिशा में एक बड़ा कदम उठाया जा सकता है। दूसरे देशों को बकरे की खालों के बजाय चमकाया हुआ चमड़ा बेच कर भारतीय लोग अधिक मूल्य प्राप्त कर सकते हैं। उससे वे नई मशीनें खरीद सकेंगे और भारतीय चमड़ा-उद्योग के निर्माण की दिशा में एक और कदम उठा सकेंगे।

रतुआ निरोधक गेहूं

एन० पी० ८०६। इस नाम से चौंकिये नहीं। यह कोई गुप्त संकेत नहीं, बल्कि गेहूँ की एक किस्म का नाम है। इस गेहूँ को रतुआ नहीं लगता। गत ३० वर्षों तक यह किस्म भारतीय कृषि गवेषणा शाला के वैज्ञानिकों के लिए स्वप्नवत् बनी रही। इस किस्म का गेहूँ बहुत बढ़िया होता है और इसकी पैदावार भी अच्छी होती है। साथ ही किसी तरह का रतुआ इस पर असर नहीं करता। संसार में इस तरह के गेहूँ की यह शायद पहली किस्म है।

भारत में गेहूँ की खेती प्राचीन काल से होती आयी है। गेहूँ की तीन मुख्य किस्में हैं इसमें से 'ब्रेड' किस्म का गेहूँ उत्तर पश्चिम भारत और अफगानिस्तान से, 'मकरोनी' अबीसीनिया से और 'ईकोर्न' एशिया माइनर से आया है।

आजकल देश में २ करोड़ ४० लाख एकड़ भूमि में गेहूँ की खेती होती है और औसतन ६५ लाख टन गेहूँ पैदा होता है किन्तु और देशों की अपेक्षा हमारे देश की प्रति एकड़ पैदावार (६०० पौंड) बहुत ही कम है। पैदावार कम होने के कई कारण हैं, इनमें से सबसे बड़ा कारण है अच्छी किस्मों की कमी।

इस शताब्दी के शुरू में पूसा (बिहार) की राजकीय कृषि अनुसन्धान शाला के एक दम्पति, श्री और श्रीमती अलबर्ट होवार्ड ने बढ़िया किस्म का गेहूँ पैदा करने का प्रयास आरम्भ किया। खेतों और प्रयोगशाला में वर्षों तक कार्य करने के परिणामस्वरूप एन० पी० ४ और एन० पी० १२ किस्में निकाली गयीं। ये दोनों किस्में उच्चकोटि की सिद्ध हुईं और अंतरराष्ट्रीय प्रदर्शनियों में एन० पी० ४ पर पुरस्कार भी प्राप्त हुये। आस्ट्रेलिया आदि बड़े-बड़े देशों ने भी वर्षों तक इन किस्मों को अपनाया।

१९३५ के आस पास भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् और भारतीय कृषि गवेषणा शाला ने गेहूँ की बीमारियों के बारे में गवेषणा कार्य शुरू किया। गेहूँ के पौधों की बीमारियों से देश को हर साल भारी हानि उठानी पड़ती है। इनमें सब से खतरनाक रतुआ है। अकेले रतुये से ही हर साल ५ करोड़ रु० की हानि होती है।

रतुआ, काला, बादामी और लाल, तीन किस्म का होता है। विदेशों में एक अधिक से अधिक दो किस्म का रतुआ देखा जाता है पर उत्तर भारत में, जो गेहूँ उपजाने वाला क्षेत्र है, तीनों किस्मों और अनेक जातियों का रतुआ गेहूँ को लगता है। रतुए की विभिन्न जातियाँ इतनी मिलती जुलती होती हैं कि अणुवीक्षण यन्त्र से भी नहीं पहचानी जा सकतीं। पर अलग-अलग जातियों का गेहूँ की विभिन्न किस्मों पर भिन्न-भिन्न असर होता है। वैसे केवल काला रतुआ ही २०० से अधिक प्रकार का होता है।

भारत में रतुए से छुटकारा पाने के लिए किये जाने वाले कार्य के दो भाग किये गये। पहले कार्य का उद्देश्य रतुआ निरोधक गेहूँ की अलग-अलग किस्में तैयार करना और दूसरे एक ऐसी किस्म का पता लगाना था जिस पर तीनों में से कोई भी किस्म

का रतुआ असर न कर सके और साथ ही वह किस्म बढ़िया और अधिक उपज वाली भी हो।

तीन साल पहले इस तरह का गेहूँ पैदा किया गया और देश के विभिन्न भागों में जांच के लिए भेजा गया। सभी जगह, विशेषकर उत्तर पश्चिम के पहाड़ी क्षेत्रों में, यह गेहूँ अच्छा पनपा।

गेहूँ की गवेषणा के काम में शिमला के केन्द्र का मुख्य हाथ रहा। १९३५ में यहाँ साधारण पैमाने पर गवेषणा कार्य शुरू किया गया था। गेहूँ की विभिन्न नयी किस्में देश के अलग-अलग भागों के अनुकूल सिद्ध हुई हैं। एन० पी० ७१० मध्य भारत, उत्तर प्रदेश, और सौराष्ट्र में अच्छा पनपता है। एन० पी० ७१८ दिल्ली और राजस्थान में तथा एन० पी० ७७०, जो दिल्ली में ही तैयार किया गया है, हिमाचल प्रदेश और दूसरे ऊँचे स्थानों के लिए उपयुक्त पाया गया है।

पूसा (नयी दिल्ली) की भारतीय कृषि गवेषणा शाला में जब काँच का ऐसा घर तैयार हो जायगा जिसमें ताप और प्रकाश को नियन्त्रित किया जा सकेगा तो साल में गेहूँ की तीन फसलें तैयार करने के परीक्षण किये जायँगे और वह भारत में गेहूँ सम्बन्धी गवेषणा के इतिहास का एक विशेष अध्याय होगा।

टमाटरों की खेती

अमेरिका में लोगों को अपने घरों के बागीचा में टमाटर लगाने का बहुत अधिक शौक है। १९५३ में बाजारों में ताजी सब्जी के रूप में बेचने के लिए लगभग २,३५,५५० एकड़ भूमि में तथा डिब्बों में बन्द करने तथा रस आदि निकालने के लिए २,९२,३०० एकड़ से अधिक भूमि में टमाटर की खेती की गयी थी। १९५३ में ताजा टमाटरों की बिक्री के लिए ९,०१,६३६ टन तथा अन्य कार्यों के लिए लगभग ३२,४१,८३० टन टमाटर पैदा किये गये थे।

बाजारों में ताजी सब्जी के रूप में बिक्री के लिए ३४ राज्यों में टमाटर की खेती की जाती है। कैलिफोर्निया, फ्लोरिडा तथा टैक्सास में अगेते (पतझड़, शीतकाल तथा वसन्त के आरम्भ में) सबसे अधिक टमाटर पैदा किये जाते हैं। न्यूयार्क, न्यूजर्सी तथा मिशिगन में पछेते (ग्रीष्म ऋतु के अन्त तक) टमाटर पैदा दिये जाते हैं। १९५३ में कैलिफोर्निया में डिब्बों में बन्द करने तथा रस निकालने के लिए सबसे अधिक (१४,२५,६०० टन) टमाटर पैदा किये गये थे। इसके अलावा इंडियाना में ३,०४,२०० टन, न्यूजर्सी में २,९९,२०० टन, ओहायो में २,३४,३०० टन तथा पेन्सिल्वेनिया में २,०८,३०० टन टमाटर पैदा किये गये थे।

टमाटरों में आहारतत्व

अमेरिका में टमाटरों को भोजन के रूप में समझा जाता है। केवल महक एवं सुन्दर आकृति के कारण ही नहीं बल्कि इसलिए कि उनमें विटामिन-ए तथा विटामिन-सी की भी बहुत अधिक मात्रा होती है। ताजे टमाटरों में प्रतिपौण्ड निम्न पोषण तत्व पाये जाते हैं। आहार शक्ति की ९१ कैलोरियां; ४ ग्राम प्रोटीन, १·२ ग्राम चिकनाई तथा १९ ग्राम कार्बोहाईड्रेट; ४४ मिलिग्राम कैल्शियम (चूना); १०८ मिलिग्राम फास्फोरस तथा २·४ मिलिग्राम लौह; विटामिन-ए की ४३८० इण्टर नेशनल यूनिटें; ·२४ मिलिग्राम थायामिन; ·१९ मिलिग्राम रिबोफ्लेविन; २·५ मिलिग्राम नायासिन (तीनों बी विटामिन); और ९३ मिलिग्राम एस्कोर्बिक एसिड (विटामिन-सी)।

टमाटर का उत्पत्तिकाल

अमेरिका के कृषि-विभाग का कहना है कि जहा तक पता लगाया जा सकता है, टमाटर बहुत सी अन्य फसलों की अपेक्षा एक बहुत नयी फसल है। इसे प्रायः ४२५ वर्ष से भी कम समय से बोया जाने लगा है। टमाटर अमेरिका के उष्ण प्रदेश में सर्वप्रथम पैदा किया गया था और पहले के समाचारों से पता चलता है कि यह मक्का के खेतों में बोया

जाता था। प्राचीन मैक्सिकन खाते थे, और वे इसे टोमाटी कहते थे।

यूरोप में १६ वीं सदी के प्रारम्भ में टमाटर बोया जाने लगा था और शीघ्र ही इसकी व्यापक रूप से खेती की जाने लगी। १७ वीं सदी में इंग्लैण्ड में केवल सजावट के लिए टमाटर बोया गया था, हालांकि अन्य स्थानों पर लोग इसे खाते भी थे। १८ वीं सदी के अन्त में इसे इटली में व्यापारिक फसल के रूप में बोया जाने लगा था टौमस जैफर्सन (१७४३-१८२६) ने वर्जिनिया में १७८१ में टमाटर पैदा किये और कहा जाता है कि जौर्ज वशिंगटन (१७३२-१७६६) ने स्वाधीनता के संग्राम के समय टमाटरों को सेना के राशन में प्रयुक्त किया था, किन्तु उसके लगभग ५० वर्ष गुजरने के बाद ही अमेरिका में टमाटर को आहार के रूप में समझा जा सका।

आरम्भ में जब केवल घरेलू बागीचों की छोटी-छोटी क्यारियों में टमाटर बोये जाते थे, तब उनके सम्बन्ध में रोगों की कोई समस्या उत्पन्न नहीं हुई थी। प्रारम्भ में अमेरिका में टमाटर के आकार को बड़ा करने, उसकी शक्ल एवं रंग में सुधार करने तथा उसके उत्पादन को बढ़ाने के सम्बन्ध में प्रयत्न किये गये। किन्तु २० वीं सदी के प्रारम्भ में टमाटर का व्यवसाय कुछ क्षेत्रों में जोर पकड़ गया था और वहाँ टमाटर के पौधों को लगनेवाली बीमारियों का प्रकोप निरन्तर बढ़ता जा रहा था।

अमेरिका के कृषि-विभाग ने यह अनुभव किया कि टमाटर को लगनेवाले रोगों पर नियन्त्रण करने का काम एक समस्या का रूप धारण कर चुका है। १६१५ में उसने रोगों का मुकाबला करनेवाली किस्मों को अलग छाँटने की एक योजना प्रारम्भ की। अमेरिका के सभी भागों के लिए टमाटर की अनुकूल किस्मों को मालूम करने के लिए कृषि-विभाग ने समूचे अमेरिका में बहुत-सी प्रयोगशालाओं में अनुसन्धान-कार्य शुरू कराया। अमेरिका के राज्यीय कृषि-कालेजों तथा राज्यीय प्रयोगशालाओं में भी अनुसन्धान-कार्य सम्पन्न किया गया। पौधों के सम्बन्ध में पेरू तथा दक्षिण अमेरिका के अन्य देशों में जा कर अनुसन्धान करने वाले लोगों ने भी इस इस कार्य में सहयोग दिया।

रोगों के प्रभाव से मुक्त टमाटर

टमाटरों के सम्बन्ध में अनुसन्धान किये जाने के फलस्वरूप १६५४ की कुछ बीज-सूचियों में रोगों के असर से मुक्त रहने वाले टमाटरों की कुछ किस्मों का विज्ञापन किया गया है। उदाहरण के तौर पर, एक पश्चिमी बीज गृह ने अपनी १६५४ की सूची में कीड़ा लगने की बीमारियों का मुकाबला करने वाली टमाटर की ८ किस्मों का विज्ञापन दिया है।

टमाटर की ये किस्में रोगों के प्रभाव से मुक्त तो हैं, पर फिर भी उन पर कभी-कभी रोगों का असर हो जाने से उन्हें हानि पहुँच ही जाती है। अमेरिकी कृषि-विभाग के अनुसार पान अमेरिका, साउथ-लैण्ड, होमस्टैड, काल २५५, मनाहिल, मनासोटा, फोर्चुन, बून, टिप्टन, कोकोमो, टकर, सनरे, गोल्डन स्फायर तथा जैफर्सन नामक टमाटर की किस्मों में "रोगों का मुकाबला करने की बहुत अधिक क्षमता" होती है।

टमाटर के रोगों पर नियन्त्रण के अन्य तरीके

अदल बदल कर खेती करना—ऐसा समझा जाता है कि रोगों की रोकथाम के लिए यह आवश्यक है कि टमाटर के खेतों में अदल-बदल कर के खेती की जाये। टमाटर की फसल के बाद टमाटर न बो कर किसी अन्न, घास अथवा मक्का की खेती करनी चाहिये। बदल कर बोने वाली फसलों में मिर्च, एगप्लान्ट अथवा आलू नहीं बोने चाहियें, क्योंकि इन पौधों से कुछ विशेष रोगों के फैलने का खतरा रहता है।

तम्बाकू के असर से बचाना—इसके अलावा न्यूजर्सी प्रयोगशाला के द्वारा की गयी पड़ताल के अनुसार, किसी भी तम्बाकू पीने वाले व्यक्ति को अपने हाथ धोये बगैर टमाटर के पौधों को नहीं छूना चाहिये।

तम्बाकू के विषाणु खाने के तथा पाइप, सिगार और सिगरेट के तम्बाकू की सूखी पत्तियों में वर्षों तक क्रियाशील रहते हैं। इसलिए तम्बाकू पीने वालों के हाथों में विषाणु लगे रहने से अच्छे पौधों को रोग लग कर गोदाम या खेत में फैल सकता है।

रोगमुक्त भूमि—जब कभी सम्भव हो, ऐसी भूमि में टमाटर की खेती की जानी चाहिये जहाँ पहले रोगग्रस्त पौधों की पैदावार न हुई हो। यदि ऐसा सम्भव न हो तो पहले भूमि को फार्मलडिहाइड या क्लोरोपिकरीन या भाप द्वारा रोगाणुओं से मुक्त कर लेना चाहिये।

बीजों को दवाई से धोना—बीज बोने से पहले रासायनिक द्रव्यों द्वारा उन्हें रोगाणुओं से मुक्त किया जा सकता है।

कीटमार दवा का छिड़काव—जब टमाटर की किस्म रोग का मुकाबला करने वाली न हो तो रासायनिक द्रव्य छिड़क कर उसे रोगाणुमुक्त कर देना चाहिये। टमाटरों को हानि पहुँचाने वाले कीड़ों को नष्ट करने के लिए भी रासायनिक द्रव्यों का छिड़काव कर लेना चाहिये।

टमाटर को हानि पहुँचाने वाला सबसे बुरा कीड़ा "टमाटो फ्रूट वर्म" है जो "कौटन बोलवर्म" या "कौर्न इयरवर्म" के नाम से प्रसिद्ध है। यह अमेरिका के सभी भागों में पाया जाता है और कई अन्य फसलों पर पलता है। जिनमें कपास तथा मक्का भी शामिल हैं। इसे नष्ट करने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि तीन बार डी डी टी के पाउडर को छिड़का जाये। सबसे पहले उस समय जब पौधा एक से दो फुट तक ऊँचा हो फल लगने आरम्भ हो गये हों, और फिर १४-१४ दिन के अन्तर से दूसरी तथा तीसरी बार पाउडर छिड़का जाना चाहिये।

कुछ अन्य सुझाव

डेलावेयर के एक अनुसन्धानकर्ता वाटिका विशेषज्ञ का कहना है कि टमाटरों को फासला छोड़ कर बोना चाहिये क्योंकि उन को फैलने के लिए काफी स्थान की आवश्यकता होती है। उस की सिफारिश है कि टमाटर के सामान्य पौधों को १२ से १५ वर्ग फुट के फासले से लगाना चाहिये तथा कम फैलने वाले पौधों को १० से १२ वर्ग फुट के फासले से बोना चाहिये।

न्यूजर्सी के एक विशेषज्ञ का कहना है कि टमाटरों को अधिक जल्दी तैयार करने के लिए बहुत अधिक रासायनिक खाद नहीं डालना चाहिये, क्योंकि अधिक रासायनिक खाद डालने से हो सकता है कि पौधे में जल्दी फल लगने के बजाय उसकी बेलें व पत्तियां खूब फैल जायें और बहुत अधिक पत्तियाँ निकल आयें। उसका सुझाव है,कि कम मात्रा में रासायनिक खाद, और विशेष रूप से नाइट्रोजन, ऋतु के शुरू में फलों के पहले ३ अथवा ४ गुच्छों के निकलने से पहले डाला जाना चाहिये। इसके बाद पौधे के एक और अथवा दो और या तीन और अतिरिक्त खाद डाली जा सकती है। खाद की मात्रा तथा समय पौधों की वृद्धि को देख कर तय की जानी चाहिए।

त्रिशूली विद्युत योजना

हिमालय की गोद में स्थित नैपाल राज्य में विद्युत-शक्ति के विस्तार के लिए काफी क्षेत्र है। यहाँ, सुन्दरी जल और फर्प, दो बिजली घर हैं। इन दोनों बिजली घरों से लगभग ४० किलोवाट बिजली तैयार की जाती है, बाकी गर्मियों के चार महीनों में पानी की कमी के कारण विद्युत-उत्पादन का काम बन्द कर दिया जाता है। इस क्षेत्र में बिजली की बढ़ती हुई माँग को पूरा करने के लिए त्रिशूली विद्युत योजना बनायी गयी है।

१९५३ में नैपाल सरकार ने विद्युत-शक्ति का और अधिक विस्तार करने का प्रस्ताव रखा था। इस विस्तार की योजना का निरीक्षण करने के लिए नैपाल सरकार के आग्रह पर, सितम्बर १९५३ में भारत के दो इंजीनियर नैपाल गये थे।

त्रिशूली नदी तिब्बत से निकलकर, नैपाल होती हुई, गण्डक में आकर मिलती है। यह नदी, काठमाण्डू से ६ मील दूर, त्रिशूली बाजार के १७०० वर्गमील में फैली हुई है। इसमें से ११०० वर्गमील तिब्बत और ६०० वर्गमील नैपाल राज्य के अन्तर्गत है। यह नदी कई स्थानों में काफी ढलवां स्थानों से होती हुई बहती है, जिसके कारण यहाँ बिजली घर बनाने के लिए काफी सुविधा है।

योजना की मुख्य-मुख्य बातें

त्रिशूली बाजार से ३ मील ऊपर औंतर गाँव में, नदी के ऊपर ५० फुट ऊँचा बाँध बनाने का विचार है, जिससे १००० घनफुट पानी प्रति सेकन्ड उस नहर में जा सके, जिसके द्वारा बिजली तैयार की जायगी। यह नहर बाँध के दाहिनी ओर से निकलने के बाद, औंतर से आगे मुड़कर, त्रिशूली बाजार के कुछ नीचे, एक कृत्रिम झील में मिल जायगी। इस झील से नलों के द्वारा, नीचे बने बिजली घर को, पानी पहुँचाया जायगा। यहाँ १०,००० किलोवाट बिजली निरन्तर तैयार की जा सकेगी।

अनुमान है कि इस क्षेत्र में लगभग ६,००० किलोवाट बिजली की आवश्यकता पड़ेगी। इसके लिए अभी तीन-तीन हजार किलोवाट के तीन यूनिट लगाये जायेंगे। बाद में अधिक मांग होने पर और भी यूनिट लगाये जा सकेंगे।

इस योजना में लगभग ३ करोड़ रु० व्यय होगा। काठमांडू से योजना-स्थल तक, त्रिशूली बाजार से होती हुई, ३० मील लम्बी सड़क बनाई जायगी। उक्त व्यय के अतिरिक्त, इस सड़क पर ६० लाख रुपया और खर्च होगा। भारत सरकार ने, इस योजना को कार्यान्वित करने के लिए, नैपाल सरकार को अनुदान के रूप में सहायता देना स्वीकार किया है। आशा है कि यह योजना चार वर्ष में पूरी हो जायगी। त्रिशूली बिजलीघर बनने के बाद, हमारे पड़ोसी मित्र-देश की बिजली की घोर कमी दूर हो जायगी।

('भगीरथ' के सौजन्य से)

प्राप्ति स्वीकार

पानी बोला—ले० श्री रामचन्द्र तिवारी और सिद्धि तिवारी, मूल्य २); प्रकाशक—आत्माराम एण्ड संस, काश्मीरी गेट, दिल्ली।

विज्ञान-प्रगति—प्रकाशक—कौंसिल आफ साइंटिफिक एंड इंडस्ट्रियल रिसर्च, दिल्ली, मूल्य ५) वार्षिक, प्रति अंक ॥)

विषय-सूची

नागरी प्रेस, दारागंज, प्रयाग

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

१—विज्ञान प्रवेशिका, भाग १—श्रीरामदास गौड़ और प्रो० सालिगराम भार्गव ।≈)

२—चुम्बक—प्रो० सालिगराम भार्गव ॥।≈)

३—मनोरञ्जन रसायन—प्रो० गोपालस्वरूप भार्गव २)

४—सूर्य सिद्धान्त—श्री महावीरप्रसाद श्रीवास्तव छः भाग मूल्य ८) । इस लेखक को १२००) का मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला है ।

५—वैज्ञानिक परिमाण—डा० निहालकरण सेठी १)

६—समीकरण मीमांसा—पं० सुधाकर द्विवेदी; प्रथम भाग १॥) द्वितीय भाग ॥≈)

७—निर्णायक (डिटर्मिनैंटस्) प्रो० गोपाल कृष्ण गर्दे और गोमती प्रसाद अग्निहोत्री ॥)

८—बीज ज्योमिति या भुजयुग्म रेखागणित—डाक्टर सत्यप्रकाश डी० एस-सी०, १।)

९—वर्षा और वनस्पति—श्री शंकरराव जोशी ; ।≈)

१०—सुवर्णकारी—ले० श्री० गङ्गाशंकर पचौली; ।≈)

११—व्यङ्ग-चित्रण—ले० एल० ए० डाउस्ट; अनुवादिका श्री रत्नकुमारी एम० ए०; २)

१२—मिट्टी के बरतन—प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा ; (अप्राप्य)

१३—वायुमंडल—डाक्टर के० बी० माथुर, २)

१४—लकडी पर पालिश—डा० गोरखप्रसाद और श्री रामरतन भटनागर, एम० ए०, ५) (अप्राप्य)

१५—कलम पेवंद—ले० श्री शंकरराव जोशी; २)

१६—जिल्दसाजी—श्री सत्यजीवन वर्मा, एम० ए० २)

१७—तैरना—डा० गोरखप्रसाद १)

१८—सरल विज्ञान-सागर प्रथम भाग—सम्पादक डाक्टर गोरखप्रसाद मूल्य ६) (अप्राप्य)

१९—वायुमण्डल की सूक्ष्म हवाएं—डा० सन्तप्रसाद टंडन, डी० फिल० ॥)

२०—खाद्य और स्वास्थ्य—डा० ओंकारनाथ परती, मूल्य ॥)

२१—फोटोग्राफी—लेखक श्री डा० गोरख प्रसाद डी० एस-सी० (एडिन), ४)

२२—फल संरक्षण—डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी० और श्री वीरेन्द्रनारायण सिंह २॥)

२३—शिशु पालन—लेखक श्री मुरलीधर बौड़ाई । मूल्य ४)

२४—मधुमक्खी पालन—दयाराम जुगड़ान; ३)

२५—घरेलू डाक्टर—डाक्टर जी० घोष, डा० उमाशङ्कर प्रसाद, डा० गोरखप्रसाद, ४)

२६—उपयोगी नुसखे, तरकीबें और हुनर—डा० गोरखप्रसाद और डा० सत्यप्रकाश, ३॥)

२७—फसल के शत्रु—श्री शङ्कर राव जोशी ३॥)

२८—साँपों की दुनिया—श्री रमेश वेदी ४)

२९—पोर्सलीन उद्योग—प्रो० हीरेन्द्र नाथ बोस ॥)

३०—राष्ट्रीय अनुसंधानशालाएँ—२)

३१—गर्भस्थ शिशु की कहानी—प्रो० नरेन्द्र २॥)

अन्य पुस्तकें

१—साबुन-विज्ञान	६)
२—भारतीय वैज्ञानिक	३)
३—वैक्युमब्रेक	२)
४—यांत्रिक चित्रकारी	२॥)
५—विज्ञान के महारथी (जगपति चतुर्वेदी)	२)
६—पृथ्वी के अन्वेषण की कथाएँ (,,)	१॥)
७—विज्ञान जगत की झाँकी (प्रो० नारायण सिंह परिहार)	२)
८—खोज के पथपर (शुकदेव दुबे)	॥)

पता—विज्ञान परिषद् (म्योर सेन्ट्रल कालेज भवन) प्रयाग

Reg. NO 372

Approved by the Directors of Education, Uttar Pradesh
and Madhya Pradesh for use in Schools;
Colleges and Libraries

विज्ञान परिषद् के मुख्य नियम

परिषद् का उद्देश्य

१—१९७० वि० या १९१३ ई० में विज्ञान परिषद् की इस उद्देश्य से स्थापना हुई कि भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक साहित्य का प्रचार हो तथा विज्ञान के अध्ययन को और साधारणतः वैज्ञानिक खोज के काम को प्रोत्साहन दिया जाय।

परिषद् का संगठन

२—परिषद् में सभ्य होंगे। निम्न निर्दिष्ट नियमों के अनुसार सभ्यगण सभ्यों में से ही एक सभापति, दो उप-सभापति, एक कोषाध्यक्ष, एक प्रधानमन्त्री, दो मन्त्री, एक सम्पादक और एक अंतरंग सभा निर्वाचित करेंगे जिनके द्वारा परिषद् की कार्यवाही होगी।

सभ्य

२२—प्रत्येक सभ्य को ६) वार्षिक चन्दा देना होगा। प्रवेश शुल्क ३) होगा जो सभ्य बनते समय केवल एक बार देना होगा।

२३—एक साथ १०० रु० की रकम दे देने से कोई भी सभ्य सदा के लिए वार्षिक चन्दे से मुक्त हो सकता है।

२६—सभ्यों को परिषद् के सब अधिवेशन में उपस्थित रहने का तथा अपना मत देने का, उनके चुनाव के पश्चात् प्रकाशित, परिषद् की सब पुस्तकों, पत्रों, तथा विवरणों इत्यादि को बिना मूल्य पाने का—यदि परिषद् के साधारण धन के अतिरिक्त किसी विशेष धन से उनका प्रकाशन न हुआ—अधिकार होगा। पूर्व प्रकाशित पुस्तकें उनको तीन चौथाई मूल्य में मिलेंगी।

२७—परिषद् के सम्पूर्ण स्वत्व के अधिकारी सभ्य वृन्द समझे जायेंगे।

प्रधान संपादक—डा० हीरालाल निगम
सहायक संपादक—श्री जगपति चतुर्वेदी

नागरी प्रेस दारागंज, प्रयाग　　　　प्रकाशक—विज्ञान परिषद्, इलाहाबाद